काले

हायर संस्कृत ग्रामर

(धातु कोश सहित)

हिन्दी में

कालेकृत

• हायर सस्कृत ग्रामर	६ ००
• हायर सस्कृत ग्रामर—धातुकोश सहित	७ ५०
• स्मालर सस्कृत ग्रामर	४ ००

हायर संस्कृत ग्रामर

(बृहत् संस्कृत-व्याकरण)

परिमार्जित हिन्दी संस्करण

मूल लेखक

मोरेश्वर रामचन्द्र काले, बी० ए०

हिन्दी अनुवादक

डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी)

एम० ओ० एल०, डी० फिल्०, पी० ई० एस०

विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद-२

१९६४

विषय-सूची

संकेत-सूची

(क) ग्रन्थों के नामादि

अमर०—अमरकोष
अष्टा०—अष्टाध्यायी, पाणिनिकृत
उत्तर०—उत्तररामचरित
कात्या०—कात्यायन
काद०—कादम्बरी
काव्या०—काव्यादर्श, दण्डिनकृत
कि०, किराता०—किरातार्जुनीय
कुमार०—कुमारसंभव
तु० करो—तुलना करो
देवी०—देवीभागवत
पा०—पाणिनीय सूत्र
भट्टि०—भट्टिकाव्य
भर्तृ०—भर्तृहरि, नीतिशतक, वैराग्यशतक
मनु०—मनुस्मृति
म० भा०—महाभाष्य, पतञ्जलिकृत
म० भारत—महाभारत
मालती०—मालतीमाधव
मालविका०—मालविकाग्निमित्र
मुद्रा०—मुद्राराक्षस
मृच्छ०—मृच्छकटिक
मेघ०—मेघदूत
रघु०—रघुवंश, कालिदासकृत
विक्रमो०—विक्रमोर्वशीय
वोप०—वोपदेव
शाकु०—शाकुन्तल
शिशु०—शिशुपालवध
सि० कौ०—सिद्धान्तकौमुदी, भट्टोजि दीक्षितकृत
हितो०—हितोपदेश

(ख) व्याकरण के पारिभाषिक शब्द

अव्ययी०—अव्ययीभाव समास
आ०, आत्मने०—आत्मनेपद
आ० लिङ्—आशीर्लिङ्
उ०, उ० पु०—उत्तमपुरुष
उ०, उभय०—उभयपद
एक० या १—एकवचन
कर्म०—कर्मवाच्य
च०—चतुर्थी
तृ०—तृतीया
द्वि०—द्वितीया
द्वि०, द्विव० या २—द्विवचन
निर्बल या ङित्—ङित्, weak
पं०—पंचमी
प०, पर० परस्मै०—परस्मैपद
पित् या अङित्—सबल, strong
प्र०—प्रथमा
प्र०, प्र० पु०—प्रथमपुरुष
बहु० या ३—बहुवचन
बहु०—बहुव्रीहि समास
म०, म० पु०—मध्यमपुरुष
वि० लिङ्—विधिलिङ्
ष०—षष्ठी
सं०—संबोधन
स०—सप्तमी
सर्व०—सर्वनाम

प्राक्कथन

यह संस्कृत-व्याकरण श्री एम० आर० काले के A Higher Sanskrit Grammar का हिन्दी अनुवाद है। मैंने प्रयत्न किया है कि पुस्तक का यथा-सम्भव शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत किया जाए, परन्तु अनेक स्थानों पर भाव के स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए अनुवाद सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया गया है। श्री काले की पुस्तक के जो संस्करण इस समय उपलब्ध होते हैं, उनमें छपाई सम्बन्धी सैंकड़ों अशुद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि मूल ग्रन्थों के अनुसार उन सभी अशुद्धियों का परिमार्जन किया जाए। उद्धरणों में और सूत्रों की संख्या आदि के निर्देश में भी जो अत्यधिक अशुद्धियाँ अंग्रेजी के संस्करण में शेष रह गई हैं, उनका भी यथासंभव पूर्णतया परिमार्जन किया गया है। अनेक स्थानों पर जहाँ मूल ग्रन्थ में सूत्रादि-निर्देश नहीं है, वहाँ पर अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी के आधार पर सूत्रादि-निर्देश कर दिया गया है। कितने ही स्थानों पर अनावश्यक संक्षेप का परित्याग करके अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विस्तार भी किया गया है।

धातुओं के भ्वादि के उल्लेख में अंग्रेजी-पद्धति को न अपनाकर भारतीय पद्धति अपनाई गई है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यथास्थान अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द भी कोष्ठ में दिए गए हैं। मैंने अनुवाद को यथाशक्ति सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है यह अनुवाद संस्कृत-प्रेमी जनता की व्याकरण-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करेगा और इससे छात्रवृन्द का हित होगा।

सहृदय विद्वज्जन इस पुस्तक में संशोधनादि के जो विचार भेजेंगे, उनका कृतज्ञता के साथ स्वागत किया जाएगा।

रामनवमी, '६२ — कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

उपोद्घात

संस्कृत व्याकरण

संस्कृत भाषा और साहित्य के सम्यक् अध्ययन के लिए संस्कृत व्याकरण का पूर्ण ज्ञान आवश्यक ही नही वरन् अनिवार्य है। संस्कृत भाषा मे व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा सूक्ष्म, तर्कपूर्ण एव विस्तृत विवेचन हुआ है उतना और वैसा विवेचन विश्व की किसी अन्य भाषा मे दुर्लभ है। 'मुख व्याकरण स्मृतम्' के अनुसार व्याकरण वेद भगवान् का मुख है[1]। मुख के बिना अन्य अगो का पोषण और परिवर्धन उचित रूप से नही हो सकता है। वेदो के सम्यक् अध्ययन, उनके अर्थ-बोध और व्याख्या के लिए वेदाङ्गो का ज्ञान आवश्यक बताया गया है। वेदाङ्ग ६ हैं[2]—१ शिक्षा, २ व्याकरण, ३ छन्द, ४ निरुक्त, ५ ज्योतिष, ६ कल्प। स्पष्ट है कि सम्यक् वेद-ज्ञान के लिए व्याकरण शास्त्र एक आवश्यक अङ्ग है। व्याकरण शास्त्र की यह महत्ता है कि उसके ज्ञान से शब्द के वास्तविक रूप और उसके अर्थ का यथावत् बोध होता है। इसीलिए व्याकरण के अध्ययन को प्राथमिकता दी गई है।[3]

उपर्युक्त विवेचन से एक अन्य तथ्य भी प्रकाश मे आ जाता है। वह यह कि व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, मनन एव चिन्तन वैदिक काल से

---

१ छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥
शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुख व्याकरण स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥४२॥—पाणिनीय शिक्षा।

२ शिक्षा व्याकरण छन्दो निरुक्त ज्योतिष तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः ॥

३ यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकल शकल सकृच्छकृत् ॥

हो आरम्भ हो गया था। उसे वैदिक ऋषियों ने भी महत्त्वपूर्ण माना है और इसीलिए वेद के अङ्गों में व्याकरण शास्त्र को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। व्याकरण शास्त्र का प्रारम्भिक रूप हमे 'प्रातिशाख्यो' मे देखने को मिलता है। इसके पश्चात् महर्षि यास्क का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'निरुक्त' आता है। निरुक्त मे शब्द निरुक्ति पर विचार किया गया है। यास्क ने शब्दो को चार भागो मे विभाजित करके विवेचन उपस्थित किया है। उनके किए हुए चार भाग ये है —नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि धातुओ से ही शब्दों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार व्याकरण के मूल रूप की विवेचना की ओर मनीषियो का ध्यान गया। विद्वानो ने यास्क का समय ८०० वर्ष ई० पू० बताया है।

पाणिनिपूर्व व्याकरण

यास्क के पश्चात् अन्य बहुत से शब्द शोधक वैयाकरण हुए, जिन्होने व्याकरण शास्त्र पर महत्त्वपूर्ण काम किया किन्तु समय की लम्बी अवधि के कारण उनके ग्रन्थ आज हमे अप्राप्त हैं। लेखन सामग्री की पूर्ण सुविधा न होने के कारण भी इन ग्रन्थो की सुरक्षा न हो सकी, परन्तु उनके नामो का पता हमे पाणिनि की अष्टाध्यायी से प्राप्त होता है। आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि वैयाकरणो के नामो का उल्लेख पाणिनि ने अपने ग्रन्थ मे किया है। इन सब मे भी ऐन्द्र व्याकरण अधिक चिरायु और प्रिय रहा। इन वैयाकरण मनीषियो के ग्रन्थो का यद्यपि हमे कोई पता नही चलता, फिर भी पाणिनि की अष्टाध्यायी को देख कर यह कहा जा सकता है कि पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती प्राप्त ग्रथो और विचारो तथा विवेचनाओ का पूर्ण सदुपयोग अपनी अष्टाध्यायी मे अवश्य किया है। पूर्ववर्ती विचारो और विवेचनाओ को क्रमिक, तार्किक, व्यवस्थित एव सूत्र रूप देने मे पाणिनि अभूतपूर्व रूप से सफल हुए है। यह उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही परिणाम था।

पाणिनि

पाणिनि के सामने एक विस्तृत भाषा के नियमित करने की समस्या थी। उनमे अद्भुत प्रतिभा थी। फिर उन्हे कुछ कार्य पूर्ववर्ती आचार्यों का भी प्राप्त हो गया, जिसे उन्होंने प्रौढता और व्यवस्था प्रदान की।

पाणिनि का समय निर्धारित करने मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। डा०
वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार से उनका समय ५०० ई० पू० और ४००
वर्ष ई० पू० के बीच है। मैक्समूलर ने ३५० वर्ष ई० पू० पाणिनि की
स्थिति स्वीकार की है। डा० के० वरदाचार्य के अनुसार ७०० ई० पू० और
६०० वर्ष ई० पू० के बीच पाणिनि का समय है। पाणिनि का जीवनवृत्त जो
किसी प्रकार हमे प्राप्त होता है वह इस प्रकार है कि पाणिनि अटक के समीप
स्थित शालातुर स्थान के निवासी थे। पतञ्जलि के महाभाष्य के अनुसार
इनकी माता का नाम दाक्षी था। ये उपवर्ष या वर्ष आचार्य के शिष्य थे।
उनके सहपाठी थे—कात्यायन, व्याडि और इन्द्रदत्त। कहा जाता है कि
पाणिनि को आचार्य वर्ष से अधिक सतोष नहीं हुआ। फलतः उन्होने भगवान्
शकर की उपासना की। जिससे प्रसन्न होकर शकर जी ने इन्हें १४ माहेश्वर
सूत्र प्रदान किए। इनके सम्बन्ध मे हम आगे लिखेंगे। पञ्चतन्त्र की एक
कथा मे आया है कि पाणिनि की मृत्यु एक व्याघ्र द्वारा हुई। कुछ विद्वानों
का विचार है कि पाणिनि की निर्धन तिथि त्रयोदशी है। सम्भवत इसीलिए
वैयाकरण विद्वान आज भी त्रयोदशी के दिन व्याकरण का अध्ययन अध्यापन
नही करते।

पाणिनि की रचना अष्टाध्यायी है। अष्टाध्यायी के नियमों के सम्बन्ध
मे जितना अधिक कहा जाय उतना थोडा है। अष्टाध्यायी मे लगभग ४ सहस्र
सूत्र है। इसका विभाजन आठ अध्यायो मे किया गया है। प्रत्येक अध्याय
मे चार पाद हैं। प्रथम अध्याय मे व्याकरण सम्बन्धी सज्ञाओ तथा परिभाषाओ
की विवेचना की गई है। दूसरे अध्याय मे समास और कारक प्रकरण दिए
गए हैं। तीसरे और आठवें अध्याय मे कृदन्त का विस्तार से विवेचन किया
गया है। चौथे और पाँचवें अध्यायो मे स्त्रीप्रत्यय और तद्धित प्रकरण हैं।
छठे और सातवें अध्यायो मे सन्धि, आदेश और स्वरप्रक्रिया से सम्बन्धित
विस्तृत और प्रौढ विवरण हैं। जैसा कि हम कह आए हैं, पाणिनि के सामने
संस्कृत भाषा का एक विशाल रूप था। उसे सूत्रबद्ध करना उनका उद्देश्य था।
व्याकरण की सामग्री किसी न किसी रूप मे प्राप्त अवश्य थी, किन्तु वह यत्र-
तत्र फैली हुई थी, उसमे प्रौढता और व्यवस्था का अभाव था। इस हानि की
पूर्ति आचार्य पाणिनि ने। पाणिनि ने बहुत छोटे-छोटे पारिभाषिक और अर्थ

गौरव से पूर्ण सूत्र रखे हैं। पाणिनि का ध्यान संक्षेप की ओर विशेष रूप से था, जिसके लिए उन्होंने प्रत्याहार, अनुबन्ध, संज्ञाओं आदि का पूर्ण आश्रय स्थान-स्थान पर लिया है। इन संक्षेप करने वाली प्रणालियों का वर्णन हम आगे करेंगे। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्द-रूपों और धातुरूपों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ विवेचन हुआ है। उनका ढंग वैज्ञानिक है। इनकी अष्टाध्यायी विश्व का एक आदर्श व्याकरण-ग्रंथ है, जिसमें सर्वाङ्गपूर्ण अनुसन्धान, संक्षेपातिशयता, नियम-बद्धता और तार्किकता अपनी पूर्णता की चरमसीमा को प्राप्त हुई है। संक्षेपातिशय का उद्देश्य सम्भवत: व्याकरण के नियमों को कठाग्र करने योग्य बनाना था। इस प्रवृत्ति का एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि व्याकरण शास्त्र अत्यन्त दुरूह और फलस्वरूप गुरु मुखापेक्षी हो गया। दूसरी बात यह हुई कि पाणिनि ने भाषा और व्याकरण की बिखरी हुई सामग्री का इस प्रकार नियमों में जकड़ दिया कि उसकी स्वाभाविक सरल गति एक प्रकार से रुद्ध सी हो गई।

कात्यायन का दूसरा नाम वररुचि है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनका समय ४०० वर्ष ई० पू० तथा ३०० वर्ष ई० पू० के बीच में है। पाणिनि के पश्चात् कात्यायन दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण हैं, जिनके सम्बन्ध में हम कुछ ज्ञान है। कात्यायन ने पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रों की आलोचनात्मक व्याख्या की है। उन्होंने कमियों के दूर करने का भी कहीं-कहीं प्रयास किया है। इन्होंने वार्तिकों की रचना की है। वार्तिकों की अनुमानित संख्या ४००० है। पाणिनि के नियमों पर विचार करते हुए कहीं-कहीं कात्यायन से भूलें भी हो गई हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कात्यायन की इन भूलों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। कात्यायन ने वाजसनेयी प्रातिशाख्य की भी रचना की है।

कात्यायन

पतञ्जलि की उत्कृष्ट रचना महाभाष्य है। इनका समय २०० वर्ष ई० पू० तथा प्रथम ईसवीय शती के मध्य माना जाता है। पाणिनि के महत्त्व को विशेष रूप से बढ़ाने वाले पतञ्जलि हैं। पतञ्जलि मौलिक वैयाकरण है। आगे आगे वाले विद्वानों ने पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को मुनित्रय की संज्ञा प्रदान करके तीनों मुनियों के लिए समान सम्मान प्रदर्शित

पतञ्जलि

किया है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार पतञ्जलि गोनर्द (सम्भवत गोंडा) के निवासी थे और उनकी माता का नाम गोणिका था। पतञ्जलि पाणिनि के पोषक हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता सरल और प्रवाहमय शैली है जो महाभाष्य के लिखने में अपनाई गई है। पतञ्जलि की व्याख्याओं को 'इष्टि' कहते हैं। पतञ्जलि ने कात्यायन की त्रुटियों का सुधार करके पाणिनि के मत की पुष्टि की है।

पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के पश्चात् मौलिक वैयाकरणों का युग समाप्त सा हो जाता है। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त तीनों तप पूत मुनियों ने व्याकरण की विवेचना को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था और सम्भवत उसके आगे नियम-निर्माण करने की आवश्यकता न रह गई थी। फलत टीका-युग का आरम्भ होता है। इस युग में पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के नियमों को समझाने एवं उन्हें बोधगम्य बनाने की विविध विधियाँ निकाली गईं। इन विधियों में टीका विधि सर्वोत्तम समझी गई। आगे चल कर कुछ विद्वानों ने आवश्यक पाणिनीय सूत्रों का छोटे-छोटे रूपों में संग्रह भी किया और उन्हें नवीन व्यवस्था भी प्रदान की।

मुनित्रय का परवर्ती काल

सातवीं ई० में जयादित्य और वामन ने अष्टाध्यायी पर टीका लिखा, जो 'काशिका' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'काशिका' पर उपटीकाएँ लिखी गईं। जिनेन्द्र बुद्धि ने न्यास और हरदत्त ने पदमञ्जरी उपटीकाओं की रचना की। महाभाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ लिखा। वाक्यपदीय में आगम, वाक्य और प्रकीर्ण ये तीन काड (अध्याय) हैं। भर्तृहरि का चलाया हुआ स्फोटवाद आज भी प्रसिद्ध है। महाभाष्य पर 'प्रदीप' नामक अन्य टीका ग्रन्थ लिखने वाले काश्मीरी पडित कैयट हैं।

टीकाओं और उपटीकाओं के पश्चात् पाणिनीय सूत्रों की व्यवस्था की ओर विद्वानों का ध्यान गया। इस दिशा में सन् १३५० ई० में विमल सरस्वती ने 'रूपमाला' और १५वीं शती में पंडित रामचन्द्र ने 'प्रक्रियाकौमुदी' की रचना की। १६३० ई० के लगभग भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनीय सूत्रों को एक नयी व्यवस्था देकर सिद्धान्त-कौमुदी की रचना की। यह पुस्तक इतनी अधिक

गौरव से पूर्ण सूत्र रखे हैं। पाणिनि का ध्यान सक्षेप की ओर विशेष रूप से था, जिसके लिए उन्होंने प्रत्याहार, अनुबन्ध, सनाओं आदि का पूर्ण आश्रय स्थान-स्थान पर लिया है। इन सक्षेप करने वाली प्रणालियों का वर्णन हम आगे करेंगे। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में शब्द-रूपों और धातुरूपों का बडी सूक्ष्मता के साथ विवेचन हुआ है। उनका ढग वैज्ञानिक है। इनकी अष्टाध्यायी विश्व का एक आदर्श व्याकरण ग्रथ है, जिसमें सर्वाङ्गपूर्ण अनुसन्धान, सक्षेपातिशयता, नियम-बद्धता और तार्किकता अपनी पूर्णता की चरमसीमा को प्राप्त हुई हैं। सक्षेपातिशय का उद्देश्य सम्भवत व्याकरण के नियमों को कठाग्र करने योग्य बनाना था। इस प्रवृत्ति का एक बुरा परिणाम यह भी हुआ कि व्याकरण शास्त्र अत्यन्त दुरूह और फलस्वरूप गुरु-मुखापेक्षी हो गया। दूसरी बात यह हुई कि पाणिनि ने भाषा और व्याकरण की बिखरी हुई सामग्री को इस प्रकार नियमों मे जकड दिया कि उसकी स्वाभाविक सरल गति एक प्रकार से रुद्ध सी हो गई।

कात्यायन का दूसरा नाम वररुचि है। कुछ विद्वानो के अनुसार इनका समय ४०० वर्ष ई० पू० तथा ३०० वर्ष ई० पू० के बीच मे है। पाणिनि के पश्चात् कात्यायन दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण हैं, जिनके सम्बन्ध मे हमे कुछ ज्ञान है। कात्यायन ने पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रो की आलोचनात्मक व्याख्या की है। उन्होने कमियो के दूर करने का भी कहीं-कहीं प्रयास किया है। इन्होन वार्तिको की रचना की है। वार्तिको की अनुमानित सख्या ४००० है। पाणिनि के नियमो पर विचार करते हुए कहीं-कहीं कात्यायन से भूलें भी हो गई हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कात्यायन की इन भूलो का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। कात्यायन ने वाजसनेयी प्रातिशाख्य की भी रचना की है।

कात्यायन

पतञ्जलि की उत्कृष्ट रचना महाभाष्य है। इनका समय २०० वर्ष ई० पू० तथा प्रथम ईसवीय शती के मध्य माना जाता है। पाणिनि के महत्त्व को विशेष रूप से बढाने वाले पतञ्जलि हैं। पतञ्जलि मौलिक वैयाकरण हैं। आगे आने वाले विद्वानो ने पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को मुनित्रय की सज्ञा प्रदान करके तीनो मुनियो के लिए समान सम्मान प्रदर्शित

पतञ्जलि

किया है। डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार पतञ्जलि गोनर्द (सम्भवत गोंडा) के निवासी थे और उनकी माता का नाम गोणिका था। पतञ्जलि पाणिनि के पोषक हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता सरल और प्रवाहमय, शैली है जो महाभाष्य के लिखने मे अपनाई गई है। पतञ्जलि की व्याख्याओं को 'इष्टि' कहते हैं। पतञ्जलि ने कात्यायन की त्रुटियों का सुधार करके पाणिनि के मत की पुष्टि की है।

पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के पश्चात् मौलिक वैयाकरणों का युग समाप्त सा हो जाता है। इसका कारण यह है कि उपर्युक्त तीनों तप पूत मुनियों ने व्याकरण की विवेचना को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था और सम्भवत उसके आगे नियम-निर्माण करने की आवश्यकता न रह गई थी। फलत टीका-युग का आरम्भ होता है। इस युग मे पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के नियमों को समझाने एव उन्हें बोधगम्य बनाने की विविध विधियाँ निकाली गईं। इन विधियो मे टीका विधि सर्वोत्तम समझी गई। आगे चल कर कुछ विद्वानो ने आवश्यक पाणिनीय सूत्रों का छोटे-छोटे रूपों मे सग्रह भी किया और उन्हे नवीन व्यवस्था भी प्रदान की।

मुनित्रय का परवर्ती काल

सातवीं ई० मे जयादित्य और वामन ने अष्टाध्यायी पर टीका लिखा, जो 'काशिका' के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'काशिका' पर उपटीकाएँ लिखी गईं। जिनेन्द्र बुद्धि ने न्यास और हरदत्त ने पदमञ्जरी उपटीकाओं की रचना की। महाभाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ लिखा। वाक्यपदीय मे आगम, वाक्य और प्रकीर्ण ये तीन काड (अध्याय) हैं। भर्तृहरि का चलाया हुआ स्फोटवाद आज भी प्रसिद्ध है। महाभाष्य पर 'प्रदीप' नामक अन्य टीका ग्रथ लिखने वाले काश्मीरी पडित कैयट हैं।

टीकाओं और उपटीकाओं के पश्चात् पाणिनीय सूत्रों की व्यवस्था की ओर विद्वानो का ध्यान गया। इस दिशा मे सन् १३५० ई० मे विमल सरस्वती ने 'रूपमाला' और १५वीं शती मे पडित रामचन्द्र ने 'प्रक्रियाकौमुदी' की रचना की। १६३० ई० के लगभग भट्टोजिदीक्षित ने पाणिनीय सूत्रों को एक नयी व्यवस्था देकर सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। यह पुस्तक इतनी अधिक

लोकप्रिय हुई कि अष्टाध्यायी का क्रम और उसका अध्ययन-अध्यापन एक प्रकार से विस्मृत सा हो चला। आज जहाँ भी संस्कृत व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता होती है, वहाँ सिद्धान्त-कौमुदी से पूरा कार्य-सम्पादन हो जाता है। भट्टोजिदीक्षित ने स्वयं 'प्रौढ-मनोरमा' नाम से सिद्धान्त-कौमुदी की टीका की रचना की। आगे चलकर कौण्डभट्ट ने 'वैयाकरणभूषण' नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की। पण्डितराज जगन्नाथ ने 'प्रौढमनोरमा' पर 'मनोरमा कुचमर्दिनी' नाम से व्याख्या प्रस्तुत की। इसके पश्चात् टीका ग्रन्थों की रचना करने वालों में नागेश भट्ट का स्थान आता है। इन्होंने लगभग १२ टीका-ग्रंथ लिखे। वरदाचार्य ने बालकों के अध्ययन के विचार से 'लघु सिद्धान्त-कौमुदी' और 'मध्य-सिद्धान्त-कौमुदी' की रचना की। ये दोनों रचनाएँ व्याकरण प्रारम्भ करने वाले छात्रों के लिए परमोपयोगी सिद्ध हुई।

उपर्युक्त पंक्तियों में हमने व्याकरण का अतिसंक्षिप्त और सार रूप इतिहास प्रस्तुत किया है, जिससे छात्रों को व्याकरण के इतिहास के तारतम्य का स्वल्प बोध हो सकेगा। इस विषय को समाप्त करने के पूर्व हम इतना और कह देना चाहते हैं कि व्याकरण की पाणिनीय शाखा के अतिरिक्त चान्द्र, कातन्त्र आदि अन्य शाखाएँ भी आईं। अन्य अनेक वैयाकरणों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार व्याकरण शास्त्र के सुन्दर ग्रन्थों की रचना और विवेचना की, परन्तु पाणिनीय व्याकरण, उसकी व्यवस्था, सूत्रबद्धता और शैली इतनी मनोरम हुई कि व्याकरण की अन्य शाखाएँ विस्मृत सी हो गईं। आज हमें इन महान् ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में कुछ छुटपुट बातों के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं। यह पाणिनीय व्याकरण की लोकप्रियता ही है।

पाणिनीय व्याकरण का वैशिष्ट्य

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पाणिनि का ध्यान संक्षेप की ओर अत्यधिक था। वे प्रत्येक नियम को सूत्र के रूप में अति संक्षिप्त करके उपस्थित करना चाहते थे। उनके पास भाषा का अपरिमित ऐश्वर्य था तथा व्याकरण के प्रत्येक अंग का रहस्य उन्हें हस्तामलकवत् था। व्याकरण का इतना सूक्ष्म ज्ञान और उसे नियमबद्ध करने की क्षमता पाणिनि जैसे कुछ इने-गिने व्यक्तियों को मिलती है, सब को नहीं।

अपने विषय को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में उपस्थित करने में पाणिनि को अनेक विधियों का आश्रय लेना पड़ा। जिनमें कुछ विधियों का वर्णन हम नीचे दे रहे हैं —

१ प्रत्याहार—संक्षेप करने के लिए पाणिनि ने प्रत्याहार विधि को अपनाया है। प्रत्याहार का प्रथम अक्षर ऐसा होता है जो हल् या इत्संज्ञक न हो, दूसरा वर्ण निश्चित रूप से हल् रहता है। इन प्रत्याहारों का निर्माण १४ माहेश्वर सूत्रों के आधार पर होता है। इनमें प्रथम वर्ग से इत्संज्ञक वर्ण तक के बीच आने वाले अक्षरों की गणना होती है। उदाहरणार्थ—अक् प्रत्याहार के अंतर्गत अ, इ, उ, ऋ और लृ वर्णों की गणना होती है। १४ माहेश्वर सूत्र निम्नाङ्कित हैं —

अइउण्।१। ऋलृक्।२। एओङ्।३। ऐऔच्।४। हयवरट्।५। लण्।६। ञमङणनम्।७। झभञ्।८। घढधष्।९। जबगडदश्।१०। खफछठथचटतव्।११। कपय्।१२। शषसर्।१३। हल्।१४।

इन्हीं १४ माहेश्वर सूत्रों से प्रत्याहार बनते हैं। इनकी संख्या कुल ४२ है। अकारादि क्रम से हम इन्हें नीचे लिख रहे हैं —

१ अक्	८ अश्	१५ ऐच्	२२ जश्	२९ भष्	३६ रल्
२ अच्	९ इक्	१६ खय्	२३ झय्	३० मय्	३७ वल्
३ अट्	१० इच्	१७ खर्	२४ झर्	३१ यञ्	३८ वश्
४ अण्	११ इण्	१८ ङम्	२५ झल्	३२ यण्	३९ शर्
५ अण्	१२ उक्	१९ चय्	२६ झश्	३३ यम्	४० शल्
६ अम	१३ एङ्	२० चर्	२७ झष्	३४ यर्	४१ हल्
७ अल्	१४ एच्	२१ छव्	२८ बश्	३५ यर्	४२ हश्

एक श्लोक के अनुसार उपर्युक्त १४ माहेश्वर सूत्र जिनके आधार पर ४२ प्रत्याहार बने हैं, भगवान् शंकर के द्वारा पाणिनि को प्राप्त हुए। प्रत्याहारों के आधार पर पाणिनि अपने नियमों को संक्षेप में उपस्थित करने में पूर्ण सफल हुए।

२. गण—जहाँ पाणिनि को ऐसे अनेक शब्दो के उल्लेख करने की आवश्यकता होती है जिनमे कोई एक ही नियम लगता है, वहाँ वे समस्त शब्दों का उल्लेख सूत्र मे नही करते। शब्दो मे से जो प्रथम शब्द होता है, उसी के नाम से गण का नामकरण कर देते है। जिससे समस्त शब्दो का बोध हो जाता है। गण का पूर्ण रूप या विवरण अंत मे दे दिया जाता है। इस प्रकार नियम का सूत्रीकरण हो जाता है। उदाहरणार्थ 'सर्वादीनि सर्वनामानि' मे सर्व शब्द मात्र है, किंतु सर्वादि गण के अंतर्गत ३५ सर्वनाम हैं, जिनका बोध 'सर्वादीनि' शब्द से हो गया है। इसी प्रकार गर्गादि गण मे १०२ शब्द हैं।

३ अनुबन्ध या इत्संज्ञा—अष्टाध्यायी मे निम्नाङ्कित वर्णो की इत्संज्ञा की गई है— (क) [1]अन्तिम हल् वर्ण, (ख) [2]उपदेश मे अनुनासिक अच् (धातु, आगम, प्रत्यय, आदेश के मूल रूप मे उपस्थित अनुनासिक स्वर), (ग) [3]धातु के आदि मे आने वाले ञि, टु, डु, (घ) [4]किसी भी प्रत्यय के पहले आने वाले चवर्ग और [5]टवर्ग तथा षकार, (ङ) तद्धित प्रत्ययो को छोड कर अन्य प्रत्ययो के प्रारम्भ मे आने वाले लकार, शकार तथा कवर्ग [6]। इत्संज्ञक वर्णो का लोप अवश्य हो जाता है परन्तु इन्ही के कारण कभी-कभी वृद्धि, गुण, आगम, आदेश आदि कार्य होते हैं। पाणिनि ने वैदिक भाषा पर नियम-निर्माण करते हुए अनुबन्धो का प्रयोग अधिक किया है।

४ अनुवृत्ति—सूत्रो के विस्तार को कम करने के लिए अनुवृत्ति चौथी प्रणाली है। पूर्व सूत्र मे कोई एक पद रख दिया गया है तथा आगे के सूत्रो मे जहाँ कहीं भी उक्त पद की आवश्यकता हुई है, पूर्व सूत्र से लेकर अन्वय किया गया है। पूर्व सूत्रो से उत्तरवर्ती सूत्रो मे पद के इसी प्रकार के अनुवर्तन

---

१ हलन्त्यम् ।१।३।३।

२ धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम् ।
आगमप्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

३. आदिर्ञिटुडवः ।१।३।५।

४ चुटू ।१।३।७।

५ ष. प्रत्ययस्य ।१।३।६।

६ लशक्वतद्धिते ।१।३।८।

को अनुवृत्ति सज्ञा प्रदान की गई है। प्राय यह अनुवृति निकट स्थित उत्तरवर्ती सूत्र में की जाती है किन्तु कभी-कभी कुछ बीच के सूत्र छूट जाते हैं और आगे के सूत्र मे कही दूर पूर्वपद की अनुवृत्ति की जाती है। इसे मण्डूकप्लुति (मेढक का उछलना) न्याय कह सकते हैं।

५—सज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ—विस्तार-सकोचन मे सज्ञाएँ और भिन्न-भिन्न प्रकार की परिभाषाएँ बहुत सहायक सिद्ध हुई है। कुछ परिभाषाओ और सज्ञाओ का निर्माण स्वय पाणिनि ने किया है और कुछ की रचना उनके पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा हुई है। यहाँ हम कुछ सज्ञाओ और परिभाषाओ का विवरण देते है —

(क) वृद्धि—आ, ऐ और औ की वृद्धि सज्ञा होती है। (वृद्धिरादैच् ।१।१।१)।

(ख) गुण—अ, ए और ओ की गुण सज्ञा होती है। (अदेङ गुण ।१।१।२।)

(ग) सम्प्रसारण—य, व्, र्, ल् के स्थान पर आने वाले इ, उ, ऋ, लृ वर्णों की सम्प्रसारण सज्ञा होती है, (इग्यण सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।)

(घ) सयोग—दो या दो से अधिक हल् व्यजनो के मेल को सयोग सज्ञा दी जाती है। (हलोऽनन्तरा सयोग ।१।१।७।) । यथा—अ+न्+त्+य=अन्त्य।

(ङ) लोप—प्रत्यय आदि का अपने स्थान पर न होना प्रकारान्तर से लोप कहा जाता है। प्रत्यय आदि की जितनी आवश्यकता होती है उतना भाग तो बना रहता है, किन्तु अनावश्यक अश का लोप हो जाता है, (अदर्शन लोप ।१।१।६०।)। स्थानभेद से लोप को लुक्, श्लु और लुप् सज्ञा प्रदान करते हैं।

(च) आदेश—किसी वर्ण के स्थान पर उसकी सत्ता मिटा कर दूसरे वर्ण का आगमन आदेश है। इस स्थिति मे पहले रूप का कोई चिह्न नही रह जाता है। शत्रुवदादेश —आदेश शत्रुवत् होता है। अर्थात् जिस प्रकार शत्रु अपने विरोधी को पूर्णतया नष्ट करके उसके स्थान पर अपना अधिकार जमा लेता है, उसी प्रकार आदेश होने

पर प्रथम वर्ण का कोई चिह्न अवशिष्ट नही रह जाता। यथा-क्त्वा के स्थान पर ल्यप् का आदेश।

(छ) आगम—मित्रवदागम.—अर्थात् मित्र के समान आगम होता है। पूर्व वर्तमान वर्ण बना ही रहेगा और अन्य वर्ण का भी आगमन हो जायगा।

(ज) उपधा—अंतिम वर्ण के ठीक पहले वाले वर्ण को उपधा सज्ञा होती है। (अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा।१।१।६५।)।

(झ) टि—किसी भी शब्द का अंतिम स्वर सहित आगे का भाग टिसंज्ञक होता है। (अचोऽन्त्यादि टि। १। १। ६४।) यथा-गुण मे अ।

(ञ) पद—सुप् या तिङ प्रत्ययो से युक्त शब्द पद सज्ञक होता है। (सुप्तिङन्त पदम्।१।४।१४।) । यथा-राम. सुबन्त पद है और गच्छति तिङन्त पद। शब्दों से सु, आदि और धातुओं से तिङादि प्रत्यय होते हैं। प्रथमादि सात विभक्तियो मे २१ सुप् प्रत्यय होते है। इसी प्रकार १८ तिङ प्रत्यय है।

(ट) भ—यकार या स्वर से प्रारम्भ होने वाले प्रत्ययों के जुडने पर पूर्व शब्द की पद सज्ञा न हो कर भ सज्ञा होती है। (यचि भम्।१।४।१८।)

(ठ) घ—तरप् और तमप् प्रत्ययो की घ सज्ञा होती है। (तरप्तमपौ घ: ।१।१।२२।) ।

(ड) विभाषा—विकल्प की विभाषा सज्ञा होती है, जहाँ किसी कार्य के होने और न होने की सभावना हो। (नवेति विभाषा।१।१।४४)।

(ढ) निष्ठा—क्त और क्तवतु निष्ठासज्ञक होते हैं। (क्तक्तवतू निष्ठा।१।१।२६।) ।

(ण) प्रगृह्य—ईकारान्त, ऊकारान्त तथा एकारान्त द्विवचनान्त पद प्रगृह्यसज्ञक होते हैं। (ईदूदेद्द्विवचन प्रगृह्यम् ।१।१।११।) ।

६—सधिसम्बन्धित परिभाषाएँ—(क) एकादेश—जहाँ दो वर्ण मिलकर एक रूप हो जाते हैं, वहाँ एकादेश कहलाता है। (ख) पररूप—पूर्व और पर वर्ण के मिलने पर जहाँ पर वर्ण ही हो, वहाँ पररूप कहलाता है। यथा-प्र+एजते =प्रेजते। (ग) पूर्वरूप—पर और पूर्व वर्ण के आने पर जहाँ पूर्ववर्ण हो जाय,

परवर्ण न हो वहाँ पूर्वरूप कहलाता है । यथा—हरे+अव=हरेऽव। (घ) प्रकृतिभाव—जहाँ वर्णों मे कोई प्राप्त विकार नही होता और वे वर्ण वैसे ही अपरिवर्तित बने रहते हैं, वहाँ प्रकृतिभाव कहा जाता है,। यथा—गो+अग्रम्=गो अग्रम्।

ऊपर हमने पाणिनि की सक्षेप करने की कुछ विधियो पर केवल साधारण सा विचार किया है। पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन करने पर हमे बहुत सी अन्य सज्ञाएँ, परिभाषाएँ और सक्षिप्त रूप मिलेंगे। जिनसे पाणिनि ने अपना काम चला लिया है। सक्षेप करने से पाणिनि और पाठको को कई लाभ हुए। प्रथमत पाणिनि ने थोडा लिख कर बहुत का बोध कराया। दूसरे, थोडे ही स्थान मे काम चल गया। अधिक जगह नही घिरी। तीसरे, इन सूत्रो को स्मरण करने मे भी सुविधा हुई। अगर इन विधियो का उपयोग न होता तो पाठक को अधिक शब्द या नियमादि स्मरण करने पडते। फलत उनके शीघ्र विस्मृत हो जाने की पूर्ण सम्भावना रहती। चौथे, सक्षिप्त नियम और सूत्र थोडे समय म ही स्मृति-पथ पर आ जाते हैं। साधारण बालक भी इन्हें कम से कम समय म याद कर लेता है। आवृत्ति करने में भी समय कम लगता है । अगर ये नियम विस्तार से लिखे जाते तो सम्भवत नियमो का एक विशाल ग्रन्थ बन जाता, जिसका स्मरण करना सम्भव न था। स्पष्ट है कि इस प्रकार बडा ग्रथ अनुपयोगी सिद्ध होता। पाँचवें, सक्षेपीकरण से यह भी लाभ हुआ कि अल्प परिश्रम स ही पाठक का काम चल जाता है। यदि पाणिनि 'सर्वादीनि' शब्द का व्यवहार न करके समस्त शब्दो की सूची नियम मे ही रख देते तो पाठक को उनके स्मरण करने मे अधिक परिश्रम करना पडता, जो कम से कम आज के इस युग मे कदापि सम्भव न होता। यही बात लेखन सामग्री के भी सम्बन्ध म ध्यान देने योग्य है। आज का युग तो वैज्ञानिक युग है। लेखन-सामग्री और मुद्रण आदि कार्यो से धन, श्रम, शक्ति आदि का कम से कम मात्रा मे व्यय होता है। इनकी सुविधाएँ भी पर्याप्त हैं। किन्तु महर्षि पाणिनि के समय मे एक पुस्तक की प्रतिलिपि तैयार करने मे बहुत अधिक समय, शक्ति और श्रम की आवश्यकता थी। उस समय मुद्रण और लेखन सामग्री की असुविधा सी थी। सक्षेप करने से इस दिशा मे भी पाठको और जिज्ञासुओ को सुविधा मिली।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के अनुसार अति का सर्वत्र निषेध है। पाणिनि के सक्षिप्त नियमो मे भी सक्षेप की अति हो गई। फलत प्रकारान्तर से कुछ असुविधा भी हुई। असुविधा इस विचार से कि अति सक्षिप्त नियम गुरु की व्याख्या की आवश्यकता अनुभव करने लगे। पाठक स्वय उन्हें समझने मे असमर्थ वन गया। अगर उत्तम गुरु प्राप्त न हो तो पाणिनि के सूत्र लोहे के चनो से किसी प्रकार कम नही। गुरु की सहायता के बिना पाणिनीय व्याकरण दुर्गम है। यही कारण है कि पाणिनीय व्याकरण का ठोस ज्ञान रखने वाले विद्वानो की न्यूनता सी दृष्टिगोचर हो रही है। अनेक टीकाओ, टिप्पणियो, व्याख्याओ और लघु पुस्तको के होते हुए भी पाणिनीय व्याकरण कठिन बना ही है। कुछ नियमो का यथा कथचित् ज्ञान प्राप्त करके अधिकाश पाठक अपना काम चला लेते हैं। सचमुच, आज सस्कृत के वैयाकरण मनीषियो के समक्ष एक समस्या है। और वह यह कि पाणिनीय व्याकरण को किस विधि से सरल-तम रीति से अल्पज्ञ पाठक के समक्ष रखा जाय। जब तक यह समस्या हल नही होगी तब तक सस्कृत व्याकरण और सस्कृत भाषा तथा उसका साहित्य केवल कुछ पडितो तक ही सीमित बना रहेगा और उसका अधिकाधिक प्रचार न हो सकेगा।

अध्ययन विधि

'द्वादशभिवर्षै व्याकरण श्रूयते'—अर्थात् व्याकरण शास्त्र के सम्यक् अध्ययन के लिए बारह वर्ष का समय चाहिए। किन्तु आज हमारे पास बारह वर्ष का समय नही है। फलत अल्पकाल मे व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे कुछ सक्षिप्त और सारग्राही विधियाँ अपनानी पडेंगी। इन विधियो मे उपर्युक्त सज्ञाओ, परिभाषाओ और पाणिनि की सक्षिप्त करने वाली प्रणालियो का ज्ञान यदि बालक को पहले ही करा दिया जाय तो व्याकरण का ज्ञान थोडे समय मे सम्भव हो सकता है। इन विधियो मे से कुछ की चर्चा हमने ऊपर की है, किन्तु वह चर्चा मात्र ही है। सक्षिप्त करने वाली विधियो की गाँठो को खोलने के लिए छात्र को गुरु की शरण आवश्यक ही नही वरन् अनिवार्य है। जब तक इन विधियो का स्पष्ट ज्ञान न होगा तब तक व्याकरण दुरूह बना रहेगा।

संस्कृत व्याकरण

अध्याय १

वर्णमाला

१ संस्कृत परिष्कृत या परिमार्जित भाषा को कहते हैं। यह देवभाषा या देवों की भाषा कही गई है।[1] यह देवनागरी अर्थात् देवों के नगरों में उपयोग में आने वाली वर्णमाला में लिखी जाती है।

(क) संस्कृत वर्णमाला का शुद्ध नाम देवनागरी है। इसको ही संक्षेप में नागरी भी कहते हैं। देवनागरी शब्द में सम्भवतः इतिहास भी छिपा हुआ है कि आर्य लोग भारत में आए और वे उत्तरीय भारत में स्थित हो गए। देवनागरी शब्द (दिव् धातु से देव शब्द है, देव अर्थात् सुन्दर और तेजोमय आकृति वाले) में देव शब्द आर्यों का सूचक है। वे भारत के आदिवासियों की अपेक्षा बहुत सुन्दर आकृति वाले थे। नागरी में नगर शब्द आर्यों के उपनिवेश का सूचक है, जहाँ पर यह भाषा बोली जाती थी।

(ख) संस्कृत भाषा साधारणतया उसी लिपि में लिखी जाती है, जिसमें हिन्दी, बंगला और मराठी आदि भारतीय भाषाएं लिखी जाती हैं। वास्तविक देवनागरी लिपि वह मानी जाती है, जिसमें अशोक के शिलालेख आदि लिखे हुए हैं और जो आज भी उत्तरीय भारतवर्ष में प्रचलित है।

---

१. संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः। दण्डी।

२. देवनागरी वर्णमाला मे ४२ वर्ण या अक्षर है। इनमें ९ अच् या स्वर है और ३३ हल् या व्यजन है[1]।

(क) इनमें प्रायः सभी वर्ण-ध्वनियाँ आ गई है। इनमें से प्रत्येक वर्ण किसी विशेष और निश्चित ध्वनि के लिए है।

विशेष—सस्कृत में प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक् नामादि नही है। ग्रीक आदि भाषाओ में वर्णो के पृथक् नामादि होते है, वैसा सस्कृत मे नही है।

---

१. पाणिनि ने इनको इस प्रकार से दिया है :—

स्वर—अइउण्। ऋलृक्। एओङ्। ऐऔच्।

व्यञ्जन—हयवरट्। लण्। ञमङणनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव्। कपय्। शषसर्। हल्।

पूर्वोक्त सूत्रो को देखने से ज्ञात होगा कि सारी वर्णमाला इन १४ सूत्रो में पाणिनि ने विभक्त की है। इनको शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र कहा जाता है अर्थात् इन्हे शिव ने प्रकट किया है। प्रत्येक सूत्र के अन्त में सकेतात्मक एक वर्ण लगा हुआ है, इसे 'इत्' कहते है। यह वर्णमाला की गणना में नहीं गिना जाता है। ये इत् वर्ण सस्कृत व्याकरण में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। इनकी सहायता से वैयाकरण बहुत ही सक्षेप में अनेक वर्णों को या वर्णसमूह को सूचित करते है। कोई भी वर्ण इत् अक्षर के साथ मिल कर केवल अपना ही बोध नहीं कराता है, अपितु बीच में आने वाले सभी वर्णो का बोध कराता है। जैसे—अण् का अर्थ है अ, इ, उ, इक् का अर्थ है इ, उ, ऋ, लृ, आदि। इसी प्रकार अल् का पारिभाषिक अर्थ है पूरी वर्णमाला, अच् अर्थात् स्वर, हल् अर्थात् व्यंजन, यण् अर्थात् अन्त स्थ, हश् अर्थात् कोमल व्यजन या वर्ग के ३, ४, ५, ह और अन्त स्थ, खर् अर्थात् कठोर व्यजन या वर्ग के १, २ और श, ष, स, जश् अर्थात् वर्ग के तृतीय वर्ण, झष् अर्थात् वर्ग के चतुर्थ वर्ण। इन पारिभाषिक शब्दो को 'प्रत्याहार' कहते है।

ह्रस्व स्वर अ आदि दीर्घ और प्लुत स्वरो का भी संकेत करते हैं (देखो-३ क), अन. ठीक उसी स्वर का बोध कराने के लिए स्वर अक्षरो के बाद एक और इत् 'त्' लगाया जाता है। जैसे—अत् कहने पर अर्थ होगा अ, आ और आ३, परन्तु अत् कहने पर केवल अ (६ प्रकार का) का ही बोध होगा। इसी प्रकार ईत् कहने पर दीर्घ ई का ही बोध होगा, अन्य का नहीं।

२ ९ स्वरों में ५ सामान्य स्वर हैं—अ, इ, उ, ऋ और ऌ तथा ४ मिश्रित स्वर हैं— ए, ऐ, ओ और औ।

(क) प्रत्येक स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसके ही अनुसार वह ह्रस्व (लघु या १ मात्रा), दीर्घ (गुरु या दो मात्रा) या प्लुत (३ मात्रा) कहा जाता है।[1] स्वर निम्नलिखित तीन प्रकार से विभक्त होते हैं—

(१) ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऋ, ऌ,

(२) दीर्घ स्वर—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ,

(३) प्लुत स्वर—आ३, ई३, ऊ३, ॠ३, ॡ३, ए३, ऐ३, ओ३, औ३।

सूचना—संस्कृत में प्लुत स्वरों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, अतः साधारणतया स्वरों की संख्या भाग (१) और (२) में निर्दिष्ट रूप से १३ ही मानी जाती है।

(ख) इन स्वरों में से प्रत्येक दो प्रकार का है—अनुनासिक (नाक की सहायता से युक्त) और अननुनासिक (नाक की सहायता से रहित)।[2]

(ग) स्वरों के अन्य तीन भेद हैं—उदात्त (उच्चारणस्थान के ऊर्ध्वभाग से उच्चरित), अनुदात्त (उच्चारणस्थान के निचले भाग से उच्चरित) और स्वरित (उच्चारणस्थान के मध्यभाग से उच्चरित)[3]। साहित्यिक संस्कृत में इन स्वरों का प्रयोग नहीं होता है। वैदिक साहित्य में इन तीनों स्वरों का प्रयोग होता है। उदात्त स्वर पर कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता है, अनुदात्त स्वर पर नीचे पड़ी हुई लकीर दी जाती है और स्वरित स्वर पर ऊपर खड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे—स्व १' वोऽस्वा॰, ऋग्॰ ५-६१-२, रथा'नां

---

१. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुत (अष्टा॰ १-२-२७)। मुर्गा प्रातःकाल अपनी बांग के तीन चरणों में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन तीन स्वरों का प्रतिनिधित्व करता है। ह्रस्व स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है। दीर्घ स्वर के उच्चारण में दो मात्राओं का और प्लुत स्वर के उच्चारण में तीन मात्राओं का समय लगता है।

२. मुखनासिकावचनोऽनुनासिक (अष्टा॰ १-१-८)।

३. उच्चैरुदात्तः (अष्टा॰ १-२-२९), नीचैरनुदात्त (अष्टा॰ १-२-३०), समाहारः स्वरितः (अ॰ १-२-३१)।

न ये२' रा०, ऋग्० १०-७८-४, शनच'क्र यो३' हय'०, ऋग्० १०-१४४-४।

इस प्रकार अ, इ, उ, ऋ इन स्वरों में से प्रत्येक के १८ भेद हैं। ऌ, ए, ऐ, ओ और औ के १२ भेद हैं, क्योंकि ऌ दीर्घ नहीं होता और ए, ऐ, ओ, औ, ये ह्रस्व स्वर नहीं होते।

४ व्यंजन वर्ण इन विभागों में बँटे हुए हैं —(क) स्पर्श (क से लेकर म तक के व्यंजन। इनके उच्चारण में उच्चारणस्थानों का पूर्ण स्पर्श होता है या जीभ विशेष उच्चारण स्थान का स्पर्श करती है। स्वरों के उच्चारण में जीभ उच्चारण स्थान का स्पर्श नहीं करती है, अत: वायु बिना अवरुद्ध हुए बाहर निकलती है), (ख) अन्त:स्थ (य, र, ल, व) इनकी स्थिति स्वर और स्पर्श वर्णों के मध्य की है। (ग) ऊष्म (श, ष, स, ह)।

ये ३३ व्यंजन इस प्रकार वर्णमाला में रक्खे जाते हैं —

(क) स्पर्श
- (१) कवर्ग या कु—क् ख् ग् घ् ङ
- (२) चवर्ग या चु—च् छ् ज् झ् ञ्
- (३) टवर्ग या टु—ट् ठ् ड ढ ण्
- (४) तवर्ग या तु—त् थ् द् ध न्
- (५) पवर्ग या पु—प् फ् ब् भ् म्

इनको ही क्रमश: कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग कहा जाता है।

(ख) अन्त:स्थ—य् र् ल् व्

(ग) ऊष्म—श् ष् स् ह्

इनके अतिरिक्त वेद में अन्य दो वर्ण और मिलते हैं—ळ और ळह (ये प्राय: ड और ढ के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। जैसे-ईडे के स्थान पर ईळे, मीढुषे के स्थान पर मीळ्हुषे, इत्यादि।)। मराठी में संस्कृत शब्दों के अन्तिम ल के स्थान पर ळ का प्राय: प्रयोग होता है।

५ पाँचों वर्गों के पहले और दूसरे अक्षर तथा श, ष, स को श्वास और अघोष (अथवा कठोर) व्यंजन कहते हैं। शेष व्यंजनों को नाद और घोष (अथवा कोमल) व्यंजन कहते हैं।

६ उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त संस्कृत में दो नासिक्य ध्वनियाँ हैं —
(१) अनुस्वार—इसका संकेत ं के द्वारा किया जाता है। यह उस अक्षर के

ऊपर बिन्दु के रूप में रखा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—कं। (२) अनुनासिक—इसका संकेत ँ के द्वारा किया जाता है। यह अक्षर के ऊपर अर्धचन्द्र के ऊपर बिन्दु के रूप में रखा जाता है, जिसके बाद इसका उच्चारण होता है। जैसे—सँ।

(क) इनके अतिरिक्त एक कठोर श्वासात्मक ध्वनि विसर्ग है। (संस्कृत व्याकरण में इसको विसर्जनीय भी कहा जाता है)। इसका संकेत (विसर्ग) के द्वारा किया जाता है। जिस वर्ण के बाद इसका उच्चारण करना होता है, उसके बाद यह विसर्ग रखा जाता है। उच्चारण में यह ह् की अपेक्षा कुछ कठोर घोष ध्वनि है। विसर्ग मौलिक वर्ण नहीं है, अपितु यह अन्तिम स् या र् के स्थान पर होता है।

(ख) जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये दोनों अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत है। क और ख से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत को जिह्वामूलीय कहते हैं और प फ से पहले ≍ अर्धविसर्ग के तुल्य संकेत को उपध्मानीय कहते है। इन दोनों को क्रमश: कवर्ग और पवर्ग की काकल ध्वनि माना जा सकता है।

७. जो वर्ण थोड़ी प्राणवायु से बोले जाते हैं, उन्हें अल्पप्राण कहते हैं और जो कुछ अधिक प्राणवायु से बोले जाते हैं, उन्हें महाप्राण कहते हैं। अल्पप्राण वर्ण हैं—वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम अक्षर तथा अन्तःस्थ। शेष सभी वर्ण महाप्राण है। सुविधा के लिए वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों को अघोष वर्ण भी कहा जाता है।

८. पृष्ठ ६ की सारणी में उच्चारणस्थान के अनुसार पूरी वर्णमाला का वर्गीकरण दिया गया है।

(क) उच्चारण-स्थान पाँच हैं। ये मुख के अन्दर विद्यमान हैं। इनके नाम हैं—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ।

विशेष—निम्नलिखित सारणी में व्यंजन वर्ण सुविधा के लिए अकारान्त दिए गए हैं। उन्हें हलन्त अर्थात् अ से रहित समझना चाहिए।

	५ वर्ग					अन्तस्थ	ऊष्म	सामान्य स्वर ह्रस्व दीर्घ	मिश्रित स्वर	
	अघोष	घोष	अघोष	घोष	नासिक्य					
कण्ठ्य	क	ख	ग	घ	ङ	*ह	⌣ जिह्वा	अ आ	{ ए ऐ	ओ औ
तालव्य	च	छ	ज	झ	ञ	य	श	इ ई		
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ	ण	र	ष	ऋ ॠ		
दन्त्य	त	थ	द	ध	न	ल	स	ऌ		
ओष्ठ्य	प	फ	ब	भ	म	व	⌣ उप०	उ ऊ		ओ औ

*ह अन्तस्थ नहीं है, परन्तु कण्ठ्य होने के कारण यहाँ दिया गया है। उच्चारण-स्थानों को सरलता से स्मरण करने के लिए ये संस्कृत के वाक्य स्मरणीय हैं —

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।
इचुयशानां तालु।
ऋटुरषाणां मूर्धा।
लृतुलसानां दन्ताः।
उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ।
ञमङणनानां नासिका च।
एदैतोः कण्ठतालु।
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकाऽनुस्वारस्य।

ए, ऐ कण्ठ्य और तालव्य दोनों हैं। ओ, औ कण्ठ्य और ओष्ठ्य दोनों हैं। व दन्त्य और ओष्ठ्य है। अनुस्वार नाक से बोला जाता है और जिह्वामूलीय जीभ के मूल अर्थात् जड़ वाले भाग से बोला जाता है।

९. जिन वर्णों का उच्चारण स्थान एक है और जो एक से प्रयत्न से उच्चारण किए जाते हैं, उन्हें 'सवर्ण' कहते हैं। जो वर्ण इस प्रकार के नहीं हैं, उन्हें 'असवर्ण' कहते हैं।[1]

१०. 'स्वर' उसको कहते हैं, जो व्यंजन की सहायता के बिना भी बोला जा सकता है। 'व्यंजन' उसको कहते हैं, जो स्वर की सहायता से बोला जाता है। अतएव व्यंजनों की अपूर्णता को सूचित करने के लिए उन्हें हलन्त (जैसे—क्, ख् आदि) लिखा जाता है।

(क) अतः उच्चारण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पाणिनीय व्याकरण में व्यंजन वर्णों को अ से युक्त (जैसे—क ख ग आदि) लिखा जाता है।

(ख) पहले उल्लेख किया जा चुका है कि संस्कृत में वर्णों के पृथक् नाम नहीं हैं। क को क ही कहते हैं, ख को ख। दो ध्वनियों को पृथक् नाम दिए हैं— ं को अनुस्वार और ः को विसर्ग। र को रेफ भी कहते हैं। किसी विशेष वर्ण को सूचित करने के लिए उस वर्ण के बाद कार लगाया जाता है। जैसे— अकार का अर्थ है 'अ', ककार का अर्थ है 'क' इत्यादि।

११. एक स्वर वर्ण या एक व्यंजन वर्ण साधारण या संयुक्त स्वर के साथ संयुक्त होकर एक अक्षर कहा जाता है।

१२. नीचे (क) और (ख) भाग में निर्देश किया गया है कि किसी व्यंजन के साथ संयुक्त होने पर स्वरों का क्या रूप होता है और संयुक्त व्यंजनों का क्या रूप होता है।

(क) किसी व्यंजन के साथ अ लगाने पर उसके बाद का हल् का चिह्न हट जाता है। जैसे—क् + अ = क। अन्य स्वरों का व्यंजन के बाद लगने पर यह स्वरूप होता है। आ—ा, इ—ि, ई—ी, उ—ु, ऊ—ू, ऋ—ृ, ॠ—ॄ, ऌ—ॢ, ए—े, ऐ—ै, ओ—ो, औ—ौ। जैसे—क् + आ = का, क् + इ = कि। इसी प्रकार की, कु, कू, कृ, कॄ, कॢ, के, कै, को, कौ आदि बनते हैं।

अपवाद—र् के बाद ऋ में परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—र्ऋ।

(ख) व्यंजनों को संयुक्त करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि जिस क्रम से व्यंजनों का उच्चारण होता है, वे उसी क्रम से संयुक्त अक्षर में रखे जाते हैं। अन्त वाले व्यंजन में स्वरों की मात्रा आदि लगती है। संयुक्त व्यंजनों

---

१. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (अष्टा० १-१-९)

में पहले वाले व्यजनों के बाद की खडी लकीर और हल् का चिह्न हटा दिया जाता है। जैसे—त् + स् + न को त्स्न, इस प्रकार लिखा जायगा और ण् + ण को ण्ण। कुछ सयुक्त व्यजनो में थोडा परिवर्तन होता है और कुछ में पूर्ण परिवर्तन हो जाता है। जैसे—ल् + प = ल्प, त् + र = त्र, ग् + न = ग्न, ग् + र = ग्र, इत्यादि। र् के बाद कोई व्यजन (या ऋ स्वर) होगा तो र् ˚ लिखा जाता है, अर्थात् अगले व्यजन के ऊपर ˚ चिह्न होगा। जैसे— र् + व = र्व। ऐसी अवस्था में र् का रेफ कहा जाता है।

(ग) सयुक्त अक्षर क्ष (क् + ष्) और ज्ञ (ज् + ञ्) में मिले हुए अवयव अक्षरो का स्पष्ट बोध नही होता है।

(घ) कुछ सयुक्त अक्षर दो प्रकार से लिखे जाते है। जैसे—त् + र = त्र, त्र, क् + र = क्र, क्र, क् + त = क्त, क्त, द् + य = द्य, द्य।

(ङ) मुख्य सयुक्त व्यजन वर्ण ये हैं :—

क्क, क्क्ण, क्क्य, क्ख, क्त, क्थ, क्त्य, क्त्र, क्त्व, क्त्न, क्न, क्न्य, क्म, क्य, क्र, क्ल, क्व, क्ष, क्ष्ण, क्ष्म, क्ष्य, क्ष्व।

ख्न, ख्य, ख्र।

ग्ध, ग्न, ग्म, ग्र, ग्य, ग्ल, ग्व।

घ्न, घ्न्य, घ्म, घ्य, घ्र, घ्व।

ङ्क, ङ्क्त, ङ्क्ष, ङ्क्ष्व, ङ्ख, ङ्ख्य, ङ्ग, ङ्घ, ङ्घ्य, ङ्घ्र, ङ्ङ, ङ्म, ङ्य।

च्च, च्छ, च्छ्र, च्छ्व, च्ञ, च्म, च्य।

छ्य, छ्र।

ज्ज, ज्झ, ज्ञ, ज्ञ्य, ज्म, ज्य, ज्र, ज्व।

ञ्च, ञ्छ, ञ्ज।

ट्क, ट्ट, ट्य, ठ्य, ट्र ड्ग, ड्घ, ड्म, ड्य, ढ्य, ढ्र।

ण्ट, ण्ठ, ण्ड, ण्ढ, ण्ण ण्म, ण्य, ण्व।

त्क, त्क्र, त्त, त्त्य, त्त्र, त्त्व, त्थ, त्न, त्न्य, त्प, त्म, त्म्य, त्य, त्र, त्र्य, त्व, त्स, त्स्न, त्स्न्य, त्स्य।

थ्न, थ्य, थ्व।

द्ग, द्घ, द्द, द्ध, द्ध, द्ध्य, द्द्व, द्न, द्ब, द्ब्र, द्भ, द्भ्य, द्म, द्र, द्य, द्व, द्व्य, द्व्र।

ङ्न, ङ्न्य, ङ्म, ङ्य, ङ्र, ङ्‌र, ङ्व।
न्न, न्न्य, न्म, न्य, न्र, न्स।
न्त, न्त्य, न्त्र, न्द, न्द्र, न्ध, न्ध्य, न्ध्र, न्न, न्प्र,
प्त, प्त्य, प्न, प्प, प्म, प्य, प्र, प्ल, प्व, प्स, प्स्व।
ब्ज, ब्द, ब्ध, ब्न, ब्ब, ब्भ, ब्य, ब्र, ब्व।
भ्न, भ्य, भ्र, भ्व।
म्न, म्प, म्प्र, म्ब, म्भ, म्य, म्र, म्ल, म्व।
य्य, य्र, य्व।
र् + क = र्क, र्ग, र्ग्र, र्क्ष, र्ग्य, र्घ्य, र्त्य, र्क्ष्य, र्त्र्य, र्त्स्य, र्द्ध।
ल्प, ल्प, ल्म, ल्य, ल्ल, ल्व।
व्न, व्य, व्र, व्व।
श्च, श्च्य, श्न, श्य, श्र, श्र्य, श्ल, श्व, श्व्य, श्श।
ष्ट, ष्ट्य, ष्ट्र, ष्ट्र्य, ष्ट्व, ष्ठ, ष्ठ्य, ष्ण, ष्ण्य, ष्प, ष्प्र, ष्म, ष्य, ष्व।
स्क, स्ख, स्त, स्त्य, स्त्र, स्त्व, स्थ, स्न, स्न्य, स्प, स्फ, स्म, स्य, स्र, स्व, स्स।
ह्ण, ह्न, ह्म, ह्र, ह्ल, ह्व।

कभी-कभी ५ व्यंजन तक संयुक्त हो जाते हैं। जैसे—कार्त्स्न्यं में र्त्स्न्यं।

१३. संस्कृत में सन्धि-नियमों का बहुत महत्त्व है, अतः वाक्य की समाप्ति पर ही विराम का चिह्न लगाया जाता है। संस्कृत में विराम-चिह्न दो ही हैं—।, ॥। इनमें से पहला चिह्न (।) वाक्य की समाप्ति पर और श्लोकार्ध की पूर्ति पर लगाया जाता है। दूसरा चिह्न (॥) श्लोक की समाप्ति के सूचनार्थ लगाया जाता है।

(क) ए और ओ के बाद सन्धि-नियमानुसार हटे हुए अ के सूचनार्थ अवग्रह-चिह्न (ऽ) प्रायः लगाया जाता है। अवग्रह चिह्न (ऽ) अर्ध अकार का सूचक है। जैसे—ते + अपि = तेऽपि, बालो + अस्ति = बालोऽस्ति। सवर्णदीर्घ सन्धि में हटे हुए अ की सूचना के लिए कभी-कभी ऽऽ चिह्न लगाया जाता है। जैसे—तथा + आस्ते = तथाऽऽस्ते।

(ख) संस्कृत में ० चिह्न भी लगाया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि वहाँ पर कुछ अंश लुप्त है और उसको प्रसंग आदि के अनुसार समझना चाहिए। शब्दों के संक्षिप्त रूप में भी ० चिह्न का उपयोग किया जाता है।

=कृकार, हातृ + लृकार =हातृकार । (लृ दीघ नही है, अत दोना वर्णों के स्थान पर दीघ ऋ हुआ है)। (हाता के द्वारा उच्चारण किया गया लृ)।

(क) ऋ या लृ के बाद ह्रस्व ऋ या लृ होगा तो ह्रस्व ऋ या लृ भी विकल्प से आदेश होता है।[1] होतृ + ऋकार = होतृकार और हातृकार। होतृऋकार भी रूप बनता है। (देखो नियम २३ ख)। इस प्रकार सब मिलाकर तीन रूप बनते है—होतृकार, होतृकार और होतृऋकार। होतृ + लृकार = होत्लृकार और होतृकार। होतृलृकार भी रूप बनता है।

२० अ या आ के बाद इ या ई हागा तो दोना के स्थान पर गुणसन्धि होकर 'ए' हो जाएगा। इसी प्रकार अ या आ के बाद उ या ऊ होगा ता 'ओ' गुण होगा। अ या आ के बाद ऋ या ॠ होगा ता 'अर्' गुण हागा। अ या आ के बाद लृ होगा ता 'अल्' गुण हागा।[2] जैसे—उप + इन्द्र = उपेन्द्र (विष्णु), परम + ईश्वर = परमेश्वर (परमात्मा), रमा + इच्छा = रमेच्छा (रमा की इच्छा), यथा + ईप्सितम् = यथेप्सितम् (इच्छानुसार), हित + उपदेश = हितोपदेश (हितकारी उपदेश), कृष्ण + ऊरु = कृष्णोरु (कृष्ण की जघा), गगा + उदकम् = गगोदकम् महा + ऊरु = महोरु, कृष्ण + ऋद्धि = कृष्णर्द्धि (कृष्ण की समृद्धि), महा + ऋषि = महर्षि (महान् ऋषि), तव + लृकार = तवल्कार (तुम्हारे द्वारा उच्चरित लृकार)।

(क) व्यजन के बाद झर् (वर्ग के १, २, ३, ४ अक्षर और श, ष, स) का विकल्प से लोप होता है, यदि उसके बाद सवर्ण झर् अर्थात् समान अक्षर हो तो।[3] कृष्ण + ऋद्धि = कृष्णर्द्धि (नियम २० के अनुसार गुण होकर), कृष्णर् + द् + ध् + इ = कृष्णर्धि (इस नियम से बीच के द् का लोप होने से)। इसका तीसरा रूप कृष्णर्द्धि भी बनता है। (देखो नियम २२ घ)।

(ख) वर्गों के व्यजन वर्णों को विकल्प से द्वित्व हो जाता है। यदि अन्त स्थ के बाद व्य होगा तो नही। अत तवल्कार में ल् और क् को द्वित्व होने से इसके चार रूप बनते हैं। तवल्कार, तवल्क्कार, तवल्ल्कार, तवल्ल्क्कार।

---

१ ऋति सवर्णे ऋ वा। लृति सवर्णे लृ वा। (अक सवर्णे० सूत्र की व्याख्या में वार्तिक)।

२ आदगुण (अष्टा० ६-१-८७)।

३ झरो झरि सवर्णे (अष्टा० ८-४-६५)

अपवाद नियम—निम्नलिखित स्थानों पर गुण के स्थान पर वृद्धि होती है।[1] :—

(क) शब्द के अ के बाद ऊह् होगा तो वृद्धि होगी। प्र के बाद ऊह, ऊढ और ऊढि होंगे तो वृद्धि होगी। जैसे—प्रष्ठ + ऊह = प्रष्ठौह् (मुख्य अनुमान), (अथवा यह प्रष्ठवाह् शब्द का द्वितीया बहुवचन का रूप समझना चाहिए। प्रष्ठौह् का अर्थ है धुरा को ढोने वाला बैल)। प्र+ऊह = प्रौह (मुख्य युक्ति)। इसी प्रकार प्रौढ (युवक) और प्रौढि रूप बनते है। वार्तिक में ऊढ का उल्लेख है, ऊढवान् (वह् + क्तवतु) का उल्लेख नही है, अत ऊढवान् के साथ गुण ही होगा। प्र + ऊढवान् = प्रोढवान्।

(ख) अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी (एक पूरी विशाल सेना)।[2] (यहाँ पर न् के स्थान पर ण् होने का कारण आगे दिया जाएगा।)

(ग) स्व के बाद ईर और ईरिन् होंगे तो वृद्धि होगी। ये दोनों शब्द ईर् (जाना) धातु से बने है। जैसे—स्व + ईर = स्वैर (अपनी इच्छा के अनुसार काम करने वाला)। स्व + ईरिणी = स्वैरिणी (इच्छानुसार काम करने वाली स्त्री, कुलटा)। इसी प्रकार स्वैरम् और स्वैरी (स्वेन ईरितु शीलमस्य इति) रूप बनते है।

(घ) यदि अ के बाद ऋत शब्द होगा और तृतीया तत्पुरुष समास होगा

---

१. एत्येधत्यूठ्सु (अष्टा० ६-१-८९)। इस सूत्र का प्रथम भाग (एत्येधति) नियम २१ घ का अपवाद नियम है। इस सूत्र पर निम्नलिखित वार्तिक है—१ प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु, २ अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्, ३ स्वादीरेरिणो, ४ ऋते च तृतीयासमासे, ५ प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे।

२. एक अक्षौहिणी सेना में निम्नलिखित रथ आदि होते हैं—२१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पदाति या पैदल सैनिक। अक्षौहिण्या प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमा। संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशति ॥ शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्तति। गजानां तु परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत् ॥ ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु। नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघा ॥ पञ्चषष्टिं सहस्राणि तथाश्वानां शतानि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया ॥ महाभारत, आदिपर्व २-२३-२६।

तो वृद्धि होगी। जैसे—सुखेन ऋतः वा सुख + ऋत. = सुखार्तः (सुखयुक्त)। परन्तु परमश्चासौ ऋतश्च वा परम + ऋत. = परमर्तः (अत्यन्त आदरणीय) रूप ही होगा।

(ङ) यदि प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश शब्द के बाद ऋण शब्द होगा तो वृद्धि होगी। जैसे—प्र + ऋणम् = प्रार्णम् (मुख्य ऋण)। इसी प्रकार वत्सतरार्णम् (बछड़े के लिए ऋण), ऋणार्णम् (ऋण उतारने के लिए लिया गया नया ऋण), दशार्ण (एक देश का नाम। इसका शाब्दिक अर्थ है दस दुर्गों से युक्त देश), दशार्णा नदी (इसका शाब्दिक अर्थ है—जिस नदी में अन्य दस नदियाँ आकर मिलती हैं)।

(च) अकारान्त उपसर्ग के बाद यदि ह्रस्व ऋकार वाली धातु होगी तो दोनों को वृद्धि एकादेश होगी।[1] जैसे—उप + ऋच्छति = उपार्च्छति। प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति। यदि नामधातु वाली ऋकारादि धातु होगी तो वृद्धि विकल्प से होगी।[2] प्र + ऋषभीयति = प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति (बैल के तुल्य आचरण करता है)। व्याकरण में ऋ और ऌ सवर्ण माने जाते हैं, अत. ऌ बाद में होगा तो भी वृद्धि विकल्प से होगी। प्र + ऌकारीयति = प्राल्कारीयति, प्रल्कारीयति। सूत्र में ह्रस्व ऋ का उल्लेख है, अत. दीर्घ ॠ बाद में होगी तो वृद्धि नहीं होगी। उप + ॠकारीयति = उपर्कारीयति।

२१. अ या आ के बाद ए या ऐ होगा तो दोनों को ऐ होगा। यदि अ या आ के बाद ओ या औ होगा तो औ वृद्धि होगी।[3] जैसे—कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्। देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम् (देवों का ऐश्वर्य)। सा + एव = सैव (वही)। भव + ओषधम् = भवौषधम् (जन्म और पुनर्जन्म की औषधि)। विद्या + औत्सुक्यम् = विद्यौत्सुक्यम् (ज्ञान के लिए उत्सुकता)।

अपवाद नियम—यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ए या ओ से प्रारम्भ होने वाली धातु बाद में होगी तो दोनों को ए या ओ एकादेश होगा।[4] प्र + एजते = प्रेजते (जोर से हिलता है)। उप + ओषति = उपोषति (पास में किसी वस्तु को

१. उपसर्गादृति धातौ (अष्टा० ६-१-९१)
२. वा सुप्यापिशले. (अष्टा० ६-१-९२)
३. वृद्धिरेचि (अष्टा० ६-१-८८)।
४. एङि पररूपम् (अष्टा० ६-१-९४)।

जलाता है)। यदि ऐसी धातु नामधातु वाली होगी तो पररूप (ए या ओ)
विकल्प से होगा। उप + एडकीयति = उपेडकीयति, उपैडकीयति। प्र + ओघीयति
= प्रोघीयति, प्रौघीयति।

अपवाद का अपवाद—निम्नलिखित अवस्थाओं में पररूप न होकर वृद्धि
ही होगी। अ के बाद इ (जाना) धातु का और एध् धातु का एकारादि रूप
होगा तो वृद्धि होगी।[1] प्र के बाद इष् (दिवादि०, तुदादि०, क्र्यादिगण) धातु
के एष या एष्य रूप होंगे तो वृद्धि होगी।[2] उप + एति = उपैति। उप + एधते
= उपैधते। परन्तु उप + इत = उपेत, अव + आ + इहि या अव + एहि =
अवेहि (जानो)। इसका अवैहि रूप नहीं बनेगा। प्र + इदियत् = प्रेदियत्।
प्र + एष = प्रैष (भेजना या निर्देश देना)। प्र + एष्य = प्रैष्य (नौकर)।
ईष् धातु से बनने वाले ईष और ईष्य के साथ गुण होकर प्रेष और प्रेष्य रूप
बनेंगे।

(ख) अ के बाद अनिश्चय-बोधक 'एव' होगा तो दोनों को ए हो
जायगा।[3] क्व + एव = क्वेव भाक्ष्यसे (तुम आज कहाँ भोजन करोगे?
इसमें भोजन का स्थान अनिर्दिष्ट है।) किन्तु तव + एव = तवैव (मैं तुम्हारे
यहाँ ही भोजन करूँगा।) इसमें स्थान का निर्देश होने से वृद्धि होगी।

(ग) अ के बाद ओम् या आ (उपसर्ग) होगा तो अ हट जाएगा।[4]
जैसे – शिवाय + ओं नमः = शिवायों नमः। शिव + एहि (आ + इहि) = शि-
वेहि।

(घ) शब्द के अ के बाद ओतु (बिलाव) या ओष्ठ (ओष्ठ) शब्द होंगे तो
वृद्धि विकल्प से होगी, समास में।[5] स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः।
बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः।

---

१. एत्येधत्यूठ्सु (अष्टा० ६-१-८९)।
२. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु (अष्टा० ६-१-८९ पर वार्तिक)।
३. एवे चानियोगे (वार्तिक)।
४. ओमाङोश्च (अष्टा० ६-१-९५)
५. ओत्वोष्ठयोः समासे वा। (वार्तिक)

(ङ) समस्त पद में[1] निम्नलिखित शब्द बाद में होंगे तो शब्द के अन्तिम स्वर या व्यञ्जन-सहित अन्तिम स्वर का लोप हो जाएगा।[2] शक (शका का देश)+अन्धु (कुँआ)=शकन्धु। कर्क (देश का नाम)+अन्धु =कर्कन्धु। कुल+अटा=कुलटा (विभिन्न घरों में जाने वाली, दुश्चरित्र स्त्री)। सीमन् +अन्त =सीमन्त (बालों के बीच की माँग), किन्तु सीमा के अन्त अर्थ में सीमान्त रूप होगा। मनस+ईषा=मनीषा (बुद्धि)। इसी प्रकार लाङ्गलीषा (हल की नोक), हलीषा पतत्+अञ्जलि =पतञ्जलि (अष्टाध्यायी के ऊपर लिखे गए महाभाष्य अर्थात् विशाल भाष्य के सुप्रसिद्ध लेखक)। पतञ्जलि का शाब्दिक अर्थ है—अञ्जलियों से प्रणाम के योग्य। अथवा परम्परा के अनुसार इसका अर्थ है कि 'सन्ध्या पूजन के समय एक ऋषि जब सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे, उस समय ये उनके हाथों से गिर पड़े।' सार+अङ्ग =सारङ्ग (एक चितकबरा मृग, मोर आदि)। किन्तु सुन्दर शरीर या सुन्दर अंग वाले के लिए साराङ्ग शब्द होगा। यह एक आकृतिगण है। इसका अभिप्राय यह है कि इस प्रकार से बनने वाले अन्य शब्द भी इस गण में समझने चाहिए। उनमें भी उपर्युक्त रूप से टि (अन्तिम स्वर या व्यञ्जन सहित अन्तिम स्वर) का लोप हो जाएगा। जैसे—मार्त+अण्ड =मार्तण्ड (मृताण्ड शब्द से यह रूप बना है। मृत अण्डे से बना हुआ, सूर्य)।

२२. इ ई को य् उ ऊ को व् ऋ ॠ को र् और ऌ को ल् हो जाता है, बाद में असदृश स्वर हो तो।[3] जैसे—इति+आह=इत्याह। सुधी+उपास्य =सुध्युपास्य (विद्वानों द्वारा सेवित)। मधु+अरि =मध्वरि (मधुनामक राक्षस का शत्रु विष्णु)। धातृ+अंश =धात्रंश (धाता का अंश)। लृ+आकृति =लाकृति (ऌ जैसी आकृति), इत्यादि।

द्रष्टव्य—उपर्युक्त शब्दों में से कई शब्दों के, सन्धि होने पर, अनेक रूप

१ शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। (वार्तिक)

२ अनुकरणात्मक शब्द के अन्त में अत् हो और बाद में इति हो तो अत् हट जायगा। जैसे—पटत्+इति=पटिति। एक वर्ण वाले शब्द में अत् नहीं हटेगा। श्रत्+इति=श्रदिति। द्विरुक्त अर्थात् दो बार पढ़े हुए शब्द में केवल अन्तिम त् विकल्प से हटेगा। जैसे—पटत्पटत्+इति= पटत्पटेति, पटत्पटदिति।

३. इको यणचि। (अष्टा० ६-१-७७)

हो जाते है। जैसे—सुधी + उपास्य = सुध्य् + उपास्य = सुध्युपास्य । पूर्व नियमानुसार।

सूचना—निम्नलिखित नियम और नियम २० के अन्तर्गत दिए गए (क), (ख) यद्यपि अगले विभाग के अन्दर आने चाहिए तथापि भ्रम-निवारणार्थ यहाँ दिए गए हैं। सामान्य विद्यार्थी इस नियम के (ख) भाग के अतिरिक्त शेष अंश को छोड़ सकते हैं।

(क) स्वर के बाद ह् को छोड़कर शेष सभी व्यजनों को विकल्प से द्वित्व हो जाता है, यदि बाद में स्वर न हो तो।[1] सुध्य् + उपास्य = सुध्युपास्य और सुध्ध्य् + उपास्य।

(ख) झलों (वर्ग के १, २, ३, ४ और श ष स ह) को जश् (अपने वर्ग का तीसरा वर्ण) हो जाता है, यदि बाद में झश् (वर्ग के ३, ४) हो तो।[2] सुध्ध्य् + उपास्य = सुद्ध्युपास्य।

(ग) यण् (अन्तःस्थ, य् र् ल् व्) के बाद मय् (ञ् को छोड़कर पाँचों वर्गों के सभी अक्षर) को विकल्प से द्वित्व हो जाता है।[3] इस प्रकार चार रूप बन जाते हैं। सुध्य् + उपास्य = सुध्युपास्य। सुद्ध्य् + उपास्य = सुद्ध्युपास्य। सुध्य्य् + उपास्य = सुद्ध्य्युपास्य। सुध्य्य् + उपास्य = सुद्ध्य्युपास्य।

इसी प्रकार मधु + अरि के भी चार रूप होते हैं—मध्वरि, मद्ध्वरि, मद्ध्वरि और मद्ध्व्वरि। धातृ + अंश के दो रूप होते हैं—धात्रंश, धात्त्रंश। लृ + आकृति = लाकृति का एक ही रूप बनता है।

(घ) स्वर के बाद र् या ह् हो और उसके बाद कोई यर् (ह् को छोड़कर सभी व्यञ्जन) हो तो उसे विकल्प से द्वित्व हो जाता है।[4] जैसे—हरि + अनुभव = हर्य् + अनुभव = हर्यनुभव, साधारण नियमानुसार तथा इस नियम के अनुसार विकल्प से हर्य्य् + अनुभव = हर्य्यनुभव (हरि का अनुभव)। इसी प्रकार न हि + अस्ति = न ह्यस्ति, न ह्य्यस्ति।

१. अनचि च। (अष्टा० ८-४-४७)
२. झलां जश् झशि। (अष्टा० ८-४-५३)
३. यणो मयो द्वे वाच्ये। (वार्तिक)
४. अचो रहाभ्यां द्वे। (अष्टा० ८-४-४६)

२३. (क) पद के अन्तिम इक् (इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ और ऌ) के बाद यदि कोई असवर्ण स्वर हो तो वहाँ पर विकल्प से कोई भी सन्धि नहीं होती और सन्धि के अभाव की अवस्था में यदि दीर्घ स्वर है तो उसे ह्रस्व हो जाता है।[1] जैसे— चक्री + अत्र = चक्र्यत्र, चक्रि अत्र (विष्णु यहाँ आये)। यह नियम समास में नहीं लगता है।[2] वापी + अश्व = वाप्यश्व। गौरी + औ = गौर्यौ ही रूप होगा।

(ख) पद के अन्तिम अक् (अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ) के बाद ऋ हो तो वहाँ पर विकल्प से सन्धि नहीं होगी और सन्धि के अभाव की स्थिति में यदि दीर्घ स्वर है तो उसे ह्रस्व हो जाएगा।[3] जैसे—ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्म-ऋषि, ब्रह्मर्षि (एक ब्राह्मण ऋषि)। समास में भी यह नियम लगता है। सप्त + ऋषीणाम् = सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम् (सात ऋषियों का)।

२४. ए को अय्, ओ को अव्, ऐ को आय् और औ को आव् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो।[4] जैसे – हरे + ए = हरये (हरि के लिए)। विष्णो + ए = विष्णवे (विष्णु के लिए)। नै + अक = नायक (नेता)। पौ + अक = पावक (पवित्र करने वाला, अग्नि)।

(क) अ या आ के बाद पद के अन्तिम य् और व् का विकल्प से लोप हो जाता है, बाद में अश् (स्वर, अन्तस्थ, ह, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।[5] जैसे – हरे + एहि = हर एहि, हरयेहि। विष्णो + इह = विष्ण इह, विष्णविह। श्रियै + उद्यत = श्रिया उद्यत, श्रियायुद्यत (धन के लिए तत्पर)। गुरौ + उत्क = गुरा उत्क, गुरावुत्क, (गुरुदर्शन के लिए उत्सुक)।

विशेष—मध्यगत व्यंजन या विसर्ग के लोप होने पर यदि दो स्वर समीपस्थ होते हैं तो उनमें सन्धि नहीं होती है।

(ख) ओ को अव् और औ को आव् हो जाता है, बाद में यकारादि प्रत्यय

---

१ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च। (अष्टा० ६-१-१२७)
२ न समासे। (वार्तिक)
३. ऋत्यक। (अष्टा० ६-१-१२८)
४ एचो ऽयवायाव। (अष्टा० ६-१-७८)
५ लोप: शाकल्यस्य। (अष्टा० ८-३-१९)

हो तो।[1] जैसे—गो + यम् = गव्यम् (गाय से होने वाला, घी, दूध आदि)। नौ + यम् = नाव्यम् (नौका से पार होने योग्य)।

सूचना—यह नियम धातुओं में तभी लगता है, जब यकारादि प्रत्यय के द्वारा ही धातु में ओ या औ हुआ हो।[2] जैसे—लू + यम् = लो + यम् = लव्यम् (काटने के योग्य)। अवश्यलू + यम् = अवश्यलो + यम् = अवश्यलाव्यम् (जिसको अवश्य काटना चाहिए)।

(ग) गो शब्द के ओ को अव् हो जाता है, बाद में यूति शब्द हो तो। यह नियम वेद में तथा लौकिक संस्कृत में लगता है, जब यह शब्द मार्ग की लम्बाई का बोधक हो।[3] जैसे—गो + यूतिः = गव्यूतिः (चार मील)।

(घ) क्षि और जि धातु से कृत्य प्रत्यय य होने पर शक्य (करना संभव है) अर्थ में दोनों धातुओं के ए को अय् हो जाता है।[4] जैसे—क्षि + य = क्षे + य = क्षय्यम् (जिसको नष्ट किया जा सकता है)। इसी प्रकार जय्यम् (जिसको जीता जा सकता है)। जहाँ पर वैसा करना संभव नहीं होगा, वहाँ पर ए को अय् नहीं होगा। जैसे—क्षेतु योग्य क्षेय पापम् (पाप को नष्ट करना चाहिए, परन्तु नष्ट करना संभव नहीं है)। जेतु योग्य जेय मन (मन को जीतना चाहिए, परन्तु उसको जीतना संभव नहीं है)।

२५. पद के अन्तिम ए या ओ के बाद अ होगा तो अ को पूर्वरूप (ए या ओ जैसा रूप) हो जाएगा।[5] अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ कभी-कभी ऽ (अवग्रह-चिह्न) लगाया जाता है। जैसे—हरे + अव = हरेऽव (हे हरि, रक्षा करो)। विष्णो + अव = विष्णोऽव।

(क) ओकारान्त गो शब्द के बाद अ होगा तो वहाँ पर विकल्प से सन्धि का अभाव होगा।[6] दूसरे स्थान पर पूर्वरूप होगा। गो के बाद यदि कोई स्वर

---

१. वान्तो यि प्रत्यये। (अष्टा० ६-१-७९)
२. धातोस्तन्निमित्तस्यैव। (अष्टा० ६-१-८०)
३. गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम्। अध्वपरिमाणे च। (वार्तिक)
४. क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे। (अष्टा० ६-१-८१)
५. एङः पदान्तादति (अष्टा० ६-१-१०९)
६. सर्वत्र विभाषा गोः। (अष्टा० ६-१-१२२)

होगा तो ओ को अव विकल्प से हो जाएगा।[1] गो + अग्रम् = गोअग्रम्, गोऽग्रम्, गवाग्रम् (गायों का समूह या गायों में मुख्य)। यदि गो के बाद इन्द्र या अक्ष होगा तो ओ को अव नित्य होगा।[2] गो + इन्द्र. = गवेन्द्रः (श्रेष्ठ बैल)। गो + अक्ष = गवाक्ष. (खिडकी, झरोखा)।

२६. इन स्थानों पर कोई सन्धि नहीं होगी :—

(१) जिन स्थानों पर प्रगृह्य संज्ञा होती है,[3] अर्थात्—

(क) द्विवचन के ई, ऊ और ए के बाद सन्धि नहीं होगी। ये ई आदि संज्ञा शब्द, सर्वनाम या धातु किसी के भी हों। जैसे—हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ।

(ख) अदम् शब्द के म् के बाद ई या ऊ होंगे तो वहाँ पर सन्धि नहीं होगी। जैसे—अमी ईशा. (ये ईश्वर)। अमू आसाते (ये दो बैठे हैं)।[4]

विशेष—वैदिक रूप अस्मे और युष्मे के ए के साथ भी सन्धि नहीं होती है।[5] जैसे—अस्मे इन्द्राबृहस्पती०, ऋग्० ४-४९-४। इसी प्रकार यदि कोई वैदिक रूप सप्तमी के अर्थ में होते हुए भी ईकारान्त या ऊकारान्त हो तो उसके साथ सन्धि नहीं होती।[6] जैसे—सोमो गौरी अधिश्रित.०, ऋग्० १०-१२-३। यहाँ पर गौरी गौर्याम् सप्तमी के अर्थ में है। यहाँ पर सुपां सुलुक्० (अष्टा० ७-१-३९) से सप्तमी का लोप है। इसी प्रकार मामकी तनू इति।

(ग) एक स्वर वाले निपातों के साथ सन्धि नहीं होती, आ को छोड़कर।[7] इन अर्थों वाले आ के साथ सन्धि होगी—थोड़े अर्थ में, क्रिया के साथ होने पर, सीमा की मर्यादा अर्थ में—उससे पूर्व या उसको लेते हुए अर्थ में। जैसे—इ इन्द्र. (ओ इन्द्र)। उ उमेश। आ एवं नु मन्यसे (अच्छा, आप ऐसा मानते हैं)। किन्तु आ + उष्णम् = ओष्णम् (कुछ गर्म), आदि।

---

१. अवङ् स्फोटायनस्य। (अष्टा० ६-१-१२३)
२. इन्द्रे च। (अष्टा० ६-१-१२४)
३. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्। (अष्टा० ६-१-१२५)
४. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्। (अष्टा० १-१-११)
५. शे। (अष्टा० १-१-१३)
६. ईदूतौ च सप्तम्यर्थे। (अष्टा० १-१-१९)
७. निपात एकाजनाङ्। (अष्टा० १-१-१४)।

(घ) ओकारान्त निपात के साथ सन्धि नहीं होती।[1] जैसे—अहो ईशा। सबोधन के ओ के बाद इति शब्द हो तो विकल्प से सन्धि का अभाव होगा।[2] जैसे—विष्णो + इति = विष्णो इति, विष्णविति। नियम २४ (क) के अनुसार विष्ण इति भी रूप होगा।

सूचना—उपर्युक्त अर्थों में आने वाले शब्दों तथा विशेष स्वर जिनके साथ सन्धि नहीं होती, उनका पारिभाषिक नाम प्रगृह्य है।

(२) प्लुत स्वरों के साथ सन्धि नहीं होती। जैसे—एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति (कृष्ण आओ, यहाँ गाय चर रही है)।

निम्नलिखित अवस्थाओं में स्वर को प्लुत हो जाता है —[3]

(१) अभिवादन के प्रत्युत्तर वाले वाक्य में अन्तिम स्वर को प्लुत हो जाता है। अभिवादनकर्ता पुरुष होना चाहिए और वह शूद्र न हो। प्रत्युत्तर वाले वाक्य में अन्त में व्यक्ति का नाम या गोत्र होने पर ही प्लुत होता है। जैसे—देवदत्त ने कहा—'अभिवादये देवदत्तोऽहम्' (मैं देवदत्त आपको प्रणाम करता हूँ), उसके प्रत्युत्तर में कहा गया कि—'भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३' (हे देवदत्त, तुम चिरजीवी हो)। प्रत्यभिवादन में स्त्री के नाम को प्लुत नहीं होगा। अतः 'भो आयुष्मती भव गार्गि' में इ को प्लुत नहीं हुआ। 'आयुष्मानेधि' में अन्त में नाम या गोत्र नहीं है, अतः इ को प्लुत नहीं हुआ।

यदि वाक्य के अन्त में भो शब्द, क्षत्रिय या वैश्य का नाम हो तो विकल्प से प्लुत होगा। जैसे—आयुष्मानेधि भो ३ या भो, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म३न् या –वर्मन्, आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ या—पालित।

(२) दूर से किसी को पुकारने में वाक्य के अन्तिम स्वर का प्लुत होता है। इस प्रकार के वाक्य में यदि हे या है होगा तो उसे प्लुत होगा। जैसे—सक्तून् पिब देवदत्त ३। हे ३ राम। राम है ३।

---

१. ओत्। (अष्टा० १-१-१५)
२. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (अष्टा० १-१-१६)
३. वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः (अष्टा० ८-२-८२)। प्रत्यभिवादेऽशूद्रे (अष्टा० ८-२-८३)। स्त्रियां न (वार्तिक)। भोराजन्यविशां वेति वाच्यम् (वार्तिक)। दूराद्धूते च (अष्टा० ८-२-८४)। हैहेप्रयोगे हैहयोः (अष्टा० ८-२-८५)

२७ मय् (ञ् को छोड़कर वर्गों का कोई भी अक्षर) के बाद उ निपात को विकल्प से व् हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो।[1] किम्+उक्तम् = किमु उक्तम्, किम्वुक्तम्। (नियम २६ ग भी लगेगा)।

(ख) हल्-सन्धि या व्यंजन-सन्धि

२८. स् या तवर्ग के साथ यदि ये वर्ण होंगे तो—

(क) स् या तवर्ग के साथ (पहले या बाद में) श् या चवर्ग होगा तो स् को श् हो जाएगा और तवर्ग को चवर्ग हो जाएगा।[2] हरिस्+शेते = हरिश्शेते (हरि सोता है)। रामस्+चिनोति = रामश्चिनोति (राम चुनता है)। सत्+चित् = सच्चित् (सत्ता और ज्ञान)। शार्ङ्गिन्+जय = शार्ङ्गिञ्जय (हे कृष्ण, तुम्हारी जय हो)।

अपवाद—श् के बाद यदि कोई तवर्ग है तो उसको चवर्ग नहीं होता।[3] जैसे—विश्नः (तेज, प्रकाश), प्रश्नः।

(ख) स् या तवर्ग के साथ ष् या टवर्ग होगा तो स् को ष् हो जाएगा और तवर्ग को टवर्ग हो जाएगा।[4] रामस्+षष्ठ = रामष्षष्ठ (छठा राम)। रामस्+टीकते = रामष्टीकते (राम जाता है)। तत्+टीका = तट्टीका (उसकी टीका)। चक्रिन्+ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे (हे कृष्ण, तुम जाते हो)। पेष्+ता = पेष्टा (पीसने वाला)।

अपवाद—पद के अन्तिम टवर्ग के बाद यदि स् या तवर्ग है तो उसे ष् या टवर्ग नहीं होगा। यदि बाद में नाम्, नवति या नगरी होंगे तो ष्टुत्व सन्धि होगी।[5] षट्+सन्त = षट् सन्त (६ सज्जन) (देखो नियम ३९ भी)। षट्+ते = षट्ते (वे ६)। किन्तु ईट्+ते = ईट्टे (वह स्तुति करता है)। यहां पर ट् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है, अतः सन्धि होगी। इसी प्रकार षण्णाम्

---

१. मय उञो वो वा (अष्टा० ८-३-३३)
२. स्तोः श्चुना श्चुः (अष्टा० ८-४-४०)
३. शात् (अष्टा० ८-४-४४)
४. ष्टुना ष्टुः। (अष्टा० ८-४-४१)
५. न पदान्ताट्टोरनाम् (अष्टा० ८-४-४२)। अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् (वार्तिक)

(६ का), षण्णवति (९६), षण्णगर्य (६ नगर) में ष्टुत्व होगा। सर्पिष्+तमम् = सर्पिष्टमम् (घी की अधिकता) में सन्धि होगी, क्योंकि टवर्ग के बाद ही सन्धि का निषेध है।

२६. तवर्ग के बाद ष होगा तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा।[1] सन्+षष्ठ = सन्षष्ठ (छठा सज्जन)।

३०. यदि पद के अन्तिम यर् (श्, ष्, स्, ह् को छोड़कर सभी व्यजन) के बाद वर्ग का कोई पचम अक्षर होगा तो यर् को अपने वर्ग का पचम अक्षर विकल्प से हो जाएगा।[2] एतद्+मुरारि = एतन्मुरारि, एतद्मुरारि (यह मुरारि)। (देखो नियम २२ ख)। षट्+मासा = षण्मासा, षड्मासा (६ मास)।

सूचना—यदि बाद में प्रत्यय का अनुनासिक (पचम वर्ण) होगा तो यह सन्धि नित्य होगी।[3] तत्+मात्रम् = तन्मात्रम् (वही)। चिन्मात्रम् (केवल ज्ञान)। वाक्+मय = वाङ्मय। ककुद्मत् (रघुवश ४-२२) शब्द अनियमित प्रयोग है।

३१. तवर्ग के बाद ल होगा तो तवर्ग को ल् हो जाएगा। न् के स्थान पर अनुनासिक ल् होगा।[4] तत्+लय = तल्लय (तल्लीन)। विद्वान्+लिखति = विद्वाँल्लिखति (विद्वान् लिखता है)।

३२. उद् उपसर्ग के बाद स्था और स्तम्भ् के स् का थ् हो जाता है।[5] उद्+स्थानम् = उद+थ्यानम् = उद्थ्यानम्, उद्‌थ्यानम् (देखो नियम २० ग)। फिर इसके रूप बनेंगे—उत्थानम्, उत्थ्यानम् (उठना)। इसी प्रकार उत्तम्भनम् और उत्थ्तम्भनम् (रोकना, थामना)।

३३. झय् (वर्ग के १ से ४) के बाद ह् होगा तो उसको पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर विकल्प से होगा।[6] वाक्+हरि = वाग्घरि, वाग्हरि (देखो नियम २२ ख)। (वाचा हरि, बृहस्पति)।

---

१ तो षि। (अष्टा० ८-४-४३)
२ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। (अष्टा० ८-४-४५)
३. प्रत्यये भाषाया नित्यम। (वार्तिक)।
४ तोर्लि। (अष्टा० ८-४-६०)
५ उद स्थास्तम्भो पूर्वस्य। (अष्टा० ८-४-६१)
६ झयो होऽन्यतरस्याम्। (अष्टा० ८-४-६२)

३४. झलो (अन्तस्थ और वर्ग के ५ अक्षर को छोड़कर सभी व्यंजन) को चर् (अपने वर्ग का प्रथम अक्षर) हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २ और श ष स) हो तो।[१] यदि बाद में कुछ न हो तो अपने वर्ग के प्रथम और तृतीय वर्ण होंगे। वाक्, वाग्।

३५. झय् (वर्ग के १ से ४) के बाद श् को छ् विकल्प से होता है। यदि श् के बाद अम् (स्वर, अन्तस्थ, ह और वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो।[२] जैसे—तद्+शिव = तद्+शिव, तद्+छिव और फिर पूर्व नियम से तत्+शिव, तत्+छिव और अन्त में तच्शिव, तच्छिव (वह शिव) (देखो नियम २८ क)। इसी प्रकार [तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन। किन्तु जहाँ पर श् के बाद अम् नहीं है, वहाँ पर श् को छ् नहीं होगा। वाक् श्च्योतति (वाणी लड़खड़ाती है)।

३६. पद के अन्तिम म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो।[३] जैसे—हरिम्+वन्दे = हरिं वन्दे (हरि को नमस्कार)। गम्+यते = गम्यते, यहाँ पर म् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है। सम्+राट् = सम्राट्, यहाँ पर म् को अनुस्वार नहीं होता है।[४]

(ख) अपदान्त (पद या शब्द के मध्यगत) न् और म् को अनुस्वार हो जाता है, बाद में झल् (वर्ग के १ से ४ और ऊष्म) हो तो।[५] आक्रम्+स्यते = आक्रंस्यते (वह आक्रमण करेगा)। यशान्+सि = यशांसि। (यशस् शब्द का बहु०)। किन्तु मन्+यते = मन्यते, यहाँ पर न् के बाद झल् नहीं है। ग्रामान्+गच्छति = ग्रामान् गच्छति, यहाँ पर न् पद का अन्तिम अक्षर है, अतः अनुस्वार नहीं हुआ। (पद अर्थात् सुबन्त या तिङन्त शब्द।)

(ग) यदि म परक ह्, बाद में हो तो म् को अनुस्वार विकल्प से होता है।[६] जैसे—किम्+ह्मलयति = किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति (वह क्या वस्तु

१. खरि च। (अष्टा० ८-४-५५)
२. शश्छोऽटि। (अष्टा० ८-४-६३)। छत्वममीति वाच्यम् (वार्तिक)।
३. मोऽनुस्वारः। (अष्टा० ८-३-२३)
४. मो राजि समः क्वौ। (अष्टा० ८-३-२५)
५. नश्चापदान्तस्य झलि। (अष्टा० ८-३-२४)
६. हे मपरे वा। (अष्टा० ८-३-२६)

हिलाता है)। यदि न-परक ह् हो तो म् को न् विकल्प से हो जाएगा।[1] जैसे -किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते, किं ह्नुते (वह क्या छिपाता है?)। यदि ह् के बाद य्, व्, ल् होंगे तो म् को विकल्प से अनुस्वारसहित य्, व्, ल् होंगे।[2] किम् + ह्य = किं ह्य, कियँह्य। इसी प्रकार किं ह्वलयति, किव्ँह्वलयति। किं ह्लादयति, किल्ँह्लादयति। किन्तु अहम् + आगत = अहमागत।

३७. अनुस्वार के बाद यय् (श् ष् स् ह् को छोड़कर सभी व्यंजन) होगा तो अनुस्वार का परसवर्ण (अगले वर्ण के वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाएगा। यह नियम शब्द के मध्य में अवश्य लगेगा और शब्द के अन्त में विकल्प से।[3] जैसे -अन्क् + इत = अ + क् + इत (पूर्व नियमानुसार और फिर) = अङ्कित (चिह्नित)। इसी प्रकार अन्च् + इत = अञ्चित (पूजित), कुण्ठित (कुण्ठित), शान्त (शान्त), गुम्फित (बुना हुआ)। त्वम् + करोषि = त्वं करोषि, त्वङ्करोषि (तुम करते हो)। इसी प्रकार संयन्ता-सँय्यन्ता (संयम करने वाला), संवत्सर -सँव्वत्सर (वर्ष), यंलोकम्-यँल्लोकम् (जिस व्यक्ति को)।

३८. ङ और ण् के बाद शर् (श, ष्, स्) होगा तो बीच में विकल्प से क् और ट् जुड़ जाएगा।[4] शर् बाद में होने पर क् को ख् और ट् को ठ् विकल्प से हो जाता है। प्राङ् + षष्ठ = प्राङ् षष्ठ, प्राङ्क्षष्ठ, प्राङ्ख्षष्ठ (छठा व्यक्ति आगे गया)। सुगण् + षष्ठ = सुगण्षष्ठ, सुगण्ट्षष्ठ, सुगण्ठ्षष्ठ (छठा अच्छा गणक)।

३९. ड् या न् के बाद स् होगा तो बीच में विकल्प से ध् हो जाएगा।[5] जैसे—षड् + सन्त = षट् सन्त, या षड्+ इस ध् का त् हो जाता है। जैसे—षड + सन्त = षट् सन्त (६ सज्जन)। इसी प्रकार सन् + स = सन्स, सन्त्स (वह सज्जन)।

---

१ नपरे नः। (अष्टा० ८-३-२७)
२ यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम्। (वार्तिक)
३ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः। (अष्टा० ८-४-५८)। वा पदान्तस्य (अष्टा० ८-४-५९)
४. ङ्णोः कुक्टुक् शरि। (अष्टा० ८-३-२८)
५. डः सि धुट् (अष्टा० ८-३-२९)। नश्च (अष्टा० ८-३-३०)

(क) ह्रस्व स्वर के बाद पद के अन्तिम ङ ण् न् को द्वित्व हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो।[1] जैसे—प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा (जीवात्मा)। इसी प्रकार सुगण्णीश (गणकों का स्वामी), सन्नच्युत (सज्जन अच्युत)।

४०. पद के अन्तिम न् के बाद श् होगा तो बीच में विकल्प से त् जुड़ जाएगा।[2] जैसे – सन् + शम्भु = सन्शम्भु, सन्त्शम्भु। यहाँ पर नियम ३० से विकल्प से श् को छ् और बाद में नियम २८ (क) से न् का ञ् और त् को च् और अन्त में नियम २० (क) से विकल्प से च् का लोप होगा। इस प्रकार इसके चार रूप हो जाएंगे—सञ्छम्भु, सञ्च्छम्भु, सञ्च्शम्भु और सञ्शम्भु।

४१. र्, ष् और ऋ ॠ के बाद न् को ण् हो जाता है, एक ही शब्द में हो तो।[3] यदि र्, ष्, ऋ, ॠ और न् के बीच में ये अक्षर आते हैं तो भी न् को ण् हो जाएगा—स्वर, य्, र्, व्, ह्, कवर्ग, पवर्ग, और न्।[4] जैसे—रामेन = रामेण। पूष् + ना = पूष्णा (सूर्य ने)। पितॄणाम् आदि। किन्तु राम + नाम = राम नाम, में न् को ण् नहीं होगा, क्योंकि ये दो पृथक् शब्द हैं। शब्द के अन्त में न् होगा तो उसे ण् नहीं होगा।[5] जैसे—रामान्।

४२ इण् (अ, आ को छोड़कर सभी स्वर, अन्तःस्थ और ह्) और कवर्ग के बाद स् को ष् हो जाता है। वह स् पद का अन्तिम अक्षर नहीं होना चाहिए और वह आदेश का हो या प्रत्यय का अवयव स् होना चाहिए।[6] जैसे—रामे + सु = रामेषु किन्तु रामस्य में ष् नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर उससे पूर्व अ है। सुपी, सुपिसौ, सुपिस में स् सुपिस् शब्द का है, आदेश या प्रत्यय का नहीं है, अतः ष् नहीं होगा। यदि बीच में न् या न् का अनुस्वार,

---

१. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्। (अष्टा० ८-३-३२)
२. शि तुक् (अष्टा० ८-३-३१)
३. रषाभ्यां नो णः समानपदे (अष्टा० ८-४-१)
४. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। (अष्टा० ८-४-२)
५. पदान्तस्य। (अष्टा० ८-४-३७)
६. अपदान्तस्य मूर्धन्यः (८-३-५५), इण्कोः (८-३-५७), आदेशप्रत्यययोः (८-३-५९)

विसर्ग, श् ष् स् होने तो भी म् को ष् हो जाएगा।[1] धनूंन्+सि=धनूंषि (धनुष् का प्र० बहु०)। पिपठीष्+सु=पिपठीष्षु।

४३. सम् के म् को अनुस्वार और स् (ंस्) हो जाता है, बाद में कृ धातु का कोई रूप हो तो। कृ धातु से पहले स् लगा हुआ होना चाहिए।[2] इस अनुस्वार को विकल्प से अनुनासिक (ँ) हो जाता है। जैसे—सम्+स्कर्ता=संस्स्कर्ता, सँस्स्कर्ता। पहले स् का विकल्प से लोप हो जाता है। संस्कर्ता, सँस्कर्ता। सम्, पुम्, कान्, इनके विसर्ग को नित्य स् होता है।[3]

सूचना—संस्कर्ता में अन्य कई सूत्र लगते हैं और इसके १०८ रूप बनते हैं। इन रूपों को बनाना कठिन है और विशेष लाभप्रद नहीं है, अतः उन्हें यहाँ नहीं दिया गया है।

नीचे के क, ख, ग और घ भागों को प्रारम्भिक छात्र छोड़ सकते हैं।

(क) पुम् के म् को अनुस्वार और स् (ंस् या ँस्) हो जाता है, यदि बाद में खय् (वर्ग के १, २ वर्ण) हो और उस खय् के बाद अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के ५ वर्ण) हो तो।[4] पुम्+कोकिल=पुंस्कोकिल, पुँस्कोकिल (पुंलिंग कोयल)। इसी प्रकार पुंस्पुत्र, पुँस्पुत्र (पुत्र, युवक)। किन्तु पुंक्षीरम् (पुरुष के लिए दूध), पुंदास (नौकर) में म् को स् नहीं होगा, क्योंकि इनमें उपर्युक्त विशेषताएँ नहीं हैं। ख्या धातु बाद में होगी तो भी म् को स् नहीं होगा।[5] पुंख्यानम्।

(ख) पद के अन्तिम न् को अनुस्वार और स् (ंस् या ँस्) हो जाता है, यदि बाद में छव् (च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्) हो और उसके बाद में अम् (स्वर, अन्तःस्थ, ह् और वर्ग के पंचम अक्षर) हो तो।[6] यह नियम प्रशान् शब्द में नहीं लगता है। जैसे—शार्ङ्गिन्+छिन्धि=शार्ङ्गिन्+स्+छिन्धि=शार्ङ्गिन्+श्+छिन्धि (नियम २८ क के अनुसार)। शार्ङ्गिंश्छिन्धि, शार्ङ्गिँश्छिन्धि।

---

१. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि। (८-३-५८)
२. समः सुटि (८-३-५)।
३. संपुंकानां सो वक्तव्यः। (वार्तिक)
४. पुमः खय्यम्परे (८-३-६)
५. ख्याञादेशे न। (वार्तिक)
६. नश्छव्यप्रशान् (८-३-७)

(हे कृष्ण, काटो)। इसी प्रकार चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व (हे कृष्ण, रक्षा करो)। किन्तु हन् + ति = हन्ति में यह नियम नहीं लगेगा। यहाँ पर न् पद का अन्तिम अक्षर नहीं है। सन् + त्सरु = सन्त्सरु, यहाँ पर त् के बाद अम् नहीं है, (सुन्दर मूँठ)। प्रशान् + तनोति = प्रशान्तनोति।

(ग) नॄन् के न् के बाद प होगा तो उसे अनुस्वार और विसर्ग विकल्प से होगा।[1] नॄन् + पाहि = नॄंपाहि, नॄः पाहि, नॄँ पाहि।

(घ) कान् के न् को अनुस्वार और स् (ं स् या ँ स्) विकल्प से हो जाएगा, बाद में कान् शब्द हो तो। कान् + कान् = कांस्कान्, काँस्कान् (किनको)। निम्नलिखित स्थानों पर विसर्ग को स् या ष् हो जाता है — क + क = कस्क। इसी प्रकार कौतस्कुत (कहाँ से), भ्रातुष्पुत्र, सद्यस्काल (वर्तमान समय), सर्पिष्कुण्डिका (घी का बर्तन), धनुष्कपालम् (धनुष् का टुकड़ा), यजुष्पात्रम् (यज्ञ-पात्र), अयस्कान्त (चुम्बक), तमस्काण्ड (घोर अंधेरा), अयस्काण्ड, भास्कर, अहस्कर (सूर्य)।

४४. ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद छ होगा तो वहाँ पर बीच में च् का आगम नित्य होगा। यदि पदान्त दीर्घ स्वर के बाद छ होगा तो विकल्प से च् का आगम होगा। आ और मा के बाद छ होगा तो च् का आगम नित्य होगा।[2] जैसे—शिव + छाया = शिवच्छाया (शिव की छाया)। इसी प्रकार स्वच्छाया, चेच्छिद्यते (बार बार काटता है)। लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया, मा + छिदत् = माच्छिदत् (मत काटे), आ + छादयति = आच्छादयति (वह ढकता है)।

विसर्ग-सन्धि

४५. स् के बाद कोई वर्ण हो या न हो, उसे विसर्ग होता है। सजुष् के ष् को और र् को विसर्ग होता है, बाद में खर् (वर्ग के १, २, श, ष, स) हो तो। जैसे—राम पठति (राम पढता है)। पितर् = पितः (हे पिता)। भ्रातुः कन्यका (भाई की लड़की)।

---

१ नॄन् पे (८-३-१०)

२ छे च (६-१-७३), आङ्माङोश्च (६-१-७४), दीर्घात् (६-१-७५), पदान्ताद् वा (६-१-७६)। वस्तुतः यहाँ पर बीच में त् आगम होता है और उसे नियम २८ से च् हो जाता है।

४८. विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में खर् (वर्ग के १,२, श् ष् स्) हो तो।[1] जैसे—विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता (रक्षक विष्णु)। हरिश्चरति (हरि चलता है)। रामष्टीकते (राम जाता है)। (देखो नियम २८)। किन्तु क ख्सर, यहाँ पर त् के बाद स् है, अत विसर्ग ही होगा। विसर्ग के बाद श्, ष्, स् होंगे तो विसर्ग को स् विकल्प से होगा।[2] राम + स्थाता = राम स्थाता, रामस्स्थाता। हरिः + शेते = हरि शेते, हरिश्शेते, इत्यादि।

(क) अ पहले हो तो विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में पाश, कल्प, क, काम्य हों तो। यह विसर्ग अव्यय का नहीं होना चाहिए।[3] यदि विसर्ग से पहले इ ई, उ ऊ होगा तो विसर्ग को ष् होगा, पाश आदि बाद मे होंगे तो।[4] जैसे—पयस्पाशम् (खराब दूध), यशस्कल्पम् (कुछ कम यश), यशस्कम् (यशयुक्त), यशस्काम्यति (यश चाहता है)। किन्तु प्रात कल्पम् (लगभग सवेरा), यहाँ प्रात अव्यय है, अत स् नहीं हुआ। सर्पिष्पाशम् (खराब घी), सर्पिष्कल्पम्, सर्पिष्कम्, सर्पिष्काम्यति। काम्य बाद में होगा तो र् के विसर्ग को स् नहीं होगा।[5] जैसे—गी काम्यति (वाणी की इच्छा करता है)। यहाँ पर गिर् के र् को विसर्ग है।

(ख) धातु से पहले अव्यय की तरह प्रयुक्त नम और पुर के विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[6] नम में यह नियम विकल्प से लगेगा और पुर में नित्य। जैसे—नमस्करोति, नम करोति। पुरस्करोति (सामने रखता है)। किन्तु पुर प्रवेष्टव्या में नहीं होगा, यहाँ पर पुर् शब्द है।

---

१ विसर्जनीयस्य स (८-३-३४), शर्परे विसर्जनीय (८-३-३५)
२. वा शरि (८-३-३६)
३. सोऽपदादौ (८-३-३८)। पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम्। अनव्ययस्येति वाच्यम्। (वार्तिक)
४ इण ष. (८-३-३९)
५. काम्ये रोरेवेति वाच्यम्। (वार्तिक)
६. नमस्पुरसोर्गत्यो (८-३-४०)

(ग) इ या उ पहले हो तो प्रत्यय-भिन्न विसर्ग को ष् हो जाता है, बाद मे कवर्ग या पवर्ग हो तो।[1] यह नियम मुहु. मे नही लगेगा। जैसे—निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम् (विना विघ्न के)। आविष्कृतम् (प्रकट किया), दुष्कृतम् (कुकर्म)। किन्तु मुहु कृतम्। अग्नि. करोति में विसर्ग स् प्रत्यय का है। इसी प्रकार मातु कृपा मे भी ष् नही होगा और मातुष्कृपा रूप नही बनेगा। भ्रातुष्पुत्रः कस्कादि गण में होने के कारण बनता है।

(घ) तिरस् के विसर्ग को विकल्प से स् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[2] तिर करोति, तिरस्करोति (छिपाता है या तिरस्कार करता है)।

द्विः, त्रि और चतु के विसर्ग को विकल्प से ष् हो जाता है, बाद में कवर्ग या पवर्ग हो तो।[3] द्विः आदि वार अर्थ के बोधक क्रियाविशेषण होने चाहिएँ। द्विष्करोति, द्वि करोति (दो बार करता है), किन्तु चतुष्कपालम् मे चतुर् शब्द है, अत. विकल्प से ष् नही हुआ। (चार कपाल या भाग वाला)।

(ङ) शब्द के अन्तिम इस् (इ) और उस् (उ.) के विसर्ग को विकल्प से ष् हो जाता है, बाद में कवर्ग और पवर्ग हो तो।[4] इसमें बाद वाला शब्द अर्थ की पूर्ति के लिए आया हुआ होना चाहिए। सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति (घी बनाता है)। धनुष्करोति, धनु.करोति (धनुष बनाता है)। किन्तु तिष्ठतु सर्पि., पिब त्वमुदकम्, में सर्पि. और पिब का कोई सम्बन्ध नही है।

यदि ऐसा शब्द समास मे प्रथम पद है तो ष् अवश्य होगा।[5] जैसे—सर्पिष्कुण्डिका (घी का वर्तन या घी की हाडी)। किन्तु परमसर्पि.कुण्डिका में ष् नही होगा, क्योंकि यहाँ पर सर्पि. प्रथम पद नही है।

(च) अ के बाद विसर्ग को स् हो जाता है, समास मे, बाद में कृ या कम् धातु का कोई रूप हो या कस, कुम्भ, पात्र, कुशा या कर्णी शब्द हो। यह विसर्ग समस्त पद का प्रथम पद होना चाहिए और अव्यय का विसर्ग नही होना

१. इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य (८-३-४१)
२. तिरसोऽन्यतरस्याम् (८-३-४२)
३. द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे (८-३-४३)
४. इसुसोः सामर्थ्ये (८-३-४४)
५. नित्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य (८-३-४५)

चाहिए।[1] जैसे—अयस्कार (लोहार), अयस्काम. (लोहे का इच्छुक), अयस्कंस (लोहे का पात्र), अयस्कुम्भ, अयस्पात्रम्, अयस्कुशा, अयस्कर्णी (लोहे का एक पात्र)। किन्तु निम्नलिखित स्थानों पर विसर्ग को स् नहीं होगा। गीःकार (बृहस्पति), विसर्ग अ के बाद नही है। स्वःकाम. (स्वर्ग का इच्छुक), विसर्ग स्वर् अव्यय का है। यशःकरोति, यहाँ समास नही है। परमयशःकार (श्रेष्ठ यश का कर्ता), यहाँ यशस् शब्द प्रथम पद नही है।

(छ) अध. और शिर से विसर्ग को स् हो जाता है, बाद में पद शब्द हो तो।[2] यह नियम भी पूर्वोक्त स्थितियो मे ही लगता है। अधस्पदम्, शिरस्पदम्। किन्तु अध पदम् यहाँ समास नही है। परमशिरःपदम् यहाँ पर शिर प्रथम पद नहीं है अपितु उत्तरपद है।

४७. ह्रस्व अ के बाद विसर्ग का उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ या हश् (ह, अन्तस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो।[3] यह विसर्ग स् का होना चाहिए, र् का नहीं। शिव + अर्च्य = शिव + उ + अर्च्य = शिवो + अर्च्य = शिवोऽर्च्य (देखो नियम २५), (शिव पूज्य है)। देव + वन्द्य = देवो वन्द्यः (परमात्मा वन्दनीय है)। किन्तु तिष्ठतु पय अ३ग्निदत्त, मे पय मे बाद का अ प्लुत है, अत विसर्ग को उ नहीं हुआ। प्रात + अत्र = प्रातरत्र, यहाँ पर विसर्ग र् के स्थान पर हुआ है। इसी प्रकार प्रातर्गच्छ इत्यादि।

४८. आ के बाद विसर्ग का नित्य लोप हो जाता है यदि उसके बाद हश् (कोमल व्यंजन अर्थात् ह, अन्तस्थ, वर्ग के ३, ४, ५) हो तो। यदि विसर्ग के बाद स्वर होगा तो विसर्ग का लोप विकल्प से होगा। ह्रस्व अ के बाद भी विसर्ग का लोप विकल्प से हो जाता है, यदि बाद में अ को छोडकर कोई भी स्वर हो तो। जहाँ पर विसर्ग का लोप नहीं होता है, वहाँ पर अ या आ के बाद विसर्ग को य् हो जाता है। देवा + नम्या = देवा नम्या। देवा + इह = देवा इह, देवायिह।

४९. (क) अ या आ को छोडकर अन्य किसी भी स्वर के बाद विसर्ग

[1] अत कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य (८-३-४६)
[2] अध शिरसी पदे (८-३-४७)
[3] अतो रोरप्लुतादप्लुते (६-१-११३), हशि च (६-१-११४)

को र् हो जाता है, बाद में कोई स्वर या हश् (कोमल व्यंजन) हो तो। हरि + जयति = हरिर्जयति (हरि जीतता है)। इसी प्रकार भानुरुदेति (सूर्य उदय होता है)। गौरागच्छति (गाय आती है)।

अपवाद—भो, भगो और अघो निपातों के विसर्ग का नियम ४८ के अनुसार विकल्प से लोप होता है। जैसे—भो + अच्युत = भो अच्युत, भायच्युत (ओ अच्युत)। भगो नमस्ते (भगो, आपको नमस्कार)। अघो याहि (आ, जावो)।

(ख) अहन् के न् को र् हो जाता है, बाद में कोई सुप् (विभक्ति प्रत्यय) हो तो नहीं। यदि अहन् के बाद रूप, रात्रि या रथन्तर शब्द होगा तो न् को र होकर उ हो जायगा। अहन् गिर् और धुर् आदि शब्दों के बाद पति शब्द होगा तो न् का र् विकल्प से होगा।[1] जहाँ र् नहीं होगा, वहाँ विसर्ग रहेगा। अह, अहरह (प्रतिदिन), अह पति – अहर्पति (दिन का स्वामी, सूर्य), गीर्पति – गीष्पति (बृहस्पति), धूपति – धूष्पति (नेता)। उपर्युक्त नियमानुसार इन स्थानों पर र् नहीं होगा—अहोभ्याम् (तृ० द्विवचन), अहोरूपम् (दिन का-स्वरूप), गतमहो रात्रिरेषा, अहोरात्र (दिन-रात), अहोरथन्तरम् (दिन में गाने योग्य रथन्तर नामक सामगान)।

(ग) र् बाद में हो तो र् का लोप होता है और ढ् बाद में हो तो ढ् का। यदि लुप्त र् और ढ् से पहले ह्रस्व अ, इ, उ होंगे तो उन्हें दीर्घ हो जाएगा।[2] पुनर् + रमते = पुना रमते (फिर क्रीडा करता है)। हरिर् + रम्य = हरिर् + रम्य = हरी रम्य (हरि सुन्दर है)। किन्तु वृढ् + ढ = वृढ। यह वर्धनार्थक वृह् धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है। यहाँ पर ऋ को दीर्घ नहीं हुआ।

५० (क) स और एष के विसर्ग का लोप हो जाता है, बाद में कोई व्यंजन हो तो। नञ् तत्पुरुष समास में और अन्त में क होगा तो विसर्ग का लोप नहीं होगा।[3] जैसे—स शम्भु, एष विष्णु। किन्तु इन स्थानों पर विसर्ग

---

१. रोऽसुपि (८-२-६९)। रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् (वार्तिक)। अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफ (वार्तिक)।
२ रो रि (८-३-१४)। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण (६-३-१११)
३ एतत्तदो सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि (६-१-१३२)

का लोप नहीं होगा—एष को रुद्र (यह रुद्र), असशिव —अस शिव (यह शिव नहीं है नञ् समास), एषोऽत्र।

(ख) छन्द में श्लोक के पाद (चरण) की पूर्ति के लिए भी स के विसर्ग का लोप हो जाता है यदि बाद में अ को छोड़कर अन्य कोई स्वर हो तो।[1] विसर्ग का लोप होने पर सन्धि हो जाती है। जैसे—सेमामविड्ढि प्रभृति य ईशिषे०.(ऋग्० २-२४-१)

सैष दाशरथी राम सैष राजा युधिष्ठिर।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबल ॥

---

१. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। (६ १ १३४)

अध्याय ३

सुवन्त या शब्दरूप

५१. इस अध्याय मे संज्ञा-शब्दो या प्रातिपदिको के शब्दरूपो (Declension) का विचार किया गया है।

५२. संज्ञाशब्दो के मूलरूप को, जिसके साथ विभक्तियाँ नही लगी हैं, व्याकरण मे प्रातिपदिक नाम दिया गया है।[1] इस सार्थक शब्द के साथ ही विभक्तियाँ लगती है।

५३. संज्ञाशब्द तीन लिंगो (Genders) में आते हैं—पुलिंग (पु०), स्त्रीलिंग (स्त्री०) और नपुंसकलिंग (नपु०)। संज्ञाशब्दो का लिंग-विचार आगे एक स्वतन्त्र अध्याय (अध्याय १०) में किया गया है।

५४. संस्कृत में तीन वचन (Numbers) होते है— एकवचन (एक०), द्विवचन (द्वि०) और बहुवचन (बहु०)। एकवचन एक के लिए आता है, द्विवचन दो के लिए और बहुवचन तीन या उससे अधिक के लिए।[2]

५५. संस्कृत मे ८ विभक्तियाँ होती हैं। ये तीनो वचनो मे होती हैं। इनके नामादि हैं—प्रथमा (प्र०, Nominative), संबोधन (सं०, Vocative), द्वितीया (द्वि०, Accusative), तृतीया (तृ०, Instrumental), चतुर्थी (च०, Dative), पचमी (प०, Ablative), षष्ठी (ष०, Genitive), सप्तमी (स०, Locative)। ये विभक्तियाँ वाक्य के अन्दर शब्दो के प्रायः सभी संबन्धो को बताती हैं।

सूचना—आगे शब्दरूपो मे सुविधा के लिए लिंग, वचन और विभक्तियो के संक्षिप्त रूपो का ही प्रयोग किया गया है। इनके संक्षिप्त रूप ऊपर कोष्ठ में दिए हैं।

---

१. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। (अष्टा० १-२-४५)
२. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने (अष्टा० १-४-२२), बहुषु बहुवचनम्। (अष्टा० १-४-२१)

५६. संस्कृत में शब्दों के अन्त में लगने वाले विभक्ति-चिह्नों का पारिभाषिक नाम सुप् है।[1] शब्दरूपों को बनाने में प्रातिपदिक या संज्ञा शब्दों के साथ ये सुप् या विभक्ति-चिह्न लगाये जाते हैं।

५७. साधारणतया ये विभक्ति-चिह्न लगते हैं :—

पुल्लिंग और स्त्रीलिंग

	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०, सं०	स्	औ	अस्
द्वि०	अम्	औ	अस्
तृ०	आ	भ्याम्	भिस्
च०	ए	भ्याम्	भ्यस्
पं०	अस्	भ्याम्	भ्यस्
ष०	अस्	ओस्	आम्
स०	इ	आम्	सु

नपुंसकलिंग

	एक०	द्वि०
प्र०, द्वि०	अम्	ई
सं०	—	ई

शेष पुल्लिंग के तुल्य

---

१. पाणिनि ने सुपों या विभक्ति-चिह्नों के ये नाम दिए हैं— स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् (अष्टा० ४-१-२)। ये विभक्ति-चिह्न इस प्रकार से हैं—

प्रथमा—	सु (स्)	औ	जस् (अस्, अ)
द्वितीया—	अम्	औट् (औ)	शस् (अस्, अ)
तृतीया—	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भि)
चतुर्थी—	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
पंचमी—	ङसि (अस्, अ)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
षष्ठी—	ङस् (अस्, अ)	आम् (ओ)	आम्
सप्तमी—	ङि (इ)	आम् (आ)	सुप् (सु)

उपर्युक्त विभक्ति-चिह्नों को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें कुछ इत् (हट जाने वाले) अक्षर प्रारम्भ में या अन्त में जुड़े हुए हैं। ये बाद में हट जाते हैं। जैसे—सु में उ, जस् में ज् आदि। सुप् यह प्रत्याहार है। यह सु से प्रारम्भ होकर अन्तिम सुप् के प् को लेकर बना है। सुप् का अर्थ होता है—सु से लेकर सुप् तक के सारे विभक्ति-चिह्न।

५८ सबोधन प्रथमा का ही एक रूपान्तर माना जाता है। यह द्विवचन और बहुवचन मे प्रथमा के समान ही होना है। अत सम्बोधन के विभक्ति-चिह्न पृथक् नही होते हैं। सम्बोधन एकवचन में कही शब्द का मूलरूप रहता है, कही पर प्रथमा वाला रूप रहता है और कही पर सर्वथा भिन्न रूप बनता है।

संज्ञा और विशेषण शब्दो के रूप

५६. सुविधा के लिए शब्दरूपो को दो भागो मे विभक्त किया गया है—

(क) अजन्त (ऐसे शब्द जिनके अन्त में स्वर हैं)।

(ख) हलन्त (ऐसे शब्द जिनके अन्त में व्यजन हैं)।

६०. साधारणतया सज्ञा शब्दो और विशेषण शब्दो के शब्दरूप में कोई अन्तर नही होता है। अत दोनो का पृथक् वर्णन नही किया गया है। जहाँ पर दोनो में कोई भेद है, वहाँ पर उसका उल्लेख किया गया है।

भाग १

१. अजन्त शब्द

विशेष—अजन्त शब्दो के बाद सुप् या विभक्ति-चिह्न लगाने पर उनमें इतने अधिक अन्तर या परिवर्तन होते हैं कि उनका उल्लेख यहाँ पर करना उचित प्रतीत नही होता है। अत यहाँ पर शब्दो के पूरे रूप ही दे दिए गए हैं। विद्यार्थी स्वय विभक्ति-चिह्नो के परिवर्तन आदि पर विचार करे। यहाँ पर जिन शब्दों के रूप दिए गए हैं, उन्हे आदर्श शब्द समझना चाहिए। उस प्रकार के अन्य शब्दो के रूप आदर्श शब्दो के तुल्य चलाना चाहिए।

अकारान्त पुंलिंग और नपुंसकलिंग शब्द

६१ राम (राम) पुं० | ज्ञान (ज्ञान) नपुं०

	एक	द्वि०	बहु०		एक०	द्वि०	बहु०
प्र०	रामः	रामौ	रामा.	प्र०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि
स०	राम	रामौ	रामाः	स०	ज्ञान	ज्ञाने	ज्ञानानि
द्वि०	रामम्	रामौ	रामान्	द्वि०	ज्ञानम्	ज्ञाने	ज्ञानानि

			शेष रामवत्
		रामैः	
तृ०	रामेण[1]	रामाभ्याम्	
च०	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्य
प०।	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्य
ष०	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
स०	रामे	रामयोः	रामेषु

६२. सभी अकारान्त पु० और नपु० शब्दों के रूप राम और ज्ञान के तुल्य चलेंगे।

(क) जिन शब्दों के अन्त में अहन लगा हुआ है, उनके सप्तमी एकवचन मे तीन रूप बनते है—एक राम के तुल्य और अन्य नकारान्त शब्दों के तुल्य। (तत्पुरुष समास के अन्त में अहन् को अह्न हो जाता है)। जैसे द्व्यह्न के रूप होते हैं—द्व्यह्ने, द्व्यह्नि, द्व्यहनि। इसी प्रकार व्यह्न के रूप होते हैं—व्यह्ने, व्यह्नि, व्यहनि इत्यादि। देखो आगे राजन् शब्द के रूप।

आकारान्त पुलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

६३. गोपा—(ग्वाला) पुलिंग

(क) आकारान्त पुलिंग शब्दों के अन्त में साधारण विभक्ति-चिह्न लगते हैं। द्वितीया बहुवचन से लेकर आगे की स्वरादि विभक्तियों से पहले शब्द के अन्तिम आ का लोप हो जाता है।

प्र०, स०	गोपा	गोपौ	गोपा
द्वि०	गोपाम्	गोपौ	गोप
तृ०	गोपा	गोपाभ्याम्	गोपाभि
च०	गोपे	गोपाभ्याम्	गोपाभ्य
प०	गोप	गोपाभ्याम्	गोपाभ्य
ष०	गोप	गोपो	गोपाम्
स०	गोपि	गोपो	गापासु

६४. इसी प्रकार इन शब्दों के भी रूप चलेंगे—विश्वपा (ससार का रक्षक), शखध्मा (शख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस का पान करने वाला),

---

१ नियम ४१ के अनुसार इनके न को ण हुआ है। जन का तृ० एक० में जनेन रूप होगा।

प०	हरे	हरिभ्याम्	हरिभ्य
प०	हरे	हर्यो	हरीणाम्
स०	हरी	हर्यो	हरिषु

मति (बुद्धि), स्त्रीलिंग

प्र०	मति	मती	मतय
स०	मते	मती	मतय
द्वि०	मतिम्	मती	मनी
तृ०	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभि
च०	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्य
प०	मत्या , मते	मतिभ्याम्	मतिभ्य
प०	मत्या , मते	मत्यो	मतीनाम्
स०	मत्याम्, मतौ	मत्यो	मतिषु

गुरु (गुरु) पुंलिंग

प्र०	गुरु	गुरू	गुरव
स०	गुरो	गुरू	गुरव
द्वि०	गुरुम्	गुरू	गुरून्
तृ०	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभि
च०	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्य
प०	गुरो	गुरुभ्याम्	गुरुभ्य
प०	गुरो	गुर्वो	गुरूणाम्
स०	गुरौ	गुर्वो	गुरुषु

धनु (गाय) स्त्रीलिंग

प्र०	धेनु	धेनू	धेनव
स०	धेनो	धेनू	धेनव
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनू
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि
च०	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
प०	धेन्वा , धेनो	धेनुभ्याम्	धनुभ्य

स०	शुचि, शुचे	शुचिनी	शुचीनि
द्वि०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
तृ०	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
च०	शुचये, शुचिने	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
प०	शुचेः, शुचिनः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
ष०	शुचेः, शुचिनः	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
स०	शुचौ, शुचिनि	शुच्योः, शुचिनोः	शुचिषु

गुरु—नपुंसकलिंग

प्र०	गुरु	गुरुणी	गुरूणि
स०	गुरु, गुरो	गुरुणी	गुरूणि
द्वि०	गुरु	गुरुणी	गुरूणि
तृ०	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
च०	गुरवे, गुरुणे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
प०	गुरोः, गुरुणः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
ष०	गुरोः, गुरुणः	गुर्वोः, गुरुणोः	गुरूणाम्
स०	गुरौ, गुरुणि	गुर्वोः, गुरुणोः	गुरुषु

७१ सभी इकारान्त, उकारान्त पु०, स्त्री०, नपु० संज्ञा और विशेषण शब्दों के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

७२ अनियमित रूप से चलने वाले शब्द —

सखि (मित्र), पुंलिंग

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
स०	सखे	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
प०	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
ष०	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

विशेष—(क) निम्नलिखित शब्दों के रूप प्र०, स० और द्वि० में सखि के तुल्य चलते हैं और शेष विभक्तियों में हरि के तुल्य चलते हैं—सुसखि (शोभन सखा, अच्छा मित्र), अतिसखि (अतिशयित सखा, घनिष्ठ मित्र), परमसखि (परम सखा यस्य, परम सखा वा, श्रेष्ठ मित्र से युक्त या श्रेष्ठ मित्र)। अतिसखि (सखीमतिक्रान्त, जिसने अपनी सखी को छोड़ दिया है) शब्द के रूप हरि के तुल्य चलते हैं।

सूचना—सखी शब्द ईकारान्त स्त्रीलिंग है और उसके रूप नदी के तुल्य चलते हैं।

पति (पति, स्वामी), पुलिंग

प्र०	पति	पती	पतय
स०	पते	पती	पतय
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि
च०	पत्ये	पतिभ्याम	पतिभ्य
प०	पत्यु	पतिभ्याम्	पतिभ्य
ष०	पत्यु	पत्यो	पतीनाम्
स०	पत्यौ	पत्यो	पतिषु

७२. समस्त शब्द जिनके अन्त में पति शब्द होता है, जैसे भूपति आदि, उनके रूप हरि के तुल्य चलते हैं। प्रियत्रि (प्रिया त्रय यस्य यस्या वा) शब्द पुलिंग के रूप हरि के तुल्य चलते हैं और स्त्रीलिंग में मति के तुल्य। इसके षष्ठी बहुवचन में दो रूप होते हैं—एक त्रि के तुल्य और दूसरा हरि या मति के तुल्य। जैसे—प्रियत्रीणाम्, प्रियत्रयाणाम्।

७३ विशेष—(ख) औडुलोमि (उडुलोम्न अपत्य पुमान्, उडुलोमन् का पुत्र) शब्द के रूप एक० और द्वि० में हरि के तुल्य चलते हैं और बहु० में राम के तुल्य। बहुवचन में औडुलोमन् का उडुलोम हो जाता है।[1] जैसे—औडुलोमि, औडुलोमी, उडुलोमा इत्यादि।

---

[1] उडुलोमन् (एक ऋषि का नाम) शब्द से अपत्य (सन्तान) अर्थ में बाह्वादिभ्य च (अष्टा० ४ १-९६) से इञ् (इ) प्रत्यय और नस्तद्धिते (अष्टा० ६-४ १४४) से उडुलोमन् के अन् का लोप होकर औडुलोमि शब्द बनता है।

(ग) इस प्रकार के अन्य शब्द भी बहुवचन में मूल-शब्द हो जाते हैं। (देखो अष्टा० २-४-६२, ६३, ६५, ६६ और ४-१-१०५)। जैसे—गार्ग्य अगस्त्य गार्ग्य। इसके रूप चलेंगे—गार्ग्य, गार्ग्यौ, गर्गा, इत्यादि।

ईकारान्त, ऊकारान्त, पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

७५ नदी (नदी) स्त्री०, वधू (वधू) स्त्री०।

नदी—स्त्रीलिंग

प्र०	नदी	नद्यौ	नद्य.
स०	नदि	नद्यौ	नद्य·
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदी.
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि
च०	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्य.
प०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभ्य
ष०	नद्या	नद्यो	नदीनाम्
स०	नद्याम्	नद्या	नदीषु

सभी ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

(क) निम्नलिखित सात ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के प्रथमा एकवचन में विसर्ग (स्) का लोप नहीं होता है।[1] अवी (रजस्वला स्त्री), तन्त्री (वीणा), तरी (नौका), लक्ष्मी (सम्पत्ति), धी (बुद्धि), ह्री (लज्जा) और श्री (लक्ष्मी)। जैसे—अवी, लक्ष्मी, धी आदि।

वधू—स्त्रीलिंग

प्र०	वधू	वध्वौ	वध्व
स०	वधु	वध्वौ	वध्व:
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधू:
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभि:
च०	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्य
प०	वध्वा:	वधूभ्याम्	वधूभ्य:

१. अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु। सप्तस्त्रीलिंगशब्दानां न सुलोपः कदाचन।

ष०	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु

सभी ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप वधू के तुल्य चलते हैं। जैसे—श्वश्रू (सास), चमू (सेना), कर्कन्धू (बेर), कफेलू (कफ वाली स्त्री), यवागू (जौ या चावल के माड की काँजी), चम्पू (गद्य-पद्यमिश्रित प्रबन्ध) इत्यादि। अतिचमू शब्द पुं० और स्त्री० के रूप चमू शब्द के तुल्य चलते हैं। पुंलिंग में द्वि० बहु० में अतिचमून् रूप होगा, शेष चमूवत्।

७६. ईकारान्त पुंलिंग शब्द :—

वातप्रमी (वात प्रमिमीते असौ, वायु के तुल्य तीव्र दौड़ने वाला मृग। वात + प्रमा + ई, उणादि० ४-१)।

प्र०	वातप्रमीः	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
सं०	वातप्रमीः	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
द्वि०	वातप्रमीम्	वातप्रम्यौ	वातप्रमीन्
तृ०	वातप्रम्या	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभिः
च०	वातप्रम्ये	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
पं०	वातप्रम्यः	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
ष०	वातप्रम्यः	वातप्रम्योः	वातप्रम्याम्
स०	वातप्रमी	वातप्रम्योः	वातप्रमीषु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—ययी (यान्ति अनेन इति, मार्ग या घोड़ा), पपी (पाति लोकम् इति, सूर्य)

विशेष—बहुश्रेयसी (बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य सः, जिसकी बहुत-सी सुन्दर स्त्रियाँ हैं) पुंलिंग और अतिलक्ष्मी (लक्ष्मीम् अतिक्रान्तः, लक्ष्मी को अतिक्रमण करने वाला) पुंलिंग के रूप द्वि० बहु० को छोड़कर अन्यत्र नदी के तुल्य चलेंगे। द्वि० बहु० में बहुश्रेयसीन् और अतिलक्ष्मीन् रूप होंगे। अतिलक्ष्मी शब्द स्त्रीलिंग के रूप लक्ष्मी के तुल्य चलेंगे।

क्विप् प्रत्ययान्त वातप्रमी शब्द के रूप प्रधी के तुल्य चलेंगे।

७७. ईकारान्त और ऊकारान्त पु०, स्त्री०, नपुं० धातुनिर्मित शब्द।

सन्धि-नियम—(क) धातु से क्विप् (०) प्रत्यय लगाकर बने हुए इका-

रान्त और ईकारान्त शब्दों को अजादि (स्वरों से प्रारम्भ होने वाले) प्रत्यय बाद में होने पर इ या ई को इय् हो जाता है और उकारान्त या ऊकारान्त शब्दों के उ या ऊ को उव् हो जाता है। भ्रू के ऊ को भी पूर्वोक्त स्थानों पर उव् हो जाता है।[1] पूर्वोक्त प्रकार के स्त्रीलिंग इकारान्त और ईकारान्त शब्दों के रूप च०, प०, प०, स० के एक० और प० बहु० में नदी के तुल्य भी चलते हैं।

(ख) निम्नलिखित अवस्थाओं में इय् उव् न होकर य् और व् होंगे—१ धातु अनेकाच् (अनेक स्वरों वाली) हो और उसके प्रारम्भ में संयुक्त अक्षर वाली धातु न हो।[2] २ यदि धातु शब्द से पूर्व गतिसंज्ञक (अर्थात् धातु से पूर्व आने वाले उपसर्ग आदि) या कारक होगा तो य् व् होंगे।[3] भू और सुधी शब्द में यह नियम नहीं लगेगा अर्थात् इनको इय् और उव् ही होगा।[4]

धी—स्त्रीलिंग

प्र०	धी	धियौ	धियः
सं०	धीः	धियौ	धियः
द्वि०	धियम्	धियौ	धियः
तृ०	धिया	धीभ्याम्	धीभिः
च०	धियै धिये	धीभ्याम्	धीभ्यः
पं०	धियाः धियः	धीभ्याम्	धीभ्यः
ष०	धियाः, धियः	धियोः	धियाम् धीनाम्
स०	धियाम् धियि	धियोः	धीषु

इसी प्रकार ही श्री भी सुधी शुद्धधी दुर्धी भी बल्कि कभी आदि के रूप चलेंगे।

भू—स्त्रीलिंग

प्र०	भूः	भुवौ	भुवः
सं०	भूः	भुवौ	भुवः

१ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ। (अष्टा० ६ ४ ७७)
२ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य। (अष्टा० ६ ४ ८२), ओः सुपि (अष्टा० ६ ४ ८३)
३ गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण नेष्यते। (वार्तिक, एरनेकाचो० सूत्र पर)
४ न भूसुधियोः। (अष्टा० ६.४ ८५)

द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुव
तृ०	भुवा	भूभ्याम्	भूभि
च०	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्य
प०	भुवा, भुव	भूभ्याम्	भूभ्य
ष०	भुवा, भुव	भुवा	भुवाम् भूनाम्
स०	भुवाम्, भुवि	भुवा	भूषु

इसी प्रकार सू, जू, सुभू, म्रू, सुभ्रू आदि के रूप चलेंगे।

प्रधी—पुंलिग (प्रकृष्ट ध्यायति)

प्र०	प्रधी	प्रध्यौ	प्रध्य
स०	प्रधी	प्रध्यौ	प्रध्य
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्य
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभि
च०	प्रध्ये	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्य
प०	प्रध्य	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्य
ष०	प्रध्य	प्रध्या	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	प्रध्या	प्रधीषु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—वेगा (वेगम् इच्छति), जल्पा, उन्नी, ग्रामणी, सनानी आदि पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द। जिन शब्दों के अन्त में नी धातु लगी हुई है, उनका सप्तमी एक० में आम् लगाकर रूप बनेगा।[1] जैसे—उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् आदि।

खलपू—पुंलिग (खल पुनाति)

प्र०	खलपू	खल्प्वौ	खल्प्व
स०	खल्पु	खल्प्वौ	खल्प्व
द्वि०	खल्प्वम्	खल्प्वौ	खल्प्व
तृ०	खल्प्वा	खल्पूभ्याम्	खल्पूभि
च०	खल्प्वे	खल्पूभ्याम्	खल्पूभ्य

1 ङेराम्नद्याम्नीभ्य (अष्टा० ७-३-११६)। ईकारान्त, ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों, आकारान्त (टाप् प्रत्यय वाले) शब्दों और नी शब्द के बाद के ङि (स० एक०) को आम् हो जाता है।

प०	खलप्व	खलपूभ्याम्	खलपूभ्य.
ष०	खलप्व	खलप्वो	खलप्वाम्
स०	खलप्वि	खलप्वो	खलपूषु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सुलू (सुष्ठु लुनाति), दृम्भू (इन्द्र का वज्र या यम), करभू, पुनर्भू, वर्षाभू आदि पुंलिग और स्त्रीलिंग शब्द।

प्रधि—नपु० (वारिवत्)

प्र०	प्रधि	प्रधिनी	प्रधीनि
स०	प्रधि, प्रधे	प्रधिनी	प्रधीनि
द्वि०	प्रधि	प्रधिनी	प्रधीनि
तृ०	प्रध्या, प्रधिना	प्रधिभ्याम्	प्रधिभि

प्रधि के रूप वारि के तुल्य चलेंगे। अजादि विभक्तियों में पुंलिग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

खलपु[1]—नपु० (मधुवत)

प्र०	खलपु	खलपुनी	खलपूनि
स०	खलपु, खलपो	खलपुनी	खलपूनि
द्वि०	खलपु	खलपुनी	खलपूनि
तृ०	खलपुना, खलप्वा	खलपुभ्याम्	खलपुभि

खलपु के रूप मधु के तुल्य चलेंगे। अजादि विभक्तियों में पुंलिग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

प्रधी—पु० और स्त्रीलिंग

(प्रकृष्टा धी स्त्रीलिंग प्रकृष्टा धी यस्या यस्य वा, स्त्री०, पु०) इसके रूप स०, च०, प० प० और स० के एक० में तथा षष्ठी बहु० में नदी के तुल्य चलेंगे। शेष स्थानों पर प्रधी पु० के तुल्य। जैसे—

प्र०	प्रधी	प्रध्यौ	प्रध्य
स०	प्रधि	प्रध्यौ	प्रध्य
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्य

१ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य (अष्टा० १-२-४७)। नपुंसकलिंग में प्रातिपदिक (शब्द) के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर हो जाता है।

तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभि
च०	प्रध्यै	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्य
प०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभ्य
ष०	प्रध्या	प्रध्यो	प्रधीनाम्
स०	प्रध्याम्	प्रध्यो	प्रधीषु

इसी प्रकार कुमारी (कुमारीम् इच्छतीति, कुमारीव आचरतीति वा) के रूप चलेंगे। इसका प्र० एक० में कुमारी रूप होगा, शेष प्रधीवत्।

सुधी—(सुष्ठु ध्यायति) पुंलिंग
(कैयट के अनुसार स्त्रीलिंग में भी)

प्र०	सुधी	सुधियौ	सुधिय
स०	सुधी	सुधियौ	सुधिय
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधिय
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभि
च०	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्य
प०	सुधिय	सुधीभ्याम्	सुधीभ्य
ष०	सुधिय	सुधियो	सुधियाम्
स०	सुधियि	सुधियो	सुधीषु

इसी प्रकार सुश्री, शुद्धधी, परमधी, नी आदि के पु० और स्त्रीलिंग में रूप चलेंगे। नी का स० एक० में नियाम् रूप होगा।

स्वभू—पुंलिंग (स्वेन भवति, स्वय सत्ता वाला)

प्र०	स्वभू	स्वभुवौ	स्वभुव
स०	स्वभूः	स्वभुवौ	स्वभुव
द्वि०	स्वभुवम्	स्वभुवौ	स्वभुव
तृ०	स्वभुवा	स्वभूभ्याम्	स्वभूभि
च०	स्वभुवे	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्य
प०	स्वभुव	स्वभूभ्याम्	स्वभूभ्य
ष०	स्वभुव	स्वभुवो	स्वभुवाम्
स०	स्वभुवि	स्वभुवो	स्वभूषु

इसी प्रकार स्वयमू, परमलू (परमश्चासौ लूरच), दृग्भू, वाराभू आदि पु० और स्त्री० शब्दों के रूप चलेंगे।

सुधि—नपुं०, वारिवत्

प्र०	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
स०	सुधे, सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वि०	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृ०	सुधिना, सुधिया	सुधिभ्याम्	सुधिभिः

अजादि प्रत्यया से पूर्व पुलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे। षष्ठी और स० द्वि० में सुधियो, सुधिनो।

स्वभु—नपु०, मधुवत्

प्र०	स्वभु	स्वभुनी	स्वभूनि
स०	स्वभो, स्वभु	स्वभुनी	स्वभूनि
द्वि०	स्वभु	स्वभुनी	स्वभूनि
तृ०	स्वभुवा, स्वभुना	स्वभुभ्याम्	स्वभुभिः

अजादि प्रत्यय बाद में होंगे तो पुलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे।

वर्षाभू—स्त्रीलिंग

प्र०	वर्षाभू	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्व
स०	वर्षाभु	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्व
द्वि०	वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभूः
तृ०	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
च०	वर्षाभ्वै	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्य
प०	वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्य.
ष०	वर्षाभ्वा	वर्षाभ्वो	वर्षाभूणाम्
स०	वर्षाभ्याम्	वर्षाभ्वो	वर्षाभूषु

इसी प्रकार प्रभू, वीरसू, पुनर्भू (पुनर्विवाहिता विधवा) आदि के रूप चलेंगे।

७८. सूचना—सखी (सखायम् इच्छतीति), सखी (सह खेन वर्तते इति सख, तमिच्छतीति), सुती (सुतम् इच्छतीति), सुखी (सुखम् इच्छतीति),

लूनी (लूनम् इच्छतीति), क्षामी (क्षामम् इच्छतीति), प्रस्तीमी (प्रस्तीमम् इच्छतीति), इत्यादि।

सखी—(सखायम् इच्छतीति)

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
स०	सखीः	सखायौ	सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्यः
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभिः
च०	सख्ये	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
पं०	सख्युः	सखीभ्याम्	सखीभ्यः
ष०	सख्युः	सख्यो.	सख्याम्
स०	सख्यि	सख्योः	सखीषु

सखी (सखम् इच्छतीति)

प्र०	सखी	सख्यौ	सख्यः
स०	सखीः	सख्यौ	सख्यः
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्यः

शेष रूप पूर्वोक्त सखी के तुल्य। इसी प्रकार सुखी, सुती, लूनी, क्षामी, प्रस्तीमी आदि के रूप चलेंगे।

शुष्की, पक्वी आदि के रूप सुधी के तुल्य चलेंगे।

७६. स्त्री (स्त्री)—स्त्रीलिंग[1]

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
स०	स्त्रि	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु

१. स्त्रियाः (अष्टा० ६-४-७९)। वाम्शसोः (अष्टा० ६-४-८०)

सूचना—अतिस्त्रि—पु०, स्त्री०, नपु० है। 44132

अतिस्त्रि—पुंलिंग

प्र०	अतिस्त्रिः	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः
सं०	अतिस्त्रे	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः
द्वि०	अतिस्त्रियम्, अतिस्त्रिम्	अतिस्त्रियौ	अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीन्
तृ०	अतिस्त्रिणा	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
च०	अतिस्त्रये	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
पं०	अतिस्त्रेः	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
ष०	"	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रीणाम्
स०	अतिस्त्रौ	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रिषु

अतिस्त्रि—स्त्रीलिंग

अतिस्त्रि के रूप निम्नलिखित स्थानों को छोड़कर पुंलिंग के तुल्य चलेंगे। द्वि० बहु० अतिस्त्रियः, अतिस्त्रीः, तृ० एक० अतिस्त्रिया, च० एक० अतिस्त्रियै-अतिस्त्रये, प० एक० अतिस्त्रियाः-अतिस्त्रेः, ष० एक० अतिस्त्रियाः-अतिस्त्रेः, स० एक० अतिस्त्रियाम्-अतिस्त्रौ।

अतिस्त्रि—नपुंसक०

इसके रूप शुचि के तुल्य चलेंगे, केवल षष्ठी और सप्तमी के द्वि० में अतिस्त्रियोः—अतिस्त्रिणोः रूप होंगे।

८०. ऊकारान्त पुंलिंग शब्द, जो कि धातुज नहीं हैं। जैसे—

हूहू—(एक गन्धर्व का नाम)

प्र०	हूहूः	हूह्वौ	हूह्वः
सं०	हूहू	हूह्वौ	हूह्वः
द्वि०	हूहूम्	हूह्वौ	हूहून्
तृ०	हूह्वा	हूहूभ्याम्	हूहूभिः
च०	हूह्वे	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
पं०	हूह्वः	हूहूभ्याम्	हूहूभ्यः
ष०	हूह्वः	हूह्वोः	हूह्वाम्
स०	हूह्वि	हूह्वोः	हूहूषु

इसी प्रकार दृम्भू (दृम्भति इति, ग्रन्थ आदि बाँधने वाला) के रूप चलेंगे।

ऋकारान्त पु०, स्त्री० और नपु० शब्द

८ धातु से तृ (तृच्, अष्टा० ३-१-१३३ और तृन्, अष्टा० ३-२-१३५) प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द जैसे—कर्तृ (करने वाला) आदि तथा स्वसृ (स्त्रीलिंग), नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ और उद्गातृ शब्दों को प्रथमा एक० में ऋ के स्थान पर आ हो जाता है और प्रथम पाँच विभक्तियों में ऋ को आर् हो जाता है।[1] द्वि० और षष्ठी बहु० में ऋ को दीर्घ ॠ हो जाता है। प० और ष० एक० मे ऋ को उर् हो जाता है। संबोधन एक० में ऋ का अर् (अ.) हो जाता है।

धातृ (प्रजापति)—पुंलिंग

प्र०	धाता	धातारौ	धातारः
सं०	धात.	धातारौ	धातारः
द्वि०	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृ०	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पं०	धातु.	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
ष०	धातु:	धात्रो.	धातॄणाम्
स०	धातरि	धात्रो	धातृषु

इसी प्रकार कर्तृ, नेतृ, नप्तृ, प्रशास्तृ, उद्गातृ आदि के रूप चलेंगे।

धातृ—नपुंसक०

प्र०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
सं०	धात, धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वि०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृ०	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभि
च०	धात्रे, धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्य
प०	धातु, धातृण	धातृभ्याम्	धातृभ्यः

१ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्। (अष्टा० ६-४ ११)। उद्गातृशब्दस्य भवत्येव समर्थसूत्रे 'उद्गातार' इति भाष्यप्रयोगात्। (सिद्धान्तकौमुदी)

ष०	धातु:, धातृण	धात्रो, धातृणोः	धातृणाम्
स०	धातरि	धात्रो:, धातृणो	धातृषु

इसी प्रकार वर्तृ, नेतृ, ज्ञातृ आदि के रूप चलेंगे। केवल द्वि० बहु० में स्वसृ आदि स्त्रीलिंग शब्दो के रूप धातृ के तुल्य चलेंगे। केवल द्वि० बहु० में स्वसृ आदि रूप बनेंगे। आगे देखिए।

८२ सम्बन्ध-बोधक शब्द पितृ (पु०, पिता), मातृ (स्त्री०, माता), देवृ (पु०, देवर) आदि शब्दो को प्रथमा द्विवचन, बहु० और द्वितीया एक० द्विवचन में ऋ के स्थान पर आर् न होकर अर् होता है। निम्नलिखित शब्दो में प्रथम पांच विभक्तियो मे आर् ही होता है—नप्तृ (नाती), भर्तृ (पति), स्वसृ (बहिन), प्रशास्तृ (प्रशासक) (उणादि०२-९७), नृ (मनुष्य) (उणादि० २-९८), सव्येष्टृ (सारथि)।

जैसे—

प्र०	पिता	पितरौ	पितर
स०	पित	पितरौ	पितर
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितृन्
	शेष	धातृवत्।	

इसी प्रकार भ्रातृ, जामातृ, देवृ, शस्तृ, सव्येष्टृ और नृ के रूप चलेंगे। नृ के षष्ठी बहु० में दो रूप होते हैं—नृणाम् नॄणाम्।[1]

प्र०	माता	मातरौ	मातर:
स०	मात	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	मातरौ	मातृ:
	शेष स्वसृवत्।		

इसी प्रकार यातृ (देवरानी), दुहितृ (पुत्री), और ननान्दृ या ननन्दृ (ननद, पति की बहन) के रूप चलेंगे।[2]

---

१ नृ च (अष्टा० ६-४-६)। नृ इत्येतस्य नामि वा दीर्घः स्यात्। (सि० कौ०)

२ नञि च नन्दे: (उणादि० २-९७)। न नन्दति ननान्दा। इह वृद्धि- र्नानुवर्तते इत्येके। 'ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णव। (सि० कौ०)

ऋकारान्त पु०, स्त्री० और नपु० शब्द

८. धातु से तृ (तृच्, अष्टा० ३-१-१३३ और तृन्, अष्टा० ३-२-१३५) प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द जैसे—कर्तृ (करने वाला) आदि तथा स्वसृ (स्त्रीलिंग), नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ और उद्गातृ शब्दों को प्रथमा एक० में ऋ के स्थान पर आ हो जाता है और प्रथम पांच विभक्तियों में ऋ को आर् हो जाता है।[1] द्वि० और षष्ठी बहु० में ऋ को दीर्घ ॠ हो जाता है। प० और ष० एक० मे ऋ को उर् हो जाता है। सबोधन एक० में ऋ का अर् (अ.) हो जाता है।

धातृ (प्रजापति)—पुंलिंग

प्र०	धाता	धातारौ	धातारः
स०	धातः	धातारौ	धातारः
द्वि०	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृ०	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
च०	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
प०	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
ष०	धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
स०	धातरि	धात्रोः	धातृषु

इसी प्रकार कर्तृ, नेतृ, नप्तृ, प्रशास्तृ, उद्गातृ आदि के रूप चलेंगे।

धातृ—नपुंसक०

प्र०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
स०	धात, धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वि०	धातृ	धातृणी	धातॄणि
तृ०	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभि.
च०	धात्रे, धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्य
प०	धातु, धातृण	धातृभ्याम्	धातृभ्यः

१. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्। (अष्टा० ६-४-११)। उद्गातृशब्दस्य अयत्येव समर्थसूत्रे 'उद्गातार.' इति भाष्यप्रयोगात्। (सिद्धान्तकौमुदी)

प०	धातुः, धातुणः	धात्रोः, धातृणोः	धातृणाम्
स०	धातरि	धात्रोः, धातृणोः	धातृषु

इसी प्रकार कर्तृ, नेतृ, ज्ञातृ आदि के रूप चलेंगे। स्वसृ आदि स्त्रीलिंग शब्दों के रूप धातृ के तुल्य चलेंगे। केवल द्वि० बहु० में स्वसृ आदि रूप बनेंगे। आगे देखिए।

८२. सम्बन्ध-बोधक शब्द पितृ (पु०, पिता), मातृ (स्त्री०, माता), देवृ (पु०, देवर) आदि शब्दों को प्रथमा द्विवचन, बहु० और द्वितीया एक० द्विवचन में ऋ के स्थान पर आर् न होकर अर् होता है। निम्नलिखित शब्दों में प्रथम पाँच विभक्तियों में आर् ही होता है—नप्तृ (नाती), भर्तृ (पति), स्वसृ (बहिन), प्रशास्तृ (प्रशासक) (उणादि० २-९२), नृ (मनुष्य) (उणादि० २-९८), सव्येष्टृ (सारथि)।

जैसे—

प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
सं०	पितः	पितरौ	पितरः
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
	शेष	धातृवत्।	

इसी प्रकार भ्रातृ, जामातृ, देवृ, शास्तृ, सव्येष्टृ और नृ के रूप चलेंगे। नृ के षष्ठी बहु० में दो रूप होते हैं—नृणाम्, नॄणाम्।[1]

प्र०	माता	मातरौ	मातरः
सं०	मातः	मातरौ	मातरः
द्वि०	मातरम्	मातरौ	मातॄः
	शेष स्वसृवत्।		

इसी प्रकार यातृ (देवरानी), दुहितृ (पुत्री), और ननान्दृ या ननन्दृ (ननद, पति की बहन) के रूप चलेंगे।[2]

---

१. नृ च (अष्टा० ६-४-६)। नृ इत्येतस्य नामि वा दीर्घः स्यात्। (सि० कौ०)

२. नप्ति च नन्दे. (उणादि० २-९७)। न नन्दति ननान्दा। इह वृद्धि र्नानुवर्तते इत्येके। 'ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा' इति शब्दार्णव.। (सि० कौ०)

८३. क्रोष्टु (गीदड) शब्द के रूप ऋकारान्त क्रोष्टृ शब्द के तुल्य चलते हैं। प्रथम पांच विभक्तियों में ऋकारान्त के ही रूप चलते हैं। तृ० एक० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में विकल्प से ऋकारान्त के तुल्य रूप चलेंगे। षष्ठी बहु० में क्रोष्टु शब्द ही रहेगा।[1] जैसे—

प्र०	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
स०	क्रोष्टो	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वि०	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृ०	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
च०	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
प०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
ष०	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टूनाम्
स०	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु

(क) क्रोष्टु शब्द को स्त्रीलिंग में भी क्रोष्टृ हो जाता है (स्त्रियां च, अष्टा० ७-१-९६)। उससे स्त्रीलिंगबोधक ङीप् (ई) प्रत्यय होने पर क्रोष्ट्री शब्द हो जाता है। इसके रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

सूचना—प्रियक्रोष्टु नपु० के रूप मधु के तुल्य चलेंगे। तृतीया से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में क्रोष्टु पुंलिंग के तुल्य भी रूप चलेंगे। जैसे—च० एक० में प्रियक्रोष्ट्रे, प्रियक्रोष्टवे, प्रियक्रोष्टुने।

ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्द

८४ वस्तुतः ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्द नहीं हैं। अतएव कॄ, तॄ, गम्लृ और शक्लृ धातुओं के अनुकरणमूलक शब्द मानकर ॠकारान्त और ऌकारान्त शब्दों के रूप दिखाये गये हैं कि इनके रूप इस प्रकार चलेंगे।

कॄ—पुंलिंग

प्र०	कीः, कॄ	किरौ, क्रौ	किरः, क्रः
स०	कीः, कॄ	किरौ, क्रौ	किरः, क्रः

---

[1]. तृज्वत्क्रोष्टुः (अष्टा० ७-१-९५)। विभाषा तृतीयादिष्वचि (अष्टा० ७-१-९७)

द्वि०	किरम् कृम्	किरौ, क्रौ	किर, कृन्
तृ०	किरा, क्रा	कीर्भ्याम्, कृभ्याम्	कीर्भि, कृभि
च०	किरे, क्रे	कीर्भ्याम्, कृभ्याम्	कीर्भ्य, कृभ्यः
प०	किर क्र	कीर्भ्याम्, कृभ्याम्	कीर्भ्य कृभ्य
प०	किर, क्र	किरो, क्रो	किराम् क्राम्
स०	किरि, क्रि	किरो, क्रो	कीर्पु, कृपु

इसी प्रकार तृ के रूप चलेंगे।

गम्लृ—पुंलिंग

प्र०	गमा	गमलौ	गमल
स०	गमल्	गमलौ	गमल
द्वि०	गमलम्	गमलौ	गमृन
तृ०	गम्ला	गम्लृभ्याम्	गम्लृभि
च०	गम्ले	गम्लृभ्याम्	गम्लृभ्य
प०	गमुल्	गम्लृभ्याम्	गम्लृभ्य
प०	गमुल्	गम्लो	गमृणाम्
स०	गमलि	गम्लो	गम्लृपु

इसी प्रकार शवलृ के रूप चलेंगे।

एकारान्त और ऐकारान्त शब्द

८५ एकारान्त और ऐकारान्त शब्दों में विभक्तियाँ जोड दी जाती हैं और [सन्]धि-नियम लगते है।

से (सह इना कामेन वर्ततेऽसौ)

प्र०	से	सयौ	सय
स०	से[1]	सयौ	सय

---

१ सिद्धातकौमुदी में इस रूप का स्पष्टतया उल्लेख नहीं है। जिस प्रकार रै, गो, स्मृतौ आदि शब्दों के प्रथमा के रूप देकर शेष छोड दिया है, उसी प्रकार से शब्द के भी प्रथमा के ही रूप दिये गये हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सम्बोधन के रूप भी प्रथमा के तुल्य ही होंगे। किन्तु यहां पर एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धे (अष्टा० ६-१-६९) (एङन्ताद् ह्रस्वान्ताच्च अङ्गाद् हल् लुप्यते सम्बुद्धे चेत्, सिद्धातकौमुदी) सूत्र लगने से स का लोप होकर 'से' रूप ही बनेगा।

द्वि०	सयम्	सयौ	सयः
तृ०	सया	सेभ्याम्	सेभिः
च०	सये	सेभ्याम्	सेभ्य.
प०	सेः	सेभ्याम्	सेभ्यः
ष०	सेः	सयोः	सयाम्
स०	सयि	सयोः	सेषु

इसी प्रकार स्मृते (स्मृत इः येन, जिसने कामदेव का स्मरण किया है) के रूप चलेंगे।

रै (धन)—पु०, स्त्री०

प्र०	राः	रायौ	रायः
स०	राः	रायौ	रायः
द्वि०	रायम्	रायौ	रायः
तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
प०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायोः	रायाम्
स०	रायि	रायोः	रासु

नपुंसक लिंग में प्ररै को प्ररि हो जाता है। (प्रकृष्टा रैः यस्य तत्)। रै को एच इग्घ्रस्वादेशे (अष्टा० १-१-४८) तथा ह्रस्वो नपुंसके० (अष्टा० १-२-४७) से रि हो जाता है। प्ररि के रूप हलादि (व्यंजन से आरम्भ होने वाले) विभक्तियों में रै पु०, स्त्री० के तुल्य चलेंगे और शेष स्थानों पर वारि के तुल्य।

प्र०	प्ररि	प्ररिणी	प्ररीणि
द्वि०	प्ररि	प्ररिणी	प्ररीणि
तृ०, इत्यादि	प्ररिणा	प्रराभ्याम्	प्रराभिः

ओकारान्त और औकारान्त शब्द

८६. ओकारान्त शब्दों के ओ के स्थान पर प्रथम पाँच विभक्तियों में (द्वितीया एक० को छोडकर) औ हो जाता है। द्वितीया एक० और द्वितीया बहु० में ओ को आ हो जाता है।[1] औकारान्त शब्दों के रूप सामान्यतया चलेंगे।

---

१. गोतो णित् (अष्टा० ७ १ ९०)। औतोऽम्शसोः (अष्टा० ६-१-९३)

गो (बैल, गाय)—पुलिंग और स्त्रीलिंग

प्र०	गौं	गावौ	गाव
स०	गौ	गावौ	गाव
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
ष०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोपु

इसी प्रकार स्मृतो (स्मृत उ शकर येन) और द्यो (आकाश स्त्रीलिंग) के रूप चलेंगे। नपुसकलिंग प्रद्यो (प्रकृष्टा द्यौ यस्मिन् तत्) का प्रद्यु हो जाता है और इसके रूप मधु के तुल्य चलेंगे।

ग्लौ (चन्द्रमा)—पुलिंग

प्र०	ग्लौ.	ग्लावौ	ग्लाव
स०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
ष०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौपु

इसी प्रकार नौ (स्त्रीलिंग, नाव, जहाज) के रूप चलेंगे। नपुसकलिंग सुनौ (सुष्ठु नौ यस्मिन्) का सुनु हो जाता है और इसके रूप मधु के तुल्य चलेंगे।

भाग २

हलन्त (व्यजनान्त) शब्द

८७ हलन्त शब्दो में इस प्रकार के शब्द आते है—अन्त में वर्ग के प्रथम चार वर्णो में से कोई एक वर्ण वाला, ण्, र् ल् श्, ष् स् और ह् अन्त वाले

शब्द । हलन्त शब्दो में प्रायः विभक्तियाँ जोड दी जाती हैं और सन्धि-नियमों का प्रयोग किया जाता है ।

८८. र्, ल् और ण् अन्त वाले शब्द ।

८९ (क) ल् के बाद सप्तमी बहु० के सु को षु हो जाता है ।

(ख) ल् और सु के बीच में विकल्प से ट् भी जुड जाता है । इस ट् को ठ् भी विकल्प से होता है ।

कमल्—पु०, स्त्री०, नपु०

(कमल कमला वा आचक्षाणाः, आचक्षाणा, आचक्षाण वा, कमल या लक्ष्मी का कथन करना)

कमल्—पु० और स्त्री०

प्र०	कमल्[१]	कमलौ	कमल:
स०	कमल्	कमलौ	कमल:
द्वि०	कमलम्	कमलौ	कमल:
तृ०	कमला	कमल्भ्याम्	कमल्भि:
च०	कमले	कमल्भ्याम्	कमल्भ्य:
प०	कमल:	कमल्भ्याम्	कमल्भ्य:
ष०	कमल:	कमलो:	कमलाम्
स०	कमलि	कमलो:	कमल्षु

इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेंगे—सुगण्, सुगाण् (पु० और स्त्री०, गिनने में चतुर व्यक्ति), द्वार् (स्त्री०, द्वार) और र् या ल् अन्त वाले अन्य शब्द । सुगण् के सप्तमी बहु० में रूप होते हैं—सुगण्सु, सुगण्ट्सु, सुगण्ठ्सु । द्वार् का प्र० एक० में द्वा: रूप होता है ।

कमल्—नपु०

प्र०, स०, द्वि०	कमल्	कमली	कमलि

शेष पुंलिंग के तुल्य ।

इसी प्रकार सुगण्, वार् तथा अन्य ण्, र् या ल् अन्त वाले शब्दों के रूप चलेंगे । जैसे—

प्र०, द्वि०	वा:	वारी	वारि

१. देखो नियम ९१ क ।

पा ड् हो जाते है और कोमल व्यंजन बाद में हो तो इस ष् को ड् होता है।
रेवाज् के ज् को भी ट्, ड् होते हैं।

(ग) किन्तु इन धातुज शब्दों के श् को क् हो जाता है—दिश्, दृश्,
स्पृश् और मृश्। दधृष् (साहसी पुरुष) के ष् को और क्ष् अन्त वाले विपक्ष्
आदि शब्दों के क्ष् को क् हो जाता है। नश् धातु के श् को ट् और क् दोनों होते
हैं। तक्ष् और गोरक्ष् के क्ष् को भी ट् और क् होने है। ऋत्विज् के ज् को क्
हो जाता है।

(घ) सप्तमी बहु० में ट् और सु के बीच में विकल्प से त् भी होता है।

(ङ) अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर अन्तिम छ् को विकल्प से श्
हो जाता है।

६५. (क) शब्द के अन्तिम ह् को ढ् हो जाता है, पदान्त में या बाद
में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, श, ष, स, ह) हो तो।[1] (ख) दकारादि धातुओं
के ह् को घ् हो जाता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[2] (ग) द्रुह्, मुह्, स्नुह् और
स्निह् के ह् को ढ् और घ् दोनों होते है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[3] (घ) नह् के
ह् को ध् होता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[4]

(ङ) उष्णिह् (स्त्री०, एक छन्द) के ह् को क् हो जाता है, खर्
(कठोर व्यंजन) बाद में हो तो और हश् (कोमल व्यंजन) बाद में हो तो ग्
हो जाता है। (ऋत्विग्दधृक्० ३-२-५९)

६६. एक स्वर वाली झषन्त (अन्त में वर्ग के चतुर्थ अक्षर वाली) और
बश् (ज् को छोडकर वर्ग के तृतीय अक्षर) आदि वाली धातु (या धातुज शब्द)
के ब् को भ् ग् को घ् और द् को ध् हो जाता है पद के अन्त (अर्थात् सु,
भ्याम्, भि, भ्य) में, अथवा बाद में स् या ध्व हो तो।[5]

६७. उदाहरण—वाच् (स्त्री० वाणी), राज् (चमकना), मुह् (बेहोश
होना) आदि।

१. हो ढ (८-२-३१)
२. दादेर्धातोर्घ (८-२-३२)
३ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (८-२-३३)
४ नहो ध (८-२-३४)
५ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वो (८-२-३७)

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सर्वशक्, चित्रलिख्, भूभृत्, मरुत्
सरित्, हरित्, विश्वजित्, अग्निमथ्, तमोनुद्, दृषद्, शरद्, वेभिद्, चेच्छिद्
युयुध्, क्षुध्, गुप्, ककुभ् आदि। जैसे—

	प्र० एक०	प्र० द्वि०	तृ० द्वि०	स० बहु०
सर्वशक्	सर्वशक्-ग्	सर्वशकौ	सर्वशग्भ्याम्	सर्वशक्षु
चित्रलिख्	चित्रलिक्-ग्	चित्रलिखौ	चित्रलिग्भ्याम्	चित्रलिक्षु
भूभृत्	भूभृत्-द्	भूभृतौ	भूभृद्भ्याम्	भूभृत्सु
अग्निमथ्	अग्निमत्-द्	अग्निमथौ	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमत्सु
तमोनुद्	तमोनुत्-द्	तमोनुदौ	तमोनुद्भ्याम्	तमोनुत्सु
गुप्	गुप्-ब्	गुपौ	गुब्भ्याम्	गुप्सु

नपुंसकलिंग

प्र०, सं०, द्वितीया	सर्वशक्	सर्वशकी	सर्वशङ्कि
प्र०, सं०, द्वितीया	हरित्	हरिती	हरिन्ति
प्र०, सं०, द्वितीया	युयुत्	युयुधी	युयुन्धि
प्र०, सं०, द्वितीया	अग्निमत्	अग्निमथी	अग्निमन्थि
प्र०, सं०, द्वितीया	तमोनुद्	तमोनुदी	तमोनुन्दि
प्र०, सं०, द्वितीया	वेभिद्	वेभिदी	वेभिदि

इसी प्रकार चेच्छिदि प्र०, सं०, द्वि० के बहु० में बनेगा। शेष रूप पुंलिंग के तुल्य चलेंगे।

६३. शब्द जिनके अन्त में ये वर्ण हैं—च्, छ्, ज्, झ्, श्, ष्, ह्।

६४. (क) च् और ज् को क् हो जाता है, यदि बाद में कुछ न हो या कठोर व्यंजन हो। यदि कोमल व्यंजन बाद में होगा तो च् और ज् को ग् होगा।[1]

(ख) व्रश्च्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज् और छ् या श् अन्त वाले धातुज शब्दों के अन्तिम अक्षर के स्थान पर ष् हो जाता है, पदान्त में और बाद में झल् (वर्ग के १ से ४, श, ष, स, ह) हो तो।[2] पद के अन्त में इस ष्

१. चोः कुः (अष्टा० ८-२-३०)
२. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः (अष्टा० ८-२-३६)

या ड् हो जाते है और कोमल व्यजन बाद में हो तो इस ष् को ड् होता है। परिव्राज् के ज् को भी ट्, ड् होते है।

(ग) किन्तु इन धातुज शब्दो के श् को क् हो जाता है—दिग्, दृश्, स्पृश् और मृश्। दधृष् (साहसी पुरुष) के ष् को और क्ष् अन्त वाले विपक्ष् आदि शब्दो के क्ष् को क् हो जाता है। नश् धातु के श् को ट् और क् दोनो होते हैं। तक्ष् और गोरक्ष् के क्ष् को भी ट् और क् होते है। ऋत्विज् के ज् को क् हो जाता है।

(घ) सप्तमी बहु० में ट् और सु के बीच में विकल्प से त् भी होता है।

(ङ) अजादि विभक्तियां बाद में होने पर अन्तिम छ् को विकल्प से श् हो जाता है।

६५. (क) शब्द के अन्तिम ह् को ढ् हो जाता है, पदान्त में या बाद में झल् (वर्ग के १, २, ३, ४, श, ष, स, ह) हो तो।[1] (ख) दकारादि धातुओ के ह् को घ् हो जाता है, पूर्वोक्त स्थितियो मे।[2] (ग) द्रुह्, मुह्, स्नुह् और स्निह् के ह् को ढ् और घ् दोनो होते हैं, पूर्वोक्त स्थितियो में।[3] (घ) नह् के ह् को ध् होता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।[4]

(ङ) उष्णिह् (स्त्री०, एक छन्द) के ह् को क् हो जाता है, खर् (कठोर व्यजन) बाद में हो तो और हश् (कोमल व्यजन) बाद में हो तो ग् हो जाता है। (ऋत्विग्दधृक्० ३-२-५९)

६६. एक स्वर वाली झषन्त (अन्त में वर्ग के चतुर्थ अक्षर वाली) और बश् (ज् को छोडकर वर्ग के तृतीय अक्षर) आदि वाली धातु (या धातुज शब्द) के ब् को भ्, ग् को घ् और द् को ध् हो जाता है, पद के अन्त (अर्थात् सु, भ्याम्, भि., भ्य.) में, अथवा बाद में स् या ध्व हो तो।[5]

६७. उदाहरण—वाच् (स्त्री०, वाणी), राज् (चमकना), मुह् (बेहोश होना) आदि।

---

१. हो ढ. (८-२-३१)
२. दादेर्धातोर्घः (८-२-३२)
३. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् (८-२-३३)
४. नहो ध (८-२-३४)
५. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वो' (८-२-३७)

वाच्

प्र०, स०	वाक्	वाचौ	वाच.
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाच:
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भि:
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य:
प०	वाच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य:
ष०	वाच:	वाचो.	वचाम्
स०	वाचि	वाचो.	वाक्षु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—पयोमुच्, ऋत्विज्, भिषज्, रुज् स्रज्, युयुज्, विभ्राज्[1], दिश्, दृश् तथा दृश् अन्त वाले अन्य शब्द, स्पृश्, दधृष् उष्णिह्, विपक्ष्, विचक्ष्, दिवक्ष्, विविक्ष् तथा च् और ज् अन्त वाले शब्द।

राज्

प्र०, स०	राट्, राड्	राजौ	राज:
द्वि०	राजम्	राजौ	राज:
तृ०	राजा	राड्भ्याम्	राड्भि:
च०	राजे	राड्भ्याम्	राड्भ्य:
प०	राज:	राड्भ्याम्	राड्भ्य:
ष०	राज:	राजो:	राजाम्
स०	राजि	राजो.	राट्सु, राट्त्सु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—सुवृश्च्, सर्वप्राश्, भृज्ज्, विश्वसृज्, सम्राज्, परिव्राज्, परिमृज्, देवेज्, विभ्राज्, (सूर्य), विप्, प्राश्, त्विष्, द्विष्, मुष्, प्रावृष्, लिह्, प्रच्छ् तथा छ्, श्, ष्, और ह् अन्त वाले धातुज शब्द।

उदाहरण—

	प्र० एक०	प्र० द्वि०	तृ० द्वि०	स० बहु०
पयोमुच्	पयोमुक्[2]	पयोमुचौ	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुक्षु

१. एज् आदि के साथ पठित भ्राज् धातु को क्, ग् होते हैं। यह भ्राज् शब्द भ्राज् धातु से बना है और एज् आदि के साथ पठित है। यस्तु एजृभ्रेजृभ्राजृ दीप्ताविति तस्य कुत्वमेव (सिद्धान्तकौमुदी)। दूसरा विभ्राज् शब्द टुभ्राजृ दीप्तौ धातु जो फणादि गण में है, उससे बना है। उसको ट्, ड् होते हैं।

२. आगे केवल प्रथम वर्ण वाला रूप दिया जाएगा। ऐसे स्थानों पर तृतीय वर्ण वाला रूप स्वयं समझ लेना चाहिए।

	प्र० एक०	प्र० द्वि०	तृ० द्वि०	स० बहु०
भिषज्	भिषक्	भिषजौ	भिषग्भ्याम्	भिषक्षु
स्रज्	स्रक्	स्रजौ	स्रग्भ्याम्	स्रक्षु
दृश्	दृक्	दृशौ	दृग्भ्याम्	दृक्षु
दधृष्	दधृक्	दधृषौ	दधृग्भ्याम्	दधृक्षु
उष्णिह्	उष्णिक्	उष्णिहौ	उष्णिग्भ्याम्	उष्णिक्षु
विविक्ष्	विविक्	विविक्षौ	विविग्भ्याम्	विविक्षु

सुवृश्च्	सुवृट्-ड्	सुवृश्चौ	सुवृड्भ्याम्	सुवृट्सु-ट्त्सु
सर्वप्राच्छ्-श्	सर्वप्राट्	सर्वप्राच्छौ-शौ	सर्वप्राड्भ्याम्	सर्वप्राट्सु-ट्त्सु
भृज्ज्	भृट्	भृज्जौ	भृड्भ्याम्	भृट्सु-ट्त्सु
विश्वसृज्	विश्वसृट्	विश्वसृजौ	विश्वसृड्भ्याम्	विश्वसृट्सु-ट्त्सु
देवेज्	देवेट्	देवेजौ	देवेड्भ्याम्	देवेट्सु-ट्त्सु
विश्	विट्	विशौ	विड्भ्याम्	विट्सु-ट्त्सु
त्विष्	त्विट्	त्विषौ	त्विड्भ्याम्	त्विट्सु-ट्त्सु
प्रच्छ्	प्रट्	प्रच्छौ	प्रड्भ्याम्	प्रट्सु-ट्त्सु
लिह्	लिट्	लिहौ	लिड्भ्याम्	लिट्सु-ट्त्सु

अनियमित चलने वाले शब्द —

युज्—

प्र०, स०	युङ्	युञ्जौ	युञ्जः
द्वि०	युञ्जम्	युञ्जौ	युजः

शेष सुयुज् के तुल्य ।

मुह्—पुंलिंग

प्र०, स०	मुक्, मुट्	मुहौ	मुहः
द्वि०	मुहम्	मुहौ	मुहः
तृ०	मुहा	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भि, मुड्भिः
च०	मुहे	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भ्य, मुड्भ्य.

प०	मुहः	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भ्यः, मुड्भ्यः
प०	मुहः	मुहोः	मुहाम्
स०	मुहि	मुहोः	मुक्षु, मुट्सु, मुट्त्सु

इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेंगे—स्निह्, स्नुह्, नश्, तक्ष्, गोरक्ष् और द्रुह् आदि :—

	प्र० एक०	प्र० द्विव०	तृ० द्विव०	स० बहु०
स्निह्	स्निक्-ट्	स्निहौ	स्निग्भ्याम्-ड्भ्याम्	स्निक्षु-ट्सु-ट्त्सु
स्नुह्	स्नुक्-ट्	स्नुहौ	स्नुग्भ्याम्-ड्भ्याम्	स्नुक्षु-ट्सु-ट्त्सु
नश्	नक्-ट्	नशौ	नग्भ्याम्-ड्भ्याम्	नक्षु-ट्सु-ट्त्सु
तक्ष्	तक्-ट्	तक्षौ	तग्भ्याम्-ड्भ्याम्	तक्षु-ट्सु-ट्त्सु
गोरक्ष्	गोरक्-ट्	गोरक्षौ	गोरग्भ्याम्-ड्भ्याम्	गोरक्षु-ट्सु-ट्त्सु
द्रुह्	ध्रुक्-ट्	द्रुहौ	ध्रुग्भ्याम्-ड्भ्याम्	ध्रुक्षु-ट्सु-ट्त्सु
दुह्	धुक्	दुहौ	धुग्भ्याम्	धुक्षु
गुह्	घुट्	गुहौ	घुड्भ्याम्	घुट्सु-ट्त्सु
बुध्	भुत्	बुधौ	भुद्भ्याम्	भुत्सु

नपुंसकलिंग

इन शब्दो के नपुसकलिंग में पूर्वोक्त अन्तर होगे, अन्य कुछ नही । जैसे—

प्र०, स०, द्वि०	घृतस्पृक्	घृतस्पृशी	घृतस्पृंशि
प्र०, सं०, द्वि०	सत्यवाक्	सत्यवाची	सत्यवाचि
प्र०, स०, द्वि०	लिट्	लिही	लिंहि
प्र०, स०, द्वि०	विश्वसृट्	विश्वसृजी	विश्वसृञ्जि
प्र०, सं०, द्वि०	मुक्-ट्	मुही	मुंहि
प्र०, स०, द्वि०	भुक्	भुजी	भुञ्जि
प्र०, सं०, द्वि०	दधृक्	दधृषी	दधृंषि
प्र०, सं०, द्वि०	प्राट्	प्राच्छी, प्राशी	प्राञ्छि, प्राशि

शेष रूप पुंलिंग और स्त्रीलिंग के तुल्य चलेंगे ।

अनियमित रूप से चलने वाले शब्द

६८. तुरासाह् (इन्द्र) के स् को ष् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में हो तो।[1] जैसे—

प्र०, स०	तुराषाट्	तुरासाहौ	तुरासाह
द्वि०	तुरासाहम्	तुरासाहौ	तुरासाह
तृ०	तुरासाहा	तुराषाड्भ्याम्	तुराषाड्भि
स०	तुरासाहि	तुरासाहो	तुराषाट्सु

६९. विश्व शब्द को विश्वा हो जाता है, बाद में राट् या राड् (धातुज शब्द राज् का विशेष रूप) हो तो[2]—

प्र०, सं०	विश्वाराट्	विश्वराजौ	विश्वराज
द्वि०	विश्वराजम्	विश्वराजौ	विश्वराज
तृ०	विश्वराजा	विश्वाराड्भ्याम्	विश्वाराडभि
स०	विश्वराजि	विश्वराजो	विश्वाराट्सु-त्सु

१००. धातुज वाह् अन्त वाले शब्दों के वा के स्थान पर ऊ हो जाता है, द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में।[3] जैसे—विश्ववाह् (पु०, संसार का धर्ता स्वामी) —

प्र०, सं०	विश्ववाट्	विश्ववाहौ	विश्ववाह
द्वि०	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौह
तृ०	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्वाड्भि
च०	विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्य
पं०	विश्वौह	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्य
ष०	विश्वौह	विश्वौहो	विश्वौहाम्
स०	विश्वौहि	विश्वौहो	विश्ववाट्सु

---

१. सहे साड. स (८-३-५६)

२. विश्वस्य वसुराटो (६-३-१२८)

३ वाह ऊठ (६-४-१३२), सम्प्रसारणाच्च (६-१-१०८)। आ और ऊ को एत्येधत्यूठ्सु (६-१-८९) से वृद्धि होकर औ हो जाता है।

प्रत्यञ्च्—पुंलिंग

प्र०, स०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्च
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीच
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भि
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
प०	प्रतीच	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
प०	प्रतीच	प्रतीचो	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यक्षु

तिर्यञ्च्—पुंलिंग

प्र०, स०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्च
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्च
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भि
स०	तिरश्चि	तिरश्चो	तिर्यक्षु

अन्य शब्दों के रूप इसी प्रकार बनाने चाहिएँ। जैसे—

प्र० एक०	प्र० बहु०	द्वि० बहु०	तृ० द्वि०	स० बहु०
सध्यङ्	सध्यञ्च	सध्रीच	सध्यग्भ्याम	सध्यक्षु
सम्यङ्	सम्यञ्च	समीच	सम्यग्भ्याम्	सम्यक्षु
विष्वङ्	विष्वञ्च	विषूच	विष्वग्भ्याम्	विष्वक्षु
देवद्रयङ्	देवद्रयञ्च	देवद्रीच	देवद्रयग्भ्याम्	देवद्रयक्षु
उदङ्	उदञ्च	उदीच	उदग्भ्याम्	उदक्षु
अन्वङ्	अन्वञ्च	अनूच	अन्वग्भ्याम्	अन्वक्षु
अदद्रयङ	अदद्रयञ्च	अदद्रीच	अदद्रयग्भ्याम्	अदद्रयक्षु
अदमुयङ्	अदमुयञ्च	अदमुईच	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयक्षु
गवाङ्	गवाञ्च	गोच	गवाग्भ्याम्	गवाक्षु
गोअङ्	गोअञ्च	गोच	गोअग्भ्याम्	गोअक्षु
गोङ्	गोञ्च	गोच	गोग्भ्याम्	गोक्षु

नपुंसकलिंग

नपुंसकलिंग में रूप भी इसी प्रकार बनाने चाहिएँ।

प्र०, स०, द्वि०	प्राक्	प्राची	प्राञ्चि

प्र०, सं०, द्वि०	प्रत्यक्	प्रतीची	प्रत्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	तिर्यक्	तिरश्ची	तिर्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	सध्र्यक्	सध्रीची	सध्र्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	सम्यक्	समीची	सम्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	विष्वक्	विषूची	विष्वञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	देवद्र्यक्	देवद्रीची	देवद्र्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	उदक्	उदीची	उदञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	अन्वक्	अनूची	अन्वञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	अदद्र्यक्	अदद्रीची	अदद्र्यञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	अदमुयक्	अदमुईची	अदमुयञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	गवाक्	गोची	गवाञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	गोअक्	गोची	गोअञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	गोक्	गोची	गोञ्चि

शेष पुंलिग के तुल्य।

(ख) जब अञ्च् धातु का अर्थ पूजा या आदर करना होता है, तब अञ्च् के न् का लोप नही होता है। इन शब्दों के रूप नियमित ढंग से चलते हैं।[1] हलादि विभक्तियाँ बाद मे होने पर अञ्च् के च् का लोप हो जाता है। जैसे—

प्र०, स०	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
तृ०	प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भिः
च० इत्यादि	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
स०	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्क्षु, प्राङ्षु

तिर्यञ्च्—पुंल्लिग

प्र०, स०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
तृ० इत्यादि	तिर्यञ्चा	तिर्यङ्भ्याम्	तिर्यङ्भिः
स०	तिर्यञ्चि	तिर्यञ्चोः	तिर्यङ्क्षु, तिर्यङ्षु

शेष रूप इसी प्रकार चलावें।

1. नाञ्चेः पूजायाम् (६-४-३०)

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	तिर्यङ्	तिर्यञ्ची	तिर्यञ्चि

अनियमित शब्द

१०५ क्रुञ्च् (कुटिल आदि, क्रुञ्च् कौटिल्याल्पीभावयो, धातु से बना हुआ शब्द), खञ्ज् (लँगडा) और सुवल्ग् (सुन्दर गति वाला) को हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर क्रमश क्रुङ्, खन् और सुवल् हो जाते हैं। जैसे—

प्र० एक०	प्र० द्विव०	तृ० द्विव०	स० बहु०
क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्पुःक्षु
खन्	खञ्जौ	खन्भ्याम्	खन्सु
सुवल्	सुवल्गौ	सुवल्भ्याम्	सुवल्सु

शेष रूप इसी प्रकार बना लें।

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	क्रुङ्	क्रुञ्ची	क्रुञ्चि
प्र०, स०, द्वि०	खन्	खञ्जी	खञ्जि

शेष पुंलिंग के तुल्य।

१०६ ऊर्ज् (पु०, नपु०, बल) के रूप सामान्य ढग से चलेंगे। जैसे—

पुंलिंग

प्र०	ऊर्क्, ग्	ऊर्जौ	ऊर्जः
तृ०	ऊर्जा	ऊर्ग्भ्याम्	ऊर्ग्भिः
स०	ऊर्जि	ऊर्जोः	ऊर्क्षु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	ऊर्क्	ऊर्जी	ऊर्न्जि[1]

शेष पुंलिंग के तुल्य।

बहु के साथ—बहूर्क्, बहूर्जी, बहूर्जि, बहूर्न्जि[2]।

१०७ मकारान्त शब्द। धातुज मकारान्त शब्दों की सख्या बहुत कम है। मकारान्त शब्दों के म् को न् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में होने पर।

१. नरजाना सयोग। (सि० कौ०)

२ बहूर्जि नुम्प्रतिषेध। अन्त्यात् पूर्वो वा नुम्। (वार्तिक)

इनमें अन्य कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—प्रशाम् (पु०, स्त्री०, शान्त व्यक्ति)।

प्र०	प्रशान्	प्रशामौ	प्रशाम
द्वि०	प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशाम
तृ०	प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः
स०	प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु, प्रशाम्सु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	प्रशाम्	प्रशामी	प्रशामि

शेष पुंवत् (पुंलिंग के तुल्य)।

सकारान्त शब्द

१०८ सकारान्त शब्दों को प्रथमा एक० में उपधा (अन्तिम अक्षर से पहला स्वर) के अ को दीर्घ हो जाता है, सम्बोधन और धातुज शब्दों को छोड़कर।[1]

चन्द्रमस् (पु०, चन्द्रमा)

प्र०	चन्द्रमा	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
स०	चन्द्रमः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
प०	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु, चन्द्रमस्सु

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छे मन वाला), दुर्मनस् (बुरे विचार वाला), उन्मनस् (उत्कंठित मन वाला), इत्यादि।

मनस्—(नपु०, मन)

प्र०, स०, द्वि०	मनः	मनसी	मनांसि

शेष चन्द्रमस् के तुल्य।

१ अत्वसन्तस्य चाधातोः (६-४-१४) मत् या वत् अन्त वाले शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है, सम्बोधन भिन्न सु (स्) परे होने पर। इसी प्रकार धातुभिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ होता है, पूर्वोक्त स्थितियों में।

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—पयस् (दूध), वयस् (आयु), अवस् (रक्षा, यश आदि), श्रेयस् (कल्याण), सरस्, वचस्, इत्यादि।

(क) इस्, उस्, ओस् अन्त वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं। जैसे—उदर्चिस् (ऊपर को लपट वाली), अचक्षुस् (अन्धा), दीर्घायुस् (दीर्घायु), दोस् (भुजा), इत्यादि। जैसे—

	प्र० एक०	प्र० द्विव०	तृ० एक०	तृ० द्विव०	स०, वहु०
उदर्चिस्	उदर्चि	उदर्चिषौ	उदर्चिषा	उदर्चिर्म्याम्	उदर्चिष्षु-षु
अचक्षुस्	अचक्षु	अचक्षुषौ	अचक्षुषा	अचक्षुर्म्याम्	अचक्षुष्षु-षु
दीर्घायुस्	दीर्घायु	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषा	दीर्घायुर्म्याम्	दीर्घायुष्षु-षु
दोस्	दो	दोषौ	दोषा	दोर्म्याम्	दोष्षु -षु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	उदर्चि	उदर्चिषी	उदर्चींषि
प्र०, स०, द्वि०	अचक्षु	अचक्षुषी	अचक्षूंषि
प्र०, स०, द्वि०	दो	दोषी	दांषि

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—ज्योतिस् (प्रकाश), हविस् (हवि, सामग्री), चक्षुस् (आँख), धनुस् (धनुष), आदि।

सुवस् (सुष्ठु वस्ते, ठीक ढंग से वस्त्र पहनने वाला)।

पुंलिंग

प्र०	सुव	सुवसौ	सुवस.

शेष चन्द्रमस् के तुल्य।

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	सुव	सुवसी	सुवांसि

शेष मनस् के तुल्य।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—पिण्डग्रस्, पिण्डग्लस् इत्यादि।

१०६ इन शब्दों के प्रथमा एक० में ये रूप बनेंगे—अनेहस् (समय)—अनेहा, पुरुदसस् (इन्द्र)—पुरुदसा और उशनस् (शुक्राचार्य)—उशना। उशनस् के सम्बोधन में ये रूप बनते हैं—उशनन्, उशन और उशन। शेष रूप चन्द्रमस् के तुल्य चलेंगे।

११०. सकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में केवल विभक्तियाँ जोड दी जाती हैं।

भास् (स्त्रीलिंग, प्रकाश, कान्ति)

प्र०	भा	भासौ	भासः
तृ०	भासा	भाभ्याम्	भाभिः
स०	भासि	भासो.	भास्सु

१११. विशेष—उक्थशास् (मन्त्रोच्चारणकर्ता) के शास् को शस् हो जाता है, हलादि विभक्तियाँ बाद में हों तो। प्रथमा एक० में नहीं। जैसे—

प्र०	उक्थशाः	उक्थशासो	उक्थशास.
तृ०	उक्थशासा	उक्थशोभ्याम्	उक्थशोभिः
स०	उक्थशासि	उक्थशासो	उक्थश.सु-स्सु

अनियमित शब्द

११२. स्रस् (गिरने वाला), ध्वस् (नष्ट करने वाला), सुहिंस् (अच्छे प्रकार से हिंसा करने वाला), जिघास् (मारने की इच्छा वाला)। स्रस् और ध्वस् के स् को त् हो जाता है, हलादि विभक्ति बाद में होने पर। सुहिंस् और जिघास् को हलादि विभक्ति बाद में होने पर सुहिन् और जिघान् हो जाता है।

पुंलिंग

	प्र० एक०	प्र० द्विव०	तृ० एक०	तृ० द्विव०	स० बहु०
स्रस्	स्रत्	स्रसौ	स्रसा	स्रद्भ्याम्	स्रत्सु
ध्वस्	ध्वन्	ध्वसौ	ध्वसा	ध्वद्भ्याम्	ध्वत्सु
सुहिंस्	सुहिन्	सुहिंसौ	सुहिंसा	सुहिन्भ्याम्	सुहिन्सु
जिघास्	जिघान्	जिघासौ	जिघासा	जिघान्भ्याम्	जिघान्सु

शेष रूप इसी प्रकार विभक्तियाँ लगाकर बनावें।

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	स्रत्	स्रसी	स्रंसि
प्र०, स०, द्वि०	ध्वत्	ध्वसी	ध्वंसि
प्र०, स०, द्वि०	सुहिन्	सुहिंसी	सुहिंसि

शेष रूप पुंवत्।

११३. पुंस् (पु०, पुरुष)

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः

स०	पुमन्	पुमांसौ	पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुंभिः
च०	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
प०	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
ष०	पुंस	पुंसो	पुंसान्
स०	पुंसि	पुंसो	पुंसु

नपुंसक०

सुपुंस् (शोभना पुमांस यस्मिन् तत्)

प्र०, स०, द्वि०	सुपुम्	सुपुंसी	सुपुमांसि

शेष पुंवत् ।

११४ इन शब्दों के उपधा के इ और उ को हलादि विभक्ति बाद में होने पर दीर्घ हो जाता है और प्रथमा एक० में इनके अन्तिम अक्षर को विसर्ग हो जाता है—पिपठिष् (पढने का इच्छुक), सजुष् (पु०, स्त्री०, साथी), चिकीर्ष् (करने का इच्छुक), सुपिस् (ठीक पैर रखने वाला), आशिष् (स्त्री०, आशीर्वाद), सुतुस् (ठीक काटने वाला), गिर् (वाणी), धुर् (धुरा), पुर् (नगर)। गिर् आदि तीनों शब्द स्त्रीलिंग हैं। जैसे—

पिपठिष्—

प्र०, स०	पिपठीः	पिपठिषौ	पिपठिषः
द्वि०	पिपठिषम्	पिपठिषौ	पिपठिषः
तृ०	पिपठिषा	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भिः
च०	पिपठिषे	पिपठीर्भ्याम्	पिपठीर्भ्यः
स०	पिपठिषि	पिपठिषोः	पिपठीष्षु–षु[1]

इसी प्रकार अन्य विभक्तियाँ लगाकर रूप बनाओ। सजुष् और अन्य आगे लिखित शब्दों के रूप इसी प्रकार चलावें।

---

१. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि (८–३–५८)। इ ई, उ ऊ और कवर्ग के बाद प्रत्यय के स् को ष् हो जाता है, यदि बीच में न्, विसर्ग और श् ष् स् में से कोई होगा तो भी स् को ष् हो जाएगा।

	प्र० एक०	प्र० द्विव०	तृ० एक०	तृ० द्विव०	स० बहु०
सजुष् (स्त्री०)	सजू	सजुषौ	सजुषा	सजूर्भ्याम	सजूष्षु-षु
चिकीर्ष्	चिकी	चिकीर्षौ	चिकीर्षा	चिकीर्भ्याम्	चिकीर्षु
सुपिस्	सुपी	सुपिसौ	सुपिसा	सुपीर्भ्याम्	सुपीष्षु-षु
आशिष्	आशी	आशिषौ	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीष्षु-षु
सुतुस्	सुतू	सुतुसौ	सुतुसा	सुतूर्भ्याम्	सुतूष्षु-षु
गिर्, (स्त्री०)	गी	गिरौ	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्षु
धुर् (स्त्री०)	धू०	धुरौ	धुरा	धूर्भ्याम्	धूर्षु
पुर्, (स्त्री०)	पू	पुरौ	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्षु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	पिपठी	पिपठिषी	पिपठिषि
प्र०, स०, द्वि०	चिकी	चिकीर्षी	चिकीर्षि
प्र०, स०, द्वि०	सुपी	सुपिसी	सुपिंसि
प्र०, स०, द्वि०	सुतू	सुतुसी	सुतुंसि

शेष रूप पुंलिंग या स्त्रीलिंग के तुल्य चलेंगे ।

अत्, मत् और वत् अन्त वाले शब्द :—

११५ प्रथमा एक० में अ को दीर्घ हो जाता है ।[1] प्रथम पाँच विभक्तियों में अ और त् के बीच में न् और जुड जाता है । प्रथमा एक० में अन्तिम त् हट जाता है । महत् शब्द में ह के अ को दीर्घ हो जाता है, प्रथम पाँच विभक्तियों में, संबोधन में दीर्घ नहीं होगा ।

धीमत्—(पुंलिंग, बुद्धिमान्)

प्र०	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्त
स०	धीमन्	धीमन्तौ	धीमन्त
द्वि०	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमन
तृ०	धीमता	धीमद्भ्याम्	धीमद्भि.
च०	धीमते	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः

१ अत्वसन्तस्य चाधातो (६-४-१४)

	धीमत.	धीमद्भ्याम्	धीमद्भ्यः
प०	धीमतः	धीमतोः	धीमताम्
स०	धीमति	धीमतोः	धीमत्सु

नपुंसकलिंग

प्र०, स० द्वि०	धीमत्	धीमती	धीमन्ति

शेष पुंवत्।

इसी प्रकार इन शब्दों के रूप चलेंगे—गोमत् (गायों वाला), विद्यावत्, श्रीमत्, बुद्धिमत्, भगवत्, मघवत् (पुं०, इन्द्र), भवत् (सर्वनाम), यावत्, तावत्, एतावत्, कियत्, इयत्, इत्यादि।

महत्—(पुंलिंग, महान्)

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
स०	महन्	महान्तौ	महान्तः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः

शेष रूप धीमत् के तुल्य।

अदत्--पुंलिंग (खाता हुआ)

प्र०, स०	अदन्	अदन्तौ	अदन्त
द्वि०	अदन्तम्	अदन्तौ	अदत

शेष धीमत् के तुल्य।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे--सभी वर्तमान और भविष्यत् परस्मैपद वाले अत् और स्यत् या इष्यत् अन्त वाले शब्दों के पुंलिंग में रूप।

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	भवत्--भवत्	भवन्ती	भवन्ति
,,	अदत्--अदत्	अदती	अदन्ति
,,	यात्--यात्	याती, यान्ती	यान्ति
,,	दास्यत्--दास्यत्	दास्यती-न्ती	दास्यन्ति
,,	तुदत्--तुदत्	तुदती-न्ती	तुदन्ति

शेष पुंलिंग के तुल्य।

पचत्, दीव्यत्, चोरयत्, चिकीर्षत्, बुबोधिषत्, पुत्रीयत् आदि के रूप भवत् के तुल्य चलेंगे। करिष्यत् आदि के रूप तुदत् के तुल्य चलेंगे। सुन्वत्, तन्वत्, रुन्धत्, क्रीणत् आदि के रूप अदत् के तुल्य चलेंगे।

सूचना--स्त्रीलिंग में इन शब्दों के अन्त में ई लग जाता है और इनका स्त्रीलिंग में वही रूप होता है जो नपुं० प्रथमा द्विवचन में होता है। इनके रूप नदी के तुल्य चलेंगे।

इन शब्दों के रूप अदत् पुं० और नपुं० के तुल्य चलेंगे--बृहत् (बड़ा) पुं०, नपुं०, पृषत् (पुं० मृग) (नपुं० जल की बूंद), जगत् (संसार)।

(ख) इन धातुओं से शतृ प्रत्यय करने पर बीच में न् सर्वथा नहीं लगता है--जुहोत्यादिगण की धातुएँ, अदादिगण की जक्ष् आदि सात धातुएँ (जक्ष्, जागृ, दरिद्रा, शास्, चकास्, दीधी, वेवी)। जक्षत्, जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीध्यत् और वेव्यत्)। इनमें नपुं० प्रथमा, संबोधन और द्वितीया बहुवचन में विकल्प से न् लगता है --

ददत् (देता हुआ)--पुंलिंग

प्र०, स०	ददत्	ददतौ	ददत
द्वि०, इत्यादि	ददतम्	ददतौ	ददत

स०	ब्रह्म, ब्रह्मन्	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि
द्वि०	ब्रह्म	ब्रह्मणी	ब्रह्माणि

शेष पुवत् ।

इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेंगे—चर्मन् (चमडा), वर्मन् (कवच), भर्मन् (गृह, पुराना आदि), शर्मन् (कल्याण), नर्मन् (क्रीडा, मनोरजन), जन्मन्, पर्वन् (जोड, पर्व), आदि ।

नामन्—नपुसकलिंग

प्र०	नाम	नामनी, नाम्नी	नामानि
स०	नाम, नामन्	नामनी, नाम्नी	नामानि
द्वि०	नाम	नामनी, नाम्नी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि:
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्य:
प०	नाम्न:	नामभ्याम्	नामभ्य:
ष०	नाम्न:	नाम्नो.	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्नो	नामसु

इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेंगे—व्योमन् (आकाश), क्लोमन्, प्रेमन् (प्रेम), सामन् (सामवेद का मन्त्र), धामन् (घर, तेज), इत्यादि ।

अपवाद शब्द

११८. पूषन्, अर्यमन् और हन् अन्त वाले शब्दो को प्रथमा एक० में ही दीर्घ होता है । ह् के बाद हन् के न् को ण् हो जाता है । जैसे—

पूषन् (सूर्य)—पुंलिंग

प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषण:
स०	पूषन्	पूषणौ	पूषण:
द्वि०	पूषणम्	पूषणौ	पूष्ण:
तृ०	पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभि:
च०	पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्य:
प०	पूष्ण:	पूषभ्याम्	पूषभ्य
ष०	पूष्ण	पूष्णो:	पूष्णाम्
स०	पूष्णि-षणि	पूष्णो:	पूषसु

वृत्रहन् (इन्द्र)—पुंलिंग

प्र०	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहण.
स०	वृत्रहन्	वृत्रहणौ	वृत्रहण.
द्वि०	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्न'
तृ०	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
च०	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्य
प०	वृत्रघ्न	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्य
प०	वृत्रघ्न	वृत्रघ्नो	वृत्रघ्ना
स०	वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	वृत्रघ्नो	वृत्रहसु

अर्यमन् (अर्यमा देवता)—पुंलिंग

प्र०	अर्यमा	अर्यमणौ	अर्यमण
स०	अर्यमन्	अर्यमणौ	अर्यमण
द्वि०, इत्यादि	अर्यमणम्	अर्यमणौ	अर्यम्ण

बहुपूषन्, बह्वर्यमन्, बहुवृत्रहन्—नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	बहुपूषन्	बहुपूष्णी-षणी	बहुपूषाणि
प्र०, म०, द्वि०	बह्वर्यमन्	बह्वर्यम्णी-मणी	बह्वर्यमाणि
प्र०, स०, द्वि०	बहुवृत्रहन्	बहुवृत्रघ्नी-हणी	बहुवृत्रहाणि

११६. द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियों में इन शब्दों के व को उ हो जाता है—श्वन् (पु०, कुत्ता), युवन् (पु०, युवा), मघवन् (पु०, इन्द्र)।[1]

श्वन्—पुंलिंग

प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वान
स०	श्वन्	श्वानौ	श्वान.
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
प०	शुन	श्वभ्याम्	श्वभ्यः

१. श्वयुवमघोनामतद्धिते (६-४-१३३)।

ष०	शुन	शुनो	शुनाम्
स०	शुनि	शुनो	श्वसु

मघवन्—पुंलिग

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवान
स०	मघवन्	मघवानौ	मघवान
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोनं
तृ०, इत्यादि	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभि
स०	मघोनि	मघोनो	मघवसु

युवन्—पुंलिग

प्र०	युवा	युवानौ	युवान
स०	युवन्	युवानौ	युवान
द्वि०	युवानम्	युवानो	यून
तृ०, इत्यादि	यूना	युवभ्याम्	युवभि
स०	यूनि	यूनो	युवसु

बहुश्वन्, बहुयुवन्—नपुसकलिग

प्र०, स०, द्वि०	बहुश्व[1]	बहुशुनी	बहुश्वानि
प्र०, स०, द्वि०	बहुयुव[2]	बहुयूनी	बहुयुवानि

शेष पुंलिग के तुल्य ।

१२० अहन् (नपु०, दिन) के न् को र् होकर विसर्ग हो जाता है, पदान्त में या बाद मे कोई हलादि विभक्ति हो तो । शेष स्थानो पर नामन् के तुल्य रूप चलेंगे ।

प्र०, स०	अह	अह्नौ, अहनी	अहानि
द्वि०	,,	,, ,,	,,
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभि
च०	अह्न	,,	अहोभ्य
प०	अह्न	अहोभ्याम्	अहोभ्य.
ष०	,,	अह्ना	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	,, .	अहस्सु, अह सु

१-२ सबोधन एक० में बहुश्वन्, बहुयुवन् रूप भी बनेगा ।

विशेष—दीर्घाहन् शब्द के पुंलिग मे हलादि विभक्तियाँ बाद मे होने पर चन्द्रमस् शब्द के तुल्य रूप चलेगे और अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर राजन् के तुल्य। इसके नपुंसकलिंग में अहन् के तुल्य रूप चलेंगे।

प्र०	दीर्घाहाः	दीर्घाहाणौ[1]	दीर्घाहाणः
स०	दीर्घाह	,,	,,
द्वि०	दीर्घाहाणम्	,,	दीर्घाह्नः
तृ०	दीर्घाह्ना	दीर्घाहोभ्याम्	दीर्घाहोभिः
च०	दीर्घाह्ने	,,	दीर्घाहोभ्य
प०	दीर्घाह्नः	,,	,,
ष०	,,	दीर्घाह्नोः	दीर्घाह्नाम्
स०	दीर्घाह्नि	,,	दीर्घाहस्सु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि० दीर्घाह दीर्घाह्नि, दीर्घाह्नी दीर्घाहाणि

शेष पुंलिग के तुल्य।

१२१. अवन् (पु० घोडा) का अर्वत् शब्द हो जाता है और इसके रूप प्र० और स० एकवचन मे तथा नञ्-तत्पुरुषान्त धीमत् आदि के तुल्य चलेगे। प्र० और स० एकवचन मे तथा नञ् तत्पुरुष समास करने पर अर्वन् को अर्वत् नही होगा। जैसे—अर्वा अर्वन्तौ अर्वन्तः प्र०, अर्वन् अर्वन्तौ अर्वन्त स०, अर्वन्तम् अर्वन्तौ अर्वत द्वि० आदि। किन्तु नञ् समास वाले अनर्वन् (न अर्वा, न विद्यते अर्वा यस्य वा) के रूप यज्वन् के तुल्य चलेगे।

अनर्वा अनर्वाणौ आदि।

स्ववन् नपु० के रूप इस प्रकार चलेगे—स्ववर्त् स्ववर्ती स्ववंन्ति प्र०, स०, द्वि०। शेष रूप अर्वन् पुंलिग के तुल्य।

१२२. इन् अन्त वाले शब्द—

करिन्—पुंलिग (हाथी)

प्र०	करी	करिणौ	करिणः
स०	करिन्	करिणौ	करिण.

---

१. अष्टा० ८-४-११ के नियमानुसार दीर्घाहानौ आदि रूप भी बनेंगे और उनमें विकल्प से न् रहेगा।

द्वि०	वरिणम्	वरिणौ	वरिण.
तृ०	वरिणा	वरिभ्याम्	वरिभि
च०	वरिणे	वरिभ्याम्	वरिभ्य
प०	वरिण	वरिभ्याम्	वरिभ्य
ष०	वरिण	वरिणो	वरिणाम्
स०	वरिणि	वरिणो	वरिषु

, इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेंगे—शशिन् (चन्द्रमा), दण्डिन् (दण्डधारी), धनिन् (धनवान्), हस्तिन् (हाथी), स्रग्विन् (मालाधारी), आततायिन् तथा अन्य सभी इन् अन्त वाले शब्द ।

दण्डिन्—नपुसकलिंग

प्र०,स०	दण्डि	दण्डिनी	दण्डीनि
द्वि०	दण्डि–न्	दण्डिनी	दण्डीनि

शेष पुलिंग के तुल्य । इसी प्रकार स्रग्विन् (नपु०), वाग्मिन् (नपु०, वाग्य वक्ता), भाविन् (नपु०) आदि के रूप चलेंगे ।

अपवाद शब्द

१२३. पथिन् (मार्ग), मथिन् (मथनी) और ऋभुक्षिन् (इन्द्र का नाम) के रूप प्रथम पाँच स्थानों पर विशेष रूप से चलते हैं ।[1] द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियाँ बाद में होने पर इनका इन् हट जाता है।

पथिन्—पुलिंग

प्र०, स०	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य
प०	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्य
ष०	पथ	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथो	पथिषु

१. इन शब्दो में ये सूत्र लगते हैं—पथिमथ्यृभुक्षामात् । इतोऽत् सर्व नामस्थाने । थो न्थ । भस्य टेर्लोप । (अष्टा० ७–१–८५ से ८८)

इसी प्रकार मथिन् और ऋभुक्षिन् के रूप चलेगे। ऋभुक्षिन् मे प्रथम पाँच विभक्तिया मे पथिन् के तुल्य बीच में न् नही जुडेगा। जैसे—मन्था मन्थानौ मन्थान. प्र०, मन्थानम् मन्थानौ मथ द्वि० आदि। ऋभुक्षा ऋभुक्षाणौ ऋभुक्षाण प्र०, ऋभुक्षाणम् ऋभुक्षाणौ ऋभुक्ष द्वि० आदि।

वस् इवस् अन्त वाले शब्द

१२५. ये शब्द धातु से लिट् लकार के स्थान पर क्वसु (वस्) कृत् प्रत्यय करने पर बनते हैं। इनमे कुछ स्थानो पर वस् से पहले इ भी लग जाता है। इन शब्दो मे प्रथम पाँच स्थानो पर स् से पहले न् लगता है और व के अ का दीर्घ हो जाता है। पुंलिंग में प्र० एक० मे अन्तिम स् हट जाता है और सबोधन एक० मे अन्त मे वन् रहता है। द्वितीया बहु० से लेकर आगे की अजादि विभक्तियो मे और नपु० के प्रथमा स० और द्वितीया के द्विवचन के ई बाद म होने पर इन शब्दो के व को उ हो जाता है तथा जहाँ पर व से पहले इ है, वह हट जाता है। धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है, बाद मे वस् होगा तो, किन्तु बाद में उ होने पर म् फिर बना रहता है। हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर तथा नपु० में प्र०, स०, द्वि० के एकवचन में वस् के स् को द् हो जाता है।

विद्वस्—पुंलिंग (विद्वान्)

प्र०	विद्वान्	विद्वासौ	विद्वास
स०	विद्वन्	विद्वासौ	विद्वास
द्वि०	विद्वासम्	विद्वासौ	विदुष
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विदुष	विद्वदभ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विदुष	विदुषो	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	विद्वत्	विदुषी	विद्वांसि

शेष पुंलिंग के तुल्य।

इसी प्रकार इन शब्दो के रूप चलेगे—जग्मिवस् या जगन्वस् (गया हुआ), तस्थिवस् (रुका हुआ), निनीवस् (ले गया है), मीढ्वस् (उदार, दानी),

शुश्रुवस् (जिसने सुना है), सेदिवस् (बैठा हुआ), दाश्वस् (दानी, देवों का सेवक या आदरकर्ता), इत्यादि शब्द पु० और नपु० में। जैसे—

प्र० एक०	प्र० द्वि०	तृ० एक०	तृ० द्वि०
जग्मिवान्	जग्मिवांसौ	जग्मुषा	जग्मिवद्भ्याम्
जगन्वान्	जगन्वांसौ	जग्मुषा	जगन्वद्भ्याम्
तस्थिवान्	तस्थिवांसौ	तस्थुषा	तस्थिवद्भ्याम्
निनीवान्	निनीवांसौ	निन्युषा	निनीवद्भ्याम्
मीढ्वान्	मीढ्वांसौ	मीढुषा	मीढ्वद्भ्याम्
शुश्रुवान्	शुश्रुवांसौ	शुश्रुवुषा	शुश्रुवद्भ्याम्
सेदिवान्	सेदिवांसौ	सेदुषा	सेदिवद्भ्याम्
दाश्वान्	दाश्वांसौ	दाशुषा	दाश्वद्भ्याम्

यस् या ईयस् अन्त वाले शब्द

१२५. यस् अन्त वाले तुलनार्थक शब्दों के प्रथम पाँच विभक्तियों में रूप यस् अन्त वाले शब्दों के तुल्य चलते हैं और शेष स्थानों पर अस् अन्त वाले शब्दों के तुल्य। जैसे—

श्रेयस् (प्रशस्य + ईयस्) (अधिक प्रशसनीय)

प्र०	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांस
स०	श्रेयन्	श्रेयांसौ	श्रेयांस
द्वि०	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयस
तृ०	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभि

शेष चन्द्रमस् के तुल्य।

इसी प्रकार सभी तुलनार्थक ईयस् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप चलेंगे। जैसे—गरीयस्, लघीयस्, द्राघीयस् आदि।

नपुसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	श्रेय.	श्रेयसी	श्रेयांसि

शेष मनस् के तुल्य। अन्य ईयस् प्रत्ययान्त नपु० के रूप इसी प्रकार ऐसे ही चलेंगे।

अपवाद शब्द

१२६. अस्थि (नपु०, हड्डी), दधि (नपु०, दही), सक्थि (नपु०, जाँघ) और अक्षि (नपु०, आँख) को क्रमशः अस्थन्, दधन्, सक्थन् और अक्षन् हो जाता है, तृ० एक० से लेकर आगे की अजादि विभक्ति बाद में हो तो।[1] इनके रूप नकारान्त शब्दों के तुल्य चलते हैं। अन्य स्थानों पर अस्थि आदि के रूप वारि के तुल्य चलेंगे।

अस्थि

प्र०	अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
स०	अस्थे, अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
द्वि०	अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
तृ०	अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभि
च०	अस्थ्ने	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्य
प०	अस्थ्न	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्य
ष०	अस्थ्न	अस्थ्नो	अस्थ्नाम्
स०	अस्थ्नि, अस्थनि	अस्थ्नो	अस्थिषु

इसी प्रकार दधि, सक्थि, अक्षि के रूप चलेंगे।

१२७. अप् (स्त्रीलिंग, जल) के रूप केवल बहुवचन मे चलते हैं। प्र० मे इसके अ को दीर्घ हो जाता है और हलादि विभक्तियाँ बाद में होने पर प् को द् हो जाता है। आप, अप अद्भि, अद्भ्य, अपाम्, अप्सु।

१२८. जरा (स्त्री०, बुढापा), अजर (पु०, वृद्धावस्था से रहित) और निर्जर (पु०, देवता) को अजादि विभक्तियाँ बाद मे होने पर विकल्प मे जरस्, अजरस् और निर्जरस् हो जाता है।

जरा—स्त्रीलिंग

प्र०	जरा	जरे, जरसौ	जरा, जरस
स०	जरे	जरे, जरसौ	जरा, जरस
द्वि०	जराम्, जरसम्	जरे, जरसौ	जरा:, जरस
तृ०	जरया, जरसा	जराभ्याम्	जराभि

१ अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्त (७-१-७५)।

च०	जरायै, जरसे	जराभ्याम्	जराभ्य
प०	जराया, जरस	जराभ्याम्	जराभ्य
प०	जराया, जरस	जरयो, जरसो	जराणाम्, जरासाम्
स०	जरायाम्, जरसि	जरयो, जरसो	जरासु

निर्जर आदि के रूप राम और चन्द्रमस् के तुल्य चलेंगे—

प्र०	निजर	निर्जरौ, निर्जरसौ	निर्जरा, निजरस
द्वि०	निजरम्, निजरसम्	निर्जरौ, निजरसौ	निर्जरान्, निर्जरस
तृ०	निजरेण, निजरसा	निर्जराभ्याम्	निर्जरै
च०	निजराय, निजरसे	निर्जराभ्याम्	निजरेभ्य
प०	निर्जरात्, निर्जरस	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्य
प०	निजरस्य, निर्जरस	निर्जरयो, निर्जरसो	निर्जराणाम्, निर्जरसाम्
स०	निर्जरे, निजरसि	निर्जरयो, निजरसो	निजरेषु

अजर पु० के रूप निर्जर के तुल्य चलेंगे।

अजर—नपुसकलिग

प्र०	अजरम्	अजरे अजरसी	अजराणि, अजरासि
स०	अजर	अजरे, अजरसी	अजराणि अजरासि
द्वि०	अजरम्	अजरे, अजरसी	अजराणि, अजरासि

शेष पुवत्।

१२६ निम्नलिखित शब्दो को द्वितीया बहु० से लेकर आगे की सभी विभक्तियो में विकल्प से ये आदेश हो जाते हैं। पाद को पद्, दन्त–दत्, नासिका–नस, मास–मास् हृदय–हृद्, निशा–निश्, असृज्–असन्, यूप–यूपन्, दोप–दोपन्, यकृत्–यकन्, शकृत् शकन्, उदक् उदन्, आस्य-आसन्, मास-मास्, पृतना–पृत्, सानु स्नु।[1]

दोस्—पुल्लिग (हाथ)

प्र०, स०	दो	दोषौ	दोष
द्वि०	दो	दोषौ	दोष, दोष्ण
तृ०	दोषा, दोष्णा	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भि, दोषभि

---

१ पद्दन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु। (६–१–६३) मासपृतनासानूनां मास्पृत्स्नवो वाच्या शसादौ वा। (वार्तिक)

च०	दोषे, दोष्णे	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भ्य, दोषभ्य
प०	दोष, दोष्ण	दोर्भ्याम्, दोषोभ्याम्	दोर्भ्यः, दोषभ्य
ष०	दोष, दोष्ण	दोषो, दोष्णो	दोषाम्, दोष्णाम्
स०	दोषि, दोष्णि-षणि	दोषो, दोष्णो	दोष्षु-षु, दोषष

नपुंसकलिंग

प्र०, स०, द्वि०	दो:	दोषी	दोषि

शेष पुवत्।

निशा—स्त्रीलिंग (रात्रि)

प्र०	निशा	निशे	निशा.
स०	निशे	निशे	निशा
द्वि०	निशाम्	निशे	निशा
तृ०	निशया, निशा	निशाभ्याम् निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	निशाभि, निज्भि निड्भि.
च०	निशायै, निशे	निशाभ्याम् निज्भ्याम्, निड्भ्याम	निशाभ्य निज्भ्य, निड्भ्य
प०	निशाया, निश,	निशाभ्याम् निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	निशाभ्य', निज्भ्य निड्भ्य
ष०	निशाया, निश	निशयो -शा	निशानाम्-शाम्
स०	निशायाम्, निशि	निशयो -शा	निशासु निच्षु, निट्सु, निट्त्सु

सानु—नपुंसकलिंग (शिखर, पहाड आदि की चोटी)

प्र०	सानु	सानुनी	सानूनि
स०	सानु-नो	"	"
द्वि०	सानु	"	,
तृ०	सानुना, स्नुना	सानुभ्याम्, स्नुभ्याम्	सानुभि, स्नुभि
च०	सानुने, स्नुने	" "	सानुभ्य, स्नुभ्य
प०	सानुन, स्नुन	सानुभ्याम्, स्नुभ्याम्	सानुभ्य, स्नुभ्य
ष०	" "	सानुनो, स्नुनो	सानूनाम्, स्नूनाम्
स०	सानुनि, स्नुनि	" "	सानुषु, स्नुषु

सानु शब्द पुंलिग भी है। पु० में इसके रूप गुरु के तुल्य चलावे। द्वितीया बहुवचन से स्नु वाला भी रूप चलेगा। जैसे—सानून्, स्नून् आदि।

शेष शब्दो के रूप अन्तिम अक्षर को देखकर तदनुसार चलावें।

पाद—पुंलिग (पैर)

प्र०	पाद	पादौ	पादा
स०	पाद	पादौ	पादा
द्वि०	पादम्	पादौ	पादान्, पद
तृ०	पादेन, पदा	पादाभ्याम्, पद्भ्याम्	पादैं, पद्भि
स०	पादे, पदि	पादयो, पदो	पादेषु, पत्सु

दन्त—पुंलिग (दाँत)

प्र०	दन्त	दन्तौ	दन्ता
द्वि०	दन्तम्	दन्तौ	दन्तान्, दत
तृ०	दन्तेन, दता	दन्ताभ्याम्, दद्भ्याम्	दन्तैं, दद्भि
स०	दन्ते, दति	दन्तयो, दतो	दन्तेषु, दत्सु

नासिका—स्त्रीलिंग (नाक)

प्र०	नासिका	नासिके	नासिका
द्वि०	नासिकाम्	नासिके	नासिका, नस
तृ०	नासिकया, नसा	नासिकाभ्याम्, नोभ्याम्	नासिकाभि, नोभि
च०	नासिकायैं, नसे	नासिकाभ्याम्, नोभ्याम्	नासिकाभ्य, नोभ्य
स०	नासिकायाम्, नसि	नासिकयो, नसो	नासिकासु नस्सु

मास—पुंलिग (मास)

प्र०	मास	मासौ	मासा
द्वि०	मासम्	मासौ	मासान्, मास
तृ०	मासेन, मासा	मासाभ्याम्, माभ्याम्	मासैं, माभि
स०	मासे, मासि	मासयो, मासो	मासेषु, मास्सु

हृदय—नपुंसकलिंग (हृदय)

प्र०	हृदयम्	हृदये	हृदयानि
द्वि०	हृदयम्	हृदये	हृदयानि, हृन्दि
तृ०	हृदयेन, हृदा	हृदयाभ्याम्, हृद्भ्याम्	हृदयैं, हृद्भि

स०	हृदये, हृदि	हृदययोः, हृदोः	हृदयेषु, हृत्सु

असृज्—नपुंसकलिंग (खून)

प्र०	असृक्-ग्	असृजी	असृञ्जि
द्वि०	असृक्-ग्	असृजी	असृञ्जि, असानि
तृ०	असृजा, अस्ना	असृग्भ्याम्, असभ्याम्	असृग्भि, अस्भि
च०	असृजे, अस्ने	असृग्भ्याम्, असभ्याम्	असृग्भ्य, असभ्य
स०	असृजि, अस्नि, असनि	असृजो, अस्नो	असृक्षु, असमु

यूष—पुंलिंग (दाल आदि का जूस या रसा)

प्र०	यूष	यूषौ	यूषाः
द्वि०	यूषम्	यूषौ	यूषान, यूष्णः
तृ०	यूषेण, यूष्णा	यूषाभ्याम् यूषभ्याम्	यूषैः, यूषभिः
स०	यूषे, यूष्णि-षणि	यूषयोः, यूष्णोः	यूषेषु, यूषसु

यकृत—नपुंसकलिंग (जिगर)

प्र०	यकृत्-द्	यकृती	यकृन्ति
द्वि०	यकृत्-द्	यकृती	यकृन्ति, यकानि
तृ०	यकृता यक्ना	यकृद्भ्याम् यकभ्याम्	यकृद्भि, यकभि
स०	यकृति, यक्नि-कनि	यकृतोः, यक्नोः	यकृत्सु, यकसु

शकृत्—नपुंसकलिंग (शौच, विष्ठा)

प्र०	शकृत्-द्	शकृती	शकृन्ति
द्वि०	शकृत्-द्	शकृती	शकृन्ति, शकानि
तृ०	शकृता, शक्ना	शकृद्भ्याम् शकभ्याम्	शकृद्भि, शकभि
स०	शकृति शक्नि-कनि	शकृतोः, शक्नोः	शकृत्सु, शकसु

उदक—नपुंसकलिंग (जल)

प्र०	उदकम्	उदके	उदकानि
द्वि०	उदकम्	उदके	उदकानि, उदानि
तृ०	उदकेन, उद्ना	उदकाभ्याम्, उदभ्याम्	उदकैः, उदभिः
स०	उदके, उदनि-द्नि	उदकयोः, उद्नोः	उदकेषु, उदसु

आस्य—नपुंसकलिंग (मुँह)

प्र०	आस्यम्	आस्ये	आस्यानि

द्वि०	आस्यम्	आस्ये	आस्यानि, आसानि
तृ०	आस्येन, आस्ना	आस्याभ्याम्, आसभ्याम्	आस्यैः, आसभिः
स०	आस्ये, आसनि, आस्नि	आस्ययोः, आस्नोः	आस्येषु, आसमु

मास—नपुंसक (मास)

प्र०	मासम्	मासे	मासानि
द्वि०	मासम्	मासे	मासानि, मांसि
तृ०	मासेन, मासा	मासाभ्याम्, मान्भ्याम्	मासैः, मान्भिः
स०	मासे, मासि	मासयोः, मासोः	मासेषु, मान्सु

पृतना—स्त्रीलिंग (सेना)

प्र०	पृतना	पृतने	पृतनाः
द्वि०	पृतनाम्	पृतने	पृतनाः, पृतः
तृ०	पृतनया, पृता	पृतनाभ्याम्, पृद्भ्याम्	पृतनाभिः, पृद्भिः
च०	पृतनायै, पृते	पृतनाभ्याम्, पृद्भ्याम्	पृतनाभ्यः, पृद्भ्यः
स०	पृतनायाम्, पृति	पृतनयोः, पृतोः	पृतनासु, पृत्सु

१३०. विभक्तियों के अर्थों को प्रकट करने के लिए निम्नलिखित प्रत्यय शब्दों से होते हैं।

(क) पंचमी के अर्थ में तसिल् (तस् या त) प्रत्यय शब्दों से होता है।[1] जैसे—प्रमादतः (प्रमाद से), वस्तुतः (वास्तविक रूप से, यथार्थ रूप में), ज्ञानतः (ज्ञान से), बहुतः (बहुतों से) आदि।

(ख) सप्तमी के अर्थ में त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है। यह साधारणतया सर्वनाम शब्दों से होता है।[2] जैसे—तत्र (उस स्थान पर, वहां), सर्वत्र (सभी स्थानों पर) आदि।

१३१. कुछ शब्द अव्यय हैं और इनके रूप नहीं चलते हैं। जैसे—भूर् (सबसे नीचे का लोक), स्वर् (स्वर्ग), सवत् (वर्ष), अस्तम् (अस्त होना), शम् (शान्ति), नमस् (नमस्कार) स्वस्ति (आशीर्वाद) आदि।

१. पंचम्यास्तसिल् (५-३-७)
२. सप्तम्यास्त्रल् (५-३-१०)। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते (५-३-१४) नियम से प्रथमा को छोड़कर अन्य विभक्तियों के स्थान पर भी तः और त्र आदि हो जाते हैं। (ऐसे बने हुए शब्द प्रथमा के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं।)

अध्याय ४

सर्वनाम शब्द और उनके रूप

१३२. संस्कृत मे निम्नलिखित ३५ शब्द सर्वनाम कहे जाते है—सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम (अर्थात् किम्, यद् और तद् शब्दो से अतर और अतम प्रत्यय करके बने हुए रूप। इन प्रत्ययो के करने पर किम् को क, यद् को य और तद् को त हो जाता है और ये रूप बनते हैं—कतर, कतम, यतर, यतम, ततर और ततम), अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत् त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत् और किम्।

१ पुरुषवाचक सर्वनाम (Personal Pronouns)

१३३. अस्मद् (मैं), युष्मद् (तू) और भवत् (आप) सर्वनाम —

सूचना—अस्मद् और युष्मद् शब्दो के तीनो लिंगो मे एक ही रूप होते हैं।

अस्मद्[1]—पु०, स्त्री०, नपु०

प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान् न
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
च०	मह्यम्, म	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, न
प०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम, मे	आवयो, नौ	अस्माकम्, नः
स०	मयि	आवयो	अस्मासु

युष्मद्—पु०, स्त्री०, नपु०

प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः

१. युष्मदस्मदो षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ। (८-१-२०)
बहुवचनस्य वस्नसौ। (८-१-२१)
तेमयावेकवचनस्य। (८-१-२२)
त्वामौ द्वितीयायाः। (८-१-२३)

तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि·
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पं०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयो , वाम्	युष्माकम्, व.
स०	त्वयि	युवयो.	युष्मासु

भवत् के रूप भगवत् क तुल्य चलत ह। भवान् भवन्तौ भवन्तः प्र०, भवन्तम् भवन्तौ भवत, द्वि० इत्यादि। अत्रभवत् और तत्रभवत् के भी रूप इसी प्रकार चलते हैं। (देखो *वाक्य-विन्यास में सर्वनाम*)।

१३४. (क) युष्मद् और अस्मद् सवनामा क छोटे रूप ते मे आदि वाक्य के प्रारम्भ मे और श्लोक के पाद के प्रारम्भ में नही होते है।[1] च, वा, ह, अह और एव निपाता स पहले भी ये छोटे रूप नही होते है।[2] जैसे—'मम गृहम्' (मेरा घर) *होगा, 'मे गृहम्' प्रयोग नहीं होगा। वेदैरशेषैः सवदास्मान् कृष्ण* सवदाऽवतु (सिद्धान्तकौमुदी) (समस्त वेदा क द्वारा ज्ञेय कृष्ण सदा हमारी रक्षा करे) में 'न' कृष्ण' प्रयोग नही होगा। तवैव कृत्यमेतत् (यह तुम्हारा ही काय है) में 'ते एव' प्रयोग नहीं हागा। यदि च आदि का साक्षात् सबन्ध *नही है तो इन छाटे रूपा का प्रयोग हा सकता है।*[3] जैसे—हरो हरिश्च मे स्वामी (सिद्धान्तकौमुदी) (हर और हरि मेरे स्वामी हैं), इत्यादि।

विशेष—(ख) यदि वाक्य म एक क्रिया है ता इन छोटे रूपा का प्रयोग हो सकता है। जैस शालीना ते आदन दास्यामि। किन्तु ओदन पच तव भविष्यति *में दो क्रियाएँ हैं, अत तव के स्थान पर ते प्रयोग नहीं होगा।*[4]

---

१. पदात्। (८-१-१७)। अनुदात्त सर्वमपादादौ (८-१-१८)। निम्नलिखित श्लोक में इन छोटे रूपो का प्रयोग स्पष्ट किया गया है—
श्रीशस्त्वावतु मापीह, दत्तात् ते मेऽपि शर्म स।
स्वामी ते मेऽपि स हरि, पातु वामपि नौ विभुः॥
सुख वा नौ ददात्वीश, पतिर्वामपि नौ हरि।
सोऽव्याद् वो न शिव वो नो, दद्यात् सेव्योऽत्र व स न॥ (सि० कौ०)।

२ न चवाहाहैवयुक्ते। (८-१-२४)

३. युक्तग्रहणात् साक्षाद्योगेऽयं निषेध। परम्परासबन्धे त्वादेश. स्यादेव। (सि० कौ०)

४ समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्या.। (वार्तिक)

(ग) सबोधन के तुरन्त बाद इन छोटे रूपों का प्रयोग नहीं होगा।[1] यदि सबोधन के बाद उसका कोई विशेषण है तो इन छोटे रूपों का प्रयोग होगा।[2] जैसे—देवास्मान् पाहि सर्वदा (सिद्धान्तकौमुदी) (हे देव, सदा हमारी रक्षा कीजिए) में देव न' प्रयोग नहीं होगा। किन्तु—हरे दयालो न पाहि (सि० कौ०) (हे दयालु हरि, हमारी रक्षा करो) में अस्मान् के स्थान पर न प्रयोग होगा।

(घ) जहाँ पर अन्वादेश (वर्णित विषय का पुन उल्लेख) नहीं है, वहाँ पर इन छोटे रूपों का प्रयोग ऐच्छिक है। परन्तु जहाँ पर अन्वादेश है, वहाँ पर छोटे रूपों का प्रयोग अनिवार्य है।[3] जैसे—धाता ते भक्तोऽस्ति, धाता तव भक्तोऽस्ति, इति वा। किन्तु इस वाक्य के बाद 'तस्मै ते नम' में तुभ्यम् के स्थान पर ते का ही प्रयोग होगा, क्योंकि यहाँ पर (पूर्वोक्त का पुन उल्लेख) है।

२--सकेतवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronouns)

१३५. तद् (वह पुरुष, स्त्री या नपुसक), एतद् (यह), इदम् (यह) और अदस् (वह) सर्वनाम। तद् और एतद् के प्रथमा एक० पु० म क्रमश स और एष रूप होते हैं और स्त्रीलिंग मे प्र० एक० में क्रमश सा और एषा रूप होते है। अन्य स्थानो पर तद् को त और एतद् को एत हो जाता है और इनके रूप निम्नलिखित स्थानो को छोडकर राम या रमा के तुल्य चलेगे। पुलिंग में इन स्थानो पर राम शब्द से अन्तर होता है—प्र० बहु० मे ई लगेगा, च० एक० मे स्मै, प० एक० मे स्मात्, ष० एक० मे ष्याम् और स० एक० मे स्मिन्। स्त्रीलिंग में रमा शब्द से ये अन्तर होते हैं—च० एक० में स्यै, प० एक० में स्या, ष० एक० में स्या, ष० बहु० में साम् और स० एक० मे स्याम् लगेगा। अकारान्त सभी सर्वनामो के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

तद्—पुंलिंग

प्र०	स	तौ	ते
द्वि०	तम्	तौ	तान्

१ आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्। (८-१-७२)
२ नामन्त्रिते समानाधिकरणे० (८-१-७३)
३. एते वानावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्या। (वार्तिक)

तृ०	तेन	ताभ्याम्	तै.
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
प०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयो.	तेषु

तद्—स्त्रीलिंग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभि
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	ताभ्याम्	ताभ्य
ष०	तस्याः	तयो.	तासाम्
स०	तस्याम्	तयो	तासु

इसी प्रकार त्यद् (वह) के रूप चलेंगे। जैसे—स्य त्यौ त्ये प्र०, त्यम् त्यौ त्यान् द्वि० आदि।

तद्—नपुंसकलिंग

प्र०, द्वि०	तत्	ते	तानि

शेष पुंवत्।

एतद्—पुंलिंग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्[1]	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
प०	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

१. द्वितीयाटौस्स्वेनः (२-४-३४)। इदम् और एतद् शब्दों को द्वितीया और तृतीया एक०, ष० और स० द्विवचन में विकल्प से एन शब्द हो जाता है, अन्वादेश में। (देखो नियम १३७)

एतद्--स्त्रीलिंग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

एतद्--नपुंसकलिंग

प्र०	एतत्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्, एनत्	एते, एने	एतानि, एनानि

शेष पुवत् ।

सूचना--सः और एषः के विसर्गों का लोप हो जाता है, बाद में अ को छोडकर कोई भी स्वर या व्यंजन हो तो । बाद में अ होगा तो उ होकर ओऽ सन्धि होगी । जैसे--स गच्छतु एष आयाति । किन्तु एषोऽगच्छत् होगा । (देखो नियम ५०)

इदम्--पुंलिंग

प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

इदम्--स्त्रीलिंग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः

प०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्य
ष०	अस्या.	अनयो, एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयो, एनयो	आसु

इदम्--नपुसकलिंग

प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि

शेष पुवत्।

अदस्--पुलिंग

प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
प०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्य
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयो	अमीषु

अदस्--स्त्रीलिंग

प्र०	असौ	अमू	अमू.
द्वि०	अमूम्	अमू	अमू
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्य
प०	अमुष्या	अमूभ्याम्	अमूभ्य
ष०	अमुष्या	अमुयो	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयो	अमूषु

अदस्--नपुसकलिंग

प्र०, द्वि०	अद	अमू	अमूनि

शेष पुवत्।

१३६. आगे लिखित कारिका में इन सर्वनामो के शुद्ध प्रयोग का नियम दिया गया है --

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

इदम् का प्रयोग समीपस्थ व्यक्ति या वस्तु के लिए होता है और एतद् का उससे भी समीपस्थ के लिए। अदस् का प्रयोग दूरस्थ व्यक्ति या वस्तु के लिए होता है और तद् का प्रयोग परोक्ष या अनुपस्थित व्यक्ति या वस्तु के लिए।

१३७. इदम् और एतद् शब्दों के एन वाले जो वैकल्पिक रूप द्वितीया और तृतीया एक०, षष्ठी और सप्तमी द्विवचन में दिए गए है, उनका प्रयोग अन्वादेश मे ही होता है। अन्वादेश का अर्थ है—किसी कार्य के लिए उल्लिखित व्यक्ति या वस्तु का पुनः उल्लेख करना।[१] जैसे—अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय (इसने व्याकरण पढ लिया है, इसे छन्द पढाओ)। अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं स्वम् (इन दोनो का कुल पवित्र है, इनके पास विशाल सम्पत्ति है)।

३. सबन्धवाचक सर्वनाम (Relative Pronouns)

१३८. यद् (जो, व्यक्ति या वस्तु) सर्वनाम। यद् को पुंलिंग में य हो जाता है और स्त्रीलिंग में या।

यद्—पुंलिंग

प्र०	य	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्य.
प०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्य
ष०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

यद्—स्त्रीलिंग

प्र०	या	ये	या

१ किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादान-मन्वादेश। (सि० कौ०)

द्वि०	याम्	ये	या
तृ०	यया	याभ्याम्	याभि.
च०	यस्यै	याभ्याम्	याभ्य
प०	यस्या	याभ्याम्	याभ्य
ष०	यस्या	ययो	यासाम्
स०	यस्याम्	ययो	यासु

यद्—नपुसकलिंग

प्र०, द्वि०	यत्	ये	यानि

शेष पुवत् ।

४. प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronouns)

१३६ किम् (कौन) सर्वनाम। इसको पुलिंग मे क और स्त्रीलिंग में का होता है।

किम्—पुलिंग

प्र०	क.	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कै
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्य
ष०	कस्य	कया	कयाम्
स०	कस्मिन्	कया	केषु

किम्—स्त्रीलिंग

प्र०	का	क	का
द्वि०	काम्	के	का
तृ०	कया	काभ्याम्	काभि
च०	कस्यै	काभ्याम्	काभ्य
प०	कस्या	काभ्याम्	काभ्य
ष०	कस्या	कया	कागाम्
स०	कस्याम्	कया	कासु

किम्—नपुंसक०

प्र०, द्वि०   किम्   के

शेष पुंवत् ।   )

५. स्व-वाचक सर्वनाम (Reflexive Pronouns)

१४०. संस्कृत में स्व-वाचक सर्वनाम का भाव आत्मन् (आत्मा) शब्द से तथा स्वयम् शब्द से प्रकट किया जाता है। आत्मन् शब्द का प्रयोग पुंलिंग में ही होता है और वह भी एक० में ही। जैसे-गुप्त ददृशुरात्मान सर्वा स्वप्नेषु वामनै (सभी दशरथ की स्त्रियों ने स्वप्न में देखा कि वे बौनों के द्वारा रक्षित हैं)। इसी प्रकार—स (सा) कृतापराधमिव आत्मानमवगच्छति। राजा स्वयं समरभूमिं जगाम, इत्यादि।

६. अनिश्चय-वाचक सर्वनाम (Indefinite Pronouns)

१४१. अनिश्चय-वाचक सर्वनाम किम् शब्द के किसी भी लिंग के किसी वचन के रूप के साथ चित्, चन, अपि या स्वित् लगाकर बनाए जाते हैं। जैसे—कश्चित्, कश्चन (कोई), कोऽपि, केनापि, क्याचन, क्याऽपि, कास्वित् आदि।

१४२. उपर्युक्त चित्, चन आदि निपात प्रश्नवाचक क्रियाविशेषणों के साथ भी अनिश्चय का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। जैसे—कदाचित् (कभी), कदाचन, कतिचित् (कुछ), क्वचित् (कहीं), आदि।

७. परिमाण और सादृश्य-वाचक सर्वनाम

(Correlative Pronouns)

१४३. परिमाण और सादृश्य-वाचक सर्वनाम यद्, तद् और एतद् शब्दों से वत् प्रत्यय लगाकर तथा इदम् और किम् शब्दों से यत्, दृश् और दृश लगाकर बनाए जाते हैं। इन प्रत्ययों को लगाने पर तद् को ता, एतद् को एता और यद् को या हो जाता है। यत् प्रत्यय लगाने पर इदम् का इयत् रूप हो जाता है और किम् का कियत्। दृश् और दृश बाद में होने पर इदम् को ई हो जाता है और किम् को की। जैसे—तावत् (तत् परिमाणमस्य), इयत् (इद परिमाणमस्य), तादृश (वैसा), ईदृश (ऐसा), कियत् (कितना), आदि।

१४४. संख्या या परिमाण अर्थ को सूचित करने के लिए तद्, यद् और किम् शब्दों से अति प्रत्यय हो जाता है। जैसे—तति (उतने), यति (जितने)

और कति (कितने)। इनके रूप बहुवचन मे ही चलते हैं। प्रथमा और द्वितीया में इनके आगे की विभक्ति का लोप हो जाता है। जैसे—कति, कति, कतिभि, कतिभ्य, कतिभ्य., कतीनाम्, कतिषु। प्रथम दो स्थानो को छोडकर शेप रूप हरिवत्।

८. परस्पर-सबन्ध-बोधक सर्वनाम (Reciprocal Pronouns)

१४५. अन्य, इतर और पर शब्दो की द्विरुक्ति के द्वारा पारस्परिक सबन्ध का बोध कराया जाता है। जैसे—अन्योन्य, इतरेतर और परस्पर। इनका प्रयोग साधारणतया एकवचन मे होता है और ये क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं। जैसे—परस्परेण स्पृहणीयशोभम्० (रघु० ७-१४), परस्पर विवदन्ते, आदि। समस्त पदो में इनका प्राय सबसे प्रथम रक्खा जाता है। जैसे—अन्योन्य-शोभाजननाद् बभूव (कुमार० १-४४), इतरेतरयोगा (शिशुपाल० १०-२४), इत्यादि।

९ स्वामित्व-बोधक सर्वनाम (Possessive Pronouns)

१४६ स्वामित्व-बोधक सर्वनाम इस प्रकार बनाए जाते है—(क) तद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दो से ईय प्रत्यय लगाकर, (ख) अस्मद् और युष्मद् शब्दो से अ और ईन प्रत्यय लगाकर। अ और ईन प्रत्यय लगाने पर एकवचन मे अस्मद् को मामक् और युष्मद् को तावक् हो जाता है तथा बहु-वचन में इनको क्रमश आस्माक् और यौष्माक् हो जाता है। जैसे—

अस्मद्—पुंलिंग

एकवचन	बहुवचन
मदीय (मेरा)	अस्मदीय (हमारा)
मामक (मेरा)	आस्माक (हमारा)
मामकीन (मेरा)	*आस्माकीन (हमारा)*

अस्मद्—स्त्रीलिंग

एक०	बहु०
मदीया (मेरी)	अस्मदीया (हमारी)
मामिका (मेरी)	आस्माकी (हमारी)
मामकीना (मेरी)	आस्माकीना (हमारी)

युष्मद्--पुंलिंग

एक०		बहु०	
त्वदीय	(तेरा)	युष्मदीय	(तुम्हारा)
तावक	(तेरा)	यौष्माक	(तुम्हारा)
तावकीन	(तेरा)	यौष्माकीण	(तुम्हारा)

युष्मद्--स्त्रीलिंग

एक०		बहु०	
त्वदीया	(तेरा)	युष्मदीया	(तुम्हारा)
तावकी	(तेरा)	यौष्माकी	(तुम्हारा)
तावकीना	(तेरा)	यौष्माकीणा	(तुम्हारा)

तद्

पुंलिंग--तदीय, स्त्रीलिंग--तदीया

एतद्

पुंलिंग--एतदीय, स्त्रीलिंग--एतदीया

सूचना--इनके रूप राम, रमा और नदी के तुल्य चलाने। स्व शब्द सर्वनाम है। उसके रूप सर्वनाम शब्दो के तुल्य चलेगे।

१०. सर्वनाम-सवन्धी विशेषण (Pronominal Adjectives)

१४७. अन्य (और), अन्यतर (दो मे से एक), इतर (दूसरा), एकतम (बहुतो मे से एक), कतर (कौन, दो मे से), कतम (कौन, बहुतो मे से), यतर (जो, दो मे से), यतम (जो, बहुतो मे से), ततर (वह, दो मे से), ततम (वह, बहुतो मे से), इनके रूप तीनो लिंगो में यद् के तुल्य चलेंगे। जैसे--

पुंलिग --	कतर	कतरौ	कतरे प्र०, इत्यादि।
स्त्रीलिंग --	कतरा	कतरे	कतरा प्र०, इत्यादि।
नपुसकलिंग--	कतरत्	कतरे	कतराणि प्र०, इत्यादि।

सूचना--अन्यतम शब्द सर्वनाम नहीं है, क्योकि इसका सर्वादिगण में उल्लेख नहीं है। (तत्रान्यतमशब्दस्य गणे पाठाभावान्न सज्ञा, सि० कौ०) इसलिए इसके रूप रामवत् चलेगे।

१४८. आगे लिखित शब्दो के रूप यद् शब्द के तुल्य चलेंगे, केवल नपुसक० प्र० द्वि० के एकवचन मे अन्त में म् लगेगा। सर्व, विश्व, सम, सिम (चारो का अर्थ है सब), उभ (केवल द्विवचन में रूप चलते है), उभय (वैचट और अन्य

वैयाकरणो के अनुसार इसके रूप द्विवचन में नही चलते है)।(उभ उभय दोनो का अर्थ है--दोना), इतर, एकतर (दो मे से एक) । जैसे--

सर्व--पुलिंग (सव)

प्र०	सर्व	सर्वौ	सर्वे
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वै
च०	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
प०	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
ष०	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम्
स०	सर्वस्मिन्	सर्वयो	सर्वेषु

स्त्रीलिंग

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वा
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वा
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभि
च०	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य
प०	सर्वस्या	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्य
ष०	सर्वस्या	सर्वयो	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वयो	सर्वासु

नपुसकलिंग

प्र०, द्वि०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

शेष पुलिंग के तुल्य ।

(क) सम शब्द 'बराबर' अथ मे सर्वनाम नही है। इस अर्थ में इसके रूप रामवत् चलेगे । जैसे--सम समौ समा प्र०, समाय च० एक०, समानाम् ष० बहु० । जैसा कि पाणिनि के इस सूत्र में प्रयोग है--यथासख्यमनुदेश समानाम् (१-३-१०) ।

१४६. विशेष--त्व और त्व (सर्वादिगण मे १०वाँ और ११वाँ) का अर्थ है--अन्य (दूसरा) । इनमे से पहला शब्द उदात्त है और दूसरा अनुदात्त । दोनो अकारान्त है और इनके रूप सव के तुल्य चलेगें । कुछ वैयाकरणो का मत है कि इनमें से पहला शब्द तकारान्त त्वत् है और इसके रूप तकारान्त शब्दो के तुल्य चलेगे । जैसे--त्वत् त्वतौ त्वत प्र०, इत्यादि ।

१५०. ज्ञाति (सबन्धी) और धन अर्थ को छोडकर शेष अर्थों में स्व शब्द सर्वनाम है और इसके रूप तीनो लिंगो मे सर्व के तुल्य चलेंगे।[1] स्व शब्द के प्र० बहु०, प० एक०, स० एक० मे राम और सर्व दोनो के तुल्य रूप चलते है। जैसे—स्वे स्वा (अपने) प्र० बहु०, किन्तु स्वा (अपने सबन्धी) ही रूप ज्ञाति अर्थ मे बनेगा और रामवत् रूप चलेंगे।

१५१. अन्तर शब्द बाहर और बाहरपहनने योग्य वस्त्रादि के अर्थ मे सर्वनाम है। इसके रूप तीनो लिंगो मे सर्व के तुल्य चलेंगे।[2] पुर् शब्द बाद मे होगा तो यह सर्वनाम नही होगा।[3] प्र० बहु०, प० एक० और स० एक० मे यह विकल्प से सर्वनाम होगा, अत इन स्थानो पर राम और सब दोनो के तुल्य रूप चलेंगे। जैसे—अन्तरे अन्तरा वा गृहा। अन्तरे अन्तरा वा शाटका (वस्त्र)। किन्तु पुर् बाद मे होने पर अन्तरायां पुरि ही रूप बनेगा।

१५२. नेम शब्द 'आधा' अर्थ मे सर्वनाम है और इसके रूप सर्व शब्द के तुल्य चलते है। प्र० बहु० मे राम के तुल्य भी रूप होता है—नेमे—नेमा। शेष सर्ववत्।

१५३. पूर्व (पहले, पूर्व दिशा), पर और अवर (बाद का, पश्चिम दिशा), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (श्रेष्ठ, उत्तर दिशा, बाद का), अपर (दूसरा) और अधर (नीचा, छोटा), जब ये शब्द किसी वस्तु या समय आदि से सबद्ध स्थान, काल या व्यक्ति का निर्देश करते है तब ये सर्वनाम शब्द होते है, किसी की सज्ञा या नाम होगे तो नही।[4] इनके रूप सर्व के तुल्य चलेंगे। किन्तु प्र० बहु०, प० एक और स० एक० मे इनके रूप विकल्प से रामवत् भी होगे। जैसे—पूर्वे पूर्वाः पूर्वे-पूर्वाः प्र०, पूर्वस्मात्-पूर्वात् पूर्वास्याम् पूर्वेभ्य प०, पूर्वस्मिन्—पूर्वे सप्तमी, इत्यादि। चतुर अर्थ वाले दक्षिण शब्द के रूप रामवत् चलेंगे, अत दक्षिणा गायका (कुशल गायक) मे दक्षिणा ही रूप होगा, दक्षिणे नही। सज्ञावाचक उत्तर शब्द के रूप रामवत् चलेंगे। अत उत्तरा कुरव (उत्तरकुरु देश)। यहाँ उत्तरे रूप नही होगा।

---

१ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् (१-१-३५)।

२. अन्तर बहिर्योगोपसंख्यानयो (१-१-३६)।

३ अन्तर बहिर्योगेति गणसूत्रे अपुरि इति वक्तव्यम् (वार्तिक)।

४. पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसज्ञायाम् (१-१-३४)।

१५४. सख्यावाचक एक शब्द के रूप एकवचन मे ही चलते है और द्वि शब्द के द्विवचन मे। दोनो शब्दो के रूप तीनो लिंगो मे सर्व के तुल्य चलते हैं। रूप चलाने मे द्वि का द्व हो जाता है।

	एक		द्वि०	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री० नपु०
प्र०	एक	एका	द्वौ	द्वे
द्वि०	एकम्	एकाम्	द्वौ	द्वे
तृ०	एकेन	एकया	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	एकस्मै	एकस्यै	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
प०	एकस्मात्	एकस्या	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष०	एकस्य	एकस्या	द्वयो	द्वयो
स०	एकस्मिन्	एकस्याम्	द्वयो	द्वयो

एक० नपु०—एकम् प्र०, द्वि०। शेष पुवत्।

जब एक शब्द का एक सख्या अर्थ नही होता तो इसके रूप द्विवचन और बहुवचन में भी चलेगे।

१५५. एक शब्द का इन विभिन्न अर्थो मे प्रयोग होता है —

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि सख्याया च प्रयुज्यते ॥

अल्प (थोडा), प्रधान (मुख्य, प्रमुख), प्रथम (पहला), केवल (अकेला), साधारण (सामान्य, जैसे—अविमृश्यकारित्व हि आपद एको हेतु), समान (तुल्य, जैसे—अयम् एकान्वयो मम), सख्या (एक सख्या)।

१५६. प्रथम, चरम, अल्प, अर्ध, कतिपय और तय-प्रत्ययान्त शब्दो के प्रथमा बहु० मे सर्व के तुल्य भी रूप बनते है। जैसे—प्रथमे प्रथमा, कतिपये—कतिपया, द्वितये-द्वितया इत्यादि।

११. सर्वनाम-सबन्धी क्रियाविशेषण (Pronominal Adverbs)

१५७ अधिक प्रचलित सर्वनाम-सबन्धी क्रियाविशेषण शब्द तद्, एतद्, यद्, इदम्, किम् और सर्व इन सर्वनाम शब्दो से तथा पूर्व, पर आदि सर्वनाम-विशेषण शब्दो से निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनाए जाते है —(क) पचमी

या सप्तमी के अर्थ में होने वाले त, त्र, ह,[1] क्व आदि, (ख) समय-बोधक दा, दानीम्, र्हि आदि,[2] (ग) दिशा, स्थान और समयबोधक तात् प्रत्यय,[3] (घ) दिशाबोधक आ, आत्, आहि[4] आदि, (ङ) प्रकार या ढंग के वाचक था, थम् आदि प्रत्यय। जैसे—

तद् ... तदा (तब), तदानीम् (उस समय), तर्हि (तब, तो), तथा (वैसे), तत्र (वहाँ), तत (वहाँ से, तत्पश्चात्, तब) आदि।

इदम् ... इदानीम् (अब), इत्थम् (इस प्रकार), अत्र (यहाँ), अत (इसलिए), इत (यहाँ से), अधुना (अब), इह (यहाँ)।

एतद् .. एतर्हि (अब), इत्थम् (इस प्रकार), अत (इसलिए, यहाँ से), अत्र (यहाँ)।

यद् ... यर्हि (जब), यदा (जब), यथा (जैसे), यत्र (जहाँ), यत. (जहाँ से, क्योंकि)।

किम् ... कर्हि (कब), कदा (कब), कथम् (क्यों), कुत्र (कहाँ), क्व (कहाँ), कुत (कहाँ से, कहाँ), कुह (कहाँ से, कैसे)।

सर्व ... सर्वदा (सदा), सदा (हमेशा), सर्वत (सभी ओर, सर्वत्र), सर्वत्र (सभी जगह, सभी स्थानों पर)।

पर ... परत (आगे, आगे की ओर) आदि।

पूर्व ... पुर, पुरस्तात् (सामने, आगे) आदि।

अधर ... अध, अधस्तात् या अधरस्तात्, अधरत, अधरात् (नीचे, नीचे की ओर)।

---

१. देखो नियम ३०।

२. सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा (५-३-१५)। इदमो र्हिल् (५-३-१६)। अधुना (५-३-१७)। दानीं च (५-३-१८)। तदो दा च (५-३-१९)। अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (५-३-२१)।

३. दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः (५-३-२७)।

४ उत्तराधरदक्षिणादातिः (५-३-३४)। दक्षिणादाच् (५-३-३६)। आहि च दूरे (५-३-३७)। प्रकारवचने थाल् (५-३-२३)। इदमस्थमुः (५-३-२४)। किमश्च (५-३-२५)।

अवर ... अव, अवस्तात् या अवरस्तात्, अवरत (पीछे, नीचे, नीचे की ओर)।

अपर ... पश्चात् (पीछे से, बाद मे, पश्चिम की ओर) आदि।

दक्षिण .. दक्षिणा, दक्षिणात्, दक्षिणाहि (दाहिनी ओर, दक्षिण की ओर)।

उत्तर .. उत्तरा, उत्तरात्, उत्तराहि (उत्तर की ओर)।

१५८. निम्नलिखित स्थानों पर सर्व आदि शब्द सर्वनाम नही माने जाते हैं और उनके रूप सर्वनाम शब्दो के तुल्य नही चलेंगे—(क) किसी के नामवाचक होने पर, (ख) समास में गौणरूप से प्रयोग होने पर, (ग) तृतीया-तत्पुरुष समास होने पर या तृतीया तत्पुरुष अर्थ वाले वाक्य के अन्त में होने पर, (घ) द्वन्द्व समास का अन्तिम शब्द होने पर।[1] जैसे—अतिक्रान्त. सर्वम् अतिसर्व, तस्मै अतिसर्वाय। इसका अतिसर्वस्मै रूप नही होगा। इसी प्रकार अतिकतर कुलम्, मासपूर्वाय या मासेन पूर्वाय (इसका मासपूर्वस्मै रूप नही होगा), वर्णाश्रमेतराणाम् आदि। द्वन्द्व समास में प्रथमा बहु० में विकल्प से सर्वनाम होगा।[2] जैसे—वर्णाश्रमेतरे, वर्णाश्रमेतरा।

———

१ सञ्ज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादय (वार्तिक)। तृतीयासमासे (१-१-३०)। द्वन्द्वे च (१-१-३१)।

२. विभाषा जसि (१-१-३२)।

अध्याय ५

संख्यावाचक शब्द और उनके रूप

(Numerals And Their Declension)

१५६.

	संख्याशब्द (Cardinals)	संख्येय शब्द (Ordinals) पुंलिंग, नपुं०	स्त्रीलिंग
१.	एक	प्रथम, अग्रिम, आदिम,	प्रथमा
२.	द्वि	द्वितीय,	० या
३.	त्रि	तृतीय,	० या
४.	चतुर्	चतुर्थ,	० र्थी
५.	पञ्चन्	पञ्चम,	० मी
६.	षष्	षष्ठ,	० ष्ठी
७	सप्तन्	सप्तम,	० मी
८.	अष्टन्	अष्टम,	० मी
९.	नवन्	नवम,	० मी
१०.	दशन्[1]	दशम,	० मी
११.	एकादशन्	एकादश,	० शी
१२.	द्वादशन्	द्वादश,	० शी
१३.	त्रयोदशन्	त्रयोदश,	० शी
१४.	चतुर्दशन्	चतुर्दश,	० शी
१५.	पञ्चदशन्	पञ्चदश,	० शी
१६.	षोडशन्[2]	षोडश,	० शी
१७.	सप्तदशन्	सप्तदश,	० शी
१८.	अष्टादशन्	अष्टादश,	० शी

---

१. पङ्क्ति शब्द का भी अर्थ दस है। देखो रघु० ९-७४।

२. षष् को षो अवश्य हो जाता है, बाद में दत् (दन्त शब्द को दत् होने पर) या दश शब्द हो तो। धा बाद में होने पर षोढा और षड्धा रूप बनते हैं। षो के बाद द को ड हो जाता है। देखो नियम १६९ ख।

७०	सप्तति (स्त्री०)	सप्ततितम, ० मी
७१	एकसप्तति	एकसप्तत, ० ती, एकसप्ततितम, ० मी
७२	द्वासप्तति, द्विसप्तति	
७३	त्रय सप्तति, त्रिसप्तति	
७४	चतुस्सप्तति	
७५	पञ्चसप्तति	
७६	षट्सप्तति	
७७	सप्तसप्तति	
७८	अष्टसप्तति या अष्टासप्तति	
७९	नवसप्तति या एकोनाशीति, आदि	
८०	अशीति (स्त्री०)	अशीतितम, ० मी
८१	एकाशीति	एकाशीत, ० ती, एकाशीतितम, ० मी
८२	द्व्यशीति	
८३	त्र्यशीति	
८४	चतुरशीति	
८५	पञ्चाशीति	
८६	षडशीति	
८७	सप्ताशीति	
८८	अष्टाशीति	
८९	नवाशीति या एकोननवति आदि	
९०	नवति (स्त्री०)	नवतितम, ० मी
९१	एकनवति	एकनवत ० ती, एकनवतितम, ० मी
९२	द्वानवति या द्विनवति	
९३	त्रयोनवति या त्रिनवति	
९४	चतुर्नवति	
९५	पञ्चनवति	
९६	षण्णवति	
९७	सप्तनवति	
९८	अष्टनवति या अष्टानवति	

९९. नवनवति या एकोनशतम्, आदि
१००. शतम् (नपु०) शततम (पु०, नपु०), ० मी (स्त्री०)
२००. द्विशत (नपु०) या द्वे शते
३००. त्रिशत (नपु०) या त्रीणि शतानि
१०००. सहस्र (नपु०) सहस्रतम, ० मी या दशशत (नपु०) दशशती
१०,००० अयुत (नपुं०), १००,००० लक्ष (नपु०), लक्षा (स्त्री), प्रयुत (नपु०), कोटि (स्त्री०), अर्बुद (नपु०), अब्ज (नपु०), खर्व (पु०, नपु०), निखर्व (पु०, नपु०), महापद्म (पु०), शंकु (पु०), जलधि (पु०), अन्त्य (नपु०), मध्य (नपु०), परार्ध (नपु०)। इनमें से प्रत्येक पहली सख्या से दस गुना है।[1]

१६०. संख्या-शब्दो के बनाने में इन बातो का ध्यान रक्खे—विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत् आदि से पहले एक, द्वि आदि शब्द नवन् तक लगाकर आगे की सख्याएँ बनाई जाती हैं। १९, २९, ३९ आदि ९ की सख्या वाले शब्दों को दो प्रकार से बनाया जाता है—(क) पहली दशक वाली सख्या से पहले नव शब्द लगाकर। जैसे—नवदश, नवविंशति आदि। (ख) अगली दशक वाली सख्या लेकर उससे पहले एकोन, ऊन या एकान्न शब्द लगाकर। जैसे—एकोनविंशति (१९), ऊनविंशति, एकान्नविंशति आदि। विंशति और त्रिंशत् से पहले द्वि को द्वा, त्रि को त्रय और अष्टन् को अष्टा अवश्य हो जाता है। चत्वारिंशत् आदि आगे की सख्याओं से पहले द्वि, त्रि, अष्टन् को ये आदेश विकल्प से होते है। अशीति से पहले इन सख्याओं में कोई परिवर्तन नही होता है।[2]

१६१. १००, २००, ३०० आदि के बीच की सख्याओं का बोध जितनी सख्या सौ आदि मे अधिक है, उस सख्या के बाद अधिक शब्द का प्रयोग करके

---

१. एकदशशतसहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।
अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्वमहापद्मशंकवस्तस्मात्॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
सख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः॥

२ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (६-३-४७)। त्रेस्त्रयः (६-३-४८)।
विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् (६-३-४९)

उन्हें प्राय १०० आदि की संख्या से पहले रख देते हैं। जैसे—१०१ के लिए एकाधिक शतम् या एकाधिकशतम्, ११२ के लिए द्वादशाधिक शतम् या द्वादशाधिकशतम्, १५० के लिए पञ्चाशदधिक शतम् इत्यादि। १००० से अधिक संख्या वाले स्थलों पर सैकड़ा और दहाई के बोधक शब्दों के साथ भी अधिक शब्द लगेगा। जैसे—१८९२ के लिए द्वि-द्वानवत्यधिकाष्टशताधिक सहस्रम्, १७७६३९ के लिए एकोनचत्वारिंशदधिकषट्शताधिकसप्तसप्तति सहस्राधिक लक्षम्, इत्यादि। इसी प्रकार अधिक शब्द के स्थान पर उत्तर शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—७५४ के लिए चतुःपञ्चाशदुत्तर सप्तशतम्। कभी-कभी 'च' (और) अव्यय का प्रयोग करके भी संख्याओं का बोध कराया जाता है। जैसे—७२० के लिए सप्त च शतानि विंशतिश्च।

१६२. निम्नलिखित स्थानों पर अधिक शब्द के स्थान पर तद्धित प्रत्यय ड (अ) करके भी प्रयोग किया जा सकता है। दशन् और शत् अन्त वाले शब्दों तथा विंशति शब्द से यह ड (अ) प्रत्यय होता है।[1] अ प्रत्यय करने पर दशन् के अन्, विंशति के अति और शत् के अन् का लोप हो जाता है। ये संख्याएँ शत या सहस्र की विशेषण होनी चाहिएँ। १११ से १५९ तक, २११ से २५९ तक, ३११ से ३५९ तक संख्याएँ इस श्रेणी में आती हैं। जैसे—१११-एकादश शतम्, १२० विंश शतम्, १५० पञ्चाश शतम्, २१७ सप्तदश द्विशतम् ३३० त्रिंश त्रिशतम्, इत्यादि।

१६३ एक, द्वि, त्रि, चतुर् और षष् शब्दों के संख्येय शब्द विशेष रूप से बनते हैं।[2] दशन् तक की अन्य संख्याओं के संख्येय शब्द बनाने का प्रकार यह है कि इनके अन्तिम न् को हटा दिया जाता है और म जोड़ दिया जाता है। एकादशन् से नवदशन् तक अन्तिम न हटा दिया जाता है। विंशति से लेकर आगे की संख्याओं से संख्येय बनाने का प्रकार यह है कि उनमें अन्त में तम लगा दिया जाता है अथवा विंशति का ति हटाया जाता है तथा त्रिंशत् आदि

---

१. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः। (५-२-४५)। शदन्तविंशतेश्च (५-२-४६), शतसहस्रयोरेवेष्यते (वार्तिक)।

२. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् (५-२-५१)। इससे षष्ठ, चतुर्थ. आदि रूप बनते हैं। 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च' (वार्तिक)। तुरीय, तुर्य। द्वेस्तीय (५-२-५४)। द्वितीय। त्रेः सम्प्रसारण च (५-२-५५)। तृतीय।

का अन्तिम अक्षर ।[1] षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति शब्दों से तम प्रत्यय लगा कर ही सख्येय शब्द बनते हैं, किन्तु समासयुक्त स्थलो पर इनके अन्तिम स्वर इ के स्थान पर अ हो जाता है और तम प्रत्यय वाला भी रूप बनता है। जैसे—६१वाँ एकषष्ट या एकषष्टितम , किन्तु ६०वाँ का षष्टितम ही रूप बनेगा। शत का शततम ही रूप बनता है।

सख्या और सख्येय शब्दों के रूप

१६४. एक (स्त्री० एका), द्वि (स्त्री० द्वा), त्रि (स्त्री० तिसृ)[2], चतुर् (स्त्री० चतसृ), ये विशेषण शब्द हैं। इनके लिंग, वचन और विभक्ति विशेष्य के तुल्य होते हैं।

१६५. एक शब्द के रूप एकवचन में चलते हैं। इसके रूप द्विवचन और बहुवचन में भी चल सकते हैं। द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में ही चलते हैं। विशेष विवरण के लिए देखो नियम १५४। त्रि और चतुर् शब्द के रूप बहुवचन में ही चलते हैं। जैसे—

त्रि

	पु०	स्त्री०	नपु०
प्र०	त्रय	तिस्र	त्रीणि
द्वि०	त्रीन	तिस्र	त्रीणि
तृ०	त्रिभि	तिसृभि	त्रिभि
च०	त्रिभ्य	तिसृभ्य	त्रिभ्य
प०	त्रिभ्य	तिसृभ्य	त्रिभ्य
ष०	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	त्रयाणाम्
स०	त्रिषु	तिसृषु	त्रिषु

चतुर्

	पु०	स्त्री०	नपु०
प्र०	चत्वार	चतस्र	चत्वारि
द्वि०	चतुर	चतस्र	चत्वारि
तृ०	चतुर्भि	चतसृभि	चतुर्भि
च०	चतुर्भ्य	चतसृभ्य	चतुर्भ्य

१. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् (५-२-५६)। षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः (५-२-५८)।
२ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ।(७ २-९९)

प०	चतुर्भ्य	चतसृभ्य	चतुर्भ्य
ष०	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
स०	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु

१६६. पञ्चन् से नवदशन् । ये भी विशेषण शब्द हैं। विशेष्य के तुल्य इनकी विभक्तियाँ होती हैं। इनके रूप केवल बहुवचन मे चलते हैं। इनके रूप तीनो लिंगो में एक ही प्रकार के होते हैं।

	पञ्चन्	षष्	अष्टन्
प्र०	पञ्च	षट्-ड्	अष्ट-अष्टौ
द्वि०	पञ्च	षट्-ड्	अष्ट-अष्टौ
तृ०	पञ्चभि	षड्भि	अष्टभि -अष्टाभि
च०	पञ्चभ्य	षड्भ्य	अष्टभ्य -अष्टाभ्य
प०	पञ्चभ्य	षड्भ्य	अष्टभ्य -अष्टाभ्य
ष०	पञ्चानाम्	षण्णाम्	अष्टानाम्-अष्टानाम्
स०	पञ्चसु	षट्सु	अष्टसु अष्टासु

सप्तन्, नवन् तथा नवदशन् तक अन्य सख्याओ के रूप पञ्चन् के तुल्य चलेंगे।

१६७ ऊनविंशति तथा विंशति से लेकर नवनवति तक सारे सख्या-शब्द स्त्रीलिंग हैं। शत, सहस्र आदि सभी शब्द नपुसक० हैं, पर लक्ष नपु० और स्त्री० दोनो है, कोटि स्त्री० है शकु और जलधि दोनो पुलिंग हैं तथा इनके रूप सामान्य शब्दो के तुल्य चलेंगे। इन शब्दो के रूप एकवचन मे ही चलते हैं। बहुवचन विशेष्य के साथ भी एकवचन वाले रूप का प्रयोग होगा। जैसे—पचविंशतिर्ब्राह्मणा (२५ ब्राह्मण), एकादशाधिकेन या एकादशोत्तरेण शतेन नरै स्त्रीभिर्वा (१११ पुरुषो या स्त्रियो के द्वारा), एकोनसहस्रेण रूपकै (९९९ रु० के द्वारा), इत्यादि। गणना के विविध प्रकारो में इनका द्विवचन और बहुवचन में भी प्रयोग हो सकता है। जैसे—ब्राह्मणाना विंशतय (ब्राह्मणो की कई विंशति), द्वे शते नारीणाम् (२०० नारियाँ), इत्यादि।

१६८ निम्नलिखित शब्दो को छोडकर अन्य सख्येय शब्दो के रूप सामान्य शब्दो के तुल्य चलते हैं —

प्रथम (देखो नियम १५६), द्वितीय और तृतीय शब्दो के रूप च०, प०,

प० और स० वे एकवचन मे विकल्प से सर्वनाम शब्दो के तुल्य चलते हैं।
जैसे—द्वितीयस्मै-द्वितीयाय, द्वितीयस्या -द्वितीयाया , इत्यादि।

सख्या-सवन्धी क्रियाविशेषण (Numeral Adverbs)

१६९ (क) सकृत् (एक वार), द्वि (दो वार), त्रि (तीन वार), चतु.
(चार वार) तथा पचन् से लेकर आगे के वार अर्थ के सूचक शब्दो के साथ
कृत्व प्रत्यय लगता है और उससे पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम न् का लोप हो
जाता है। जैसे—पञ्चकृत्व. (पाँच वार), सप्तकृत्व (सात वार), आदि।

(ख) प्रकार अर्थ वाले क्रियाविशेषण ये है —एकधा या ऐकध्यम्[1]
(एक प्रकार से), द्विधा-द्वेधा या द्वैधम् (दो प्रकार से, या दो भागो में),
त्रिधा-त्रेधा या त्रैधम् (तीन प्रकार से), चतुर्धा (चार प्रकार से), षोढा या
षड्धा (६ प्रकार से), सप्तधा, अष्टधा आदि।

(ग) एकश (एक-एक करके), द्विश (दो दो करके)। इसी प्रकार
त्रिश, शतश आदि।

१७०. सख्या-शब्दो से बने अन्य शब्द —

(क) शत् और ति अन्त वाले सख्या-शब्दो आदि से तद्धित प्रत्यय क
होता है। जैसे—पञ्चक (५ रुपये से खरीदी हुई वस्तु), चत्वारिंशतक
(४० रु० से खरीदी हुई वस्तु), विंशतिक (२० रु० से खरीदी हुई वस्तु)।

(ख) 'भागो से युक्त' या 'समूह' अर्थ में तय प्रत्यय लगता है।[2] जैसे—
चतुष्टय (स्त्री०, चतुष्टयी) (चार भागो से युक्त या चार का समूह)। इसी
प्रकार पञ्चतय (स्त्री० पचतयी)। द्वि और त्रि शब्द के बाद तय को अय
विकल्प से हो जाता है। जैसे—द्वय, द्वितय (स्त्री० द्वितयी) (दो भागो से
युक्त या दुहरी), त्रय, त्रितय (स्त्री० त्रितयी) (तिहरी या तीन भागो से युक्त)।

(ग) क या अन् प्रत्यय लगाकर। जैसे—षट्क (६ का समूह), पञ्चन्
(५ का समूह), दशत् (१० का समूह, दशक), आदि।

---

१ सख्याया विधार्थे धा (५-३-४२)। अधिकरणविचाले च (५-३-४३)।
एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् (५-३-४४)। द्वित्र्योश्च धमुञ् (५-३-४५)।
एधाच्च (५-३-४६)।

२. देखो अध्याय ९ में प्रारम्भिक नियम।

अध्याय ६

तुलनार्थक प्रत्यय (Degree of Comparison)

१७१. दो की तुलना मे तर और बहुतो की तुलना में तम प्रत्यय का बहुत अधिक प्रयोग होता है।[1] साधारणतया शब्दो का तृतीया द्विवचन मे भ्याम् से पहले जो रूप रह जाता है, वही तर और तम से पहले भी रहता है। जैसे—अयम् एतयोरतिशयेन लघु—लघुतर, अयम् एषामतिशयेन लघु—लघुतम. । इसी प्रकार युवन्-युवतर, युवतम, विद्वस्-विद्वत्तर, विद्वत्तम; प्राच्-प्राक्तर, प्राक्तम, धनिन्-धनितर, धनितम, धर्मबुध्-धर्मभुत्तर, धर्मभुत्तम, गुरु गुरुतर, गुरुतम, आदि। अति-अतितर, अतितम, उन्-उत्तर, उत्तम आदि।

१७२. तर और तम से पहले शब्द के अन्तिम ई और ऊ को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है। जैसे—श्रीतरा-श्रितरा, श्रीतमा-श्रितमा, घेमूतरा-घेमुतरा (अधिक लँगडा), घेमूतमा-घेमुतमा, इत्यादि।

१७३. तर और तम प्रत्यय जब क्रिया और क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले अव्ययों से होते हैं, तो इनका रूप तराम् और तमाम् हो जाता है।[2] पचतितराम्, पचतितमाम्, उच्चैस्तराम्, उच्चैस्तमाम्, नितराम्, नितमाम्, सुतराम्, आदि। किन्तु विशेषण शब्द उच्चैस्तर (अधिक ऊँचा) ही होगा।

१७४. दो की तुलना में ईयस् और बहुतो की तुलना में इष्ठ प्रत्यय भी होते है। ये दानों प्रत्यय गुणवाचक शब्दों से ही होते है।[3] ये दोनो प्रत्यय बाद

---

१. अतिशायने तमबिष्ठनौ (५-३-५५)। द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ (५-३-५७)। तिङश्च (५-३-५६)। तरप्तमपौ घ. (१-१-२२)। जब बहुतो में से एक वस्तु को बढकर बताया जाता है, तब तम और इष्ठ प्रत्यय होते हैं। जब दो की तुलना होती है और उनमें से एक को बढकर बताया जाता है, तब तर और ईयस् प्रत्यय होते हैं। तर और तम प्रत्यय धातुओ से भी होते है।

२. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (५-४-११)। किम्, एकारान्त शब्द, तिङन्त धातुरूप और अव्ययो के बाद तर और तम होगा तो उनके बाद आम् और लगेगा। यदि ये शब्द विशेषण होगे तो आम् नहीं लगेगा।

३. अजादी गुणवचनादेव (५-३-५८)। अजादी अर्थात् ईयस् और इष्ठ।

मे होंगे तो शब्द की टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर और उसके बाद का व्यजन) का लोप हो जाएगा। जैसे—लघु-लघीयस्, लघिष्ठ; पटु-पटीयस्, पटिष्ठ; महत्-महीयस्, महिष्ठ, आदि। किन्तु पाचक के पाचकतर, पाचकतम ही रूप बनेंगे।

१७५. मत्वर्थक प्रत्यय विन् और मत् का तथा तृ प्रत्यय का लोप हो जाता है, बाद में ईयस् या इष्ठ प्रत्यय हो तो।[1] ईयस् या इष्ठ लगने मे पूर्व टि लोप वाला नियम भी लगेगा। जैसे—मतिमन् (बुद्धिमान्)—मतीयस्, मतिष्ठ; मेधाविन्—मेधीयस्, मेधिष्ठ, धनिन्—धनीयस्, धनिष्ठ; कर्तृ—करीयस्, करिष्ठ (अतिशयेन कर्ता), स्तोतृ—स्तवीयस्, स्तविष्ठ। इसी प्रकार स्रग्विन् (मालाधारी) से स्रजीयस् और स्रजिष्ठ रूप होंगे।

१७६. ईयस्, इष्ठ और इमन् प्रत्यय बाद मे होने पर ह्रस्व ऋ के स्थान पर र हो जाता है। शब्द के प्रारम्भ में कोई व्यजन अक्षर होना चाहिए।[2] जैसे—

शब्द(Positive)	ईयस् प्रत्यय(comparative)	इष्ठ प्रत्यय(Superlative)
कृश (दुर्बल)	क्रशीयस्	क्रशिष्ठ
दृढ (बलवान्)	द्रढीयस्	द्रढिष्ठ
परिवृढ (मुख्य)	परिव्रढीयस्	परिव्रढिष्ठ
पृथु (विशाल, चौडा)	प्रथीयस्	प्रथिष्ठ
भृश (अधिक)	भ्रशीयस्	भ्रशिष्ठ
मृदु (कोमल)	म्रदीयस्	म्रदिष्ठ

१७७. अधिक प्रचलित शब्दों के ईयस् और इष्ठ प्रत्यय से बनने वाले रूप नीचे दिए गए हैं। ये अपवाद शब्द है और अकारादि-क्रम से दिए गए हैं।—

शब्द (Positive)	ईयस् प्रत्यय (Comparative)	इष्ठ प्रत्यय (Superlative)
अन्तिक (समीप)[3]	नेदीयस्	नेदिष्ठ
अल्प (थोडा)[4]	अल्पीयस्, कनीयस्	अल्पिष्ठ, कनिष्ठ

१. विन्मतोर्लुक् (५-३-६५)। तुरिष्ठेमेयःसु (६-४-१५४)।
२. र ऋतो हलादेर्लघोः (६-४-१६१)।
३. अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ (५-३-६३)
४. युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् (५-३-६४)

उरु (विशाल)[1]	वरीयस्	वरिष्ठ
क्षिप्र (तीव्र)[2]	क्षेपीयस्	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र (तुच्छ)	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
गुरु (भारी)	गरीयस्	गरिष्ठ
तृप्र (चिन्तित, सन्तुष्ट)	त्रपीयस्	त्रपिष्ठ
दीर्घ (लम्बा)	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
दूर (दूर)	दवीयस्	दविष्ठ
प्रशस्य (प्रशसनीय)[3]	श्रेयस्, ज्यायस्	श्रेष्ठ, ज्येष्ठ
प्रिय (प्रिय)	प्रेयस्	प्रेष्ठ
बहु (अधिक)[4]	भूयस्	भूयिष्ठ
बहुल (अधिक)	बंहीयस्	बंहिष्ठ
बाढ (दृढ, ठीक)	साधीयस्	साधिष्ठ
युवन् (युवक)	यवीयस्, कनीयस्	यविष्ठ, कनिष्ठ
विपुल (बहुत)	ज्यायस्	ज्येष्ठ
वृद्ध (वृद्ध)	वर्षीयस, ज्यायस्	वर्षिष्ठ, ज्येष्ठ
वृन्दारक (बहुत सुन्दर)	वृन्दीयस्	वृन्दिष्ठ
स्थिर (स्थायी)	स्थेयस्	स्थेष्ठ
स्थूल (बड़ा, मोटा)	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
स्फिर (बहुत)	स्फेयस्	स्फेष्ठ
ह्रस्व (छोटा)	ह्रसीयस्	ह्रसिष्ठ

२७८. ईयस् और इष्ठ प्रत्ययान्त के बाद भी अर्थ के महत्त्व को बढाने के लिए तर और तम प्रत्यय कहीं-कहीं लगाए जाते है। जैसे—पापीयस्तर, पापीयस्तम, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम।

---

१ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः (६-४-१५७)। प्रिय, स्थिर, स्फिर आदि के स्थान पर क्रमशः प्र, स्थ, स्फ, वर् आदि आदेश होते हैं।

२ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः (६-४-१५६)। स्थूल आदि शब्दों के अन्तिम य, र, ल, व का लोप हो जाता है और उससे पूर्ववर्ती स्वर को गुण हो जाता है।

३ प्रशस्यस्य श्रः (५-३-६०)। ज्य च (५-३-६१)। वृद्धस्य च (५-३-६२)।

४ बहोर्लोपो भू च बहोः (६-४-१५८)। इष्ठस्य यिट् च (६-४-१५९)।

अध्याय ७

समास (Compounds)

१७९. संस्कृत व्याकरण में वृत्ति शब्द क्लिष्ट शब्द-रचना के अर्थ को
प्रकट करता है, जिनकी व्याख्या की आवश्यकता होती है। वृत्ति का
अर्थ है—परार्थाभिधान अर्थात् दूसरे (प्रत्यय, पदार्थ) के अर्थ को कहना।
वृत्तियाँ ५ होती हैं —(१) कृद्वृत्ति—धातुओं के साथ कृत् प्रत्ययों को लगा
कर रूप बनाना, (२) तद्धितवृत्ति—शब्दों से तद्धित प्रत्ययों को लगाकर रूप
बनाना, (३) धातुवृत्ति या सनाद्यन्त धातुवृत्ति—धातुओं से सन् प्रत्यय आदि
लगाकर रूप बनाना। (४) समासवृत्ति—एक से अधिक शब्दों का समास
करके समस्त शब्द बनाना। (५) एकशेषवृत्ति—समान रूप या अर्थ वाले
अनेक शब्दों में से एक शब्द का शेष रहना और सभी शब्दों का अर्थ प्रकट
करना। प्रथम तीन का आगे यथास्थान वर्णन किया जाएगा। इस अध्याय
में अन्तिम दो वृत्तियों का विवरण दिया जाएगा।

१८०. संस्कृत में प्रातिपदिक, विशेषण क्रिया-शब्द और अव्यय, इन शब्दों
में सामर्थ्य है कि वे एक दूसरे के साथ मिल सकें और मिलकर समान-
युक्त शब्द या समस्त शब्द बना सकें।[1]

(क) इस प्रकार से बने हुए समस्त शब्द का फिर साधारण या समस्त शब्द
के साथ समास हो सकता है और यह समस्त पद फिर किसी समस्त पद का
अवयव हो सकता है।

१८१ साधारणतया समास में कई शब्दों को मिला दिया जाता है।
विग्रह की अवस्था में प्रत्येक पद अपने पारस्परिक सम्बन्धों का बोध नहीं कराता
है। समस्त पद ही अपने अवयवों में विद्यमान विभिन्न सम्बन्धों का बोध
कराता है। अन्तिम शब्द के बाद में ही विभक्तियाँ लगती हैं और वाक्य में
अपने सम्बन्ध के अनुसार उसमें लिंग आदि होते हैं। शेष शब्द (व्यञ्जनान्त

१. समास का अर्थ है—सम् + अस्, अच्छे प्रकार से मिलाना।

शब्दो) का प्राय वही रूप रहना है, जो हलादि विभक्तियो से पहले रहता है । जैसे—विद्वस् + जन = विद्वज्जन, राजन् + पुरुष = राजपुरुष आदि ।

१८२. समस्त पदो में स्वरान्त या व्यजनान्त प्रथम शब्द का अगले शब्द के प्रथम अक्षर के साथ मेल होने पर सामान्यतया जो सन्धि-नियम लागू होते है, वे लगेंगे ।

१८३ कुछ समस्त पदो मे बीच की विभक्तियो का लोप नही होता है, एसे समास को अलुक् समास कहते है । जैस—देवाना प्रिय (मूर्ख), युधिष्ठिर (पाण्डवो में सबसे बडे भाई का नाम)।

१८४. समासो को स्पष्ट करने वाले वाक्यो को विग्रह-वाक्य कहते है । इन विग्रह-वाक्यो में वे विभक्तियाँ लगाई जाती हैं, जिनके द्वारा समस्त पद के प्रत्येक शब्द का पारस्परिक सबन्ध ठीक ढग से स्पष्ट हो सके ।

(क) जिन स्थानो पर समस्त पद के ही विविध शब्द विग्रह में न दिए जा सकें या जिनका विग्रह-वाक्य देना सभव न हो, ऐस समास को नित्य समास कहते हैं । (अविग्रहो नित्यसमास, अस्वपदविग्रहो वा, सि० कौ०)

१८५. समासो को मुख्यतया चार भागो में बाँटा गया है —

(१) द्वन्द्व (copulative), (२) तत्पुरुष (Determinative), (३) बहुव्रीहि (Attributive), (४) अव्ययीभाव (Adverbial) [१]

विशेष—समासो के ये नाम अपने नाम मात्र से किसी अर्थ को स्पष्ट नही करते है अर्थात् ये नाम समासो की मुख्य विशेषताओ को प्रकट नही करते है।

---

१. साधारण रूप से कहने पर समास के चार भेद होते हैं। समास का पाँचवाँ भेद भी है—सहसुपा समास । चारो समासो मे दिए गए नियम इस समास पर लागू नही होते हैं । इस समास का अभिप्राय है कि किसी भी सुबन्त पद का किसी भी सुबन्त पद के साथ समास हो सकता है । कुछ वैया करणो के मतानुसार समास के ६ भेद हैं—सुपा सुपा तिडा नाम्ना धातुनाऽथ तिडा तिडा सुबन्तेनेति विज्ञेय समास षड्विधो बुधै । अर्थात् सुपा सुपा—राजपुरुष । तिडा—पर्यभूषत् । नाम्ना—कुम्भकार । धातुना—कटप्रू, अजस्रम् । तिडा तिडा—पिबतखादता, खादतमोदता । तिडा सुपा—कृन्तविचक्षणेति यस्या क्रियाया सा कृन्तविचक्षणा । एहीडादयोऽन्यपदार्थे इति मयूरव्यसकादौ पाठात् समास । (सि० कौ०)

समासों के नामों में अन्तर करने के लिए ये शब्द अपनाए गए हैं। ये नाम सामान्य समासशब्दों के तुल्य समझने चाहिएँ।

१. द्वन्द्व समास (Copulative compounds)

१८६. द्वन्द्व समास में दो या अधिक संज्ञा-शब्दों का समास होता है। ये शब्द विग्रह की अवस्था में च (और) अव्यय के द्वारा संबद्ध होते हैं।[1] जैसे—रामकृष्णौ और रामः च कृष्णः च, ये दोनों समानार्थक हैं। पाणिपादम् और पाणी च पादौ च, ये दोनों समानार्थक हैं। द्वन्द्व समास के तीन भेद हैं—इतरेतर, समाहार द्वन्द्व और एकशेष।[2]

१८७ जहाँ पर द्वन्द्व समास में समस्त पदों का पृथक् पृथक् अन्वय किया जाता है वहाँ पर इतरेतर द्वन्द्व होता है। जैसे—यवखदिरौ छिन्धि (जौ और खैर के पेड़ को काटो)। इस वाक्य में यव और खदिर दोनों शब्द समस्त हैं और दोनों का महत्व समान है। वर्णित वस्तुओं की संख्या के अनुसार द्विवचन या बहुवचन होता है। इस समास में अन्तिम पद का जो लिंग होता है, वही पूरे समस्त पद का लिंग होता है।[3] जैसे—कुक्कुटश्च मयूरी च—कुक्कुटमयूर्यौ इमे। मयूरी स्त्रीलिंग है, अतः स्त्रीलिंग द्विवचन मानकर इमे स्त्री० का द्वि० इमे प्रयुक्त हुआ है। मयूरी च कुक्कुटश्च—मयूरीकुक्कुटौ इमौ। कुक्कुट के कारण पुंलिंग इमौ का प्रयोग है। रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च—रामलक्ष्मण-भरतशत्रुघ्ना, इत्यादि।

---

१. चार्थे द्वन्द्वः (२-२-२९)

२ वस्तुतः एकशेष को द्वन्द्व का उपभेद कहना ठीक नहीं है। एकशेष स्वयं एक पृथक् वृत्ति है। (देखो नियम १७५)। कुछ वैयाकरण एकशेष को द्वन्द्व नहीं मानते हैं। सुविधा के लिए इसको द्वन्द्व मान लिया जाता है। भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि एकशेष में एक से अधिक सुबन्त नहीं होते हैं, अतः इसे द्वन्द्व नहीं कहना चाहिये। (अनेकसुबन्ताभावात् न द्वन्द्वः)। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि द्वन्द्व समास का अन्तिम स्वर उदात्त होता है, परन्तु एकशेष को समास में गिनना नहीं है, अतः इसका अन्तिम स्वर उदात्त नहीं होता है।

३. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। (२-४-२६)

अपवाद—अश्वश्च वडवा च अश्ववडवौ (पु० द्विव०) (घोडा और खच्चर), अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र (पु० द्विव०, दिन और रात)।

१८८. समाहार द्वन्द्व द्वन्द्वसमास का वह भेद है, जिसमें अनेक वस्तुओ के समूह या संग्रह का भाव प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सदा नपुंसकलिंग और एकवचन ही होता है। जैसे—आहारनिद्राभयम् का अर्थ केवल भोजन, नींद और भय ही नहीं, अपितु पशु-जीवन की सभी विशेषताएँ इसम निहित हैं। इस समास में समूह का अर्थ मुख्य होता है और विभिन्न पदों का अर्थ गौण।

१८९. इन स्थानो पर समाहार द्वन्द्व होता है—शरीर के अंगों के वाचक शब्दो का, विविध वाद्यो को बजाने वालों का, सेना के अंगवाचक शब्दो का, निर्जीव वस्तुओं का (वस्तुओ या द्रव्यो का ही, गुणो का नही), भिन्न लिंग वाले नदीवाचक शब्दो का और देशो का (ग्रामो का नही), क्षुद्र जन्तुओ कीटादि का, जिन जीवो में स्वाभाविक विरोध है उनका।[1] जैसे—पाणी च पादौ च—पाणिपादम् (हाथ-पैर), रथिकाश्च अश्वारोहाश्च—रथिकाश्वारोहम् (रथी और घुडसवार), मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च—मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदंग और पणव अर्थात् ढोल बजाने वाले), धानाश्च शष्कुल्यश्च–धाना-शष्कुलि (भुने धान और पूडी)। रूप च रसश्च–रूपरसौ (रूप और रस), गुणवाचक होने से यहाँ द्विवचन है। गङ्गा च शोणश्च—गङ्गाशोणम् (गंगा और सोन नदियाँ)। गंगा च यमुना च–गंगायमुने। दोनो में लिंगभेद नही है, अत द्विवचन है। कुरवश्च कुरुक्षेत्र च–कुरुकुरुक्षेत्रम् (दो देशो के नाम)। इन स्थानों पर समाहार नहीं होगा—जाम्बव च शालूकिनी च—जाम्बवशालूकिन्यौ (इनमे शालूकिनी गाँव का नाम है)। मद्राश्च केकयाश्च—मद्रकेकया (दोनो में लिंगभेद नहीं है। दो देशो के नाम हैं)। यूका च लिक्षा च—यूकालिक्षम् (जूँ और लीख)। अहिश्च नकुलश्च—अहिनकुलम् (साँप और न्योला)।

१९०. निम्नलिखित स्थानो पर विकल्प से समाहार द्वन्द्व होता है, अत एकवचन भी होगा और द्विव० बहु० भी। वृक्षवाचक शब्दो का, मृगवाचक शब्दो

---

१. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् (२–४–२), जातिरप्राणिनाम् (२–४–६), विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः (२–४–७), क्षुद्रजन्तवः (२–४–८), येषा च विरोधः शाश्वतिकः (२–४–९)।

का, तृणों का, धान्य या अनाजों का, व्यजनों का, पशुओं का, पक्षियों का, अश्व-
वडव, पूर्वापर, अधरोत्तर इन शब्दों का, विरोधी अर्थ वाले शब्दों का यदि वे
द्रव्यवाचक न हों तो।[1] क्रमश उदाहरण ये हैं—प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च—प्लक्षन्य-
ग्रोधम्-धा । इसी प्रकार रुरुपृषतम्-ता (मृगों के भेद)। कुशकाशम्-शा. (घास
के भेद), व्रीहियवम्-वा. (अनाज के भेद), दधिघृतम्-ते, गोमहिषम्-षा,
शुकबकम्—का, अश्ववडवम्—वौ, पूर्वापरम्—रे, अधरोत्तरम्—रे । शीतो-
ष्णम्—ष्णे । किन्तु जलवाचक में द्विवचन ही होगा—शीतोष्णे उदके स्त. ।

१६१. निम्नलिखित स्थानों पर बहुवचन वाले शब्दों का ही समाहार द्वन्द्व
और एकवचन होता है, अन्यत्र नही—फलों का, सेना के अंगों का, वनस्पतियों
का, मृगो का, पक्षियो का, क्षुद्र जीवो का, अन्नों का और तृणो का।[2] जैसे—
बदराणि च आमलकानि च—बदरामलकम् । यदि बहुवचन वाला प्रयोग नही
होगा तो समाहार नही होगा—बदर च आमलक च—बदरामलके । रथिकश्च
अश्वारोहश्च—रथिकाश्वारोहौ, इत्यादि ।

१६२. निम्नलिखित स्थानो पर ये रूप बनते है। नियमानुसार ये रूप नही
बन सकते है, अत इनका निपातन (ऐसा ही रूप बनेगा) किया गया है।
वे हैं—

(क) समाहार द्वन्द्व—गावश्च अश्वाश्च—गवाश्वम्, पुत्राश्च पौत्राश्च—
पुत्रपौत्रम् । इसी प्रकार स्त्रीकुमारम्, उष्ट्रखरम् (ऊँट और गधा), उष्ट्रशशम्
(ऊँट और खरगोश), मासशोणितम्, दर्भशरम् (कुशा और सरकडा),
ृणोलपम् (तिनका और घास या झाडो), दासीदासम् आदि ।

(ख) इतरेतर द्वन्द्व—दधिपयसी (दही और दूध), इध्माबर्हिषी (समिधाएँ
और घास), सर्पिर्मधुनी, मधुसर्पिषी (शहद और घी), शुक्लकृष्णौ, अध्ययन-
तपसी, आद्यवसाने, उलूखलमुसले, ऋक्सामे (ऋच् + सामन्) (ऋग्वेद और
सामवेद के मन्त्र), वाङ्मनसे (वाक् + मनस्) (वाणी और मन)। (सूत्र

---

१. विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ।
(२-४-१२)। विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि (२-४-१३)
२. फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व
एकवदिति वाच्यम् ।(वार्तिक)।

५-४-७७ से निपातन के द्वारा ऋक्सामे में सामन् के न् का लोप और वाङ्मनसे में मनस् के अन्त में अ प्रत्यय)।

१६३. विद्या-सम्बन्ध या योनि (रक्त) सम्बन्ध से सम्बद्ध ऋकारान्त शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर अन्तिम शब्द से पूर्ववर्ती ऋकारान्त शब्द के ऋ के स्थान पर आ हो जाएगा। पुत्र शब्द बाद में होगा तो भी विद्या और योनि सम्बन्ध वाले ऋकारान्त के ऋ को आ हो जाएगा।[1] *होता च पोता च*—होतापोतारौ (होता और पोता नामक दो यज्ञकर्ता)। होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च—होतृपोतृनेष्टोद्गातारः। यदि इनमें से दो दो शब्दों का समास किया जाएगा तो सभी पूर्वपदों में ऋ के स्थान पर आ रहेगा। जैसे—होता च पोता च—होतापोतारौ, तौ च उद्गाता च—होतापोतोद्गातारः, इत्यादि। पिता च पुत्रश्च—पितापुत्रौ, माता च पिता च—मातापितरौ। माता च पिता च—मातरपितरौ (६-३-३२) और पितरौ (देखो नियम १९७ क) भी रूप बनते हैं।

१६४. (क) प्रसिद्ध साहचर्य वाले देवतावाचक शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अक्षर के स्थान पर आ हो जाता है। वायु शब्द साथ में होगा तो यह नियम नहीं लगेगा।[2] जैसे—मित्रावरुणौ, सूर्याचन्द्रमसौ, अग्नामरुतौ, आदि। किन्तु अग्निवायू और वाय्वग्नी ही रूप बनेंगे।

(ख) सोम या वरुण शब्द बाद में होगा तो अग्नि के इ को ई हो जाएगा।[3] जैसे—अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ।

१६५. *यदि समाहार द्वन्द्व समास होने पर अन्तिम शब्द के अन्त में चवर्ग,* द्, ष्, ह् होंगे तो उनमें अन्त में अ जुड़ जाएगा।[4] वाक् च त्वक् च—वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचा), त्वक्स्रजम् (त्वचा और माला), शमीदृषदम्, वाक्त्विषम्, छत्रोपानहम् (छाता और जूता), इत्यादि। समाहार द्वन्द्व न होने के कारण प्रावृट्शरदौ में अन्त में अ नहीं लगा है।

---

१. आनङ् ऋतो द्वन्द्वे (६-३-२५)। द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वं कृत्वा पुनर्द्वन्द्वे तु होतापोतोद्गातारः। (सि० कौ०)
२. देवताद्वन्द्वे च (६-३-२६)। वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेध (वार्तिक)।
३. ईदग्नेः सोमवरुणयोः (६-३-२७)।
४. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे (५-४-१०६)।

१९६. निम्नलिखित स्थानों पर द्वन्द्व समास करने पर ये रूप बनते हैं —

(क) द्यौश्च पृथिवी च—द्यावापृथिव्यौ, दिवस्पृथिव्यौ ।[१] (द्युलोक और पृथिवी)। इसी प्रकार द्यावाभूमी, द्यावाक्षामा । उषस्+सूर्य=उषासासूर्यम् (उषा और सूर्य) ।[२]

(ख) जाया+पति=दम्पती, जम्पती, जायापती (पति-पत्नी) ।[३]

(ग) स्त्री च पुमान् च—स्त्रीपुंसौ, धेनुश्च अनड्वान् च—धेन्वनडुहौ, अक्षिणी च भ्रुवौ च—अक्षिभ्रुवम्, दाराश्च गावश्च—दारगवम्, ऊरू च अष्ठीवन्तौ च—ऊर्वष्ठीवम् (जाँघ और घुटने), पादौ च अष्ठीवन्तौ च—पादष्ठीवम् । नक्तं च दिवा च—नक्तन्दिवम्, रात्री च दिवा च—रात्रिन्दिवम्, अहनि च दिवा च—अहर्दिवम् (तीनों का अर्थ है—दिन और रात) ।[४]

१९७. जब एक अर्थ और एक रूप वाले अनेक शब्दों का (या एक अर्थ वाले विरूप शब्दों का)[५] समास होता है तो उनमें से एक शब्द शेष रहता है और उसमें आवश्यक वचन होते हैं। जैसे—रामश्च रामश्च रामौ, रामश्च रामश्च रामश्च रामाः । इसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं। जहाँ पर पुंलिंग और स्त्रीलिंग का समास होता है वहाँ पुंलिंग शेष रहता है और उससे द्विवचन आदि होते हैं। जैसे—हंसी च हंसश्च—हंसौ । इसी प्रकार ब्राह्मणौ, शूद्रौ, अजौ, आदि ।

(क) यह एकशेष का नियम कुछ विरूप शब्दों में भी लगता है। जैसे—भ्राता च स्वसा च—भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च—पुत्रौ।[६] माता च पिता च—पितरौ (देखो नियम १९३)।[७] श्वश्रूश्च श्वशुरश्च—श्वशुरौ श्वश्रूश्वशुरौ।[८] स च

१. दिवो द्यावा (६-३-२९) । दिवसश्च पृथिव्याम् (६-३-३०)
२. उषासोषस (६-३-३१)
३. कुछ विद्वान् दम्पती शब्द को नियमित रूप से बना हुआ शब्द मानते हैं। वेद में दम् का अर्थ है—घर, पति-स्वामी, अतः दम्पती का अर्थ होगा—घर की स्वामिनी ।
४. अचतुर० (५-४-७७) सूत्र से इन शब्दों में समासान्त अ प्रत्यय लगा है। आगे नियम २८४ में यह सूत्र उद्धृत किया गया है।
५ विरूपाणामपि समानार्थानाम् । (वार्तिक) । वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ, कुटिलदण्डौ ।
६ भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् । (१-२-६८)
७ पिता मात्रा । (१-२-७०)
८. श्वशुरः श्वश्र्वा (१-२-७१) । त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् (१-२-७२)

मा च तौ, स च देवदत्तश्च तौ, स च यश्च यौ, तौ।[1] जहाँ पर पुंलिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक० तीनों लिंगों के शब्द हों, वहाँ नपुंसकलिंग शेष रहेगा। जैसे—तच्च देवदत्तश्च—ते, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च—तानि।

१९८. द्वन्द्व समास में समस्त पदों के पौर्वापर्य के विषय में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिए —

(क) इकारान्त और उकारान्त शब्दों को सब से पहले रखना चाहिए। जहाँ पर एक से अधिक इस प्रकार के शब्द है, वहाँ पर किसी एक शब्द को पहले रखना चाहिए और शेष शब्दों के विषय में यह नियम नहीं लगेगा।[2] जैसे—हरिहरौ, हरिहरगुरव, हरिगुरहरा, इत्यादि।

(ख) ऐसे शब्द को पहले रखना चाहिए, जिसके प्रारम्भ में स्वर हो और अन्त में अ हो।[3] जैसे—अश्वरथेन्द्रा, इन्द्राश्वरथा। जहाँ पर पहला और यह दोनों नियम लागू हों, वहाँ पर यह नियम ही लगेगा। जैसे—इन्द्राग्नी।

(ग) जिस शब्द में कम स्वर हों, उसे पहले रखना चाहिए। जहाँ पर एक से अधिक शब्द समान मात्रा वाले हों, वहाँ पर लघु या कम अक्षर वाला शब्द पहले रखना चाहिए। जैसे—शिवकेशवौ, ग्रीष्मवसन्तौ, कुशकाशम्, आदि। ऋतु और नक्षत्रवाची शब्दों में जहाँ बराबर अक्षर वाले शब्द हों, वहाँ उनको ज्योतिष के क्रम के अनुसार रखना चाहिए। जैसे—हेमन्तशिशिरवसन्ता, कृत्तिकारोहिण्यौ, आदि। अधिक सम्माननीय का पहले प्रयोग होगा। जैसे—तापसपर्वतौ।[4]

(घ) वर्णों के नाम क्रम से देने चाहिएँ। भाइयों के नाम भी बड़े से प्रारम्भ करके देने चाहिएँ।[5] जैसे—ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा, युधिष्ठिरार्जुनौ।

१९९. राजदन्तादि शब्दों में पूर्व प्रयोग के योग्य शब्द का बाद में प्रयोग होगा। किन्तु इस गण के ही उपभेद धर्मादि शब्दों में यह नियम विकल्प से लगेगा।[6]

---

१. पूर्वशेषोऽपि दृश्यत इति भाष्यम्। (सूत्र १-२-७२ पर सि० कौ०)
२. द्वन्द्वे घि (२-२-३२)। अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियम शेषे (वार्तिक)
३ अजाद्यदन्तम् (२-२-३३)
४. अल्पाच्तरम् (२-२-३४)। लघ्वक्षरं पूर्वम्। ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण। अभ्यर्हितं च। (वार्तिक)
५. वर्णानामानुपूर्व्येण (वार्तिक)। भ्रातुर्ज्यायसः। (वार्तिक)।
६. राजदन्तादिषु परम् (२-२-३१)। धर्मादिष्वनियम (वार्तिक)।

जैसे—दन्तानां राजा–राजदन्त, शूद्रार्यम् (शूद्र और आर्य)। धर्मश्च अर्थश्च—धर्मार्थौ, अर्थधर्मौ। इसी प्रकार शब्दार्थौ-अर्थशब्दौ, अर्थकामौ-कामार्थौ आदि।

२. तत्पुरुष समास (Determinative Compounds)

२००. तत्पुरुष समास में दो या अधिक पदों का समास होता है। इसमें बाद वाले शब्द का अर्थ मुख्य होता है। उससे ही समस्त पद के अर्थ का निर्णय होता है।

२०१. तत्पुरुष समास को ६ भागों में विभक्त किया गया है—(१) तत्पुरुष, सामान्य (Infectional)—जिसमें मध्यगत विभक्तियों का लोप होता है। (२) नञ् (Negative) तत्पुरुष। (३) कर्मधारय (Appositional), इसमें द्विगुसमास का भी संग्रह समझना चाहिए। (४) प्रादि (Prepositional) तत्पुरुष। (५) गति (Prepositional) तत्पुरुष। (६) उपपद-समास। ये उपपद संज्ञा, विशेषण या क्रियाविशेषण शब्द होते हैं।

२०२. स्त्रीलिंग शब्द के अन्तिम स्वर आ, ई या ऊ को ह्रस्व हो जाता है, यदि यह स्त्रीलिंग शब्द समास का उत्तरपद हो और विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो। इन्हीं अवस्थाओं में गो शब्द के ओ को उ हो जाता है।[1] जैसे—प्राप्त + जीविका = प्राप्तजीविक (तत्पुरुष), अतिमाल (तत्पुरुष), पञ्चगु (५ गायों वाला)। बह्व्यो नाड्यो यस्मिन् स बहुनाडि (देह, बहुव्रीहि) (बहुत नाड़ियों वाला शरीर)। चित्रा गावो यस्य स चित्रगु (जिसके पास विचित्र वर्ण वाली गाएँ हैं), आदि। किन्तु कल्याणपञ्चमीक में ई को ह्रस्व नहीं होगा, क्योंकि यह अन्तिम अक्षर नहीं है।

(क) यदि अन्तिम ई और ऊ स्त्रीप्रत्यय का नहीं है तो उसे ह्रस्व नहीं होगा। सुष्ठु धी–सुधी, बहुतन्त्रीवमनी।

(१) तत्पुरुष

२०३ तत्पुरुष समास का प्रथम भेद वह है, जहाँ पर द्वितीया से लेकर सप्तमी तक किसी भी विभक्ति का समास होता है। द्वितीया से सप्तमी तक ६ विभक्तियों के आधार पर इसके भी ६ भेद हैं।

---

१. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (१-२-४८)।

।मास होता है ।[1] जैसे—हरिणा त्रात —हरित्रात (हरि के द्वारा रक्षित),
।खैभिन्न —नखभिन्न (नाखून से फाडा हुआ), इत्यादि ।

(ग) तृतीयान्त का इन शब्दों के साथ समास होता है—पूर्व, सदृश, सम,
ऊन, ऊन अर्थ वाले अन्य शब्द, कलह, निपुण, मिश्र, श्लक्ष्ण और अवर ।[2] जैसे—
मासेन पूर्व —मासपूर्व । मात्रा सदृश —मातृसदृश (माता के तुल्य), पितृसम.
(पिता के तुल्य), माषेण ऊनम्—माषोनम् । इसी प्रकार माषविकलम् (१ माशा
भर कम) । वाचा कलह —वाक्कलह (मौखिक युद्ध), आचारनिपुण , गुडमिश्र ,
आचारश्लक्ष्ण (आचार के नियमों के पालन से कृश), मासेन अवर —मासावरः
(१ महीना छोटा) ।

(घ) किसी व्यजनवाचक तृतीयान्त शब्द का अन्न के साथ समास होता
है । तृतीयान्त मिश्रण की वस्तु का भक्ष्य वस्तु के साथ समास होता हैं ।[3] दध्ना
ओदन —दध्योदन (दही मिश्रित चावल) । गुडेन धाना —गुडधाना (गुड
मिश्रित भुने हुए धान) ।

(ङ) कभी-कभी स्वयम् शब्द तृतीयान्त का अर्थ बताता है और उसका समास
होता है । जैसे—स्वयकृत (स्वय किया गया) ।

२०६ कुछ स्थानो पर तृतीया तत्पुरुष समास करने पर बीच की तृतीया
विभक्ति का लोप नहीं होता है । इसको अलुक्समास कहते हैं ।[4] जैसे—अञ्जसा
कृतम्—अञ्जसाकृतम् (सरलता से किया) । ओजसाकृतम् (शक्ति से किया),
पुसानुज (जिसका बडा भाई है), जनुषान्ध (जन्म से अन्धा) । मनसागुप्ता,
मनसाज्ञायी (जब ये सज्ञावाचक हो) । अन्यथा मनोगुप्ता, मनोज्ञायी आदि ।
आत्मन् की तृतीया का अलुक होता है, बाद में कोई सख्येय शब्द हो तो ।[5] जैसे—
आत्मना पञ्चम —आत्मनापञ्चम ।

---

१. कर्तृकरणे कृता बहुलम् (२-१-३२) ।
२ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः (२-१-३१) ।
३. अन्नेन व्यञ्जनम् (२-१-३४) । भक्ष्येण मिश्रीकरणम् (२-१-३५) ।
४ ओज सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयाया (६-३-३) । अञ्जस उपसङ्ख्यानम् (वार्तिक) । पुसानुजो जनुषान्ध इति च (वार्तिक) । मनसश्च सञ्ज्ञायाम् (६-३-४) ।
५ आत्मनश्च (६-३-६) । पूरण इति वक्तव्यम् (वार्तिक) ।

चतुर्थी-समास[1]

२०७. (क) चतुर्थ्यन्त का उस वस्तु के साथ समास होता है, जिससे वह चीज बनी है। जैसे—यूपाय दारु—यूपदारु (यज्ञिय स्तम्भ के लिए लकड़ी)।

(ख) चतुर्थ्यन्त का इन शब्दों के साथ समास होता है :—अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित। अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है और विशेष्य के अनुसार इसका लिंग होता है। द्विजाय अयम्—द्विजार्थः सूपः (ब्राह्मण के लिए दाल), द्विजाय इयं—द्विजार्था यवागूः (ब्राह्मण के लिए जौ की लप्सी), द्विजाय इदं—द्विजार्थं पयः, भूतेभ्यो बलिः—भूतबलिः (भूतों या जीवों के लिए अन्नदान), गवे हितम्—गोहितम् (गाय के लिए हितकारी), गवे सुखम्—गोसुखम्, गवे रक्षितं—गोरक्षितम्।

२०८. चतुर्थी विभक्ति के अलुक् के उदाहरण :—परस्मैपदम्, परस्मैभाषा; आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा।

पञ्चमी-समास

२०९. (क) पञ्चम्यन्त शब्दों का भयवाचक, भय, भीत, भीति और भीः शब्दों के साथ समास होता है।[2] जैसे—चोराद् भयम् चोरभयम् (चोर से भय)। वृकाद् भीतः—वृकभीतः (भेड़िए से डरा हुआ), इत्यादि।

(ख) कुछ विशिष्ट स्थानों पर इन शब्दों के साथ पञ्चम्यन्त का समास होता है :—अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त।[3] जैसे—सुखादपेतः—सुखापेतः (सुख से वंचित), कल्पनाया अपोढः—कल्पनापोढः (कल्पना से रहित, विचारहीन, मूर्ख), चक्रमुक्तः, स्वर्गपतितः (स्वर्ग से पतित, पापी), तरंगापत्रस्तः (तरंगों से डरा हुआ)।

(ग) इन शब्दों का क्त प्रत्ययान्त के साथ समास होता है और पंचमी का अलुक् होता है—स्तोक (थोड़ा), अन्तिक (समीप), दूर (दूर), इन अर्थों वाले अन्य शब्द तथा कृच्छ्र (कठिनाई) शब्द।[4] जैसे—स्तोकाद् मुक्तः—स्तोकान्मुक्तः,

---

१. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (२-१-३६)।
२. पञ्चमी भयेन (२-१-३७)। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् (वार्तिक)।
३. अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः (२-१-३८)।
४. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन। (२-१-३९)।

अल्पान्मुक्त, अन्तिकादागत, अभ्याशादागत, दूरादागत, विप्रकृष्टादागत, कृच्छ्रादागत ।

षष्ठी तत्पुरुष

२१०. साधारणतया किसी भी षष्ठ्यन्त शब्द का दूसरे शब्द के साथ समास हो जाता है—राज्ञः पुरुषः—राजपुरुष (राजा का पुरुष, राजकर्मचारी) ।

२११. (क) कर्ता अर्थ में तृ और अक कृत् प्रत्यय होंगे तो उन शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होगा ।[1] जैसे—अपां स्रष्टा होगा, अप्स्रष्टा नहीं । घटस्य कर्ता, ओदनस्य पाचक, इत्यादि । परन्तु इक्षूणां भक्षणम्—इक्षुभक्षिका में समास होगा, क्योंकि यहाँ पर अक कर्ता अर्थ में नहीं है ।

अपवाद-नियम—निम्नलिखित शब्दों के साथ षष्ठी-समास हो जाएगा — याजक (यज्ञ कराने वाला), पूजक, परिचारक, परिवेषक (परोसने वाला), स्नापक (अपने स्वामी को स्नान करानेवाला या उसके स्नानार्थ जल लाने वाला), अध्यापक, उत्सादक (नष्ट करने वाला), होतृ, भर्तृ (जब इसका अर्थ धारण करनेवाला न हो), इत्यादि शब्द ।[2] ब्राह्मणयाजक, देवपूजक, राजपरिचारक, इत्यादि । अग्निहोता, भूभर्ता आदि । किन्तु वज्रस्य भर्ता (वज्र का धारक) रूप होगा ।

(ख) निर्धारण अर्थात् बहुतों में से एक को छाँटने अर्थ में हुई षष्ठी का अन्य के साथ समास नहीं होता ।[3] जैसे—नृणां द्विजः श्रेष्ठः ।

(ग) षष्ठ्यन्त का इनके साथ समास नहीं होता है[4]—संख्येय शब्दों

---

१. तृजकाभ्यां कर्तरि (२-२-१५) ।
२. याजकादिभिश्च (२-२-९) ।
३. न निर्धारणे (२-२-१०) ।
४. पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन (२-२-११) । क्तेन च पूजायाम् (२-२-१२) । अधिकरणवाचिना च (२-२-१३) । इस सूत्र के द्वारा गुणवाचक शब्दों के साथ षष्ठी-समास का निषेध नित्य नहीं समझना चाहिए, क्योंकि स्वयं पाणिनि ने 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्' में संज्ञाप्रमाणत्व में समास किया है । अतः अर्थगौरवम्, बुद्धिमान्द्यम् आदि रूप बनते हैं । (अनित्योऽयं गुणेन निषेधः । तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्, इत्यादिनिर्देशात् । तेनार्थगौरव बुद्धिमान्द्यमित्यादि सिद्धम्, सि० कौ०) ।

के साथ, गुणवाचक शब्दों, तृप्ति अर्थ वाले शब्दों, शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों, आदरार्थक क्त प्रत्ययान्त शब्द, अधिकरणवाचक क्त-प्रत्ययान्त शब्द, कृदन्त अव्यय शब्द और तव्य-प्रत्ययान्त शब्द। जैसे—सतां षष्ठ, ब्राह्मणस्य शुक्ला (दन्ता), काकस्य कार्ष्ण्यम्, फलानां सुहित. (फलों से तृप्त) (यहाँ पर तृतीया-तत्पुरुष हो सकता है), द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा किङ्कर, सतां मत (सज्जनों के द्वारा सत्कृत), राज्ञा पूजित, इदमेषाम् आसित (आसन) गत भुक्त वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा, नरस्य कर्तव्यम्, इत्यादि।

सूचना—राजपूजित, राजमत, आदि समासों को तृतीया-तत्पुरुष समास समझना चाहिए।

अपवाद-नियम (१) यदि किसी गुणवाचक शब्द के बाद तर प्रत्यय है तो उसके साथ षष्ठ्यन्त का समास हो जाएगा और तर का लोप हो जाएगा। सर्वेषां श्वेततर—सर्वश्वेत (सबसे अधिक सफेद)। इसी प्रकार सर्वेषां महत्तर—सर्वमहान् आदि।

(२) द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य शब्दों का एकदेशी (अर्थात् समूह, जिसके वे अंश हैं) के साथ समास होता है और इन शब्दों का विकल्प से पहले प्रयोग होता है[1]। द्वितीयं भिक्षाया—द्वितीयभिक्षा, भिक्षाद्वितीयम् (भिक्षा का आधा भाग)। किन्तु द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य (भिक्षुक का दुबारा भीख माँगना) में समास नहीं होगा।

सूचना—द्वितीयभिक्षा, पूर्वकाय आदि समासों को षष्ठी तत्पुरुष कहना ठीक नहीं है। द्वितीयभिक्षा में पहला शब्द अर्थ का निर्णय कराता है। अत इसे केवल तत्पुरुष कहना चाहिए। कुछ इसको प्रथमा-तत्पुरुष भी कहते हैं।

(क) जहाँ पर कृदन्त शब्द के साथ कर्ता और कर्म दोनों होते हैं और कर्म में ही षष्ठी होती है, उस षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है।[2] जैसे—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन। जो ग्वाला नहीं है, उसके द्वारा गाय का दुहा जाना आश्चर्य की बात है।

२१२. पूर्व, अपर, अधर, उत्तर और अर्ध (नपु०) शब्दों का षष्ठ्यन्त

१. द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम् (२-२-३)।
२. कर्मणि च (२-२-१४)।

अवयवी के साथ समास होता है और इन शब्दो का पूर्व प्रयोग होता है।[१]
जैसे—पूर्व कायस्य—पूर्वकाय (शरीर का आगे का भाग), अपरकाय, अधर-
काय. आदि। अर्धं पिप्पल्या.—अर्धपिप्पली। किन्तु ग्रामस्य अर्ध—ग्रामार्ध
होगा। यहाँ अर्ध पु० है।

सूचना—यह नियम अवयव-अवयवी सबन्ध वाले स्थानो पर ही लगना है,
अत वस्तु एक ही होनी चाहिए। जहाँ वस्तुएँ अनेक होगी, वहाँ पर समास
नही होगा। जैसे—पूर्व छात्राणाम् (छात्रो मे प्रथम), अर्धं पिप्पलीनाम्
(पीपलो मे से आधा) मे समास नही होगा। अत पूर्वछात्र आदि रूप नही
बनेगे।

२१३. अवयववाची शब्द का कालवाचक शब्द के साथ समास होता है
और अवयववाचक शब्द का पहले प्रयोग होता है। जैसे—मध्यम् अह्न—
मध्याह्न (दोपहर), सायाह्न, मध्यरात्र, आदि।

२१४. कालवाचक शब्द का घटनासूचक शब्द के साथ समास होता है।[२]
जैसे—मासो जातस्य यस्य स—मासजात (जिसको पैदा हुए एक मास हो
गया है)। इसी प्रकार द्व्यहजात, सवत्सरमृत, आदि।

२१५. षष्ठी-समास में इन स्थानो पर अलुक् होता है। इन स्थानो पर
षष्ठी विभक्ति बनी रहेगी।

(क) निन्दा अर्थ में षष्ठी का अलुक् होगा।[३] जैसे—चौरस्य कुलम्।
किन्तु ब्राह्मणकुलम् मे समास होगा। मूर्ख अर्थ में देवाना प्रिय मे षष्ठी का
अलुक् होगा। अन्यत्र देवप्रिय।

(ख) वाच्, दिश् और पश्यत् के बाद क्रमश युक्ति, दण्ड और हर
शब्द होगे तो षष्ठी का अलुक् होगा।[४] वाचोयुक्ति (चतुरतायुक्त
वाणी), दिशोदण्ड (आकाश मे तारो का डण्डे के तुल्य विशेष रूप से
दीखना), पश्यतोहर (सुनार या चोर, जो दूसरे के देखते हुए ही चोरी कर
लेता है)।

---

१. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे (२-२-१)। अर्धं नपुसकम् (२-२-२)।
२. कालाः परिमाणिना (२-२-५)।
३. षष्ठ्या आक्रोशे (६-३-२१)। देवाना प्रिय इति च मूर्खे (वार्तिक)।
४. वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु (वार्तिक)।

(ग) इन स्थानो पर षष्ठी का अलुक् होता है[1]—दिवोदास (काशी के एक राजा का नाम), दिवस्पति (इन्द्र), वाचस्पति (बृहस्पति, वाणी का पति), शुनःशेप, शुनःपुच्छ, शुनोलाङ्गूल (अजीगर्त के पुत्रों के नाम)।

(घ) पुत्र बाद में हो तो विकल्प से अलुक्, यदि निन्दा अर्थ हो तो[2]। दास्याः पुत्रः, दासीपुत्र (दासी से उत्पन्न पुत्र), अन्यत्र ब्राह्मणीपुत्र।

(ङ) ऋकारान्त शब्द के बाद षष्ठी का अलुक् नित्य होता है, यदि विद्या-सबन्ध या योनि (रक्त) सबन्ध हो तो। यदि ऋकारान्त के बाद स्वसृ या पति शब्द होगे तो षष्ठी का अलुक् विकल्प से होगा। अलुक् वाले स्थानो पर मातुः पितुः के बाद स्वसृ के स् को ष् विकल्प से होगा। जहाँ अलुक् नहीं है, वहाँ पर मातृ पितृ के बाद स्वसृ के स् को ष् अवश्य होगा।[3] जैसे—होतुः पुत्र, होतुरन्तेवासी (होता का शिष्य)। मातुःस्वसा, मातुःष्वसा, मातृष्वसा। इसी प्रकार पितुःस्वसा आदि। (समास न होने पर मातुः स्वसा, पितुः स्वसा रूप होगे।) स्वसृपति, स्वसुःपति। होतृधनम् मे षष्ठी का लोप होगा।

सप्तमी-समास

२१६ (क) सप्तम्यन्त का शौण्ड, धूर्त, कितव (तीनो का अर्थ है धूर्त), प्रवीण, सवीत (सयुक्त), अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध शब्दो के साथ समास होता है।[4] जैसे—अक्षेषु शौण्ड — अक्षशौण्ड (जूए में चतुर), ईश्वरे अधि—ईश्वराधीन (ईश्वर पर निर्भर) (यहाँ पर अधि के साथ समास होने पर अन्त में ख प्रत्यय अर्थात् ईन अवश्य जुड जाएगा। इसलिए समस्त पद में अधीन रूप होगा)। आतपशुष्क (धूप मे सूखा हुआ), स्थालीपक्व (पतीली में पकाया हुआ), चक्रबन्ध (एक विशेष प्रकार की पद्य रचना), इत्यादि।

---

१. दिवश्च दासे (वा०), शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुन (वा०)।
२ पुत्रेऽन्यतरस्याम् (६-३-२२)।
३ ऋतो विद्यायोनिसबन्धेभ्य (६-३-२३)। विभाषा स्वसृपत्यो (६-३-२४)। मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् (८-३-८५)। मातृपितृभ्यां स्वसा (८-३-८४)।
४. सप्तमी शौण्ड (२-१-४०), सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च (२-१-४१)।

(ख) कावबाची शब्दो के साथ निन्दा अर्थ में ।[1] तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव— तीर्थध्वाङ्क्ष (कौवे के तुल्य अतिलोभी)। तीर्थकाक । इसी प्रकार नगरकाक, नगरवायस आदि ।

पात्रेसमितादि गण मे इसी प्रकार के भाव वाले बहुत से सप्तमी-समास-युक्त शब्द है। जैसे—कूपे मण्डूक इव—कूपमण्डूक (कुएँ में रहने वाले मेढक के तुल्य ससार की बातो से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति)। इसी प्रकार कुम्भमण्डूक, उदपानमण्डूक, उदुम्बरकृमि, उदुम्बरमशक (गूलर में रहने वाला कीडा या मच्छर, अर्थात् ससार की बातो से अनभिज्ञ व्यक्ति), कूपकच्छप इत्यादि। कुछ स्थानो पर सप्तमी का अलुक् भी होता है। जैसे—गेहेशूर (घर में ही बहादुरी दिखाने वाला, कायर), गेहेव्याड (घर में ही धूर्तता दिखाने वाला), गेहेनर्दी (घर में ही बहादुरी दिखाने वाला), पात्रेकुशल (खाने मे ही चतुर अर्थात् निकम्मा साथी), पात्रेसमिता, गोष्ठेशूर, गोष्ठेविजयी, गेहेधृष्ट, इत्यादि ।

सूचना—इस गण के शब्दो का अन्य शब्दो के साथ समास नही होता है।

(ग) सप्तम्यन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, यदि समस्त पद किसी की सज्ञा हो तो। हलन्त और अकारान्त शब्दो के बाद सप्तमी का अलुक् होता है, सज्ञावाचक हो तो।[2] जैसे—अरण्येतिलका (जगली सरसो तेल न देने वाली। अत आशा के अनुरूप कार्य न करने वाला)। इसी प्रकार वनेकसेरुका, त्वचिसार (बाँस) (त्वक्सार भी रूप बनता है)। ये शब्द नित्य समास हैं, इनमें समास करना अनिवार्य है। (वाक्येन सज्ञानवगमान्नित्यसमासोऽयम्, सि० कौ०)।

(घ) सप्तम्यन्त का कृत्य प्रत्ययान्त के साथ समास होता है, अवश्य कर्तव्य अर्थ हो तो।[3] मासेदेय ऋणम्, पूर्वाह्णे गेय साम। यहाँ पर नियम २१७ (ख) से अलुक्।

---

१ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे (२-१-४२), पात्रेसमितादयश्च (२-१-४८)। चकारोऽवधारणार्थः। तेनैषा समासान्तरे घटकतया प्रवेशो न। (सि० कौ०)।

२. सज्ञायाम् (२-१-४४)। हलदन्तात् सप्तम्या सज्ञायाम् (६-३-९)।

३. कृत्यैर्ऋणे (२-१-४३)।

(ङ) दिन या रात्रि के विभाग के सूचक सप्तम्यन्त शब्दों का क्त-प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। सप्तमी के अर्थ में वर्तमान तत्र का भी क्तान्त के साथ समास होता है।[1] जैसे—पूर्वाह्णे कृत—पूर्वाह्णकृतम्, अपररात्रकृतम्, तत्रभुक्तम्, आदि। दिन का अवयव न होने से अह्नि दृष्टम् में समास नही होगा। सप्तम्यन्त का क्तान्त के साथ समास होता है निन्दा अर्थ में। इसमें सप्तमी का अलुक् भी होगा। अवतप्तेनकुलस्थित त एतत् (तेरा वह कार्य तपी हुई भूमि पर न्यौले के बैठने के तुल्य है)। अवतप्तेनकुलस्थितम् का अभिप्राय है कि यह असगत कार्य है।

२१७ सप्तमी के अलुक् के अन्य उदाहरण —

(क) इन स्थाना पर सप्तमी का अलुक् होता है—(१) गो या युध् शब्द के बाद स्थिर शब्द हो तो।[2] जैसे—गविष्ठिर (आकाश में स्थिर), युधिष्ठिर (युद्ध में स्थिर)। (२) हृद् और दिव् के बाद स्पृश् शब्द हो तो। हृदिस्पृक्, दिविस्पृक् (हृदय दिव च स्पृशतीति)। (३) मध्य और अन्त के बाद गुरु शब्द हो तो। मध्येगुरु, अन्तेगुरु। (४) मूर्धन् और मस्तक को छोड कर अन्य शरीर के अवयववाची शब्दा के बाद काई शब्द हो तो। बाद में काम शब्द हो तो नही। कण्ठेकाल, उरसिलामा (जिसकी छाती पर बाल है, बहुव्रीहि)। किन्तु मूर्धशिख, मस्तकशिख, मुखे कामाऽस्य मुखकाम ही रूप होगे।

(ख) सप्तम्यन्त का कृदन्त के साथ समास होने पर प्राय सप्तमी का अलुक् होता है, यदि वह शब्द किसी की सज्ञा हो तो।[3] जैसे—स्तम्बेरम (हाथी) (स्तम्बे रमते असौ, हाथी बाधने के खूंटे में रमनेवाला), कर्णेजप (चुगलखोर, दूसरे के कान में कानाफूसी करने वाला), खेचर (आकाश में भ्रमण करने वाला, दिव्य जीव), पकेरुहम् (कमल), कुशेशयम्, जलेशय (मछली)। किन्तु कुरुचर ही रूप बनता है। सरसिजम् या सरोजम् आदि।

(ग) कालवाचक शब्दो के बाद सप्तमी का विकल्प से अलुक् होता है,

---

१ क्तेनाहोरात्रावयवा (२-१-४५)। तत्र (२-१-४६)। क्षेपे (२-१-४७)।
२ गवियुधिभ्या स्थिर (८-३-९५)।
३ तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६-३-१४)।

बाद में तर, तम, तन और काल शब्द हो तो ।[१] जैसे—पूर्वाह्णेकाले, पूर्वाह्णकाले,
पूर्वाह्णेतरे, पूर्वाह्णतरे आदि । पूर्वाह्णेतने, पूर्वाह्णतने ।

(घ) प्रावृट्, शरद्, काल और दिव् के बाद ज हो तो सप्तमी का अलुक्
अवश्य होगा, यदि संज्ञा न हो तो । वर्ष, क्षर, शर और वर शब्दों के बाद ज
होगा तो सप्तमी का अलुक् विकल्प से होगा ।[२] जैसे—प्रावृषिज, शरदिज,
कालेज, दिविज । वर्षेज, वर्षज (वर्षा में उत्पन्न होने वाला) इत्यादि ।

अपवाद-नियम—इन स्थानों पर सप्तमी का अलुक् नहीं होगा अर्थात् सप्तमी
का लोप होगा । सप्तम्यन्त के बाद में इन् प्रत्ययान्त, सिद्ध, बन्ध और लौकिक
स्थ शब्द हो तो ।[३] जैसे—स्थण्डिलशायी (संन्यासी), साकाश्यसिद्ध, चक्र-
बन्ध, समस्थ । किन्तु वेद में कृष्णोऽस्याखरेष्ठ रूप बनेगा ।

(ङ) हलन्त और अकारान्त शब्द के बाद सप्तमी का विकल्प से अलुक्
होता है, बाद में शय, वास, वासिन् और बन्ध शब्द हो तो । ये शब्द काल-
वाचक न हों ।[४] जैसे—खेशय, खशय ग्रामेवास—ग्रामवास ग्रामेवासी—
ग्रामवासी, हस्तेबन्ध—हस्तबन्ध । किन्तु भूमिशय, गुप्तिबन्ध ही रूप
होंगे ।

(२) नञ् तत्पुरुष समास (Negative Compounds)

२१८. *निषेधार्थक नञ् शब्द का किसी भी शब्द के साथ समास होता
है । बाद में व्यंजन होगा तो नञ् का अ शेष रहेगा और बाद में स्वर होगा
तो अन् शेष रहेगा ।[५] जैसे—न ब्राह्मण—अब्राह्मण (ब्राह्मण से इतर), न
अश्व—अनश्व, असत् (अविद्यमान या अनुचित) आदि ।

२१९. निम्नलिखित स्थानों पर न शेष रहता है, उसे अ या अन् नहीं
होगा[६] —नभ्राट् (बादल, न चमकने वाला) नपात् (न रक्षा करनेवाला,

---

१ घकालतनेषु कालनाम्न (६-३-१७) । विभाषा वर्षक्षरशरवरात् (६-३-१६) ।
२ प्रावृट्शरत्कालदिवां जे (६-३-१५) । स्थे च भाषायाम् (६-३-२०) ।
३. नेन्सिद्धबध्नातिषु च (६-३-१९) । शयवासवासिष्वकालात् (६-३-१८) ।
४ बन्धे च विभाषा (६-३-१३) । नलोपो नञः (६-३-७३) । तस्मान्नुडचि (६-३-७४) ।
५ नञ् (२-२-६) । नलोपो नञः (६-३-७३) । तस्मान्नुडचि (६-३-७४) ।
६ नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या
(६-३-७५) ।

पा + शतृ = पातृ), नवेदा (न जानने वाला), नासत्या (न सत्या असत्या, न असत्या नासत्या)[1] (देवों के वैद्य, दोनो अश्विनीकुमार), नमुचि (राक्षस का नाम, जिसका वध इन्द्र ने किया था। न मुञ्चतीति), नकुल (न कुलमस्य, न्यौला। न्यौले को किसी पशु-वर्ग विशेष में नही गिना जाता है।) नखम् (न खमस्य, जिसमें कोई स्थान शेष नही है, या मृत शरीर के साथ जल जाने के कारण जो स्वर्ग को नही जाता है), नपुसकम् (न स्त्रीपुमान्), नक्षत्रम् (न क्षरतीति, तारे, जो आकाश में अपने स्थान से नही हटते हैं), नक्र (न क्रामतीति, मगर, जो जल से बहुत दूर नही जाता है), नाक (न कम् अकम्, न अकम् अस्मिन्, स्वर्ग, जहाँ दुख नही है) । प्राणी से भिन्न अर्थ में नग—अग (पर्वत, वृक्ष) दोनो रूप बनते है।[2] प्राणीवाचक में अग वृषल शीतेन (शूद्र जो ठड के कारण हिल नही सकता है) ही रूप बनेगा।

सूचना—उपर्युक्त शब्दो मे कुछ बहुव्रीहि समास वाले शब्द भी है।

(३) कर्मधारय (Appositional Compounds)

२२० पाणिनि ने कर्मधारय का लक्षण किया है—समानाधिकरण तत्पुरुष अर्थात् कर्मधारय मे विग्रह वाक्य में दोना पदो में एक ही विभक्ति होती।[3]

सूचना—तत्पुरुष और कर्मधारय में यह अन्तर है —तत्पुरुष मे प्रथम पद में द्वितीया से लेकर सप्तमी तक कोई विभक्ति होती है, किन्तु कर्मधारय में दोनो पदो में एक ही विभक्ति होती है। कर्मधारय में साधारणतया प्रथम पद सज्ञाशब्द या विशेषण शब्द होता है और वह उत्तर पद की विशेषता बताता है।

२२१. (क) उपमान शब्दो का सामान्य गुणवाचक शब्दो के साथ कर्मधारय समास होता है।[4] जैसे—घन इव श्याम—घनश्याम (बादल के तुल्य साँवला)। इस प्रकार के समासो को उपमानपूर्वपदकर्मधारय समास कहते हैं।

---

१. इह बहुवचनमविवक्षितम्। तेन 'नासत्यावश्विनौ दस्रौ' इति सिद्धम्। (तत्त्वबोधिनी, सि० कौ०)।
२ नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् (६-३-७७)।
३ तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय (१-२-४२)।
४. उपमानानि सामान्यवचनै (२-१-५५)।

(ख) उपमेय का व्याघ्र, सिंह, चन्द्र, कमल आदि[1] शब्दो के साथ कर्मधारय समास होता है। सामान्य गुण या धर्मबोधक शब्द का उल्लेख नहीं होना चाहिए।[2] जैसे—पुरुषो व्याघ्र इव—पुरुषव्याघ्र. (व्याघ्र के तुल्य वीर पुरुष), मुख चन्द्र इव—मुखचन्द्र. (चन्द्रमा के तुल्य आह्लादक मुख), मुख कमलम् इव—मुखकमलम्, इत्यादि। इनको उपमानोत्तरपदकर्मधारय कहते हैं।

टिप्पणी १—इन दोनों समासो में अन्तर यह है—पहले में सामान्य गुण का स्पष्टतया उल्लेख है, परन्तु दूसरे मे सामान्य गुण का उल्लेख नही होता है। यदि दूसरे में सामान्य गुण का उल्लेख होगा तो समास ही नही होगा। जैसे—पुरुष. व्याघ्र इव शूर ।

टिप्पणी २—उपर्युक्त कर्मधारयो का यह भी विग्रह हो सकता है—मुखमेव चन्द्र —मुखचन्द्रः, मुखमेव कमलम्—मुखकमलम् आदि। दोनो विग्रहों में कोई भी विग्रह करें, समस्त पद का रूप वही रहेगा, किन्तु इन दोनो प्रकारो में अर्थ और तुलना में अन्तर होगा। पहले विग्रह में चन्द्र मुख्य होगा और उपमा अलकार होगा। दूसरे विग्रह में मुख मुख्य है और रूपक अलकार होगा।[3] पाद एव पद्मम्—पादपद्मम्, विद्या एव धनम्—विद्याधनम् आदि समस्त पदो को अवधारणापूर्वपदकर्मधारय कहते हैं।

२२२. विशेषण शब्दो का विशेष्य के साथ प्राय समास होता है।[4] जैसे—ल च तद् उत्पल च—नीलोत्पलम् (नीला कमल) आदि। कृष्णश्चासौ

---

१. ये सब शब्द व्याघ्रादि गण में हैं। व्याघ्रादिगण के कुछ मुख्य शब्द ये हैं—व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष, ऋषभ, चन्दन, वृक, वृष, वराह, हस्तिन्, रुरु, पृषत्, पुण्डरीक आदि; चन्द्र, पद्म, कमल, किसलय आदि। देखो—स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुंगवर्षभकुंजराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः। अमरकोष ३-१-५९।

२. उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (२-१-२५)।

३. जब सामान्य धर्म का उपमेय के साथ सबन्ध हो, जैसे—मुखपद्मं सहास्यम्, तो विग्रह होगा मुखं पद्ममिव। जब उपमान के साथ संबन्ध होगा, जैसे—मुखपद्मं विकसितम्, तो विग्रह होगा—मुखमेव पद्मम्।

४. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (२-१-५७)।

सर्पश्च—कृष्णसर्प । यहाँ नित्य समास होगा । कहीं नहीं होता है । जैसे—रामो जामदग्न्य । इस प्रकार के समासों को विशेषणपूर्वपद कर्मधारय कहते है ।

ऐसे समासों में साधारणतया विशेषण शब्द का पहले प्रयोग होता है, परन्तु कुछ स्थानों पर ऐसा नहीं होता है। उनका नीचे उल्लेख किया जाता है ।

(क) निम्नलिखित स्थानों पर जातिवाचक विशेष्य शब्द का पहले प्रयोग होता है और वह पुंलिंग ही रहता है । इन शब्दों का विशेषण शब्दों के साथ समास होता है ।[1] जैसे—इभयुवति (जवान हथिनी), अग्निस्तोक (थोड़ी आग), उदश्वित्कतिपयम् (कुछ पानी मिला हुआ मट्ठा), गोगृष्टि (एक बार ब्याई हुई गाय), गोधेनु (दूध देने वाली गाय, धेनुर्नवप्रसूतिका), गोवशा (बाँझ गाय), गोवेहत् (गर्भघातिनी गौ), गोबष्कयणी (जवान बछड़े वाली गाय), कठश्रोत्रिय (यजुर्वेद की कठ शाखा पढ़ने वाला अग्निहोत्री ब्रह्मचारी), कठाध्यापक (कठ शाखा का अध्यापक)। गोमतल्लिका, गोमचर्चिका, गोप्रकाण्डम् (कुछ के मतानुसार पुंलिंग भी), गवोद्ध, गोतल्लज (श्रेष्ठ गाय) ।[2] मतल्लिका आदि पाँचों शब्द श्रेष्ठ अर्थ के बोधक हैं और ये सदा अपने ही लिंग में रहते है। जैसे—ब्राह्मणमतल्लिका (श्रेष्ठ ब्राह्मण) । जातिवाचक शब्द न होने के कारण कुमारीमतल्लिका रूप होगा ।

(ख) निम्नलिखित कडार आदि शब्दों का कर्मधारय में विकल्प से पूर्वप्रयोग होता है—कडार, खञ्ज, खोड (लगड़ा), काण, कुण्ठ (खोटा, कुण्ठित), खलति (गजा), गौर, वृद्ध, भिक्षुक, पिंग, पिंगल, तनु जरठ (कड़ा), बधिर, कञ्ज और बबर ।[3] जैसे—जैमिनिकडार, कडारजैमिनि (जैमिनि मुनि, जो धूप में तपस्या के कारण पीले पड़ गए हैं), इत्यादि ।

---

१ पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जाति । (२-१-६५) । पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु (६-३-४२) ।

२ प्रशंसावचनैश्च (२-१-६६) । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गा न तु विशेष्यनिघ्ना । सि० कौ० । मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमूनि, इत्यमर ।

३. कडारा कर्मधारये (२-२-३८) ।

(ग) निन्दनीय वस्तुओ या व्यक्तियो का कर्मधारय मे पूर्वप्रयोग होना है।[1] जैसे—वैयाकरणखसूचि (मूर्ख वैयाकरण जो व्याकरण को भूल गया है और प्रश्न पूछे जाने पर आसमान की ओर देखता है। जो अपने व्याकरणज्ञान का उपयोग नही कर सकता है।) (य पृष्ट सन् प्रश्न विस्मारयितु ख सूचयति अभ्यास-वैधुर्यात् स एवमुच्यते, तत्वबोधिनी)। इसी प्रकार मीमासकदुर्दुरूढ (नास्तिक मीमासक)। पाप, आणक और किम्, इनका पूर्वप्रयोग होगा। जैसे—पापनापित (नीच नाई), आणककुलाल (मूर्ख कुम्हार), कुत्सित राजा—किराजा, कुत्सित सखा किसखा इत्यादि।

(घ) वृन्दारक, नाग और कुजर शब्दो के साथ पूज्य वस्तु का पूर्वप्रयोग होता है।[2] जैसे—नृपवृन्दारक (मुख्य राजा), तापसकुजर, पुरुषनाग इत्यादि।

(ङ) कतर और कतम शब्दो का जातिवाचक प्रश्न होने पर समास होता है और इनका पूर्वप्रयोग होता है।[3] कतरकठ, कतमकठ (कठशाखाध्यायी कौन से ब्राह्मण हो?), कतरकलाप, कतमकलाप (कलापशाखाध्यायी कौन से ब्राह्मण हो?)। किन्तु कतर पुत्र (कौन सा पुत्र?) ही रूप बनेगा।

(च) निम्नलिखित शब्दो के साथ समास होने पर कुमार (कुमारी को भी कुमार शब्द होने पर) शब्द का पूर्वप्रयोग होता है—श्रमणा, प्रव्रजिता, कुलटा, गर्भिणी, तापसी, दासी, अध्यापक पण्डित, पटु, मृदु कुशल, चपल और निपुण।[4] जैसे—कुमारश्रमणा (कुमारी भिक्षुक), कुमारप्रव्रजिता (कुमारी सन्यासिनी), कुमारमृदु—कुमारमृद्वी (सुकुमार बालक या बालिका), कुमारगर्भिणी, कुमारा-ध्यापक, आदि।

(छ) कर्मधारय समास में इन शब्दो का सदा पूर्वप्रयोग होता है—एक, सर्व, जरत् पुराण, नव, केवल तथा पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य (अति-

१ कुत्सितानि कुत्सनै (२-१-५३)। पापाणके कुत्सितै (२-१-५४)। किं क्षेपे (२-१-६४)।
२ वृन्दारकनागकुञ्जरै पूज्यमानम् (२-१-६२)।
३. कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने (२-१-६३)।
४. कुमार श्रमणादिभि (२-१-७०)।

नीच), समान, मध्य, मध्यम और वीर ।[1] अपर के बाद अर्ध शब्द होगा तो अपर को पश्च हो जाएगा । जैसे—एकनाथ (अकेला स्वामी), सर्वदीला, जरनैयायिक (वृद्ध नैयायिक), पुराणमीमांसक (पुराने मीमांसक), नवपाठक पूर्ववैयाकरण (प्राचीन वैयाकरण), अपराध्यापक, अपरश्चासौ अर्धश्च—पश्चार्ध (पीछे की ओर का आधा भाग), चरमराज (अन्तिम राजा), समानाधिकरणम् (एक आधार पर रहने वाले), वीरैक (अद्वितीय वीर) आदि । एकवीर रूप भी बन सकता है ।[2]

(ज) सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट शब्दों का पूज्य वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ समास होता है और इनका पूर्व प्रयोग होता है ।[3] जैसे—सद्वैद्य (श्रेष्ठ वैद्य), महावैयाकरण, इत्यादि । उत्कृष्टो गौ में समास नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर उत्कृष्ट का अर्थ है उत्-कृष्ट—(कीचड से) बाहर निकाली गई ।

२२३ दिशावाची और संख्यावाची शब्दों का सुबन्त के साथ कर्मधारय समास होता है, यदि समस्त पद संज्ञावाचक हो तो ।[4] जैसे—सप्तर्षय (सप्तर्षि नक्षत्र), पंचजना,[5] आदि । पूर्वेषुकामशमी (पूर्व में एक नगर का नाम) ।

---

१. पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन (२-१-४९) । पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च (२-१-५८) । अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्य (वार्तिक) ।

२. कथमेकवीर इति । पूर्वकालैक० इति बाधित्वा परत्वादनेन समासे वीरैक इति हि स्यात् । बहुलग्रहणाद् भविष्यति । एकवीर रूप कैसे बनेगा ? क्योंकि पूर्वकालैक० सूत्र से पूर्वापर० सूत्र बाद में आया है, अत पूर्वापर० सूत्र ही लगने से वीरैक रूप बनेगा । इसका उत्तर है कि एकवीर भी रूप बन सकता है । पूर्वापर० सूत्र में बहुलम् की अनुवृत्ति होने से कहीं पर यह सूत्र नहीं लगेगा और उस अवस्था में पूर्वकालैक० से एक शब्द का पहले प्रयोग होकर एकवीर रूप बनेगा ।

३ सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः (२-१-६१) ।

४ दिक्संख्ये संज्ञायाम् (२-१-५०) ।

५ ये पंचजन हैं—देव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और पितर । दूसरों के मतानुसार पंचजन ये हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद । (देखो ब्रह्मसूत्र १-४-११ से १३ पर शंकराचार्य का भाष्य) ।

उत्तरा वृक्षा, पञ्च ब्राह्मणा आदि में समास नहीं हुआ, क्योंकि ये संज्ञावाचक नहीं है।

(क) दिशा और संख्यावाची शब्दों का सुबन्त के साथ समास होता है, यदि समस्त पद से तद्धित प्रत्यय होने वाला हो (अथवा यह समस्त पद कर्मधारय समास का अर्थ बताने के अतिरिक्त तद्धित प्रत्यय का भी अर्थ बताये), अथवा समस्त पद के बारे में कोई और सुबन्त पद हो जिसमें इसका समास होना हो, अथवा समस्त पद संज्ञावाचक हो।[1] जैसे—पूर्वा शाला—पूर्वशाला, पूर्वस्यां शालायां भव—पौर्वशाल (पूर्व के गृह में होने वाला)। यहाँ पर पूर्वशाला शब्द से 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः' (४-२-१०७) सूत्र से तद्धित प्रत्यय ञ (अ)। पूर्वशाला + अ—पौर्वशाल। इसी प्रकार षष् + मातृ—षण्मातृ (६ माताएँ)। षण्मातृ + अ (तद्धित प्रत्यय)—षाण्मातुर (६ माताओं का पुत्र)। पूर्वा शाला प्रिया यस्य स—पूर्वशालाप्रिय। यहाँ पर पूर्वशाला शब्द पूरे समास का पूर्वपद है और इसका स्वतन्त्र रूप से यहाँ प्रयोग नहीं है। उत्तरध्रुव, दक्षिणध्रुव, आदि नाम हैं, अतः समास हुआ है।

२२४ कु शब्द का किसी भी सुबन्त के साथ कर्मधारय समास होता है। जैसे—कुपुरुष (कुत्सित पुरुष, नीच पुरुष), कुपुत्र, इत्यादि।

(क) कु के स्थान पर निम्नलिखित आदेश होते हैं—

(१) इन स्थानों पर कु के स्थान पर कत् आदेश होता है[2]—तत्पुरुष समास में अजादि शब्द बाद में होने पर, त्रि शब्द बाद में होने पर, रथ और वद शब्द बाद में होने पर, जातिवाचक तृण शब्द बाद में होने पर। कुत्सितः अश्व—कदश्व (रद्दी घोड़ा)। इसी प्रकार कदन्नम् (घटिया अन्न)। बहुव्रीहि समास होने से कूष्ट्रो राजा में कत् नहीं हुआ, (जिसके पास घटिया ऊँट है, ऐसा राजा)। कुत्सिता त्रय कत्त्रय (तीन घटिया चीजें), कद्रथ (घटिया रथ), कद्वद (बुरा बोलने वाला), कत्तृणम् (एक सुगन्धित घास का नाम)।

(२) इन स्थानों पर कु को का होता है[3]—पथिन् और अक्ष बाद में

---

१. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च (२-१-५१)।
२. को कत्तत्पुरुषेऽचि (६-३-१०१)। त्रौ च (वार्तिक)। रथवदयोश्च (६-३-१०२)। तृणे च जातौ (६-३-१०३)।
३. कापथ्यक्षयोः (६-३-१०४)। ईषदर्थे (६-३-१०५)। विभाषा पुरुषे (६-३-१०६)।

हो तो, ईषत् (थोडा) अर्थ में, पुरुष शब्द बाद में हो तो विकल्प से। कापथम्, काक्ष (कटाक्ष या क्रोधभरी दृष्टि) (देखो भट्टि० ५-५४)। (अक्षशब्देन तत्पुरुष। अक्षिशब्देन बहुव्रीहिर्वा, सि० कौ०)। ईषज्जल: काजलम् (थोडा पानी), ईषत्पुरुष कापुरुष। किन्तु कुत्सित पुरुष—कुपुरुष, कापुरुष, दोनों रूप होंगे।

(३) उष्ण शब्द बाद में होगा तो कु को कव और का दोनों होंगे।[1] (१) के अनुसार कत् भी। कोष्णम्, कवोष्णम्, कदुष्णम् (थोडा गर्म)।

२२५. दो विशेषणों का भी समास हो जाता है। इसे विशेषणोभयपद-कर्मधारय कहते हैं। जैसे—शुक्लकृष्ण, कृष्णसारंग।

(क) एक व्यक्ति के क्रमिक कार्यों से सबद्ध दो कृदन्त शब्दों का समास हो जाता है और जो कार्य पहले किया गया हो, उसका पूर्वप्रयोग होता है।[2] पूर्व स्नात पश्चादनुलिप्त—स्नातानुलिप्त (पहले स्नान किया, बाद में लेप किया)। इसी प्रकार पीतोद्गीर्णम् (पहले पिया और बाद में उगल दिया), पीतप्रतिबद्ध, गृहीतप्रतिमुक्त (रघु० २-१, ४-४३) इत्यादि।

(ख) नियम २२२ (छ) में दो शब्द-समूह दिए गए हैं। यदि इन दोनों शब्द-समूहों में से किन्हीं दो शब्दों का समास होगा तो पूर्व, अपर आदि शब्दों का पूर्वप्रयोग होगा। एक का वीर के साथ समास होने पर वीरैक और एक-वीर दोनों रूप बनेंगे। इनमें से वीरैक अधिक उपयुक्त है। प्रथम शब्द समूह में एक से लेकर केवल तक किन्हीं दो शब्दों का समास होगा तो सूची में बाद में दिए हुए शब्द का पूर्वप्रयोग होगा। जैसे—पुराणजरत्, केवलपुराणम्, आदि।

(ग) एक क्तप्रत्ययान्त का दूसरे नञ्-युक्त क्तप्रत्ययान्त के साथ समास हो जाता है।[3] जैसे—कृताकृतम् (कुछ किया, कुछ नहीं किया हुआ अर्थात् अधूरा किया हुआ)।

(घ) युवन् (पु०, स्त्री०) शब्द का खलति, पलित, वलित (झुर्री से युक्त) और जरती शब्द के साथ कर्मधारय समास होता है और युवन् का पूर्वप्रयोग

---

१. कव चोष्णे (६-३-१०७)।
२. देखो पूर्वकाल० (२-१-४९) सूत्र पर तत्त्वबोधिनी टीका। (पूर्वत्वस्य ससबन्धिकत्वात् पूर्वकालोऽपरकालेन समस्यते)।
३. क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् (२-१-६०)।

होता है।[1] जैसे—युवा खलति—युवखलति (गंजा युवक), युवति—खलति—युवखलति (गंजी स्त्री), युवजरती (युवती होते हुए भी देखने में बूढ़ा सी), युवपलित (युवक होते हुए भी सफेद बालों से युक्त) इत्यादि।

२२६. ईषत् शब्द का कृदन्त को छोड़कर अन्य किसी भी शब्द के साथ समास हो सकता है। यदि गुणवाचक कृदन्त शब्द होगा तो उसके साथ भी समास हो जाएगा।[2] ईषत्पिङ्गल (कुछ पीला), ईषद्रक्तम् (कुछ लाल) इत्यादि।

२२७. कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों (तव्य, अनीय और य प्रत्ययान्त) और तुल्य अर्थ वाले शब्दों का जातिवाचक शब्दों को छोड़कर अन्य किसी भी सुबन्त के साथ समास होता है।[3] जैसे—भोज्योष्णम् (कोई भी गर्म खाना), तुल्यश्वेत. (एक ही प्रकार के सफेद रंग का), सदृशश्वेत आदि। किन्तु भोज्य ओदन में समास नहीं होगा, क्योंकि ओदन जातिवाचक शब्द है।

२२८. मयूरव्यंसक आदि समस्त पद निपातन (ऐसा अभीष्ट है) के द्वारा बनते हैं।[4] इस गण के मुख्य उल्लेखनीय शब्द ये हैं—मयूरश्चासौ व्यंसको मयूरव्यंसक (धूर्त मोर)। इसी प्रकार छात्रव्यंसक, उदक् च अवाक् च—उच्चावचम्। इसी प्रकार उच्चनीचम् (ऊँचा-नीचा), निश्चित च प्रचित च—निश्चप्रचम्, नास्ति किंचन यस्य स—अकिंचन, नास्ति कुतो भय यस्य स—अकुतोभय, अन्यो राजा—राजान्तरम्, अन्या ग्राम—ग्रामान्तरम्, चिदेव—चिन्मात्रम् (ये सब नित्य समास हैं)। अश्नीत पिबत इत्येव सतत यत्राभिधीयते सा—अश्नीतपिबता (जहाँ पर बार-बार यही बात कही जाती है कि—खाओ पीओ)। इसी प्रकार पचतभृज्जता, खादतमोदता। अहम् अहम् इति यस्या क्रियायाम-भिधीयते सा—अहमहमिका (जिस क्रिया में बार-बार यही कहा जाता हो कि मैं ही, मैं ही, अत कठिन प्रतियोगिता), अहं पूर्वम् अहं पूर्वमिति यस्या क्रिया-यामभिधीयते सा—अहंपूर्विका, इसी प्रकार आहोपुरुषिका (अधिक दुरभिमान, भट्टि० ५-२७)। (अहंभाव या आत्मप्रशंसा, भामिनीविलास १-८४)। कान्दि-शीकम् (भागनेवाला, भगोड़ा), यदृच्छा (स्वेच्छा) इत्यादि।

---

१. युवा खलतिपलितवलिनजरतीभि (२-१-६७)।
२. ईषदकृता (२-२-७)। ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम् (वार्तिक)।
३. कृत्यतुल्याख्या अजात्या (२-१-६८)।
४. मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२)।

२२९ शाकपार्थिव आदि कतिपय कर्मधारय समास वाले शब्दों में उत्तर-पद (अर्थात् प्रथम समस्त पद के दूसरे शब्द) का लोप हो जाता है।[1] जैसे—शाकप्रिय पार्थिव —शाकपार्थिव (साग अधिक पसन्द करने वाला राजा), देवपूजको ब्राह्मण —देवब्राह्मण आदि। इन समासों का ठीक नाम 'उत्तरपद-लोपी समास' है, परन्तु इनका प्रचलित नाम 'मध्यमपदलोपी समास' है। यह आकृतिगण है। जिन समस्त पदों में इस प्रकार की व्याख्या की आवश्यकता होती है, उन्हें शाकपार्थिवादि गण में रक्खा जाता है।

द्विगुसमास (Numeral Appositional Compounds)

२३० जिस कर्मधारय समास में पहला शब्द सख्यावाची होता है, उसे द्विगु कहते हैं।[2]

२३१ (क) नियम २२३ (क) में उल्लिखित स्थानों पर द्विगु समास हो सकता है। अर्थात्—

(१) यदि समस्त पद से कोई तद्धित प्रत्यय होने वाला हो तो। षण्णा मातृणाम् अपत्य—षाण्मातुर (६ माताओं का पुत्र, कार्तिकेय, देखो कुमार-सम्भव सर्ग ९)। पञ्चकपाल आदि। अथवा (२) जहाँ पर समस्त पद पुन दूसरे समस्त पद का पूर्वपद हो जाता है। जैसे—पञ्च गावो धन यस्य स—पञ्चगवधन, पञ्चगवप्रिय आदि।

(ख) समाहार (समूह) अर्थ में द्विगु समास होता है और वह एकवचन ही रहता है।[3] जैसे—त्रयाणा भुवनाना समाहार —त्रिभुवनम् (तीनों लोकों का समूह), पञ्चपात्रम्, पञ्चगवम् इत्यादि।

४. प्रादि-समास (Prepositional Compounds)

२३२ तत्पुरुष समास में जिन पदों के प्रारम्भ में उपसर्ग होते हैं उन्हें वैयाकरणों ने प्रादि-समास कहा है।[4] इन प्र आदि उपसर्गों का प्रथमान्त,

---

१ शाकपार्थिवादीना सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसख्यानम् (सूत्र २-१-६० पर वार्तिक)।

२. सख्यापूर्वो द्विगु (२-१-५२) ३ द्विगुरेकवचनम् (२-४-१)

४. कुगतिप्रादय (२-२-१८)। प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया। अत्यादय क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया। अवादय क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। निरादय क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। कर्मप्रवचनीयाना प्रतिषेध । (वार्तिक)।

द्वितीयान्त, तृतीयान्त आदि के साथ समास होता है। जैसे—प्रगत आचार्य —प्राचार्य (मुख्य आचार्य), सगत अध्वानम्—समध्व (रास्ते का साथी) (देखो भट्टि ३-४५), प्रकृष्टा वात —प्रवात (तेज हवा) आदि। अतिक्रान्ता मालाम् अतिमाल (सुगन्ध आदि में माला से बढ़कर), अतिक्रान्तो रथ रथिन वा-अतिरथ (अनुपम महारथी)। इसी प्रकार अनिमात्र (मात्रा से बढ़कर), अनिमर्त. आदि। अवक्रुष्ट कोकिलया—अवकोकिल (कोयल से कोसा गया), परि-ग्लान अध्ययनाय-पर्यध्ययन (पढ़ाई में तंग आया हुआ), निष्क्रान्त कौशा-म्ब्या —निष्कौशाम्बि (कौशाम्बी से बाहर निकला हुआ)। इसी प्रकार निर्लङ्क आदि। कर्मप्रवचनीय (कर्म कारक के कारण) उपसर्गों के साथ समास नहीं होता। वृक्ष प्रति।

५. गति-समास (Prepositional Compounds)

२३३ निम्नलिखित शब्दों का क्त्वा, ल्यप् प्रत्ययान्त (Verbal Indeclinables) आदि धातुओं के साथ जो समास होता है, उसे गति-समास कहते हैं।

(क) ऊरी, उररी, वौषट्, वषट् स्वाहा, स्वधा, प्रादु, आविस् और श्रत् निपात तथा कारिका (कार्य) शब्दों का क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ समास होता है।[1] ऊरीकृत्य, उररीकृत्य (स्वीकार करके), वषट्कृत्य (वषट् शब्द कहकर), प्रादुर्भूय, कारिकाकृत्य (काम करके)।

(ख) अनुकरणात्मक शब्दों का, यदि बाद में इति शब्द न हो तो।[2] जैसे—खाट्कृत्य। किन्तु खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् में समास नहीं होगा।

(ग) आदरार्थक सत् और अनादरार्थक असत् शब्द, अलम् (अलंकार अर्थ में), पुर, अद, अन्त, कणे, मनस अस्तम् अच्छ और तिर शब्दों का।[3] जैसे—अलंकृत्य (सजाकर), अन्यत्र अलंकृत्वा (पर्याप्त काम करके, पर्याप्तमित्यर्थ, सि० कौ०), पुरस्कृत्य (सामने रखकर), अदकृत्य (अद कृतम्), अन्तर्हत्य (मध्ये हत्वा, सि० कौ०), कणेहत्य जैसे कणेहत्य पय पिबति (जी भरकर पानी

---

१. ऊर्यादिच्विडाचश्च (१-४-६१)। कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम् (वार्तिक)।
२. अनुकरण चानितिपरम् (१-४-६२)।
३. सूत्र १-४-६३ से ७१।

पीता है), अच्छाय (सामने जाकर और मत्वर, अभिमुख गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः, सि० का०), तिरोभूय, मनोहत्य (जी मारकर), अस्तगत्य, अच्छगत्य (सामने जाकर)।

(घ) हस्ते, पाणौ, प्राध्वम् का।[1] जैसे—हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य (विवाह करके), प्राध्वङ्कृत्य (बन्धन के द्वारा अनुकूल करके)।

(ङ) इन शब्दों का क्त्वा या ल्यप् प्रत्ययान्त धातुरूपों के साथ विकल्प से समास होता है—उपाजे, अन्वाजे, साक्षात्, मिथ्या, अमा, प्रादुः, आविः और नमस् अव्यय, उरसि और मनसि (अत्याधान अर्थात् अत्यन्त समीपता अर्थ को छोड़कर), मध्ये और पदे।[2] जैसे—उपाजेकृत्य—उपाजेकृत्वा, अन्वाजेकृत्य—अन्वाजेकृत्वा (निर्बल को बल देकर, दुर्बलस्य बलमाधाय इत्यर्थः, सि० कौ०), साक्षात्कृत्य साक्षात्कृत्वा, लवणकृत्य—लवणकृत्वा, उरसिकृत्य—उरसिकृत्वा (स्वीकार करके), मनसिकृत्य—मनसिकृत्वा, (किन्तु उरसि कृत्वा पाणिं शेते, में समास नहीं होगा), मध्येकृत्य—मध्येकृत्वा, पदेकृत्य—पदेकृत्वा आदि।

(च) कृत्प्रत्ययान्त शब्द बाद में हो तो भी ये समास होते हैं। जैसे—अस्तमय (सूर्यास्त), पुरस्कार (स्वागत, आदर-प्रदर्शन), तिरस्कार, सत्कार, अलंकृति आदि।

२३४ च्विप्रत्ययान्त शब्दों का भी कृदन्त धातुरूपों के साथ समास होता है और वह गति-समास कहा जाता है। जैसे—शुक्लीकृत्य (जो सफेद नहीं था, उसे सफेद बनाकर)। च्विप्रत्यय के लिए देखो अध्याय ११।

६. उपपद-समास

२३५ तत्पुरुष समास में जहाँ पर किसी पद के पहले रहने के कारण किसी धातु से कोई कृत् प्रत्यय होता है, वहाँ पर प्रथमपद को उपपद कहते हैं और दोनों पदों के समास को उपपद-समास कहते हैं। जैसे—कुम्भं करोतीति—कुम्भकार (कुम्हार)। इसी प्रकार साम गायतीति—सामग (सामवेद के मन्त्र का गान करने वाला), मासं कामयतीति—मासकामा (मास की इच्छुक)। इसी प्रकार अश्वक्रीती (अश्वेन क्रीता, घोड़े से खरीदी गई वस्तु), कच्छपी (कछुआ

---

[1] सूत्र १-४-७७, ७८।

[2] सूत्र १-४-७३ से ७६। अनत्याधान उरसिमनसी (१-४-७५)।

की स्त्री) आदि। कुम्भकार आदि में कुम्भ आदि पूर्वपद को उपपद कहा जाता है।[1]

सूचना—उपपद समासों में यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्तरपद (दूसरा पद) तिङन्त धातुरूप नहीं होना चाहिए और न ऐसा शब्द होना चाहिए जो पूर्वपद की अपेक्षा के बिना ही स्वतन्त्र रूप से बन सकता हो। जैसे—पयोधर में उपपद समास नहीं है, क्योंकि इसमें उत्तरपद धर स्वतन्त्र रूप से बन सकता है। अतः यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष समास है। धरतीति धरः, पयसां धरः पयोधरः (बादल या स्तन)।

२३६ कभी-कभी इस उपपद-समास का उत्तरपद णमुल् (अम्) प्रत्ययान्त होता है। जैसे—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते (भोजन को स्वादिष्ट बनाकर खाता है)। अग्रेभोजम् (पहले खाना खाकर)। कभी-कभी यह समास विकल्प से भी होता है। जैसे—मूलकोपदंशं या मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते (मूली से अचार को खाता है) इत्यादि।

२३७ उच्चैः, नीचैः, तिर्यक्, मुखतः आदि कुछ उपपद शब्दों का क्त्वा (अथवा ल्यप्) प्रत्ययान्त धातुरूपों के साथ विकल्प से समास होता है। जैसे—उच्चैःकृत्य—उच्चैः कृत्वा, तिर्यक्कृत्य, मुखतोभूय, नानाकृत्य, एकधाभूय आदि। विस्तृत विवरण के लिए देखो कृत्-प्रकरण।

तत्पुरुष-समास-विषयक सामान्य-नियम

२३८ तत्पुरुष समास के अन्त में अंगुलि शब्द होगा तो उसके अन्तिम इ को अ हो जायगा, यदि उससे पहले कोई संख्यावाची शब्द या अव्यय होगा तो।[2] जैसे—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य—द्व्यङ्गुलं दारु (दो अंगुल लम्बी लकड़ी), निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम् आदि।

२३९ निम्नलिखित स्थानों पर तत्पुरुष समास होने पर समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्ववर्ती टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर के बाद कोई व्यंजन हो तो स्वर और व्यंजन दोनों) का लोप हो जाता है—

---

१ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (३-१-९२)। सप्तम्यन्ते पदे कर्मणि० इत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् (सि० कौ०)।

२. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः (५-४-८६)।

जाएगा।[1] जैसे—ग्रामस्य तक्षा—ग्रामतक्ष (गाँव का बढ़ई अर्थात् साधारण बढ़ई), कुट्या भव—कौट (स्वतन्त्र) स चासौ तक्षा च—कौटतक्ष (एक स्वतन्त्र बढ़ई), अतिश्वो वराह (कुत्ते से तेज दौड़ने वाला सूअर), अतिश्वी सेना (कुत्ते से भी नीच जीवन बिताने वाली सेना), आकर्ष श्वा इव—आकर्षश्व (कुत्ते की तरह पासे फेंकने वाला)। किन्तु वानरश्वा (कुत्ते की तरह का बन्दर) में अशुभ ढग से पासे का पड़ना)। किन्तु वानरश्वा (कुत्ते की तरह का बन्दर) में प्राणिवाचक उपमान होने से श्व नहीं हुआ।

(ङ) उत्तर, मृग, पूर्व और प्राणिभिन्न उपमानवाची शब्द पहले होगा तो सक्थि को सक्थ हो जाएगा।[2] उत्तरसक्थम् (जाँघ से ऊपर का भाग), मृगसक्थम् (मृग की जाँघ), पूर्वसक्थम्, फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् (पट्टे की तरह चौड़ी जाँघ)।

(च) यदि संख्यावाची शब्द के साथ तत्पुरुष समास होना है तो समासान्त अ प्रत्यय और टि लोप। निर्गतानि त्रिंशत निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य (चैत्र ३० वर्ष से अधिक का है), निर्गत त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंश खड्गः (तलवार जो लम्बाई में ३० अंगुल से बड़ी है)।

२४०. निम्नलिखित शब्द तत्पुरुष समास के अन्त में होंगे तो इनसे समासान्त अ प्रत्यय होगा —

(क) गो शब्द से अ प्रत्यय होगा। यदि तद्धितप्रत्यय होकर लोप हुआ होगा तो नहीं।[3] जैसे—परमगव (उत्तम बैल), पञ्चगवधन (पंचगव में अ प्रत्यय, पांच गौएँ जिसका धन है)। किन्तु द्विगु (दो गायों से खरीदी गई वस्तु)।

(ख) मुख्य अर्थ वाले उरस् शब्द से।[4] अश्वानाम् उर इव अश्वोरसम् (घोड़ों में मुख्य अर्थात् प्रमुख घोड़ा)।

(ग) जातिवाचक या संज्ञावाचक होंगे तो अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् शब्दों से अ प्रत्यय।[5] उपानसम् (उपगतम् अन, गाड़ी का बोझ), महानस (रसोई), अमृताश्म (चन्द्रकान्तमणि के तुल्य पत्थर)। यहाँ पर अन् का लोप

---

१. अतेः शुनः (५-४-९६)। उपमानादप्राणिषु (५-४-९७)।
२. उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः (५-४-९८)।
३. गोरतद्धितलुकि (५-४-९२)।
४. अग्राख्यायामुरसः (५-४-९३)।
५. अनोऽश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः (५-४-९४)।

हुआ है। कालायसम् (काला पत्थर), मण्डूकसरसम् (तालाब, जिसमें मेढक अधिक हैं), जलसरसम् (तालाब का नाम)।

(घ) द्विगु समास के अन्त में नौ शब्द होगा तो उससे टच् (अ) प्रत्यय होगा, यदि तद्धित प्रत्यय का लोप हुआ होगा तो नहीं।[१] जैसे—द्वाभ्यां नौभ्यामागत—द्विनावरूप्य (यहाँ तद्धित प्रत्यय का लोप नहीं हुआ है), द्विनावम् (दो नावों का समूह), त्रिनावम् आदि। किन्तु पञ्चभि नौभि क्रीत —पञ्चनौ (यहाँ तद्धित प्रत्यय का लोप हुआ है)। अर्ध शब्द पहले होगा तो भी नौ से अ।[२] जैसे—नाव अर्धम्—अर्धनावम्। (यहाँ प्रचलन के आधार पर नपुं० है। क्लीवत्व लोकात्, सि० कौ०)।

(ङ) द्विगु समास हो या अर्ध शब्द पहले हो तो खारी शब्द से विकल्प से अ प्रत्यय।[३] खारी के ई का लोप भी होगा। द्विखारम्, द्विखारि, अर्धखारम्, अर्धखारि।

(च) द्विगु समास में द्वि या त्रि पहले हो तो अञ्जलि शब्द से विकल्प से अ होगा और अन्तिम इ का लोप होगा। तद्धित प्रत्यय का लोप होगा तो नहीं।[४] द्वयञ्जलम्—द्वयञ्जलि (दो अंजलि भर)। किन्तु द्वाभ्याम् अञ्जलिभ्या क्रीत—द्वयञ्जलि ही होगा।

२४१ कु या महत् शब्द पहले होगा तो ब्रह्मन् से विकल्प से अ प्रत्यय और अन्तिम अन् का लोप।[५] कुब्रह्म—कुब्रह्मा (कुत्सित ब्राह्मण), महाब्रह्म—महाब्रह्मा। यदि किसी देशवासी का नाम होगा तो ब्रह्मन् से अ प्रत्यय नित्य होगा। सुराष्ट्र-ब्रह्म (सुराष्ट्र में रहने वाला ब्राह्मण)।

२४२ महत् शब्द को महा हो जाता है, यदि वह कर्मधारय या बहुव्रीहि का प्रथम पद हो या जातीय प्रत्यय बाद में हो।[६] जैसे—महादेव (महान् देवता,

---

१. नावो द्विगोः (५-४-९९)।
२. अर्धाच्च (५-४-१००)।
३. खार्याः प्राचाम् (५-४-१०१)।
४. द्वित्रिभ्यामञ्जलेः (५-४-१०२)।
५. ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् (५-४-१०४)। कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् (५-४-१०५)।
६. आन्महत समानाधिकरणजातीययोः (६-३-४६) तथा सूत्र पर वार्तिक।

शिव), महाबाहु (बडी भुजा, तत्पुरुष, बडी भुजा वाला, बहुव्रीहि), महाजातीय ।
किन्तु महत सेवा—महत्सेवा (यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है) ।

अपवाद-नियम—घास, कर और विशिष्ट बाद में होंगे तो महा अवश्य होगा । महतो महत्या वा कर—महाकर । इसी प्रकार महाघास, महाविशिष्ट ।

२४३. अष्टन् को अष्टा हो जाता है, बाद में कपाल शब्द हो और हवि अर्थ हो । इसी प्रकार गो शब्द बाद में होने पर और जुतना अर्थ होने पर अष्टन् को अष्टा ।[१] अष्टाकपाल पुरोडाश (आठ कपालों में पका हुआ पुरोडाश) । अष्टा-गव शकटम् (आठ बैल जिसमें जुते हों, ऐसी गाडी) ।

२४४ नञ् तत्पुरुष समास होने पर कोई समासान्त प्रत्यय नहीं होता है ।[२] न राजा—अराजा (जो राजा नहीं है), न सखा—असखा इत्यादि ।

(क) नञ् समास में बाद में पथिन् शब्द हो तो समासान्त अ प्रत्यय विकल्प से होगा और अन्तिम इन् का लोप होगा । तत्पुरुष समास में अपथ शब्द नपु० होगा ।[३] अपथम्—अपन्था (रास्ता न होना) । किन्तु अपथो देशः (यहाँ पर बहु० समास है) ।

तत्पुरुष समास में लिंग-विधान

२४५. सामान्यतया तत्पुरुष समास में अन्तिम शब्द के अनुसार लिंग होता है ।[४]

अपवाद-नियम (क) प्राप्त और आपन्न शब्द पहले हों या गति समास हो तो विशेष्य के अनुसार लिंग होता है ।[५] प्राप्तजीविक नर, प्राप्तजीविका स्त्री, निष्कौशाम्बि पुरुष, आदि ।

(ख) रात्र, अह्न और अह अन्त वाले तत्पुरुष पुंलिंग होते हैं । यदि कोई संख्या पहले होगी तो रात्र नपुंसक० होगा । पुण्य और सुदिन पहले होंगे तो अह

---

१. अष्टनः कपाले हविषि (वा०), गवि च युक्ते (वार्तिक) ।
२. नञस्तत्पुरुषात् (५-४-७१) ।
३. पथो विभाषा (५-४-७२) । अपथं नपुंसकम् (२-४-३०) ।
४. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः (२-४-२६) ।
५. द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः (वार्तिक) ।

नपुंसक० होगा ।[1] जैसे—पूर्वरात्र, मध्याह्न, सप्ताह, नवरात्रम्, गणरात्रम्, पुण्याहम्, सुदिनाहम् । कोई संख्या या अव्यय पहले हो तो पथ (पथिन् का समासान्त रूप, देखो नियम २८०) नपुंसक होता है । त्रयाणां पन्थाः त्रिपथम् । विरूपः पन्थाः विपथम् (बुरा रास्ता) । किन्तु सुपन्थाः, अतिपन्थाः रूप होंगे । यहाँ पर पथ नहीं, अपितु पन्था है (देखो नियम २८५) ।

(ग) समाहार अर्थ वाला द्विगु समास नपुंसक होता है । अकारान्त द्विगु समास स्त्रीलिंग होता है । आकारान्त द्विगु विकल्प से स्त्रीलिंग होता है । स्त्रीलिंग होने पर अन्त में ई लगेगा ।[2] पञ्चगवम् (पाँच गायों का समूह), त्रयाणां लोकानां समाहारः—त्रिलोकी । किन्तु पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम् आदि । पञ्चानां खट्वानां समाहारः—पञ्चखट्वी, पञ्चखट्वम् । अन् अन्त वाले द्विगु का न् हट जाता है और वह विकल्प से स्त्रीलिंग होता है । पञ्चतक्षम्, पञ्चतक्षी (पञ्च + तक्षन्, पाँच बढ़इयों का समूह) ।

(घ) उपज्ञा या उपक्रम शब्द तत्पुरुष के अन्त में होंगे तो वे नपुंसक होंगे, यदि सर्वप्रथम का अर्थ अभिप्रेत होगा तो ।[3] पाणिनेरुपज्ञा—पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थ (पाणिनि के द्वारा सर्वप्रथम रचित ग्रन्थ या व्याकरण), नन्दोपक्रमं द्रोण (राजा नन्द ने सर्वप्रथम जिसका प्रयोग प्रारम्भ किया, ऐसा द्रोण नाम का एक बाट या तोलने का साधन) ।

(ङ) छाया अन्त वाले तत्पुरुष नपुंसक होते हैं, यदि छाया करने वाली वस्तुएँ अनेक हों तो ।[4] इक्षूणां छाया—इक्षुच्छायम् ।

(च) तत्पुरुष समास के अन्त में सभा शब्द नपुंसक हो जाता है, यदि उससे पूर्व राजा का पर्यायवाची कोई शब्द हो या रक्षस्, पिशाच आदि शब्द हो । राजन्

---

१. रात्राह्नाहाः पुंसि (२-४-२९) । संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् (सि० कौ०) । पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा (वा०) । पथः संख्याव्ययादेः (वा०) ।
२. स नपुंसकम् (२-४-१७) । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः (वा०) आबन्तो वा (वा०) । अनो नलोपश्च वा द्विगुः स्त्रियाम् (वा०) । पात्राद्यन्तस्य न (पूर्वोक्त सूत्र पर वार्तिक) ।
३. उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम् (२-४-२१) । उपज्ञा ज्ञानमाद्यं स्यात् ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः (अमर०) ।
४. छाया बाहुल्ये (२-४-२२) ।

शब्द या राजा का नाम पहले नहीं होना चाहिए।[1] जैसे—इनसभम्, ईश्वरसभम् (राजा की सभा)। किन्तु—राजसभा ही रूप होगा। रक्षःसभम्, पिशाचसभम्। समूह अर्थ में सभा शब्द अन्त में हो तो भी नपुंसक होगा। जैसे—स्त्रीसभम् (स्त्रियों का समूह)। किन्तु धर्मसभा ही रूप होगा, यह धर्मशाला के अर्थ में है।

(छ) तत्पुरुष के अन्त में ये शब्द होंगे तो विकल्प से नपुंसक होगा—सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा।[2] ब्राह्मणसेना—ब्राह्मणसेनम्, यवसुरा—यवसुरम् (जौ की बनी शराब), कुड्यच्छाया—कुड्यच्छायम् (दीवार की छाया), गोशाला—गोशालम्, श्वनिशा—श्वनिशम् (शाबर भाष्य में इसकी व्याख्या है कि श्वनिशा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को कहते हैं, क्योंकि उस रात कुछ कुत्ते उपवास रखते हैं)।

सूचना—लिंग-विषयक उपर्युक्त ये नियम तत्पुरुष समास में ही लगते हैं, अन्यत्र नहीं। जैसे दृढसेनो राजा (बहु०), असेना (नञ् समास), परमसेना (कर्मधारय)।

(३) बहुव्रीहि समास (Attributive Compounds)

२४६ दो या अधिक प्रथमान्त शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है, यदि उन शब्दों से अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ अभीष्ट हो तो।[3] इसमें प्रथम पद साधारणतया विशेषण या गुणवाचक होता है और उत्तर पद विशेष्य या गुणी। दोनों पद मिलकर अपने से भिन्न पद का अर्थ बताते हैं। जैसे—महाबाहु (जिसकी भुजाएँ बड़ी हैं), पीताम्बर (जिसके वस्त्र पीले हैं)। इसका विग्रह करने पर द्वितीया से लेकर सप्तमी तक किसी भी विभक्ति का यत् शब्द का रूप अन्त में आता है। जैसे—महान् बाहु यस्य स महाबाहु (नल), पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बर (हरि)। बहुव्रीहि समास वाला पद विशेषण का कार्य करता है और विशेष्य के तुल्य उसके लिंग और वचन होते हैं।

टिप्पणी—इंग्लिश में भी इस प्रकार के समस्त पद प्राय मिलते हैं। जैसे—High-souled, Good-natured, Narrow-minded, आदि।

---

१. सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा (२-४-२३)। पर्यायस्यैवेष्यते (वा०)। अशाला च (२-४-२४)। अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह (सि० कौ०)।
२. विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम् (२-४-२५)।
३. अनेकमन्यपदार्थे (२-२-२४)। समस्यमानपदातिरिक्तस्य पदस्यार्थ इत्यर्थः (तत्त्वबोधिनी)।

सूचना—कर्मधारय और बहुव्रीहि समास मे निम्नलिखित अन्तर है—कर्मधारय में दोनो पदो मे से एक पद विशेषण होता है और दूसरा विशेष्य, बहुव्रीहि मे पूरा समस्त पद ही विशेषण होता है। कर्मधारय मे समस्त पद मे ही अर्थ पूरा हो जाता है, परन्तु बहुव्रीहि में समस्त पदो में अर्थ पूरा नही होता है। जैसे—घनश्याम नल मे समस्त पद के एक श्याम शब्द और नल दोनो मे एक विभक्ति है, अत यहाँ कर्मधारय है। गम्भीरनाद में कर्मधारय मानने पर अर्थ होगा—गम्भीरश्चासौ नाद (गम्भीर ध्वनि) और अर्थ पूर्ण हो जाता है। परन्तु गम्भीरनाद का बहुव्रीहि मानने पर अर्थ होगा—गम्भीर नाद यस्य (गभीर है ध्वनि जिसकी), यहाँ पर गभीर ध्वनि से ही अर्थ पूरा नही होता, अपितु वह व्यक्ति अपेक्षित है, जिसकी ध्वनि गभीर है।

२४७ बहुव्रीहि समास को दो भागो में विभक्त किया गया है—समानाधिकरण बहुव्रीहि और व्यधिकरण बहुव्रीहि।[१]

(क) समानाधिकरण बहुव्रीहि में बहुव्रीहि के दोनो पदो मे विग्रह की अवस्था में एक ही विभक्ति होती है। यत् शब्द के द्वितीया से सप्तमी तक भेदो के आधार पर इसके ६ भेद होते हैं। जैसे—प्राप्तम् उदक य स—प्राप्तोदको ग्राम। ऊढ रथ येन स—ऊढरथ अनड्वान्। उपहृत पशु यस्मै स—उपहृतपशु रुद्र। उद्धृत ओदन यस्या सा—उद्धृतौदना स्थली। पीतम् अम्बर यस्य स—पीताम्बरो हरि, वीरा पुरुषा यस्मिन् स—वीरपुरुषो ग्राम।

२४८ व्यधिकरण बहुव्रीहि उसे कहते हैं, जहाँ पर विग्रह करने पर दोनो पदो में एक विभक्ति न हो, अर्थात् दोनो पदो मे अलग-अलग विभक्ति हो। साधारणतया व्यधिकरण-बहुव्रीहि समास नही होता है, परन्तु षष्ठी और सप्तमी-युक्त विभक्तियो मे यह समास हो जाता है।[२] जैसे—चक्र पाणौ यस्य स—चक्रपाणि

---

१. वस्तुत व्यधिकरण बहुव्रीहि बहुव्रीहि का एक भाग नहीं है, अपितु सामान्य नियम का अपवाद मात्र है। केवल भ्रम-निवारणार्थ इसको यहाँ पृथक् रूप से प्रस्तुत किया गया है।

२. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ (२-२-३५)। बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त पद और विशेषण शब्दो का पूर्वप्रयोग होता है। अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि। (सि० कौ०)।

हरि, चन्द्रस्य इव कान्तिर्यस्य स—चन्द्रकान्ति।[1] इसी प्रकार पद्मगन्धि, शस्त्रपाणि आदि। शशी शेखरे यस्य स—शशिशेखर आदि। किन्तु पञ्चभि-र्भुक्तमस्य में समास नहीं होगा और पञ्चभुक्त रूप नहीं बनेगा।

२४६ विशेष—बहुव्रीहि समास के अन्य भी दो भेद हैं—तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि। तद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि वह है, जहाँ पर विशेषण पद का अर्थ भी उपस्थित रहता है। जैसे—पीताम्बर हरिम् आह्वय में विशेष्य हरि है, परन्तु उसके साथ ही पीत वस्त्र की उपस्थिति भी आवश्यक है। परन्तु अतद्गुणसंविज्ञान-बहुव्रीहि में विशेषण पद की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती। जैसे—चित्रगु गोपम् आनय में गाय विशेष्य की उपस्थिति आवश्यक है, चित्रवर्ण की गायों की नहीं।

२५० प्र आदि उपसर्गों और निषेधार्थक अ या अन् अव्ययों का सत्ता शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास कहीं-कहीं पर होता है। अर्थ को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त कृदन्त रूपों का विकल्प से लोप होता है।[2] अविद्यमान पुत्र यस्य स—अपुत्र, प्रपतितानि पर्णानि यस्य स—प्रपर्ण (जिसके पत्ते गिर गए हैं, ऐसा वृक्ष), निर्गता घृणा यस्य स—निर्घृण (निर्दयी), उद्गता कन्धरा यस्य स—उत्कन्धर (ऊँची गर्दन वाला), विगत जीवित यस्य स—विजीवित (मृत) आदि। ये भी रूप बनेंगे—अविद्यमानपुत्र, प्रपतितपर्ण, आदि। अस्ति क्षीरं यस्या सा—अस्ति-क्षीरा गौ (दूधवाली गाय)। यहाँ पर अस्ति अव्यय है और इसका अर्थ है 'विद्य-मान'।

२५१ सह अव्यय का तृतीयान्त शब्द के साथ बहुव्रीहि समास हो जाता है,

---

१. इस प्रकार का समास इस वार्तिक के अनुसार किया जा सकता है—सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च वक्तव्य (वार्तिक)। सप्तम्यन्त शब्द और उपमानवाची शब्द पूर्वपद में हो तो उत्तरपद का लोप होता है। अतः इस समास का विग्रह इस प्रकार होगा—चन्द्रस्य कान्ति—चन्द्र-कान्तिः, चन्द्रकान्तिरिव कान्तिर्यस्य स—चन्द्रकान्तिः। बाद के वैयाकरणों—वामन, भट्टोजि आदि—ने इस वार्तिक को अव्यावहारिक मानकर इसका सर्वथा खण्डन किया है।

२. प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वा०)। नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (सूत्र २-२-२४ पर वार्तिक)।

यदि किसी एक कार्य में दोनों समान रूप से भाग ले रहे हों। इस समास में सह को स विकल्प से हो जाता है।[1] जैसे—पुत्रेण सह सहपुत्रः सपुत्रो वा आगतः।

(ख) आशीर्वाद अर्थ में सह का स नहीं होता। यदि गो, वत्स और हल शब्द बाद में होंगे तो सह को स अवश्य होगा, आशीर्वाद अर्थ होने पर भी।[2] जैसे—स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय सहामात्याय, आदि। सगवे, सवत्साय, सहलाय।

२५२ संख्यावाचक शब्द के साथ अव्यय, संख्यावाचक शब्द, आसन्न, अदूर और अधिक शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है।[3] ऐसे समस्त पदों में समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्ववर्ती टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर सहित व्यंजन) का लोप हो जाता है। विंशति की ति का लोप होता है। यह नियम बहु और गण शब्दों में नहीं लगेगा।[4] दशानां समीपे ये सन्ति ते—उपदशाः (दस के लगभग अर्थात् ९ या ११), द्वौ वा त्रयो वा—द्वित्राः (दो-तीन), द्वे वा त्रीणि वा—द्वित्राणि, द्वि आवृत्ता दश—द्विदशाः (दो बार दस अर्थात् २०)। इसी प्रकार त्रिदशाः, आदि। विंशतेः आसन्ना आसन्नविंशाः (२० के लगभग), त्रिंशतः अदूराः—अदूरत्रिंशाः (३० से दूर नहीं), अधिकचत्वारिंशाः (४० से अधिक)। किन्तु उपबहव, उपगणाः।[5] त्रि या उप शब्द पहले होगा तो चतुर् शब्द से अ होगा और टि का लोप नहीं होगा। त्रयो वा चत्वारो वा—त्रिचतुराः, चतुर्णां समीपे ये सन्ति ते—उपचतुराः।

---

१. तेन सहेति तुल्ययोगे (२-२-२८)। वोपसर्जनस्य (६-३-८२)। यहाँ पर तुल्ययोग यह अनिवार्य नियम नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ पर तुल्ययोग नहीं है और समास हुआ है। जैसे—सकर्मक, सलोमक, सपक्षक आदि। अत वृत्तिकार का कथन है कि—प्रायिक तुल्ययोगे इति विशेषणम्, अन्यत्रापि समासो दृश्यते। भट्टोजि दीक्षित का भी कथन है—तुल्ययोगवचनं प्रायिकम्।

२. प्रकृत्याशिषि (६-३-८३)। अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम् (वार्तिक)।

३. संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये (२-२-२५)।

४. बहुव्रीहौ संख्येयेऽजबहुगणात् (५-४-७३)। ति विंशतेर्डिति (६-४-१४२)। त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते (५-४-७७ पर वार्तिक)।

५. अत्र स्वरे विशेष (सि० कौ०)। दोनों प्रकार से उपगणाः ही रूप बनता है, परन्तु दोनों में स्वर में भेद है।

२५३. दिशावाची शब्दो का बहुव्रीहि समास होता है और वह समस्तपद दोनो के बीच की दिशा का बोध कराता है।[1] दक्षिणस्या पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तराल दक्षिणपूर्वा। इसी प्रकार उत्तरपूर्वा आदि। यदि दिशाओ के यौगिक नाम होगे तो उनका बहुव्रीहि समास नही होगा। जैसे—ऐन्द्रयाश्च कौवेर्याश्च अन्तराल दिक् (पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा)। यहाँ पर ऐन्द्रीकौवेरी रूप नही बनेगा, क्योकि ये पूर्व और उत्तर के रूढ नाम नही है।

२५४ बहुव्रीहि समास मे निम्नलिखित स्थानो पर समासान्त अ प्रत्यय लगता है तथा उससे पूर्व टि (अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर और उससे आगे का व्यजन) का लोप होता है —

(क) सक्थि और अक्षि शब्द, यदि शरीरावयववाची होगे तो।[2] जैसे—जलजवत् अक्षिणी यस्य स —जलजाक्ष (कमल के तुल्य नेत्रो वाला), दीर्घे सक्थिनी यस्य स —दीर्घसक्थ (लम्बी जाँघो वाला), कमले इव अक्षिणी यस्या सा—कमलाक्षी (स्त्री)। किन्तु दीर्घसक्थि शकटम् (लम्बी लकडी वाली गाडी), स्थूलाक्षा वेणुयष्टि (बाँस की लाठी, जिसमें आँखों के तुल्य बडे छेद हो)। यहाँ पर नियम २८२ (घ) से अ लगा है, अत स्त्रीलिंग मे आ लगा है। देखो नीचे सूचना। सक्थि शब्द के लिए नीचे (ङ) भी देखो।

सूचना—अक्ष शब्द जब प्राणिभिन्न का वाचक होगा तो उस बहुव्रीहि के स्त्रीलिंग मे अन्त मे आ लगेगा।

(ख) जब अगुलि शब्दान्त बहुव्रीहि दारु का विशेषण होगा।[3] पञ्च अगुलयो यस्य तत्—पञ्चाङ्गुल दारु (अगुलिसदृशावयव धान्यादिविक्षेपणकाष्ठम्)। किन्तु पञ्चाङ्गुलि हस्त (५ अगुलियो से युक्त हाथ)।

(ग) द्वि या त्रि शब्द पहले होगा तो मूर्धन् से, अन्तर् या बहि शब्द पहले होगा तो लोमन् से, नक्षत्र अर्थ मे नेतृ शब्द से, अ होगा।[4] द्वौ मूर्धानौ यस्य स. द्विमूर्ध (दो सिर वाला), त्रिमूर्ध। किन्तु दशमूर्धा ही रूप होगा। अन्तर्लोम,

---

१. दिङ्नामान्यन्तराले (२-२-२६)।
२. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (५-४-११३)।
३. अङ्गुलेर्दारुणि (५-४-११४)।
४. द्वित्रिभ्या ष मूर्ध्नः (५-४-११५)। अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्न.।(५-४-११७)। नेतुर्नक्षत्रे अब्वक्तव्य. (वार्तिक)।

बहिर्लोम । मृगो नेता यासा रात्रीणा ता मृगनेत्रा रात्रय (मृग नक्षत्र जिन रात्रियो का नेता है) । इसी प्रकार पुष्यनेत्रा ; आदि ।

(घ) पूरणार्थक प्रत्ययान्त जो स्त्रीलिंग शब्द (पञ्चमी, षष्ठी आदि) और प्रमाणी अन्त वाले शब्दा से अ प्रत्यय होता है।[1] जैसे—कल्याणी पञ्चमी यासा रात्रीणा ता कल्याणपञ्चमा रात्रय (जिन रात्रियो मे पञ्चमी कल्याणकारी है), स्त्री प्रमाणी यस्य स —स्त्रीप्रमाण (जो औरत को ही प्रमाण मानता है) ।

(ङ) नञ् (अ), दु या सु पहले होगे तो हलि को हल और सक्थि को सक्थ विकल्प से हो जाएगा।[2] अहल—अहलि (विना हल का), 'असक्थ—असक्थि (विना जांघ का), दुसक्थ—दुसक्थि (बुरी जांघ वाला), सुसक्थ—सुसक्थि आदि । सक्थि के स्थान पर शक्ति भी पाठभेद मिलता है। अत अशक्त—अशक्ति, आदि ।

(च) नञ्, दु और सु के बाद प्रजा को प्रजस् और मेधा को मेधस् हो जाता है।[3] अविद्यमाना प्रजा यस्य स –अप्रजा (सन्तानहीन), दुष्टा प्रजा यस्य स—दुष्प्रजा (दुष्ट सन्तान वाला), शोभना मेधा यस्य स—सुमेधा (अच्छी बुद्धि वाला) । इसी प्रकार दुर्मेधा, अमेधा ।

२५५ (क) यदि केवल एक शब्द पहले हो तो बहुव्रीहि में धर्म को धर्मन् हो जाता है।[4] कल्याण धर्म यस्य स–कल्याणधर्मा। इसी प्रकार समानधर्मा (देखो मालतीमाधव अंक १ प्रस्तावना)। किन्तु परम स्व धर्म यस्य स—परमस्वधर्म रूप होगा । परमस्वधर्मा भी रूप बन सकता है, यदि परमस्व को कर्मधारय समास के द्वारा एक पद मान लिया जाए । सन्दिग्धसाध्यधर्मा, निवृत्तिधर्मा, अनुच्छित्तिधर्मा आदि रूप इसी प्रकार बने हुए समझने चाहिएँ ।

(ख) बहुव्रीहि के अन्त मे धनुष् धन्वन् हो जाता है।[5] जैसे—अधिज्य धनु यस्य स—अधिज्यधन्वा (जिसके धनुष पर प्रत्यंचा चढी हुई है) । इसी

---

१. अप्पूरणीप्रमाण्यो (५-४-११६) ।
२. नञ्दुसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् (५-४-१२१) ।
   शक्त्योरिति पाठान्तरम् (सि० कौ०) ।
३. नित्यमसिच् प्रजामेधयो (५-४-१२२) ।
४. धर्मादनिच् केवलात् (५-४-१२४) ।
५. धनुषश्च (५-४-१३२) । वा संज्ञायाम् (५-४-१३३) ।

प्रकार शार्ङ्गधन्वा (शृङ्गस्य इद शार्ङ्गम्, जिसका धनुष सींग का बना हुआ है अर्थात् विष्णु)। यदि किसी का नाम होगा तो धनुष को धन्वन् विकल्प से होगा। शतधन्वा—शतधनु।

(ग) सु, हरित, तृण या सोम शब्द पहले हों तो जम्भ (दाँत या अन्न आदि) को जम्भन् हो जाता है।[1] शोभन जम्भ अस्य—सुजम्भा (सुन्दर दाँतों वाला)। इसी प्रकार हरितजम्भा(पु०)। तृण भक्ष्य यस्य, तृणमिव दन्ता यस्येति वा तृणजम्भा, सोमजम्भा (सोम जिसका भक्ष्य है)। किन्तु पतितजम्भ ही रूप होगा।

(घ) दक्षिण शब्द पहले हों तो ईर्म (नपु०, चोट) को ईर्मन् हो जाता है, यदि यह चोट शिकारी के द्वारा मारी गई हो तो।[2] दक्षिणे ईर्म यस्य दक्षिणेर्मा मृग (शिकारी ने जिस मृग के दाहिनी ओर चोट मारी है)। देखो भट्टि० ६-४४।

२५६ बहुव्रीहि समास के अन्त में इन स्थानों पर ये कार्य होते हैं:—

(क) प्र या सम् पहले होंगे तो जानु को ज्ञु नित्य होता है और ऊर्ध्व पहले हो तो विकल्प से।[3] प्रगते जानुनी यस्य स—प्रज्ञु (जिसके घुटने फैले हुए हैं), सज्ञु (सुन्दर घुटनों वाला), ऊर्ध्वजानु—ऊर्ध्वज्ञु (ऊँचे घुटना वाला)।

(ख) जाया को जानि हो जाता है।[4] युवती जाया यस्य स—युवजानिः (जिसकी स्त्री युवती है), भूजानि (पृथ्वी जिसकी स्त्री है, अर्थात् राजा), आदि।

(ग) उत्, पूति या सु पहले हों तो गन्ध को गन्धि हो जाता है।[5] उद्गत

---

१. जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्य (५-४-१२५)।
२. दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे (५-४-१२६)।
३. प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः (५-४-१२९)। ऊर्ध्वाद् विभाषा (५-४-१३०)।
४. जायाया निङ् (५-४-१३४)। लोपो व्योर्वलि (६-१-६६)। बहुव्रीहि समास के अन्त में जाया के आ के स्थान पर नि हो जाता है। य् को छोड़कर कोई भी व्यञ्जन बाद में हों तो य् या व् का लोप हो जाता है।
५. गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्य. (५-४-१३५)। गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम् (वार्तिक)। इस वार्तिक में गन्धस्य आदि के अर्थ पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ का मत है कि इ वहीं पर हो सकता है, जहाँ पर गन्ध वस्तु का स्वाभाविक धर्म हो। देखो भट्टिकाव्य पर जयमंगल टीका। आघ्रायिवान् गन्धवहः सुगन्ध०(२-१०), रघुवंश (४-४५) पर मल्लिनाथ की टीका। कैयट, नागेश, भट्टोजि आदि प्रमुख वैयाकरणों का मत ऊपर दिया गया है।

गन्ध यस्य स—उद्गन्धि (जिसकी गन्ध चारो ओर फैल रही है), पूतिगन्धिः (दुर्गन्ध वाली), सुगन्धि । गन्ध को गन्धि तभी होगा, जब गन्ध निर्दिष्ट वस्तु के साथ अविभाज्य रूप से सबद्ध हो या दृष्टिगोचर हो । जैसे—सुगन्धि पुष्प सलिल च (सुगन्ध-युक्त फूल या जल), सुगन्धिर्वायु । किन्तु शोभना गन्धा अस्य—सुगन्ध आपणिक (सुगन्धित वस्तुओ का बेचने वाला व्यापारी) । यदि गन्ध शब्द अल्प (थोडा) अर्थ में हो या समस्तपद तुलना अर्थ में हो तो भी गन्ध को गन्धि होता है ।[1] जैसे—सूपस्य गन्ध यस्मिन् तत्—सूपगन्धि भोजनम् । इसी प्रकार घृतगन्धि (ऐसा भोजन जिसमें घी नाममात्र को पडा हो)। पद्मस्य इव गन्ध यस्य तत्—पद्मगन्धि (कमल के तुल्य गन्ध वाला) ।

(घ) नासिका को नस हो जाता है, यदि कोई उपसर्ग पहले हो, कोई सज्ञा हो या स्थूल शब्द को छोडकर कोई शब्द पहले हो तो।[2] उन्नता नासिका यस्य स—उन्नस (जिसकी नाक ऊँची हो), प्रणस (सुन्दर नाक वाला), द्रुरिव नासिका यस्य स—द्रुणस[3] (पेड के तुल्य अर्थात् बडी नाक वाला) । किन्तु स्थूलनासिक ही रूप बनेगा । खुर या खर पहले होगें तो नस को नस् विकल्प से हो जाएगा । जैसे—खुरणस—खुरणा (घोडे के खुर के तुल्य अर्थात् चौडी नाक वाला), खरणस—खरणा (नुकीली नाक वाला) । वि पहले होगा तो नासिका को ग्र या ख्य हो जाता है । जैसे—विगता नासिका यस्य स—विग्र—विख्य (कुरूप नाक वाला) ।

२५७ बहुव्रीहि समास के अन्त मे निम्नलिखित शब्दो का अन्तिम स्वर हट जाता है —

(क) पाद शब्द के अन्तिम अ का लोप हो जाता है, यदि कोई सख्या या सु पहले हो, या हस्ति आदि (हस्तिन्, अज, कुसूल, अश्व, कपोत, जाल, गण्ड, दासी, गणिका आदि) शब्दो का छोडकर कोई अन्य उपमानवाचक शब्द पहले हो तो ।[4] द्वौ पादौ यस्य स—द्विपात् (दो पैर वाला), सुपात् (सुन्दर पैर

---

१. अल्पाख्यायाम् (५-४-१३६) । उपमानाच्च (५-४-१३७) ।
२. अञ्नासिकायाः सज्ञाया नस चास्थूलात् (५-४-११८) । उपसर्गाच्च (५-४-११९) । वेर्ग्रो वक्तव्य (वा०) । ख्यश्च (वा०) ।
३. पूर्वपदात् सज्ञायामग (८-४-३) । उपसर्गाद् बहुलम् (८-४-२८) ।
४. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य (५-४-१३८) । सख्यासुपूर्वस्य (५-४-१४०) ।

वाला), व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य—व्याघ्रपात्, आदि। किन्तु हस्तिपाद, कुसूल-
पाद आदि ही रूप बनेंगे।

(ख) कुम्भपदी आदि (कुम्भपदी, एकपदी, जालपदी, सूत्रपदी, शतपदी,
विपदी, द्विपदी, त्रिपदी, दासीपदी, विष्णुपदी, सुपदी आदि) शब्दों में पाद को
पद् हो जाता है और अन्त में स्त्री प्रत्यय ई हो जाता है।[1] किन्तु पुंलिंग में
कुम्भपाद होगा।

(ग) दन्त को दत् नित्य हो जाता है यदि कोई संख्या या सु पहले हो
और आयु अर्थ हो, या समस्त पद संज्ञावाची स्त्रीलिंग शब्द हो। इन स्थानों
पर विकल्प से दन्त को दत् होता है—श्याव या अरोक शब्द पहले हों, अग्र
अन्त वाला शब्द पहले हो या शुद्ध, शुभ्र, वृष या वराह शब्द पहले हों।[2] द्वौ
दन्तौ यस्य स—द्विदन् (बालक, जिसके अभी दो दाँत ही निकले हैं), षड् दन्ता
अस्य—षोडन्, शोभना दन्ता अस्य—सुदन्, सुदती (सुन्दर दाँतों वाली)।
किन्तु द्विदन्त करी, सुदन्त (सुन्दर दाँतों वाला) पुरुष। अयोदती फालदती
(दोनों नाम हैं), आदि। किन्तु समदन्ती (समान संख्या वाले दाँतों की पंक्ति से
युक्त) ही रूप होगा। श्यावा दन्ता यस्य स—श्यावदन्–श्यावदन्त (काले
दाँतों से युक्त), अरोकदन—अरोकदन्त (बिना छिद्र वाले दाँतों से युक्त),
कुड्मलाग्रदन्–कुड्मलाग्रदन्त (कली के अग्रभाग के तुल्य दाँतों वाला), शुभ्रदन्–
शुभ्रदन्त।

(घ) ककुद को ककुत् हो जाता है यदि समस्तपद अवस्था का बोधक हो।[3]
अजात ककुद यस्य स—अजातककुत् (बैल जिसके गले पर अभी तक ठाँठ नहीं
निकला है, अर्थात् कम आयु का बैल)। त्रि शब्द पहले होगा और पर्वत अर्थ
होगा तो ककुद को ककुत्। जैसे—त्रिककुत् (तीन चोटियों वाला एक पर्वत)।
किन्तु त्रिककुद (तीन ककुद वाला)।

(ङ) उत् या वि पहले होंगे तो काकुद (काकुद तालु, सि० कौ०) का

---

१. कुम्भपदीषु च (५-४-१३९)।
२. वयसि दन्तस्य दतृ (५-४-१४१)। स्त्रियां संज्ञायाम् (५-४-१४३)। विभाषा श्यावारोकाभ्याम् (५-४-१४४)। अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च (५-४-१४५)।
३. ककुदस्यावस्थायां लोपः (५-४-१४६)। त्रिककुत्पर्वते (५-४-१४७)।

काकुत् नित्य होगा और पूर्ण पहले होगा तो विकल्प से।[1] जैसे—उत्काकुत्, विकाकुत्, पूर्णकाकुत्–पूर्णकाकुद ।

२५८ सु और दुर् के बाद हृदय का हृत् हो जाता है क्रमश मित्र और शत्रु अर्थ में।[2] शोभन हृदय यस्य स –सुहृत् (मित्र), दुर्हृत् (शत्रु)। अन्यत्र सुहृदय (अच्छे हृदय वाला), दुर्हृदय (नीच हृदय वाला)।

२५९ सप्तम्यन्त एक प्रकार के रूप हों और पकड़ने की वस्तु अथ हो या तृतीयान्त एक प्रकार के रूप हों और प्रहार करने की वस्तु अथ हो तो बहुव्रीहि समास हो जाता है, जब वहाँ पर 'इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ हुआ' अर्थ हो और कार्य का आदान प्रदान हो।[3] ऐसे समस्त पदो मे पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है और उत्तरपद के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है। इस प्रकार के समस्त पद अव्ययीभाव और अव्यय होते हैं। उत्तरपद के उ को ओ हो जाता है, इ प्रत्यय बाद मे होने पर।[4] जैसे—केशेषु केशेषु गृहीत्वेद युद्ध प्रवृत्त केशाकेशि (एक दूसरे के बाल पकड़कर झगड़ा प्रारम्भ हुआ), दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येद युद्ध प्रवृत्त दण्डादण्डि। इसी प्रकार मुष्टीमुष्टि, हस्ताहस्ति, बाहूबाहवि, मुसलामुसलि, आदि। यदि दोनो ने अलग-अलग प्रहार के साधन अपनाए हैं तो समास नही होगा। जैसे—हलेन मुसलेन मे समास नही होगा, हलामुसलि रूप नही बनेगा।

विशेष—(क) इन शब्दो के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है। द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तद् द्विदण्डि। इसी प्रकार द्विमुसलि, उभा उभयाञ्जलि, उभाहस्ति, उभयहस्ति, उभा उभया-पाणि,० बाहु, आदि।

२६० निम्नलिखित बहुव्रीहि निपातन (ऐसा इष्ट है) से बनते

---

१ उद्विभ्यां काकुदस्य (५-४-१४८)। पूर्णाद् विभाषा (५-४-१४९)।
२ सुहृदुर्हृदौ मित्रामित्रयो (५-४-१५०)।
३ तत्र तेनेदमिति सरूपे (२-२-२७)। सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहरणविषये इद युद्ध प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे द्योत्ये स बहुव्रीहि (सि० कौ०)।
४ अन्येषामपि दृश्यते (६-३-१३७), इच् कर्मव्यतिहारे (५-४-१२७)। तिष्ठद्गुप्रभृतिष्विच्प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्ययत्व च (सि० कौ०)। ओर्गुण (६-४-१४६)।

है।[1] शोभनं प्रातरस्य सुप्रात (पु०, सुन्दर या शुभ प्रातःकाल वाला दिन, देखो भट्टि० २-४९)। शोभनं श्वः अस्य—सुश्व (जिसका कल का दिन शुभ है), शारेरिव कुक्षिरस्य—शोभनं दिवाऽस्य—सुदिव. (जिसके लिए दिन शुभ रहा है), चतस्रोऽश्रयोऽस्य—चतुरश्र (चतुष्कोण), एण्या शारिकुक्ष (गोल पेट वाला), अजपद, प्रोष्ठस्य इव इव पादौ अस्य—एणीपद (मृगी के तुल्य पैर वाला), पादौ अस्य—प्रोष्ठपद (बैल के तुल्य पैर वाला)।

२६१ बहुव्रीहि समास के अन्त में एक या अधिक ये शब्द होंगे तो इनसे समासान्त क प्रत्यय हो जाएगा—उरस्, सर्पिस्, उपानह्, दधि, मधु, शालि, स्त्री और पुंस्, अनडुह्, पयस्, नौ और लक्ष्मी।[2] व्यूढम् उरः यस्य—व्यूढोरस्क (विशाल छाती वाला), प्रियसर्पिष्क (घी जिसका प्रिय है) आदि। एकः पुमान् यस्य—एकपुंस्क (जिसके पास एक आदमी है), आदि। पुंस् और उसके बाद के शब्द यदि द्विवचन या बहुवचन में होंगे तो क प्रत्यय विकल्प से होगा। द्विपुमान्—द्विपुंस्क, आदि।

(क) अन् के बाद अर्थ शब्द से क प्रत्यय नित्य होगा अन्यत्र विकल्प से। अनर्थक (निरर्थक)। अन्यत्र अपार्थम्—अपार्थकम् (निरर्थक) भी।

२६२ इन् अन्त वाले बहुव्रीहि से क प्रत्यय नित्य होता है स्त्रीलिंग में।[3] जैसे—बहुदण्डिका नगरी। (जिस नगर में बहुत से दण्डी संन्यासी रहते हैं)। बहुवाग्मिका सभा (जिस सभा में बहुत से वाग्मी वक्ता हैं)। अन्यत्र बहुदण्डी, बहुदण्डिक। ग्राम, यह पुंलिंग है। (देखो नियम २६३)

२६३ बहुव्रीहि समास में जहाँ समासान्त पद में कोई पूर्वोक्त कार्य (आगम या आदेश) नहीं होता है वहाँ पर साधारणतया विकल्प से क प्रत्यय हो जाता है।[4] महायशस्क—महायशा (महायशस्वी)। अन्यत्र—उरस्कां, व्याघ्रपात्, सुगन्धि, आदि।

---

१. सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः (५-४-१२०)।
२. उरःप्रभृतिभ्यः कप् (५-४-१५१)। इह पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीरिति एकवचनान्तानि पठ्यन्ते। द्विवचनबहुवचनान्तेभ्यस्तु 'शेषाद् विभाषा' इति विकल्पेन कप् (सि० कौ०)। अर्थान्नञः (वार्तिक)।
३. इनः स्त्रियाम् (५-४-१५२)।
४. शेषाद् विभाषा (५-४-१५४)।

२६४ यदि बहुव्रीहि का अन्तिम पद ईकारान्त और ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द है, जिनमें अजादि विभक्ति से पूर्व इय् या उव् नहीं होता है और ऋकारान्त शब्द से क प्रत्यय अवश्य होता है।[1] ईश्वर कर्ता यस्य तद्—ईश्वरकर्तृक जगत्, बहुनदीको देश, रूपवती वधू यस्य स—रूपवद्वधूक, आदि। किन्तु सुधी स्त्री ही रूप बनता है। बहुस्त्रीक, सस्त्रीक, आदि।

२६५ क से पहले अन्तिम आ को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है।[2] जैसे—बहुमाल, बाहुमालाक, बहुमालक, आदि।

२६६ निम्नलिखित स्थानों पर क नहीं होता[3]—

(क) यदि समस्त पद संज्ञावाचक हो या अन्त में ईयस् प्रत्यय हो। जैसे—विश्वे देवा अस्य—विश्वेदेव (विश्वेदेव जिसके देवता हैं)। बहव श्रेयांस अस्य—बहुश्रेयान्। ईयस् शब्द का स्त्रीलिंग ईयसी बहुव्रीहि के अन्त में होगा तो उसके अन्तिम ई को ह्रस्व नहीं होगा।[4] जैसे—बह्व्य श्रेयस्यो यस्य—बहुश्रेयसी (जिसकी बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ हैं)। किन्तु अतिश्रेयसि तत्पुरुष में ह्रस्व हो जाएगा।

(ख) पूज्यवाचक शब्द पहले हो तो भ्रातृ शब्द से। प्रशस्तो भ्राता यस्य स—प्रशस्तभ्राता। अन्यत्र—मूर्खभ्रातृक (जिसका भाई मूर्ख है)।

(ग) शरीर के अंगवाची नाडी और तन्त्री शब्द से। बहुनाडि काय (बहुत नाडियों वाला शरीर), बहुतन्त्रीर्ग्रीवा (बहुत नसों वाली गर्दन)। किन्तु बहुनाडीक स्तम्भ (जिस खम्भे पर नसों के तुल्य बहुत सी सुन्दर रेखाएँ हैं), बहुतन्त्रीका वीणा (बहुत से तारों वाली वीणा) ही रूप होंगे।

(घ) निष्प्रवाणि में क नहीं होता। निष्प्रवाणि पट (निर्गता प्रवाणी यस्य, नया वस्त्र, जो अभी करघे से उतरा है)।

(ङ) नियम २५१, २५२ और २५३ वाले समासों मे क नहीं होता। जैसे—सपुत्र, उपबहव, दक्षिणपूर्वा, आदि।

---

१. नद्यृतश्च (५-४-१५३)।
२. आपोऽन्यतरस्याम् (७-४-१५)।
३ न संज्ञायाम्। ईयसश्च। वन्दिते भ्रातु। नाडीतन्त्र्यो स्वाङ्गे। निष्प्रवाणिश्च (५-४-१५५, १५६, १५७, १५९, १६०)।
४. ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् (वा०)।

२६७ समानाधिकरण बहुव्रीहि समास में पूर्वपद यदि आकारान्त या ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हो और पुलिंग शब्द से आ या ई प्रत्यय करके बना हो और बाद में कोई स्त्रीलिंग शब्द हो तो वह पुलिंग हो जाता है।[1] जैसे—चित्रा गाव यस्य स—चित्रगु, जरती गौ यस्य स—जरद्गु, रूपवती भार्या यस्य स—रूपवद्भार्य। किन्तु—गगा भार्या यस्य स—गगाभार्य। वामोरूभार्य। कल्याणी प्रधान यस्य स—कल्याणीप्रधान, ही रूप होंगे।

अपवाद-नियम—(क) यह नियम इन स्थानों पर नहीं लगता है—यदि बाद में कोई स्त्रीलिंग सख्येय शब्द हो या प्रिया आदि शब्दों में से कोई शब्द हो। प्रिया आदि शब्द ये हैं—प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, भक्ति, सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, समा, चपला, दुहिता, वामा, अबला और तनया। जैसे—कल्याणी प्रिया यस्य स—कल्याणीप्रिय (जिसको गुणवती स्त्री प्रिय है), दृढा भक्तिर्यस्य स—दृढाभक्ति, किन्तु दृढ भक्तिर्यस्य—दृढभक्ति।[2]

(ख) यदि पूर्वपद सज्ञावाचक हो, सख्येय शब्द (Ordinal Number) हो, ईकारान्त शरीर का अवयववाची शब्द हो, जातिवाचक शब्द हो, उपधा में अक या क हो तो पुलिंग नहीं होगा।[3] दत्ता (स्त्री का नाम है) भार्या यस्य स—दत्ताभार्य, पञ्चमीभार्य, सुकेशीभार्य, शूद्राभार्य, रसिकाभार्य, पाचिकाभार्य, आदि। अन्यत्र अकेशा भार्या यस्य स—अकेशभार्य, अकेशा ईकारान्त नहीं है, पाका भार्या यस्य स—पाकभार्य, आदि।

(४) अव्ययीभाव समास (Adverbial Compounds)

२६८ अव्ययीभाव समास में दो पद होते है। प्रथम पद प्राय अव्यय (उपसर्ग या निपात) होता है और द्वितीय पद सज्ञाशब्द। समस्त पद नपुसकलिंग

---

१. स्त्रिया. पुवद्भाषितपुस्कादनूड समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६-३-३४)।

२. स्त्रीत्वविवक्षाया तु दृढाभक्ति (सि० कौ०)। लिंगविशेषविवक्षाया तु दृढाभक्तिरित्यादिसिद्धये प्रियादिषु भक्तिशब्दपाठ (तत्त्वबोधिनी)।

३. सज्ञापूरण्योश्च। स्वाङ्गाच्चेत. । जातेश्च। न कोपधाया (६-३-३७, ३८, ४०, ४१)।

एकवचन में तुल्य प्रयुक्त होता है। अव्ययीभाव समासवाला पद अव्यय होता है। जैसे—अधिहरि (हरि में), अन्तर्गिरि (पहाड़ में), आदि।

२६९. अव्ययीभाव समास करने में इन नियमों का पालन करना चाहिए :—

(क) अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है, ए ऐ को इ हो जाता है और ओ को उ हो जाता है। गोपायति गा. पानीति वा गोपाः। तस्मिन्निति-अधिगोपम्, अनुविष्णु (विष्णु के पीछे), उपगु (गाय के पास), आदि।

(ख) अन् अन्त वाले पु० और स्त्री० शब्दों के अन्तिम न् का लोप नित्य हो जाता है और नपु० के न् का लोप विकल्प से।[1] उपराजम्, अध्यात्मम्, उपचर्मम्—चर्म।

(ग) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी और गिरि के अन्तिम अक्षर के स्थान पर विकल्प से अ हो जाता है।[2] उपनदम्–उपनदि, उपपौर्णमासम्—०मासि, उपाग्रहायणम्–०यणि (अगहन की पूर्णिमा के समीप), उपगिरम्—०गिरि।

(घ) झय् (वर्ग के १, २, ३, ४) अन्त वाले अव्ययीभाव शब्दों से समासान्त अ विकल्प से होता है। उपसमिधम्—०समित्।[3]

(ङ) शरत् आदि शब्दों के साथ अव्ययीभाव समास होने पर समासान्त अ प्रत्यय होता है।[4] शरत् आदि शब्द ये हैं—शरत्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, दिव्, हिमवत्, अनडुह्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियत्, जरस् (जरा के स्थान पर), आदि। शरदः समीपम्–उपशरदम्, प्रतिविपाशम् (विपाश की ओर), दिशोर्मध्ये—उपदिशम् (दो दिशाओं के बीच में), उपजरसम् (बुढ़ापे की ओर), आदि। प्रति, पर, सम् और अनु के बाद अक्षि से समासान्त अ होता है और अक्षि की इ का लोप होता है। पर को परो हो जाता है। अक्ष्णः प्रति—प्रत्यक्षम् (आँख के सामने), अक्ष्णः परम्–परोक्षम् (आँख से परे), समक्षम् (सामने), अन्वक्षम् (बाद में)।

२७० अव्ययीभाव समास में इन विभिन्न अर्थों में अव्ययों का प्रयोग

---

१. अनश्च। नपुंसकादन्यतरस्याम् (५-४-१०८, १०९)।
२. नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः (५-४-११०)। गिरेश्च सेनकस्य (५-४-११२)।
३. झयः (५-४-१११)।
४. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (५-४-१०७)।

होता है[१]—जैसे—(१) विभक्ति के अर्थ में, सप्तमी के अर्थ में अधि। जैसे—गोपि इति—अधिगोपम् (ग्वाले में), हरौ इति—अधिहरि, अध्यात्मम्, आदि। (२) सामीप्य अर्थ में। जैसे—कृष्णस्य समीपम्—उपकृष्णम् (कृष्ण के पास)। इसी प्रकार उपगवम् आदि। (३) समृद्धि। जैसे—मद्राणां समृद्धि—सुमद्रम् (जिस देश में मद्र लोग समृद्ध हैं)। (४) व्यृद्धि (वि + ऋद्धि, दुर्गति)। यवनानां व्यृद्धि—दुर्यवनम् (यवनों की दुर्गति की अवस्था)। (५) अभाव। मक्षिकाणाम् अभाव—निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव अर्थात् पूर्णतया एकान्त)। इसी प्रकार निर्जनम् आदि। (६) अत्यय (ध्वंस, नाश, समाप्ति)। हिमस्य अत्यय—अतिहिमम् (हिम ऋतु के बाद)। इसी प्रकार अतिवसन्तम्, अतियौवनम्, अतिमात्रम् (मात्रा से अधिक), आदि। (७) असम्प्रति (अनुचित)। निद्रा सप्रति न युज्यते इति—अतिनिद्रम् (नींद का समय बीत गया)। जैसे—अतिनिद्रम् उत्तिष्ठति पुरुष।(८) प्रादुर्भाव (प्रकट होना, प्रकाशन)। हरिशब्दस्य प्रकाश—इतिहरि (जिसमें हरि शब्द का उच्चारण जोर से होता है)। (९) पश्चात् (बाद में)। विष्णो पश्चात् अनुविष्णु। (१०) योग्यता (योग्य होना)।[२] रूपस्य योग्यम्—अनुरूपम् (अनुकूल ढंग से)। इसी प्रकार अनुगुणम् (अनुकूल ढंग से), आदि। (११) वीप्सा (द्विरुक्ति, दो बार कहना)। अर्थम् अर्थं प्रति—प्रत्यर्थम् (प्रत्येक वस्तु की ओर)। अहन्यहनीति—प्रत्यहम्—०ह (प्रतिदिन)। इसी प्रकार प्रतिपर्वतम् आदि। (१२) अनतिवृत्ति (उल्लंघन न करना)। शक्तिम् अनतिक्रम्य—यथाशक्ति (शक्ति के अनुकूल, शक्ति भर)। इसी प्रकार यथाविधि, आदि।[३] (१३) सादृश्य (समानता)—हरे सादृश्य—सहरि (हरि के समान)। (१४) आनुपूर्व्य (ज्येष्ठ के क्रम से, क्रम से)—ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण—अनुज्येष्ठम् (बड़े के क्रम से)। इसी प्रकार अनुक्रमम् (क्रम से), आदि। (१५) यौगपद्य (एक साथ)—चक्रेण युगपत्—सचक्रम्

---

१ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु (२-१-६)।

२. १० से १३ तक यथा के अर्थ हैं। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्था (सि० कौ०)।

३ यथाऽसादृश्ये (२-१-७)। सादृश्य अर्थ में यथा का समास नहीं होता है। यथा हरिस्तथा हर, आदि।

(चक्र के साथ ही)। (१६) सम्पत्ति (शक्ति या प्रभाव)। क्षत्राणां सम्पत्ति-क्षत्रम् (क्षत्रियों की शक्ति या उनका प्रभाव)। (१७) साकल्य (पूर्णता)—तृणमपि अपरित्यज्य—सतृणम् अत्ति (तिनके तक को नहीं छोड़ता हुआ खाता है)। (१८) अन्त (समाप्ति)—अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते—साग्नि (अग्नि ग्रन्थ पर्यन्त पढ़ता है)। इसी प्रकार सामाप्यम्, आदि।

२७१. यावत् का निश्चित परिमाण अर्थ में किसी भी सुबन्त के साथ समास होता है।[1] जैसे—यावन्त श्लोका तावन्त अच्युतप्रणामा—यावच्छ्लोकम् (जितने श्लोक हैं, उतनी बार अच्युत या विष्णु को प्रणाम किया गया है)। इसी प्रकार यावान् अवकाश तावान् अभ्यास—यावदवकाशम् अभ्यास, आदि।

२७२ मात्रा (थोडी मात्रा, बहुत कम) अर्थ में प्रति का सुबन्त के साथ समास होता है और यह अन्त में रखा जाता है।[2] शाकस्य लेश—शाकप्रति (नाममात्र को साग)। अन्यत्र—वृक्ष वृक्ष प्रति विद्योतते विद्युत्, यहाँ पर प्रति ओर अर्थ में है।

२७३ अक्ष, शलाका और सख्यावाचक शब्द का परि के साथ समास होता है और इन शब्दो का परि से पहले प्रयोग होता है। जूए मे पराजय अर्थ में यह समास होता है।[3] अक्षेण विपरीत वृत्तम्—अक्षपरि (पासे के ठीक न पडने से हार हुई), शलाकापरि—(शलाका अर्थात् सीको से खेले जाने वाले खेल में सीक ठीक न पडने से हार होना), एकपरि (एक पासे का ठीक न पडना), आदि।

२७४ (क) अप, परि, बहि और अञ्च् धातु से बने हुए शब्दो (प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अवाच्, तिर्यच्, आदि) का पचम्यन्त शब्दो के साथ विकल्प से समास होता है।[4] अपविष्णु—अप विष्णो (विष्णु से अलग), परिविष्णु—परि विष्णो, बहिर्वनम्—बहिर्वनात्, प्राग्वनम्—प्राग्वनात् (वन से पूर्व की ओर), आदि।

---

१. यावदवधारणे (२-१-८)।
२. सुप्प्रतिना मात्रार्थे (२-१-९)।
३ अक्षशलाकासख्या परिणा (२-१-१०)। द्यूतव्यवहारे पराजये एवाय समास. (सि० कौ०)।
४. विभाषा (२-१-११)। अपपरिबहिरञ्चव. पञ्चम्या (२-१-१२)।

(ख) मर्यादा (पहले तक) और अभिविधि (वस्तु के सहित तक) सीमा अर्थ में आ का पञ्चम्यन्त के साथ विकल्प से समास होता है। याग अर्थ म अभि और प्रति का द्वितीयान्त के साथ विकल्प से समास होता है।[1] आमुक्ति- आ मुक्तेः संसार (संसार मुक्ति से पहले तक है), आबालम्—आ बालेभ्यः हरि- भक्ति (छोटे बच्चों तक हरिभक्ति है)। अभ्यग्नि—अग्निमभि (अग्नि की ओर) शलभा पतन्ति, प्रत्यग्नि—अग्नि प्रति।

(ग) अनु का ओर अर्थ में तथा वस्तु की लम्बाई बताने में अर्थ में समास होता है।[2] अनुवनम् अशनिगत (वन की ओर बिजली गई)। गङ्गाया अनु- अनुगङ्ग वाराणसी (गंगा के किनारे किनारे वाराणसी है) (गङ्गादैर्घ्यसदृग्दैर्घ्योप- लक्षिता इत्यर्थ, सि० कौ०)।

२७५ पार और मध्य शब्दों का षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है।[3] पार और मध्य का पूर्व प्रयोग होता है और ये एकारान्त हो जाते हैं। जैसे—पारेगङ्गात् मध्येगङ्गात् (गंगा के पार या बीच से)। पक्ष में षष्ठीतत्पुरुष भी हो जाएगा। गङ्गापारात्, गङ्गामध्यात्। यहाँ पर पञ्चमी का प्रयोग अपवाद रूप से है। यदि सप्तमी का अर्थ होगा तो अन्तिम स्वर का अम् हो जाएगा। जैसे—पारेगङ्गम्, मध्येगङ्गम्, देखो भट्टि० ५ ४ में पारेसमुद्रम् प्रयोग।

२७६ (क) संख्यावाची शब्द का किसी सुबन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास हो जाता है, यदि विद्या या जन्म से कोई सम्बन्ध सूचित होता हो तो।[4] द्वौ मुनी वंश्यौ—द्विमुनि, व्याकरणस्य त्रिमुनि। त्रिमुनि व्याकर- णम् (संस्कृत व्याकरण के तीन क्रमशः प्रामाणिक मुनि या आचार्य हैं—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि)।

(ख) संख्यावाचक शब्दों का नदीवाचक शब्दों के साथ समाहार (समूह) अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है।[5] सप्तगङ्गम्, द्वियमुनम्।

---

१ आङ्मर्यादाभिविध्योः। लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये। (२-१-१३, १४)।
२ अनुर्यत्समया। यस्य चायामः (२-१-१५, १६)।
३ पारे मध्ये षष्ठ्या वा (२-१-१८)।
४ संख्या वंश्येन (२-१-१९)। वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च (सि० कौ०)।
५ नदीभिश्च (२-१-२०)। समाहारे चायमिष्यते (वार्तिक)।

२७७ नदीवाचक शब्दों के साथ किसी भी शब्द का अव्ययीभाव समास हो जाता है, यदि समस्तपद संज्ञावाचक हो तो।[1] उन्मत्तगंगम् (एक देश का नाम, जहाँ पर गंगा अधिक तेजी से बहती है)। इसी प्रकार लोहितगंगम्, आदि।

२७८ निम्नलिखित अव्ययों या किसी संज्ञा शब्द के साथ समास नहीं होता है—समया, निकषा, आरात्, अभितः, परितः, पश्चात्। समया ग्रामम्, निकषा लङ्काम्, आदि।

२७९ निम्नलिखित अव्ययीभाव समास के रूप निपातन (ऐसा अभीष्ट है) से बनते हैं[2] —

तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले सः—तिष्ठद्गु दोहनकाल (जिस समय गाएँ दुही जाने के लिए खड़ी होती हैं)। (देखो भट्टि० ४–१४।) इसी प्रकार वहद्गु (जिस समय गाएँ गर्भिणी होती हैं या जिस समय बैल हल चलाते हैं), आयत्यः गावः यस्मिन् काले—आयतीगवम् (जिस समय गाएँ घर लौटकर आती हैं अर्थात् सायंकाल का समय)। खलेयवम् (जिस समय जौ खलिहान में आता है)। इसी प्रकार खलेबुसम्। लूनयवम् (जिस समय जौ कट जाता है), लूयमानयवम्, संहृतयवम्, आदि। समभूमि (जिस समय भूमि सम की जाती है), समपदाति (जब पैदल-सेना के व्यक्ति सीधी पंक्ति में खड़े होते हैं)। सुषमम्, विषमम्, अपसमम् (साल के अन्त में), आयतीसमम्, पापसमम् (अशुभ साल में), पुण्यसमम्, प्राह्णम्, प्ररथम् (जब रथ प्रस्थान करते हैं), प्रमृगम् (जब मृग आते हैं), विमृगम्, प्रदक्षिणम्, सम्प्रति और असम्प्रति।

सूचना—पाणिनि के अनुयायी सभी वैयाकरणों ने इन समस्तपदों का अन्य पदों के साथ समास का निषेध किया है। परकालीन कवियों ने इस नियम का पालन नहीं किया है। उन्होंने इन पदों का समस्तपदों के प्रारम्भ में प्रयोग किया है अन्त में नहीं। जैसे—प्रदक्षिणक्रियार्हायाम् (रघु० १–७६। देखो ४–२५, ७–२४), आदि।

सर्व-समास-विषयक सामान्य नियम

२८० इन शब्दों से समासान्त अ प्रत्यय होता है—ऋच्, पुर्, अप्, धुर्

---

१ अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् (२-१-२१)।
२ तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च (२-१-१७)।

(गाड़ी की धुरा अर्थ को छोडकर) और पथिन् (पथिन् का पथ् शेष रहेगा) ।[१] अर्धर्च —अर्धर्चम् (आधी ऋचा), विष्णुपुरम्[२] (विष्णु की नगरी), विमलाप सरः (स्वच्छ जल वाला तालाव), राज्यधुरा (राज्य-शासन की धुरा अर्थात् बाग-डोर), रम्यपथो देशः (सुन्दर मार्गों वाला देश), आदि ।

(क) अन् और बहु पहले होंगे तो ऋच् शब्द से अ प्रत्यय ऋग्वेद के अध्येता (पढने वाला) अर्थ में ही होगा ।[३] अनृच (ऋग्वेद न पढनेवाला), बह्वृच (जिसने ऋग्वेद पढा है) । अन्यत्र अनृक् साम (ऋचा-रहित सामवेद का अंश), बह्वृक् सूक्तम् (बहुत ऋचाओ वाला सूक्त) ।

(ख) धुर् शब्द से अक्ष (गाडी) अर्थ में अ नहीं होगा । अक्षधूः (गाडी की धुरा), दृढधूः अक्ष ।

२८१ द्वि, अन्तर् या कोई उपसर्ग पहले होगा तो अप् शब्द के अ को ई हो जायगा ।[४] अनु के बाद अप् के अ को ऊ होगा, देश अर्थ में । जैसे—द्विर्गता आपो यस्मिन् इति—द्वीपम् (द्वीप) । अन्तर्गता आपो अत्रेति–अन्तरीपम् (खाडी), प्रतीपम् (जल के प्रवाह को रोकने वाला), समीपम् । अनूप[५] (अनुगता आपोऽत्र) (एक देश या स्थान का नाम) । अकारान्त उपसर्ग के बाद अप् के अ को ई विकल्प से होता है ।[६] प्रकृष्टा आप यस्मिन्–प्रेपम्-प्रापम् (एक तालाब), परेपम्—परापम् (जल के लिए मार्ग) ।

२८२ निम्नलिखित शब्दो से समासान्त अ प्रत्यय होता है और उससे पूर्व टि (अन्तिम स्वर और उसके बाद का व्यजन यदि कोई हो तो) का लोप हो जाता है ।[७]

---

१. ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे (५-४-७४) । २. क्लीबत्वं लोकात् (सि० कौ०) ।
३. अनृचबह्वृचावध्येतर्येव (सि० कौ०)
४. द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् । ऊदनोर्देशे (६-३-९७, ९८.) ।
५. नानाद्रुमलतावीरुन्निर्झरप्रान्तशीतलैः ।
वनैर्व्याप्तमनूप तत् सस्यैर्व्रीहियवादिभिः ॥
६. अवर्णान्ताद् वा (वार्तिक) ।
७. अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः (५-४-७५) । कृष्णोदकपाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते (वा०) । संख्याया नदीगोदावरीभ्या च (वा०) । अक्ष्णोऽदर्शनात् (५-४-७६) । उपसर्गादध्वन. (५-४-८५) ।

(च) प्रति, अनु या अव पहले हो तो सामन् और लोमन् शब्द से अ। प्रतिसामम्, साम अनुगत अनुसाम (मिश्रभाव-युक्त), अवर साम अवसामम् (एक तुच्छ सामवेद का सूक्त), प्रतिलोमम् (प्रतिकूल), अनुलोमम् (अनुकूल ढंग वाला, क्रमिक ढंग से, प्रत्यक्षतया)।

(ख) कृष्ण, उदच्, पाण्डु या कोई संख्या शब्द पहले होगा तो भूमि शब्द से अ। कृष्णा भूमि यस्य स कृष्णभूम। इसी प्रकार उदीची भूमि यस्य स उदग्भूम, पाण्डु भूमि यस्य स पाण्डुभूम, द्वे भूमी यस्य स द्विभूम प्रासाद (दो-मंजिला मकान)।

(ग) संख्यावाचक शब्द पहले होने पर नदी और गोदावरी शब्द से अ। पञ्चनदम्, सप्तगोदावरम्।

(घ) जब अक्षि शब्द का आँख अर्थ न हो और कोई लाक्षणिक अर्थ हो तो अक्षि से अ। जैसे—गवाम् अक्षीव गवाक्ष (बैल की आँखों के तुल्य, अत गोल खिड़की अर्थ है)।

(ङ) उपसर्ग पहले हो तो अध्वन् शब्द से अ। प्रगतोऽध्वान प्राध्वो रथ (रथ जो कि मार्ग पर आ गया है)। अथवा प्रकृष्ट अध्वा प्राध्व (दूरी का रास्ता)।

(च) नाभि शब्द से समास वाले स्थलों पर अ होता है। जैसे पद्मनाभ।[1]

२८३ निम्नलिखित शब्दों के अन्त में अ लगता है[2]—

(क) ब्रह्मन् या हस्तिन् शब्द पहले होगा तो वर्चस् शब्द से। ब्रह्मवर्चसम् (ब्रह्म का दिव्य तेज या ब्राह्मण का तेज, ब्रह्मज्ञान से उत्पन्न होने वाला तेज), हस्तिवर्चसम (हाथी का ओज या तेज)।

---

१ अजिति योगविभागादन्यत्रापि (सि० कौ०)। अच् प्रत्यन्वव०' सूत्र में से अच् को पृथक करने पर यह नियम बनता है। यह योगविभाग (सूत्र के अंश को पृथक् करना) प्रचलित पद्मनाभ, नलिननाभ आदि रूपों को बनाने के लिए है। इस नियम के आधार पर अन्य नाभ अन्त वाले रूप नहीं बनाए जा सकते हैं।

२ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चस (५-४-७८)। अवसमन्धेभ्यस्तमस (५-४-७९), अन्ववतप्ताद् रहस (५-४-८१), प्रतेरुरस सप्तमीस्थात् (५-४-८२), अनुगवमायामे (५-४-८३)।

(ख) अव, सम् और अन्ध के बाद तमस् शब्द से । जैसे—अवतत तमः अवतमसम् (थोडा अँधेरा), सन्तत तम सतमसम् (चारो ओर अँधेरा), अन्ध तम अन्धतमसम् (घोर अंधेरा) ।

(ग) अनु, अव या तप्त पहले होगा तो रहस् शब्द से । अनुगत रहः अनुरहसम् (गुप्त, एकान्त), अवतत रह अवरहसम् (थोडा गुप्त), तप्त रहः तप्तरहसम् (गर्म एकान्त स्थान) ।

(घ) सप्तमी के अर्थ मे प्रति पहले हो तो उरस् से । उरसि इति प्रत्युरसम् (छाती मे) ।

(ङ) अनु पहले हो तो गो शब्द से लम्बाई अर्थ में । अनुगव यानम् (बैल की लम्बाई के बराबर लम्बाई वाली गाडी)।

२८४ निम्नलिखित २५ समस्त शब्दो मे अन्त म अ अवश्य लगता है[1]।— अविद्यमानानि चत्वारि अस्य अचतुर (जिसके पास चार चीजें नही हैं) । इसी प्रकार विचतुर और सुचतुर । ये तीनो बहुव्रीहि है । आगे ११ शब्द द्वन्द्व समास वाले हैं। (इनके लिए देखो नियम १९२ ख के अन्तिम दो शब्द और नियम १९६ ग) । रजोऽपि अपरित्यज्य सरजसम् (अव्ययीभाव) । बहुव्रीहि में सरज ही रूप बनेगा । निश्चित श्रेयो नि श्रेयसम् (निश्चित कल्याण), पुरुषस्य आयु पुरुषायुषम् (मनुष्य की आयु) । ये दोनो तत्पुरुष हैं । द्वयो आयुषा समाहार द्वयायुषम् (दो आयुओ का समय) । इसी प्रकार त्र्यायुषम् । ये दोनो द्विगु हैं । ऋग्यजुषम् (द्वन्द्व है) । जातश्चासौ उक्षा च जातोक्ष (नवजात बैल), महोक्ष (बडा बैल), वृद्धोक्ष (बुड्ढा बैल) । ये सब कर्मधारय हैं । शुन समीपम् उपशुनम् (कुत्ते के पास, अव्ययीभाव) । गोष्ठे श्वा गोष्ठश्व (गोशाला में रहने वाला कुत्ता जो दूसरो पर भोकता है, इसका लाक्षणिक अर्थ है—वह व्यक्ति जो स्वय कुछ काम नही करता है और दूसरो की निन्दा करता है ।) (तत्पुरुष)

२८५ जिन समस्त पदो के प्रारम्भ में प्रशसार्थक सु या अति शब्द होता है और निन्दार्थक किम् शब्द होता है, उनमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं

---

१. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिव-सरजसनि श्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वा (५-४-७७)।

होता है।[1] सुराजा (अच्छा राजा), अतिराजा (प्रमुख राजा), अतिगो (श्रेष्ठ बैल), अतिश्वा आदि। किन्तु परमराज, गाम् अतिक्रान्त अतिगव ही रूप होंगे और समासान्त प्रत्यय होंगे। कुत्सितो राजा किराजा (कुत्सित राजा), किसखा (कुत्सित मित्र)। अन्य अर्थों में किराज, किसख रूप बनेंगे। समासान्त प्रत्ययों का यह निषेध बहुव्रीहि समास में नहीं लगेगा। जैसे—सुसक्थ, स्वक्ष।

समास-विषयक अन्य परिवर्तन

२८६ पाद शब्द के स्थान पर ये परिवर्तन होते हैं —पाद को पद आदेश होता है बाद में आजि, आति, ग और उपहत शब्द हो तो। हिम, काषिन् और हति शब्द बाद में हों तो पाद को पत् नित्य होता है। घोष, मिश्र, शब्द और निष्क बाद में हों तो पाद को पत् विकल्प से होता है।[2] जैसे—पादाभ्यामजतीति पदाजि, पद्भ्यामततीति पदाति, पद्भ्यां गच्छतीति पदग (इन तीनों का अर्थ है पैदल चलने वाला, पदाति, पैदल चलने वाला सैनिक या पैदल सेना), आदि। पदोपहत (पैर से दबा या कुचला हुआ), पद्धिमम् (पैरों का ठंडा हो जाना), पादौ कषितुं शीलमस्य पत्काषी (पैरों को अधिक कष्ट देने वाला, पैदल चलने वाला), पदा हति पद्धति (चला हुआ रास्ता, मार्ग, सड़क), पद्घोष या पादघोष, पन्मिश्र या पादमिश्र, पच्छब्द या पादशब्द, पन्निष्क या पादनिष्क (निष्क नामक एक सुवर्ण-मुद्रा का चतुर्थ भाग)।

२८७ हृदय शब्द को हृद् नित्य हो जाता है, बाद में लेख (अण् प्रत्यय से बना हुआ रूप), लास, तद्धित प्रत्यय य (यत्) और अ (अण्) हो तो। यदि बाद में शोक, रोग और तद्धित प्रत्यय य (ष्यञ्) होंगे तो हृदय को हृद् विकल्प से होगा।[3] हृदयं लिखतीति हृल्लेख (हृदय की पीड़ा), घञ् प्रत्यय करने

---

१. न पूजनात् (५-४-६९)। स्वतिभ्यामेव (वार्तिक)। किमः क्षेपे (५-४-७०)।

२. पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु (६-३-५२)। हिमकाषिहतिषु च (६-३-५४)। वा घोषमिश्रशब्देषु (६-३-५६)।

३. हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु (६-३-५०)। वा शोकष्यञ्रोगेषु (६-३-५१)।

पर हृदयलेख रूप बनेगा (घञि तु हृदयलेख, सि० कौ०), हृल्लास (हिचकी, शोक, दुःख), हृदयस्य प्रिय हृद्यम् (हृदय को प्रिय लगने वाली वस्तु), हृदयस्येद हार्दम्, हृच्छोक या हृदयशोक (हृदय की जलन), हृद्रोग या हृदयरोग ।

२८८ (क)[1] उदक शब्द को निम्नलिखित स्थानो पर उद नित्य होता है — (१) सज्ञावाचक शब्द होने पर और पद का अन्तिम शब्द होने पर । (२) ये शब्द बाद में होगे तो—पेषम्, वास, वाहन और धि । उदमेघ (जल से पूर्ण एव विशेष प्रकार के बादल का नाम), उदधि, क्षीरोद (क्षीरसागर), लवणोद आदि । उदपेष पिनष्टि, उदवास (जल में खडा रहना), उदवाहन, उदधि (बाल्टी या घडा, जिसमें पानी रक्खा जाता है), समुद्र अर्थ में पूर्व सूत्र से ही सिद्ध है । (समुद्रे तु पूर्वेण सिद्धम्, सि० कौ०) ।

(ख) इन स्थानो पर उदक को उद विकल्प से होगा—(१) बाद में असयुक्त व्यजन वाला शब्द होने पर और जल से पूरा करने योग्य बर्तन अर्थ हो तो, (२) ये शब्द बाद में होगे तो—मन्थ, ओदन, सक्तु, बिन्दु, वज्र, भार, हार, वीवध (बँहगी) और गाह । उदकुम्भ या उदककुम्भ, किन्तु सयुक्त व्यजन से प्रारम्भ होने के कारण उदकस्थाली ही रूप बनेगा । इसी प्रकार पूरा करने योग्य बर्तन न होने के कारण उदकपवत रूप होगा । उदमन्थ या उदकमन्थ (जौ का जल), उदौदन या उदकौदन (जल में पकाया हुआ चावल), उदवीवध या उदकवीवध (जल लाने की बँहगी), उदगाह या उदकगाह (जल में स्नान करना), आदि ।

२८९ (क) यदि समास का प्रथम पद ईकारान्त या ऊकारान्त है तो ई और ऊ को विकल्प से ह्रस्व हो जाएगा । जिन शब्दो में इय् या उव् होता है, उनमें यह नियम नही लगेगा । अव्यय में और स्त्रीप्रत्यय ई अन्त वाले शब्दो में भी यह नियम नही लगेगा ।[2] ग्रामणीपुत्र या ग्रामणिपुत्र (गाँव के प्रधान का

---

१ उदकस्योद सज्ञायाम् (६-३-५७) । उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् (वार्तिक) । पेषवासवाहनधिषु च (६-३-५८), एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम् (६-३-५९), मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च (६-३-६०)

२ इको ह्रस्वोऽड्यो गालवस्य (६-३-६१) । इयङ्‌वङ्‌भाविनामव्ययाना च नेति वाच्यम् (वार्तिक) ।

पुत्र), आदि। अपवाद वाले स्थलों पर ह्रस्व नही होगा। जैसे—गौरीपति, श्रीमद, भ्रूभग, शुक्लीभाव आदि।

(ख) भ्रू शब्द के बाद कुस और कुटि शब्द होगे तो विकल्प से ह्रस्व होगा।[1] भ्रू+कुस = भ्रूकुस, भ्रुकुस (भ्रुवा कुसो भाषण शोभा वा यस्य स स्त्रीवेषधारी नर्तक, सि० कौ०) (एक नर्तक), भ्रूकुटि—भ्रुकुटि (भौं)। कुछ वैयाकरणो के अनुसार कुस और कुटि बाद म होगे तो भ्रू को विकल्प से भ्र होता है। जैसे—भ्रकुस और भ्रकुटि (देखो पादटिप्पणी)।

२६० विशेष—समस्त शब्द के पूर्वपद में स्त्रीप्रत्यय आ और ई अन्त वाले शब्दो को प्राय ह्रस्व हो जाता है, यदि वह शब्द सज्ञावाचक हो या वैदिक प्रयोग हो।[2] जैसे—रेवतिपुत्र, भरणिपुत्र, कुमारिदारा, प्रदविदा, अजक्षीरम् (जैसे—अजक्षीरेण जुहोति), शिलप्रस्थम् आदि। इन स्थानो पर ह्रस्व नही होता—नान्दीकर, नान्दीघोष, फाल्गुनी पौर्णमासी, जगतीछन्द, लोमकागृहम् इत्यादि। त्व प्रत्यय बाद में हो तो आ और ई को विकल्प से ह्रस्व होता है। अजत्वम्—अजात्वम्, रोहिणित्वम्—रोहिणीत्वम्।

२६१ विशेष—इष्टका, इषीका और माला शब्दो के अन्तिम आ को ह्रस्व हो जाता है, यदि बाद में क्रमश चित, तूल और भारिन् शब्द होगे तो।[3] इष्टकचितम् (ईंटो का बना हुआ), पक्वेष्टकचितम्, इषीकतूलम् (सरकडे की नोक), मुञ्जेषीकतूलम्, मालभारि (मालाधारी), उत्पलमालभारि (तुलना करो मालतीमाधव ९-२ से) इत्यादि।

२६२ विशेष—निम्नलिखित स्थानो पर बीच में म् का आगम होता है*—(क) कार शब्द बाद में होने पर सत्य, अगद और अस्तु को, (ख) भव्या बाद में होने पर धेनु शब्द को, (ग) पृण बाद में होने पर लोक शब्द को, (घ) इत्य बाद में होने पर अनभ्यास शब्द को, (ङ) इन्ध बाद मे होने पर भ्राष्ट्र और

---

१. अभ्रुकुसादीनामिति वक्तव्यम् (वार्तिक)। अकारोऽनेन विधीयते इति व्याख्यान्तरम् (सि० कौ०)।

२. ङ्यापो सज्ञाछन्दसोर्बहुलम् (६-३ ६३)। त्वे च (६-३-६४)

३ इष्टकेषीकामालाना चिततूलभारिषु (६-३-६५)।

अग्नि शब्द को, (च) गिल या गिलगिल बाद में होने पर तिमि शब्द को, (छ) करण बाद में होने पर उष्ण और भद्र शब्दों को।[1] जैसे—सत्यङ्कार (किसी सौदे या ठेके को स्वीकार करना, पेशगी देना आदि), (तुलना करो किरात० ११-५० से)। अगदङ्कार (वैद्य), अस्तुङ्कार (लाभकारी, स्वीकार करना), (अभ्युपगम, तत्त्वबोधिनी), धेनुम्भव्या (भविष्यन्ती धेनु, तत्त्वबोधिनी), लोकम्पृण (संसार में व्याप्त या संसार को पूरा करने वाला), अनभ्याशमित्य (जिसके पास नहीं जाना चाहिए, दूर से ही त्याज्य) (दूरत परिहर्तव्य इत्यर्थ, सि० कौ०), भ्राष्ट्रमिन्ध (भाड में भूनने वाला, भडभूजा), अग्निमिन्ध (आग जलाने वाला), तिमिङ्गिल (एक विशाल मछली जो तिमि नामक मछली को निगल जाती है। तिमि मछली १०० योजन लम्बी मानी जाती है।), तिमिङ्गिलगिल (एक बहुत बडी मछली जो तिमिङ्गिल मछली को भी निगल जाती है)[2], उष्णङ्करणम् (गर्म करना), भद्रङ्करणम् (कुशलता प्रदान करना)।

२६३ कृत् प्रत्ययान्त शब्द बाद में होने पर रात्रि शब्द को विकल्प से म् का आगम होता है। रात्रिंचर—रात्रिचर (रात्रि में घूमने वाला, निशाचर, राक्षस), रात्रिंमट—रात्र्यट इत्यादि।

२६४ सह यदि समस्त पद का प्रथम पद है तो उसका स हो जाता है[3]—

(क) यदि समस्तपद संज्ञावाचक हो तो। जैसे—सपलाशम्। अन्यत्र सहयुध्वा (युद्ध का साथी, उपपद समास)।

(ख) ग्रन्थान्त (अर्थात अमुक ग्रन्थ तक) और अधिक अर्थ हो तो।

---

१ कारे सत्यागदस्य (६-३-७०)। इसी सूत्र पर ये वार्तिक हैं :— अस्तोश्चेति वक्तव्यम्। धेनोर्भव्यायाम्। लोकस्य पृणे। इत्येऽनभ्याशस्य। भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे। गिलेऽगिलस्य। गिलगिले च। उष्णभद्रयो करणे।

२ देखो रघुवंश (१३-१०) और इस पर मल्लिनाथ की टीका। अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनमायत। तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघव॥

३. सहस्य स सज्ञायाम् (६-३-७८), ग्रन्थान्ताधिके च (६-३-७९), द्वितीये चानुपाख्ये (६-३-८०)।

जैसे—समुहूर्तं ज्योतिषमधीते (मुहूर्त निकालने की विद्या तक ज्योतिष शास्त्र पढ़ता है), सद्रोणा खारी (द्रोण परिमाण भर अधिक खारी नामक तोल)।

(ग) जब उत्तरपद के द्वारा वर्णित वस्तु दृश्य न हो, अपितु अनुमेय हो। जैसे—सराक्षसीका निशा (बहुव्रीहि) (रात्रि, जिसमें राक्षसी की सत्ता अनुमान से ज्ञात होती है)।

२६५ इन स्थानों पर समान शब्द को स हो जाता है[1]—

(क) जब ये शब्द बाद में हों—ज्योतिस्, जनपद, रात्रि, नाभि, नामन्, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बन्धु। समान ज्योति अस्य सज्योति (एक प्रकार का शोक, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक मनाया जाता है। अथवा नक्षत्रों का एक विशेष समूह जब तक अस्त होता है।) (समान ज्योतिरस्येति बहुव्रीहि। यस्मिन् ज्योतिषि आदित्ये नक्षत्रे वा सजात तदस्तमयपर्यन्तमनुवर्नमानमाशौच सज्योतिरित्युच्यते, तत्त्वबोधिनी)। सजनपद (उसी प्रदेश का निवासी), सरात्रि, सनाभि (एक ही नाभि से उत्पन्न अर्थात् एक ही पूर्वज से उत्पन्न), इत्यादि।

(ख) ब्रह्मचारिन् शब्द बाद में हो तो समान को स।[2] समान ब्रह्मचारी सब्रह्मचारी (वेद की उसी शाखा का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी, जिसका अध्ययन दूसरा विद्यार्थी कर रहा है)।

(ग) बाद में तद्धित य प्रत्ययान्त तीर्थ शब्द हो तो। जैसे—समानतीर्थे वासी सतीर्थ्य (एक ही गुरु के शिष्य)। य प्रत्ययान्त उदर शब्द बाद में हो तो समान को स विकल्प से होगा। समाने उदरे शयित सोदर्य, समानोदर्य (एक ही पेट से उत्पन्न अर्थात् सगा भाई)।

(घ) दृग्, दृश और दृक्ष बाद में हो तो। सदृक्, सदृश, सदृक्ष।

---

१ ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु (६-३-८५)। चरणे ब्रह्मचारिणि (६-३-८६)। तीर्थे ये (६-३-८७)। विभाषोदरे (६-३-८८)। दृग्दृशवतुषु (६-३-८९)। दृक्षे चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)

२ चरण शाखा। ब्रह्म वेद, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी। (सि० कौ०)।

सप्तक, साधर्म्य, सजातीय आदि समस्त पदो मे समान को स होता है ।[1]

(ङ) सपक्ष, साधर्म्य, सजातीय आदि समस्त पदो मे समान को स होता है[2].—

२९६ निम्नलिखित स्थानो पर समास होने पर स् को ष् हो जाता है :—

(क) अंगुलि और सग का समास होने पर । अगुलिषङ्गः ।

(ख) भीरु और स्थान (नपुं०) का समास होने पर । भीरुष्ठानम् ।

(ग) ज्योतिस् और आयुष् के साथ स्तोम शब्द का समास होने पर । ज्योतिष्टोम , आयुष्टोम (दीर्घायु-प्राप्ति के लिए एक यज्ञ) ।

(घ) सुषामा आदि शब्दो मे । शोभन साम यस्य सुषामा । इसी प्रकार नि.षामा, सुषेध , सुषन्धि , सुष्ठु, दुष्ठु, इत्यादि ।

२९७ तृतीया और षष्ठी को छोडकर अन्यत्र अन्य शब्द को अन्यत् हो जाता है, बाद मे आशिस्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति और राग शब्द हो तो ।[3]

---

१. समानस्य छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु (६-३-८४)। इस सूत्र का अर्थ है कि समान को स हो जाता है वेद में, यदि मूर्धन्, प्रभृति और उदर्क शब्द को छोड़कर बाद में कोई भी शब्द हो तो । अनु भ्राता सगर्भ्यः (समानो गर्भः सगर्भः, तत्र भवः) । अनु सखा सयूथ्यः । यो नः सनुत्यः, इत्यादि । अन्यत्र समानमूर्धा, समानप्रभृतयः, समानोदर्काः । उपर्युक्त नियमो के अनुसार सपक्ष आदि समस्त शब्दों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है, अतः काशिकाकार वामन आदि वैयाकरणों ने सुझाव दिया है कि इस सूत्र के 'समानस्य' पद को पृथक् करके एक स्वतन्त्र सूत्र बनाना चाहिए । भट्टोजि दीक्षित ने वामन के इस सुझाव का समर्थन किया है । परन्तु उसने बाद में हरदत्त के सुझाव को अपनाते हुए कहा है कि सदृश अर्थ का वाचक सह शब्द भी है । सपक्ष आदि में सह शब्द का स है और यहां पर बहुव्रीहि समास है । समानस्येति योगो विभज्यते । तेन सपक्षः साधर्म्यं सजातीयमित्यादि सिद्धमिति काशिका । अथवा सहशब्दः सदृशवचनोऽप्यस्ति । सदृशः सख्या ससखीति यथा । तेनायमस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः । समानः पक्षोऽस्येत्यादि । (सि० कौ०)

२. समासेऽङ्गुलेः सङ्गः (८-३-८०) । भीरोः स्थानम् (८-३-८१) । ज्योतिरायुषः स्तोमः (८-३-८३) । सुषामादिषु च (८-३-९८) ।

३. अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु । (६-३-९९) । अर्थे विभाषा (६-३-१००) ।

अन्या आशी अन्यदाशी (अन्य आशीर्वाद), अन्या आशा अन्यदाशा (अन्य आशा), अन्यदास्था (अन्य में प्रति निष्ठा), अन्यदास्थित (दूसरे पर निर्भर), अन्यदुत्सुक (अन्य के लिए उत्सुक), अन्या ऊति अन्यदूति, अन्य राग अन्यद्राग । अन्यत्र अन्यस्य अन्येन वा आशी अन्याशी । कारक शब्द और छ (ईय) प्रत्यय बाद में होने पर भी अन्य को अन्यत् होता है। इन स्थानों पर तृतीया और षष्ठी में भी अन्यत् होता है । अन्यस्य कारक अन्यत्कारक । अन्यस्यायम् अन्यदीय । अर्थ बाद में हो तो विकल्प से अन्य को अन्यत् । अन्यदर्थ, अन्यार्थ (दूसरा अर्थ) ।

२६८ कुछ समस्त पदों और अनियमित रूप से बनने वाले शब्दों को पृषोदरादि गण में रक्खा गया है।[1] जिन शब्दों की सुसंगत व्याख्या नहीं की जा सकती है, उन्हें इस गण में रक्खा गया है । इनका जिस प्रकार भाषा में प्रयोग होता है, वैसे ही इन्हें शुद्ध समझना चाहिए । इनमें मुख्य शब्द ये हैं —पृषत उदर पृषोदरम् (वायु), हन्ति गच्छतीति हसतीति वा हंस (हन् या हम् धातु से), हिनस्तीति सिंह (हिंसार्थक हिंम् धातु से), गूढश्चासौ आत्मा गूढोत्मा (आत्मा, जो कि बाह्य इन्द्रियों से अदृश्य है)।[2] वारीणां वाहका बलाहका (बादल), जीवनस्य मूत (थैला) जीमूत (बादल), श्मान (मृत शरीर) शेरते अत्र, अथवा शवानां शयनं श्मशानम् । ऊर्ध्वं च तत् खं च ऊर्ध्वखं तत् लातीति उलूखलम् (ओखली) । पिशितम् आचामतीति पिशाच, ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति बृसी (ऋषियों का आसन या महर्षि जहाँ पर बैठकर दार्शनिक विषयों पर विचार करते हैं) । मह्यते असौ, महया रौतीति वा मयूर (मोर) ।

(क) दिशावाची शब्दों के साथ समास होने पर तीर शब्द को विकल्प से तार हो जाता है।[3] जैसे—दक्षिणतीरम्—दक्षिणतारम्, उत्तरतीरम्—उत्तरतारम्, आदि ।

(ख) विशेष—निम्नलिखित स्थानों पर दुर् को दू हो जाता है[4] —दुःखेन दाश्यते दूडाश (जिसको कठिनाई से दे सके या हानि पहुँचा सके)।

१ पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् (६-३-१०९)।
२ भवेद्वर्णागमाद्हंस सिंहो वर्णविपर्ययात् ।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ।। (सि० कौ०)।
३ दिक्शब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा । (वार्तिक)।
४ दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च । (वार्तिक)।

दुःखेन नाश्यते दूणाश (जिसको नष्ट करना कठिन है), दुःखेन दभ्यते दूडभ (जिसको हानि पहुँचाना कठिन है), दुःखेन ध्यायनीति दूढ्य, इत्यादि।

२६६ निम्नलिखित स्थानों पर पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है[1] —

(क) क्विप् (०) प्रत्ययान्त ये धातुएँ बाद में हों तो पूर्वपद के अन्तिमशब्द उपसर्गों और कारकों को दीर्घ हो जाता है—नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह् और तन्। उपानत्, नीवृत् (बसा हुआ प्रदेश, राज्य), प्रावृट् (वर्षा ऋतु), मर्माविन् (मर्मवेधी)। इसी प्रकार मृगाविन् (शिकारी) (देखो भट्टि० २-७), नीरुक्, अभीरुक्, ऋतीषट् (शत्रु को तिरस्कृत करने वाला), परीतत्। अन्यत्र परिणहनम्, यहाँ पर नह् धातु के बाद क्विप् प्रत्यय नहीं है।

(ख) वल प्रत्यय बाद में हो और पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो। कृषीवल (किसान)।

(ग) मत् (वत्) प्रत्यय बाद में हो तो अनेक अच् (एक से अधिक स्वर) वाले शब्दों के अन्तिम स्वर को दीर्घ होता है, यदि पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो, इन शब्दों को छोड़कर—अजिर, खदिर, पुलिन, हंस, कारण्डव और चक्रवाक। अमरावती, इरावती (ये दोनों नाम हैं)। अन्यत्र अजिरवती, व्रीहिमती। वलयवती, यह नाम नहीं है। इन शब्दों के बाद मत् (वत्) प्रत्यय होगा तो भी दीर्घ होगा—शर, वंश, धूम, अहि, कपि, मुनि, शुचि और हनु। शरावती आदि।

(घ) घञ् (अ) प्रत्ययान्त कोई धातु-रूप बाद में हो तो अधिकांश स्थानों पर उपसर्ग के अन्तिम स्वर को दीर्घ हो जाता है, समस्त पद मनुष्यवाचक न हो तो। परिपाक—परीपाक। अन्यत्र निषाद (पहाड़ में रहने वाली एक जाति का व्यक्ति)। इसी प्रकार प्रतिकार—प्रतीकार, प्रतिवेश—प्रतीवेश, इत्यादि।

(ङ) इकारान्त उपसर्ग के बाद काश शब्द हो तो। वीकाश, नीकाश। अन्यत्र प्रकाश।

---

१. नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ (६-३-११६)। वले (६-३-११८)। मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् (६-३-११९)। शरादीनां च (६-३-१२०)। उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् (६-३-१२२)। इकः काशे (६-३-१२३)। अष्टनः संज्ञायाम् (६-३-१२५)। नरे संज्ञायाम् (६-३-१२९)। मित्रे चर्षौ (६-३-१३०)।

(च) अष्टन् शब्द पूर्वपद हो तो उसे दीर्घ होता है, संज्ञावाचक हो तो। नर शब्द बाद में हो और पूरा शब्द संज्ञावाचक हो तो पूर्वपद के अन्तिम स्वर को दीर्घ होता है। अष्टापदम् (सुवर्ण), अष्टापद (मकड़ी)। अन्यत्र अष्टपुत्र। विश्वानर (सविता का एक विशेषण)।

(छ) मित्र शब्द बाद में हो और ऋषि का नाम हो तो पूर्वपद को दीर्घ होगा। विश्वामित्र (ऋषि का नाम)। अन्यत्र विश्वमित्रो माणवकः।

३०० निम्नलिखित समस्त पदो में बीच में स् लगता है[1] —

(क) अपर के बाद पर शब्द हो और क्रिया की निरन्तरता अर्थ हो तो। अपरस्परा सार्था गच्छन्ति। सततमविच्छेदेन गच्छन्तीत्यर्थः। अन्यत्र अपरपरा गच्छन्ति। अपरे च परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः। आ + चर्य में आश्चर्य अर्थ में बीच में स्। आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। अन्यत्र आचर्यं कर्म शोभनम्।

(ख) अवकीर्यते इति अवस्कर, जब इसका अर्थ वर्चस्क अर्थात् कूड़ा या मैल होता है। (कुत्सित वर्च वर्चस्कम्, अन्नमलम्। सि० कौ०)। अन्यत्र अवकर। रयाग अर्थात् रथ के अवयव अर्थ में अपस्कर। विष्किर और विकिर रूप पक्षी के अर्थ में होते है। प्रतिष्कश (सहाय पुरोयायी वा, सि० कौ०)। अन्यत्र प्रतिगत कशां प्रतिकश (कोडे की मार को सहन करने वाला, आज्ञा को न पालन करने वाला सेवक), इत्यादि। मस्कर (बाँस), अन्यत्र मकर (नाका)। मस्करिन् (सन्यासी), अन्यत्र मकरिन् (समुद्र)। कारस्कर (एक वृक्ष का नाम), अन्यत्र कारकर।

(ग) पारस्कर आदि शब्द जब संज्ञावाचक हो तो स् होता है। जैसे—पारस्कर, किष्कु, किष्किन्धा।

(घ) तत् + कर का चोर अर्थ हो और बृहत् + पति का एक देवता अर्थ हो तो

---

१ अपरस्परा क्रियासातत्ये (६-१-१४४)। आश्चर्यमनित्ये (६-१-१४७)। वर्चस्केऽवस्कर (६-१-१४८)। अपस्करो रथाङ्गम् (६-१-१४९)। विष्किर शकुनिर्विकिरो वा (६-१-१५०)। प्रतिष्कशश्च कशे (६-१-१५२)। मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयो (६-१-१५४)। कारस्करो वृक्ष (६-१-१५६)। पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् (६-१-१५७)। तद्बृहतो करपत्योश्चोरदेवतयो सुट् तलोपश्च (वार्तिक)। प्रायस्य चित्तिचित्तयो (वार्तिक)।

बीच में स् होता है और स् से पूर्ववर्ती त् का लोप होता है। तस्कर (चोर), वृहस्पति (वृहस्पति)। प्रायश्चित्तम्, प्रायश्चित्ति, वनस्पति आदि में भी स् होता है।

२०१ पुरग, मिश्रक, सिध्रक, सारिक और कोटर शब्द के बाद ही समस्त पदा में वन के न को ण होता है और वन से पूर्ववर्ती अ को दीर्घ होता है।[१] अग्र के बाद भी वन को वण होता है। पुरगावणम्, मिश्रकावणम्, सिध्रकावणम्, सारिकावणम्, कोटरावणम्। अन्यत्र असिपत्रवनम्, वनस्याग्रे अग्रेवणम्।

२०२ विशेष—प्र, निर्, अन्त, आम्र, कार्ष्य आदि शब्दो के बाद वन के न को ण नित्य होता है। दो या तीन स्वर वाले ओषधि और वनस्पति वाची शब्दो के बाद वन के न को ण विकल्प से होता है।[२] प्रवणम्, कार्ष्यवणम्, इत्यादि। दूर्वावणम्—दूर्वावनम्, शिरीषवणम्—शिरीषवनम्। अन्यत्र देवदारुवनम् (इसमें तीन से अधिक स्वर हैं)। इन शब्दो में वन के न को ण नही होगा—इरिकावनम्, मिरिकावनम्, तिमिरावनम्।

२०३ बोझ के रूप में ढोई जाने वाली वस्तु के बाद वाहन शब्द के न को ण हो जाता है।[३] इक्षुवाहणम्। अन्यत्र इन्द्रवाहनम् (इन्द्रस्वामिक वाहनमित्यर्थ, सि० कौ०)।

२०४ देश अर्थ होने पर समस्त पद में पान के न को ण नित्य होता है और केवल पान (पीना) अर्थ होने पर विकल्प से ण होगा।[४] जैसे—क्षीरपाणा उशीनरा, सुरापाणा प्राच्या। अन्यत्र क्षीरपाणम्—क्षीरपानम्।

(क) निम्नलिखित समस्त पदो में न को ण विकल्प से होता है—गिरिणदी—गिरिनदी, गिरिणख—गिरिनख, गिरिणड्य—गिरिनड्य, गिरिणितम्ब—गिरिनितम्ब, चक्रणदी—चक्रनदी, चक्रणितम्ब—चक्रनितम्ब, इत्यादि।

---

१ वन पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटराग्रेभ्य (८-४-४)।

२ प्रनिरन्त शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि (८-४-५)।
विभाषौषधिवनस्पतिभ्य (८-४-६)।

३ वाहनमाहितात् (८-४-८)

४. पान देशे (८-४-९)। वा भावकरणयो (८-४-१०) गिरिनद्यादीनां वा (वार्तिक)।

अध्याय ८

स्त्री-प्रत्यय

३०५ पुंलिंग शब्दों से इन प्रत्ययों को लगाकर स्त्रीलिंग शब्द बनाए जाते हैं—आ (टाप्, डाप्, चाप्), ई (ङीप्, ङीष्, ङीन्), ऊ (ऊङ्) और ति।

३०६ ई प्रत्यय करने पर ये परिवर्तन होते हैं —

(क) हलन्त शब्दों का तृतीया एक० में जो रूप रहता है, वही ई प्रत्यय करने पर भी होता है। प्रत्यञ्च्—प्रतीची, राजन्—राज्ञी, मघवन्—मघोनी, श्वन्—शुनी, अर्यमन्—अर्यम्णी, विद्वस्—विदुषी, आदि। इसके कुछ अपवाद भी हैं—अर्वन्—अर्वणी, आदि।

(ख) शब्द के अन्तिम अ और ई का लोप हो जाता है। जैसे—गौर—गौरी, औत्स—औत्सी, पार्वती, आदि।

(ग) यदि तद्धित प्रत्यय य से बना हुआ कोई प्रातिपदिक है तो उस य का लोप हो जाएगा।[1] गार्ग्य + ई = गार्गी (गर्ग की पुत्री), इत्यादि।

(घ) इन शब्दों के अन्तिम य का लोप हो जाता है—सूर्य, तिष्य, पुष्य (नक्षत्रों का एक समूह), अगस्त्य और मत्स्य।[2] जैसे—सौरी, मत्सी आदि।

(ङ) लट् और लृट् के स्थान पर होने वाले शतृ प्रत्ययान्त शब्दों के बीच में न् और जुड़ जाता है, जैसा कि नपु० प्रथमा द्विवचन में होता है। (देखो नियम ११६ क और ख)। उदाहरणों के लिए देखो नियम ३३६।

३०७ अकारान्त प्रातिपदिकों से और अजादिगण[3] में आए शब्दों से स्त्री-

---

१. हलस्तद्धितस्य (६-४-१५०)। प्रातिपदिक शब्द के अर्थ के लिए देखो नियम ५२।

२. सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः (६-४-१४९)।

३ अजादिगण में ये शब्द हैं—अज, एडक (भेड़), अश्व, चटक (चिड़िया), मूषक, बाल, वत्स, होड, पाक (छोटा बच्चा), मन्द, विलात, क्रुञ्च (बगुला, क्रौंच पक्षी), उष्णिह, देवविश् (देवता), ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ और कोकिल

प्रत्यय आ होता है।[1] जैसे—भुञ्जान–भुञ्जाना, अज–अजा, एडका, अश्वा, चटका, मूषिका, बाला, वत्सा, होडा, मन्दा, विलाता (बाला आदि पाँच शब्दों का अर्थ है बालिका) (इनमें से प्रथम पाँच शब्द नियम ३१३ के अपवाद हैं और शेष नियम ३०८ ग के अपवाद है)। इन शब्दों से भी आ लगता है—सम्, भस्त्रा, अजिन, शण और पिण्ड शब्द के बाद फल शब्द हो तो। सत्, अजन्त शब्द, काण्ड, प्रान्त, शत और एक शब्द के बाद पुष्प शब्द हो तो। महत् शब्द पहले न हो और जाति अर्थ हो तो शूद्र शब्द से। नञ् का अ पहले हो तो मूल शब्द से। सफला, भस्त्रफला, शणफला आदि (ये लताविशेषों के नाम हैं)। सत्पुष्पा, प्राक्-पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, शतपुष्पा, एकपुष्पा (ये लताविशेषों के नाम हैं)। शूद्रा (शूद्र स्त्री), अमूला।

(क) यदि प्रत्यय के क से युक्त प्रातिपदिक है तो आ प्रत्यय होने पर क से पूर्ववर्ती अ को इ हो जाएगा।[2] सर्विका, कारिका आदि। इसी प्रकार इन शब्दों में भी अ को इ होता है—मामक, नरक तथा तद्धित प्रत्यय त्य + क से युक्त शब्द। मामिका, नरान् कायति इति नरिका (जो मनुष्यों को अपने पास बुलाती है), दाक्षिणात्यिका, इहत्यिका (यहाँ रहने वाली स्त्री)।

अपवाद नियम—निम्नलिखित स्थानों पर अ को इ नहीं होता है[3]—

(क) यद् और तद् सर्वनामों से अक प्रत्यय होकर बने हुए रूपों में, (ख) तद्धित प्रत्यय त्यकन् (त्यक) लगाकर बने हुए रूपों में, (ग) समस्त पदों में, (घ) क्षिपकादिगण में आए हुए शब्दों में।[4] जैसे—यका, सका, अधित्यका

---

१. अजाद्यतष्टाप् (४-१-४)। सम्भस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् (वा०)। सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् (वा०)। शूद्रा चामहत्पूर्वा जाति (वा०)। मूलान्नञः (वा०)।

२. प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः (७-३-४४)। मामकनरकयोरुप-सङ्ख्यानम् (वा०)। त्यक्त्यपोश्च (वा०)।

३. न यासयोः (७-३-४५)। त्यकनश्च निषेधः (वा०)। क्षिपकादीनां च (वा०)।

४. क्षिपकादिगण में निम्नलिखित शब्द हैं—क्षिपक (धनुर्धर), ध्रुवक, चरक (दूत), सेवक, करक (एक पक्षी), चटक, अवक (एक वृक्ष), हलक, अलका, कन्यका, एडक।

(पठार), उपत्यका (तराई), बहुपरिव्राजका नगरी, क्षिपका, ध्रुवका, कन्यका इत्यादि।

(ख) निम्नलिखित स्थानों पर अ को विकल्प से इ होता है[1] —

(१) तारका (तारा), तारिका (रक्षा में समर्थ स्त्री), वर्णका (चोगा, वस्त्र), वर्णिका (अन्य अर्थों में), वर्तका (पक्षी, पूर्वी लोगों के अनुसार), वर्तिका (पक्षी, उत्तरीय लोगों के अनुसार) (वर्तका शकुनौ प्राचाम्, उदीचां तु वर्तिका), अष्टका (श्राद्धपक्ष की अष्टमी), अष्टिका (अन्य अर्थों में)।

(२) सूतका-सूतिका (नवप्रसूता स्त्री), पुत्रका-पुत्रिका, वृन्दारका वृन्दारिका (एक देवी)।

(३) क प्रत्ययान्त शब्दों में अ को इ विकल्प से होता है, जहाँ पर क से पूर्ववर्ती आ को अ हुआ हो और उस अ से पहले य या क हो।[2] जैसे—आर्या + क = आर्यक + आ = आर्यका—आर्यिका, चटका + क = चटकक + आ = चटकिका—चटकका, इत्यादि। अन्यत्र साकाश्ये भवा साकाश्यिका, अश्विका, शुभ यातीति शुभया, अज्ञाता शुभया शुभयिका।

(ग) धातु के य और क के बाद क प्रत्यय होगा तो अ को इ नित्य होता है।[3] सुनयिका, सुपाकिका, इत्यादि।

३०८ (घ) निम्नलिखित स्थानों पर स्त्री प्रत्यय ई लगता है।[4] ये शब्द विशेषण के तुल्य प्रयुक्त नहीं होने चाहिएँ। (१) कर अन्त वाले प्रातिपदिक (यशस्कर, तस्कर, किंकर[5] और बहुकर को छोड़कर), (२) घ्न अन्त वाले प्रातिपदिक, (३) पुर: अग्रत अग्रे और पूर्व के बाद सर शब्द होने पर, (४) सेना, दाय और स्थानवाचक शब्दों के बाद चर शब्द होने पर, (५) नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव और सूद शब्दों से, (६) तद्धित एय प्रत्ययान्त शब्दों से, (७) तद्धित और कृत् अण् (अ) प्रत्यय से बने हुए शब्दों से, जहाँ पर अ के कारण

---

१. तारका ज्योतिषि (वा०)। वर्णका तान्तवे (वा०)। वर्तका शकुनौ प्राचाम् (वा०)। सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम् (वा)०।

२ उदीचामात: स्थाने यकपूर्वाया (७-३-४६)

३ धात्वन्तयकोस्तु नित्यम् (वा०)।

४. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरप: (४-१-१५)

५. देखो सूत्र ३-२-२१ पर काशिका की व्याख्या।

गुण या वृद्धि होती है। जैसे—औपगव, औत्स, कुम्भकार, भारहार तथा अ प्रत्यय लगाकर बने हुए यादृश, तादृश आदि, (८) तद्धित प्रत्यय द्वयस, दघ्न, मात्र और इक (इनके कुछ अपवाद भी हैं) से बने हुए शब्दों से तथा कृत् प्रत्यय क्वर से बने हुए शब्दों से। जैसे—भोगकरी (भोगों को देने वाली), एककरी आदि। पतिघ्नी, पितृघ्नी आदि। अग्रेसरी आदि। सेनाचरी, कुरुचरी (कुरु देश की स्त्री), मत्स्यचरी आदि। नदी, देवी, सूदी आदि। सौपर्णेयी, वैनतेयी आदि। ऐन्द्री, औत्सी आदि। कुम्भकारी, अयस्कारी आदि। ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री (जाँघ तक पहुँचने वाली) आदि। आक्षिकी, लावणिकी आदि। यादृशी, तादृशी, इत्वरी (कुल्टा स्त्री) आदि। नश्वरी आदि। अन्यत्र विकरा, बहुकुरुचरा नगरी।

(ख) तद्धित प्रत्यय न, स्न, ईक और य (जिनके कारण वृद्धि होती है) प्रत्ययान्त शब्दों तथा तरुण, तलुन शब्दों से भी स्त्रीप्रत्यय ई होता है।[1] स्त्रैणी, पौंस्नी (पुरुष के योग्य), शाक्तीकी, तरुणी, तलुनी आदि। तद्धित प्रत्यय अन अन्त वाले शब्दों से भी ई प्रत्यय होता है, जहाँ पर बीच में न् जुड़ता है। याडभकरणी।

(ग) आयुवाचक अकारान्त शब्दों से स्त्री प्रत्यय ई होता है, वृद्धावस्था के वाचक शब्दों से नहीं।[2] कुमारी, किशोरी। वधूटी, चिरण्टी (दोनों का अर्थ है युवती स्त्री)। अन्यत्र वृद्धा, स्थविरा आदि। ये दोनों वृद्धावस्था के वाचक हैं। कन्या शब्द अपवाद है, इसमें ई नहीं लगता है।

(घ) विशेष—निम्नलिखित ९ शब्दों से ई नित्य होता है, संज्ञावाचक होने पर और वेद में[3]—केवल, मामक, भागधेय, पाप, अपर, समान, आर्यकृत, सुमङ्गल और भेषज। केवली, मामकी, समानी, आर्यकृती आदि। अन्यत्र केवला, समाना आदि, जब ये किसी के नाम नहीं हैं।

(ङ) निम्नलिखित स्थानों पर स्त्रीप्रत्यय ई होता है—(क) नर्तक, खनक, रञ्जक और रजक शब्दों से, (ख) कृत् प्रत्यय आक और न (यह कुछ धातुओं

---

१. नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् (वा०)। पञ्चाध (४-१-१६)।
२. वयसि प्रथमे (४-१-२०)। वयस्यचरम इति वाच्यम् (वा०)।
३. केवलमामकभागधेय० (४-१-३०)

से ही लगता है) से बने हुए शब्दो से, (ग) गौरादिगण में पठित शब्दो से ।[1] नर्तकी, रजकी आदि । कुट्टाकी (काटने वाली), लुण्टाकी (लूटने वाली), दात्री आदि । गौरी, मनुषी, शृंगी, हरिणी, मातामही, पितामही आदि । सुन्दर के दो रुप होते हैं—सुन्दरा, सुन्दरी ।

३०६ कुछ प्रातिपदिको में तद्धित प्रत्यय य और ई के बीच में आयन् भी लग जाता है ।[2] गार्ग्यायणी (गर्ग की पौत्री), लौहित्यायनी, कात्यायनी आदि ।

३१० निम्नलिखित ११ प्रातिपदिको से आगे वर्णित विशेष अर्थों में स्त्रीप्रत्यय ई होता है[3] जानपद शब्द से वृत्ति (आजीविका) अर्थ में, कुण्ड शब्द से पात्र अर्थ में और वर्णसकर से उत्पन्न व्यक्ति अर्थ में, गोण से भरने का थैला या बोरा अर्थ में, स्थल से अकृत्रिम भूमि अर्थ में, भाज से पकाई हुई अर्थ में, नाग से विशालकाय हाथी के अर्थ में, काल से काला रग अर्थ में, नील से नीले रग में रँगे हुए वस्त्र अर्थ में या नील के अर्थ में या नीले प्राणी के अर्थ में, कुश से लोहे की बनी हुई वस्तु अर्थ में, कामुक से विषय-भोग की इच्छा अर्थ में, कबर से बाल बाँधने के अर्थ में । जैसे जानपदी वृत्ति , जानपदा नगरी । कुण्डी अमत्रम् (एक पात्र-विशेष), कुण्डा अन्या (जलने वाली वस्तु) । गोणी आवपन चेत्, गोणा अन्या (खाली थैला या बोरा) । स्थली अकृत्रिमा चेत्, स्थला अन्या (कृत्रिम भूमि) । भाजी श्राणा चेत् (भात का माड), भाजा अन्या। नागी स्थूला चेत्, नागा अन्या । काली वर्णश्चेत्, काला अन्या (किसी व्यक्ति का नाम) । नीली अनाच्छादन

---

१. षिद्गौरादिभ्यश्च (४-१-४१) । गौरादिगण में परिगणित शब्दो में से कुछ मुख्य शब्द ये हैं—गौर, मनुष्य, ऋष्य, पुट, द्रोण, हरिण, कण, आमलक, बदर, बिम्ब, पुष्कर, शिखण्ड, सुषम, अलिन्द, आढक, आश्वत्थ, उभय, भृङ्ग, मह, मठ, श्वन्, तक्षन्, अनडुह्, अनड्वाह्, देह, देहल, रजन, आरट, नट, आस्तरण, आग्रहायण, मङ्गल, मन्थर, मण्डल, पिण्ड, हृद्, बृहत्, महत्, सोम, सौधर्म आदि ।

२ सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः (४-१-१८) ।

३. जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु (४-१-४२)। अनाच्छादनेऽपि न सर्वत्र । किन्तु नीलादोषधौ (वा०)। प्राणिनि च (वा०)। सज्ञायां वा (वा०) । शोणात् प्राचाम् (४-१-४३) ।

(ओषधिविशेषो गौर्वा) चेत्, नीला अन्या, नील्या रक्ता शाटी इत्यर्थः । नाम-वाचक होने पर नीली और नीला दोनों रूप होते हैं। कुशी अयोविकारश्चेत्, कुशा अन्या (लकड़ी की खूँटी)। कामुकी (विषय भोगों की इच्छा वाली स्त्री), कामुका अन्या (प्रेमी से मिलने की इच्छुक स्त्री)। कबरी केशाना सनिवेशश्चेत् (बालों का जूड़ा), कबरा अन्या (चितकबरा)। शोण के दो रूप होते हैं—शोणी-शोणा।

३११. पुंलिंग शब्दों से स्त्रीलिंग में ई प्रत्यय लगता है, यदि उस पुरुष की स्त्री अर्थ हो तो।[1] गोपस्य स्त्री गोपी। शूद्री (शूद्र की स्त्री), (इसका शूद्राणी रूप भी कहीं कहीं होता है)।

(क) पालक शब्द अन्त में होगा तो ई नहीं लगेगा।[2] जैसे—गोपालिका (ग्वाले की स्त्री)। किन्तु गोपाल का गोपाली रूप बनता है। अश्वपालिका (अश्वपाल या सईस की स्त्री)।

(ख) सूर्य शब्द से देवता अर्थ में आ होता है, अन्यत्र ई।[3] सूर्या (सूर्य की स्त्री)। अन्यत्र सूरी कुन्ती (सूर्य की मनुष्य स्त्री कुन्ती)।

३१२ निम्नलिखित शब्दों से स्त्रीलिंग में ई लगता है और उस ई से पहले आन् लग जाता है, अन आनी जुडता है[4]—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम और अरण्य शब्दों से महत्त्व (विशाल) अर्थ मे, यव शब्द से रद्दी जौ अर्थ में, यवन शब्द से यवनों की लिपि अर्थ में, मातुल और आचार्य शब्दों से। जैसे—इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री), वरुणानी (वरुण की स्त्री), आदि। हिमानी (सुदूर विस्तृत हिम), अरण्यानी (विशाल जंगल)। दुष्टो यवो यवानी (रद्दी जौ)। यवनाना लिपिर्यवनानी। अन्यत्र यवनी (यवन की स्त्री या यवन स्त्री)। आचार्यानी[5] (आचार्य की स्त्री)। इसका आचार्याणी रूप नहीं बनता है। जो स्वयं शिक्षक है उसके लिए आचार्या शब्द है।[6]

---

१ पुंयोगादाख्यायाम् (४-१-४८)।
२. पालकान्तान्न (वा०)।
३. सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः (वा०)।
४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् (४-१-४९)। हिमारण्ययोर्महत्त्वे (वा०)। यवाद् दोषे (वा०)। यवनाल्लिप्याम् (वा०)।
५ आचार्यादणत्वं च (वा०)।
६ आचार्या स्वयं व्याख्यात्री (सि० कौ०)।

(ब) मातुल और उपाध्याय शब्दों में ई से पहले आन् विकल्प से लगता है[1]। मातुलानी मातुली, उपाध्यायानी-उपाध्यायी (उपाध्याय या गुरु की स्त्री)। किन्तु जो स्वयं शिक्षक है, वहाँ उपाध्यायी-उपाध्याया रूप होंगे। अर्य और क्षत्रिय शब्दों में ई से पहले आन् विकल्प से लगता है, केवल स्त्रीलिंग अर्थ में। अर्याणी-अर्या (वैश्य वर्ण की स्त्री), क्षत्रियाणी-क्षत्रिया (क्षत्रिय वर्ण की स्त्री)। अर्यी (वैश्य की स्त्री), क्षत्रियी (क्षत्रिय की स्त्री)।

३१३ अकारान्त शब्दों से जाति अर्थ में ई प्रत्यय होता है। इनकी उपधा में य् नहीं होना चाहिए। य् उपधा वाले इन शब्दों में ई हो जाएगा—हय, गवय (नील गाय), मुकय, मनुष्य और मत्स्य।[2] जैसे—वृषली (शूद्र स्त्री)। वृषल की स्त्री भी वृषली ही होगी (देखो नियम ३११)। इसी प्रकार ब्राह्मणी, महाशूद्री आदि। हरिणी, मृगी, औपगवी (औपगव नामक ब्राह्मणवर्ग की स्त्री), कठी (कठ नामक ब्राह्मणवर्ग की स्त्री), इत्यादि। हयी, गवयी, मुकयी, मनुषी और मत्सी (देखो नियम ३०६ घ)। अन्यत्र देवदत्ता (एक स्त्री का नाम), अश्वा (यह अजादिगण में है, अतः आ। देखो नियम ३०७ और पाद टिप्पणी), शूद्रा (शूद्र वर्ण की स्त्री। देखो नियम ३०७।)

(क) निम्नलिखित शब्द अन्त में होंगे और जातिवाचक होंगे तो स्त्रीलिंग में अन्त में ई लगेगा—पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और वाल।[3] ओदनपाकी, शङ्कुकर्णी, शालपर्णी, शङ्खपुष्पी, दासीफली, दर्भमूली और गोवाली (ये ओषधियों के नाम हैं)।

(ख) इ-अन्तवाले शब्दों में ई होता है, यदि वे मनुष्यवाचक हों तो।[4] दाक्षी (दाक्षि-परिवार की स्त्री), औदमेयी (उदमेयस्यापत्यम्)। अन्यत्र तित्तिरि।

३१४ वर्ण (रंग)-वाचक प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ई और आ दोनों

---

१. मातुलोपाध्याययोरानुग् वा (वा०)। या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीप् वाच्य (वा०)। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे (वा०)।

२. जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (४-१-६३)। योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकय-मनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः (वा०)।

३. पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च (४-१-६४)।

४. इतो मनुष्यजातेः (४-१-६५)।

होते हैं, यदि उनकी उपधा में त् हो तो और शब्द का अन्तिम स्वर अनुदात्त हो तो।[1] पिशङ्ग शब्द से भी यह नियम लगता है। असित (काला) और पलित (भूरा) शब्दों से ई नहीं होगा। जहाँ पर ई होता है, वहाँ पर त को न भी होगा। एनी—एता (एत शब्द से, चितकबरी), रोहिणी-रोहिता। पिशङ्गी-पिशङ्गा। अन्यत्र असिता, पलिता, श्वेता (श्वेत में त उदात्त है)।

(ख) जिन वर्णवाचक शब्दों की उपधा में त नहीं है, उनसे ई ही होता है।[2] कल्माषी (चितकबरी), सारङ्गी। अन्यत्र कृष्णा, कपिला (इन दोनों के अन्तिम स्वर अनुदात्त नहीं है)।

३१५ नृ और नर शब्द का स्त्रीलिंग में नारी बनता है। शार्ङ्गरवादिगण में आए हुए शब्दों से स्त्रीलिंग में ई लगता है।[3] जैसे—शार्ङ्गरवी, गौतमी, आतिथेयी, आशोकेयी, बैदी, पुत्री आदि।

३१६ सम्बन्धवाचक शब्दों के स्त्रीलिंग शब्द अनियमित रूप से बनते हैं। श्वशुर—श्वश्रू, पितृ—मातृ इत्यादि।

३१७ पति का स्त्रीलिंग शब्द पत्नी है।[4] इसका अर्थ है पति के द्वारा किए गए यज्ञ के फल में समान रूप से भाग लेने वाली। यदि पति शब्द समस्त पद का अन्तिम शब्द है तो पति का पत्नी रूप विकल्प से होगा।[5] समस्त पदों में इन स्थानों पर पति का पत्नी अवश्य होता है—यदि पति से पहले समान, एक, वीर, पिण्ड, दब भ्रातृ, भद्र और पुत्र आदि शब्द होंगे। गृहपति—गृहपत्नी (घर की स्वामिनी), दृढपति—दृढपत्नी, वृषलपति—वृषलपत्नी, आदि। किन्तु समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी (सौत) एकपत्नी वीरपत्नी।

सूचना—यदि समास नहीं हुआ है तो पति का पत्नी नहीं होगा। जैसे—

---

१ वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः (४-१-३९)। पिशङ्गादुपसंख्यानम् (वा०)। असितपलितयोर्न (वा०)। २ अन्यतो ङीष् (४-१-४०)।

३ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् (४-१-७३)। शार्ङ्गरवादिगण के मुख्य शब्द ये हैं—शार्ङ्गरव, कापटव, ब्राह्मण, गौतम, आतिथेय, आशोकेय, वात्स्यायन, मौञ्जायन, शैब्य, आश्मरथ्य, चण्डाल, पुत्र।

४. पत्युर्नो यज्ञसंयोगे (४-१-३३)। पतिशब्दस्य नकारादेशः स्याद् यज्ञेन संबन्धे। वसिष्ठस्य पत्नी। तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः। (सि० कौ०)।

५. विभाषा सपूर्वस्य (४-१-३४)। नित्यं सपत्न्यादिषु (४-१-३५)।

ग्रामस्य पति (गाँव की स्वामिनी)। यहाँ पत्नी रूप नहीं होगा। इसी प्रकार गवा पति, इत्यादि।

३१८ अन्तर्वत् और पतिवत् शब्दो से स्त्रीलिंग में ई प्रत्यय होता है और ई से पहले न् लग जाता है।[1] अन्तर्वत्नी (गर्भिणी स्त्री), पतिवत्नी (सधवा स्त्री)। यदि पति शब्द का अर्थ स्वामी होगा तो केवल ई ही लगेगा। जैसे— पतिमती पृथ्वी (राजा से युक्त पृथ्वी)।

३१९ इकारान्त (इ या ई अन्त वाले) विशेषण शब्दो का स्त्रीलिंग मे वही रूप रहता है। जैसे—शुचि, सुधी इत्यादि।

३२० उकारान्त विशेषण शब्दो से विकल्प से ई होता है, यदि उनसे पहले सयुक्त अक्षर न हो तो। खरु शब्द से ई नही होता है।[2] जैसे—मृदु-मृद्वी, पटु-पट्वी, बहु-बह्वी। किन्तु खरु ही रूप बनेगा। (पति को वरण करने वाली कन्या। खरु पतिवरा कन्या, सि० कौ०)। अन्यत्र पाण्डु, इसमें उ से पहले सयुक्त वर्ण हैं। आखु, यह विशेषण शब्द नहीं है, अपितु सज्ञावाचक है।

३२१ उकारान्त प्रातिपदिक को स्त्रीलिंग मे ऊ हो जाता है, यदि उ से पहले य् न हो और शब्द मनुष्यजातिवाचक हो तो।[3] जैसे—कुरू (कुरुदेश की स्त्री)। अन्यत्र अध्वर्यु (अध्वर्यु की स्त्री)। अप्राणिवाचक उकारान्त शब्दों को भी स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, रज्जु और हनु को नही।[4] जैसे—अलाबू, कर्कन्धू। अन्यत्र रज्जु, हनु ही रूप होगे।

(क) विशेष—बाहु अन्त वाले शब्दो को स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, यदि वे सज्ञावाचक हो तो। पङ्गु शब्द को भी स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है।[5] जैसे— भद्रबाहू (एक स्त्री का नाम)। अन्यत्र वृत्तबाहु (गोल भुजाओं वाली स्त्री)। पङ्गू।

---

१. अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् (४-१-३२)।
२. वोतो गुणवचनात् (४-१-४४)। खरुसयोगोपधान्न (वा०)।
३. ऊङुतः (४-१-६६)। उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिन स्त्रियामूङ् स्यात् (सि० कौ०)।
४. अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसख्यानम् (वा०)।
५ बाह्वन्तात्सज्ञायाम् (४-१-६७)। पङ्गोश्च (४-१-६८)। सज्ञायाम् (४-१-७२)।

(ख) कद्रु और कमण्डलु शब्दों से स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है, संज्ञावाचक हो तो। कद्रू (एक स्त्री का नाम), कमण्डलू। अन्यत्र कद्रु, कमण्डलु।

३२२. यदि समस्त पद में अन्त में ऊरु शब्द हो और प्रथम पद उपमान-वाचक हो तो स्त्रीलिंग में ऊ हो जाता है। यदि पूर्वपद में ये शब्द हों और बाद में ऊरु हो तो भी ऊ होगा—संहित, शफ, लक्षण, वाम, सहित और सह।[1] रम्भोरू (रम्भे इव ऊरू यस्या सा, केले के तुल्य जाँघोंवाली)। करभोरू (हाथ के अग्रभाग के तुल्य सुन्दर जाँघों वाली, या हाथी के बच्चे की सूँड के तुल्य जाँघों वाली)। संहितोरू (सुन्दर आकृति वाली जाँघों से युक्त स्त्री)। शफौ खुरौ ताविव संश्लिष्टत्वाद् ऊरू यस्या सा शफोरू। हितेन सह सहितौ ऊरू यस्या सा, सहितोरू। सहेते इति सहौ ऊरू यस्या सा, सहोरू (स्त्री जिसकी जघाएँ अधिक थकान या कष्ट को सहन कर सकती है, अथवा सुन्दर जांघों वाली)।

३२३ निम्नलिखित शब्दों से स्त्रीलिंग में ई होता है और इन शब्दों के अन्तिम स्वर को ऐ हो जाता है—वृषाकपि (विष्णु या शिव), अग्नि, कुसित और कुसिद (ब्याज या सूद पर निर्वाह करने वाला)।[2] वृषाकपायी, अग्नायी, कुसितायी, कुसिदायी।

३२४ मनु शब्द से स्त्रीलिंग में विकल्प से ई होता है और उस ई से पहले उ को औ या ऐ हो जाता है।[3] मनावी, मनायी, मनु।

३२५. ह्रस्व ऋ अन्त वाले और न् अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में अन्त में ई जुड़ता है।[4] जैसे—कर्तृ—कर्त्री, दण्डिन्—दण्डिनी, शुनी, राज्ञी, परिदिवन्—परिदिव्नी, इत्यादि।

सूचना—निम्नलिखित सात शब्द स्वयं स्त्रीलिंग है, अतः इनसे अन्त में ई नहीं होता है—स्वसृ, ननान्दृ, दुहितृ, तिसृ, चतसृ, यातृ और मातृ।[5]

---

१. ऊरूत्तरपदादौपम्ये (४-१-६९)। संहितशफलक्षणवामादेश्च (४-१-७०)। सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् (वार्तिक)।
२. वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः (४-१-३७)।
३. मनोरौ वा (४-१-३८)। मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्त ऐकारश्च० (सि० कौ०)।
४. ऋन्नेभ्यो ङीप् (४-१-५)।
५. न षट्स्वस्रादिभ्यः (४-१-१०)।

(ख) युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय होता है और उससे पहले युवन् के न् का लोप हो जाता है।[1] युवति।

३२६. वन् अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग में ई होता है और वन् के न् को र् हो जाता है।[2] शर्वन्—शर्वरी (बलवान्), पीवन्—पीवरी, शर्वन्–शर्वरी (रात्रि), मुत्वानम् अतिक्रान्ता अतिमुत्वरी, अतिधीवरी, इत्यादि।

अपवाद-नियम—इन स्थानों पर वन् प्रत्ययान्त से ई नहीं होगा—(१) यदि वन् प्रत्यय हल् (कोमल व्यंजन, वर्ग के ३,४,५ वर्ण, ह और अन्तस्थ) अन्तवाली धातु से हुआ हो, (२) या ऐसा शब्द किसी समस्त पद के अन्त में हो।[3] ऐसे स्थानों पर स्त्रीप्रत्यय आ होता है और उससे पहले अन् का लोप हो जाता है। जैसे—अवावन्+आ=अवावा ब्राह्मणी (एक ब्राह्मण स्त्री या चोर स्त्री)। राजयुध्वा।

३२७ अन् अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीलिंग में आ विकल्प से होता है। आ होने पर अन् का लोप होता है।[4] जैसे—सुपर्वन्—सुपर्वन्–सुपर्वा, बहुयज्वन्—बहुयज्वा, इत्यादि। यदि अन् प्रत्ययान्त शब्द ऐसा है, जिसके अ का लोप तृतीया एकवचन आदि में होता है तो उससे विकल्प से ई होगा। जैसे—बहुराजन्—बहुराजा—बहुराज्ञी, इत्यादि।

(क) बहुव्रीहि समास में वन् प्रत्ययान्त के न् को र् विकल्प से होता है।[5] जैसे—बहुधीवन्—बहुधीवा—बहुधीवरी (ऐसा नगर जिसमें धीवरों की संख्या बहुत अधिक हो)।

३२८ ऊधस् अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीलिंग में ई होता है और अन्तिम अस् को न् हो जाता है।[6] पीनम् ऊधः यस्याः सा पीनोध्नी (बड़े थनोंवाली गाय), कुण्डोध्नी (देखो रघुवंश १–८४)। यदि कोई संख्या या कोई अव्यय पहले

---

१. यूनस्तिः (४-१-७७)।
२. वनो र च (४-१-७)।
३. वनो न हश इति वक्तव्यम् (वा०)।
४. अनो बहुव्रीहेः (४-१-१२)। अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् (४-१-२८)।
५. बहुव्रीहौ वा (४-१-७ सूत्र पर वार्तिक)।
६. ऊधसोऽनङ् (५-४-१३१)। बहुव्रीहेरूधसो ङीष् (४-१-२५)।

होगा तो भी ऊधम् से ई और अस् को न् होगा।[1] जैसे—व्यूढ़ोनी, अत्यूध्नी (बड़े थना वाली)। अन्यत्र ऊध अतिक्रान्ता अत्यूधा।

(क) संख्यावाचक शब्द पहले होने पर दामन् और हायन (आयुवाचक शब्द) अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीप्रत्यय ई होता है।[2] द्विदाम्नी, द्विहायनी बाला (दो वर्ष की लड़की), त्रिहायणी, इत्यादि। अन्यत्र द्विहायना शाला (दो साल पुराना मकान)।

सूचना—त्रि और चतुर के बाद हायन के न का ण हो जाता है ई प्रत्यय होने पर। चतुर्हायणी बाला। अन्यत्र त्रिहायना, चतुर्हायना शाला।

३२९ समस्त पद में उत्तरपद प्राणी का अवयववाची अकारान्त शब्द हो और अन्तिम स्वर से पहले कोई संयुक्त व्यंजन न हो तो उससे स्त्रीप्रत्यय आ और ई होते हैं।[3] जैसे—अतिकेशा—अतिकेशी (बहुत बालों वाली स्त्री) सुकेशा—सुकेशी चन्द्रमुखा—चन्द्रमुखी। अन्यत्र सुगुल्फा (सुन्दर टखने वाली स्त्री)। सुस्तनी—सुस्तना (स्त्री प्रतिमा वा)। सुमुखा शाला (सुन्दर द्वार वाला घर)।

(क) इन अवस्थाओं में शरीर के अवयववाची शब्दों में भी स्त्रीप्रत्यय आ ही होता है—(१) क्रोड आदि शब्दों से। ये हैं—क्रोड नख, खुर, उखा, शिखा बाल, शफ गुद भुज, कर इत्यादि। (२) दो से अधिक स्वर वाले शब्द।[4] कल्याणक्रोडा (अश्वानामुर क्रोडा सि० कौ०) पृथुजघना (विशाल कटि वाली), चटुलनयना इत्यादि।

(ख) से सह नञ् (अ) और विद्यमान शब्द पहले हो तो भी स्त्रीप्रत्यय आ ही होगा।[5] सकेशा, अकेशा विद्यमाननासिका, सहनासिका, इत्यादि।

३३० बहुव्रीहि समास में निम्नलिखित शब्दों में से कोई शब्द अन्त में होगा तो स्त्रीप्रत्यय आ और ई दोनों होंगे—नासिका उदर ओष्ठ, जङ्घा,

---

१ संख्याऽव्ययादेर्ङीप् (४-१-२६)।
२ दामहायनान्ताच्च (४-१-२७)। वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्व चेष्यते (वा०)।
३ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् (४-१-५४)।
४ न क्रोडादिबह्वचः (४-१-५६)।
५ सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च (४-१-५७)।

(ग) अन्य स्थानों पर पाद अन्त वाले प्रातिपदिकों से स्त्रीप्रत्यय आ होता है। हस्तिपादा, अजपादा, इत्यादि।

३३४ अकारान्त द्विगु से स्त्रीप्रत्यय ई होता है।[1] त्रिलोकी। यदि अन्त वाला शब्द अजादि-गण में होगा (देखो नियम ३०७ पर पाद-टिप्पणी) तो आ प्रत्यय ही होगा। त्रिफला, त्र्यनीका सेना (जिसमें सेना के तीन छोटे टुकड़े हैं, ऐसी सेना), इत्यादि।

३३५ (क) द्विगु समास के अन्त में काण्ड (एक विशेष परिमाण) शब्द हो और वह क्षेत्र (खेत) का विशेषण हो तो उसमें स्त्रीप्रत्यय आ लगता है, यदि वहां पर तद्धित प्रत्यय हुआ हो और उसका लोप हो गया हो।[2] जैसे—द्वे काण्डे प्रमाणम् अस्या सा द्विकाण्ड + माता = द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः (२० हाथ लम्बा खेत का टुकड़ा)। अन्यत्र द्विकाण्डी रज्जुः (२० हाथ लम्बी रस्सी)।

द्विगु समास के अन्त में कोई परिमाण भिन्न-वाचक शब्द हो या बिस्त (एक तोला), आचित (एक गाड़ी का बोझ) और कम्बल्य (२½ तोले के बराबर का एक बाट) शब्द हों तो आ प्रत्यय ही होता है, तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर।[3] पञ्चभिः अश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा, द्वौ बिस्तौ पचतीति द्विबिस्ता स्थाली। इसी प्रकार द्व्याचिता, द्विकम्बल्या।

(ग) यदि द्विगु समास के अन्त में परिमाणवाचक पुरुष शब्द हो तो उसमें स्त्रीप्रत्यय ई और आ दोनों होते हैं, तद्धित प्रत्यय का लोप होने पर।[4] द्वौ पुरुषौ प्रमाणम् अस्या सा द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा परिखा (दो पुरुष के बराबर अर्थात् १२ फीट गहरी खाई)।

३३६ लट् और लृट् के स्थान पर परस्मैपद में होने वाले शतृ (अत्) प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीप्रत्यय ई होता है और त् से पहले न् लग जाता है। जैसा कि नपुंसकलिंग शब्दों के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में होता है (देखो नियम ११६)। इसी प्रकार हलन्त विशेषण शब्दों में भी ई लगता है। पचन्ती, यान्ती यान्ती, शासती, ददती, दीव्यन्ती, महती, इत्यादि।

---

१. द्विगोः (४-१-२१)।
२. काण्डान्तात् क्षेत्रे (४-१-२३)।
३. अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि (४-
४. पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम् (४-१-२४)।

अध्याय ९

तद्धित प्रत्यय (Secondary affixes)

३३७. शब्दरूप बनाने के लिए संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं—(१) कृत् (Primary affixes), (२) तद्धित (Secondary affixes)। कृत् प्रत्यय वे हैं, जो धातुओं से होते हैं और इनसे बने हुए शब्दों को कृदन्त शब्द (Primary Nominal) कहते हैं। इसी प्रकार तद्धित प्रत्यय वे हैं जो प्रातिपदिकों (शुद्ध या कृदन्त) से होते हैं और इनसे बने हुए शब्दों को तद्धित-प्रत्ययान्त शब्द (Secondary Nominal Bases) कहते हैं। (देखो नियम १७९)।

३३८. इस अध्याय में मुख्यतया तद्धित प्रत्ययों के योग से बने हुए तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों का विवरण दिया जाएगा। कृत् प्रत्ययों के योग से बने हुए कृदन्त शब्दों का विवरण आगे दूसरे अध्याय में दिया जाएगा।

३३९. तद्धित प्रत्यय विभिन्न अर्थों में होते हैं। इन प्रत्ययों के होने पर शब्दों में कुछ परिवर्तन भी होते हैं। इस विषय में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(क) *साधारणतया अ, य, इक, ईन, एय, त्य आदि प्रत्ययों के होने पर शब्द* के प्रथम स्वर को वृद्धि हो जाती है। जैसे—अश्वपति + अ = आश्वपति + अ।

(ख) अजादि या य प्रत्यय बाद में होने पर ये कार्य होते हैं—(१) शब्द के अन्तिम अ, आ, इ और ई का लोप हो जाता है। (२) उ और ऊ के स्थान पर ओ गुण हो जाता है। (३) ओ और औ में सामान्य सन्धि-नियम लगते हैं। आश्वपति + अ = आश्वपत (अश्वपति की वस्तु, पु०, नपु०), इत्यादि। मनु + अ = मानव (मनु का वंशज)। गो + यम् = गव्यम् (गाय से प्राप्त होने वाली वस्तु)। इसी प्रकार नाव्यम्, (नौ शब्द से), इत्यादि।

(ग) समस्त शब्दों से तद्धित प्रत्यय करने पर कभी उत्तरपद के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है और कभी दोनों पदों के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। पूर्व-वार्षिक (पिछले वर्ष का)। इसी प्रकार सुपाचालक, इत्यादि। सुहृद् का सौहार्द, सुभग का सौभाग्य, इत्यादि। देवतावाचक शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर यदि उससे कोई तद्धित प्रत्यय होता है तो दोनों पदों के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है। आग्निमारुत कर्म (अग्नि और मरुत् देवताओं के निमित्त किया गया यज्ञ)।

(घ) यदि किसी शब्द के प्रथम स्वर से पहले उपसर्ग का य् या व् होगा तो उसे क्रमशः इय् या उव् हो जाएगा और तत्पश्चात् प्रथम स्वर को वृद्धि होगी। जैसे—व्याकरण + अ = वियाकरण + अ = वैयाकरण स्वश्व + अ = सुवश्व + अ = सौवश्व। इसी प्रकार स्वस्ति से सौवस्तिक, स्वर से सौवर, इत्यादि।

(ङ) हलादि तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर अन्तिम न का साधारणतया लोप हो जाता है। अजादि तद्धित प्रत्यय और य प्रत्यय बाद में होने पर अन्तिम न् और उससे पूर्ववर्ती स्वर का भी लोप हो जाता है। युवन्—युवकम्, राजन्—राजकम्, इत्यादि। आत्मन्—आत्म्य—आत्मीय। इस नियम के उत्तरार्ध के कई अपवाद भी है। जैसे—राजन् से राजन्य, इत्यादि।

सूचना—अन्य परिवर्तनों को छात्र उदाहरणों से स्वयं जान सकते हैं।

३४० अधिक प्रचलित तद्धितप्रत्ययों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

भाग १

विभिन्न तद्धित प्रत्यय

अ—इन अर्थों मे होता है—(१) अपत्य या सन्तान अर्थ में जैसे—उपगो. अपत्य पुमान् औपगव (उपगु का पुत्र)। इसी प्रकार वसुदेव से वासुदेव। पर्वतस्य अपत्य स्त्री पार्वती (पर्वत की पुत्री), इत्यादि। (२) वंशज अर्थ में। जैसे—उत्सस्य गोत्रापत्य पुमान् औत्स (उत्स का वंशज), उसमें गोत्रापत्य स्त्री औत्सी (उत्स की वंशज स्त्री) (देखो नियम ३११, ३१३)। (३) रंग से रंगने अर्थ में। हरिद्रया रक्त हारिद्र वसनम् (हल्दी से रंगा हुआ वस्त्र)। (४) उससे बना है, इस अर्थ में। देवदारोर्विकार दैवदारव (देवदारु

वृक्ष से बना हुआ)। (५) उसका यह है, इत्यादि अर्थों में। देवस्य अयं दैव (देवसम्बन्धी), शर्करायाः इदं शार्करम् (रेत का), ऊर्णाया इदम् और्णं वस्त्रम् (ऊनी वस्त्र), ग्रैष्म (ग्रीष्म ऋतु-सम्बन्धी), नैश (रात्रि-सम्बन्धी), सांवत्सर (वार्षिक), इत्यादि। हेमन्त से अ प्रत्यय होने पर अन्तिम त का लोप हो जाता है। हैमन. (हेमन्त-सम्बंधी) (देखो शिशुपाल० ६-६५, किराता० १७-१२), हैमन्त का अर्थ है हेमन्त ऋतु के उपयुक्त। (६) स्वामी या ईश्वर के अर्थ में। पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः (पृथिवी का स्वामी), पञ्चालानां स्वामी पाञ्चालः (पञ्चालों का राजा), ऐक्ष्वाकः[1] (इक्ष्वाकु वंश का राजा)। (७) समूह अर्थ में। काकानां समूहः काकम्, बकानां समूहः बाकम् (बगुलों का समूह)। इसी प्रकार मयूर से मायूरम् (मोरों का झुण्ड), कपोत से कापोतम् (कबूतरों का झुण्ड)। भिक्षाणां समूहो भैक्षम्, गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्, इत्यादि। (८) जानने वाला या पढ़ने वाला अर्थ में। व्याकरणम् अधीते वेद वा वैयाकरणः (व्याकरण पढ़ने वाला या व्याकरण का विद्वान्), इत्यादि। (९) भाव अर्थ में। मुनेः भावः मौनम् (चुप रहना), युवन्—यौवनम् (जवानी), सुहृद्—सौहार्दम् (मित्रता), पृथोर्भावः पार्थवम् (विशालता, चौड़ाई) इत्यादि।

अक—यह प्रत्यय विभिन्न अर्थों में होता है—(१) उष्ट्रे भवः औष्ट्रक (ऊँट से होने वाला या ऊँट से सबद्ध), ग्रीष्मे भवः ग्रैष्मक (ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाला)। (२) कुलालेन कृतं कौलालकम् (कुम्हार के द्वारा बनाया हुआ), ब्रह्मणा कृतं ब्राह्मकम् (ब्रह्मा के द्वारा बनाया हुआ)। (३) आरण्यक (वनवासी, जंगली)। (४) राज्ञां योग्य राजन्यकम् (राजाओं के निवास के योग्य), मानुष्यकम् (मनुष्यों के निवास के योग्य देश), (५) कुरुषु जातः कौरवक (कौरव भी रूप बनता है)[2] (कुरु देश में उत्पन्न हुआ व्यक्ति), युगन्धरेषु जातः यौगन्धरक (यौगन्धर भी रूप बनता है) (युगन्धर देश में उत्पन्न हुआ व्यक्ति)। (६) पथि जातं पन्थकम् (रास्ते में उत्पन्न हुई वस्तु)। (७) पन्थानं गच्छतीति पथिक (यात्री)। (८) पूर्वाह्णे भवः पूर्वाह्णिक (दोपहर से पहले होने वाला)। इसी प्रकार अपराह्णिक (दोपहर के बाद होने

१. इस प्रकार के शब्दों के रूप के लिए देखो ७४ क, ख।
२ विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् (४-२-१३०)।

वाला)। (९) शत्रुता अर्थ मे—काकोलूकयो वैर काकोलूकिका[1] (कौवे और उल्लुओं की शत्रुता)। इसी प्रकार कुत्सनशिविका, इत्यादि। (१०) समूह अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त शब्दो से, उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र (भेड), राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से। उपगूना समूह औपगवकम् (उपगु के वशजो का समूह), औक्षकम् (बैलो का समूह), राजकम् (राजाओ का समूह), राजन्यकम् (क्षत्रियो का समूह), वात्सकम् (बछडो का समूह), मानुष्यकम्, अजकम्, इत्यादि। (११) इन शब्दो से जाननेवाला अर्थ में अक प्रत्यय होता है—पद, क्रम, शिक्षा, मीमासा। क्रमक (जिसने क्रम से विद्या पढी है, या जिसने वेदो के क्रमपाठ को पढ लिया है) मीमासक (मीमासादर्शन का छात्र), इत्यादि।

आमह—पितृ और मातृ शब्द से पिता अर्थ म होता है। पितु पिता पितामह (बाबा), मातामह (नाना)। (१) मातृ शब्द से भाई अर्थ में उल प्रत्यय होता है। मातुभ्रर्ता मातुल (मामा)। (२) पितृ शब्द से भाई अर्थ में व्य प्रत्यय होता है और भ्रातृ शब्द से पुत्र अर्थ मे। पितु भ्राता पितृव्य (चाचा या ताऊ), भ्रातु पुत्र भ्रातृव्य (भतीजा)।

आयन और आयनि—गोत्रापत्य प्रत्ययान्त शब्दो मे अपत्य (सन्तान) अर्थ में होने है। दाक्षायण—दाक्षायणि (दाक्षि का पुत्र), गार्ग्यायण—गार्ग्यायणि (गार्ग्य का पुत्र, गर्ग का पुत्र गार्ग्य होता है)। कापिशी (एक नगर का नाम) शब्द से उत्पन्न होना अर्थ में आयन प्रत्यय नित्य होना है और द्रोण शब्द से विकल्प से। कापिशायन। द्रौणायन—द्रौणि (द्रोण का पुत्र)।

इ—पुत्र अर्थ मे होता है। दाक्षि (दक्ष का पुत्र), वैयासकि (व्यास का पुत्र), इत्यादि। व्यास, वरुड (एक नीच जाति का नाम), निषाद, चण्डाल और बिम्ब शब्दो के अन्तिम अ के स्थान पर अक् हो जाता है, बाद मे इ प्रत्यय होने पर।

इक (ठक्, ठञ्, ठन्)—विभिन्न अर्थो मे होते है—(१) रेवत्या अपत्य पुमान् रैवतिक[2] (रेवती का पुत्र)। (२) एक मास मे दिया जाने

---

१. देखो नियम ३०७ क। ये शब्द साधारणतया स्त्रीलिंग होते है। इसके कुछ अपवाद भी है। जैसे—दैवासुरम् (देवो और असुरो की शत्रुता), इत्यादि।

२ इस अर्थ में यह प्रत्यय बहुत थोडे से शब्दो से होता है।

वाला, मासिक या मास भर रहने वाला आदि अर्थो मे । मासेन दीयते इति मासिक वेतन पुस्तक वा । इसी प्रकार वार्षिकम् आयु, इत्यादि । (३) एकत्र होना अर्थ मे । सैनिक । (४) पूछना अर्थ मे । सुस्नात पृच्छतीति सौस्नातिक *(एक व्यक्ति दूसरे से पूछता है कि अच्छे प्रकार मे स्नान कर लिया या नही)*। इसी प्रकार सुखशयन पृच्छतीति सौखशयनिक (एक व्यक्ति दूसरे से पूछता है कि वह सुख से सोया या नही) (देखो रघुवश ६-६१, १०-१४) । सौख-सुप्तिक, इत्यादि । (५) किसी हथियार का उपयोग करना अर्थ मे । असिः प्रहरणम् अस्य आसिक (जो तलवार मे प्रहार करता है, तलवार चलाने वाला), धानुष्क (धनुर्धारी) । (६) किसी वस्तु से मिश्रित आदि अर्थ मे । दध्ना सस्कृत दाधिकम् (दही मिला हुआ) । मरीचि (काली मिर्च) से मारीचिकम् । (७) धर्मं चरतीति धार्मिक (पवित्रात्मा, धार्मिक) । इसी प्रकार अधार्मिक । (८) उडुपेन तरतीति औडुपिक (नाविक, मल्लाह), नाविक, इत्यादि । (९) हस्तिना चरतीति हास्तिक (हाथी की सवारी करने वाला) । शकटेन चरतीति शाकटिक *(बैलगाडी मे सवारी करने वाला)* । (१०) दध्ना भक्षयतीति दाधिक (दही मे खाने वाला) । (११) जीविका के साधन अर्थ मे । वेतनेन जीवतीति वैतनिक (वेतन से जीविका चलाने वाला) । इसी प्रकार वाहनिक, औपदेशिक, इत्यादि । (१२) ढोने अर्थ मे । उत्सगेन हरतीति औत्सगिक । (१३) अस्तीति बुद्धि अस्य आस्तिक (ईश्वर मे विश्वास रखने वाला और धर्मग्रन्थों पर आस्था वाला), नास्तिक, इत्यादि । (१४) लाक्षा, रोचना, शकल और कर्दम शब्दो से रँगना अर्थ मे । लाक्षया रक्त लाक्षिकम् (लाख से रँगा हुआ), रौचनिक, शाकलिक (चितकबरा या धब्बे वाला), कार्दमिक । (१५) पढना अर्थ मे वेद, न्याय, वृत्ति, लोकायत और सूत्र अन्त वाले शब्दो मे (कल्पसूत्र आदि को छोडकर) । वेदम् अधीते वैदिक (वेद का विद्यार्थी), नैयायिक *(न्यायशास्त्र का विद्यार्थी)*, वृत्तिम् अधीते वार्तिक (टीका को पढने वाला), इत्यादि । लौकायतिक (नास्तिक, चार्वाक-दर्शन का विद्यार्थी), साग्रहसूत्रिक । अन्यत्र काल्पसूत्र । (१६) हस्तिन्, धेनु, केदार और कवच शब्दो मे सह अमर्थ मे । हास्तिकम् (हाथियो का समूह), धैनुकम् (गायो का समूह), कैदारिकम् (खेतो या क्यारियो का समूह), कावचिकम् (कवचो का समूह) । (१७) अध्यात्मन्, अधिदेव, अधिभूत, इहलोक, परलोक आदि

शब्दों से सबद्ध आदि अर्थ में। आत्मानम् अधिकृत्य भव आध्यात्मिक (परमात्मा-सबन्धी, आत्मिक), आधिदैविक (देवों से सबद्ध), आधिभौतिक (पचभूतों से सबद्ध), ऐहलौकिक (इस लोक-सबन्धी), पारलौकिक (परलोक-सबन्धी), इत्यादि। (१८) क्रय, विक्रय, क्रयविक्रय और वस्न शब्दों से जीविका-निर्वाह अर्थ में। (इस अर्थ में शब्दों की वृद्धि नहीं होती है।) क्रयेण जीवतीति क्रयिक (वस्तुओं की बिक्री से जीविका चलाने वाला, व्यापारी), विक्रयिक, वस्निक (वेतन या मूल्य से जीविका चलाने वाला)। (१९) वाद्यों के वाचक शब्दों से बजाना आदि अर्थों में। मृदगवादन शिल्पम् अस्य मार्दगिक (तबला बजाने वाला)। वीणा से वैणिक। इसी प्रकार वैणविक, माड्डुक या माड्डुकिक, भार्झरिक, इत्यादि। (२०) पर्प आदि[1] शब्दों से 'सहायता से चलना' अर्थ में। पर्पिक (पर्पेण चरति इति, येन पीठेन पगवश्चरन्ति स पर्प, मि० कौ०)। अश्वेन चरति आश्विक, रथिक, इत्यादि। पथा चरति पथिक (यात्री)। अप्राणिवाचक शब्दों से भी यह प्रत्यय हो जाता है। वारिपथिक दारु (जल के वेग से बहाई गई लकडी)। (२१) भस्त्रा आदि[2] शब्दों से ले जाना और ढोना अर्थ मे। भस्त्रया हरतीति भस्त्रिक। विवध और वीवध शब्द से—विवधेन वीवधेन वा हरति—विवधिक, वीवधिक। वैवधिक भी रूप बनता है। (२२) कुसीद और दशैकादशन् शब्दों से सूद पर उधार देना अर्थ मे। कुसीदिक (सूद-खोर), दशैकादशिक (दस रुपए इसलिए उधार देना कि ११ रुपए मिलेंगे। सूद पर रुपया उधार देने वाला)। (२३) आकर्ष शब्द से। आकर्षेण चरति आकर्षिक (आकर्षक)।

इन्—(१) यह पूर्व शब्द से या पूर्व शब्द अन्त वाले शब्दों से तथा श्राद्ध शब्द से 'किया और खाया' अर्थ में प्रयुक्त होता है। कृतपूर्वी कटम्, श्राद्धमनेन भुक्त श्राद्धी (जिसने श्राद्ध खाया है)। (२) यह खल, कुटुम्ब आदि कुछ शब्दों से समूह अर्थ में होता है और इसमें स्त्रीप्रत्यय ई लग जाता है। खलाना समूह खलिनी (खलिहानों का या दुर्जनों का समूह), कुटुम्बिनी (कुटुम्बों का समूह), डाकिनी (भूतिनियों का समूह), शाकिनी, आदि।

इमन् (इमनिच्)—यह निम्नलिखित शब्दों से होता है। इसके लगने से

१ ये हैं—अश्व, अश्वत्थ, रथ, जाल, न्यास और पाद।
२ भस्त्रा, भट, भरण, शीर्षभार, शीर्षेभार, अंसभार, असेभार आदि।

सर्वान्न शब्द से खाने अर्थ में और अनुपद शब्द से बंधे हुए अर्थ में। सर्वान्नीन (सभी
प्रकार का अन्न खाने वाला)। अनुपद बद्धा अनुपदीना (उपानह्) (पूरे पैर से
नाप का जूता)[1]। (८) तिल और माष शब्द से 'उसका खेत है' इस अर्थ में।
जैसे—तैलीनम् (तिलों का खेत), माषीणम्, इत्यादि। सप्तपद शब्द से। सप्ताभि
पदै अवाप्यते साप्तपदीनम् (सात पैर चलने से या सात शब्द बोलने से उत्पन्न हुई
मित्रता)। ह्यियगु शब्द से। ह्य + गोदोह को ह्यियगु हो जाता है। ह्योगोदोहस्य
विकारो हैयंगवीनम् (मक्खन)[2]। (देखो रघु० १-४५, भट्टि० ५-१२)।

ईय (छ, छण्)—यह इन स्थानों पर होता है —(१) इसका घर, इस
अर्थ में। शाला शब्द से शालाया अयं शालीय, माला से मालीय, पाणिनीय
(पाणिनि से सबद्ध)। (२) स्वसृ और पितृस्वसृ शब्द से 'उसका पुत्र' अर्थ में
और भ्रातृ शब्द से सबद्ध अर्थ में। स्वस्रीय (भानजा, बहिन का पुत्र), पैतृ-
स्वस्रीय, भ्रात्रीय (भाई से सबद्ध)। (३) अश्व शब्द से सबद्ध और समूह
अर्थ में। आश्वीयम् (आश्वम् भी होता है) (घोड़े से सबद्ध या घोड़ा का
समूह)। (४) स्व, जन, पर, देव, राजन्, वेणु और वेत्र शब्द से ईय होने पर
बीच में क् और जुड़ जाता है। स्वकीय (अपना), जनकीय (लोगों का), पर-
कीय, राजकीय, वेणुकीय (बाँस का), वेत्रकीय।

एण्य—प्रावृष् से प्रावृषेण्य (वर्षा में उत्पन्न या वर्षा से सबद्ध)।

एय (ढक्, ढकञ्, ढञ्)—यह इन स्थानों पर होता है—(१) स्त्री-
प्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य (सन्तान, पुत्र या पुत्री) अर्थ में। वैनतेय (विनता
का पुत्र, गरुड), भागिनेय (बहिन का पुत्र, भानजा)। कुलटा शब्द से सती
भिक्षुक स्त्री अर्थ में एय से पहले विकल्प से इन् लग जाता है। कौलटेय, कौल-
टिनेय। कुलटा का अर्थ वेश्या या दुश्चरित्र होगा तो एय के स्थान पर एर विकल्प
से लगता है। कौलटेय, कौलटेर (कुलटा स्त्री का पुत्र)। किसी प्रकार से विकार
से युक्त स्त्री होगी तो उसके बाद एय को विकल्प से एर हो जायेगा। काणेय,
काणेर (कानी स्त्री का पुत्र)। दासेय, दासेर (दासी का पुत्र)। (२) दो
अच् वाले इकारान्त शब्दों से, से शब्द इञ् (इ) प्रत्यय से बने हुए न हों होने

1. अनुपदसर्वान्ना० (५-२-९)।
2. हैय ङ्गवीन सज्ञायाम् (५-२-२३) तथा सि० कौ०। तत्तु हैयङ्गवीन यद्
ह्योगोदोहोद्भवं घृतम् (अमर०)।

ता (तल्)—(१) भाववाचक शब्द बनाने के लिए। स्त्रीता, पुंस्ता, ममता, इत्यादि। (२) ग्राम, जन, बन्धु, सहाय और गज शब्दों से समूह अर्थ में। ग्रामता, जनता, बन्धुता, इत्यादि।

तिथ—बहुतिथ (कई गुना, बहुतेरा)।

त्य (त्यक्)—यह दक्षिणा, पश्चात्, पुरस्, अमा, इह, क्व, इतस्, ततस् और त्र प्रत्ययान्त अव्यय-रूपों से निवास और सम्बद्ध अर्थ में होता है। दाक्षिणात्य (दक्षिणी), पाश्चात्य, पौरस्त्य (पूर्वदिशा का निवासी, पुरविया), अमात्य (राजा के साथ रहने वाला, मन्त्री), इहत्य, क्वत्य, इतस्त्य, ततस्त्य, इत्यादि। नि उपसर्ग से भी होता है—नित्य (सदा रहने वाला)।

त्यक (त्यकन्)—उप और अधि से होता है। उपत्यका (पहाड़ की तराई की भूमि), अधित्यका (पठार)।

त्र—यह केवल गो शब्द से होता है। गवा समूहो गोत्रा (स्त्री०, गायों का समूह)।

त्व—भाववाचक शब्द बनाने के लिए। गोत्वम्।

दघ्न, द्वयस और मात्र[1] (दघ्नच्, द्वयसच्, मात्रच्)—ये प्रमाण या नाप अर्थ में होते हैं। जानु प्रमाणम् अस्य—जानुदघ्नम्, जानुद्वयसम्, जानुमात्रम्, उदकम् (घुटने तक पानी), इत्यादि।

न और स्न[2] (नञ्, स्नञ्)—ये स्त्री और पुम् शब्दों से विभिन्न अर्थों में होते हैं। स्त्रैण (स्त्रीत्व, स्त्री-सम्बन्धी, स्त्री के अनुकूल, स्त्री-समूह आदि) पौंस्न (पुंस्त्व, पुरुष-सम्बन्धी, पुरुषोचित, पराक्रम, वीरता आदि)।

पाश—निन्दित या घृणित अर्थ में होता है। भिषक्पाश: (नीच वैद्य), वैयाकरणपाश, इत्यादि। केश शब्द से समूह अर्थ में होता है। केशपाश। (समूह अर्थ में ही केश शब्द से पक्ष और हस्त अन्त में लगते हैं)।

मय (मयट्)[3]—इन अर्थों में होता है—(१) विकार या बना हुआ अर्थ में। मृद विकार मृन्मयम् (मिट्टी का बना हुआ), काष्ठमयम् (काठ का बना हुआ), इत्यादि। (२) आधिक्य या बाहुल्य अर्थ में। घृत प्रचुर यस्मिन् घृतमयो यज्ञ (जिस में घी का अधिकता के साथ उपयोग हुआ है, ऐसा यज्ञ), अन्न-

१. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (५-२-३७)।
२. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् (४-१-८७)।
३. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः (४-३-१४३)।

मय, इत्यादि। यह भक्ष्य वस्तुओं और आच्छादन की वस्तुओं से नहीं होता है। जैसे—मौद्ग सूप।

य (यत्, यत, यञ्, ष्य)—यह विभिन्न अर्थों में होता है—(१) गवा समूहो गव्या (स्त्री०, गायों का समूह), वातानां समूहो वात्या। इसी प्रकार नल्या, रथ्या (रथानां समूह), पाश्या, धूम्या (धूएँ का समूह), तृण्या, नड्या, इत्यादि। (२) सभायां साधु सभ्य (सभ्य या सभासद्)। (३) सतीर्थ्या (एक गुरु के शिष्य), सोदर्य, समानोदर्य (सगा भाई)। (४) भाववाचक शब्द बनाने के लिए। राजन् से राज्यम्, सैनापत्यम्, पौरोहित्यम्, सारथ्यम्, आस्तिक्यम्, इत्यादि। (५) राजन् और मनु शब्दों से वंशज अर्थ में। राजन्य (क्षत्रिय वंश में उत्पन्न), मनोर्जातः मनुष्य (यहाँ पर इस अर्थ में बीच में ष् जुड़ जाता है)। (६) श्वशुर शब्द से पुत्र अर्थ में श्वशुर्य। (७) कुल शब्द से। कुल्य (कुलीन)। (८) वायु, ऋतु, पितृ और उषस् शब्दों से अधिष्ठातृ-देवता आदि अर्थ में। वायुः देवता अस्य वायव्यम् अस्त्रम् (अस्त्र, जिसका अधिष्ठातृ-देवता वायु है), ऋतव्य (ऋतुओं की देवों के तुल्य पूजा करने वाला), पित्र्य (पितरों को दी जाने वाली वस्तु), उषस्य (उषा के लिए उपयुक्त)। (९) दण्ड शब्द और दण्डादि गण में पठित अन्य शब्दों से योग्य होना अर्थ में। दण्ड्य (दण्ड के योग्य), वध्यम् (वध के योग्य), अर्घ्य (पूजा के योग्य), इत्यादि। (१०) आगे जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें य का वही अर्थ समझना चाहिए जो अर्थ आगे दिया गया है। स्तेन से स्तेय (चोरी) उरस्य (छाती से उत्पन्न) (औरस भी रूप बनता है। उरस्+अ)। दन्त्यम् (दाँतों के लिए हितकर)। इस अर्थ में शरीरांगवाची अन्य शब्दों से भी य होता है। जैसे—कण्ठ्यम् (गले के लिए हितकर), इत्यादि। श्वन् शब्द से शुन्यम् (कुत्ते के लिए हितकर), नाभि से नभ्यम् (रथ की नाभि के योग्य), नासिका से नस्यम् (नाक के लिए लाभप्रद), रथ्य (रथ ढोने वाला, घोड़ा), युग्य (जूए में जुड़ा हुआ, बैल), वयस्य (समान आयु या मित्र), तुला से तुल्य (तराजू में तोल कर जो बराबर पाया गया हो, अतएव बराबर या सदृश), न्याय्य (न्यायादनपेतम्, न्यायोचित), पथ्यम् (पथि साधु, लाभकारी), हृद्यम् (हृदि स्पृश्यते मनोज्ञत्वात्, मनोहर), धन्य (धन लब्धा, धन को प्राप्त करने वाला), धर्म्य (धर्मादनपेत, लब्धा वा, धर्मयुक्त या धर्म से प्राप्त), जन्यम् (लोगों का कथन),

कमल उगते है, अत तालाब या सरोवर) । इसी प्रकार कुमुदिनी, पद्मिनी, इत्यादि । अर्थ शब्द मे तथा अर्थ-अन्त वाले शब्दो से भी इन् प्रत्यय होता है। अर्थिन् (इच्छुक या धन का इच्छुक), धान्यार्थिन्, इत्यादि । वर्ण शब्द से भी इन् प्रत्यय होता है । वर्णिन् (ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ) ।

इन—फल, बर्ह और मल शब्दो से इन प्रत्यय होता है । फलिन (फल-युक्त या फल देने वाला), बर्हिण (मोर), मलिन (मैला) ।

इल—तुन्द, उदर, पिचण्ड, यव, व्रीहि और प्रज्ञा शब्दो से विकल्प से इल प्रत्यय होता है । पिच्छ, उरस्, ध्रुवक, वर्ण, उदक और पक शब्दों से इल नित्य होता है तथा सिकता, शर्करा और फेन शब्दो से विकल्प से । तुन्दिल (तोद वाला), उदरिल, पिचण्डिल (इनका भी बडे पेट वाला अर्थ है) । प्रज्ञिल (बुद्धिमान्), पिच्छिल (रपटन वाला मार्ग आदि), उरसिल (बडी छाती वाला), पकिल (कीचड वाला), सिकतिल (रेतीला), शर्करिल, फेनिल, इत्यादि ।

उर—दन्तुर (बडे बडे या आगे निकले हुए दाँतो वाला), इत्यादि ।

ऊल—बल और वात शब्दो से 'न सह सकने वाला' अर्थ में ऊल प्रत्यय होता है । बलूल (शत्रु-सेना को न सह सकने वाला, दूसरे की शक्ति का सामना न कर सकने वाला), वातूल (हवा को सहन न कर सकने वाला) । वात शब्द से समूह अर्थ म भी ऊल होता है । वातूल (वायु का समूह, बवूला) ।

ग्मिन्—वाच् शब्द से योग्य वक्ता अर्थ मे ग्मिन् प्रत्यय होता है । वाच् शब्द से आट और आल बहुत बोलने वाला अर्थ मे होते है । वाग्मिन् (सुन्दर वक्ता)।

मत् (ड्मतुप्)—कुमुद, नड और वेतस् शब्दो से मत् प्रत्यय होता है । इनका अन्तिम अ हट जाता है । कुमुद्वत् (जहाँ कुमुद अधिक होते है), नड्वत् (जहाँ नड या सरकडा बहुत होता है), वेतस्वत् (जहाँ पर बेंत अधिकता म होते है) ।

मत् (मतुप्)—युक्त अर्थ म यह प्रत्यय सामान्यतया होता है ।[1] जैसे—गाव अस्य अस्मिन् वा सन्तीति गोमान् (गायो वाला या गायो से युक्त), इत्यादि । यह प्रत्यय रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, शब्द और स्व शब्दो से विशेष रूप से होता है । रसवान्, रूपवान, इत्यादि । स्ववान् ।

३४२ (क) इन स्थानो पर मत् के म को व हो जाता है—म् अन्त वाले

१. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (५-२-९४) । रसादिभ्यश्च (५-२-९५) ।

शब्दों के बाद, शब्द के अन्त में अ या आ हो तो, उपधा में म्, अ या आ हो तो।[१] किम् से किंवत्, विद्यावत्, लक्ष्मीवत्, यशस्वत्, भास्वत्, इत्यादि। राजन् + वत् = राजन्वत्, जैसे—राजन्वान् देश (सुयोग्य राजा वाला देश, देखो रघुवंश ६-२२), राजवान् देश (राजा से युक्त देश) ।[२] उदक + वत्—उदन्वत् (पु० समुद्र), उदकवत् या उदकवान् घट (जल से युक्त घड़ा) ।

अपवाद नियम—निम्नलिखित शब्दों के बाद मत् के म को व नहीं होता है—यव, दल्मि, ऊर्मि, भूमि, कृमि, कुञ्चा, वशा, द्राक्षा, ध्रजि, ध्रजि, ध्वजि, निजि, हरित, ककुद्, मरुत्, गरुत्, इक्षु, द्रु और मधु। जैसे—यवमान्, ऊर्मिमान्, इत्यादि ।

(ख) झय् (वर्गों के १ से ४ वर्ण) अन्त वाले शब्दों के बाद मत् के म को व हो जाता है।[३] विद्युत्वान्, तडित्वान (पु०, बिजली से युक्त अर्थात् बादल), इत्यादि। पद का अन्तिम अक्षर न होने से विद्युत् आदि के त् को द् नहीं हुआ है।

(ग) यदि मत् प्रत्ययान्त शब्द संज्ञावाचक होगा तो म को व हो जाएगा।[४] अहीवती, मुनीवती, इत्यादि ।

३४३. गुणवाचक शब्दों के बाद मत् का लोप हो जायेगा।[५] जैसे—शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्ल: पट: (श्वेत वस्त्र, शुक्ल गुण से युक्त वस्त्र)। इसी प्रकार कृष्ण, इत्यादि ।

य (यप्)—रूप शब्द से 'सुन्दर या मुद्रित धातु' अर्थ में य होता है। रूप्य। हिम्य (हिमयुक्त, शीतल), गुण्य (गुणयुक्त) ।

युस्—ऊर्णा, शुभम, अहम् और शम् शब्दों से यु होता है। ऊर्णायु (ऊनी), शुभंयु (भाग्यवान्), अहंयु (अभिमानी), शंयु (सुखी) ।

र—इन शब्दों से र प्रत्यय होता है—पाण्डु, मधु, सुषि, ऊष, नग, मुष्क, पांसु, ख, मुख और कुञ्ज (कुञ्जो हस्तिहनु)। पाण्डुर (पीला, पीलेपन से युक्त), मधुर (मीठा), इत्यादि ।

ल (लच्)—अंसल (उत्तम कन्धे से युक्त, अर्थात् पुष्ट व्यक्ति), वत्सल

---

१. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य: (८-२-९) ।
२. राजन्वान् सौराज्ये (८-२-१४) । राजवान् अन्यत्र (सि० कौ०) ।
३. झय: (८-२-१०) ।   ४. संज्ञायाम् (८-२-११) ।
५. गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्ट: (वार्तिक) ।

शब्द से, जब इसका अर्थ होगा कि जिसको दुःख नहीं देना चाहिए उसे दुःख देना है। दुःखाकरोति स्वामिनम्। (२) सुख और प्रिय शब्द से, प्रसन्न करने योग्य व्यक्ति को प्रसन्न करने अर्थ में। सुखाकरोति, प्रियाकरोति गुरुम् (अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः, सि० कौ०)। (३) शूल शब्द से पकाने अर्थ में। शूलाकरोति मांसम् (मांस को कील में लगाकर भूनता है)। (४) सत्य शब्द से। सत्याकरोति भाण्डं वणिक् (बनिया बर्तन का मूल्य तय करता है)। (५) अनेक अच् वाले तथा द्विरुक्त अनुकरणात्मक शब्दों से, यदि बाद में इति शब्द न होता। पटत्—पटपटाकरोति (पट-पट करता है या पटत् पटत् शब्द कहता है)।

सात्—यह शब्द से च्वि के तुल्य विकल्प से लगता है, यदि वस्तु में पूर्णतया परिवर्तन हो जाता है तो।[1] कृत्स्नं शस्त्रम् अग्निः सम्पद्यते—अग्निसाद्भवति (सभी शस्त्र सर्वथा अग्निरूप हो गए हैं)। इसका अग्नीभवति भी रूप बनता है। भस्मसात् करोति (सर्वथा भस्मरूप करता है)। इस प्रत्यय के साथ सम्+पद् धातु का भी प्रयोग होता है। अग्निसात् सम्पद्यते अग्निसाद्भवति शस्त्रम्, जलसात् सम्पद्यते जलीभवति लवणम्। किसी के अधीन कुछ वस्तु करने अर्थ में भी सात् प्रत्यय होता है। राजसात् करोति, राजसात् सम्पद्यते। किसी को कुछ देना या उसके अधीन करने अर्थ में भी सात् और त्रा प्रत्यय होते हैं। *विप्रत्राकरोति, विप्रत्रा सम्पद्यते, विप्रसात्करोति, इत्यादि।*

सूचना—सात् प्रत्ययान्त रूप उपसर्ग या गतिसंज्ञक नहीं होते हैं, अतः इनके बाद कृत्वा को ल्यप् नहीं होता है। जैसे—अग्निसात् करोति का अग्निसात् कृत्वा रूप होगा, अग्निसात् कृत्य नहीं।

अध्याय १०

लिग-विचार

३४४ सस्कृत मे शब्दो के लिंग निर्णय के लिए कोई निश्चित नियम निर्धारित नही किए जा सकते है। लिंग निर्णय के लिए कोष-ग्रन्थो या प्रयोगो का आश्रय लेना चाहिए। तथापि निम्नलिखित कतिपय नियम छात्रो के लिए लिंग-निर्णय मे विशेष उपयोगी सिद्ध होगे।

(क) पुलिग शब्द

३४५ ये शब्द पुलिंग होते है—अ और न प्रत्यय से बने हुए कृदन्त शब्द तथा दा और धा धातु से कृत् प्रत्यय इ करके बने हुए शब्द। जैसे—पाक, त्याग, कर, गर (पेय वस्तु, विष), गोचर (ग्रहण का विषय), यज्ञ, विघ्न, आधि (मानसिक दुःख या पीड़ा), निधि (खजाना), इत्यादि।

अपवाद शब्द—याञ्चा (स्त्री०), भय, लिंग और भग (तीनो नपु०)।

३४६ उकारान्त शब्द तथा क्, ट्, ण्, थ्, न्, भ्, म्, य्, र् और स् उपधा वाले शब्द। जैसे—प्रभु, भानु, इक्षु, स्तबक (गुच्छा), इत्यादि। घट, पाषाण, शोथ (सूजन), फेन, दीप, स्तम्भ, सोम, समय, क्षुर (उस्तरा), अकुर, वृष, वायस, इत्यादि।

अपवाद शब्द—(क) उकारान्त शब्द—धेनु, रज्जु (यह समासान्त शब्द होने पर पु० और स्त्री० दोनो होता है), कुहू-कुहू (अमावास्या), सरयु (सरयू नदी), तनु, करेणु, प्रियगु (एक लता का नाम), ये सभी शब्द स्त्री० हैं। श्मश्रु, जानु, वसु (धन), अश्रु, जतु (लाख), त्रपु (रांगा), तालु, दारु, मधु (शहद), स्वादु (स्वादिष्ट), वस्तु, मस्तु (खट्टी दही), ये सभी शब्द नपु० है।

(ख) क अन्त वाले शब्द—चिबुक (ठोडी), शल्क, प्रातिपदिक, अशुक (वस्त्र), उल्मुक (मशाल) ये सब नपु० हैं।

(ग) ट और ण अन्त वाले शब्द—किरीट, मुकुट, ललाट, शृगाट (चौराहा), ऋण, लवण, पर्ण, उष्ण। ये सब नपु० है।

(घ) थ और न अन्त वाले शब्द—काष्ठ, पृष्ठ, रिक्थ (धन), उक्थ

(सामवेद का सूक्त, एक यज्ञ), जघन, अजिन (मृगचर्म), तुहिन (बर्फ), कानन, विपिन, वन, वृजिन (पाप), वेतन, शासन, सोपान (सीढ़ी), मिथुन, श्मशान, रत्न, चिह्न । ये सब नपु० हैं ।

(ङ) प, भ और म अन्त वाले शब्द—पाप, रूप, शिल्प, पुष्प, शष्प (कोमल घास), अन्तरीप (द्वीप), कुसुम, रुक्म (सुवर्ण, लोहा), सिध्म (कुष्ठ का चिह्न), युध्म (युद्ध), इध्म, गुल्म (प्राय पु० है), अध्यात्म (आध्यात्मिक ज्ञान) । ये सब नपु० हैं ।

(च) य और र अन्त वाले शब्द—हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय (चादर, ओढनी) द्वार, अग्र, तक्र, वक्र, वप्र (जस्त), छिद्र, नीर, कृच्छ्र, रन्ध्र, श्वभ्र, अस्र, तिमिर, चिचिर, केयूर, उदर, शरीर, कन्दर (खोह), पंजर (पिंजडा), जठर, अजिर (आँगन), वैर, चत्वर, पुष्कर, गह्वर, कुहर (गुफा), कुटीर (कुटिया, पु० भी है), कुलीर (केकड़ा), काश्मीर (काश्मीर), अम्बर, शिशिर, तन्त्र (करघा, तन्त्र आदि), यन्त्र, क्षत्र, क्षेत्र, मित्र, कलत्र, चित्र, मूत्र, नेत्र, गोत्र (परिवार), अगुलित्र (दस्ताना), शस्त्र, शास्त्र, वस्त्र, पत्र, पात्र, छत्र । ये सब नपु० हैं ।

(छ) ष और स अन्त वाले शब्द—ऋजीष (तवा), अम्बरीष (भाड), पीयूष, पुरीष, किल्बिष (पाप), कल्मष (पाप, धब्बा, यह पु० भी है), बिस, बुस (भुस), साहस । ये सभी नपु० हैं ।

३४७ ये शब्द पुलिंग हैं—देव, दैत्य, मनुष्य, पर्वत, समुद्र, स्वर्ग, मेघ, किरण, दिवस, असि, शर, यज्ञ, आत्मा, नख (नपु० भी है), केश, दन्त, कण्ठ, कर, स्तन, भुज, गुल्फ तथा इन शब्दों के पर्यायवाची शब्द और तोलवाची शब्द जैसे कुडव आदि ।

अपवाद शब्द—द्यो (स्त्री०), दिव् (स्त्री०), तारा (स्त्री०), मानिका (स्त्री०, एक तोल), त्रिविष्टप (नपु०), दिन (नपु०), अहन (नपु०) और अभ्र (नपु०) ।

३४८ ये शब्द पुल्लिंग बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं—दारा (स्त्री०, पत्नी), अक्षता (अक्षत चावल), लाजा (खील), असव (प्राण) और गृहा (घर) ।

३४९ ये शब्द पुलिंग हैं— नाडीव्रण (नसों का घाव, नासूर), अपांग

(नेत्रों के छोर), जनपद, मरुत्, गरुत् (पंख), ऋत्विज्, ऋषि, राशि, ग्रन्थि, ऊर्मि, ध्वान, बलि, मौलि, रवि, कपि, मुनि, ध्वज, गज, मुञ्ज (मूँज, इसकी ही ब्राह्मण की मेखला बनती थी), पुञ्ज, हस्त, कुन्त (भाला), अन्त, व्रात (समूह), वात, दूत, धूर्त, मूत, चूत (आम का वृक्ष), मुहूर्त, षण्ड (सांड), करण्ड, मुण्ड (राक्षस का नाम), पाखण्ड (पाखण्डी), शिखण्ड (बच्चों के बाल, मोर की पूँछ), वंश, अंश, पुरोडाश (यज्ञ के लिए उपयुक्त एक प्रकार का द्रव्य), ह्रद, कन्द, कुन्द (विष्णु का नाम, एक फूल, यह फूल अर्थ में नपु० भी है), विशेष, बुद्बुद, शब्द, अर्घ, पथिन्, मथिन् (मथनी), ऋभुक्षिन् (इन्द्र का नाम), स्तम्ब, नितम्ब, पूग (समूह, सुपारी का वृक्ष), पल्लव, कफ, रेफ, कटाह (कड़ाह आदि), मठ, मणि, तरङ्ग, तुरङ्ग, गन्ध, स्कन्ध, मृदङ्ग, सङ्ग, पुंख (बाण का डंडा जिसमें पंख लगाये जाते हैं), अतिथि कुक्षि और अंजलि ।

(ख) स्त्रीलिंग शब्द

३५० निम्नलिखित प्रत्ययों से बने हुए कृदन्त शब्द—अनि, मि, नि, ति, ई और ऊ । जैसे-अवनि, भूमि, ग्लानि, गति, लक्ष्मी चमू, इत्यादि ।

अपवाद शब्द—वह्नि, अग्नि और घृणि, ये पुंलिंग हैं ।

३५१ (क) २० से लेकर ९९ तक संख्यावाचक शब्द, ई अन्त वाले एकाक्षर शब्द और ता प्रत्ययान्त शब्द । विंशति, श्री, तनुता, इत्यादि ।

(ख) भूमि, सरित्, लता और वनिता शब्द तथा इनके पर्यायवाची शब्द ।

अपवाद शब्द—नदीवाचक स्रोतस् और यादस् दोनों नपु० हैं ।

३५२ निम्नलिखित शब्द स्त्रीलिंग हैं—भास्, स्रुच् (स्रुवा), स्रज्, दिक्, उष्णिह् (एक वैदिक छन्द), उपानह्, प्रावृष्, विप्रुष् (बूंद), रुष्, विष्, त्विष्, तृष्, नाडि, रुचि, वीचि, नालि, किकि (एक पक्षी), केलि, छवि, रात्रि, शष्कुलि (पूड़ी, कान का छेद), राजि, कुटि (कुटिया), वर्ति, भ्रुकुटि, त्रुटि (क्षण), वलि, पंक्ति, दर्वि-दर्वी, वेदि वेदी, खनि खनी (रत्नों आदि की खान), शानि—शानी, अश्रि—अश्री (तलवार की धार), कृषि—कृषी, ओषधि—धी, कटि—टी, अंगुलि—ली, प्रतिपत्, आपद्, विपद्, सम्पद्, शरद्, संसद्, परिषद्, उपस्, संविद् (ज्ञान, चेतना), क्षुध्, समिध्, आशिष्, धुर्, पुर्, गिर्, द्वार्, त्वच्, यवागू (जौ की लपसी), नौ, स्फिच् (नितम्ब), चुल्लि, खारी, तार, धारा, ज्योत्स्ना, शलाका और काष्ठा (सीमा, दिशा) ।

३५३ अप्, सुमनस् (फल अर्थ मे), समा (वर्ष), सिकता, वर्षा और अप्सरस्, ये स्त्रीलिंग बहुवचन मे ही प्रयुक्त होते है ।[1]

(ग) नपुसकलिंग शब्द

३५४ निम्नलिखित शब्द नपुसकलिंग होते हैं—अन और त अन्त वाले कृत्प्रत्ययान्त शब्द तथा त्व, य, एय, अक और ईय अन्त वाले तद्धित प्रत्ययान्त शब्द । गमनम्, हसनम्, गीतम्, शुक्लत्वम्, धावल्यम्, स्तेयम् (स्तेनस्य भाव), सख्यम्, कापेयम् (कपेर्भाव, बन्दरपना), आधिपत्यम्, औष्ट्रम् (उष्ट्रस्य भाव), द्वैहायनम् (दो वर्ष का समय), पैतापुत्रकम्, इत्यादि ।

३५५ ये नपु० होते है—इस् और उस् अन्त वाले शब्द, दो स्वरो वाले मन् और अस् अन्त वाले शब्द, त्र अन्त वाले और ल् उपधा वाले शब्द । सर्पिस् (घी), ज्योतिष्, धनुष्, चर्मन्, वर्मन् (कवच), यशस्, मनस्, पत्र, छत्र, इत्यादि । कुल, कूल, स्थल इत्यादि् ।

अपवाद शब्द—(क) छदिस् (स्त्री०, रथ या मकान की छत) और सीमन् (स्त्री०, सीमा) ।

(ख) भृत्र, अमित्र (न मित्रम्), छात्र (विद्यार्थी), पुत्र, मन्त्र, वृत्र (एक राक्षस का नाम), मेढ्र और उष्ट्र, ये सभी पुलिंग है । यात्रा, मात्रा, भस्त्रा (धोकनी), दष्ट्रा, वरत्रा (चमडे का फीता, चाबुक), ये सभी स्त्रीलिंग हैं ।

(ग) तूल, उपल, ताल, कुसूल (कूडा या अनाज का गोदाम), तरल (हार के मध्य की मणि), कम्बल, देवल (पुजारी ब्राह्मण) और वृषल, ये सभी पुलिंग हैं ।

३५६ फलवाचक शब्द तथा शत से आगे के सभी सख्यावाचक शब्द नपु० हैं, इन शब्दो को छोडकर—शकु (पु०), लक्ष (यह स्त्रीलिंग भी है) और कोटि (स्त्री०), आम्रम्, आमलकम्, इत्यादि । शतम्, सहस्रम्, इत्यादि ।

३५७ ये शब्द नपु० हैं—मुख, नयन, लोह, वन, मास, रुधिर, कार्मुक (धनुष), विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व (ताँबा), पत्तन, रण और इनके पर्यायवाची शब्द ।

अपवाद शब्द—सीर (हल), अर्थ (धन), ओदन (भात), आहव (युद्ध), सग्राम

---

१. अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणा बहुत्व च । इस पर सि० कौ० का वक्तव्य है—बहुत्व प्रायिकम् । एका च सिकता तैलदाने असमर्थेति अर्थवत्सूत्रे भाष्य-प्रयोगात् । समा समा विजायते इत्यत्र समायां समायामिति भाष्यात्च ।

(युद्ध), ये सभी पुलिंग है। आजि (युद्ध) और अटवी (जंगल), ये दोनों स्त्रीलिंग हैं।

३५८. ये शब्द नपुं० हैं—वियत्, जगत्, पृषत् (जल की बूँद, यह साधारणतया बहुवचन में ही आता है), शकृत्, यकृत् (जिगर), उदश्वित् (छाछ या मट्ठा), नवनीत, अनृत, अमृत, निमित्त, वित्त, चित्त, पित्त, व्रत, रजत (चाँदी), वृत्त, पलित (वृद्धावस्था के कारण बालों की सफेदी), श्राद्ध, पीठ, कुण्ड, अङ्क, अग, दधि, सक्थि(जाँघ), अक्षि, आस्य, आस्पद, कण्व(पाप), बीज, धान्य, आज्य, सस्य, रूप्य (चाँदी, चाँदी का सिक्का), कुप्य (घटिया धातु, उपधातु), पण्य, धिष्ण्य (स्थान), हव्य (देवों को दी जाने वाली आहुति), कव्य (पितरों को दिया जाने वाला अन्न), काव्य, सत्य, अपत्य, मूल्य, शिल्प, शिक्य (सीका, सिकहर, बहँगी), कुड्य (दीवार), मद्य, हर्म्य, तूर्य, सैन्य, द्वन्द्व, दुःख, बडिश (बंसी, मछली फँसाने का तार), पिच्छ, कुटुम्ब, वर, शर (जल), अक्ष (इन्द्रिय)।

(घ) पुंलिंग और स्त्रीलिंग शब्द

३५९. ये शब्द पुं० और स्त्री० दोनों हैं—गो, मणि, यष्टि, मुष्टि, पाटलि (तुरही बजाने वाला), वस्ति (मूत्राशय), शाल्मलि, त्रुटि, मसि (स्याही), मरीचि, मृत्यु, सीधु, कर्कन्धु, किष्कु (एक हाथ की लम्बाई वाली नाप), कण्डु, रेणु, रज्जु (समास का अन्तिम पद हो तो), दुन्दुभि, नाभि, इषुधि, इषु, बाहु, अशनि, अरणि, भरणि, दृति (चमडा, चमडे की रस्सी), श्रोणि, योनि और ऊर्मि।

(ङ) पुंलिंग और नपुंसकलिंग शब्द

३६०. ये शब्द पुंलिंग और नपुं० दोनों हैं—घृत, भूत, मुस्त (मोथा, इसका मुस्ता भी रूप होता है), क्ष्वेलित (खेल, हँसी), ऐरावत, पुस्त (लकडी या मिट्टी का खिलौना), बुस्त (भुना हुआ मांस), लोहित (खून), शृंग, अर्घ, निदाघ, उद्यम, शल्य, दृढ, व्रज (गोकुल का नाम, बाडा), कुञ्ज, कुथ, कूर्च (दाढी, मोर का पंख), कवच, दर्प, अर्म (आँख की एक बीमारी), अर्घ, दर्भ, पुच्छ, कबन्ध, औषध, आयुध, अन्त, दण्ड, मण्ड (माड), खण्ड, शव, सैन्धव, पार्श्व, आकाश, कुश, काश, अंकुश, कुलिश, गृह, मेह, बर्ह (मोर का पंख), देह, पट्ट, पटह, अष्टापद (सुवर्ण), अम्बुद, दैव, ककुद, मद्गु (एक जल पक्षी), मधु, सीधु, शीधु, सानु, कमण्डलु, सक्तु (सत्तू, इसका बहु० में ही प्रयोग होता है), शालूक (पद्मकन्द, भसीडा), कण्टक, अनीक, सरक, मोदक (शराब, शराब पीना, देखो शिशुपाल० १५-८०), मोदक, चषक (प्याला), मस्तक, पुस्तक, तटाक, निष्क, शुष्क, वर्चस्क

(तेज), पिनाक (धनुष, शिव का धनुष), भाण्डक, पिण्डक, (गोला, गूगल आदि), पुलाक (पुलाव, भात का ढेर), वट, लोष्ठ, पुट, कूट, कपाट, कर्पट, कपट (कपडा), नट (एक वृक्ष), कीट, कट, रण, तोरण, कार्षापण (एक सिक्का), स्वर्ण, सुवर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण, तृण, तीर्थ (नपु० मे अर्थ है—तीर्थस्थान, घाट आदि, पु० मे अर्थ है—पूज्य व्यक्ति, यह सामान्यतया शब्द के अन्त मे लगता है, जैसे—भारततीर्थ आदि), प्रोथ (घोडे की नाक या नाक के छेद), यूथ, गाथ, मान, यान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, आलान (हाथी बाँधने का खम्भा या हाथी बाँधने की लोहे की जजीर), समान (पु० मित्र, नपु० एक स्थान से उच्चरित होने वाला वर्ण), भवन, वसन, सभावन, विभावन, वितान (चँदोवा, शामियाना), विमान, शूर्प (सूप), कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त । यह साधारणतया पु० होता है । एक बाजा), कुणप (शव), द्वीप, विटप, उडुप (छोटी नौका या चन्द्रमा), तल्प (शय्या), जृम्भ (जँभाई), बिम्ब, सग्राम, दाडिम (पु० अनार का पेड़, नपु० अनार फल), कुसुम, आश्रम, क्षेम, क्षौम, होम, उद्दाम (पु० वरुण), गोमय, कषाय (कसैला), मलय, अन्वय, अव्यय, किसलय, चक्र, वज्र, वप्र, सार, वार (नपु० सुरा-पात्र, जल-समूह), पार, क्षीर, तोमर (भाला, बर्छी), भृंगार (सुराही), मन्दार, उशीर (खसखस), तिमिर (अन्धकार), शिशिर, कन्दर, यूप, करीष (गोबर के उपले), मिष, विष, वर्ष, चमस (यज्ञिय सोमपान के उपयुक्त एक पात्र), अस, रस, निर्यास (पेड़ से निकलने वाला रस या गोद), उपवास, कार्पास (सूती वस्त्रादि), वास, भास, कास, कस (गिलास), मास, द्रोण (नपु० एक लकडी का पात्र या प्याला), आढक, बाण, काण्ड, वक्त्र, अरण्य, गाण्डीव (अर्जुन का धनुष), शील (पु० एक बडा साँप), *मूल, मगल, साल, कमल (पु० सारस पक्षी, ब्रह्मा का नाम), तल, मुसल, कुण्डल,* पलल (पु० एक राक्षस, नपु० मास), मृणाल, वाल, निगाल (घोडे की गर्दन), पलाल (पुराल, भूसी), बिडाल (विलाव), खिल (बिना जुती या ऊसर भूमि), शूल, पद्म, उत्पल (पु० एक वृक्ष), शत, अयुत, प्रयुत, पत्र (तलवार की धार, चाकू), पात्र, पवित्र, सूत्र और छत्र (पु० कुकुरमुत्ता, नपु० छाता) ।

(च) स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग शब्द

३६१. स्थूण—*स्थूणा* (मकान का खभा), अर्चिस् (प्रकाश) और लक्षम्—*लक्षा* (लाख) (कुछ के मतानुसार पु० भी है) ।

अध्याय ११

अव्यय (Indeclinables)

३६२. अव्यय वे है, जो सदा एकरूप रहते हैं। इनमे किसी भी लिंग, वचन और विभक्ति मे कोई परिवर्तन नही होता है।[1] अव्ययो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—साधारण और समस्त पद। समस्त पदो वाले अव्ययो का वर्णन समास वाले अध्याय मे अव्ययीभाव समास मे तथा कुछ का बहुव्रीहि और तत्पुरुष समास मे किया गया है।

३६३ अव्ययो मे इनका समावेश है—(१) उपसर्ग (Prepositions), (२) क्रियाविशेषण (Adverbs), (३) निपात (Particles), (४) संयोजक (Conjunctions), और (५) विस्मयसूचक (Interjections)।

३६४ इनके अतिरिक्त संस्कृत मे कुछ ऐसे संज्ञा-शब्द हैं, जिनका केवल एक रूप ही बनता है और उन्हे निपात (अव्यय) माना जाता है। जैसे—अन्यत् (अन्य कारण), अस्तम् (अस्त होना), अस्ति (विद्यमान होना), ओम् (ईश्वरवाचक ओम् शब्द), चनस् (तृप्ति, अन्न), चाटु (खुशामद), नमस् (नमस्कार), नास्ति (विद्यमान न होना), भूर् (पृथिवी), भुवर् (आकाश), वदि (कृष्णपक्ष), शम् (कुशल), शुदि या सुदि (शुक्लपक्ष), सवत् (वर्ष), स्वाहा (देवो के लिए आहुति), स्वधा (पितरो के लिए अन्न), स्वर् (स्वर्ग), स्वस्ति (कल्याण), इत्यादि।

१. उपसर्ग (Prepositions)

३६५ संस्कृत मे उपसर्ग या गति अव्यय शब्द होते हैं। इनके स्वतन्त्र अर्थ होते है। ये धातुओ और धातुज शब्दो से पूर्व लगते हैं। इन उपसर्गों के तीन कार्य है—धातु के अर्थ मे थोड़ा परिवर्तन करना, धातु के अर्थ को ही और पुष्ट

---

१. सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥
स्वरादिनिपातमव्ययम् (१-१-३७)।

करना और कभी-कभी धातु के अर्थ को सर्वथा बदल देना।[1] जैसे—प्र+हृ (प्रहार करना), आ+हृ (लाना, यज्ञ करना), स+हृ (सहार करना, लौटाना), वि+हृ (विहार करना), परि+हृ (परिहार करना), इत्यादि। कभी-कभी इनके लगने पर भी अर्थ मे कोई परिवर्तन नही होता है।

३६६. धातुओ से पूर्व लगने वाले अधिक प्रचलित उपसर्ग ये हैं—

अति—अधिक, बढकर, अतिक्रमण करना। अतिक्रमः (लांघना, बढकर होना), अतिसर्जन (देना, उपहार), आदि।

अधि—ऊपर, अधिक। अधिगम. (ऊपर जाना, प्राप्त करना), अधिकार (शक्ति, उच्चपद), अधिक्षेप (निन्दा), इत्यादि।

अनु—बाद मे, पीछे, साथ इत्यादि। अनुक्रमणम् (पीछे चलना), अनुकृतिः (अनुकरण), अनुग्रह. (कृपा), इत्यादि।

अप—पृथक्, अलग होना। अपनयनम् (हटाना), अप+हृ (लेना, अपहरण करना, पकड लेना) आदि। अपकार (अपकार करना, हानि पहुँचाना) आदि।

अपि—(इसका पि भी कभी शेष रहता है)—समीप, ऊपर, लेना आदि। अपि+नम् (परिणत होना, रूपान्तरित होना)[2], अपिधानम् या पिधानम् (ढक्कन), अप्यय (नाश), इत्यादि।

यह उपसर्ग श्रेण्य सस्कृत मे एक स्वतन्त्र क्रिया-विशेषण के रूप मे अधिक प्रयुक्त होता है और इसका 'भी' अर्थ होता है।

---

१. धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित् तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्टयन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥
(देखो सि० कौ० भी)
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

कुछ विद्वानों का विचार है कि उपसर्गों का स्वयं कोई अर्थ नहीं होता है। वे धातुओ से पूर्व लगने पर अपने गुप्त अर्थों को प्रकट करते हैं। (देखो शिशुपाल० १०-१५)

२. देखो—कारणेन अपिगच्छत् कारणम्०, शारीर भाष्य। आचार्य भागुरि के मतानुसार अपि और अव के अ का विकल्प से लोप हो जाता है। वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः (सि० कौ०)।

अभि—ओर, समीप, आदि। अभि+गम् (समीप आना), अभिजन: (कुलीन), अभिमान (गर्व), अभि+भू (हराना), इत्यादि।

अव—(इसका व भी कभी शेष रहता है, देखो पाद टिप्पणी)—दूर, नीचे, इत्यादि। अव+गाह् या व+गाह् (स्नान करना), अवतार (सीढ़ी, उतरना), अवगीत (निन्दित), अव+मन् (अपमान करना), इत्यादि।

आ—तक, ओर, चारों ओर, थोड़ा, इत्यादि। आ+च्छाद् (चारों ओर से ढकना), आकार (आकृति, रूप), आकाश (आकाश, जो चारों ओर प्रकाशित हो रहा है), आकम्प् (थोड़ा हिलना), इत्यादि।

उद्-उन्—ऊपर, इत्यादि। उद्+गम् (ऊपर आना, निकलना), उद्यम (पुरुषार्थ), उत्सर्ग (डालना, अतएव उपहार, सामान्य नियम), आदि।

उप—समीप, ओर, पास में, आदि। उपया (समीप जाना), उपकृति (स्त्री०, उपकार करना), उपरति (स्त्री०, मृत्यु), उपस्थानम् (स्तुति, उपासना), उपमिति (स्त्री० , तुलना), इत्यादि।

दुस्-दुर्—बुरा, दुष्कर कर्म, इत्यादि। दुराचार (बुरे आचरण वाला), दुष्कर (जिसको कठिनाई से किया जा सके), दुःसह (जिसको कठिनाई से सहन किया जा सके), इत्यादि।

नि—अन्दर, निश्चय से, बड़ा, विपरीत, इत्यादि। नि+कृ (अपमान करना), निकेत (मकान), निचय (ढेर, समूह), निपीत (पी लिया), निदेश (आज्ञा), इत्यादि।

निस्-निर्—निकलना, दूर हटना, बिना, इत्यादि। निर्+इ (निकलना, बाहर जाना), निर्गम (निकास, बाहर जाने का मार्ग), निर्दोष (दोषों से रहित), निःशङ्क (निडर, सन्देह-रहित), इत्यादि।

परा—पृथक्, पीछे, विपरीत, इत्यादि। पराकृ (छोड़ना, घृणा करना), पराक्रम (बहादुरी), परागत (दूर गया), पराञ्च् (मुड़ना, पीठ फेरना), पराजय (जय के विपरीत अर्थात् हार), इत्यादि।

परि—चारों ओर, समीप। परिधा (चारों ओर डालना, पहनना), परिधि (चारदीवारी, दीवार, जो चारों ओर से घेरती है), परिणाम (परिणाम, प्रौढ़ता), परिगणना (चारों ओर से गिनना, अर्थात् पूरी गणना), इत्यादि।

प्रति—ओर, पीछे, बदले में, विपरीत, इत्यादि। प्रतिगम् (उस ओर जाना),

प्रतिभाषण (प्रत्युत्तर, प्रतिवचन), प्रतिवार—प्रतीवार (विपरीत कार्य, चिकित्सा, बदला), इत्यादि ।

वि—विपरीत, पृथक्, विरुद्ध, विषम, विशेष आदि । विचल् (विचलित होना, डिगना), वियुज् (पृथक् होना), विक्री (क्री का विपरीत अर्थ, बेचना), आदि । कभी-कभी यह विशिष्ट अर्थ को बताता है ।

सम्—अच्छा, पूरा, साथ आदि । सगम् (सयुक्त होना), सस्कार (सशुद्धि, पूर्णता), सस्कृति (परिष्कार, शुद्धि), सहार (नाश, समेटना), इत्यादि ।

सु—अच्छा, पूर्णतया आदि । यह दुस् के विपरीत अर्थ मे आता है । सुकृतम् (अच्छे प्रकार से किया, पुण्य), सुशासित (पूर्णतया शिक्षित, अच्छे शासन से युक्त), इत्यादि । यह बहुत अधिक अर्थ मे भी आता है । सुमहत् (बहुत बडा) ।

३६७ दो या अधिक उपसर्ग भी धातु से पहले इकट्ठे लग सकते हैं । जैसे—अभिनिविश् (निश्चयपूर्वक कार्य मे लगना), समुपागम् (अधिक समीप आना), आदि ।

३६८ समास मे इन उपसर्गों के बाद की क्रिया का लोप हो जाता है—अति, अधि, अनु, अप, अव, अभि, उप, निर्, पर्, प्र और प्रति । अतिक्रान्तो मालाम् अतिमाल, इत्यादि । देखो नियम २३२ ।

३६९ इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द हैं, जो उपसर्गों के तुल्य धातु से पूर्व प्रयुक्त होते हैं । सस्कृत के वैयाकरणो ने इनको गति नाम दिया है । ये विशेष धातुओ से पूर्व ही प्रयुक्त होते है । इनमे से कतिपय मुख्यो का ही उल्लेख नीचे किया जाता है ।

(क) अच्छ (ओर, सामने) का गत्यर्थक (जाना अर्थवाली धातुओ) और वद् धातु से पूर्व प्रयोग होता है ।[1] अच्छगम्य—अच्छगत्य (समीप जाकर), अच्छपतत् (सामने उडता हुआ), अच्छोद्य (सामने जाकर कहकर) ।

(ख) (१) कृ धातु से पहले ये गति शब्द प्रयुक्त होते है—अन्वाजे (निर्बल को बल प्रदान करना), अलम् (अलकृत करना अर्थ मे), ऊरी, उररी, ऊररी (तीनो हाँ, स्वीकृति या प्रतिज्ञा अर्थ मे), खाट् तथा अन्य ऐसे अनुकरणवाचक शब्द, सत् (आदरार्थक) और असत् (अनादर अर्थ मे), प्राध्वम् (बाँध कर अनु

[1] अच्छ गत्यर्थवदेषु (१-४-६९)

कूल बनाना), इत्यादि । अन्वाजेकरणम्, ऊरीकरणम्, सत्कृत्य, असत्कृत्य, खाट्-कृत्य, प्राध्वकरणम् आदि ।

(२) कृ धातु से पहले ये गतिशब्द विकल्प से लगते हैं। एक स्थान पर समस्त पद के तुल्य लगेंगे और दूसरे स्थान पर पृथक् रहेंगे । ये हैं--नम, प्रादु , मिथ्या, वशे, साक्षात् तथा अन्य कुछ शब्द । नमस्कार, वशेकृ या वशे कृ (वश मे करना), साक्षात्कृ या साक्षात् कृ (साक्षात्कार करना, देखना), इत्यादि ।

(ग) अन्तर् इन धातुओ से पहले प्रयुक्त होता है--जाना अर्थ की धातुएँ, धा, भू और अन्य इस प्रकार की धातुएँ । अन्तरित्य (अन्तर्धान होकर), अन्तर्धानम् (छिपना), अन्तर्भूत आदि ।

(घ) अस्तम् गत्यर्थक धातुओ से पहले लगता है । अस्तमय (छिपना), अस्तगत (छिप गया), अस्त + नी (छिपाना, नष्ट करना), आदि ।

(ङ) आवि और प्रादु कृ, अस् और भू धातु से पहले लगते हैं । तिर भू, धा और अन्य इस प्रकार की धातुओ से पहले लगता है तथा कृ धातु से पहले विकल्प से लगता है । आविष्करणम, आविर्भवनम् (प्रकट होना), प्रादुर्भूत, आविर्भूत (प्रकट हुआ), आदि । तिरोभूय (आंखो से ओझल होकर), तिरोधानम् (आंखो से ओझल होना), आदि ।

(च) पुर कृ, भू, गम् आदि से पहले लगता है । पुरस्कृत (आगे रक्खा गया, अगुआ बनाया गया), पुरोगत (आगे चला), आदि ।

३७० कतिपय प्रातिपदिक और विशेषण सज्ञा शब्द कृ, भू और अस् धातुओ से पहले आते है और च्वि प्रत्ययान्त रूप बनाते हैं। (च्वि प्रत्यय के लिए देखो अध्याय ९, भाग ३) । कृष्ण + करणम्=कृष्णीकरणम्, घन + भूत = घनीभूत । ऐसे सज्ञाशब्दा को भी गति कहते है ।

३७१ तद्धित सात् प्रत्ययान्त शब्द भी उपसर्गों के तुल्य धातु से पूर्व प्रयुक्त होते हैं। अग्निसात् + कृ (अग्नि को समर्पण करना), भस्मसात्कृत (राख बना दिया), राजसाद्भूता (राजा के अधीन हुई), आदि । (देखो अध्याय ९ भाग ३ मे सात् प्रत्यय) ।

२. क्रिया-विशेषण (Adverbs)

३७२ क्रिया विशेषण शब्द मूलरूप मे होते है या सज्ञाशब्दा, सर्वनामो और

सख्या-शब्दो से बने हुए होते हैं। क्रिया विशेषण कभी-कभी सज्ञा शब्दो और विशेषणो के नपु० द्वितीया एक० के रूप होते है और कभी अन्य कारको के एक० के रूप। सत्यम् (वस्तुत), मृदु (कोमलता से), सुखम् (सुखपूर्वक), लघु (शीघ्रता से), निर्भरम्, अवश्यम्, अत्यन्तम्, वलवत् (वलपूर्वक), भूय (फिर) आदि। दु खेन (कष्ट से), सुखेन, धर्मेण (न्यायपूर्वक, धर्म से), दक्षिणेन, उत्तरेण, अक्षेपेण, चिरेण (देर से), क्षणेन आदि। चिराय, चिररानाय (वहुत समय से), अर्थाय (लिए), बलात् (वल्पूर्वक), हर्षात्, शोकात्, दूरात्, तस्मात्, कस्मात् आदि। चिरात् (चिरकाल से), दूरात्, उत्तरात् आदि। स्थाने (उचित है), दूरे, प्रभाते, प्राह्णे, अग्रे, एकपदे (तुरन्त), सपदि, ऋते, समीपे, अभ्याशे (समीप), आदि।

सूचना—विशेषण-शब्दो और सख्या शब्दो से वने हुए क्रिया विशेषण यथास्थान दिए गए हैं। सज्ञा शब्दो से वने क्रिया-विशेषण अध्याय ९ मे दिए गए हैं।

३७२ सस्कृत मे क्रिया-विशेषण के रूप मे प्रयुक्त प्राय सभी शब्द नीचे अकारादि-क्रम से दिए गए हैं —

अकस्मात्—अचानक, तुरन्त।
अग्रत —सामने, आगे।
अग्रे—आगे, सामने, पहले।
अचिरम्, अचिरात्, अचिरेण, अचिराय — थोड़े समय पूर्व, शीघ्र ही, जल्दी, अभी।
अजस्रम्—सदा, निरन्तर।
अज्ञानत —अज्ञान से।
अञ्जसा—ठीक ढग से, उचित रूप से।
अन्तर् (अन्त)—अन्दर।
अत —इसलिए, इससे।
अतीव — अत्यधिक। वढकर होना, इस अर्थ मे द्वितीया के साथ। अतीवान्यान् भविष्याव (महाभारत)।
अत्र—यहाँ।
अथ—तव, तदनन्तर।
अथ किम्—हाँ।
अद्धा—वस्तुत, अवश्य, निश्चय से।
अद्य—आज।
अद्यत्वे—आजकल, अव।
अध, अध, अधस्तात् — नीचे, नीचे की ओर।
अपरम्—फिर, और भी।
अपरेद्यु—आगामी दिन।
अधुना—अव, इस समय।

अनिशम्—सदा, निरन्तर ।

अन्त
अन्तरा
अन्तरेण
अन्तरे } बिना, अतिरिक्त, अन्दर, बीच में, मध्य में ।

अन्यच्च
अन्यत् } और भी, फिर, इससे अतिरिक्त ।

अन्यत्र—और जगह, अन्य स्थान पर ।

अन्यथा—नहीं तो, अन्य प्रकार से ।

अभितः—दोनों ओर, समीप में ।

अभीक्ष्णम्—निरन्तर, बार बार ।

अम्—शीघ्रता से, थोड़ा ।

अमा—साथ, साथ में ।

अमुत्र—वहाँ, परलोक में, ऊपर ।

अरम्—शीघ्र ।

अर्वाक्—सामने ।

अलम् { बस, मत, पर्याप्त । इसका पूर्व प्रयोग भी होता है ।

अव—बिना, बाहर की ओर ।

असकृत्—बार बार ।

असम्प्रति
असाम्प्रतम् } अनुचित, अनुचित ढंग से ।

अह्नाय
आनुषक्
आनुषज् } शीघ्र, तुरन्त । निरन्तर, क्रमशः ।

आरात्—समीप, दूर ।

आर्यहलम् { बलात् । (अष्टा० १-१-४७)

आविः—प्रकट, आँखों के सामने ।

इतः—इधर, आगम ।

इतस्ततः—इधर, उधर, जहाँ तहाँ ।

इतरम्—फिर ।

इतरेद्युः—दूसरे दिन, गत दिन ।

इति—इस प्रकार, ऐसा ।

इतिह { ऐसा, अवश्य, इस प्रकार, परम्परा से अनुकूल ।

इत्थम्—ऐसे, इस प्रकार ।

इदानीम्—अब, इस समय, अभी ।

इद्धा—वस्तुतः ।

इह—यहाँ ।

ईषत्—थोड़ा, कुछ कम ।

उच्चैः—ऊँचा, जोर से ।

उत्तरम्—तब ।

उत्तरेद्युः—आगामी दिन ।

उपांशु—चुपके, मन ही मन ।

उभयतः—दोनों ओर ।

उभयद्युः
उभयेद्युः } दोनों दिन ।

उषा—प्रातःकाल, उषाकाल में ।

ऋतम्
ऋधक् } वस्तुतः, यथार्थ रूप में ।

ऋते—बिना, अतिरिक्त ।

एकत्र—एक स्थान पर, इकट्ठे ।

एकदा { एक बार, एक समय की बात है ।

एकधा { एक प्रकार से, अकेले, उसी समय ।

एकपदे—सहसा, एकदम ।

एतर्हि—अब, इस समय ।
एव—ही ।
एवम्—ऐसा, इस प्रकार ।
ओम्—हाँ, तथास्तु ।
कच्चित्, कच्चन—क्या, मैं समझता हूँ, मैं आशा करता हूँ ।
कथम्—क्यों, कैसे, किस प्रकार ।
कथचन, कथचित्—किसी प्रकार से, बड़ी कठिनाई से ।
कथनाम—कैसे, किस तरह से ।
कदा—कब, किस समय ।
कदाचित्—कभी, किसी समय ।
न कदाचित्—कभी नहीं ।
कम्—पादपूर्त्यर्थक अव्यय ।
कर्हि—कब, किस समय ।
कर्हिचित्—कभी ।
किंकिल—दयनीय, खेद है कि ।
किंच—और भी, फिर आगे ।
किंचन, किंचित्—कुछ थोड़ा, कुछ हद तक ।
किन्तु—परन्तु, फिर भी, तथापि ।
किन्नु—क्या, वस्तुत क्या ।
किम्—कौन, क्या ।
किमुत—और क्या, अधिक क्या ।
किमुह—क्या, कैसे ।
किंवा—अथवा ।
किंस्वित्—क्या, क्या, कैसे ।
किल—अवश्य, वस्तुत ।
किमु—क्या, तब क्या, अधिक क्या ।
कुत—कहाँ से, कैसे ।
कुत्र—कहाँ, किस स्थान पर ।
कुत्रचित्—कहीं, कहीं पर ।
कुवित्—अधिक, बहुत ।
कुपत्—अच्छे प्रकार से ।
कूपत्—अच्छे ढग से ।
कृतम्—बस, मत ।
केवलम्—केवल, सिर्फ ।
क्व—कहाँ ।
क्वचित्—कहीं ।
न क्वचित्—कहीं नहीं ।
खलु—अवश्य, निश्चय से ।
चिरम्—देर । इसके चिरेण, चिराय आदि एकवचनान्त रूप क्रिया-विशेषण के तुल्य 'देर' अर्थ मे प्रयुक्त होते हैं ।
चिररात्राय—देर, बहुत रात्रियो तक ।
जातु—कभी, सभवत ।
जोषम्—चुप, शान्त, मौन ।
ज्योक्—शीघ्र ।
झटिति, झगिति—शीघ्र, तुरन्त ।
तत्—तो, अतएव ।
तत—तब, इसलिए, तत्पश्चात् ।
तत्र—वहाँ, उस विषय मे ।
तदा—तब, उस समय, उस विषय मे ।
तदानीम्—तब, उस समय ।
तथा—वैसे, उस प्रकार से ।
तथाहि—क्योंकि, जैसे ।

तस्मात्—अतएव, उससे ।
तर्हि—तो, तब, उस समय ।
तावत्—तो ।
तिरस् } टेढा, तिरछा, अप्रत्यक्ष रूप
तिर्यक् } से, बुरे ढग से ।
तूष्णीम् } चुप, चुपके से, बिना हल्ले
तूष्णीकम् } के या बिना बोले ।
तेन—उसने, अतएव ।
दिवा—दिन मे ।
दिष्ट्या—भाग्य से, सौभाग्य से ।
दुष्ठु } बुरा, दुष्टता से ।
दुस्समम् }
दूरम्—दूर, गहराई से, बहुत ।
दोषा—रात्रि मे ।
द्राक् } शीघ्र, तुरन्त ।
द्राङ् }
ध्रुवम्—अवश्य ।
नकिम् } नही, वैसा नही ।
नकि }
नक्तम्—रात्रि मे ।
न—नही ।
नवरम्—किन्तु ।
नह } वैसा नही, सर्वथा नही ।
नहि }
नाना { अनेक प्रकार से, पृथक् ढग से, स्पष्टतया ।
नाम { नाम से, वस्तुत, अवश्य, सभवत ।
निकषा—समीप ।
निकामम्—बहुत अधिक, अधिक, इच्छानुकूल ।
नूनम्—अवश्य, निश्चय से ।
नो—नही ।
परम्—तब, ऊपर, बाहर ।
परश्व—आने वाला परसो ।
परित—चारो ओर, सब ओर ।
परेद्यवि } दूसरे दिन, आगामी कल ।
परेद्यु }
पर्याप्तम्—पर्याप्त, इच्छानुकूल ।
पशु—अच्छा, देखो ।
पश्चात्—पीछे, बाद मे, अन्त मे ।
पुन—फिर ।
पुन पुन—बारबार ।
पुर }
पुरत } सामने ।
पुरस्तात् }
पुरा—पहले, प्राचीन समय मे ।
पूर्वत—पूर्व की ओर, पहले, सामने ।
पूर्वेद्यु—पहले दिन, विगत कल ।
पृथक्—अलग, अलग अलग ।
प्रकामम् } अत्यधिक, इच्छानुसार,
प्रकामन } आनन्द से ।
प्रगे—प्रात काल के समय ।
प्रतान्—विस्तार से ।
प्रताम् } थका हुआ ।
प्रशाम् }
प्रतिदिनम्—प्रतिदिन, रोज ।
प्रत्युत—अपितु, इसके विपरीत ।

प्रवाहिका } उसी समय ।
प्रवाहुकम् }
प्रसह्य—बलात्, अत्यधिक, बहुत ।
प्राक्—पहले, पूर्व की ओर ।
प्रात—सबेरे ।
प्राध्वम्—कुटिलता से, अनुकूलता से ।
प्राय—प्राय, अक्सर ।
प्राह्णे—दोपहर मे ।
प्रेत्य—मरकर ।
बलवत् } बलात्, बहुत अधिक ।
बलात् }
बहि—बाहर, सिवाय ।
भाजक्—शीघ्रता से, तुरन्त ।
भूय—फिर, बारबार, अत्यधिक ।
भृशम्—बहुत अधिक, बार बार ।
मक्षु—शीघ्र, तुरन्त ।
मनाक्—थोडा, कम, धीरे धीरे ।
माकिम् } सिवाय ।
माकिः }
माचिरम्—शीघ्र, अविलम्ब ।
मिथ } परस्पर, गुप्त रूप से ।
मिथो }
मिथ्या—झूठ, व्यर्थ, निरर्थक ।
मुधा—व्यर्थ, निरर्थक, निष्फल ।
मुहु—बार बार, प्राय ।
मृषा—झूठ, व्यर्थ ।
यत्—कि ।
यत—क्योंकि, इसलिए कि, जहाँ से ।
यत्र—जहाँ, जिस स्थान पर ।
यथा—जैसे ।
यथाकथा—किसी प्रकार से ।
यथाक्रमम्—क्रम के अनुसार ।
यथातथा { निर्धारित रूप से, नियमित ढग से ।
यदा—जब ।
यावत्[१]—जितना, जब तक ।
युक्—बुरे ढग से ।
युगपत्—तुरन्त, उसी क्षण ।
युत्—बुरे ढग से ।
वत्—तुल्य ।
वाव—केवल ।
विना—बिना, अतिरिक्त ।
विपु—अत्यधिक ।
विहायसा { ऊपर, आकाश मे, आकाश-मार्ग से ।
वै—अवश्य, निश्चय से ।
शनै—धीरे से ।
शश्वत्—सदा ।
शुकम्—शीघ्रता से ।
सकृत्—एक बार ।
सक्षु—शीघ्रता से, तुरन्त ।
सजुष्—साथ मे ।
सत्—अच्छा ।
सततम्—सदा ।

१. लट् लकार के साथ पुरा और यावत् का पहले प्रयोग होता है तो इनका भविष्य अर्थ होता है ।

सदा—सदा, सर्वदा ।
सद्य—तुरन्त ।
सनत्, सना, सनात्—सदा, निरन्तर ।
सनुत—चोरी से, चुपके से, छिपा कर ।
सपदि—तुरन्त, उसी क्षण ।
समन्तत—चारो ओर ।
समम्—समान रूप से ।
समया—समीप ।
समीपम्, समीपे—समीप, पास मे ।
समीचीनम्—ठीक, उचित रूप से ।
समुपजोषम्—आनन्द से, हर्ष से ।
सम्प्रति—अब ।
सम्मुखम्—सामने, आमने सामने ।
सम्यक्—ठीक, ठीक ढग से ।
सर्वत—सब ओर से, पूर्णतया ।
सर्वत्र—सभी जगह ।
सर्वदा—सदा ।
सह—साथ ।
सहसा—सहसा, एकदम, अचानक ।
सहितम्—सहित, साथ ।
साकम्—साथ ।
साक्षात्—सामने, प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत रूप मे ।
साचि—टेढ़ेपन से, तिरछेपन से ।
सार्धम्—साथ ।
सामि—आधा ।
साम्प्रतम्—अब, इस समय, उचित ढग से ।
सायम्—सायकाल के समय ।
सुकम्—बहुत अधिक ।
सुधा—व्यर्थ, निरर्थक ।
सुष्ठु—ठीक, अच्छे ढग से ।
स्वयम्—अपने आप, स्वयम् ।
हि—क्योंकि, वस्तुत, अवश्य ।
हिरुक्—विना, अलावा ।
हेतो, हेतौ—क्योंकि ।
ह्य—बीता हुआ कल ।

३. निपात (Particles)

३७४. निपात पाद-पूर्त्यर्थक होते है या अर्थ के बल को बढाने वाले होते हैं । इनमे से कुछ ये हैं—किल, खलु, च, तु, नु, वै, हि आदि ।

३७५. निम्नलिखित निपात कुछ विशिष्ट शब्दो के साथ प्रयुक्त होते हैं :—

अद्—अद्भुतम् (आश्चर्य) ।
का—कापुरुष (कायर), कोष्णम् (गुनगुना, कम गर्म), काजलम् (थोड़ा जल) ।
कु—कुकृत्यम् (कुकर्म) ।
चन, चित्—किंचित्, किंचन, कश्चित्, कश्चन आदि ।

न—न को प्राय अ या अन् हो जाता है। हलादि शब्द से पूर्व न को अ होता है और अजादि शब्द से पूर्व अन्। नञ् (न) के ६ अर्थ हैं [१]—(१) सादृश्य (समानता या तुल्यता)। जैसे—अब्राह्मण (ब्राह्मण नहीं, परन्तु ब्राह्मण के सदृश यज्ञोपवीत आदि धारण करने वाला। अत क्षत्रिय या वैश्य)। (२) अभाव (न होना, वस्तु की सत्ता का अभाव)। अज्ञानम् (ज्ञान का अभाव)। (३) अन्यत्व (दूसरी वस्तु होना)। जैसे—अयम् अपट (यह पट अर्थात् वस्त्र से भिन्न वस्तु है, अर्थात् घट आदि है)। (४) अल्पता (कम होना, न्यून होना)। जैसे—अनुदरा कन्या (पतली कमर वाली लड़की)। (५) अप्राशस्त्य (अनुचित, बुरा आदि)। अकार्य (अनुचित कार्य), अकाल (बुरा समय, प्रतिकूल समय)। (६) विरोध (विरुद्ध अर्थ)। अनीति (अनैतिकता), असुर (देवों का विरोधी, अर्थात् राक्षस)।

स्म—यह साधारणतया पाद-पूरक के ढंग से प्रयुक्त होता है। लट् लकार वाले रूप के साथ प्रयुक्त होने पर यह भूतकाल का अर्थ देता है। जैसे—भवति स्म = अभवत् (होता था)। मा निपात के साथ प्रयुक्त होने पर यह अर्थोत्तारक का कार्य करता है। जैसे—मा स्म शोके मन कृथा, इत्यादि।

स्वित्—यह किम् तथा अन्य अव्ययों के बाद लगता है और प्रश्नबोधक या सन्देहसूचक अर्थ बताता है। किंस्वित्, आहोस्वित् आदि।

स्वी—यह कृ धातु और भू धातु से बने रूपों के साथ स्वीकृतिसूचक अर्थ में उपसर्ग के तुल्य पहले प्रयुक्त होता है। स्वीकार, स्वीकृतम् इत्यादि।

४ संयोजक अव्यय (Conjunctions)

२७८ संस्कृत में मुख्य संयोजक अव्यय ये हैं —

(क) संयोजक (Copulative)—अथ, अथो, उत, च, किञ्च, इत्यादि।

(ख) विभाजक (Disjunctive)—वा वा वा, इत्यादि।

(ग) विरोध-सूचक (Adversative)—अथवा, तु, किन्तु, किंवा, इत्यादि।

(घ) हेत्वर्थक (Conditional)—चेत्, यदि, यद्यपि, नेत्, नो चेत्, चेद् (यह सदैव क्रियाओं में प्रयुक्त होता है), इत्यादि।

---

१. नञ् के ६ अर्थ इस श्लोक में दिए गये हैं —
तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्था षट् प्रकीर्तिता॥

(ङ) कारणबोधक (Causal)—हि, तत्, तेन, इत्यादि ।

(च) प्रश्नबोधक (Interrogative)—आहो, आहोस्विन्, उत्, उताहो, किम्, किंतु, किमुत, किंस्वित्, ननु, नवा, नु, इत्यादि ।

(छ) स्वीकृतिसूचक और निषेधार्थक (Affirmatives and Negatives)—अग, अथ किम्, आम्, अद्धा, इत्यादि ।

(ज) समय-बोधक (Conjunctions of time)—यावत्-तावत्, यदा, तदा, आदि ।

(झ) अथ प्रारम्भ-सूचक अव्यय है और इति समाप्ति-सूचक ।

५. विस्मय-सूचक अव्यय (Interjections)

२७७. प्रो० बेन (Bain) का कथन है कि—विस्मय-सूचक अव्यय वस्तुतः भाषणावयवों में नहीं हैं, क्योंकि ये वाक्य-रचना में अन्तर्गत नहीं होते हैं, ये आकस्मिक भावोद्रेक के कारण सहसा उच्चरित विस्मय-सूचक शब्द हैं । हृदय के भावोद्रेक की विभिन्न अवस्थाओं के सूचक विभिन्न शब्द हैं ।

(क) ये है—आ, इ, उ, ए, ऐ, ओ, अह, अहह, अहो, बत, ह, हा, हाहा, आदि । ये आश्चर्य, खेद या दुःख आदि के बोधक हैं ।

(ख) किम्, धिक् आदि । ये घृणा-सूचक हैं ।

(ग) हा, बत आदि । ये शोक, दुःखादि के सूचक हैं ।

(घ) हा, हाहा, हन्त । ये दुःख-बोधक हैं ।

(ङ) आ, हम्, हुम् आदि । ये क्रोध और घृणा आदि के सूचक हैं ।

(च) हन्त आदि । ये हर्ष-सूचक हैं ।

(छ) कुछ विस्मय-सूचक अव्यय संबोधन या पुकारने के अर्थ में आते हैं । इनमे से कुछ ये है —

(१) इनमे से कुछ आदर का भाव प्रकट करते हैं। जैसे—अग, अये, अहो, बत, उ, ए, ओ, प्याट्, भो, हहो, हे, है, हो, आदि ।

(२) कुछ घृणा या अनादर का भाव प्रकट करते हैं । जैसे—अग, अरे, अवे, रे, रेरे, अरेरे, आदि ।

(३) श्रौषट्, वौषट् और वषट्, ये देवों और पितरों को आहुति आदि देने में प्रयुक्त होते हैं ।

(४) स्वाहा देवों के लिए और स्वधा पितरों को आहुति देने में प्रयुक्त होता है।

अध्याय १२

तिङन्त-प्रकरण (Conjugation of Verbs)

३७८. (क) संस्कृत मे दो प्रकार की क्रियाएँ होती है—मूल धातु वाली और प्रत्ययान्त धातु वाली ।

(ख) संस्कृत मे ६ काल (Tenses) और ४ अर्थ (Moods) होते हैं। वे ये हैं :—

काल (Tense)—	पारिभाषिक नाम[1]
वर्तमान (Present)—	लट्
भूत (Aorist)—	लुङ्
अनद्यतन भूत (Imperfect)—	लङ्
परोक्षभूत (Perfect)—	लिट्
अनद्यतन भविष्यत् (I Future)—	लुट्
भविष्यत् (II Future)—	लृट्
अर्थ (Moods)—	**पारिभाषिक नाम**
आज्ञा (mplerative)—	लोट्
विधि (Potential)—	विधिलिङ्
आशी (Benedictive)—	आशीर्लिङ्
संकेत या हेतुहेतुमद् (Conditional)—	लृङ्

---

१. ये पारिभाषिक नाम निम्नलिखित कारिका मे दिए गए हैं :—
लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ्लङ्लिटस्तथा ।
विध्याशिषोस्तु लिङ्लोटौ लुट् लृट् लृङ् च भविष्यति ॥
पाणिनि ने जो ये पारिभाषिक नाम दिए हैं, ये कृत्रिम हैं। अन्य वैयकरणों ने अन्य नाम दिए हैं। १० लकारो को औरो ने ये नाम दिए हैं—भवति (वृत्ति), अद्यतनी, ह्यस्तनी, परोक्षा, श्वस्तनी, भविष्यन्तं पञ्चमी, सप्तमी, क्रियातिपत्ति और आशी. । (Apte's Guide) ।

लेट् (Subjunctive) का प्रयोग वेद में ही मिलता है, अतः इसको वैदिक लेट् (Vedic Subjunctive) कहा गया है।

सूचना—संस्कृत वैयाकरणों ने इन १० कालों और अर्थों को पारिभाषिक नाम १० लकार दिया है।

(ग) तीन प्रकार के प्रयोग (Voices) होते हैं—(१) कर्तरि प्रयोग या कर्तृवाच्य (Active Voice), जैसे—रामः सत्यं भाषते, (२) कर्मणि प्रयोग या कर्मवाच्य (Passive Voice), जैसे—हरिणा फलं भक्ष्यते, (३) भावे प्रयोग या भाववाच्य (Impersonal Construction), जैसे—रामेण गम्यते।

(घ) दो प्रकार के तिङ् प्रत्यय हैं—(१) परस्मैपद, (२) आत्मनेपद। कुछ धातुओं में केवल परस्मैपदी तिङ् प्रत्यय लगते हैं और कुछ में केवल आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय। कुछ धातुएँ ऐसी भी हैं, जिनमें दोनों प्रकार के तिङ् प्रत्यय लगते हैं। कुछ धातुएँ मूल रूप में परस्मैपदी हैं, परन्तु बाद में आत्मनेपदी हो जाती हैं, इसी प्रकार आत्मनेपदी धातुएँ भी परस्मैपदी हो जाती हैं। यदि उनसे पूर्व कुछ विशेष उपसर्ग लग जाते हैं या कोई विशेष अर्थ कहा जाता है। इनका आगे अलग अध्याय में विवेचन किया जायगा।

३७९. मूल धातुएँ वे हैं जो मूलरूप में धातुपाठ में या भाषा में विद्यमान हैं। प्रत्ययान्त धातुएँ वे हैं, जो मूल धातु से या किसी संज्ञा शब्द से कुछ प्रत्यय करके बनाई जाती हैं।

३८०. संस्कृत में प्रत्येक धातु के, चाहे वह मूल रूप में हो या प्रत्ययान्त धातु हो, दसों लकारों में रूप चलते हैं।

(क) सकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में रूप चलते हैं तथा अकर्मक धातुओं के कर्तृवाच्य और भाववाच्य में।

३८१. प्रत्येक लकार में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तथा तीन पुरुष होते हैं—प्रथम पुरुष या अन्य पुरुष (III Person), मध्यम पुरुष (II Person) और उत्तम पुरुष (I Person)।

३८२. निम्नलिखित ४ लकारों में धातुओं में कुछ परिवर्तन होते हैं और उनमें कुछ विकरण लगते हैं—लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्। अतएव इन

चार लकारो को सार्वधातुक[1] (Conjugational) कहा जाता है और शेष को आधधातुक (Non-Conjugational)। सार्वधातुक मे धातु के विशेष ढग से बने हुए रूप के साथ प्राय विकरण *और तिङ प्रत्यय लगते है तथा आर्धधातुक* लकारो मे मूल धातु से ही तिङ आदि होते हैं।

(क) धातु के जिस स्वरूप से तिङ प्रत्यय होते हैं, उस धातु स्वरूप को अग (Base) कहते है।

३८३ जो धातुएँ उभयपदी हैं अर्थात् जिनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोना होत हैं, उनके दोनो पदो मे निम्नलिखित अन्तर होता है। परस्मैपद का अर्थ है कि *कार्य दूसरे के लिए किया गया है (परस्मै = दूसरे के लिए)। जहाँ* पर फल का भोक्ता दूसरा है, वहाँ पर परस्मैपद होगा। जहाँ पर फल का भोक्ता वह व्यक्ति स्वय है, वहाँ पर आत्मनेपद होगा। आत्मनेपद का अर्थ है कि कार्य अपने लिए किया गया है (आत्मने = अपने लिए)। अत देवदत्तः यजति का अर्थ होगा—देवदत्त दूसरे (अर्थात् यजमान) के लिए यज्ञ करता है और देवदत्त यजते का अर्थ होगा—देवदत्त अपने लिए यज्ञ करता है।

सूचना—इस नियम का साधारणतया सस्कृत-साहित्य मे पालन नहीं किया गया है।

---

१ पाणिनि ने वस्तुत सार्वधातुक नाम सभी तिङ प्रत्ययो को दिया है, जो धातु के बाद लगते हैं, लिट् और आशीर्लिङ के तिङ प्रत्ययो को छोडकर। इसी प्रकार सभी शित् (जिनमे से श् हटा है) विकरणो और प्रत्ययो को भी सार्वधातुक कहते हैं। साधारणतया सार्वधातुक प्रत्यय ये हैं—लिट् और आशीर्लिङ को छोडकर सभी लकारों के तिङ प्रत्यय, सभी शित् (जिनमे से श् हटा है) विकरण, तनादिगण और चुरादिगण को छोडकर सभी गणों के विकरण, शतृ (अत्) और शानच् (आन) प्रत्यय। आर्धधातुक प्रत्यय ये हैं—तनादि और चुरादिगण के विकरण, प्रेरणार्थक प्रत्यय, कुछ नामधातु प्रत्यय, लुट् और लृट् मे जुडने वाले स्य और ता, लुङ और सन्नन्त मे जुडने वाले प्रत्यय स् और स, कर्मवाच्य और यङन्त मे जुडने वाले य प्रत्यय, भूत अर्थ वाले क्त, क्तवतु प्रत्यय, तुमुन्, क्त्वा, ल्यप् तथा अन्य कुछ प्रत्यय।

भाग १

कर्तृवाच्य (Active Voice)

१. सार्वधातुक लकार (लट्, लोट्, लङ, विधिलिङ)

३८४. विविध विकरणों के आधार पर संस्कृत वैयाकरणों ने धातुओं को १० गणों में बाँटा है। प्रत्येक गण का नाम उस गण में आने वाली प्रथमधातु के नाम पर रक्खा गया है। गणों की संख्याएँ और नाम ये है—(१) भ्वादि, (२) अदादि, (३) जुहोत्यादि, (४) दिवादि, (५) स्वादि, (६) तुदादि, (७) रुधादि, (८) तनादि, (९) क्र्यादि और (१०) चुरादि।

३८५. प्रथम ९ गणों की तथा दशमगण की कुछ धातुएँ मूल धातुएँ (Primitive Roots) है। दशमगण की प्राय सभी धातुएँ, णिजन्त धातुएँ (Causals), सनन्त धातुएँ (Desideratives), यङन्त धातुएँ (Frequentatives), नामधातुएँ (Denominatives) और गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन्, ऋत् और कम् धातुएँ, ये प्रत्ययान्त धातुएँ (Derivative Roots) मानी गई है।

३८६. उपर्युक्त दस गणों को सुविधा के लिए पुन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) गण १, ४, ६ और १०, (२) शेष सभी गण। भाग १ में अंग (Base) अकारान्त होता है और उसमें पुन कोई परिवर्तन नहीं होता है। भाग २ में अंग अकारान्त नहीं होता है और उसमें परिवर्तन होता रहता है।

(१) वर्ग १

अपरिवर्तनशील अंग (Base) वाली धातुएँ।
(गण १, ४, ६ और १० की धातुएँ)

३८७ तिङ् प्रत्यय—

लट् (Present)

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु०
प्र०पु०	ति	तस्	अन्ति	त	इते	अन्ते

	एक०	द्वि०	बहु०	एक०	द्वि०	बहु०
म०पु०	सि	थस्	थ	से	इथे	ध्वे
उ०पु०	मि	वस्	मस्	इ	वहे	महे

लङ् (Imperfect)

प्र०	त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म०	स्	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
उ०	अम्	व	म	इ	वहि	महि

लोट् (Imperative)

प्र०	तु[1]	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म०	—[1]	तम्	त	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ०	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

विधिलिङ् (Potential)

	परस्मै०			आत्मने०		
प्र०	ईत्	ईताम्	ईयुः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म०	ई	ईतम्	ईत	ईथा.	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ०	ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि

सूचना—जिन प्रत्ययो के प्रारम्भ मे स्वर हैं, उन्हे अजादि प्रत्यय कह सकते हैं और जिनके प्रारम्भ मे व्यजन हैं, उन्हे हलादि प्रत्यय कह सकते हैं ।

भ्वादिगण की धातुओ के अग (Base) इस प्रकार बनते हैं —

३८८. भ्वादिगण या प्रथमगण की धातुओ से तिङ प्रत्ययो से पूर्व शप् (अ) विकरण लगता है ।[2] इस अ से पहले धातु के अन्तिम स्वरो को और उपधा के ह्रस्व स्वरो को गुण हो जाता है । जैसे—

वुध् + ति = बुध् + अ + ति = बोध् + अ + ति = बोधति ।

---

१. आशीर्वाद अर्थ होने पर लोट् प्र० पु० और म० पु० एक० मे तात् प्रत्यय भी लगता है ।

२. कर्तरि शप् (३-१-६८), दिवादिभ्यः श्यन् (३-१-६९), तुदादिभ्यः शः (३-१-७७) । संस्कृत में लगभग २२०० धातुएँ हैं और उनमे से लगभग आधी (१०७६) धातुएँ भ्वादिगण मे हैं ।

जि+अ+ति=जे+अ+ति[1]=जयति, इत्यादि।

३८९. दिवादिगण या चतुर्थगण की धातुओं से तिङ् प्रत्ययों से पूर्व श्यन् (य) विकरण लगता है। धातु के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जैसे—कुप्+ति=कुप्+य+ति=कुप्यति।

३९० तुदादिगण या षष्ठ गण की धातुओं से तिङ् प्रत्ययों से पूर्व श (अ) विकरण लगता है। इससे पूर्व उपधा के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। धातु के अन्तिम इ ई को इय्, उ ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाते हैं। जैसे—क्षिप्+ति=क्षिप्+अ+ति=क्षिपति। धु+ति=धुव्+अ+ति=धुवति। रि+अ+ति=रियति। मृ+अ+ते=म्रियते। गॄ+अ+ति=गिर्+अ+ति=गिरति, इत्यादि।

३९१. चुरादिगण या दशमगण की धातुओं से तिङ् प्रत्यय से पूर्व अय विकरण लगता है।[2] इस अय से पहले उपधा के ह्रस्व स्वरों (अ को छोड़कर) को गुण हो जाता है तथा अन्तिम स्वरों को और उपधा के अ को वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा के अ के बाद संयुक्त वर्ण होगा तो उसे वृद्धि नहीं होगी। जैसे—चुर्+ति=चुर्+अय+ति=चोर्+अय+ति=चोरयति। भू+अय+ति=भव्+अय+ति= भाव्+अय+ति = भावयति। तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति। किन्तु दण्ड्+अय+ति=दण्डयति ही होगा।

३९२. (क) सार्वधातुक लकारों में पूर्ववर्ती अ को आ हो जाएगा यदि बाद में यञ् (अन्तस्थ, वर्ग के पंचमवर्ण, झ या भ) आदि वाले तिङ् प्रत्यय होंगे तो।[3] जैसे—नयामि आदि।

(ख) अ आदि वाला प्रत्यय बाद में होगा तो अन्तिम अ का लोप हो जाएगा। नय+अन्ति=नयन्ति, इत्यादि।

---

१. देखो नियम २४।

२. इस गण में कुछ मूल धातुएँ भी हैं। इस गण की प्रायः सभी धातुएँ प्रत्ययान्त धातुएँ हैं। इनके अतिरिक्त सभी णिजन्त धातुएँ और कुछ नामधातुएँ भी इस गण की श्रेणी में आती हैं।

३. अतो दीर्घो यञि (७-३-१०१)।

भ्वादिगण

नी—उभयपदी (ले जाना)

लट्

	परस्मै०			आत्मने०		
प्र०	नयति	नयत	नयन्ति	नयते	नयेते	नयन्ते
म०	नयसि	नयय	नयय	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ०	नयामि	नयाव	नयाम	नये	नयावहे	नयामहे

लङ्

३६३ लङ् लकार में धातु से पूर्व अ लग जाता है। यदि धातु अजादि है तो धातु से पूर्व आ लगेगा।[1] इस आ को अगले स्वर के साथ मिलकर वृद्धि अक्षर हो जाता है। जैसे—आ+इष्+त्=आ+इष्+अ+त्=ऐच्छत्। इसी प्रकार ईक्ष्–ऐक्षत, उक्ष्–औक्षत्, ऊह्–औहत्, ऋच्छ्–आर्च्छत् इत्यादि।

(क) यदि धातु से पहले कोई उपसर्ग है तो अ या आ धातु से ही पहले लगेगा, उपसर्ग से पहले नहीं। जैसे—प्र+हृ—प्राहरत्।

	बुध् (जानना) पर०			ईक्ष् (देखना) आत्मने०		
प्र०	अबोधत्	अबोधताम्	अबोधन्	ऐक्षत	ऐक्षेताम्	ऐक्षन्त
म०	अबोध	अबोधतम्	अबोधत	ऐक्षथा	ऐक्षेथाम्	ऐक्षध्वम्
उ०	अबोधम्	अबोधाव	अबोधाम	ऐक्षे	ऐक्षावहि	ऐक्षामहि

नी

प्र०	अनयत्	अनयताम्	अनयन्	अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
म०	अनय	अनयतम्	अनयत	अनयथा	अनयेथाम्	अनयध्वम्
उ०	अनयम्	अनयाव	अनयाम	अनये	अनयावहि	अनयामहि

लोट्

	भू (होना) पर०			लभ् (पाना) आत्मने०		
प्र०	भवतु / भवतात्	भवताम्	भवन्तु	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म०	भव / भवतात्	भवतम्	भवत	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्

१. आडजादीनाम् (६-४-७२)।

उ०	भवानि	भवाव	भवाम	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ्

स्मृ (स्मरण करना) पर०				मुद् (प्रसन्न होना) आत्मने०		
प्र०	स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः	मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्
म०	स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत	मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्
उ०	स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम	मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि

दिवादिगण (चतुर्थ गण)

तुष् (सतुष्ट होना) पर०				युध् (लड़ना) आत्मने०		
		लट्				
प्र०	तुष्यति	तुष्यतः	तुष्यन्ति	युध्यते	युध्येते	युध्यन्ते
म०	तुष्यसि	तुष्यथः	तुष्यथ	युध्यसे	युध्येथे	युध्यध्वे
उ०	तुष्यामि	तुष्यावः	तुष्यामः	युध्ये	युध्यावहे	युध्यामहे
			लङ्			
प्र०	अतुष्यत्	अतुष्यताम्	अतुष्यन्	अयुध्यत	अयुध्येताम्	अयुध्यन्त
म०	अतुष्यः	अतुष्यतम्	अतुष्यत	अयुध्यथाः	अयुध्येथाम्	अयुध्यध्वम्
उ०	अतुष्यम्	अतुष्याव	अतुष्याम	अयुध्ये	अयुध्यावहि	अयुध्यामहि
			लोट्			
प्र०	तुष्यतु[1]	तुष्यताम्	तुष्यन्तु	युध्यताम्	युध्येताम्	युध्यन्ताम्
म०	तुष्य[1]	तुष्यतम्	तुष्यत	युध्यस्व	युध्येथाम्	युध्यध्वम्
उ०	तुष्याणि	तुष्याव	तुष्याम	युध्यै	युध्यावहै	युध्यामहै
			विधिलिङ्			
प्र०	तुष्येत्	तुष्येताम्	तुष्येयुः	युध्येत	युध्येयाताम्	युध्येरन्
म०	तुष्येः	तुष्येतम्	तुष्येत	युध्येथाः	युध्येयाथाम्	युध्येध्वम्
उ०	तुष्येयम्	तुष्येव	तुष्येम	युध्येय	युध्येवहि	युध्येमहि

तुदादिगण (षष्ठ गण)

क्षिप् (फेंकना) उभयपदी

पर०		लट्		आ०		
प्र०	क्षिपति	क्षिपतः	क्षिपन्ति	क्षिपते	क्षिपेते	क्षिपन्ते

---

१. यहाँ से आगे तात् वाला वैकल्पिक रूप नहीं दिया जाएगा। आशीर्वाद अर्थ होने पर अंग से तात् प्रत्यय लगाकर रूप सरलता से बनाया जा सकता है।

म० क्षिपसि	क्षिपथ	क्षिपथ	क्षिपसे	क्षिपेथे	क्षिपध्वे
उ० क्षिपामि	क्षिपाव	क्षिपाम	क्षिपे	क्षिपावहे	क्षिपामहे

लङ्

प्र० अक्षिपत्	अक्षिपताम्	अक्षिपन्	अक्षिपत	अक्षिपेताम्	अक्षिपन्त
म० अक्षिप	अक्षिपतम्	अक्षिपत	अक्षिपथा	अक्षिपेथाम्	अक्षिपध्वम्
उ० अक्षिपम्	अक्षिपाव	अक्षिपाम	अक्षिपे	अक्षिपावहि	अक्षिपामहि

लोट्

प्र० क्षिपतु	क्षिपताम्	क्षिपन्तु	क्षिपताम्	क्षिपेताम्	क्षिपन्ताम्
म० क्षिप	क्षिपतम्	क्षिपत	क्षिपस्व	क्षिपेथाम्	क्षिपध्वम्
उ० क्षिपाणि[1]	क्षिपाव	क्षिपाम	क्षिपै	क्षिपावहै	क्षिपामहै

विधिलिङ्

प्र० क्षिपेत्	क्षिपेताम्	क्षिपेयु	क्षिपेत	क्षिपेयाताम्	क्षिपेरन्
म० क्षिपे	क्षिपेतम्	क्षिपेत	क्षिपेथा	क्षिपेयाथाम्	क्षिपेध्वम्
उ० क्षिपेयम्	क्षिपेव	क्षिपेम	क्षिपेय	क्षिपेवहि	क्षिपेमहि

चुरादिगण (दशम गण)

चुर् (चुराना) उभयपदी

पर०		लट्			आ०
प्र० चोरयति	चोरयत	चोरयन्ति	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० चोरयसि	चोरयथ	चोरयथ	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० चोरयामि	चोरयाव	चोरयाम	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

लङ्—पर०

प्र०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म०	अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत
उ०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

लङ्—आ०

प्र०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्

१ न् के स्थान पर ण् के लिए देखो नियम ४१ ।

उ०				अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि
	पर०		लोट्			आ०
प्र०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म०	चोरय	चोरयतम्	चोरयत	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
	पर०		विधिलिङ्			आ०
प्र०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयु	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म०	चोरये.	चोरयेतम्	चोरयेत	चोरयेथा	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

सूचना—अन्य धातुओ के रूप इसी प्रकार चलाने चाहिएं।

३६४ धातु के उपधा या अन्त मे दीर्घ ॠ होगा और उसे गुण या वृद्धि यदि नही होता है तो उस ॠ के स्थान पर इर् हो जाता है।[1] यदि ॠ से पहले पवर्ग या व् होता है तो उसे उर् हो जाएगा। इस इर् और उर् के इ और उ को दीर्घ हो जाएगा यदि बाद मे कोई व्यजन होगा तो। जैसे—जॄ (४ पर०, वृद्ध होना)—जीर्यति, अजीर्यत्, इत्यादि। कॄ (६ पर०)—किरति, अकिरत्, इत्यादि। किर् के बाद स्वर अ है, अत इ को दीर्घ नही हुआ। कॄत् (१० उ०)—कीर्तयति-ते, अकीर्तयत्-त, इत्यादि।

३६५. र् या व् अन्त वाली धातु की उपधा के इ, उ, ऋ या ऌ को दीर्घ हो जाता है, यदि उसके बाद कोई व्यजन हो तो।[2] जैसे—उर्द् (१ आ०, मापना, खेलना)—ऊर्दते। इसी प्रकार कुर्द्, खुर्द्, गुर्द् (सभी आ० है और खेलना अर्थ है), हुर्छ् (दुष्टता या दुर्जनता करना), मुर्छ् (मूर्छित होना), स्फुर्छ् (फैलाना, भूलना), स्फुर्ज् (गरजना, चमकना), उर्व्, तुर्व्, थुर्व्, दुर्व्, धुर्व् (सभी हिंसार्थक हैं), गुर्व् (यत्न करना), मुर्व् आदि (ये सभी पर० है)। ये सभी भ्वादिगणी धातुएं हैं। इनकी उपधा के स्वर को दीर्घ हो जाता है। दिव् (४ पर०)—दीव्यति। इसी प्रकार सिव्-सीव्यति, ष्ठिव्-ष्ठीव्यति, आदि।

---

१. ॠत इद्धातो. (७-१-१००)। उरण् रपरः (१-१-५१)। हलि च (८-२-७७)।

२. हलि च। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः स्याद् हलि। (सि० कौ०)।

भ्वादिगणी, दिवादिगणी, तुदादिगणी और चुरादिगणी धातुएँ, जिनके रूप विशेष प्रकार से बनते हैं।

भ्वादिगण

गुप् (रक्षा करना)—गोपायति।[१]

धूप् (गर्म करना)—धूपायति।

विच्छ् (जाना)—विच्छायति।

पण् (प्रशंसा करना)—पणायति। यदि इसका अर्थ व्यापार करना और शर्त लगाना होगा तो इसका रूप पणते बनेगा।

गुह्[२] (उ०, छिपाना, गुप्त रखना)—गूहति-ते।

कम् (आ०, चाहना)—कामयते।

ष्ठिव्[३] (पर०, थूकना)—ष्ठीवति।

आ + चम् (पीना, आचमन करना)—आचामति।

भ्राश् और भ्लाश्[४] (आ०, चमकना)—भ्राशते, भ्राश्यते, भ्लाशते, भ्लाश्यते।

भ्रम् (पर०, घूमना) भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति।

क्रम् (पर०, घूमना) क्रामति, क्राम्यति।

लष् (उ०, चाहना) लषति-ते, लष्यति-ते।

धिन्व्[५] (पर०, प्रसन्न करना) धिनोति।

कृण्व् (पर०, मारना, दुख देना) कृणोति।

---

१. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आय: (३-१-२८)। इन धातुओ मे विकरण अ से पहले आय् लगता है। इस आय् से पहले गुप् के उ को गुण होता है।

२. ऊदुपधाया गोहः (६-४-८९)। गुह् धातु की उपधा के उ को दीर्घ हो जाता है, जहाँ पर गुण होता है ऐसे अजादि प्रत्यय बाद मे होने पर। अत. सार्वधातुक लकारो मे दीर्घ होता है।

३. ष्ठिवुक्लमुचमां शिति (७-३-७५)। आङि चम इति वक्तव्यम् (वार्तिक)। सार्वधातुक लकारो मे इन धातुओ की उपधा को दीर्घ हो जाता है।

४. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः (३-१-७०)। इन धातुओ से सार्वधातुक लकारो मे श्यन् (य) वाला भी रूप बनता है।

५. धिन्विकृण्व्योर च (३-१-८०)। अतो लोपः (६-४-४८)। धिन्व् और कृण्व् धातु के व् के स्थान पर अ होता है और इनसे अ के स्थान पर उ विकरण होता है। उ होने पर पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है। इनके रूप स्वादिगणी धातुओ के तुल्य चलते हैं।

अक्ष्[1] (प०, व्याप्त होना)—अक्षति, अक्ष्णोति ।
तक्ष् (प०, छीलना)—तक्षति, तक्ष्णोति ।
ऋत् (निन्दा करना)—ऋतीयते ।
गम्[2] (पर०, जाना)—गच्छति ।
यम् (पर०, रोकना)—यच्छति ।
पा[3] (पर०, पीना)—पिबति ।
घ्रा (प०, सूंघना)—जिघ्रति ।
ध्मा (प०, फूंकना)—धमति ।
स्था (प०, रुकना)—तिष्ठति ।
म्ना (प०, सोचना)—मनति ।
दा (प०, देना)—यच्छति ।
दृश् (प०, देखना)—पश्यति ।
ऋ (प०, जाना)—ऋच्छति ।
सृ (प०, दौडना)—धावति ।
शद्[4] (उभ० नष्ट होना)—शीयते ।
सद् (प०, बैठना, नष्ट होना)—सीदति ।
दश्[5] (प०, काटना, डँसना)—दशति ।
सञ्ज् (प०, लगना)—सजति ।
स्वञ्ज् (आ०, मिलना)—स्वजते ।
रञ्ज् (उ०, रँगना) रजति, रजते ।
मृज् (प०, स्वच्छ करना)—मार्जति ।
जभ् (आ०, जभाई लेना)—जम्भते ।
कृप् (आ०, योग्य होना)—कल्पते ।
लस्ज् (आ०, लज्जित होना)—लज्जते ।
सस्ज् (प०, तैयार होना)—सज्जति ।

३६६. निम्नलिखित धातुओं से विशेष अर्थों मे सन् प्रत्यय होता है और इनके रूप सन्नन्त धातुओं के तुल्य चलते है । ये है—कित् (चिकित्सा करना)—चिकित्सति–ते, गुप् (निन्दा करना)–जुगुप्सते, तिज् (क्षमा करना, सहन करना)—तितिक्षते, बध् (घृणा करना)–बीभत्सते, दान् (सरल बनाना)–दीदांसति ते, मान् (जिज्ञासा करना, सोचना)–मीमांसते, शान् (तीक्ष्ण करना)–शीशांसति-ते । अन्य अर्थों मे इनके ये रूप बनते है—कित् (चाहना)—केतति, (रहना)—केतयति । दान् (काटना)—दानयति-ते, इत्यादि ।

३६७. कुछ धातुएँ ऐसी है, जिनमे सार्वधातुक लकारो मे उपधा मे न् नित्य

---

१. अक्ष् और तक्ष् धातुओं का जब पतला करना अर्थ होता है, तब ये विकल्प से स्वादिगणी हो जाती हैं ।
२. इषुगमियमां छः (७-३-७७) । छे च (देखो नियम ४४) ।
३. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः (७-३-७८) ।
४. शदेः शितः (१-३-६०) । शद् धातु सार्वधातुक लकारो में आत्मनेपदी है।
५. दंशसञ्जस्वञ्जां शपि (६-४-२५) । रञ्जेश्च (६-४-२६) । सार्वधातुक लकारों में इन धातुओं के न् (ञ्) का लोप हो जाता है ।

लगता है। जैसे—भिद् (काटना)—भिन्दति, अह् (जाना)—अहते, पिड् (पिंड बनाना)–पिण्डते, शुठ् (शुद्ध करना, जाना)—शुण्ठति, इत्यादि। कुछ धातुओ मे विकल्प से न् लगता है। जैसे—दृह् (दृढ होना)—दृंहति-दृहति, म्रुच् या म्लुच् (जाना)—म्रोचयति—म्रुचति, म्लोचयति–म्लुचति, लुच् (तोडना, चुनना)—लोचति–लुचति। ये सभी परस्मैपदी है। गुज् (आ०, गुजन करना) गोजते-गुजते, गृज् (प०, गरजना)—गर्जति-गृजति। इनके अतिरिक्त कुछ कम प्रचलित धातुएँ हैं।

दिवादिगण (चतुर्थ गण)

क्रम् (प०, जाना)–क्राम्यति।
जन् (आ०, उत्पन्न होना)–जायते।
शम्[1] (प०, शान्त होना)–शाम्यति।
तम् (प०, चाहना)–ताम्यति।
दम् (प०, शान्त करना)–दाम्यति।
श्रम् (प०, थकना)–श्राम्यति।
क्षम् (प०, सहन करना)–क्षाम्यति।
क्लम् (प०, थकना)–क्लाम्यति, क्लामति।
मद् (प०, उन्मत्त होना)–माद्यति।
यम् (प०, यत्न करना)–यस्यति, यसति। यदि सम् के अतिरिक्त और कोई उपमर्ग इससे पूर्व होगा तो यह केवल दिवादि० मे ही प्रयुक्त होगी। समस्यति-सयसति। परन्तु प्रयस्यति एक ही रूप होगा।
शो[2] (प०, छीलना)–श्यति।
छो (प०, काटना)–छ्यति।
सो (प०, नष्ट होना)–स्यति।
दो (प०, काटना)–द्यति।
भ्रश्-भ्रस् (प०, गिरना)–भ्रश्यति, भ्रस्यति।
रज् (उ०, रगना)–रज्यति-ते।
मिद् (प०, चिकना होना)–मेद्यति।
व्यध् (प०, बीधना)–विध्यति।

३६८. निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और दिवादि० दोनो गणो मे है—भ्राश्, भ्लाश्, भ्लाश्, काश् (सबका चमकना अर्थ है), डी (उडना)। सभी आत्मनेपदी हैं। भ्रम्, क्रम्, त्रस् (डरना), लष्, क्षीव् (थूकना), हृष् (प्रसन्न होना), श्लिष् (चिपकना, आलिंगन करना), शुध् (शुद्ध होना), सिध् (भ्वादि० शुभ-गमन, दिवादि० सिद्ध होना)। सभी परस्मै० हैं। मह् (१ आ०, ४ प०, सहन

---

१ शमामष्टाना दीर्घः श्यनि (७-३-७४)। इनमें से भ्रम् भ्वादिगण में है।
२ ओतः श्यनि (७-३-७१)। य बाद में होने पर इन चार धातुओ के अन्तिम ओ का लोप हो जाता है।

करना), भ्रश्, भ्रस्, भ्रंश्, भ्रंस् (गिरना), रञ्ज् (रँगना), शप् (शाप देना), बुध् (१ प०, ४ आ०, जानना), शुच् (१ प०, शोक करना, ४ उ०, दुखित होना), श्रम्, क्षम् (१ आ०, ४ प०) और स्विद् (४ प०, पसीने से युक्त होना, १ आ०, लिप्त होना)।

तुदादिगण (षष्ठ गण)

इष् (प०, चाहना)–इच्छति । कृत् (प०, काटना)–कृन्तति । उप+कृ, प्रति+कृ–उपस्किरति, प्रतिस्किरति । खिद् (प०, खिन्न होना)–खिन्दति । गॄ (प०, निगलना)–गिरति, गिलति । त्रुट् (प०, तोडना)–त्रुट्यति, त्रुटति । प्रच्छ् (प०, पूछना)–पृच्छति । भ्रस्ज् (उ०, भूनना)–भृज्जति-ते । मस्ज् (प०, नहाना)–मज्जति ।

व्रश्च् (प०, काटना)–वृश्चति । व्यच् (प०, धोखा देना)–विचति । विच्छ् (प०, जाना)–विच्छायति । सस्ज् (प०, जाना)–सज्जति । मुच् (उ०, छोडना)–मुञ्चति-ते । लिप् (उ०, लीपना)–लिम्पति-ते । लुप् (उ०, तोडना, काटना) लुम्पति-ते । विद्[1] (उ०, पाना)–विन्दति-ते । सिच् (उ०, सींचना)–सिञ्चति-ते । पिश् (प०, बनाना)–पिंशति ।

३६६. (क) निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और तुदादि० दोनों मे हैं—कृष् (१ प०, ६ उ०, जोतना, खींचना), घुट् (१ आ०, लौटना, ६ प०, चोट मारना), घुण् (१ आ०, ६ प०, चक्कर खाना, १ आ० लेना, प्राप्त करना), घूर्ण् (१ आ०, ६ प०, चक्कर खाना, इधर-उधर घूमना), छुर् (१ प०, काटना, ६ प०, घेरना, लपेटना), त्रुप्, त्रुम्प् (प०, मारना), सद् (प०, बैठना), मिष् (१ प०, सींचना, ६ प०, आँख खोलना), लट् (१ प०, हिलाना, मथना, ६ प०, ढकना, लगना), मुच् (१ आ०, धोखा देना, ६ उ०, छोडना, मुक्त करना), आदि ।

(ख) निम्नलिखित धातुएँ दिवादि० और तुदादि० दोनों मे हैं—क्षिप् (४ प०, ६ उ०, फेंकना), लुप् (४ प०, घबडा देना, ६ उ०, ले जाना, नष्ट

---

१. यह धातु चार विभिन्न अर्थों में ४ गणों में है—अदादि०, दिवादि०, तुदादि० और रुधादि० । निम्नलिखित कारिका में ये अर्थ आदि दिए गए हैं ।
सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् ॥

करना), लुभ् (४ प०, लोभ करना, घबडाना, ६ आ०, घबडा देना), सृज् (४ आ०, छोडना, भेजना, ४, ६ प०, उत्पन्न करना, बनाना)।

चुरादिगण (दशम गण)

धू[1] (प०, हिलाना)–धूनयति । प्री (प्र०, प्रसन्न करना)–प्रीणयति ।
अर्थ्–अर्थयति, अर्थापयति ।[2] गण्—गणयति, गणापयति ।[2]
लज्ज्—लज्जयति, लज्जापयति ।[2] वण्ट्–वण्टयति, वण्टापयति ।[2]

४००. चुरादिगण की निम्नलिखित धातुओं में स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है—अघ् (पाप करना), कथ् (कहना), क्षप् (भेजना, बिताना), गण् (गिनना), गल् (उ०, टपकाना, चुआना, आ० फेंकना), वर् (चुनना, पाना), ध्वन् (शब्द करना), मह् (आदर करना), रच् (बनाना), रस् (स्वाद लेना), रह् (छोडना, त्याग देना), शठ् (बुराई करना, धोखा देना), रट् (चिल्लाना, चीखना), पट् (बुनना) (फाडना अर्थ होगा तो पाटयति रूप बनेगा), स्तन् (गरजना), गद् (शब्द करना), पत् (जाना), कल् (गिनना), स्वर् (शब्द करना), पद् (आ०, जाना), जम् (बाँटना, विभक्त करना), वट् (बाँटना), लज् (चमकना), वर्ण् (छेद करना), छद् (छिपाना), चप् (पीसना), वस् (रहना), श्रथ् या श्लथ् (निर्बल होना), व्यय् (खर्च करना, देना), स्पृह् (चाहना), मृग् (ढूँढना), मृष् (सहन करना), कृप् (कृपा करना, निर्बल होना), कुण्, गुण् (गुणा करना, सम्मति देना), ग्रह् (आ० लेना) (इसका प्रेरणार्थक में ग्राहयति रूप भी बनता है), कुह् (आ०, आश्चर्ययुक्त करना, धोखा देना), पुट् (बाँधना, जोडना), स्फुट् (प्रकट होना), सुख् (सुखी करना) तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ।

४०१ चुरादिगण की कुछ धातुओं में सदा आत्मनेपद ही होना है, भले ही

---

१. कविरहस्य का निम्नलिखित श्लोक विभिन्न गणों में इस धातु के रूपों का उल्लेख करता है।

धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोकं,
चूतं धुनाति धुवति स्फुटितातिमुक्तम् ।
वायुर्विधूनयति चम्पकपुष्परेणून्
यत्कानने धवति चन्दनमञ्जरीश्च ॥

२. ये वैकल्पिक रूप शाकटायन आदि के मतानुसार हैं।

क्रिया का फल कर्ता को न मिले। ये हैं —अर्थ् (प्रार्थना करना, चाहना), कुह् (आश्चर्य में डालना, धोखा देना), चित् (सचेत होना, सोचना), दश् (काटना, डँसना), दस् (देखना, डँसना) (कुछ के मतानुसार यह दस् धातु है), डप् या डिप् (एकत्र करना), तन्त्र् (परिवार का पालन करना), मन्त्र् (गुप्त परामर्श करना), मृग् (ढूंढना, शिकार खेलना), स्पृश् (लेना, इकट्ठा करके बाँधना), तर्ज् और भर्त्स् (डाँटना), वस्त् और गन्ध् (चोट मारना, हानि पहुँचाना), विष्क् (मारना) (कुछ के मतानुसार हिष्क् धातु है), निष्क् (तोलना), लल् (चाहना), कण् (आँख मीचना), तुण् (भरना), भ्रूण् (डरना), शठ् (प्रशंसा करना), यक्ष् (पूजा करना), स्यम् (अनुमान करना), गुर् (चोट मारना), लक्ष् (देखना, निरीक्षण करना), कुत्स् (निन्दा करना), त्रुट् (काटना) (कुछ के मतानुसार कुट् धातु है), गल् (पिघला कर चुआना), भर्त् (देखना, फैलाना), कूट् (न देना, गड़बड़ करना), कुट् (काटना), वञ्च् (धोखा देना), वृष् (उत्पन्न करना, प्रमुख होना), मुद् (प्रसन्न करना), दिव् (रोना), गृ (जानना), विद् (जानना), मन् (रखना), यु (निन्दा करना) और कुस्म् (अनुचित ढंग से मुस्कराना)।

४०२ निम्नलिखित धातुएँ भ्वादि० और चुरादि० दोनों गणों में हैं—

युज् (मिलाना), पृच् (किसी काम से रखना), अर्च् (पूजा करना), ईर् (फेंकना), ली (पिघलाना), वृज् (छोड़ना, किसी काम से बचना), वृ (ढँकना), जृ, ज्रि (वृद्ध होना), रिच् (पृथक् करना, मिलाना), शिष् (कुछ शेष रहने देना), तप् (जलाना), तृप् (तृप्त होना) छृद् (जलाना), चृप्, छृप्, दृप् (जलाना), दृम्भ् (डरना), श्रथ् (मुक्त करना, मारना), मी (जाना), ग्रन्थ् (इकट्ठा करके बाँधना), शीक्, चीक् (सहन करना), अर्द् (मारना), हिंस् (हिंसा करना), अर्ह् (पूजा करना), आ+सद् (जाना, आक्रमण करना), शुन्ध् (पवित्र करना, शुद्ध करना), छद् (ढँकना), जुष् (सन्तुष्ट करना, अनुमान करना, मारना), प्री (प्रसन्न करना), श्रन्थ्, ग्रन्थ् (रचना करना, ठीक ढंग से रखना), आप् (पाना), तन् (फैलाना), चन् (विश्वास करना, चोट पहुँचाना), वद् (बनाना), वच् (कहना), मान् (आदर करना, पूजा करना), भू (आ०, पाना) (कुछ के मतानुसार भवति भी बनता है), गर्ह् (निन्दा करना), मार्ग् (ढूँढना), कण्ठ् (खेदपूर्वक स्मरण करना), मृज् (स्वच्छ करना), मृष् (सहन करना), धृष् (साहस

करना, जीतना), जस् (चोट पहुँचाना, हानि पहुँचाना), दिव् (१ प०, १० आ०, माँगना, पीडा देना), घुष् (घोषणा करना) तथा अन्य कुछ धातुएँ।

(२) भाग २

परिवर्तनशील अंग (Base) वाली धातुएँ

(गण २, ३, ५, ८ और ९)

४०३. तिङ प्रत्यय (Terminations) :—

परस्मैपद

लट्, लङ और लोट् मे वही तिङ प्रत्यय लगेंगे जो भाग १ की धातुओं के साथ लगते हैं। लोट् मध्यम पुरुष एक० मे हि लगेगा। विधिलिङ ये तिङ प्रत्यय लगते हैं :—

प्र०	यात्	याताम्	युस्
म०	यास्	यातम्	यात
उ०	याम्	याव	याम

आत्मनेपद

	लट्			लङ		
प्र०	ते	आते	अते	त	आताम्	अत
म०	से	आथे	ध्वे	थास्	आथाम्	ध्वम्
उ०	ए	वहे	महे	इ	वहि	महि
	लोट्			विधिलिङ		
प्र०	ताम्	आताम्	अताम्	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म०	स्व	आथाम्	ध्वम्	ईथा·	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ०	ऐ	आवहै	आमहै	ईय	ईवहि	ईमहि

४०४ द्वितीय भाग की धातुओ मे सार्वधातुक लकारो मे कई परिवर्तन होते हैं। अतएव इस विभाग मे तिङ प्रत्ययो को दो भागो मे बाँटा गया है। एक भाग को पित् या सबल (Strong)कहा जाता है और दूसरे भाग को ङित् या निर्बल (Weak) कहा जाता है। पित् प्रत्ययो वाले अग को पित् या सबल अग (The Strong base) कहा जा सकता है और ङित् प्रत्ययो वाले अग को ङित् या निर्बल अग (The Weak base)।

(क) पित् या सबल तिङ (The Strong Terminations) ये है

लट् और लङ् के सभी पुरुषों के एकवचन, लोट् लकार के परस्मैपद में प्रथम-पुरुष का एकवचन और उत्तमपुरुष के तीनों वचन तथा लोट् लकार के आत्मनेपद में उत्तमपुरुष के तीनों वचन।

(ख) शेष सभी तिङ् ङित् या निर्बल हैं।

४०५. सबल तिङों से पूर्व धातु के अन्तिम स्वरों को और उनके उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है।

स्वादि, तनादि और क्र्यादिगण (गण ५, ८ और ९)

४०६ स्वादिगण की धातुओं से नु विकरण लगता है और तनादिगण की धातुओं से उ विकरण।[१]

४०७. यदि कोई संयुक्त वर्ण पहले नहीं होगा तो अंग (Base) में अन्तिम उ का विकल्प से लोप हो जाएगा, बाद में व् या म् होगा तो। अजादि निर्बल या ङित् तिङ् बाद में होंगे तो उ को उव् हो जाएगा, यदि उ से पहले संयुक्त वर्ण होंगे तो। अन्य स्थानों पर उ को व् होगा। लोट् म० पु० एक० में यदि संयुक्त वर्ण पहले नहीं होगा तो उ के बाद हि का लोप हो जाएगा।

४०८ क्र्यादिगण में धातु और तिङ् के बीच में ना विकरण लगता है।[२] ना के बाद यदि अजादि ङित् तिङ् होंगे तो ना को न् हो जाता है और यदि हलादि ङित् तिङ् होंगे तो ना को नी हो जाता है।

४०९ (क) ना आदि बाद में होंगे तो धातु की उपधा में न् का लोप हो जाएगा। जैसे—ग्रन्थ् (एकत्र करके बाँधना) धातु के ग्रथ्नामि, ग्रथ्नीत, ग्रथ्नीमः आदि रूप होते हैं।

(ख) हलन्त धातुओं के बाद लोट् म० पु० एक० में हि के स्थान पर आन लगेगा। जैसे—मुष् (चुराना) का मुषाण रूप बनेगा।

उदाहरण

स्वादिगण (गण ५)

सु (रस निकालना), उभयपदी

	लट्				
	पर०			आ०	
प्र० सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति	सुनुते	सुन्वाते	सुन्वते

१. स्वादिभ्यः श्नुः (३-१-७३)। तनादिकृञ्भ्य उः (३-१-७९)।
२. क्र्यादिभ्यः श्ना (३-१-८१)।

म०	सुनोषि	सुनुथ	सुनुथ	सुनुषे	सुन्वाथे	सुनुध्वे
उ०	सुनोमि	सुनुव सुन्व	सुनुम सुन्म	सुन्वे	सुनुवहे सुन्वहे	सुनुमहे सुन्महे

पर० लङ् आ०

प्र०	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्	असुनुत	असुन्वाताम्	असुन्वत
म०	असुनो	असुनुतम्	असुनुत	असुनुथा	असुन्वाथाम्	असुनुध्वम्
उ०	असुनवम्	असुनुव असुन्व	असुनुम असुन्म	असुन्वि	असुनुवहि असुन्वहि	असुनुमहि असुन्महि

लोट्

प्र०	सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु	सुनुताम्	सुन्वाताम्	सुन्वताम्
म०	सुनु	सुनुतम्	सुनुत	सुनुष्व	सुन्वाथाम्	सुनुध्वम्
उ०	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम	सुनवै	सुनवावहै	सुनवामहै

विधिलिङ्

प्र०	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयु	सुन्वीत	सुन्वीयाताम्	सुन्वीरन्
म०	सुनुया	सुनुयातम्	सुनुयात	सुन्वीथा	सुन्वीयाथाम्	सुन्वीध्वम्
उ०	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम	सुन्वीय	सुन्वीवहि	सुन्वीमहि

साध् (पूरा करना) पर० अश् (व्याप्त होना) आ०

लट्

प्र०	साध्नोति	साध्नुत	साध्नुवन्ति	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
म०	साध्नोषि	साध्नुथ	साध्नुथ	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
उ०	साध्नोमि	साध्नुव	साध्नुम	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लङ्

प्र०	असाध्नोत्	असाध्नुताम्	असाध्नुवन्	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
म०	असाध्नो	असाध्नुतम्	असाध्नुत	आश्नुथा	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
उ०	असाध्नवम्	असाध्नुव	असाध्नुम	आश्नुवि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

लोट्

प्र०	साध्नोतु	साध्नुताम्	साध्नुवन्तु	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
म०	साध्नुहि	साध्नुतम्	साध्नुत	अश्नुष्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
उ०	साध्नवानि	साध्नवाव	साध्नवाम	अश्नवै	अश्नवावहै	अश्नवामहै

विधिलिङ

प्र०	साध्नुयात्	साध्नुयाताम्	साध्नुयु	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
म०	साध्नुया	साध्नुयातम्	साध्नुयात	अश्नुवीथा	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
उ०	साध्नुयाम्	साध्नुयाव	साध्नुयाम	अश्नुवीय	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

तनादिगण (गण ८)

तन् (फैलाना), उभयपदी

लट्

	पर०			आ०		
प्र०	तनोति	तनुत	तन्वन्ति	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म०	तनोषि	तनुथ	तनुथ	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ०	तनोमि	तनुव , तन्व	तनुम , तन्म	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

लङ्

प्र०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म०	अतनो	अतनुतम्	अतनुत	अतनुथा	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उ०	अतनवम्	अतनुव } अतन्व	अतनुम } अतन्म	अतन्वि	अतनुवहि } अतन्वहि	अतनुमहि } अतन्महि

लोट्

प्र०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	तनुताम	तन्वाताम्	तन्वताम्
म०	तनु	तनुतम्	तनुत	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ०	तनवानि	तनवाव	तनवाम	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

विधिलिङ

प्र०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयु	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म०	तनुया	तनुयातम्	तनुयात	तन्वीथा	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

४१० **अनियमित चलने वाली धातुएँ**—कृ (करना) उभयपदी । सबल तिङो से पूर्व कृ को कर् हो जाता है और निर्बल तिङो में पूर्व कृ को कुर् । व और म बाद मे होगे तो अग के उ का लोप हो जाता है ।

कृ (करना)

लट्

	पर०			आ०		
प्र०	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते

म० करोषि	कुरुथ	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० करोमि	कुर्व	कुर्म	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लङ्

प्र० अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० अकरो	अकुरुतम्	अकुरुत	अकुरुथा	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लोट्

प्र० करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० कुरु	कुरुतम्	कुरुत	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० करवाणि	करवाव	करवाम	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ्

प्र० कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्यु	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० कुर्या	कुर्यातम्	कुर्यात	कुर्वीथा	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

क्र्यादिगण (गण ९)

क्री (खरीदना), उभयपदी

पर०		लट्		आ०	
प्र० क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० क्रीणासि	क्रीणीथ	क्रीणीथ	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० क्रीणामि	क्रीणीव	क्रीणीम	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लङ्

प्र० अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत	अक्रीणीथा	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

लोट्

प्र० क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

विधिलिङ

प्र०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म०	क्रीणीया	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात	क्रीणीया	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

स्तम्भ् (रोकना, विघ्न डालना) परस्मैपदी

	लट्			लङ		
प्र०	स्तम्नाति	स्तम्नीत	स्तम्नन्ति	अस्तम्नात्	अस्तम्नीताम्	अस्तम्नन्
म०	स्तम्नासि	स्तम्नीथ	स्तम्नीथ	अस्तम्ना	अस्तम्नीतम्	अस्तम्नीत
उ०	स्तम्नामि	स्तम्नीव	स्तम्नीम	अस्तम्नाम्	अस्तम्नीव	अस्तम्नीम

	लोट्			विधिलिङ		
प्र०	स्तम्नातु	स्तम्नीताम्	स्तम्नन्तु	स्तम्नीयात्	स्तम्नीयाताम्	स्तम्नीयु
म०	स्तभान	स्तम्नीतम्	स्तम्नीत	स्तम्नीया	स्तम्नीयातम्	स्तम्नीयात
उ०	स्तम्नानि	स्तम्नाव	स्तम्नाम	स्तम्नीयाम्	स्तम्नीयाव	स्तम्नीयाम

क्र्यादिगण की अनियमित धातुएँ

४११. क्षुभ् धातु के बाद ना के न् को ण् नही होता है।
जैसे—क्षुभ्नाति, क्षुभ्नीत , क्षुभ्नन्ति, आदि।

४१२ ज्ञा (जानना) को जा हो जाता है और ज्या (वृद्ध होना) को
जि। जैसे—जानाति—जानीते, जिनाति, आदि।

४१३ सार्वधातुक लकारो मे ग्रह् के र् को ऋ हो जाता है। जैसे—
गृह्णाति। लङ मे—अगृह्णात्, अगृह्णीताम्, अगृह्णन्, आदि।

४१४. सार्वधातुक लकारो मे निम्नलिखित धातुओ के अन्तिम स्वर को
अवश्य ह्रस्व हो जाता है—री, ली, व्ली, प्ली, धू, पू, लू, कॄ, वॄ, गॄ, जॄ, नॄ,
पॄ, भॄ, मॄ, वॄ, शॄ और स्तॄ, क्षी, भ्री और व्री को विकल्प से ह्रस्व होता है।
जैसे—धुनाति, धुनीते, स्तृणाति-स्तृणीते, वृणाति-वृणीते, आदि। क्षीणाति-
क्षिणाति, आदि।

४१५. निम्नलिखित धातुएँ स्वादि० और क्र्यादि० दोनो गणो मे है—
स्कु (उछलते हुए जाना, उठाना), स्तम्भ् (विघ्न डालना), स्तुम्भ्
(रोकना), स्कम्भ् और स्कुम्भ् (विघ्न डालना)। जैसे—स्कुनाति-स्कुनीते,
स्कुनोति- स्कुनुते, आदि।

अदादि, जुहोत्यादि और रुधादि गण (गण २, ३, ' ,

४१६ धातुओ के अन्तिम वर्ण और तिङो के प्रारम्भिक वर्णों के साथ होने वाली सन्धियो के लिए विशेष नियम —

(१) पित् (सबल) हलादि तिङ बाद मे होंगे तो धातु के अन्तिम उ को वृद्धि होगी । जैसे—नु+मि=नौमि ।

(२) ङित् (निर्बल) तिङ बाद मे होंगे तो धातु के अन्तिम इ या ई को इय् होगा और उ या ऊ को उव् ।

(३) झल् (अन्तस्थ और वर्ग के पचम अक्षरो को छोड कर सभी व्यजन) बाद मे होने पर तथा पदान्त मे धातु के अन्तिम ह् को ढ् हो जाता है और यदि धातु का प्रारम्भिक अक्षर द है तो पूर्वोक्त स्थितियो मे ह् को घ् होगा।

(४) वर्ग के चतुर्थ वर्ण के बाद तिङ प्रत्ययो के प्रारम्भिक त् या थ् को ध् हो जाता है ।

(५) स बाद मे होने पर ढ् या ष् को क् हो जाता है ।

(६) न् या म् के बाद श्, ष्, स् या ह् होंगे तो उन्हे अनुस्वार हो जाएगा । अन्य व्यजन बाद मे होंगे तो न् और म् को आगामी वर्ण जिस वर्ग का है, उस वर्ग का ही पचम अक्षर हो जाएगा ।

(७) यदि धातु अनेकाच् (एक से अधिक स्वरयुक्त) है और उसमे अन्तिम इ या ई से पहले सयुक्त वर्ण नही है तो उस इ या ई को य् हो जाएगा, यदि बाद मे अजादि ङित् (निर्बल) तिङ प्रत्यय होंगे तो ।

(८) लङ लकार मध्यम पुरुष एक० मे धातु के अन्तिम द् के स्थान पर विकल्प से र् या विसर्ग ( ) हो जाता है। धातु के अन्तिम स् को त् या द् हो जाता है, बाद मे त् हो तो, यदि बाद मे स् होगा तो त् या द् विकल्प से होगा ।

(९) यदि धातु के अन्त मे स् या क् से प्रारम्भ होने वाला कोई सयुक्त व्यजन है और उसके बाद झल् (अन्तस्थ और पचम वर्ण को छोडकर सभी व्यजन) होगा तो स् या क् का लोप हो जाएगा ।

सूचना—अध्याय २ और ३ म दिए गए सामान्य सन्धि नियम यहाँ पर भी लगेंगे ।

४१७ हु (जुहोत्यादि०, हवन करना) धातु और झल् (अन्तस्थ और

पचम वर्ण को छोडकर सभी व्यजन) अन्त वाली धातुओं के बाद परस्मैपद के लोट् मध्यम पु० एक० मे हि के स्थान पर धि हो जाता है।[1]

४१८. लङ् लकार प्र० पु० और म० पु० एक० के त् और म् का लोप हो जाता है, यदि वे किसी व्यजन के बाद होते हैं तो।

अदादिगण (गण २)

४१६. इस गण मे धातु से सीधे तिङ प्रत्यय लगते है। बीच मे कोई विकरण नही लगता है।

४२०. आकारान्त धातुओ से लङ लकार प्र० पु० बहुवचन मे विकल्प से उस् लगता है।

उदाहरण

या (जाना), पर०

	लट्			लङ	
प्र० याति	यात	यान्ति	अयात्	अयाताम्	अयान्, अयु-
म० यासि	याथ	याथ	अया	अयातम्	अयात
उ० यामि	याव	याम	अयाम्	अयाव	अयाम]
	लोट्			विधिलिङ	
प्र० यातु	याताम्	यान्तु	यायात	यायाताम्	यायु
म० याहि	यातम्	यात	याया	यायातम्	यायात
उ० यानि	याव	याम	यायाम्	यायाव	यायाम

इसी प्रकार इन धातुओ के रूप चलेगे--ख्या (प०, कहना), दा (प०, काटना), पा (प०, रक्षा करना), प्रा (प०, पूरा करना, भरना), प्सा (प०, खाना), द्रा (प०, भागना, भाग जाना), भा (प०, चमकना), मा (प०, तोलना, नापना), रा (प०, देना), ला (प०, देना, लेना), वा (प०, बहना), श्रा (प०, पकाना) और स्ना (प०, नहाना)।

४२१ नियम ४१६ से ४१८ मे दिए गए नियमो को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित निर्यमित धातुओ के रूप दिए जाते हैं-- वी, नु, जागृ, ईर्, चक्ष्, वश्, दुह्, लिह् और निञ्ज्।

१. हुझल्भ्यो हेर्धिः (६-४-१०१)।

वी (जाना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	वेति	वीत	वियन्ति	अवेत्	अवीताम्	अवियन् (अव्यन्)
म०	वेषि	वीथ	वीथ	अवे	अवीतम्	अवीत
उ०	वेमि	वीव	वीम	अवयम्	अवीव	अवीम

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	वेतु	वीताम्	वियन्तु	वीयात्	वीयाताम्	वीयुः
म०	वीहि	वीतम्	वीत	वीया	वीयातम्	वीयात
उ०	वयानि	वयाव	वयाम	वीयाम्	वीयाव	वीयाम

नु (स्तुति करना) पर०

	लोट्			लङ्		
प्र०	नौति	नुत	नुवन्ति	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
म०	नौषि	नुथ	नुथ	अनौ	अनुतम्	अनुत
उ०	नौमि	नुव	नुम	अनवम्	अनुव	अनुम

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	नौतु	नुताम्	नुवन्तु	नुयात्	नुयाताम्	नुयु
म०	नुहि	नुतम्	नुत	नुया	नुयातम्	नुयात
उ०	नवानि	नवाव	नवाम	नुयाम्	नुयाव	नुयाम

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—कु (प०, शब्द करना), क्षु (प०, छींकना, खाँसना), क्ष्णु (प०, तीक्ष्ण करना), द्यु (प०, आक्रमण करना), यु (प०, मिलना), सु (प०, प्रभुत्वयुक्त होना) और स्नु (प०, अर्क निकालना)।

जागृ (जागना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	जागर्ति	जागृत	जाग्रति[1]	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
म०	जागर्षि	जागृथ	जागृथ	अजागः	अजागृतम्	अजागृत
उ०	जागर्मि	जागृव	जागृम	अजागरम्	अजागृव	अजागृम

१. देखो आगे चकास् धातु।

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	जागर्तु	जागृताम्	जाग्रतु	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयु
म०	जागृहि	जागृतम्	जागृत	जागृया	जागृयातम्	जागृयात
उ०	जागराणि	जागराव	जागराम	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

ईर् (जाना) आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	ईर्ते	ईराते	ईरते	ऐर्त	ऐराताम्	ऐरत
म०	ईर्षे	ईराथे	ईर्ध्वे	ऐर्था	ऐराथाम्	ऐर्ध्वम्
उ०	ईरे	ईर्वहे	ईर्महे	ऐरि	ऐर्वहि	ऐर्महि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	ईर्ताम्	ईराताम्	ईरताम्	ईरीत	ईरीयाताम्	ईरीरन्
म०	ईर्ष्व	ईराथाम्	ईर्ध्वम्	ईरीया	ईरीयाथाम्	ईरीध्वम्
उ०	ईरै	ईरावहै	ईरामहै	ईरीय	ईरीवहि	ईरीमहि

चक्ष् (कहना), आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	चष्टे	चक्षाते	चक्षते	अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत
म०	चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे	अचष्ठा	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम्
उ०	चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे	अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्ष्महि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	चष्टाम्	चक्षाताम्	चक्षताम्	चक्षीत	चक्षीयाताम्	चक्षीरन्
म०	चक्ष्व	चक्षाथाम्	चड्ढ्वम्	चक्षीया	चक्षीयाथाम्	चक्षीध्वम्
उ०	चक्षै	चक्षावहै	चक्षामहै	चक्षीय	चक्षीवहि	चक्षीमहि

कश् (जाना), आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	कष्टे	कशाते	कशते	अकष्ट	अकशाताम्	अकशत
म०	कक्षे	कशाथे	कड्ढ्वे	अकष्ठा	अकशाथाम्	अकड्ढ्वम्
उ०	कशे	कश्वहे	कश्महे	अकशि	अकश्वहि	अकश्महि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	वष्टाम्	वशाताम्	वशताम्	वशीत	वशीयाताम्	वशीरन्
म०	वक्ष्व	वशाथाम्	वड्ढ्वम्	वशीया	वशीयाथाम्	वशीध्वम्
उ०	वशै	वशावहै	वशामहै	वशीय	वशीवहि	वशीमहि

दुह् (दुहना), उभयपदी

	पर०	लट्		आ०		
प्र०	दोग्धि	दुग्धः	दुहन्ति	दुग्धे	दुहाते	दुहते
म०	धोक्षि[1]	दुग्धः	दुग्ध	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे
उ०	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः	दुहे	दुह्वहे	दुह्महे

लङ्

प्र०	अधोक् ग्	अदुग्धाम्	अदुहन्	अदुग्ध	अदुहाताम्	अदुहत
म०	अधोक्-ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	अदुग्धाः	अदुहाथाम्	अदुग्ध्वम्
उ०	अदोहम्	अदुह्व	अदुह्म	अदुहि	अदुह्वहि	अदुह्महि

लोट्

प्र०	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु	दुग्धाम्	दुहाताम्	दुहताम्
म०	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	धुक्ष्व	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्
उ०	दोहानि	दोहाव	दोहाम	दोहै	दोहावहै	दोहामहै

विधिलिङ्

प्र०	दुह्यात्	दुह्याताम्	दुह्युः	दुहीत	दुहीयाताम्	दुहीरन्
म०	दुह्याः	दुह्यातम्	दुह्यात	दुहीथाः	दुहीयाथाम्	दुहीध्वम्
उ०	दुह्याम्	दुह्याव	दुह्याम	दुहीय	दुहीवहि	दुहीमहि

इसी प्रकार दिह् धातु के रूप चलेंगे। दुह् के उ के स्थान पर इ कर दें और ओ के स्थान पर ए।

लङ्

			अलीढ	अलिहाताम्	अलिहत
प्र० अलेट्-ड्	अलीढाम्	अलिहन्	अलीढा	अलिहाथाम्	अलीढ्वम्
म० अलेट्-ड्	अलीढम्	अलीढ	अलिहि	अलिह्वहि	अलिह्महि
उ० अलेहम्	अलिह्व	अलिह्म			

लोट्

			लीढाम्	लिहाताम्	लिहताम्
प्र० लेढु	लीढाम्	लिहन्तु	लिक्ष्व	लिहाथाम्	लीढ्वम्
म० लीढि	लीढम्	लीढ	लेहै	लेहावहै	लेहामहै
उ० लेहानि	लेहाव	लेहाम			

विधिलिङ्

			लिहीत	लिहीयाताम्	लिहीरन्
प्र० लिह्यात्	लिह्याताम्	लिह्युः			इत्यादि ।
	इत्यादि ।				

निञ्ज्[1] (शुद्ध करना), आत्मनेपदी

लट्			लङ्		
			अनिङ्क्त	अनिञ्जाताम्	अनिञ्जत
प्र० निङ्क्ते	निञ्जाते	निञ्जते	अनिङ्क्था	अनिञ्जाथाम्	अनिङ्ग्ध्वम्
म० निङ्क्षे	निञ्जाथे	निङ्ग्ध्वे	अनिञ्जि	अनिञ्ज्वहि	अनिञ्ज्महि
उ० निञ्जे	निञ्ज्वहे	निञ्ज्महे			

लोट्			विधिलिङ्		
			निञ्जीत	निञ्जीयाताम्	निञ्जीरन्
प्र० निङ्क्ताम्	निञ्जाताम्	निञ्जताम्	निञ्जीथा	निञ्जीयाथाम्	निञ्जीध्वम्
म० निङ्क्ष्व	निञ्जाथाम्	निङ्ग्ध्वम्	निञ्जीय	निञ्जीवहि	निञ्जीमहि
उ० निञ्जै	निञ्जावहै	निञ्जामहै			

अनियमित धातुएँ

अदादिगण की बहुत सी धातुओं के रूप अनियमित रूप से चलते हैं । उनका यहाँ पर अकारादि-क्रम से वर्णन किया जाता है ।

४२२. अद् (प०, खाना) के लङ् लकार प्र० पु० और म० पु० एक० में क्रमशः आदत् और आद रूप बनते हैं। अन्यत्र इसके रूप नियमित ढंग से चलते हैं।

अद् (खाना), पर०

लट्			लङ्		
प्र० अत्ति	अत्त	अदन्ति	आदत्	आत्ताम्	आदन्

1. इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—शिञ्ज्, विञ्ज्, पिञ्ज्, पृञ्ज्, वृज्, वृञ्ज्, पृच् । ये सभी आत्मनेपदी हैं ।

म० अत्सि	अत्थ	अत्थ	आद.	आत्तम्	आत्त
उ० अद्मि	अद्व	अद्म.	आदम्	आद्व	आद्म
	लोट्			विधिलिङ्	
प्र० अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० अद्धि	अत्तम्	अत्त	अद्याः	आद्यातम्	अद्यात
उ० अदानि	अदाव	अदाम	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

४२३ निम्नलिखित धातुओ मे धातु और प्रत्यय के बीच मे इ लगता है, बाद मे य को छोडकर कोई भी व्यजन हो तो। इनमे लङ् लकार मे प्र० पु० और म० पु० एक० मे ई या अ बीच मे लगता है। ये धातुएँ हैं—अन् (प०, साँस लेना), जक्ष् (प०, खाना), रुद् (प०, रोना), श्वस् (प०, साँस लेना) और स्वप् (प०, सोना)।

अन् (साँस लेना), पर०

	लट्			लङ्	
प्र० अनिति	अनित.	अनन्ति	आनीत् आनत्	आनिताम्	आनन्
म० अनिषि	अनिथ.	अनिथ	आनीः आन.	आनितम्	आनित
उ० अनिमि	अनिव.	अनिम	आनम्	आनिव	आनिम
	लोट्			विधिलिङ्	
प्र० अनितु	अनिताम्	अनन्तु	अन्यात्	अन्याताम्	अन्युः
म० अनिहि	अनितम्	अनित	अन्याः	अन्यातम्	अन्यात
उ० अनानि	अनाव	अनाम	अन्याम्	अन्याव	अन्याम

एक० रोदिति, उ० पु० रोदिमि, रुदिव, रुदिम । लङ—प्र० पु० एक० अरोदीत्-अरोदत्, म० पु० एक०-अरोदी-अरोद, उ० पु० एक० अरोदम् । लोट्—प्र० पु० एक० रोदितु, म० पु० एक० रुदिहि, उ० पु० एक० रोदानि । विधिलिङ—प्र० पु० एक०—रुद्यात्, आदि ।

४२४ अस् (प०, कहीं पर आत्मनेपदी भी है[१]) (होना) । ङित् प्रत्यय बाद में होने पर अस् के अ का लोप हो जाता है । स् या ध्व बाद में होगा तो अस् के स् का लोप हो जाता है । लङ में प्र० पु० और म० पु० एक० में बीच में ई लगता है । अन्य कई कारणों से यह अनियमित है ।

अस् (होना) उभयपदी

	पर०		लट्		आ०	
प्र०	अस्ति	स्त:	सन्ति	स्ते	साते	सते
म०	असि	स्थ:	स्थ	से	साथे	ध्वे
उ०	अस्मि	स्व:	स्म:	हे	स्वहे	स्महे
			लङ्			
प्र०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्	आस्त	आसाताम्	आसत
म०	आसी	आस्तम्	आस्त	आस्था:	आसाथाम्	आध्वम्
उ०	आसम्	आस्व	आस्म	आसि	आस्वहि	आस्महि
			लोट्			
प्र०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु	स्ताम्	साताम्	सताम्
म०	एधि	स्तम्	स्त	स्व	साथाम्	ध्वम्
उ०	असानि	असाव	असाम	असै	असावहै	असामहै
			विधिलिङ			
प्र०	स्यात्	स्याताम्	स्यु:	सीत	सीयाताम्	सीरन्
म०	स्या:	स्यातम्	स्यात	सीथा:	सीयाथाम्	सीध्वम्
उ०	स्याम्	स्याव	स्याम	सीय	सीवहि	सीमहि

४२५ आस् (बैठना) आ० । इसके भी स् का लोप होता है, ध्व बाद में होने पर ।

१. कुछ स्थानों पर अस् धातु आत्मनेपदी है । देखो-भट्टिकाव्य (२-३५) अन्यो व्यतिस्ते तु ममापि धर्मः, आदि । यहाँ पर इसका कर्मव्यतिहार (एक का काम दूसरे के द्वारा किया जाना) अर्थ है

आस् (बैठना), आत्मने०

	लट्			लङ्	
प्र० आस्ते	आसाते	आसते	आस्त	आसाताम्	आसत
म० आस्से	आसाथे	आध्वे	आस्था	आसाथाम्	आध्वम्
उ० आसे	आस्वहे	आस्महे	आसि	आस्वहि	आस्महि

	लोट्			विधिलिङ्	
प्र० आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
म० आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्	आसीथा	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उ० आसै	आसावहै	आसामहै	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

इसी प्रकार वस् (आ०, पहनना) धातु के रूप चलेंगे।

४२६. इ (प०, जाना)[1] धातु के इ को य् हो जाता है, बाद मे अजादि ङित् प्रत्यय होने पर। लट्—प्र० पु० एति इत यन्ति। लङ्—प्र० पु० एक० ऐत्, म० पु० एक० ऐ, उ० पु० आयम् ऐव ऐम। लोट्—प्र० म० उ० एक०—एतु, इहि, अयानि। लोट् प्र० पु० बहु० यन्तु।

अधि+इ[2] (आ०, पढ़ना) के रूप नियमित रूप से चलते है। जैसे—

अधि+इ (पढ़ना), आत्मने०

	लट्			लङ्	
प्र० अधीते	अधीयाते	अधीयते	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे	अध्यैथा	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० अधीये	अधीवहे	अधीमहे	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

---

१. ई (प०, जाना) के रूप यी धातु के तुल्य चलते हैं। लट् एति ईत इयन्ति। लोट्—प्र० पु० बहु० इयन्तु, म० पु० एक० ईहि।

२. अधि+इ (पर०, याद करना) के रूप इ धातु के तुल्य चलेंगे। लट्—प्र० पु०बहु० अधियन्ति। कुछ आचार्यों का मत है कि इसके रूप केवल आर्धधातुक लकारों में ही इ धातु के तुल्य चलेंगे। उनके मतानुसार लट् प्र० पु०बहु० में अधीयन्ति रूप होगा। अपने मत के समर्थन में उन्होंने भट्टि० (३-१८) की यह पंक्ति उद्धृत की है—ससीतयो राघवयोरधीयन्०। केचित्तु आर्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहुः। तन्मते यण्न। (सि० कौ०)।

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्	अधीयीथा	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

४२७ ईड् (आ०, स्तुति करना) और ईश् (आ०, स्वामी होना), इन दोनों धातुओं में स् और ध्व से पहले इ लग जाता है, लङ् म० पु० बहु० को छोड़कर।

ईड् (स्तुति), आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	ईट्टे	ईडाते	ईडते	ऐट्ट	ऐडाताम्	ऐडत
म०	ईडिषे	ईडाथे	ईडिध्वे	ऐट्ठा	ऐडाथाम्	ऐड्ढ्वम्
उ०	ईडे	ईड्वहे	ईड्महे	ऐडि	ऐड्वहि	ऐड्महि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	ईट्टाम्	ईडाताम्	ईडताम्	ईडीत	ईडीयाताम्	ईडीरन्
म०	ईडिष्व	ईडाथाम्	ईडिध्वम्	ईडीथा	ईडीयाथाम्	ईडीध्वम्
उ०	ईडै	ईडावहै	ईडामहै	ईडीय	ईडीवहि	ईडीमहि

इसी प्रकार ईश् धातु के रूप चलेंगे। लट् म० पु०—ईशिषे ईशाथे ईशिध्वे। लङ्—प्र० पु० एक० ऐष्ट, म० पु० एक०, ऐष्ठा उ० पु० एक० ऐशि, म० पु० बहु० ऐड्ढ्वम्। लोट्—म० पु० बहु० ईशिध्वम् उ० पु० एक० ईशै। विधिलिङ्—प्र० पु० एक० ईशीत।

४२८ ऊर्णु (ढँकना, उभयपदी)—इसको हलादि पित् (सार्व०) तिङ् बाद में होने पर विकल्प से उ को औ होता है लङ् प्र० पु० और म० पु० एक० को छोड़कर।

ऊर्णु (ढकना)—उभयपदी

लट्

	पर०			आ०		
प्र०	ऊर्णोति-ऊर्णौति	ऊर्णुत	ऊर्णुवन्ति	ऊर्णुते	ऊर्णुवाते	ऊर्णुवते
म०	ऊर्णोषि-ऊर्णौषि	ऊर्णुथ	ऊर्णुथ	ऊर्णुषे	ऊर्णुवाथे	ऊर्णुध्वे
उ०	ऊर्णोमि-ऊर्णौमि	ऊर्णुव	ऊर्णुम	ऊर्णुवे	ऊर्णुवहे	ऊर्णुमहे

लङ्

प्र० और्णोत् और्णुताम् और्णुवन् और्णुत और्णुवाताम् और्णुवत
म० और्णोः और्णुतम् और्णुत और्णुथाः और्णुवाथाम् और्णुध्वम्
उ० और्णवम् और्णुव और्णुम और्णुवि और्णुवहि और्णुमहि

लोट्

प्र० ऊर्णोतु-ऊर्णौतु ऊर्णुताम् ऊर्णुवन्तु ऊर्णुताम् ऊर्णुवाताम् ऊर्णुवताम्
म० ऊर्णुहि ऊर्णुतम् ऊर्णुत ऊर्णुष्व ऊर्णुवाथाम् ऊर्णुध्वम्
उ० *ऊर्णवानि ऊर्णवाव ऊर्णवाम ऊर्णवै ऊर्णवावहै ऊर्णवामहै*

विधिलिङ्

प्र० ऊर्णुयात् ऊर्णुयाताम् ऊर्णुयुः ऊर्णुवीत ऊर्णुवीयाताम् ऊर्णुवीरन्
म० ऊर्णुयाः ऊर्णुयातम् ऊर्णुयात ऊर्णुवीथाः ऊर्णुवीयाथाम् ऊर्णुवीध्वम्
उ० ऊर्णुयाम् ऊर्णुयाव ऊर्णुयाम ऊर्णुवीय ऊर्णुवीवहि ऊर्णुवीमहि

४२६. चकास् (प०, चमकना) । चकास्, जक्ष्, जागृ, दरिद्रा और शास् धातुओं को प्र० पु० बहु० में प्रत्यय में न् नहीं लगता है । इन धातुओं में लङ् लकार प्र० पु० बहु० में उस् लगता है । लोट् म० पु० एक० में चकास् के चकाद्धि-चकाधि रूप होते हैं ।

चकास् (चमकना) पर०

उदाहरण

लट् — लङ्

प्र० चकास्ति चकास्तः चकासति अचकात्-द् अचकास्ताम् अचकासुः
म० चकास्सि चकास्थः चकास्थ अचका- अचकास्तम् अचकास्त
अचकात्-द्
उ० चकास्मि चकास्वः चकास्मः अचकासम् अचकास्व अचकास्म

लोट् — विधिलिङ्

प्र० चकास्तु चकास्ताम् चकासतु चकास्यात् चकास्याताम् चकास्युः
म० चकाद्धि-धि चकास्तम् चकास्त चकास्याः चकास्यातम् चकास्यात
उ० चकासानि चकासाव चकासाम चकास्याम् चकास्याव चकास्याम

शास्—पर० (देखो ऊपर अस् और शास् धातु)

	लट्			लङ्		
प्र०	जक्षिति	जक्षित	जक्षति	अजक्षीत्, अजक्षत्	अजक्षिताम्	अजक्षुः
म०	जक्षिषि	जक्षिथ	जक्षिथ	अजक्षी-अजक्ष	अजक्षितम्	अजक्षित
उ०	जक्षिमि	जक्षिव	जक्षिम	अजक्षम्	अजक्षिव	अजक्षिम
	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु	जक्ष्यात्	जक्ष्याताम्	जक्ष्यु
म०	जक्षिहि	जक्षितम्	जक्षित	जक्ष्या	जक्ष्यातम्	जक्ष्यात
उ०	जक्षाणि	जक्षाव	जक्षाम	जक्ष्याम्	जक्ष्याव	जक्ष्याम

४३० दरिद्रा (प०, दरिद्र होना)। अजादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर दरिद्रा के आ का लोप हो जाता है और हलादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर दरिद्रा के आ को इ हो जाता है।

दरिद्रा--पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	दरिद्राति	दरिद्रित	दरिद्रति	अदरिद्रात	अदरिद्रिताम्	अदरिद्रु
म०	दरिद्रासि	दरिद्रिथ	दरिद्रिथ	अदरिद्रा	अदरिद्रितम्	अदरिद्रित
उ०	दरिद्रामि	दरिद्रिव	दरिद्रिम	अदरिद्राम्	अदरिद्रिव	अदरिद्रिम
	लोट्			लिधिलिङ		
प्र०	दरिद्रातु	दरिद्रिताम्	दरिद्रतु	दरिद्रियात्	दरिद्रियाताम्	दरिद्रियु
म०	दरिद्रिहि	दरिद्रितम्	दरिद्रित	दरिद्रिया	दरिद्रियातम्	दरिद्रियात
उ०	दरिद्राणि	दरिद्राव	दरिद्राम	दरिद्रियाम्	दरिद्रियाव	दरिद्रियाम

४३१ द्विष् (द्वेष करना)--उभयपदी। इसके पर० लङ् प्र० पु० बहु० में विकल्प से उस् होता है।

द्विष्--उभयपदी

	लट्					
प्र०	द्वेष्टि	द्विष्ट	द्विषन्ति	द्विष्टे	द्विषाते	द्विषते
म०	द्वेक्षि	द्विष्ठ	द्विष्ठ	द्विक्षे	द्विषाथे	द्विड्ढ्वे
उ०	द्वेष्मि	द्विष्व	द्विष्म	द्विष्वे	द्विष्वहे	द्विष्महे

लङ्

प्र०	अद्वेट्-ड्	अद्विष्टाम्	अद्विषन्-अद्विषु	अद्विष्ट	अद्विषाताम्	अद्विषत
म०	अद्वेट्-ड्	अद्विष्टम्	अद्विष्ट	अद्विष्ठा	अद्विषाथाम्	अद्विड्ढ्वम्
उ०	अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म	अद्विषि	अद्विष्वहि	अद्विष्महि

लोट्

प्र०	द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विषन्तु	द्विष्टाम्	द्विषाताम्	द्विषताम्
म०	द्विड्ढि	द्विष्टम्	द्विष्ट	द्विक्ष्व	द्विषाथाम्	द्विड्ढ्वम्
उ०	द्वेषाणि	द्वेषाव	द्वेषाम	द्वेषै	द्वेषावहै	द्वेषामहै

विधिलिङ्

प्र०	द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्युः	द्विषीत	द्विषीयाताम्	द्विषीरन्
म०	द्विष्याः	द्विष्यातम्	द्विष्यात	द्विषीथाः	द्विषीयाथाम्	द्विषीध्वम्
उ०	द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम	द्विषीय	द्विषीवहि	द्विषीमहि

४३२. ब्रू (कहना) उभयपदी। इसमें हलादि पित् (सबल) प्रत्ययों में पूर्व ई लगता है।

ब्रू—उभयपदी

लट्

प्र०	ब्रवीति-आह	ब्रूतः-आहतुः	ब्रुवन्ति-आहुः	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म०	ब्रवीषि-आत्थ	ब्रूथः-आहथुः	ब्रूथ	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

लङ्

प्र०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
म०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

लोट्

प्र०	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म०	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधिलिङ

प्र०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

४३३ मृज् (प०, साफ करना)। इसके ऋ को पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर वृद्धि अवश्य होती है और अजादि ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर वृद्धि विकल्प से होती है।

मृज्—पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	मार्ष्टि	मृष्टः	मार्जन्ति, मृजन्ति	अमार्ट्-ड्	अमृष्टाम्	अमार्जन्, अमृजन्
म०	मार्क्षि	मृष्ठः	मृष्ठ	अमार्ट्-ड्	अमृष्टम्	अमृष्ट
उ०	मार्ज्मि	मृज्वः	मृज्मः	अमार्जम्	अमृज्व	अमृज्म

	लोट्			विधिलिङ		
प्र०	मार्ष्टु	मृष्टाम्	मार्जन्तु, मृजन्तु	मृज्यात्	मृज्याताम्	मृज्युः
म०	मृड्ढि	मृष्टम्	मृष्ट	मृज्याः	मृज्यातम्	मृज्यात
उ०	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम	मृज्याम्	मृज्याव	मृज्याम

४३४ वच् (प०, बोलना)। इसके विषय में मत है कि इसका लट् प्र० पु० बहु० में प्रयोग नहीं होता है। कुछ के मतानुसार इसका बहुवचन-मात्र में ही प्रयोग नहीं होता है और कुछ के मतानुसार इसका प्र० पु० बहु० में ही प्रयोग नहीं होता है।[1]

वच्—पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	वक्ति	वक्तः	—[1]	अवक्-ग्	अवक्ताम्	अवचन्
म०	वक्षि	वक्थः	वक्थ	अवक्-ग्	अवक्तम्	अवक्त
उ०	वच्मि	वच्वः	वच्मः	अवचम्	अवच्व	अवच्म

१ अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते। बहुवचनपर इत्यन्ये। झिपर इत्यपरे। (सि० कौ०)

म०	विद्या	विद्यातम्	विद्यात
उ०	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

४३७ शास्[1] (प०, शासन करना, शिक्षा देना)। हलादि ङित् प्रत्यय बाद में होने पर इसके आ को इ हो जाता है। देखो पहले चकास् धातु। (पृष्ठ २७२)

शास्—पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	शास्ति	शिष्टः	शासति	अशात् द्	अशिष्टाम्	अशासुः
म०	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	अशाः, अशात्-द्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ०	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
म०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उ०	शासानि	शासाव	शासाम	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

४३८ शी (आ०, सोना)। शी के ई को सभी तिङ् प्रत्ययों से पूर्व गुण हो जाता है। विधिलिङ् को छोड़कर अन्य सार्वधातुक लकारों में प्र० पु० बहु० में प्रत्यय से पहले र् और लग जाता है।

शी (सोना), आ०

	लट्			लङ्		
प्र०	शेते	शयाते	शेरते	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म०	शेषे	शयाथे	शेध्वे	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ०	शये	शेवहे	शेमहे	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ०	शयै	शयावहै	शयामहै	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

४३९. सू (आ०, जन्म देना)। इसको पित् (सबल) प्रत्ययों में पूर्व गुण नहीं होता है।

१ आ + शास् धातु आत्मनेपदी है। इसके रूप आस् के तुल्य चलाने चाहिएं।

सू—(जन्म देना), आ०

	लट्			लङ्		
प्र०	सूते	सुवाते	सुवते	असूत	असुवाताम्	असुवत
म०	सूषे	सुवाथे	सूध्वे	असूथा	असुवाथाम्	असूध्वम्
उ०	सुवे	सूवहे	सूमहे	असुवि	असूवहि	असूमहि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
म०	सूष्व	सुवाथाम्	सूध्वम्	सुवीथा	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
उ०	सुवै	सुवावहै	सुवामहै	सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि

४४० स्तु (उ०, स्तुति करना), तु (प०, बढ़ना) और रु (प०, शब्द करना) धातुओं में हलादि तिङों से पूर्व विकल्प से ई लगता है।

स्तु—उभयपदी

	पर०	लट्		आत्मने०		
प्र०	स्तौति,	स्तुत ,	स्तुवन्ति	स्तुते,	स्तुवाते	स्तुवते
	स्तवीति	स्तुवीत	"	स्तुवीते ।		
म०	स्तौषि,	स्तुथ ,	स्तुथ	स्तुषे,	स्तुवाथे	स्तुध्वे,
	स्तवीषि	स्तुवीथ	स्तुवीथ	स्तुवीषे		स्तुवीध्वे
उ०	स्तौमि,	स्तुव ,	स्तुम ,	स्तुवे	स्तुवहे,	स्तुमहे,
	स्तवीमि	स्तुवीव	स्तुवीम		स्तुवीवहे	स्तुवीमहे

लङ्

प्र०	अस्तौत्,	अस्तुताम्,	अस्तुवन्	अस्तुत,	अस्तुवाताम्	अस्तुवत
	अस्तवीत्	अस्तुवीताम्		अस्तुवीत		
म०	अस्तौ,	अस्तुतम्,	अस्तुत,	अस्तुथा,	अस्तुवाथाम्,	अस्तुध्वम्,
	अस्तवी	अस्तुवीतम्	अस्तुवीत	अस्तुवीथा		अस्तुवीध्वम्
उ०	अस्तवम्	अस्तुव,	अस्तुम	अस्तुवि,	अस्तुवहि,	अस्तुमहि,
		अस्तुवीव	अस्तुवीम		अस्तुवीवहि	अस्तुवीमहि

लोट्

प्र०	स्तौतु,	स्तुताम्,	स्तुवन्तु	स्तुताम्,	स्तुवाताम्	स्तुवताम्
	स्तवीतु	स्तुवीताम्		स्तुवीताम्		

म०	स्तुहि,	स्तुतम्,	स्तुत,	स्तुष्व,	स्तुवाथाम्	स्तुध्वम्,
	स्तुवीहि	स्तुवीतम्	स्तुवीत	स्तुवीष्व		स्तुवीध्वम्
उ०	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै

विधिलिङ्

प्र०	स्तुयात्,	स्तुयाताम्,	स्तुयुः,	स्तुवीत	स्तुवीयाताम्	स्तुवीरन्
	स्तुवीयात्	स्तुवीयाताम्	स्तुवीयुः			
म०	स्तुयाः,	स्तुयातम्,	स्तुयात	स्तुवीथाः	स्तुवीयाथाम्	स्तुवीध्वम्
	स्तुवीयाः	स्तुवीयातम्	स्तुवीयात			
उ०	स्तुयाम्,	स्तुयाव,	स्तुयाम,	स्तुवीय	स्तुवीवहि	स्तुवीमहि
	स्तुवीयाम्	स्तुवीयाव	स्तुवीयाम			

सूचना—इसी प्रकार तु और रु धातु के रूप चलेंगे।

४४१. हन् (प०, आ०, मारना, हिंसा करना)। ङित् (निर्बल) हलादि (अन्तस्थ और पंचम वर्ण को छोड़ कर सभी व्यंजन) प्रत्यय बाद में होने पर हन् के न् का लोप हो जाता है। अजादि प्रत्यय बाद में होने पर हन् के अ का लोप हो जाता है और ह को घ् हो जाता है। लोट् म० पु० एक० में जहि रूप बनता है।

हन् (हिंसा करना जाना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	हन्ति	हत	घ्नन्ति	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म०	हंसि	हथ	हथ	अहन्	अहतम्	अहत
उ०	हन्मि	हन्व	हन्म	अहनम्	अहन्व	अहन्म

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म०	जहि	हतम्	हत	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ०	हनानि	हनाव	हनाम	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

हन्[1]—आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	हते	घ्नाते	घ्नते	अहत	अघ्नाताम्	अघ्नत

1 कुछ अर्थों में यह धातु आत्मनेपदी है।

म० हंसे	हनाथे	हध्वे	अहथा	अघ्नाथाम्	अहध्वम्
उ० घ्ने	हन्वहे	हन्महे	अघ्नि	अहन्वहि	अहन्महि

लोट् विधिलिङ

प्र० हताम्	घ्नाताम्	घ्नताम्	घ्नीत	घ्नीयाताम्	घ्नीरन्
म० हस्व	घ्नाथाम्	हध्वम्	घ्नीथा	घ्नीयाथाम्	घ्नीध्वम्
उ० हनै	हनावहै	हनामहै	घ्नीय	घ्नीवहि	घ्नीमहि

४४२ ह्नु (छिपाना), आ०

लट् लङ

प्र० ह्नुते	ह्नुवाते	ह्नुवते	अह्नुत	अह्नुवाताम्	अह्नुवत
म० ह्नुषे	ह्नुवाथे	ह्नुध्वे	अह्नुथा	अह्नुवाथाम्	अह्नुध्वम्
उ० ह्नुवे	ह्नुवहे	ह्नुमहे	अह्नुवि	अह्नुवहि	अह्नुमहि

लोट् विधिलिङ

प्र० ह्नुताम्	ह्नुवाताम्	ह्नुवाताम्	ह्नुवीत	ह्नुवीयाताम्	ह्नुवीरन्
म० ह्नुष्व	ह्नुवाथाम्	ह्नुध्वम्	ह्नुवीथा	ह्नुवीयाथाम्	ह्नुवीध्वम्
उ० ह्नवै	ह्नवावहै	ह्नवामहै	ह्नुवीय	ह्नुवीवहि	ह्नुवीमहि

जुहोत्यादिगण (गण ३)

४४३. (क) इस गण में धातु का द्वित्व होकर अंग बनता है।

(ख) प्र० पु० बहु० में प्रत्यय का न् हट जाता है।

(ग) लङ प्र० पु० बहु० में पर० में प्रत्यय को उ हो जाता है और इसमें पूर्व धातु के आ का लोप हो जाता है तथा धातु के इ ई, उ ऊ और ऋ ॠ का गुण हो जाता है।

धातु को द्वित्व करने के नियम

४४४. धातु के प्रथम स्वर को, यदि कोई व्यंजन उसके साथ है तो उसके सहित, द्वित्व (दो बार पढ़ा जाना) होता है। जैसे—पत् का पपत, उख् का उउख् रूप होगा।

सूचना—द्वित्व होने पर धातु के प्रथम अक्षर को अभ्यास या द्वित्व अक्षर (Reduplicative Syllable) कहते हैं। जैसे—पपत् में पहला प, उउख् में पहला उ।

४४५ यदि धातु संयुक्त वर्ण से आरम्भ होती है तो अभ्यास में उस धातु का पहला वर्ण और स्वर शेष रहेगा। जैसे—प्रच्छ् का पप्रच्छ्।

(क) यदि धातु के संयुक्त वर्ण में पहला वर्ण ऊष्म (श्, ष्, स्) है और दूसरा वर्ण खर् (कठोर व्यंजन) है तो द्वित्व होने पर खर् (कठोर व्यंजन) ही शेष रहेगा। जैसे—स्पर्ध् का पस्पर्ध् और [illegible] होगा। परन्तु स्वन् का सस्वन् होगा।

४४६ अभ्यास (द्वित्व अक्षर) में महाप्राण (वर्ग के २, ४) का अल्प-प्राण (उसी वर्ग का १, ३) हो जाएगा। जैसे—छिद् का चिच्छिद्, धु का दुधु, भुज् का बुभुज्, इत्यादि।

४४७ द्वित्व होने पर अभ्यास में उपर्युक्त नियम के साथ यह नियम रहेगा—अभ्यास के कवर्ग को वैसा ही चवर्ग हो जाता है। अभ्यास के ह को ज् होता है। जैसे—क्रम्>कक्रम्>चक्रम्, खन्>खखन्>कखन्>चखन्, हृ>जहृ, आदि।

४४८ द्वित्व होने पर अभ्यास के दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर हो जाता है और अभ्यास के ऋ को अ हो जाता है। जैसे—धा>दधा, नी>निनी, कृ>चकृ, आदि।

४४९ द्वित्व होने पर अभ्यास में धातु की उपधा के ए ऐ को इ और ओ औ को उ हो जाता है। जैसे—सेव्>सिसेव्, ढौक्>डुढौक्, आदि।

उदाहरण

कि (जानना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	चिकेति	चिकित	चिक्यति	अचिकेत्	अचिकिताम्	अचिकयु
म०	चिकेषि	चिकिथ	चिकिथ	अचिके	अचिकितम्	अचिकित
उ०	चिकेमि	चिकिव	चिकिम	अचिकयम्	अचिकिव	अचिकिम
	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	चिकेतु	चिकिताम्	चिक्यतु	चिकियात्	चिकियाताम्	चिकियु
म०	चिकिहि	चिकितम्	चिकित	चिकिया	चिकियातम्	चिकियात
उ०	चिकयानि	चिकयाव	चिकयाम	चिकियाम्	चिकियाव	चिकियाम

हु (हवन करना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	जुहोति	जुहुत	जुह्वति	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवु-

म०	जुहोषि	जुहुथ	जुहुथ	अजुहो	अजुहुतम्	अजुहुत
उ०	जुहोमि	जुहुव	जुहुम.	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम
		लोट्			विधिलिङ्	
प्र०	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
म०	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत	जुहुया	जुहुयातम्	जुहुयात
उ०	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

ह्री (लज्जित होना), पर०

		लट्			लङ्	
प्र०	जिह्रेति	जिह्रीतः	जिह्रियति	अजिह्रेत्	अजिह्रीताम्	अजिह्रयुः
म०	जिह्रेषि	जिह्रीथ	जिह्रीथ	अजिह्रे	अजिह्रीतम्	अजिह्रीत
उ०	जिह्रेमि	जिह्रीव	जिह्रीम	अजिह्रयम्	अजिह्रीव	अजिह्रीम
		लोट्			विधिलिङ्	
प्र०	जिह्रेतु	जिह्रीताम्	जिह्रियतु	जिह्रीयात्	जिह्रीयाताम्	जिह्रीयुः
म०	जिह्रीहि	जिह्रीतम्	जिह्रीत	जिह्रीया	जिह्रीयातम्	जिह्रीयात
उ०	जिह्रयाणि	जिह्रयाव	जिह्रयाम	जिह्रीयाम्	जिह्रीयाव	जिह्रीयाम

अपवाद धातुएँ

४५० द्वित्व होने पर अभ्यास में इन धातुओं के स्वरों को इ हो जाता है—मा, हा (जाना), भृ, पृ या पॄ (पूरा करना) और ऋ धातु ।

४५१ द्वित्व होने पर अभ्यास में निज्, विज् और विष् धातुओं के इ को गुण ए हो जाता है और धातु के इ को अजादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर गुण नहीं होता है ।

४५२ द्वित्व होने के बाद दा और धा धातुओं के आ का लोप हो जाता है, ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर । म्, ध्व, त और थ बाद में होंगे तो दध् को धत् हो जाता है। लोट् म० पु० एक० परस्मै० में दा का देहि और धा का धेहि रूप होता है ।

४५३ हलादि ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर 'भी' के ई को विकल्प से ह्रस्व हो जाता है ।

(क) मा और हा (जाना) धातुओं को अजादि प्रत्यय बाद में होने पर

मिम् और जिह् हो जाता है तथा हलादि प्रत्यय वाद मे होने पर इन्हे मिमी और जिही हो जाता है।

४५४. हा (त्याग करना, छोडना) धातु को हलादि ङिन् प्रत्यय (विधि-लिङ को छोड कर) वाद मे होने पर जहि या जही हो जाता है और अजादि प्रत्यय वाद मे होने पर तथा विधिलिङ मे जह् हो जाता है, लोट् म० पु० एक० मे इसके ये रूप होते है—जहाहि, जहिहि और जहीहि।

उदाहरण

ऋ (जाना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	इयर्ति	इयृत	इय्रति	ऐय	ऐयृताम्	ऐयरु
म०	इयर्षि	इयृथ	इयृथ	ऐय	ऐयृतम्	ऐयृत
उ०	इयर्मि	इयृव	इयृम	ऐयरम्	ऐयृव	ऐयृम
	लोट्			विधि लिङ		
प्र०	इयर्तु	इयृताम्	इय्रतु	इयृयात्	इयृयाताम्	इयृयु
म०	इयृहि	इयृतम्	इयृत	इयृया	इयृयातम्	इयृयात
उ०	इयराणि	इयराव	इयराम	इयृयाम्	इयृयाव	इयृयाम

धा (धारण करना, रखना), उभयपदी

	पर०			आत्मने०		
	लट्					
प्र०	दधाति	धत्त	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
म०	दधासि	धत्थ	धत्थ	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ०	दधामि	दध्व	दध्म	दधे	दध्वहे	दध्महे
	लङ्					
प्र०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधु	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म०	अदधा	अधत्तम्	अधत्त	अधत्था	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि
	लोट्					
प्र०	दधातु	धत्ताम्	दधतु	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म०	धेहि	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
उ०	दधानि	दधाव	दधाम	दधै	दधावहै	दधामहै

विधिलिङ

प्र०	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म०	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

सूचना—इसी प्रकार दा धातु के रूप चलते हैं। धा धातु के रूपों में जहाँ पर ध् है, उसको द् कर देने से दा धातु के रूप बन जाएँगे।

निज् (स्वच्छ करना), उभयपदी

लट्

प्र०	नेनेक्ति	नेनिक्तः	नेनिजति	नेनिक्ते	नेनिजाते	नेनिजते
म०	नेनेक्षि	नेनिक्थः	नेनिक्थ	नेनिक्षे	नेनिजाथे	नेनिग्ध्वे
उ०	नेनेज्मि	नेनिज्वः	नेनिज्मः	नेनिजे	नेनिज्वहे	नेनिज्महे

लङ्

प्र०	अनेनेक्-ग्	अनेनिक्ताम्	अनेनिजुः	अनेनिक्त	अनेनिजाताम्	अनेनिजत
म०	अनेनेक्-ग्	अनेनिक्तम्	अनेनिक्त	अनेनिक्थाः	अनेनिजाथाम्	अनेनिग्ध्वम्
उ०	अनेनिजम्	अनेनिज्व	अनेनिज्म	अनेनिजि	अनेनिज्वहि	अनेनिज्महि

लोट्

प्र०	नेनेक्तु	नेनिक्ताम्	नेनिजतु	नेनिक्ताम्	नेनिजाताम्	नेनिजताम्
म०	नेनिग्धि	नेनिक्तम्	नेनिक्त	नेनिक्ष्व	नेनिजाथाम्	नेनिग्ध्वम्
उ०	नेनिजानि	नेनिजाव	नेनिजाम	नेनिजै	नेनिजावहै	नेनिजामहै

विधिलिङ

प्र०	नेनिज्यात्	नेनिज्याताम्	नेनिज्युः	नेनिजीत	नेनिजीयाताम्	नेनिजीरन्
म०	नेनिज्याः	नेनिज्यातम्	नेनिज्यात	नेनिजीथाः	नेनिजीयाथाम्	नेनिजीध्वम्
उ०	नेनिज्याम्	नेनिज्याव	नेनिज्याम	नेनिजीय	नेनिजीवहि	नेनिजीमहि

इसी प्रकार विज् (उभयपदी) धातु के रूप चलेंगे।

पॄ (रक्षा करना, भरना), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	पिपर्ति	पिपृतः	पिप्रति	अपिपः	अपिपृताम्	अपिपरुः
म०	पिपर्षि	पिपृथः	पिपृथ	अपिपः	अपिपृतम्	अपिपृत
उ०	पिपर्मि	पिपृवः	पिपृमः	अपिपरम्	अपिपृव	अपिपृम

	लोट्			विधिलिङ		
प्र०	पिपर्तु	पिपृताम्	पिप्रतु	पिपृयात्	पिपृयाताम्	पिपृयु
म०	पिपृहि	पिपृतम्	पिपृत	पिपृया	पिपृयातम्	पिपृयात
उ०	पिपराणि	पिपराव	पिपराम	पिपृयाम्	पिपृयाव	पिपृयाम

पॄ (रक्षा करना, भरना), पर०

	लट्			लङ		
प्र०	पिपर्ति	पिपूर्त[1]	पिपुरति	अपिप	अपिपूर्ताम्	अपिपरु
म०	पिपर्षि	पिपूर्थ	पिपूर्थ	अपिप	अपिपूर्तम्	अपिपूर्त
उ०	पिपर्मि	पिपूर्व	पिपूर्म	अपिपरम्	अपिपूर्व	अपिपूर्म

	लोट्			विधिलिङ		
प्र०	पिपर्तु	पिपूर्ताम्	पिपुरतु	पिपूर्यात्	पिपूर्याताम्	पिपूर्यु
म०	पिपूर्हि	पिपूर्तम्	पिपूर्त	पिपूर्या	पिपूर्यातम्	पिपूर्यात
उ०	पिपराणि	पिपराव	पिपराम	पिपूर्याम्	पिपूर्याव	पिपूर्याम

भी (डरना), पर०

	लट्			लङ		
प्र०	बिभेति	विभीत विभित	विभ्यति	अविभेत्	अविभीताम् अविभिताम्	अविभयु
म०	विभेषि	विभीथ विभिथ	विभीथ विभिथ	अबिभे	अबिभीतम् अविभितम्	अबिभीत अविभित
उ०	विभेमि	विभीव विभिव	विभीम विभिम	अविभयम्	अविभीव अविभिव	अविभीम अविभिम

	लाट्			विधिलिट		
प्र०	विभेतु	विभीताम् विभिताम्	विभ्यतु	विभीयात् विभियात्	'वभीयाताम् विभियाताम्	विभीयु विभियु
म०	विभीहि विभिहि	निभीतम् विभितम्	विभीत विभित	विभीया विभिया	विभीयातम् विभियातम्	विभीयात विभियात
उ०	निभयानि	विभयाव	विभयाम	विभीयाम् विभियाम्	विभीयाव विभियाव	विभीयाम त्रिभियाम

---

१ देखो नियम ३९४ ।

भृ (धारण करना, पालन करना), उभयपदी

	पर०			लट्	आ०	
प्र०	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म०	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ०	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लङ्

प्र०	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
म०	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
उ०	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

लोट्

प्र०	बिभर्तु	बिभृताम्	बिभ्रतु	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
म०	बिभृहि	बिभृतम्	बिभृत	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उ०	बिभराणि	बिभराव	बिभराम	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

विधिलिङ्

प्र०	बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः	बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम्	बिभ्रीरन्
म०	बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात	बिभ्रीथाः	बिभ्रीयाथाम्	बिभ्रीध्वम्
उ०	बिभृयाम्	बिभृयाव	बिभृयाम	बिभ्रीय	बिभ्रीवहि	बिभ्रीमहि

मा (तौलना, नापना, शब्द करना), आत्मने०

	लट्			लङ्		
प्र०	मिमीते	मिमाते	मिमते	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
म०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
उ०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
म०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उ०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

विष् (व्याप्त होना), उभयपदी

प्र०	वेवेष्टि	वेविष्टः	वेविषति	वेविष्टे	वेविषाते	वेविषते

				वेविपाथे	वेविड्ढ्वे
म० वेवेक्षि	वेविष्ठ	वेविष्ठ	वेविक्षे	वेविपाथे	वेविड्ढ्वे
उ० वेवेष्मि	वेविष्व	वेविष्मः	वेविषे	वेविष्वहे	वेविष्महे

लङ्

प्र० अवेवेट्-ड्	अवेविष्टाम्	अवेविषु	अवेविष्ट	अवेविषाताम्	अवेविषत
म० अवेवेट्-ड्	अवेविष्टम्	अवेविष्ट	अवेविष्ठा	अवेविषाथाम्	अवेविड्ढ्वम्
उ० अवेविषम्	अवेविष्व	अवेविष्म	अवेविषि	अवेविष्वहि	अवेविष्महि

लोट्

प्र० वेवेष्टु	वेविष्टाम्	वेविषतु	वेविष्टाम्	वेविषाताम्	वेविषताम्
म० वेविड्ढि	वेविष्टम्	वेविष्ट	वेविक्ष्व	वेविषाथाम्	वेविड्ढ्वम्
उ० वेविषाणि	वेविषाव	वेविषाम	वेविषै	वेविषावहै	वेविषामहै

विधिलिङ्

प्र० वेविष्यात्	वेविष्याताम्	वेविष्युः	वेविषीत	वेविषीयाताम्	वेविषीरन्
म० वेविष्याः	वेविष्यातम्	वेविष्यात	वेविषीष्ठाः	वेविषीयाथाम्	वेविषीध्वम्
उ० वेविष्याम्	वेविष्याव	वेविष्याम	वेविषीय	वेविषीवहि	वेविषीमहि

हा (छोडना), पर०

लट्			लङ्		
प्र० जहाति	जहीतः जहितः	जहति	अजहात्	अजहीताम् अजहिताम्	अजहुः
म० जहासि	जहीथः जहिथः	जहीथ जहिथ	अजहाः	अजहीतम् अजहितम्	अजहीत अजहित
उ० जहामि	जहीवः जहिवः	जहीमः जहिमः	अजहाम्	अजहीव अजहिव	अजहीम अजहिम

लोट्			विधिलिङ्		
प्र० जहातु	जहीताम् जहिताम्	जहतु	जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
म० जहाहि जहीहि जहिहि	जहीतम् जहितम्	जहीत जहित	जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
उ० जहानि	जहाव	जहाम	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

रुधादिगण (गण ७)

४५५ इस गण में पित् (सबल) प्रत्यय परे होने पर धातु के प्रथम स्वर और व्यंजन के बीच में न लगता है और ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर न् लगता है।

४५६ (क) धातु में पहले से न् होगा तो उसका लोप हो जाएगा। (ख) तृह् धातु में न के स्थान पर ने हो जाएगा, हलादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर।

उदाहरण

अञ्ज् (अंजन लगाना आदि), पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	अनक्ति	अङ्क्त	अञ्जन्ति	आनक्-ग्	आङ्क्ताम्	आञ्जन्
म०	अनक्षि	अङ्क्थ	अङ्क्थ	आनक्-ग्	आङ्क्तम्	आङ्क्त
उ०	अनज्मि	अञ्ज्व	अञ्ज्म	आनजम्	आञ्ज्व	आञ्ज्म

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	अनक्तु	अङ्क्ताम्	अञ्जन्तु	अञ्ज्यात्	अञ्ज्याताम्	अञ्ज्युः
म०	अङ्ग्धि	अङ्क्तम्	अङ्क्त	अञ्ज्याः	अञ्ज्यातम्	अञ्ज्यात
उ०	अनजानि	अनजाव	अनजाम	अञ्ज्याम्	अञ्ज्याव	अञ्ज्याम

इन्ध् (जलाना आदि), आ०

	लट्			लङ्		
प्र०	इन्द्धे[1]	इन्धाते	इन्धते	ऐन्द्ध	ऐन्धाताम्	ऐन्धत
म०	इन्त्से	इन्धाथे	इन्द्ध्वे	ऐन्द्धाः	ऐन्धाथाम्	ऐन्द्ध्वम्
उ०	इन्धे	इन्ध्वहे	इन्ध्महे	ऐन्धि	ऐन्ध्वहि	ऐन्ध्महि

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	इन्द्धाम्	इन्धाताम्	इन्धताम्	इन्धीत	इन्धीयाताम्	इन्धीरन्
म०	इन्त्स्व	इन्धाथाम्	इन्द्ध्वम्	इन्धीथाः	इन्धीयाथाम्	इन्धीध्वम्
उ०	इनधै	इनधावहै	इनधामहै	इन्धीय	इन्धीवहि	इन्धीमहि

---

१. इस धातु के द्ध् वाले स्थानों पर केवल ध् वाला भी रूप बनता है। जैसे—इन्धे, ऐन्धा, ऐन्ध्वम्, इन्धाम्, इन्ध्वम्, आदि। देखो नियम २० (क)।

क्षुद् (चूर्ण करना) उभयपदी

	पर०	लट्		आ०		
प्र०	क्षुणत्ति	क्षुन्त	क्षुन्दन्ति	क्षुन्ते	क्षुन्दाते	क्षुन्दते
म०	क्षुणत्सि	क्षुन्त्थ	क्षुन्त्थ	क्षुन्त्से	क्षुन्दाये	क्षुन्द्ध्वे
उ०	क्षुणद्मि	क्षुन्द्व	क्षुन्द्म	क्षुन्दे	क्षुन्द्वहे	क्षुन्द्महे

लङ्

प्र०	अक्षुणत्-द्	अक्षुन्ताम्	अक्षुन्दन्	अक्षुन्त	अक्षुन्दाताम्	अक्षुन्दत
म०	अक्षुणत्-द् अक्षुण	अक्षुन्तम्	अक्षुन्त	अक्षुन्त्था	अक्षुन्दाथाम्	अक्षुन्द्ध्वम्
उ०	अक्षुणदम्	अक्षुद्व	अक्षुन्द्म	अक्षुन्दि	अक्षुन्द्वहि	अक्षुन्द्महि

लोट्

प्र०	क्षुणत्तु	क्षुन्ताम्	क्षुन्दन्तु	क्षुन्ताम्	क्षुन्दाताम्	क्षुन्दताम्
म०	क्षुन्द्धि	क्षुन्तम्	क्षुन्त	क्षुन्त्स्व	क्षुन्दायाम्	क्षुन्द्ध्वम्
उ०	क्षुणदानि	क्षुणदाव	क्षुणदाम	क्षुणदै	क्षुणदावहै	क्षुणदामहै

विधिलिङ्

प्र०	क्षुन्द्यात्	क्षुन्द्याताम्	क्षुन्द्युः	क्षुन्दीत	क्षुन्दीयाताम्	क्षुन्दीरन्
म०	क्षुन्द्याः	क्षुन्द्यातम्	क्षुन्द्यात	क्षुन्दीथाः	क्षुन्दीयाथाम्	क्षुन्दीध्वम्
उ०	क्षुन्द्याम्	क्षुन्द्याव	क्षुन्द्याम	क्षुन्दीय	क्षुन्दीवहि	क्षुन्दीमहि

इसी प्रकार इन धातुओ के रूप चलेंगे--भिद् (उ०, तोड़ना), उन्द् (प०, गीला होना), खिद् (आ०, खिन्न होना), छिद् (उ०, काटना), छृद् (उ०, चमकना, खेलना), कृत् (प०, घेरना), तृद् (उ०, हिंसा करना, अनादर करना), विद् (आ०, जानना, विचारना)। उन्द् लट् प्र० पु० एक०—उनत्ति, कृत् लट् प्र० पु० एक०--कृणत्ति होगा।

तृह् (हिंसा करना) पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	तृणेढि	तृण्ढ	तृहन्ति	अतृणेट्-ड्	अतृण्ढाम्	अतृहन्
म०	तृणेक्षि	तृण्ढ	तृण्ढ	अतृणेट्-ड्	अतृण्ढम्	अतृण्ढ
उ०	तृणेह्मि	तृह्व	तृह्म	अतृणहम्	अतृह्व	अतृह्म

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	तृणेढु	तृण्ढाम्	तृहन्तु	तृह्यात्	तृह्याताम्	तृह्यु:
म०	तृण्ढि	तृण्ढम्	तृण्ढ	तृह्या	तृह्यातम्	तृह्यात
उ०	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम	तृह्याम्	तृह्याव	तृह्याम

पिष् (पीसना) पर०

	लट्			लङ्		
प्र०	पिनष्टि	पिष्ट:	पिषन्ति	अपिनट्-ड्	अपिष्टाम्	अपिषन्
म०	पिनक्षि	पिष्ठ	पिष्ठ	अपिनट्-ड्	अपिष्टम्	अपिष्ट
उ०	पिनष्मि	पिष्व	पिष्म	अपिनषम्	अपिष्व	अपिष्म

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	पिनष्टु	पिष्टाम्	पिषन्तु	पिष्यात्	पिष्याताम्	पिष्यु
म०	पिण्ड्ढि	पिष्टम्	पिष्ट	पिष्या	पिष्यातम्	पिष्यात
उ०	पिनषाणि	पिनषाव	पिनषाम	पिष्याम्	पिष्याव	पिष्याम

इसी प्रकार शिष् (प०, छाँटना, अन्तर करना) के रूप चलेंगे।

युज् (मिलाना) उभयपदी

	पर०		लट्		आ०	
प्र०	युनक्ति	युङ्क्त	युञ्जन्ति	युङ्क्ते	युञ्जाते	युञ्जते
म०	युनक्षि	युङ्क्थ	युङ्क्थ	युङ्क्षे	युञ्जाथे	युङ्ग्ध्वे
उ०	युनज्मि	युञ्ज्व	युञ्ज्म	युञ्जे	युञ्ज्वहे	युञ्ज्महे

			लङ्			
प्र०	अयुनक्-ग्	अयुङ्क्ताम्	अयुञ्जन्	अयुङ्क्त	अयुञ्जाताम्	अयुञ्जत
म०	अयुनक्-ग्	अयुङ्क्तम्	अयुङ्क्त	अयुङ्क्था	अयुञ्जाथाम्	अयुङ्ग्ध्वम्
उ०	अयुनजम्	अयुञ्ज्व	अयुञ्ज्म	अयुञ्जि	अयुञ्ज्वहि	अयुञ्ज्महि

			लोट्			
प्र०	युनक्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जन्तु	युङ्क्ताम्	युञ्जाताम्	युञ्जताम्
म०	युङ्ग्धि	युङ्क्तम्	युङ्क्त	युङ्क्ष्व	युञ्जाथाम्	युङ्ग्ध्वम्
उ०	युनजानि	युनजाव	युनजाम	युनजै	युनजावहै	युनजामहै

			विधिलिङ्			
प्र०	युञ्ज्यात्	युञ्ज्याताम्	युञ्ज्यु	युञ्जीत	युञ्जीयाताम्	युञ्जीरन्

म० युञ्ज्या	युञ्ज्यातम्	युञ्ज्यात	युञ्जीया	युञ्जीयाथाम्	युञ्जीध्वम्
उ० युञ्ज्याम्	युञ्ज्याव	युञ्ज्याम	युञ्जीय	युञ्जीवहि	युञ्जीमहि

इसी प्रकार इन धातुओ के रूप चलेंगे —भञ्ज् (प०, तोडना), भुज् (प०, रक्षा करना, आ० खाना), विज् (प०, हिलाना, कांपना) और वृज् (प०, छोडना)।

रिच् (खाली करना, रिक्त करना) उभयपदी

लट्

प्र० रिणक्ति	रिक्त	रिञ्चन्ति	रिक्ते	रिंचाते	रिंचते
म० रिणक्षि	रिक्थ	रिक्थ	रिंक्षे	रिंचाथे	रिंग्ध्वे
उ० रिणच्मि	रिंच्व	रिंच्म	रिंचे	रिंच्वहे	रिंच्महे

लङ्

प्र० अरिणक्-ग्	अरिंक्ताम्	अरिंचन्	अरिंक्त	अरिंचाताम्	अरिंचत
म० अरिणक्-ग्	अरिंक्तम्	अरिंक्त	अरिंक्था	अरिंचाथाम्	अरिंग्ध्वम्
उ० अरिणचम्	अरिंच्व	अरिंच्म	अरिंचि	अरिंच्वहि	अरिंच्महि

लोट्

प्र० रिणक्तु	रिंक्ताम्	रिञ्चन्तु	रिंक्ताम्	रिंचाताम्	रिंचताम्
म० रिंग्धि	रिंक्तम्	रिंक्त	रिंक्ष्व	रिंचाथाम्	रिंग्ध्वम्
उ० रिणचानि	रिणचाव	रिणचाम	रिणचै	रिणचावहै	रिणचामहै

विधिलिङ्

प्र० रिंच्यात्	रिंच्याताम्	रिंच्युः	रिंचीत	रिंचीयाताम्	रिंचीरन्
म० रिंच्याः	रिंच्यातम्	रिंच्यात	रिंचीथाः	रिंचीयाथाम्	रिंचीध्वम्
उ० रिंच्याम्	रिंच्याव	रिंच्याम	रिंचीय	रिंचीवहि	रिंचीमहि

इसी प्रकार इन धातुओ के रूप चलेंगे—विच् (उ०, पृथक् करना), तञ्च् (प०, सकुचित करना) और पृच् (प०, मिलाना)।

रुध् (रोकना) उभयपदी

लट्

परः०			आ०		
प्र० रुणद्धि	रुन्द्धः[1]	रुन्धन्ति	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते

---

१. द्ध् वाले स्थानों पर केवल ध् वाला भी रूप बनता है। जैसे—रुन्धः आदि। देखो नियम २० (क)।

म० रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्द्ध्वे
उ० रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्म.	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

लङ्

प्र० अरुणत्-द्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० अरुणत्-द् अरुण.	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध	अरुन्द्धा.	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
उ० अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

लोट्

प्र० रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्
उ० रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

प्र० रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० रुन्ध्या·	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

हिंस् (हिंसा करना) पर०

लट्			लङ्		
प्र० हिनस्ति	हिंस्त.	हिंसन्ति	अहिनत्-द्	अहिंस्ताम्	अहिंसन्
म० हिनस्सि	हिंस्थ.	हिंस्थ	अहिन-त्-द्	अहिंस्तम्	अहिंस्त
उ० हिनस्मि	हिंस्वः	हिंस्म	अहिनसम्	अहिंस्व	अहिंस्म

लोट्			विधिलिङ्		
प्र० हिनस्तु	हिंस्ताम्	हिंसन्तु	हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्यु
म० हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त	हिंस्या.	हिंस्यातम्	हिंस्यात
उ० हिनसानि	हिनसाव	हिनसाम	हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम

२. सामान्य या आर्धधातुक लकार

(General or Non-conjugational Tenses and moods)

४५७. आर्धधातुक लकारो मे और प्रत्ययान्त धातुओ से बने रूपो मे य को छोडकर अन्य कोई भी हलादि प्रत्यय बाद मे होगा तो धातु और प्रत्यय के बीच मे नित्य या विकल्प से इ लगता है। यह नियम कुछ विशेष धातुओ मे ही लगता

है। जिन धातुओ मे इ नित्य लगता है, उन्हें सेट् (स + इट् अर्थात् इ-वाली) कहते हैं। जिन धातुओ मे इ विकल्प से लगता है, उन्हे वेट् (वा + इट्) कहते हैं और जिन धातुओ मे इ सर्वथा नही लगता है, उन्हे अनिट् (अन् + इट्, बिना इ-वाली) कहते हैं।

४५८. (क) अनेकाच् (एक से अधिक स्वर वाली) धातुओ, णिच् आदि प्रत्ययान्त धातुओ और चुरादिगण (गण १०) की धातुओ से इ नित्य लगता है। वे सेट् कहलाती हैं।

(ख) एकाच् (एक स्वर वाली) अजन्त धातुओ मे जिन धातुओं का निम्नलिखित कारिका मे उल्लेख है, वे सेट् (इ-वाली) हैं, शेष अनिट् हैं।

ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः ।

वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥

अर्थात् ये धातुएँ सेट् हैं—दीर्घ ऊकारान्त और दीर्घ ॠकारान्त तथा यु, रु, क्ष्णु, शी, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डी, श्रि, वृ (आ०, क्र्यादिगणी) और वृ (उ०, स्वादिगणी)। इनके अतिरिक्त सभी एकाच् अजन्त धातुएँ अनिट् हैं।

(ग) हलन्त एक अच् वाली धातुओ मे निम्नलिखित १०२ धातुएँ अनिट् हैं, शेष सेट् हैं।

शक्ल्[1] पच् मुच् रिच् वच् विच्, सिच् प्रच्छि त्यज् निजिर्भजः ।

भञ्ज् भुज् भ्रस्ज् मस्जि यज् युज् रुज्, रञ्ज् विजिर् स्वञ्जि, सञ्ज्, सृजः ॥१॥

---

१. निम्नलिखित कारिका मे धातुओ के अन्त्याक्षर और उनमे कितनी धातुएँ हैं, यह दिया गया है। अर्थात् ककारान्त, चकारान्त आदि कितनी धातुएँ अनिट् हैं, यह स्पष्ट किया गया है।

क च छ जा द ध न पा भ म शा. ष स हाः क्रमात् ।
१ ६ १ १५ १५ ११ २ १३ ३ ४ १० ११ २ ८
क च का ण न टाः ख डो ग घ ञा ष्ट स जाः स्मृताः ॥

इस कारिका की पहली पंक्ति मे धातुओं के अन्तिम हल् अक्षर दिए गए हैं। इससे विद्यार्थी तुरन्त जान सकते हैं कि ये व्यंजन अन्त वाली ही धातुएँ अनिट् हैं, शेष सेट् हैं। जैसे—पहली पंक्ति मे ट् वर्ण नहीं है, अतः ट् अन्त वाली कोई भी धातु अनिट् नहीं है। अतः कुट् को तुरन्त सेट् कहा जा सकता है। दूसरी पंक्ति मे क्रमशः यह दिया गया है कि अमुक व्यंजन अन्तवाली इतनी धातुएँ अनिट् हैं। संख्या के लिए वर्गों के अक्षर लिए गए हैं। जो

अद् क्षुद् खिद् छिद् तुदि नुदः, पद्य भिद् विद्यतिर्विनद् ।
शद् सदी स्विद्यति स्कन्दि, हदी क्रुध् क्षुधि बुध्यती ॥२॥
बन्धिर्युधिरुधी राधिर्, व्यध् शुध-साधिसिध्यती ।
मन्य हन्नाप् क्षिप् छुपि तप्, तिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥३॥
लिप् लुप् वप् शप् स्वप् सृपि यभ्, रभ् लभ् गम् नम् यमो रमिः ।
क्रुशिर्दंशिदिशी दृश् मृश्, रिश् रुश् लिश् विश् स्पृशः कृषि ॥४॥
त्विष् तुष् द्विष् दुष् पुष्य पिष् विष्, शिष् शुष् श्लिष्यतयो घसिः ।
वसतिर्दह् दिहिदुहो, नह् मिह् रुह् लिह् वहिस्तथा ॥५॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् ॥

(घ) निम्नलिखित धातुएँ वेट् (विकल्प से इ वाली) :

स्वरतिः सूयते सूते पञ्चमे नवमे च धूञ् ।
तनक्तिर्वृश्चतिश्चान्तावनक्तिश्च तनक्तिना ॥१॥
मार्ष्टि मार्जति जान्तेषु दान्तौ क्लिद्यति स्यन्दते ।
रध्यतिः सेधतिर्धान्तौ पान्ताः पञ्चैव कल्पते ॥२॥
गोपायतिस्तृप्यतिश्च त्रपते दृप्यतिस्तथा ।
मान्तौ क्षाम्यति क्षमतेऽश्नुते क्लिश्नाति नश्यति ॥३॥
शान्तास्त्रयोऽक्षतिश्च निष्कुष्णातिश्च तक्षति ।
त्वक्षतिश्च षकारान्ता ह्यथ हान्ताश्च गाहते ॥४॥
पदद्वये गूहतिश्च ऋकारोपान्त्यगर्हते ।
तृंहतिस्तृंहतिर्द्रुह्यतयो वृहति मुह्यति ॥५॥
स्तृहति स्निह्यति स्नुह्यत्येते वेट्का हि धातवः ।
अजन्ताना तु थल्येव वेट् स्यादन्यत्र सर्वदा[१] ॥६॥

वर्ण जिस संख्या पर है, उतनी संख्या समझनी चाहिए । जैसे—क पहला वर्ण है, अतः क से १ संख्या । च छठा वर्ण है, अतः च से ६ संख्या । ण १५वाँ वर्ण है, अतः ण से १५ संख्या, आदि । क् अन्त वाली अनिट् धातु क अर्थात् १ है । च् अन्त वाली अनिट् धातुएँ च् अर्थात् ६ हैं । छ् अन्त वाली अनिट् धातु क अर्थात् १ है । सुविधा के लिए कारिका की द्वितीय पंक्ति में संख्याएँ भी दे दी गई हैं ।

१. ये श्लोक तथा शुद्ध के द्वितीय भेद के श्लोक पूना ट्रेनिंग कालेज के विद्वान् शास्त्री श्री चिन्तामन आत्माराम केल्कर ने बनाए हैं ।

४५९. ए, ऐ और ओ अन्त वाली धातुओ को आ हो जाता है, अत वे आकारान्त के तुल्य मानी जाती है । इन धातुओ को भी गुण या वृद्धि वाले स्थानो पर आ हो जाता है—मि (५ आ०, फकना), मी (९ उ०, हिसा करना) और दी (४ आ०, नष्ट होना) । ली (९ प०, ४ आ०, चिपकना) को पूर्वोक्त स्थानो पर विकल्प से आ होता है ।

४६०. आर्धधातुक लकारो मे चुरादिगणी (गण १०) धातुओ मे अय् (अर्थात् अ रहित अय) शेष रहेगा । अम् से पहले धातुओ मे जो परिवर्तन होते हैं, वे होगे ।

४६१. इन धातुओ का सार्वधातुक लकारो वाला अग (Base) आर्धधातुक लकारो मे भी विकल्प से शेष रहेगा—गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन्, कम् और ऋत् ।

४६२. आर्धधातुक लकारो मे अस् को भू और ब्रू को वच् हो जाता है ।

४६३. तुदादिगण की निम्नलिखित कुछ धातुएँ हैं, जिनको पित् (सबल) प्रत्यय बाद मे होने पर भी गुण या वृद्धि नही होती है । इनको केवल इन स्थानो पर गुण या वृद्धि होती है—लिट् प्र० पु० और उ० पु० एक० का अ बाद में होने पर, प्रेरणार्थक अय बाद मे होने पर और कर्मवाच्य लुङ् प्र० पु० एक० का इ बाद मे होने पर । ये धातुएँ हैं—कुट्, पुट्, कुच्, गुज्, छुर्, स्फुट्, त्रुट्, लुट्, स्फुर्, गुर्, नू, धू, कु तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ ।

४६४. आर्धधातुक लकारो मे भ्रस्ज् के भ्रज्ज् और मर्ज् रूप हो जाते हैं ।

४६५. आर्धधातुक लकारो मे हलादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद मे होने पर सृज् को स्रज् और दृश् को द्रश् हो जाता है ।

४६६. विज् (६ आ०, ७ प०) धातु मे बीच मे होने वाला इट् (इ) ङित् होता है । ऊर्णु धातु मे यह इ विकल्प से ङित् होता है ।

४६७. दीधी (२ आ०, चमकना) और वेवी (२ आ०, जाना) धातुओ को किसी भी प्रत्यय के बाद मे होने पर गुण या वृद्धि नही होते हैं । बाद मे इ या य् होने पर इनके अन्तिम ई का लोप हो जाता है । आर्धधातुक लकारो मे इ से पहले दरिद्रा के भी आ का लोप हो जाता है । सन् प्रत्यय और लुङ् लकार मे इसके आ का लोप विकल्प से होता है ।

लुट्, लृट् और लृङ् लकार

(१) लुट् लकार (First Future)

इसको अनद्यतन भविष्य (Periphrastic Future) भी कहते हैं।

४६८ प्रत्यय —

	परस्मै०			आत्मने०	
प्र० ता[1]	तारौ	तार:	ता	तारौ	तार:
म० तासि	तास्थ:	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० तास्मि	तास्व:	तास्म:	ताहे	तास्वहे	तास्महे

४६९ इन प्रत्ययो से पहले सेट् धातुओ मे इ लगेगा, वेट् में विकल्प से और अनिट् म सर्वथा नही।

४७० ये सभी प्रत्यय पित् (सबल) है। अतएव ये बाद मे होंगे तो धातु के अन्तिम स्वर और धातु की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होगा।

४७१ ऋ उपधावाली अनिट् धातुओ के बाद झलादि (अन्तस्थ और वर्ग के पचम वर्ण को छोडकर सभी व्यजन) पित् (सबल) प्रत्यय होगा तो उपधा के ऋ को र विकल्प से हो जाएगा। जैसे—सृप्—सर्प्तास्मि, स्रप्तास्मि, आदि।

दा (देना) उभयपदी

	पर०			आ०	
प्र० दाता	दातारौ	दातार:	दाता	दातारौ	दातार:
म० दातासि	दातास्थ:	दातास्थ	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० दातास्मि	दातास्व:	दातास्म:	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

नी (उ०, ले जाना)—नेता नेतारौ नेतार:। उ० पु० नेतास्मि, नेतास्व:, नेतास्म:, नेताहे, नेतास्वहे, नेतास्महे।

पत् (प०)—पतिता पतितारौ पतितार:। उ० पु० पतितास्मि, पतितास्व:, पतितास्म:।

---

१. लुट् लकार के ये प्रत्यय इस प्रकार भी बनाए जा सकते हैं। तृच् प्रत्यय का प्रथमा एक० का ता रूप ले ले और बाद मे अस् (होना) धातु के लट् लकार के म० पु० और उ० पु० के रूप जोड दें। प्र० पु० मे प्रथमा के रूप ता तारौ तार: लगेंगे।

ईक्ष् (आ०)—ईक्षिता, ईक्षितारौ, ईक्षितार । उ० पु० ईक्षिताहे, ईक्षितास्वहे, ईक्षितास्महे ।

अनियमित धातुएँ

४७२ इन धातुओं में लुट् में विकल्प से इ लगता है—इष्, सह् (१ आ०), लुभ्, रिष् और रुष् । जैसे—प्र० एक० एषिता—एष्टा, सहिता—सोढा, लोभिता—लोब्धा, रेषिता—रेष्टा, रोषिता-रोष्टा ।

४७३ क्लृप् धातु लुट् में विकल्प से परस्मैपदी है और इसमें परस्मैपद होने पर इ नहीं लगता । जैसे—उ० पु० एक०—कल्पिताहे, कल्प्ताहे, कल्प्तास्मि ।

४७४. लिट् लकार को छोडकर अन्य सभी आर्धधातुक लकारों में ग्रह धातु के साथ इ के स्थान पर ई लगता है । जैसे—ग्रहीता, आदि ।

४७५. वृ और ॠकारान्त धातुओं के बाद इ को विकल्प से दीर्घ हो जाता है। इन स्थानों पर दीर्घ नहीं होगा—लिट् आशीर्लिङ् आत्मनेपद और परस्मैपदी लुङ् । जैसे—वृ का प्र० एक० वरिता वरीता, कॄ का करिता-करीता, आदि ।

४७६ झलादि (अन्तस्थ और पंचम वर्ण को छोडकर अन्य सभी व्यंजन) प्रत्यय बाद में होने पर मस्ज् और नश् धातु के अन्तिम व्यंजन से पूर्व न् और लग जाएगा । मस्ज् धातु में न् होने पर बीच में स् का लोप हो जाएगा । जैसे—मङ्क्ता आदि, नष्टा-नशिता । अन्य स्थानों पर मस्ज् के स् को ज् हो जाता है ।

४७७ अज् (१ प०, जाना) धातु को आर्धधातुक लकारों में वी हो जाता है । वलादि (य् को छोडकर सभी व्यंजन) आर्धधातुक बाद में होंगे तो विकल्प से वी होगा । जैसे—वेता-अजिता, वेष्यति-अजिष्यति, आदि ।

(२) लृट् (Second Future) और (३) लृङ् (Conditional)

४७८ लृट् के तिङ् प्रत्यय ये हैं —

	परस्मै०			आत्मने०		
प्र०	स्यति[1]	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म०	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ०	स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

१. ये तिङ् प्रत्यय इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं—स्य के बाद लट् लकार वाले तिङ् प्रत्यय लगाने से । म् और व् बाद में होने पर स्य के अ को दीर्घ हो जाएगा और अच् बाद में होने पर स्य के अ का लोप हो जाएगा ।

४७९. लृङ के तिङ प्रत्यय ये हैं —

प्र० स्यत्[1]	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० स्य	स्यतम्	स्यत	स्यथा	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

४८०. धातु के अन्तिम स् को त् हो जाता है, बाद मे यदि आर्धधातुक प्रत्यय का स् होगा तो ।

४८१. धातु की स्थिति के अनुसार इन प्रत्ययो से पहले इ लगेगा या नही लगेगा । सेट् मे इ लगेगा, वेट् मे विकल्प से और अनिट् मे नही । इन प्रत्ययो से पहले धातु के अन्तिम स्वर को और धातु की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होगा ।

४८२ जिस प्रकार लङ में धातु से पहले अ लगता है, उसी प्रकार लृङ में भी अ लगेगा ।

उदाहरण

लृट् (Second Future)

शक् (५ प०)			लभ् (१ आ०)		
प्र० शक्ष्यति	शक्ष्यत	शक्ष्यन्ति	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० शक्ष्यसि	शक्ष्यथ	शक्ष्यथ	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० शक्ष्यामि	शक्ष्याव	शक्ष्याम	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लृङ (Conditional)

प्र० अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० अशक्ष्य	अशक्ष्यतम्	अशक्ष्यत	अलप्स्यथा	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० अशक्ष्यम्	अशक्ष्याव	अशक्ष्याम	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

ग्रह—लृट्—ग्रहीष्यति-ग्रहीष्यते, लृङ—अग्रहीष्यत्-ष्यत, आदि ।

अनियमित धातुएँ

४८३ गम् (पर०), हन् और अनिट् ऋकारान्त धातुओ म लृट् और लृङ मे बीच मे इ लगता है । गम् (पर०) से सन् प्रत्यय होने पर भी इ लगेगा ।

---

१. ये तिङ प्रत्यय इस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं—स्य के बाद लङ लकार के तिङ प्रत्यय लगाने से । सामान्य सन्धि-नियम लगेंगे ।

इ (जाना) के स्थान पर गम् होने पर तथा अधि + इ (स्मरण करना) मे भी यह नियम लगेगा। लृट् मे—गमिष्यति, हनिष्यति, करिष्यति, आदि। लृङ मे—अगमिष्यत्, अहनिष्यत्, अकरिष्यत्, आदि।

४८४. क्लृप्, वृत्, वृध्, शृध् और स्यन्द् धातुएँ लृट्, लृङ और सन् प्रत्यय होने पर विकल्प से परस्मैपदी हो जाती है। परस्मैपदी होने पर इनमे बीच मे इ नही लगता है। लृट् मे—कल्पिष्यते, कल्प्स्यते, कल्प्स्यति; वर्तिष्यते, वर्त्स्यति,; वर्धिष्यते, वर्त्स्यति; शर्धिष्यते, शर्त्स्यति, स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यते, स्यन्त्स्यति, आदि। लृङ मे—अकल्पिष्यत, अकल्प्स्यत, अकल्प्स्यत्, अवर्तिष्यत, अवर्त्स्यत्; अवर्धिष्यत, अवर्त्स्यत्; अशर्धिष्यत, अशर्त्स्यत्, अस्यन्दिष्यत, अस्यन्त्स्यत, अस्यन्त्स्यत्।

४८५. वृत्, चृत्, छृद्, तृद् और नृत् धातुओ के बाद कोई सकारादि (लुङ के स् को छोडकर) आर्धधातुक प्रत्यय होगा तो इनमे इ विकल्प से लगेगा। जैसे—कृत्-कर्तिष्यति, कर्त्स्यति; अकर्तिष्यत्, अकर्त्स्यत्, आदि।

४८६. अधि + इ (आ०) मे इ के स्थान पर विकल्प से गा हो जाता है, लृङ और लुङ मे। निम्नलिखित धातुओ के अन्तिम स्वर के स्थान पर इ हो जाता है, हलादि डित् प्रत्यय बाद मे होने पर। ये धातुएँ हैं—दा (३ उ०, १ प०), धा, दो, दे, धे, मा, स्था, गा (इ २ प० के स्थान पर हुआ गा और अधि + इ के स्थान पर हुआ गा), पा, हा और सो। इ के स्थान पर हुए गा के बाद सभी तिङ डित् (निर्बल) होते हैं।

उदाहरण

प्र०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म०	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उ०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि
प्र०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
म०	अध्यगीष्यथा	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
उ०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

४८७. आगे कुछ कठिन रूप वाली धातुओ के लुट्, लृट् और लृङ के प्र० पु० एक० के रूप दिये जाते हैं। विद्यार्थी रूपो के द्वारा सम्बद्ध नियमो का ज्ञान प्राप्त करें।

धातु	लुट्	लृट्	लृङ्
भू	भविता	भविष्यति	अभविष्यत्
स्तॄ	स्तरिता	स्तरिष्यति-ते	अस्तरिष्यत्-त
	स्तरीता	स्तरीष्यति-ते	अस्तरीष्यत्-त
यु (२ प०)	यविता	यविष्यति	अयविष्यत्
शी	शयिता	शयिष्यते	अशयिष्यत
स्नु	स्नविता	स्नविष्यति	अस्नविष्यत्
श्वि	श्वयिता	श्वयिष्यति	अश्वयिष्यत्
श्रि	श्रयिता	श्रयिष्यति-ते	अश्रयिष्यत्-त
पच्	पक्ता	पक्ष्यति	अपक्ष्यत्
मुच्	मोक्ता	मोक्ष्यति	अमोक्ष्यत्
सिच्	सेक्ता	सेक्ष्यति	असेक्ष्यत्
भञ्ज्	भङ्क्ता	भङ्क्ष्यति	अभङ्क्ष्यत्
भुज्	भोक्ता	भोक्ष्यति	अभोक्ष्यत्
भ्रस्ज्	भ्रष्टा	भ्रक्ष्यति	अभ्रक्ष्यत्
	भर्ष्टा	भर्क्ष्यति	अभर्क्ष्यत्
मस्ज्	मङ्क्ता	मङ्क्ष्यति	अमङ्क्ष्यत्
रञ्ज्	रङ्क्ता	रङ्क्ष्यति	अरङ्क्ष्यत्
सृज्	स्रष्टा	स्रक्ष्यति	अस्रक्ष्यत्
अद्	अत्ता	अत्स्यति	आत्स्यत्
पद्	पत्ता	पत्स्यते	अपत्स्यत
स्कन्द्	स्कन्ता	स्कन्त्स्यति	अस्कन्त्स्यत्
बन्ध्	बन्द्धा	भन्त्स्यति	अभन्त्स्यत्
व्यध्	व्यद्धा	व्यत्स्यति	अव्यत्स्यत्
मन्	मन्ता	मंस्यते	अमंस्यत
तृप्	तर्पिता	तर्पिष्यति	अतर्पिष्यत्
	तर्प्ता, त्रप्ता	तर्प्स्यति, त्रप्स्यति	अतर्प्स्यत्, अत्रप्स्यत्
सम् + गम्	सगन्ता	सगंस्यते	समगंस्यत
दृश्	द्रष्टा	द्रक्ष्यति	अद्रक्ष्यत्

धातु	लुट्	लृट्	लृङ्
घस्	घस्ता	घत्स्यति	अघत्स्यत्
वस् (रहना)	वस्ता	वत्स्यति	अवत्स्यत्
दह्	दग्धा	धक्ष्यति	अधक्ष्यत्
नह्	नद्धा	नत्स्यति	अनत्स्यत्
वह्	वोढा[1]	वक्ष्यति	अवक्ष्यत्
	सेट् धातुएँ		
अञ्ज्	अञ्जिता	अञ्जिष्यति	आञ्जिष्यत्
	अङ्क्ता	अङ्क्ष्यति	आङ्क्ष्यत्
अश्	अशिता	अशिष्यते	आशिष्यत
	अष्टा	अक्ष्यते	आक्ष्यत
क्लिद्	क्लेदिता	क्लेदिष्यति	अक्लेदिष्यत्
	क्लेत्ता	क्लेत्स्यति	अक्लेत्स्यत्
क्लिश्	क्लेशिता	क्लेशिष्यति	अक्लेशिष्यत्
	क्लेष्टा	क्लेक्ष्यति	अक्लेक्ष्यत्
क्षम्	क्षमिता	क्षमिष्यते	अक्षमिष्यत
	क्षन्ता	क्षस्यते	अक्षाम्यत
गाह्	गाहिता	गाहिष्यते	अगाहिष्यत
	गाढा	घाक्ष्यते	अघाक्ष्यत
गुप्	गोपिता	गोपिष्यति	अगोपिष्यत्
	गोप्ता	गोप्स्यति	अगोप्स्यत्
	गोपायिता	गोपायिष्यति	अगोपायिष्यत्
गुह्	गूहिता	गूहिष्यति	अगूहिष्यत्
	गोढा	घोक्ष्यति	अघोक्ष्यत्
तक्ष्	तक्षिता	तक्षिष्यति	अतक्षिष्यत्
	तष्टा	तक्ष्यति	अतक्ष्यत्

---

१. वह् और सह् धातु के वोढा और सोढा रूपों में अ के स्
देखो नियम ५०६ में वह् धातु पर पाद-टिप्पणी।

धातु	लुट्	लृट्	लृङ्
त्रप्	त्रपिता	त्रपिष्यते	अत्रपिष्यत
	त्रप्ता	त्रप्स्यते	अत्रप्स्यत
धू	धविता	धविष्यति	अधविष्यत्
	धोता	धोष्यति	अधोष्यत्
तृह्	तर्हिता	तर्हिष्यति	अतर्हिष्यत्
	तर्ढा	तर्क्ष्यति	अतर्क्ष्यत्
मुह्	मोहिता	मोहिष्यति	अमोहिष्यत्
	मोग्धा, मोढा	मोक्ष्यति	अमोक्ष्यत्
मृज्	मार्जिता	मार्जिष्यति	अमार्जिष्यत्
	मार्ष्टा	मार्क्ष्यति	अमार्क्ष्यत्
रध्	रधिता[1]	रधिष्यति	अरधिष्यत्
	रद्धा	रत्स्यति	अरत्स्यत्
व्रश्च्	व्रश्चिता	व्रश्चिष्यति	अव्रश्चिष्यत्
	व्रष्टा	व्रक्ष्यति	अव्रक्ष्यत्
स्निह्	स्नेहिता,	स्नेहिष्यति	अस्नेहिष्यत्
	स्नेढा, स्नेग्धा[2]	स्नेक्ष्यति	अस्नेक्ष्यत्
स्वृ	स्वरिता, स्वर्ता	स्वरिष्यति[3]	अस्वरिष्यत्
कु	कुता	कुष्यति	अकुष्यत्
कुट्	कुटिता	कुटिष्यति	अकुटिष्यत्
धू (६)	धुविता	धुविष्यति	अधुविष्यत्
धूप्	धूपिता	धूपिष्यति	अधूपिष्यत्
	धूपायिता	धूपायिष्यति	अधूपायिष्यत्
विच्छ्	विच्छिता	विच्छिष्यति	अविच्छिष्यत्
	विच्छायिता	विच्छायिष्यति	अविच्छायिष्यत्
ऋत्	अर्तिता	अर्तिष्यते	आर्तिष्यत
	ऋतीयिता	ऋतीयिष्यते	आर्तीयिष्यत

१. देखो नियम ५०८ रध् धातु पर पाद-टिप्पणी । २ देखो नियम ५०८ दुह् धातु पर पाद-टिप्पणी । ३. स्वृ धातु लृट् और लृङ् में सेट् है ।

धातु	लुट्	लृट्	लृङ्
कम्	कमिता	कमिष्यते	अकमिष्यत
	कामयिता	कामयिष्यते	अकामयिष्यत
जभ्	जम्भिता[1]	जम्भिष्यते	अजम्भिष्यत
मि, मी	माता	मास्यति-ते	अमास्यत्-त
दी	दाता	दास्यते	अदास्यत
ली	लेता, लाता	लेष्यति, लास्यति	अलेष्यत्, अलास्यत्
चृत्	चर्तिता	चर्तिष्यति, चर्त्स्यति	अचर्तिष्यत्, अचर्त्स्यत्
छृद्	छर्दिता	छर्दिष्यति-ते	अच्छर्दिष्यत्-त
		छर्त्स्यति-ते	अच्छर्त्स्यत्-त

तृद् (उ०) और नृत् (प०) के इसी प्रकार रूप चलते हैं।

ऊर्णु	ऊर्णविता	ऊर्णविष्यति-ते	और्णविष्यत्-त
	ऊर्णुविता	ऊर्णुविष्यति-ते	और्णुविष्यत्-त
दरिद्रा	दरिद्रिता	दरिद्रिष्यति	अदरिद्रिष्यत्
दीधी	दीधिता	दीधिष्यते	अदीधिष्यत

इसी प्रकार वेवी के रूप चलते हैं।

(४) लिट् (Perfect)

४८८. लिट् दो प्रकार के हैं—(१) द्वित्व वाले (Reduplicative), (२) आम् अन्त वाले, जिनके बाद कृ आदि धातुओ का प्रयोग होता है, (Periphrastic)।

४८९. द्वित्व वाले लिट् सभी हलादि एकाच् धातुओ से तथा अ, आ, इ, उ और ऋ से प्रारम्भ होने वाली धातुओ से बनते हैं।

अपवाद धातुएँ—दय्, अय्, कास् और आस् धातुओ से सदा आम् अन्त वाले ही रूप लिट् मे बनते हैं।

४९०. आम् अन्त वाले लिट् इन धातुओ से बनते हैं—अ या आ (स्वाभाविक आ या सयुक्ताक्षर के कारण दीर्घ माना जाने वाला अ) को छोड़कर अन्य कोई भी अजादि धातु और सभी अनेकाच् धातुएँ। अनेकाच् धातुओं में चुरादिगण की धातुएँ और अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ भी सम्मिलित हैं।

---

१. देखो नियम ५०८ रध् धातु पर पाद-टिप्पणी।

अपवाद धातुएँ—ऊर्णु और ऋच्छ्। इनमे द्वित्व वाला लिट् होता है।

४६१ उष्, विद्, जागृ, भी, ह्री, भृ, हु और दरिद्रा धातुओं से दोनों प्रकार का लिट् बनता है।

द्वित्व वाला लिट् (Reduplicative Perfect)

४६२. नियम ४४४ से ४४९ मे वर्णित विधि से धातुओ को द्वित्व होता है।

४६३. लिट् के तिङ् प्रत्यय—

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र०	अ	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे
म०	थ	अथुस्	अ	से	आथे	ध्वे
उ०	अ	व	म	ए	वहे	महे

४६४. परस्मैपद मे एकवचन वाले तिङ् पित् (सवल) है, शेष ङित् (निर्बल) हैं। पित् (सवल) प्रत्ययो से पहले धातु की उपधा के ह्रस्व स्वरो को गुण हो जाता है। धातु के अन्तिम स्वरो तथा उपधा के अ को प्र० पु० एक० मे नित्य वृद्धि हो जाती है और उ० पु० एक० मे विकल्प से। म० पु० एक० मे धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है और उपधा के अ मे कोई परिवर्तन नही होता है।

४६५. थ, व, म, से, ध्वे, वहे और महे प्रत्ययो से पूर्व इ के लिए कुछ विशेष नियम[1]—(देखो नियम ४५७)

(क) कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु को छोडकर सेट् और अनिट् सभी धातुओ से इ होता है। सम् + कृ और वृ को थ बाद मे होने पर इ होता है। जैसे—सचस्करिथ, ववरिथ।

(ख) ऋ धातु को छोडकर अन्य सभी ऋकारान्त अनिट् धातुओ से थ से पहले इ नही होता है। जैसे—स्मृ का सस्मर्थ, परन्तु ऋ का आरिथ होगा।

(ग) अजन्त धातुओ को और उपधा मे अ वाली धातुओ को थ बाद मे होने पर विकल्प से इ होता है।

---

१. कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि (७-२-१३)
अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥ (सि० कौ०)

५०१. अकारादि और सयुक्ताक्षर अन्त वाली धातुओं तथा अश् (व्याप्त होना) और ऋच्छ् (जाना) धातुओं के अभ्यास के वर्ण के बाद न् लग जाता है। अभ्यास के अ को आ हो जाता है। जैसे—अञ्ज् का अअञ्ज्+अ=अ+न्+अञ्ज्+अ=आनञ्ज्+अ=आनञ्ज। इसी प्रकार अर्द् का आनर्द और अश् का आनशे, आदि।

५०२. सम्प्रसारण का अर्थ है—य् को इ, व् को उ, र् को ऋ और ल् को लृ होना। निम्नलिखित धातुओं के बाद ङित् प्रत्यय होने पर साधारणतया सम्प्रसारण होता है—वच्, यज्, वप्, वह्, वस् (रहना), वे, व्ये, ह्वे, श्वि, वद्, स्वप्, ज्या, वश्, व्यच्, प्रच्छ्, व्रश्च्, भ्रस्ज्, ग्रह् और व्यध्। लिट् लकार में इन धातुओं को सम्प्रसारण नहीं होता है—प्रच्छ्, व्रश्च् और भ्रस्ज्।

५०३. लिट् लकार में पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर अभ्यास वाले अश में ही सम्प्रसारण होता है। ऐसे स्थलों पर प्रारम्भिक सयुक्त वर्णों को जैसे का तैसा ही द्वित्व होगा। जैसे—स्वप् का स्वस्वप्, आदि।

(क) सम्प्रसारण के बाद के स्वर का लोप हो जाता है।

५०४. जिनमें लिट् में इ सर्वथा नहीं लगता ऐसी धातुएँ:—

कृ (करना), उभयपदी

प्र०	चकार	चक्रतु	चक्रु	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म०	चकर्थ	चक्रथु	चक्र	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे[1]
उ०	चकार, चकर	चकृव	चकृम	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—सृ, भृ और वृ। वृ का म० पु० एक० में ववरिथ रूप होता है।

---

१. इण् (अ या आ को छोड़ कर अन्य सभी स्वर तथा य्, र्, ल्, व् और ह्) के बाद आशीर्लिङ् के षीध्वम्, लिट् और लुङ् के ध्वम् तथा ध्वे (म० पु० बहु०) के ध् के स्थान पर ढ् हो जाता है। जहाँ पर बीच में इ लगता है और उस इ से पहले पूर्वोक्त व्यजनों में से कोई व्यजन होता है तो ध् को ढ् विकल्प से होगा।

सम्+कृ[1] के रूप इस प्रकार चलेंगे

प्र०	सचस्कार	सचस्करतु	सचस्करुः	सचस्करे	सचस्कराते	सचस्करिरे
म०	सचस्करिथ	सचस्करथुः	सचस्कर	सचस्करिषे	सचस्कराथे	सचस्करिध्वे-ढ्वे
उ०	सचस्कार, सचस्कर	सचस्करिव[2]	सचस्करिम	सचस्करे	सचस्करिवहे	सचस्करिमहे

स्तु—उभयपदी

प्र०	तुष्टाव	तुष्टुवतु	तुष्टुवुः	तुष्टुवे	तुष्टुवाते	तुष्टुविरे
म०	तुष्टोथ	तुष्टुवथु	तुष्टुव	तुष्टुषे	तुष्टुवाथे	तुष्टुढ्वे
उ०	तुष्टाव, तुष्टव	तुष्टुव	तुष्टुम	तुष्टुवे	तुष्टुवहे	तुष्टुमहे

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—द्रु, सु श्रु ।

४०५. सेट् धातुएँ :—

(१) अजन्त सेट् धातुएँ

वृ (छाँटना), ९ आ०

प्र०	ववार	ववरतु	ववरुः	ववरे	ववराते	ववरिरे
म०	ववरिथ	ववरथु	ववर	ववरिषे	ववराथे	ववरिध्वे-ढ्वे
उ०	ववार,ववर	ववरिव	ववरिम	ववरे	ववरिवहे	ववरिमहे

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—स्तॄ, गॄ, भॄ आदि । तस्तार, तस्तरतु आदि ।

---

१. सपरिभ्यां करोतौ भूषणे (६-१-१३७), समवाये च (६-१-१३८), उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च (६-१-१३९) । सम् उपसर्ग के बाद कृ धातु से पहले स् लग जाता है—अलङ्कृत करना और समूह अर्थ मे । उप सपसर्ग के बाद कृ धातु से पहले इन अर्थों मे स् लगता है—अलङ्कृत करना, समूह, वस्तु मे पूर्व गुणों को नष्ट न करते हुए नए गुण का आधान करना (प्रतियत्नो गुणाधानम्, सि० कौ०), भोजन आदि बनाना या वाक्य मे अनुमित की पूर्ति करना ।

२. यहाँ पर ऋ से पहले संयुक्त वर्ण है, अत ऋ को गुण होगा । (देखो नियम ४९१ । सूत्र ७-१-१० और ११ पर सि० कौ०) ।

शॄ (काटना), ९ प०

प्र०	शशार	शशरतु, शश्रतु	शशरु, शश्रु
म०	शशरिथ	शशरथु, शश्रथु	शशर, शश्र
उ०	शशार, शशर	शशरिव, शश्रिव	शशरिम, शश्रिम

क्ष्णु (तेज करना), २ प०

प्र०	चुक्ष्णाव	चुक्ष्णुवतु	चुक्ष्णुवु
म०	चुक्ष्णविथ	चुक्ष्णुवथु	चुक्ष्णुव
उ०	चुक्ष्णाव, चुक्ष्णव	चुक्ष्णुविव	चुक्ष्णुविम

इसी प्रकार दॄ और पॄ के रूप चलते हैं। इसी प्रकार स्नु के रूप चलते हैं।

रु (शब्द करना, जाना, हानि पहुँचाना) १ आ०, २ प०

प्र०	रुराव	रुरुवतु	रुरुवु	रुरुवे	रुरुवाते	रुरुविरे
म०	रुरविथ	रुरुवथु	रुरुव	रुरुविषे	रुरुवाथे	रुरुविध्वे-ढ्वे
उ०	रुराव, रुरव	रुरुविव	रुरुविम	रुरुवे	रुरुविवहे	रुरुविमहे

इसी प्रकार यु (प०) और नु (प०) के रूप चलेंगे।

शी (सोना), २ आ०

प्र०	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
म०	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे-ढ्वे
उ०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

श्रि (आश्रय लेना), १ उभय०

प्र०	शिश्राय	शिश्रियतु	शिश्रियु	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
म०	शिश्रयिथ	शिश्रियथु	शिश्रिय	शिश्रियिषे	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे-ढ्वे
उ०	शिश्राय, शिश्रय	शिश्रियिव	शिश्रियिम	शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे

(२) अजन्त अनिट् धातुएँ

दा (देना), ३ उभय०

प्र०	ददौ	ददतु	ददु	ददे	ददाते	ददिरे
म०	ददिथ, ददाथ	ददथु	दद	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ०	ददौ	ददिव	ददिम	ददे	ददिवहे	ददिमहे

गै (गाना), पर०

प्र०	जगौ	जगतु	जगु
म०	जगाथ, जगिथ	जगथु	जग
उ०	जगौ	जगिव	जगिम

इसी प्रकार सभी आ, ए, ऐ और ओ अन्त वाली धातुओं के रूप चलेंगे। से—ध्यै के प्र० पु० में दध्यौ, दध्यतु, दध्यु। दो (काटना) प्र० पु०—ददौ, ददतु, ददु आदि।

इ (जाना) २ पर०

प्र०	इयाय	ईयतु	ईयु
म०	इययिथ, इयेथ	ईयथु	ईय
उ०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

इ (१ प०, जाना) के नियमित ढंग से रूप चलते हैं। इयाय, ईयतु, ईयु आदि। ई (१, २ पर०, ४ आ०, जाना) के लिट् में आम् अन्त वाले रूप बनते हैं।

नी (ले जाना) उभय०

पर०

प्र०	निनाय	निन्यतु	निन्यु
म०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु	निन्य
उ०	निनाय-निनय	निन्यिव	निन्यिम

आ०

णी के तुल्य रूप चलेंगे।
(देखो पहले णी धातु)

स्मृ (याद करना) पर०

प्र०	सस्मार	सस्मरतु	सस्मरु
म०	सस्मर्थ	सस्मरथु	सस्मर
उ०	सस्मार-सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

मि (फेंकना), ५ उ०

प्र०	ममौ	मिम्यतु	मिम्यु
म०	ममिथ, ममाथ	मिम्यथु	मिम्य
उ०	ममौ	मिम्यिव	मिम्यिम

मी (नष्ट करना), ९ उ०

मिम्ये	मिम्याते	मिम्यिरे
मिम्यिषे	मिम्याथे	मिम्यिध्वे-ढ्वे
मिम्ये	मिम्यिवहे	मिम्यिमहे

ली (९ प०, ४ आ०, चिपकना, १ प० पिघलना)

पर०			आ०
प्र० लिलाय, ललौ	लिल्यतु	लिल्यु	शी के तुल्य ।
म० लिलयिथ, लिलेथ ललिथ, ललाथ	लिल्यथु	लिल्य	
उ० लिलाय, लिल्य, ललौ	लिलियव	लिलियम	

(३) हलन्त अनिट् धातुएँ --

शक् (सकना), ५ पर०

प्र०	शशाक	शेकतु	शेकु
म०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथु	शेक
उ०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम

पच् (पकाना), उभय०

प्र० पपाच	पेचतु	पेचु	पेचे	पेचाते	पेचिरे
म० पेचिथ, पपक्थ	पेचथु	पेच	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्व
उ० पपाच, पपच	पेचिव	पेचिम	पेचे	पेचिवहे	पचिमहे

मुच् (छोड़ना), ६ उभय०

प्र० मुमोच	मुमुचतु	मुमुचु	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० मुमोचिथ	मुमुचथु	मुमुच	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्व
उ० मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

रिच् (१ प०, पृथक् करना, ७ उ० रिक्त करना)

प्र० रिरेच	रिरिचतु	रिरिचु	रिरिचे	रिरिचाते	रिरिचिरे
म० रिरेचिथ	रिरिचथु	रिरिच	रिरिचिषे	रिरिचाथे	रिरिचिध्व
उ० रिरेच	रिरिचिव	रिरिचिम	रिरिचे	रिरिचिवहे	रिरिचिमहे

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे--विच् (७ उ०), सिच् (६ उ०), तिज् (३ उ०), विज् (३ उ०), भुज् (७ उ०), युज् (७ उ०), क्षुद् (७ उ०) तथा अन्य इ या उ उपधावाली धातुएँ।

जैसे--सिच्--सिषेच (प्र० एक०), सिषेचिथ (म० एक०), सिषिचिव (उ० द्वि०), आदि। क्षुद्--चुक्षोद (प्र० एक०), चुक्षोदिथ (म० एक०), आदि।

प्रच्छ् (पूछना), ६ पर०

प्र०	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छु
म०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथु	पप्रच्छ
उ०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

त्यज् (छोडना), १ पर०

प्र०	तत्याज	तत्यजतु	तत्यजु
म०	तत्यजिथ, तत्यक्थ	तत्यजथु	तत्यज
उ०	तत्याज, तत्यज	तत्यजिव	तत्यजिम

भञ्ज् (तोडना, नष्ट करना), ७ पर०

प्र०	बभञ्ज	बभञ्जतु	बभञ्जु
म०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथु	बभञ्ज
उ०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम

भ्रस्ज् (भूनना), ६ उभय०

प्र०	बभर्ज	बभर्जतु	बभर्जु	बभर्जे	बभर्जाते	बभर्जिरे
	बभ्रज्ज	बभ्रज्जतु	बभ्रज्जु	बभ्रज्जे	बभ्रज्जाते	बभ्रज्जिरे
म०	बभर्जिथ, बभर्ष्ठ, बभ्रष्ठ,	बभर्जथु	बभर्ज	बभर्जिषे	बभर्जाथे,	बभर्जिध्वे,
	बभ्रज्जिथ	बभ्रज्जथु	बभ्रज्ज	बभ्रज्जिषे	बभ्रज्जाथे	बभ्रज्जिध्वे
उ०	बभर्ज,	बभर्जिव,	बभर्जिम,	बभर्जे	बभर्जिवहे,	बभर्जिमहे
	बभ्रज्ज	बभ्रज्जिव	बभ्रज्जिम	बभ्रज्जे	बभ्रज्जिवहे,	बभ्रज्जिमहे

सृज् (बनाना), ४ आ०, ६ प०

प्र०	ससर्ज	ससृजतु	ससृजु	ससृजे	ससृजाते	ससृजिरे
म०	ससर्जिथ, सस्रष्ठ	ससृजथु	ससृज	ससृजिषे	ससृजाथे	ससृजिध्वे
उ०	ससर्ज	ससृजिव	ससृजिम	ससृजे	ससृजिवहे	ससृजिमहे

दृश् (देखना), १ प०

सृज् के तुल्य रूप चलेंगे। म० पु० एक० ददर्शिथ, दद्रष्ठ।

छिद् (काटना), ७ उभय०

प्र०	चिच्छेद	चिच्छिदतु	चिच्छिदु	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे

म०	चिच्छेदिथ	चिच्छिदथु	चिच्छिद	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ०	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

	पद् (जाना), ४आ०			शद् (नष्ट होना), १,६ पर०		
प्र०	पेदे	पेदाते	पेदिरे	शशाद	शेदतु	शेदु
म०	पेदिषे	पेदाथे	पेदिध्वे	शेदिथ, शशत्थ	शेदथु	शेद
उ०	पेदे	पेदिवहे	पेदिमहे	शशाद, शशद	शेदिव	शेदिम

इसी प्रकार इन धातुओं के रूप चलेंगे—मन् (आ०), सद् (प०), तप् (प०), शप् (उ०), यभ् (प०), रभ् (आ०), लभ् (आ०), नम् (प०), यम् (प०), रम् (आ०), दह् (प०), नह् (प०) । म० पु० एक० में इन धातुओं के ये रूप होंगे—मन्—मेनिषे, सद्—सेदिथ ससत्थ, नम्-नेमिथ-ननन्थ, दह्—देहिथ-ददग्ध, नह्—नेहिथ-ननद्ध, आदि ।

	स्कन्द् (डालना), १ प०			बन्ध् (बाँधना) ९ प०		
प्र०	चस्कन्द	चस्कन्दतु	चस्कन्दु	बबन्ध	बबन्धतु	बबन्धु
म०	चस्कन्दिथ, चस्कन्थ	चस्कन्दथु	चस्कन्द	बबन्धिथ, बबन्द्ध	बबन्धथु	बबन्ध
उ०	चस्कन्द	चस्कन्दिव	चस्कन्दिम	बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम

	राध् (बटना, सिद्ध करना) ४,५ प०			स्पृश् (छूना) ६ प०		
प्र०	रराध	रराधतु	रराधु	पस्पर्श	पस्पृशतु	पस्पृशु
म०	रराधिथ	रराधथु	रराध	पस्पर्शिथ	पस्पृशथु	पस्पृश
उ०	रराध	रराधिव	रराधिम	पस्पर्श	पस्पृशिव	पस्पृशिम

इसी प्रकार मृश्, छुश् के रूप चलेंगे ।

(४) हलन्त सेट् धातुएँ—

	नन्द् (प्रसन्न होना), १ प०			वन्द् (प्रणाम करना), १ आ०		
प्र०	ननन्द	ननन्दतु	ननन्दु	ववन्दे	ववन्दाते	ववन्दिरे
म०	ननन्दिथ	ननन्दथु	ननन्द	ववन्दिषे	ववन्दाथे	ववन्दिध्वे
उ०	ननन्द	ननन्दिव	ननन्दिम	ववन्दे	ववन्दिवहे	ववन्दिमहे

नृत् (नाचना), ४ प०

प्र०	ननर्त	ननृततु	ननृतु
म०	ननर्तिथ	ननृतथु	ननृत
उ०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम

अर्द् (दुःख देना), १ प०

प्र०	आनर्द	आनर्दतु	आनर्दु
म०	आनर्दिथ	आनर्दथु	आनर्द
उ०	आनर्द	आनर्दिव	आनर्दिम

अर्च् (पूजा करना), १ प०

प्र०	आनर्च	आनर्चतु	आनर्चु
म०	आनर्चिथ	आनर्चथु	आनर्च
उ०	आनर्च	आनर्चिव	आनर्चिम

वम् (कै करना), १ प०

प्र०	ववाम	ववमतु	ववमु
म०	ववमिथ	ववमथु	ववम
उ०	ववाम, ववम	ववमिव	ववमिम

कुट् (मोडना, झुकना), ६ प०

प्र०	चुकोट	चुकुटतु	चुकुटु
म०	चुकुटिथ	चुकुटथु	चुकुट
उ०	चुकोट, चुकुट[1]	चुकुटिव	चुकुटिम

मुद् (प्रसन्न होना), १ आ०

मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे

ऋच्छ् (जाना), ६ प०

आनर्च्छ	आनर्च्छतु	आनर्च्छु
आनर्च्छिथ	आनर्च्छथु	आनर्च्छ
आनर्च्छ	आनर्च्छिव	आनर्च्छिम

ऋज् (जाना, प्राप्त करना), १ आ०

आनृजे	आनृजाते	आनृजिरे
आनृजिषे	आनृजाथे	आनृजिध्वे
आनृजे	आनृजिवहे	आनृजिमहे

दद् (देना), १ आ०

दददे	दददाते	दददिरे
दददिषे	दददाथे	दददिध्वे
दददे	दददिवहे	दददिमहे

स्फुर् (चमकना, फड़कना), ६ प०

पुस्फोर	पुस्फुरतु	पुस्फुरु
पुस्फुरिथ	पुस्फुरथु	पुस्फुर
पुस्फोर	पुस्फुरिव	पुस्फुरिम

५०६ सम्प्रसारणवाली धातुएँ (नियमित और अनियमित)

यज् (पूजा करना, यज्ञ करना), १ उ०

प्र०	इयाज	ईजतु	ईजु	ईजे	ईजाते	ईजिरे
म०	इयजिथ, इयष्ठ	ईजथु	ईज	ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
उ०	इयाज, इयज	ईजिव	ईजिम	ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

---

१. कुटादिगण (देखो नियम ४६३) में पठित धातुओं को लिट् उ० पु० एक० में गुण आदि का अभाव विकल्प से होता है। नू का उ० पु० एक० नुनाव-नुनाव, नुनव।

	वच्[1] (बोलना) १,२ प०			वस् (रहना), १ प०		
प्र०	उवाच	ऊचतु	ऊचु	उवास	ऊषतु	ऊषु
म०	उवचिथ, उवक्थ	ऊचथु	ऊच	उवसिथ, उवस्थ	ऊषथु	ऊष
उ०	उवाच, उवच	ऊचिव	ऊचिम	उवास, उवस	ऊषिव	ऊषिम

	वप् (बीज बोना), १ उ०					
प्र०	उवाप	ऊपतु	ऊपु	ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
म०	उवपिथ, उवप्थ	ऊपथु	ऊप	ऊपिषे	ऊपाथे	ऊपिध्वे
उ०	उवाप, उवप	ऊपिव	ऊपिम	ऊपे	ऊपिवहे	ऊपिमहे

	वह् (ले जाना, ढोना), १ उ०					
प्र०	उवाह	ऊहतु	ऊहु	ऊहे	ऊहाते	ऊहिरे
म०	उवहिथ, उवोढ[2]	ऊहथु	ऊह	ऊहिषे	ऊहाथे	ऊहिध्वे, ऊहिढ्वे
उ०	उवाह, उवह	ऊहिव	ऊहिम	ऊहे	ऊहिवहे	ऊहिमहे

	वद् (कहना), १ प० (कुछ अर्थों में आ० भी है)					
प्र०	उवाद	ऊदतु	ऊदु	ऊदे	ऊदाते	ऊदिरे
म०	उवदिथ	ऊदथु	ऊद	ऊदिषे	ऊदाथे	ऊदिध्वे
उ०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम	ऊदे	ऊदिवहे	ऊदिमहे

	स्वप् (सोना), २ प०			ज्या (वृद्ध होना), ९ प०		
प्र०	सुष्वाप	सुषुपतु	सुषुपु	जिज्यौ	जिज्यतु	जिज्यु
म०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथु	सुषुप	जिज्यिथ, जिज्याथ	जिज्यथु	जिज्य

---

१ ब्रू के स्थान पर जो वच् धातु होती है, उसके आत्मने० में भी रूप चलते हैं। जैसे—ऊचे, ऊचाते, ऊचिरे आदि।

२ जब सह् और वह् धातुओं में ह के स्थान पर हुए ढ का लोप होता है तो पूर्ववर्ती अ को ओ न होकर ओ भी हो जाता है। उवह् + थ = उवढ् + थ = उवढ् + ध (नियम ४११, ३, ४ से) = उवढ् + ढ = उवोढ।

उ०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम	जिज्ये	जिज्यिव	जिज्यिम

वश् (चाहना), २ प०

प्र०	उवाश	ऊशतु	ऊशु
म०	उवशिथ	ऊशथु	ऊश
उ०	उवाश, उवश	ऊशिव	ऊशिम

व्यच् (धोखा देना, घेरना), ६ प०

प्र०	विव्याच	विविचतु	विविचु
म०	विव्यचिथ	विविचथु	विविच
उ०	विव्याच, विव्यच	विविचिव	विविचिम

ग्रह् (लेना), ९ उभय०

प्र०	जग्राह	जगृहतु	जगृहु	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म०	जग्रहिथ	जगृहथु	जगृह	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिढ्वे-ध्वे
उ०	जग्राह,जग्रह	जगृहिव	जगृहिम	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

व्यध् (बींधना), ४ प०

प्र०	विव्याध	विविधतु	विविधु
म०	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथु	विविध
उ०	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम

श्वि[1] (सूजना), १ प०

प्र०	शिश्वाय,शुशाव	शिश्वियतु, शुशुवतु	शिश्वियु, शुशुवु
म०	शिश्वयिथ, शुशविथ	शिश्वियथु, शुशुवथु	शिश्विय, शुशुव
उ०	शिश्वाय, शिश्वय	शिश्वियिव	शिश्वियिम
	शुशाव, शुशव	शुशुविव	शुशुविम

वे[2] (बुनना) (नियमित) १ उ०

प्र०	ववौ	ववतु	ववु	ववे	ववाते	वविरे
म०	वविथ, ववाथ	ववथु	वव	वविषे	ववाथे	वविढ्वे-ध्वे
उ०	ववौ	वविव	वविम	ववे	वविवहे	वविमहे

---

१. श्वि को लिट् में विकल्प से शु धातु हो जाती है।

२. वे धातु का लिट् में पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर विकल्प से उवय् रूप हो जाता है और ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर ऊय् या ऊव् रूप हो जाता है।

वे (बुनना) (अनियमित), १ उ०

प्र०	उवाय	ऊयतु	ऊयु	ऊये	ऊयाते	ऊयिरे
		ऊवतु	ऊवु	ऊवे	ऊवाते	ऊविरे
म०	उवयिथ	ऊयथु	ऊय	ऊयिषे	ऊयाथे	ऊयिध्वे-ढ्वे
		ऊवथु	ऊव	ऊविषे	ऊवाथे	ऊविध्वे-ढ्वे
उ०	उवाय	ऊयिव	ऊयिम	ऊये	ऊयिवहे	ऊयिमहे
	उवय	ऊविव	ऊविम	ऊवे	ऊविवहे	ऊविमहे

व्ये[1] (ढकना), १ उ०

प्र०	विव्याय	विव्यतुः	विव्युः	विव्ये	विव्याते	विव्यिरे
म०	विव्ययिथ	विव्यथुः	विव्य	विव्यिषे	विव्याथे	विव्यिध्वे-ढ्वे
उ०	विव्याय, विव्यय	विव्यिव	विव्यिम	विव्ये	विव्यिवहे	विव्यिमहे

ह्वे[2] (पुकारना), १ उ०

प्र०	जुहाव	जुहुवतु	जुहुवु	जुहुवे	जुहुवाते	जुहुविरे
म०	जुहुविथ, जुहोथ	जुहुवथु	जुहुव	जुहुविषे	जुहुवाथे	जुहुविध्वे-ढ्वे
उ०	जुहाव, जुहव	जुहुविव	जुहुविम	जुहुवे	जुहुविवहे	जुहुविमहे

४०७. सेट् धातुएँ

४०८. स्वृ, सू और धू धातुओं को थ परे होने पर विकल्प से इट् होता है तथा अन्य हलादि प्रत्यय परे होने पर नित्य इट् होता है।

स्वृ—म० पु० एक० सस्वरिथ-सस्वर्थ, उ० पु० द्वि० सस्वरिव। धू—म० पु० एक० दुधविथ-दुधोथ, आदि।

तञ्च् (संकुचित होना), १,७ प०   व्रश्च् (काटना), ६ प०

प्र०	ततञ्च	ततञ्चतु	ततञ्चु	वव्रश्च	वव्रश्चतु	वव्रश्चु

1. व्ये धातु को लिट् लकार में पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर विव्याय् हो जाता है और कित् (निर्बल) प्रत्यय बाद में होने पर विवी हो जाता है।
2. ह्वे का लिट् में हू रूप हो जाता है।

म० ततञ्चिथ, ततञ्चथु ततञ्च वव्रश्चिथ, वव्रश्चथु वव्रश्च
ततङ्क्थ वव्रष्ठ
उ० ततञ्च ततञ्चिव, ततञ्चिम, वव्रश्च वव्रश्चिव, वव्रश्चिम,
ततञ्च्व ततञ्च्म वव्रश्च्व वव्रश्च्म

इसी प्रकार तञ्ज् के रूप चलते हैं।

मृज् (स्वच्छ करना), १,२, प०

प्र० ममार्ज ममार्जतु, ममार्जुः,
ममृजतु ममृजुः
म० ममार्जिथ, ममार्जथु, ममार्ज,
ममार्ष्ठ ममृजथु ममृज
उ० ममार्ज ममार्जिव, ममार्जिम,
ममृजिव, ममृजिम,
ममृज्व ममृज्म

अञ्ज् (अजनादि लगाना), ७ प०

आनञ्ज आनञ्जतु आनञ्जु
आनञ्जिथ, आनञ्जथु आनञ्ज
आनङ्क्थ
आनञ्ज आनञ्जिव आनञ्जिम

क्लिद् (गीला होना), ४ प०

प्र० चिक्लेद चिक्लिदतु चिक्लिदु
म० चिक्लेदिथ, चिक्लिदथु चिक्लिद
चिक्लेत्थ
उ० चिक्लेद चिक्लेदिव, चिक्लेदिम,
चिक्लिद्व चिक्लिद्म

स्यन्द् (रस निकालना), १ आ०

सस्यन्दे सस्यन्दाते सस्यन्दिरे
सस्यन्दिषे, सस्यन्दाथे सस्यन्दिध्वे,
सस्यन्त्से सस्यन्द्ध्वे
सस्यन्दे सस्यन्दिवहे, सस्यन्दिमहे,
सस्यन्द्वहे सस्यन्द्महे

रध्[1] (नष्ट करना), ४ प०

प्र० ररन्ध ररन्धतु ररन्धु
म० ररन्धिथ, ररन्धथु ररन्ध
ररद्ध
उ० ररन्ध ररन्धिव, ररन्धिम
रेध्व रेध्म

सिध् (जाना), १ प०

सिषेध सिषिधतु सिषिधु
सिषेधिथ, सिषिधथु सिषिध
सिषेद्ध
सिषेध सिषिधिव, सिषिधिम,
सिषिध्व सिषिध्म

---

१. रध् और जभ् धातुओ के बाद अजादि प्रत्यय होने पर उनके अन्तिम वर्ण से पूर्व न् लग जाता है। रध् धातु को लुङ् मे और बाद मे इ होने पर न् नहीं लगता है, लिट् मे इ वाले स्थानो पर भी न् होगा।

	कॢप् (समर्थ होना), १ प०			तृप् (तृप्त होना), ४ प०		
प्र०	चक्लृपे	चक्लृपाते	चक्लृपिरे	ततर्प	ततृपतु	ततृपु
म०	चक्लृपिषे	चक्लृपाथे	चक्लृपिध्वे	ततर्पिथ,	ततृपथु	ततृप
	चक्लृप्से		चक्लृब्ध्वे	तत्रप्थ,[1] ततर्प्थ		
उ०	चक्लृपे	चक्लृपिवहे	चक्लृपिमहे	ततर्प	ततृपिव	ततृपिम
		चक्लृप्वहे	चक्लृप्महे		ततृप्व	ततृप्म

इसी प्रकार दृप् के रूप चलते हैं।

	त्रप् (लज्जित होना), १आ०			क्षम् (क्षमा करना), ४ प०		
प्र०	त्रेपे[2]	त्रेपाते	त्रेपिरे	चक्षाम	चक्षमतु	चक्षमु
म०	त्रेपिषे	त्रेपाथे	त्रेपिध्वे	चक्षमिथ,	चक्षमथु	चक्षम
	त्रेप्से		त्रेब्ध्वे	चक्षन्थ		
उ०	त्रेपे	त्रेपिवहे	त्रेपिमहे	चक्षाम,	चक्षमिव,	चक्षमिम
		त्रेप्वहे	त्रेप्महे	चक्षम	चक्षण्व[3]	चक्षण्म

	क्षम् (क्षमा करना), १ आ०			अश् (व्याप्त होना) ५ आ०		
प्र०	चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे	आनशे	आनशाते	आनशिरे
म०	चक्षमिषे	चक्षमाथे	चक्षमिध्वे,	आनशिषे,	आनशाथे	आनशिध्वे
	चक्षंसे		चक्षन्ध्वे	आनक्षे		आनड्ढ्वे
उ०	चक्षमे	चक्षमिवहे,	चक्षमिमहे,	आनशे	आनशिवहे	आनशिमहे
		चक्षण्वहे	चक्षण्महे		आनश्वहे	आनश्महे

	क्लिश् (दुःख देना), ९ प०			नश् (नष्ट होना), ४ प०		
प्र०	चिक्लेश	चिक्लिशतु	चिक्लिशु	ननाश	नेशतु	नेशु
म०	चिक्लेशिथ,	चिक्लिशथु	चिक्लिश	नेशिथ	नेशथु	नेश
	चिक्लेष्ठ			ननष्ठ[4]		
उ०	चिक्लेश	चिक्लिशिव,	चिक्लिशिम,	ननाश,	नेशिव	नेशिम
		चिक्लिश्व	चिक्लिश्म	ननश	नेश्व	नेश्म

---

१. देखो नियम ४७१।
२. देखो नियम ५१२।
३. धातु के अन्तिम म् को न् हो जाता है, बाद में म् या व् होने पर।
४. देखो नियम ४७६।

	अक्ष् (प्राप्त होना), १ प०			निर् + कुप् (निकालना, फाड़ना), ९ प०		
प्र०	आनक्ष	आनक्षतुः	आनक्षुः	निश्चुकोप	निश्चुकुपतुः	निश्चुकुपुः
म०	आनक्षिथ, आनष्ठ	आनक्षथुः	आनक्ष	निश्चुकोपिथ, निश्चुकोष्ठ	निश्चुकुपथुः	निश्चुकुप
उ०	आनक्ष	आनक्षिव, आनक्ष्व	आनक्षिम, आनक्ष्म	निश्चुकोप	निश्चुकुपिव, निश्चुकुप्व	निश्चुकुपिम, निश्चुकुप्म

त्वक्ष् और तक्ष् (छीलना) के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

	गाह् (घुसना), १ आ०			गृह् (लेना), १ आ०		
प्र०	जगाहे	जगाहाते	जगाहिरे	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म०	जगाहिषे, जघाक्षे	जगाहाथे	जगाहिध्वे, जघाढ्वे	जगृहिषे, जघृक्षे	जगृहाथे	जगृहिध्वे, जघृढ्वे
उ०	जगाहे	जगाहिवहे, जगाह्वहे	जगाहिमहे, जगाह्महे	जगृहे	जगृहिवहे, जगृह्वहे	जगृहिमहे, जगृह्महे

गर्ह् (१ आ०) सेट् है। उसके रूप सेट् के तुल्य चलेंगे। गर्ह् (१० उ०) के रूप आम् प्रत्ययान्त वाले बनेंगे।

गुह् (छिपाना), १ उ०

प्र०	जुगूह	जुगुहतुः	जुगुहुः	जुगुहे	जुगुहाते	जुगुहिरे
म०	जुगूहिथ, जुगोढ	जुगुहथुः	जुगुह	जुगुहिषे, जुघुक्षे	जुगुहाथे	जुगुहिध्वे-ढ्वे, जुघूढ्वे[1]
उ०	जुगूह	जुगुहिव, जुगुह्व	जुगुहिम, जुगुह्म	जुगुहे	जुगुहिवहे, जुगुह्वहे	जुगुहिमहे, जुगुह्महे

	तृह् (हिंसा करना), ६ प०			तृह् (हिंसा करना), ६ प०		
प्र०	ततर्ह	ततृहतुः	ततृहुः	ततृंह	ततृंहतुः	ततृंहुः
म०	ततर्हिथ, ततर्ढ	ततृहथुः	ततृह	ततृंहिथ, ततृंढ	ततृंहथुः	ततृंह
उ०	ततर्ह	ततृहिव, ततृह्व	ततृहिम, ततृह्म	ततृंह	ततृंहिव, ततृंह्व	ततृंहिम, ततृंह्म

---

१. ढ् या र् का लोप होने पर पूर्ववर्ती अ, इ, उ को दीर्घ हो जाता है।

द्रुह् (द्रोह करना), ४ प०

प्र०	दुद्रोह	दुद्रुहतु	दुद्रुहु
म०	दुद्रोहिथ, दुद्रोढ, दुद्रोग्ध[1]	दुद्रुहथु	दुद्रुह
उ०	दुद्रोह	दुद्रुहिव, दुद्रुह्व	दुद्रुहिम, दुद्रुह्म

स्तृह् (हानि पहुँचाना), ६ प०

प्र०	तस्तर्ह	तस्तृहतु	तस्तृहु
म०	तस्तर्हिथ, तस्तर्ढ	तस्तृहथु	तस्तृह
उ०	तस्तर्ह	तस्तृहिव, तस्तृह्व	तस्तृहिम, तस्तृह्म

इसी प्रकार मुह् के रूप चलेंगे । म० पु० एक० मुमोहिथ, मुमोढ, मुमोग्ध, उ० पु० द्वि० मुमुहिव, मुमुह्व, इत्यादि ।

इसी प्रकार वृह् के रूप चलेंगे । म० पु० एक० ववर्हिथ, ववर्ढ, उ० पु० द्वि० ववृहिव, ववृह्व, आदि

स्निह् (प्रेम करना), ४ प०

प्र०	सिष्णेह	सिष्णिहतु	सिष्णिहु
म०	सिष्णेहिथ, सिष्णेढ, सिष्णेग्ध	सिष्णिहथु	सिष्णिह
उ०	सिष्णेह	सिष्णिहिव, सिष्णिह्व	सिष्णिहिम, सिष्णिह्म

इसी प्रकार स्नुह् के रूप चलेंगे ।

अनियमित धातुएँ —

५०६. श्रन्थ्, ग्रन्थ्, दम्भ् और स्वञ्ज् धातुओं के मध्यगत न् का विकल्प से लोप हो जाता है, लिट् लकार में । श्रन्थ्, ग्रन्थ् और दम्भ् के मध्यगत न् का लोप होने पर पित् (सबल) प्रत्ययों के बाद में होने पर भी नियम ५०० लगेगा ।

श्रन्थ्—पर०

प्र०	शश्रन्थ, श्रेथ	शश्रन्थतु, श्रेथतु	शश्रन्थु, श्रेथु
म०	शश्रन्थिथ, श्रेथिथ	शश्रन्थथु, श्रेथथु	शश्रन्थ, श्रेथ

ग्रन्थ्—पर०

प्र०	जग्रन्थ, ग्रेथ	जग्रन्थतु, ग्रेथतु	जग्रन्थु, ग्रेथु
म०	जग्रन्थिथ, ग्रेथिथ	जग्रन्थथु, ग्रेथथु	जग्रन्थ, ग्रेथ

---

१ द्रुह्, मुह्, स्नुह् और स्निह् के ह् को घ या ढ् होता है, बाद में झल् (वर्ग के ५ और अन्तःस्थ को छोड़ कर सभी व्यंजन) हो तो या पदान्त हो तो ।

उ० शश्रन्थ	शश्रन्थिव	शश्रन्थिम	जग्रन्थ	जग्रन्थिव	जग्रन्थिम
श्रेथ	श्रेथिव	श्रेथिम	ग्रेथ	ग्रेथिव	ग्रेथिम

दम्भ्—पर०

प्र० ददम्भ,	ददम्भतु,	ददम्भु	
देभ	देभतु	देभु	
म० ददम्भिथ,	ददम्भथु,	ददम्भ,	
देभिथ	देभथु	देभ	
उ० ददम्भ,	ददम्भिव,	ददम्भिम,	
देभ	देभिव	देभिम	

स्वञ्ज्—आ०

सस्वञ्जे,	सस्वञ्जाते,	सस्वञ्जिरे
सस्वजे	सस्वजाते	सस्वजिरे
सस्वञ्जिषे,	सस्वञ्जाथे,	सस्वञ्जिध्वे
सस्वजिषे	सस्वजाथे	सस्वजिध्वे
सस्वञ्जे,	सस्वञ्जिवहे,	सस्वञ्जिमहे,
सस्वजे	सस्वजिवहे	सस्वजिमहे

५१० गम्, हन्, जन्, खन् और घस् धातुओ के उपधा के अ का लोप हो जाता है, बाद मे अजादि ङित् स्वर होने पर। लुङ मे अङ (अ) होने पर यह नियम नही लगेगा। उपधा के अ का लोप होने पर हन् के ह को घ् हो जाता है, जन् को ज्ञ् और घस् को क्ष्।

	गम्			हन्	
प्र० जगाम	जग्मतु	जग्मु	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
म० जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथु	जघ्न
उ० जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

जन्

प्र० जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

घस्

अद् धातु को लिट् मे विकल्प से घस् होता है। इसके रूप आगे देखें।

खन्—उभय०

प्र० चखान	चख्नतु	चख्नु	चख्ने	चख्नाते	चख्निरे
म० चखनिथ	चख्नथु	चख्न	चख्निषे	चख्नाथे	चख्निध्वे
उ० चखान, चखन	चख्निव	चख्निम	चख्ने	चख्निवहे	चख्निमहे

५११ अद् धातु को लिट् में विकल्प से घस् हो जाता है।

अद् (घस्)

प्र०	आद,	आदतु,	आदु:,
	जघास	जक्षतु	जक्षु
म०	आदिथ[1],	आदथु,	आद,
	जघसिथ	जक्षथु	जक्ष
उ०	आद,	आदिव,	आदिम,
	जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम

५१२ निम्नलिखित धातुओं में नियम ५०० नित्य लगता है — तॄ, फल्, भज्, त्रप् और राध् (हिंसा करना या हानि पहुँचाना अर्थ में)। इन धातुओं में नियम ५०० विकल्प से लगता है— जॄ, भ्रम्, त्रस्, फण् (१ प०, जाना), राज्, भ्राज्, भ्राश्, स्यम् और स्वन्।[2]

तॄ (पार करना), १ प० — फल् (फलना), १ प०

प्र०	ततार	तेरतु:	तेरु	पफाल	फेलतु	फेलु:
म०	तेरिथ	तेरथु	तेर	फेलिथ	फेलथु	फेल
उ०	ततार, ततर	तेरिव	तेरिम	पफाल, पफल	फेलिव	फेलिम

भज् (सेवा करना), १ उ०

प्र०	बभाज	भेजतु	भेजु	भेजे	भेजाते	भेजिरे
म०	भेजिथ, बभक्थ	भेजथु	भेज	भेजिषे	भेजाथे	भेजिध्वे
उ०	बभाज, बभज	भेजिव	भेजिम	भेजे	भेजिवहे	भेजिमहे

अप + राध्, ५ पर०

प्र०	अप-रराध	अप-रेधतु:	अप-रेधु
म०	अप-रेधिथ	अप-रेधथु	अप-रेध
उ०	अप-रराध	अप-रेधिव	अप-रेधिम

---

१. देखो नियम ५१५।

२. तॄफलभजत्रपश्च (६-४-१२२)। राधो हिंसायाम् (६-४-१२३)। वा जॄभ्रमुत्रसाम् (६-४-१२४)। फणां च सप्तानाम् (६-४-१२५)।

जॄ (वृद्ध होना), ४ प०

प्र०	जजार	जजरतु,	जजरु,
		जेरतु	जेरु
म०	जजरिथ,	जजरथु,	जजर,
	जेरिथ	जेरथु	जेर
उ०	जजार,	जजरिव,	जजरिम
	जजर	जेरिव	जेरिम

भ्रम् (घूमना), १,४ पर०

बभ्राम	बभ्रमतु,	बभ्रमु,
	भ्रेमतु	भ्रेमु
बभ्रमिथ,	बभ्रमथु,	बभ्रम,
भ्रेमिथ	भ्रेमथु	भ्रेम
बभ्राम,	बभ्रमिव,	बभ्रमिम,
बभ्रम	भ्रेमिव	भ्रेमिम

भ्राज् (चमकना), १ आ०

प्र०	बभ्राजे,	बभ्राजाते,	बभ्राजिरे
	भ्रेजे	भ्रेजाते	भ्रेजिरे
म०	बभ्राजिषे,	बभ्राजाथे,	बभ्राजिध्वे
	भ्रेजिषे	भ्रेजाथे	भ्रेजिध्वे
उ०	बभ्राजे,	बभ्राजिवहे,	बभ्राजिमहे
	भ्रेजे	भ्रेजिवहे	भ्रेजिमहे

स्यम् (शब्द करना), १ प०

सस्याम	सस्यमतु,	सस्यमु,
	स्येमतु	स्येमु
सस्यमिथ,	सस्यमथु,	सस्यम,
स्येमिथ,	स्येमथु	स्येम
सस्याम,	सस्यमिव,	सस्यमिम,
सस्यम	स्यमिव	स्येमिम

इसी प्रकार भ्लाश्, भ्राश् और राज् धातु के रूप चलेंगे।

५१३ भू धातु को लिट् मे बभूव् हो जाता है —

प्र०	बभूव	बभूवतु	बभूवु	बभूवे	बभूवाते	बभूविरे
म०	बभूविथ	बभूवथु	बभूव	बभूविषे	बभूवाथे	बभूविध्वे
उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम	बभूवे	बभूविवहे	बभूविमहे

५१४ लिट् लकार मे और सन् प्रत्यय होने पर इन धातुओ मे अभ्यास के बाद वाले अक्षर को निम्नलिखित आदेश होते हैं—जि को गि, हि को घि और चि को विकल्प से कि।

	जि			हि		
प्र०	जिगाय	जिग्यतु	जिग्यु	जिघाय	जिघ्यतु	जिघ्यु
म०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथु	जिग्य	जिघयिथ, जिघेथ	जिघ्यथु	जिघ्य
उ०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम	जिघाय, जिघय	जिघ्यिव	जिघ्यिम

चि

प्र० चिकाय,	चिक्यतु,	चिक्यु,
चिचाय	चिच्यतु	चिच्यु
म० चिकयिथ,चिकेथ	चिक्यथु,	चिक्य,
चिचयिथ,चिचेथ	चिच्यथु	चिच्य
उ० चिकाय,चिकय	चिक्यिव,	चिक्यिम,
चिचाय,चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

५१५ अद्, ऋ और व्ये धातुओ को थ बाद मे होने पर इ अवश्य लगताहै।

ऋ

प्र० आर	आरतु	आरु
म० आरिथ	आरथु	आर
उ० आर	आरिव	आरिम

अद् और व्ये धातुओ के लिए देखो नियम ५११ और ५०६ के नीचे इन धातुओ के रूप।

मस्ज्[1]

प्र० ममज्ज	ममज्जतु	ममज्जु
म० ममज्जिथ, ममङ्क्थ	ममज्जथु	ममज्ज
उ० ममज्ज	ममज्जिव	ममज्जिम

अज्[2] (जाना)

प्र० विवाय	विव्यतु	विव्यु
म० विवयिथ,विवेथ, आजिथ	विव्यथु	विव्य
उ० विवाय,विवय	विव्यिव,आजिव	विव्यिम,आजिम

५१६ इ (जाना) धातु के अभ्यास के इ को ई हो जाता है, कित् (निर्बल) प्रत्यय बाद मे होने पर।

इस धातु के रूप के लिए देखो नियम ५०५ के नीचे धातुरूप।

५१७ अधि+इ (पढ़ना) को अधिजगा हो जाता है।

---

१. देखो नियम ४७६।

२ देखो नियम ४७७।

अधि—इ

प्र० अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

५१८ ऊर्णु धातु को ऊर्णुनु हो जाता है। पित् (सबल) प्रत्ययों से पूर्व इ होने पर विकल्प से गुण होगा।

ऊर्णु—पर०

प्र० ऊर्णुनाव	ऊर्णुनुवतु	ऊर्णुनुवु
म० ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ	ऊर्णुनुवथु	ऊर्णुनुव
उ० ऊर्णुनाव, ऊर्णुनव	ऊर्णुनुविव	ऊर्णुनुविम

आत्मने०

प्र० ऊर्णुनुवे	ऊर्णुनुवाते	ऊर्णुनुविरे
म० ऊर्णुनुविषे	ऊर्णुनुवाथे	ऊर्णुनुविध्वे-ढ्वे
उ० ऊर्णुनुवे	ऊर्णुनुविवहे	ऊर्णुनुविमहे

५१९ चक्ष् धातु को लिट् लकार में विकल्प से और अन्य आर्धधातुक लकारों में नित्य ख्या और क्शा आदेश होते हैं।

ख्या और क्शा धातुओं से दोनों पद होते हैं।

ख्या, क्शा—पर०

प्र० आचख्यौ, आचक्शौ	आचख्यतु, आचक्शतु	आचख्यु, आचक्शु
म० आचख्यिथ, आचख्याथ आचक्शिथ, आचक्शाथ	आचख्यथु, आचक्शथु	आचख्य, आचक्श
उ० आचख्यौ, आचक्शौ	आचख्यिव, आचक्शिव	आचख्यिम, आचक्शिम

आत्मने०

प्र० आचचक्षे, आचख्ये, आचक्शे	आचचक्षाते, आचख्याते, आचक्शाते	आचचक्षिरे, आचख्यिरे, आचक्शिरे

म० आचचक्षिषे,	आचचक्षाथे,	आचचक्षिध्वे,
आचख्यिषे,	आचख्याथे,	आचख्यिध्वे-ढ्वे,
आचक्शिषे	आचक्शाथे	आचक्शिध्वे
उ० आचचक्षे,	आचचक्षिवहे,	आचचक्षिमहे,
आचख्ये,	आचख्यिवहे,	आचख्यिमहे,
आचक्शे	आचक्शिवहे	आचक्शिमहे

५२० दी (४ आ० आज्ञापालन करना) को अजादि ङित् (निर्बल) प्रत्यय बाद मे होने पर बीच मे य् और लग जाता है।

प्र० दिदीये	दिदीयाते	दिदीयिरे
म० दिदीयिषे	दिदीयाथे	दिदीयिध्वे-ढ्वे
उ० दिदीये	दिदीयिवहे	दिदीयिमहे

५२१ दे (१ आ०, रक्षा करना) का लिट् मे दिगि रूप हो जाता है। जैसे—दिग्ये (प्र० एक०), दिग्यिध्वे ढ्वे (म० बहु०), दिग्ये, दिग्यिवहे (उ० एक०, द्वि०)।

५२२ द्युत धातु का लिट् मे दिद्युत् रूप हो जाता है। दिद्युते (प्र० एक०), दिद्युतिषे (म० एक०)।

५२३ प्यै (मोटा होना) का लिट् म और यङ प्रत्यय होने पर पिपी रूप हो जाता है। जैसे—पिप्ये (प्र० एक०), पिप्यिध्वे-ढ्वे (म० बहु०)।

५२४ *व्यथ् धातु का लिट् मे अभ्यास को सप्रसारण होकर विव्यथ् रूप हो जाता है।* जैसे—विव्यथे (प्र० एक०), विव्यथिषे (म० एक०)।

५२५ विज् धातु के रूपो के लिए देखो नियम ४६६, । विवेज (प्र० एक०), विविजिथ विविजथु विविज (म० पु०), आदि।

आम् प्रत्ययान्त लिट् (Periphrastic Perfect)

५२६ आम प्रत्ययान्त लिट् इस प्रकार बनते हैं—धातु के अन्त मे आम् प्रत्यय लगता है और उसके बाद मे कृ, भू या अस् धातु के लिट् लकार वाले रूप सभी पुरुषो म लगते है। जब आम् प्रत्ययान्त के बाद कृ धातु लगती है तो परस्मैपदी धातु म उसके रूप परस्मैपद वाले लगेंगे और आत्मनेपदी धातु म आत्मनेपद वाले रूप।

५२७ आम् प्रत्यय होने पर धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण हो जाता है। विद् धातु को गुण नहीं होता है।

उदाहरण

ईड् (स्तुति करना), २ आ०

प्र०	ईडाचक्रे,	ईडाचक्राते,	ईडाचक्रिरे,
	ईडामास,	ईडामासतुः,	ईडामासुः,
	ईडाबभूव	ईडाबभूवतुः	ईडाबभूवुः
म०	ईडाचकृषे,	ईडाचक्राथे,	ईडाचकृढ्वे,
	ईडामासिथ,	ईडामासथुः,	ईडामास,
	ईडाबभूविथ	ईडाबभूवथुः	ईडाबभूव
उ०	ईडाचक्रे,	ईडाचकृवहे	ईडाचकृमहे,
	ईडामास,	ईडामासिव,	ईडामासिम,
	ईडाबभूव,	ईडाबभूविव	ईडाबभूविम

इसी प्रकार ईश्, ईन्, ऊह् आदि के रूप चलते हैं।

दय् (देना)

प्र०	दयाचक्रे	दयामास	दयाबभूव आदि
म०	दयाचकृषे	दयामासिथ	दयाबभूविथ आदि
उ०	दयाचक्रे	दयामास	दयाबभूव आदि

इसी प्रकार अय् धातु के रूप चलते हैं।

आस्

प्र०	आसाचक्रे	आसाचक्राते	आसाचक्रिरे
म०	आसाचकृषे	आसाचक्राथे	आसाचकृढ्वे
उ०	आसाचक्रे	आसाचकृवहे	आसाचकृमहे

इसके आसामास, आसाबभूव आदि भी रूप होते हैं।

इसी प्रकार काम् के भी रूप चलते हैं।

उष् (जलाना), १ प०

प्र०	उवोष,	ऊषतुः,	ऊषुः,
	ओषाचकार	ओषाचक्रतुः	ओषाचक्रुः

म०	उवोषिथ,	ऊषथुः,	ऊष,
	ओषाञ्चकर्थ	ओषाञ्चक्रथुः	ओषाञ्चक्र
उ०	उवोष,	ऊषिव,	ऊषिम,
	ओषाञ्चकार	ओषाञ्चकृव	ओषाञ्चकृम

इनके ओषामास, ओषांबभूव आदि भी रूप चलेंगे।

विद् (जानना), २ प०

प्र०	विवेद,	विविदतुः,	विविदुः,
	विदामास	विदामासतुः	विदामासुः
म०	विवेदिथ,	विविदथुः,	विविद,
	विदामासिथ	विदामासथुः	विदामास
उ०	विवेद,	विविदिव,	विविदिम,
	विदामास	विदामासिव	विदामासिम

इनके ही विदाञ्चकार, विदांबभूव आदि भी रूप चलेंगे।

जागृ (जागना), २ प०

प्र०	जजागार,	जजागरतुः,	जजागरुः,
	जागरामास	जागरामासतुः	जागरामासुः
म०	जजागरिथ,	जजागरथुः,	जजागर,
	जागरामासिथ	जागरामासथुः	जागरामास
उ०	जजागर, जजागार,	जजागरिव,	जजागरिम,
	जागरामास	जागरामासिव	जागरामासिम

इनके जागराञ्चकार, जागरांबभूव आदि भी रूप चलते हैं।

गुप्—प्र० एक०—जुगोप, गोपायाञ्चकार आदि, म० एक० जुगोपिथ, जुगोप्थ, गोपायाञ्चकर्थ आदि, उ० द्वि० जुगुपिव, जुगुप्व, गोपायाञ्चकृव आदि।

धूप्—प्र० एक० दुधूप, धूपायाञ्चकार आदि।

विच्छ्—प्र० एक०—विविच्छ, विच्छायाञ्चकार आदि।

पण्—प्र० एक०—पेणे, पणायाञ्चकार आदि। (वार्तिक के अनुसार पणाञ्चक्रे आदि भी रूप बनते हैं)।

पन्—प्र० एक०—पेने, पनायाञ्चकार आदि।

ऋत्—प्र० एक० आनर्त, ऋतीयाञ्चक्रे आदि।

५२८ भी, ह्री, भृ और हु धातुओ को आम् लगने से पूर्व जुहोत्यादि के तुल्य द्वित्व होता है और बाद मे आम् लगता है। जैसे—

भी (डरना), ३ प०

प्र०	बिभाय,	बिभ्यतु,	बिभ्यु,
	बिभयाचकार	बिभयाचक्रतु	बिभयाचक्रु
म०	बिभयिथ, बिभेथ,	बिभ्यथु,	बिभ्य,
	बिभयाचकर्थ	बिभयाचक्रथु	बिभयाचक्र
उ०	बिभाय, बिभय,	बिभ्यिव,	बिभ्यिम,
	बिभयाचकार चकर	बिभयाचकृव	बिभयाचकृम

इसके बिभयामास, बिभयाबभूव आदि रूप भी चलते है।

ह्री (लज्जित होना), ३ प०

प्र०	जिह्राय,	जिह्रियतु,	जिह्रियु
	जिह्रयाचकार	जिह्रयाचक्रतु	जिह्रयाचक्रु
म०	जिह्रयिथ, जिह्रेथ,	जिह्रियथु	जिह्रिय,
	जिह्रयाचकर्थ	जिह्रयाचक्रथु	जिह्रयाचक्र
उ०	जिह्राय, जिह्रय,	जिह्रियिव,	जिह्रियिम,
	जिह्रयाचकार-चकर	जिह्रयाचकृव	जिह्रयाचकृम

इसके जिह्रयामास, जिह्रयाबभूव आदि भी रूप चलते है।

भृ—प्र० एक० बभार, बिभराचकार, बिभरामास, बिभराबभूव।

हु—प्र० एक० जुहाव, जुहवाचकार, जुहवामास, जुहवाबभूव।

(५) लुङ (Aorist)

५२९ लुङ के ७ भेद हैं। लुङ मे भी लङ के तुल्य धातु से पहले अ लगता है।

प्रथमभेद

५३० इसमे वही तिङ प्रत्यय लगते हैं, जो लङ मे लगते हैं। केवल प्र० पु० बहु० में उस् (उ) लगेगा।

प्र० त्	ताम्	उस्
म० स्	तम्	त
उ० अम्	व	म

५३१ उम् बाद मे होने पर धातु के अन्तिम आ का लोप हो जाता है।

५३२ इन धातुओं मे यह भेद लगता है—इ, स्था, दा, धा तथा अन्य धातुएँ जिनका दा और धा रूप रह जाता है (देखो नियम ४५९), पा (पीना) और भू धातु।

५३३ घ्रा, धे, शो, सो और छो धातुओं मे यह भेद विकल्प से लगता है। इन धातुओं मे विकल्प से षष्ठ भेद भी लगता है। धे धातु मे तृतीय भेद भी लगता है।

उदाहरण

	स्था—पर०			शो— पर०		
प्र०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः	अशात्	अशाताम्	अशुः
म०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात	अशाः	अशातम्	अशात
उ०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम	अशाम्	अशाव	अशाम

५३४ भू धातु से प्र० पु० बहु० मे उस् के स्थान पर अन् लगता है। अजादि तिङ बाद मे होने पर भू के ऊ को ऊव् हो जाता है। जैसे—प्र० पु०—अभूत्, अभूताम्, अभूवन्, उ० पु०—अभूवम्, अभूव, अभूम।

५३५ इ धातु को लुङ मे गा हो जाता है। प्र० पु०—अगात्, अगाताम्, अगुः। अधि+इ (याद करना) —अध्यगात्, अध्यगाताम्, अध्यगुः, आदि।

५३६ यह भेद परस्मैपद मे ही लगता है। दा, धा और स्था धातुओं मे आत्मनेपद मे चतुर्थ भेद लगता है। भू धातु मे आत्मनेपद मे पञ्चम भेद लगता है और अधि+इ आत्मनेपदी मे चतुर्थ भेद लगता है।

द्वितीय भेद

५३७ इस भेद मे धातु के अन्त मे अ लगता है और बाद मे भ्वादिगण मे लङ मे लगने वाले तिङ यहाँ पर भी लगते हैं। वे ये है —

	पर०			आत्मने०		
प्र०	त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म०	स्	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
उ०	अम्	व	म	इ	वहि	महि

५३८ अन्, अम् और अन्त बाद मे होने पर पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाएगा। व और म बाद मे होने पर अ को आ हो जाएगा। धातु के स्वरो को गुण या वृद्धि नही होती है। केवल इन स्थानो पर ही गुण या वृद्धि होती है—धातु के अन्तिम ऋ, ॠ को और दृश् धातु के ऋ को।

५३९ यह भेद प्राय परस्मैपद मे ही लगता है। कुछ स्थानो पर आत्मनेपद मे भी। जैसे—सम् + ऋ, उपसर्ग के साथ ये धातुऐं—ख्या, वच् और अस्(फेंकना)। लिप्, सिच् और ह्वे धातुओ मे यह भेद परस्मै० मे नित्य लगता है और आत्मने० मे विकल्प से। इनम आत्मने० मे चतुर्थ भेद भी लगता है।

५४० धातु की उपधा के अनुनासिक (न्, म्) का लोप हो जाता है। जैसे—भ्रंश्—अभ्रशत्, स्वन्द्—अस्वदत् आदि।

५४१ निम्नलिखित धातुओ के ये रूप हो जाते हैं—अस्—अस्थ्, ख्या—ख्य्, पत्—पप्त्, वच्—वोच् शास्—शिष्, श्वि—श्व्, ह्वे—ह्व्। जैसे—प्र० एक०—आस्थत, अख्यत्, अवोचत्, अशिषत् आदि।

५४२ निम्नलिखित कारिकाओ मे दी गई धातुएँ इस भेद की है —

ख्यातीयर्ती सर्सातिह्वे कान्तौ शक्नोतिशक्यतो ।
उच् मुच् वचित सिचिश्चान्ता लुटचति पततिस्तथा ॥१॥
दान्ता विलद् क्ष्विद् मदि मिदो विन्दति शद्सर्दिस्विद ।
ऋधित्रुधी क्षुधिगृधी रधि शुध्यतिसिध्यतो ॥२॥
आप्कुपौ गुप्यतिडिपो युप् रुप् लिम्पतिलुप्यतो ।
लुम्पति सर्पति पान्ता क्षुभ्यतिस्तुभ्यतिर्नभि ॥३॥
लुभ्यतिश्च भकारान्ता मान्ता. क्लाम्यतिक्षाम्यती ।
गमिस्तमिर्दमिभ्रमी शाम्यति श्राम्यति समि ॥४॥
शान्ता पञ्च कृशिनशौ मृशिभ्रंशतिवृश्यतो ।
तुष्यतितृष्यतिदुष पिनष्टि पुष्यति प्लुषि ॥५॥
रिष्यरुष् वेवेष्टिवुषो व्युषि सह शिनष्टिना ।
शुष्यतिहृष्यति षान्ता. सान्ता अस्यतिकुस्यतो ॥६॥
घसिजसी तसिदसौ वस्यतिर्विस्यतिर्ध्युसि ।
मस्मुसी यरवसिविसो बुस्यति शास्तिरित्यपि ॥७॥
द्रुह्यमुहृयस्निहिस्नुहो लुड्यङ्विकरणा भवेत् ।
नवाशीतिश्च धातूना परस्मैपदिनामियम् ॥८॥
समियर्ति ख्यातिवक्ती अस्यतिश्चोपसर्गयुक् ।
आत्मनेपदिनोऽपीमे ह्वयतिर्लिपिसिञ्चतो ॥९॥
एते विभाषयाऽङवन्त आत्मनेपदिनो यदा ॥

स्या—पर०			सम्+स्या—आ०		
प्र० अस्यत्	अस्यताम्	अस्यन्	अस्यत	अस्येताम्	अस्यन्त
म० अस्यः	अस्यतम्	अस्यत	अस्यथाः	अस्येथाम्	अस्यध्वम्
उ० अस्यम्	अस्याव	अस्याम	अस्ये	अस्यावहि	अस्यामहि

ऋ (जाना) पर० (३ प०)			सम्+ऋ—आ०		
प्र० आरत्	आरताम्	आरन्	समारत	समारेताम्	समारन्त
म० आरः	आरतम्	आरत	समारथाः	समारेथाम्	समारध्वम्
उ० आरम्	आराव	आराम	समारे	समारावहि	समारामहि

सृ (जाना)— १ प०

प्र० असरत्	असरताम्	असरन्
म० असरः	असरतम्	असरत
उ० असरम्	असराव	असराम

ह्वे—१ उभय०

प्र० अह्वत्	अह्वताम्	अह्वन्	अह्वत	अह्वेताम्	अह्वन्त
म० अह्वः	अह्वतम्	अह्वत	अह्वथा.	अह्वेयाम्	अह्वध्वम्
उ० अह्वम्	अह्वाव	अह्वाम	अह्वे	अह्वावहि	अह्वामहि

वच्—२ प० (ब्रू उभय० के स्थान पर आदेश वच् भी)

प्र० अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
म० अवोच.	अवोचतम्	अवोचत	अवोचया.	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
उ० अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

सिच्—६ उ०

प्र० असिचत्	असिचताम्	असिचन्	असिचत	असिचेताम्	असिचन्त
म० असिच.	असिचतम्	असिचत	असिचथा.	असिचेथाम्	असिचध्वम्
उ० असिचम्	असिचाव	असिचाम	असिचे	असिचावहि	असिचामहि

लिप्—६ उ०

प्र० अलिपत्	अलिपताम्	अलिपन्	अलिपत[1]	अलिपेताम्	अलिपन्त

१. लिप्, सिच् और ह्वे धातुओ मे आत्मनेपद मे चतुर्थ भेद भी लगता है। अलिप्त, असिक्त, अह्वास्त ।

म० अलिपः	अलिपतम्	अलिपत	अलिपथा.	अलिपेथाम् अलिपध्वम्
उ० अलिपम्	अलिपाव	अलिपाम	अलिपे	अलिपावहि अलिपामहि

अस्—४ प०

प्र० आस्यत्	आस्यताम्	आस्यन्
म० आस्थः	आस्यतम्	आस्यत
उ० आस्यम्	आस्याव	आस्याम

परि+अस्—आ०

पर्यास्यत	पर्यास्येताम्	पर्यास्यन्त
पर्यास्यथा	पर्यास्येथाम्	पर्यास्यध्वम्
पर्यास्ये	पर्यास्यावहि	पर्यास्यामहि

शेष धातुओं के प्र० पु० एक० के रूप नीचे दिए जाते हैं —

धातु	धातु
शक्[1] (४ उ०, ५ प०)—अशकत्	शुध्—अशुधत्
उच् (४ प०, एकत्र करना)—औचत्	सिध्—असिधत्
मुच्—अमुचत्	आप्—आपत्
लुट् (४ प०, लपेटना)—अलुटत्	कुप्—अकुपत्
पत्—अपप्तत्	गुप् (४ प०, व्याकुल होना)—अगुपत्
क्लिद् (४ प०, गीला होना)—अक्लिदत्	डिप् (४ प०, फेंकना)—अडिपत्
क्ष्विद् (४ प०, सिक्त होना)—अक्ष्विदत्	युप्—अयुपत्
मद्—अमदत्	रुप्—अरुपत्
मिद् (१ आ०, ४ प०, पिघलना)—अमिदत्	लुप्[3]—(४ प०, ६ उ०)—अलुपत्
विद् (६ उ०)[2]—अविदत्	सृप्—असृपत्
शद् (१ प०, नष्ट होना)—अशदत्	क्षुभ्—अक्षुभत्
सद्—असदत्	तुभ् (हिंसा करना)—अतुभत्
स्विद्—अस्विदत्	नभ् (४ प०, हिंसा करना)—अनभत्]
ऋध् (४,५ प०, समृद्ध होना)—आर्धत्	लुभ्—अलुभत्
क्रुध्—अक्रुधत्	क्लम्—अक्लमत्
क्षुध्—अक्षुधत्	क्षम्—अक्षमत्

१. शक् (४ आ०) में आत्मनेपद में चतुर्थ और पचम भेद लगता है। जैसे—]
प्र० एक० अशक्त, अशकिष्ट।

२. विद् (आ०) में चतुर्थ और पंचम भेद लगता है। प्र० एक०—अवित्त, अवेदिष्ट।

३. लुप् में आत्मने० में चतुर्थ भेद लगता है। अलुप्त।

गृध् (४ प०, लालच करना)–अगृधत्
रध् (४ प०, हानि पहुँचाना)–अरधत्
शम्—अशमत्
श्रम्—अश्रमत्
सम् (१ प०, क्षुब्ध होना)–असमत्
कृश् (४ प०, कृश होना)–अकृशत्
नश्—अनशत्
भृश् (४ प०, गिरना)–अभृशत्
भ्रश्—अभ्रशत्
वृश् (४ प०, चुनना)—अवृशत्
तुप्—अतुपत्
तृप् (४ प०, प्यासा होना)–अतृपत्
दुप् (४ प०, दूपित होना)–अदुपत्
पिप्—अपिपत्
पुप्—अपुपत्
प्लुप् (४ प०, जलाना)–अप्लुपत्
रिप् (४ प०, हिंसा करना)–अरिपत्
रुप् (४ प०, रुष्ट होना)–अरुपत्
विप् (३ उ०, व्याप्त होना)[1]–अविपत्
वुप्—अवुपत्
व्युप् (४ प०, काटना)–अव्युपत्
शिप्—अशिपत्
गम्—अगमत्
तम्—अतमत्
दम्—अदमत्
भ्रम्—अभ्रमत्
शुप् (४ प०, सूखना)—अशुपत्
हृप्—अहृपत्
कुस् (४ प०, आलिंगन करना) अकुसत्
घस् (१ प०, खाना)—अघसत्
जस् (४ प०, छोडना)–अजसत्
तस् (४ प०, मुरझाना)—अतसत्
दस् (४ प०, नष्ट होना)–अदसत्
वस् (४प०, रुकना)—अवसत्
विस् (४ प०, जाना)–अविसत्
ब्युस् (४ प०, फेंकना)–अब्युसत्
मस् (४ प०, तोलना)–अमसत्
मुस् (४ प०, काटना)–अमुसत्
यस् (४ प०, यत्न करना)–अयसत्
वस्—बस् वाले ही रूप होंगे।
विस्—विस् वाले ही रूप।
वुस् (बुस्)–अवुसत् (अबुसत्)।
शास्—अशिषत्
द्रुह्—अद्रुहत्
मुह्—अमुहत्
स्निह्—अस्निहत्
स्नुह्—अस्नुहत्

५४३ निम्नलिखित धातुओ मे द्वितीय भेद विकल्प से लगता है। जहाँ पर

---

१. विप् (आ०) मे सप्तम भेद लगता है। अविक्षत।

दूसरा भेद नही लगता है वहा पर अनिट धातुओ मे चतुर्थ भद और सेट धातुओ मे पचम भद लगता है।

श्वयतिर्जीर्यतिग्रुचो ग्लुचिग्लुञ्चिम्रुचिम्लुच ।
रिणक्तिश्च विनक्तिश्च चा तास्त्वष्टौ च शुच्यति ॥१॥
नेनक्तिश्च युनक्तिश्च ववक्तिस्फोटती चुति ।
च्युतिजुती श्चोततिश्च श्च्युतिर्दाता रुदादय ॥२॥
क्षुदिछिदो छृदितदो बुदतिश्च भिनत्तिना ।
रुदिस्व दी बोधतिश्च रुणद्धिश्च तृपिदृपि ॥३॥
स्तम्नाति स्तम्नोतिदृशौ घोषतिश्लिष्यती जहि ।
तोहतिर्दोहतिब्रूहौ चत्वारिशदिय लुडि ॥४॥
विभाषयाऽडविकरणा परस्मपदिनो यदा ॥

धातु प्र० पु० एक०	वकल्पिक रूप	धातु प्र० एक०	वक० रूप
श्वि—अश्वत	अशिश्वियत[1] अश्वयीत	श्चुत—अश्चुतत	अश्चोतीत
जृ—अजरत	अजारीत	श्च्युत—अश्च्युतत	अश्च्योतीत
ग्रुच—अग्रुचत	अग्रोचीत	क्षुद—अक्षुदत	अक्षौत्सीत अक्षुत्त
ग्लुच्-अग्लुचत	अग्लोचीत	छिद—अच्छिदत	अच्छैत्सीत अच्छित्त
ग्लुञ्च अग्लुञ्चत	अग्लुञ्चीत	छृद—अच्छृदत	अच्छर्दीत अच्छर्दिष्ट
म्रुच-अम्रुचत	अम्रोचीत	तद—अतदत्	अतर्दीत अतर्दिष्ट
म्लुच-अम्लुचत	अम्लोचीत	बुन्द-अबुदत	अबुन्दीत अबुन्दिष्ट
रिच—अरिचत	अरैक्षीत अरिक्त	भिद—अभिदत	अभत्सीत अभित्त
विच—अविचत्	अवैक्षीत् अविक्त	रुद—अरुदत	अरोदीत
णिच—अणिचत	अणोचीत अणोचिष्ट	स्कन्द—अस्कदत	अस्कान्त्सीत
निज्—अनिजत	अनक्षीत अनिक्त	बुध-अबुधत	अबोधीत अबोधिष्ट
युज—अयुजत्	अयौक्षीत अयुक्त	रुध—अरुधत	अरौत्सीत् अरुद्ध
विज्—अविजत	अवैक्षीत अविक्त	तृप—अतृपत	अताप्सीत
स्फुट—अस्फुटत्	अस्फोटीत		अत्राप्सीत अतर्पीत

१ श्वि धातु मे द्वितीय भद के अतिरिक्त तृतीय और पचम भद भी लगता है।

धातु प्र० एक०	वैक० रूप	धातु प्र० एक०	वै० रूप
चुत्—अचुतत	अचोतीत्	दृप्—अदृपत्	अदार्प्सीत्,
च्युत्—अच्युतत्	अच्योतीत्		अद्राप्सीत्, अदर्पीत्
जुत्—अजुतत्	अजोतीत, अजोतिष्ट	स्तम्भ्—अस्तभत्	अस्तम्भीत्
दृश्—अदशत्	अद्राक्षीत	तुह्—अतुहत्	अतोहीत्
श्लिष्—अश्लिषत्	अश्लिक्षत्	दुह्—अदुहत्	अदोहीत्
घुष्—अघुषत्	अघोषीत्	बृह्—अबृहत्	अबर्हीत्
उह्—औहत	औहीत्		

५४४ निम्नलिखित २५ धातुएँ आत्मनेपदी हैं, परन्तु वे विकल्प से परस्मैपदी होती हैं और उनमे यह भेद लगता है। आत्मनेपद मे अनिट् होने पर उनमे चतुर्थ भेद लगता है और सेट् मे पचम भेद।

रुचिर्घुटिरुटिलुटो लोठते द्युतिवृत् श्वित'।
क्ष्वेदते मेदते स्यन्दि' स्वेदते च वृधि शृधि' ॥१॥
कम्पते क्षुभ्तुभिनभ शोभते स्रभते भ्रशि'।
भ्रशिध्वसी भ्रसिस्रसी रुचादि पर्चाविंशति' ॥२॥
आत्मनेपदिनो नित्य लुङि त्वेषा विभाषया।
अङ परस्मैपदिनो भजन्त्यन्यत्र सिज्वती ॥३॥

धातु प्र० एक०	वैक० रूप	धातु प्र० एक०	वैक० रूप
रुच्—अरुचत्	अरोचिष्ट	वृध्—अवृधत्	अवर्धिष्ट
घुट्—अघुटत्	अघोटिष्ट	शृध्—अशृधत्	अशर्धिष्ट
रुट्—अरुटत्	अरोटिष्ट	क्लृप्—अक्लृपत्	अक्लिप्ष्ट, अक्लृप्त
लुट्—अलुटत्	अलोटिष्ट	क्षुभ्—अक्षुभत्	अक्षोभिष्ट
लुठ्—अलुठत्	अलोठिष्ट	तुभ्—अतुभत्	अतोभिष्ट
द्युत्—अद्युतत्	अद्योतिष्ट	नभ्—अनभत	अनभिष्ट
वृत्—अवृतत्	अवर्तिष्ट	शुभ्—अशुभत्	अशोभिष्ट
श्वित्—अश्वितत्	अश्वेतिष्ट	स्रभ्—अस्रभत्	अस्रभिष्ट
क्ष्विद्—अक्ष्विदत्	अक्ष्वेदिष्ट	भ्रंश्—अभ्रशत्	अभ्रंशिष्ट
मिद्—अमिदत्	अमेदिष्ट	भ्रश्—अभ्रशत्	अभ्रशिष्ट

स्यन्द्—अस्यदत्	अस्यन्दिष्ट, अस्यन्त	ध्वम्—अध्वसत्	अध्वसिष्ट
स्विद्—अस्विदत्	अस्वेदिष्ट	भ्रस्—अभ्रसत्	अभ्रसिष्ट
		स्रम्—अस्रसत्	अस्रसिष्ट

तृतीय भेद

५४५. तिङ प्रत्यय —

द्वितीय भेद के तुल्य ।

५४६. इन धातुओं में यह भेद नित्य लगता है—चुरादिगणी धातुएँ, णिच् प्रत्ययान्त धातुएँ, कुछ अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ, कम् धातु तथा कर्तृवाच्य में श्रि द्रु और स्रु धातुएँ। धे और श्वि धातुओं में यह भेद विकल्प से लगता है।

५४७. (क) पहले धातु को द्वित्व होता है और बाद में द्वितीय भेद के तुल्य धातु से पहले अ लगता है और अन्त में तिङ प्रत्यय लगते हैं।

(ख) अ से पहले धातु के अन्तिम इ को इय् होता है और उ को उव् तथा अन्तिम ओ का लोप हो जाता है।

उदाहरण

श्रि (आश्रय लेना)—१ उभय०

पर०

प्र०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म०	अशिश्रिय	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम

आत्मने०

प्र०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
म०	अशिश्रियथा	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध्वम्
उ०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रियामहि

प्र० पु० एक० में इन धातुओं के ये रूप होंगे—द्रु–अदुद्रुवत्, स्रु—असुस्रुवत्, कम्—अचकमत ।(जब कम् से आय् प्रत्यय होता है, तब इसका अचीकमत भी रूप बनता है। देखो नियम ४६१ और ५४८), श्वि–अशिश्वियत् (देखो पृ० ३३५ पर पाद टिप्पणी), धे—अदधत् (धे धातु में भी इसके अतिरिक्त प्रथम और षष्ठ भेद लगता है)।

५४८. चुरादिगणी और णिजन्त धातुएँ —

(क) अग (Base) के अय का लोप हो जाता है (धातु मे णिच् के कारण होने वाले गुण या वृद्धि लोप से पहले ही हो जाते है)। दीर्घ स्वरो के स्थान पर ह्रस्व स्वर हो जाते है, (ए, ऐ को इ हो जाता है और ओ, औ को उ)।

इस प्रकार के परिवर्तन के बाद अग को सामान्य नियमानुसार द्वित्व होता है। जैसे—भावय (भू का णिजन्त रूप) = भाव् = भव् = द्वित्व होने पर बभव्। चेतय (चित् का णिजन्त) = चेत् = चित् = चिचित्, आदि।

(ख) अभ्यास (द्वित्व वाला अश) के अ को इ हो जाता है, यदि बाद मे ह्रस्व स्वर हो, सयुक्त वर्णो के कारण दीर्घ माना जाने वाला स्वर न हो। यदि बाद मे दीर्घ स्वर या सयुक्त वर्ण नही होगा तो अभ्यास के इस इ को ई हो जाएगा। जैसे—बभव् = बिभव् = बीभव्, चिचित् = चीचित्। स्खल् = चस्खल् चिस्खल्। यहाँ पर बाद मे सयुक्त वर्ण है, अत इ को दीर्घ नही हुआ। स्पन्द् का पस्पन्द् ही होगा, क्योकि न्द् के कारण स्प का अ दीर्घ है।

(ग) जिन धातुओ की उपधा मे ह्रस्व या दीर्घ ऋ है, उनका यह ऋ या ॠ विकल्प से शेष रहता है। दीर्घ ॠ को ह्रस्व हो जाता है। वृत् + णिच् = वर्तय = अय हटाने पर वर्त् और इस नियम से वृत्। वर्त् = ववर्त्। वृत् = ववृत् = विवृत् = वीवृत्। कृत्—कीर्तय = कीर्त् और इस नियम से कृत्। कीर्त् = चिकीर्त्, कृत् = चीकृत्।

(घ) इस प्रकार से अग के बन जाने पर द्वितीय भेद के तुल्य अग से पूर्व अ लगेगा और बाद मे तिङ लगेंगे। भू का अबीभवत् त, चित् का अचीचितत्, स्खल् का अचिस्खलत्-त, स्पन्द् का अपस्पन्दत्-त, वृत् का अववर्तत्-त, अवीवृतत्-त; कृत् का अचिकीर्तन्-त, अचीकृतन्-त, पृथ् का अपपर्थत्-त, अपीपृथत्-त, आदि।

सूचना—जहाँ पर आत्मनेपद त वाले रूप नही दिए गए हैं, वहाँ पर भी आत्मनेपद वाले रूप बनते है। यह स्मरण रखना चाहिए।

५४६. अजादि धातुएँ या अग —

(क) यदि धातु अजादि है और अन्त मे एक ही व्यजन है तो उस व्यजन को ही द्वित्व होगा और अभ्यास वाले अश मे उस व्यजन मे इ और लग जाएगा। जैसे—अट् = अट्ट् = आटिट् = आटिटत्-त, आप् = आपिपत्-त, ऊह् = औजिहत्-त आदि।

(ख) यदि धातु के अन्त मे संयुक्त वर्ण है और उनका पहला वर्ण न्, द् या र् है तो उससे बाद वाले व्यंजन को ही द्वित्व होगा। जैसे= उन्द् = उन्दद् = उन्दिद्, इसका ही अन्त में रूप बनेगा--औन्दिदत्-त। इसी प्रकार अट्ट् का आट्टिटत्-त। अट्ट् धातु मूलतः अट्ट् मानी जाती है, अन्यथा आटिट्टत् रूप बनेगा। अर्ह् का आर्जिहत्-त; अर्ज् का आर्जिजत्-त, आदि।

(ग) निम्नलिखित धातुओं के अभ्यास के इ को अ हो जाता है--अन्, अड्क्, अड्ग्, अन्ध्, अंम्, अर्थ् (आ०) तथा अन्य कुछ धातुएँ। जैसे--प्र० पु० एक० मे--औननत्, आञ्चकत्, आञ्जगत्, आन्दधत्, आसमत्, आर्तथत, आदि।

५५०. उ या ऊ अन्त वाली धातुओं के अभ्यास के उ को ई हो जाता है, बाद मे पवर्ग, अन्त स्थ या ज हो और इनके बाद अ या आ हो। अन्यत्र अभ्यास के उ को ऊ हो जाएगा। जैसे--नु-अनूनवत्-त, कू-अचूकवत्-त, द्रु-अदुद्रवत्, च्यु-अदुच्यवत्-त, आदि। परन्तु पू-अपीपवत्-त, भू-अबीभवत्-त, जु (शीघ्रता करना)--अजीजवत्, मु (बाँधना)--अमीमवत्, यु (बाँधना)--अयीयवत्, रु--अरीरवत्-त, लू--अलीलवत्, आदि।

(क) इन धातुओं के अभ्यास के उ को इ विकल्प से होता है--स्रु, श्रु, द्रु, प्रु (जाना), प्लु--(तैरना) और च्यु। असिस्रवत्-असुस्रवत्, अशिश्रवत्-अशुश्रवत्, अदिद्रवत्-अदुद्रवत्, अपिप्रवत्-अपुप्रवत्, अपिप्लवत्-अपुप्लवत्, अचिच्यवत्-अचुच्यवत्-त।

५५१ निम्नलिखित धातुओं के उपधा के स्वर को विकल्प से ह्रस्व होता है--भ्राज्, भास्, भाप्, दीप्, जीव्, मील्, पीड्, कण् (चीखना), चण् (शब्द करना, जाना), रण् (शब्द करना), भण्, वण् (शब्द करना), श्रण् (देना), लुप् (६ उ०, काटना), हेठ् (तंग करना), ह्वे, लुट्, लुठ् और लुप् (४ प०)। जैसे--प्र० पु० एक०--अबिभ्रजत्-अबभ्राजत्, अबीभसत्-अबभासत्, अबीभपत्-अबभापत्, अदीदिपत्-अदिदीपत्, अजीजिवत्-अजिजीवत्, अमीमिलत्-अमिमीलत्, अपीपिडत्-अपिपीडत्, अचीकणत्-अचकाणत्, अचीचणत्-अचचाणत्, अरीरणत्-अरराणत्, अबीभणत्-अबभाणत्, अबीवणत्-अववाणत्, अशिश्रणत्-अशश्राणत्, अलूलुपत्-अलुलोपत्, अजीहिठत्-अजिहेठत्, अजूहवत्-अजुहावत् (देखो आगे नियम ५५३), अलूलुटत्-अलुलोटत्, अलूलुठत्-अलुलोठत्, आदि।

५५२ इन धातुओं के अभ्यास के अ को इ नहीं होता है—स्मृ, दृ, त्वर्, प्रथ्, म्रद् (चूर्ण करना, चाहना), स्तृ और स्पश्। वेष्ट् (१ आ०, घेरना) और चेष्ट् के अभ्यास के इ को विकल्प से अ होना है। असस्मरत्, अददरत्, अतत्वरत्, अपप्रथत्, अमम्रदत्, अतस्तरत्, अपस्पशत्। वेष्ट्—अविवेष्टत्-अववेष्टत्, चेष्ट्—अचिचेष्टत्-अचचेष्टत् ।

५५३. ह्वे और स्वप् णिजन्त को सम्प्रसारण होता है और दिव को विकल्प से। ह्वे-हृ-हावय्-हाव् या हु्व्-नियम ५५० से जुहुव्, जुहाव्-अजुहावत्, अजूहवत् । स्वप्—स्वापय् स्वाप्-सुप् सुषुप्-सूषुप्-असूषुपत् । दिव-अदूदवत्-अदिदवयत् ।

५५४. नियम ४०० में दी हुई धातुओं के अभ्यास का स्वर वैसा ही रहता है। उसको इ आदि नहीं होता है। कथ्—अचकथत्, वर्—अववरत्, गठ्—अशशठत्, रह्—अररहत्, पत्—अपपतत्, स्पृह्—अपस्पृहत्, सूच्—असुसूचत्।

५५५ इन धातुओं के उपधा के स्वर का ह्रस्व नहीं होता है—शास्, एज्, काश्, क्रीड्, क्षीव्, खाद्, खेल्, ढौक्, ताय्, दाश्, देव्, नाथ्, प्रोथ्, बाध्, याच्, योध्, राध्, राज्, लाघ्, लेप्, लोक्, लोच्, वेप्, वेट्, श्लाघ्, श्लोक, सेक्, सेव्, हेप् तथा अन्य कुछ कम प्रचलित धातुएँ। अशशासत्, ऐजिजत्, अचकाशत्, अचिक्रीडत्, अचिक्षीवत्, अचखादत्, अचिखेलत्, आदि ।

५५६ धातुएँ, जिनके णिजन्त के लुङ् के रूप अनियमित रूप से बनते हैं—
अधि+इ (पढ़ना)—अध्यापिपत्-अध्यजीगपत्। अधि+इ (स्मरण करना)
का रूप होता है—अध्यजीगमत् ।
ईर्ष्य् (ईर्ष्या करना)-ऐर्षिष्यत्-त, ऐर्ष्यियत्-त ।
ऊर्णु—और्णूनवत् ।
गण्—अजगणत्-अजीगणत् ।
घ्रा—अजिघ्रपत्-अजिघ्रिपत् ।
चकास्—अचीचकासत्-अचचकासत् ।
द्युत्—अदुद्युतत्-त ।
पा (पीना)—अपीप्यत्। पा (रक्षा करना) का रूप होता है—अपीपलत् ।
प्या—अपिप्यिपत्-त ।
प्रुद्—अपुप्रुदत्-त ।

उदाहरण

कृ (करना)

	पर०			आत्मने०		
प्र०	अचीकरत्	अचीकरताम्	अचीकरन्	अचीकरत	अचीकरेताम्	अचीकरन्त
म०	अचीकरः	अचीकरतम्	अचीकरत	अचीकरथाः	अचीकरेथाम्	अचीकरध्वम्
उ०	अचीकरम्	अचीकराव	अचीकराम	अचीकरे	अचीकरावहि	अचीकरामहि

त्रप्

प्र०	अतित्रपत्	अतित्रपताम्	अतित्रपन्	अतित्रपत	अतित्रपेताम्	अतित्रपन्त
म०	अतित्रपः	अतित्रपतम्	अतित्रपत	अतित्रपथाः	अतित्रपेथाम्	अतित्रपध्वम्
उ०	अतित्रपम्	अतित्रपाव	अतित्रपाम	अतित्रपे	अतित्रपावहि	अतित्रपामहि

चुर्

प्र०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म०	अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि

षष्ठ भेद (परस्मैपदी ही है)

सूचना—यहाँ पर सरलता की दृष्टि से चतुर्थ और पंचमभेद से पहले षष्ठ और सप्तमभेद दिया गया है ।

५५७ षष्ठ भेद के तिङ् प्रत्यय —

प्र०	सीत्	सिष्टाम्	सिषुः
म०	सीः	सिष्टम्	सिष्ट
उ०	सिषम्	सिष्व	सिष्म

५५८ षष्ठ भेद इन धातुओं में लगता है—आकारान्त धातुएँ (वे धातुएँ भी जिनके अन्तिम स्वरों को आ हो जाता है), यम्, रम् (पर०, अर्थात् वि, आ, परि के साथ) और नम् धातु । उप या उद्+यम् (आ०) और रम् (आ०) में चतुर्थ भेद लगता है ।

५५९. आकारान्त धातुएँ जिनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय भेद ही लगते हैं, उनमें यह भेद नहीं लगेगा ।

उदाहरण

यम्

प्र०	अयसीत्	अयसिष्टाम्	अयसिषु
म०	अयसी.	अयसिष्टम्	अयसिष्ट
उ०	अयसिषम्	अयसिष्व	अयसिष्म

विरम्—व्यरसीत्, व्यरसिष्टाम्, व्यरसिषु, आदि; नम्—अनसीत्, अनसिष्टाम्, अनसिषु आदि, ग्लो—अग्लासीत्, आदि, छो—अच्छासीत् आदि; मि या मी—अमासीत्, अमासिष्टाम्, अमासिषु आदि; ली—अलासीत्, अलासिष्टाम्, अलासिषु आदि।

सप्तम भेद (पर० और आ०)

५६०. तिङ् प्रत्यय (Terminations)—

	पर०			आत्मने०		
प्र०	सत्	सताम्	सन्	सत	साताम्	सन्त
म०	स	सतम्	सत	सथा	साथाम्	सध्वम्
उ०	सम्	साव	साम	सि	सावहि	सामहि

५६१. इन धातुओं में यह भेद लगता है—श्, ष्, स् और ह् अन्त वाली अनिट् धातुएँ तथा इ, उ, ऋ या ऌ उपधा वाली धातुएँ। दृश् धातु अपवाद है। इसमें चतुर्थ भेद लगता है।

५६२. मृश्, स्पृश् और कृष् (१ प०, ६ उ०) में यह भेद विकल्प से लगता है।

५६३. दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं में आत्मनेपद में इन स्थानों पर प्रत्यय का अंश स या सा विकल्प से हट जाता है—प्र० पु० एक०, म० पु० एक० और बहु० और उ० पु० द्वि०।

उदाहरण

दिश्—उभय०

प्र०	अदिक्षत्	अदिक्षताम्	अदिक्षन्	अदिक्षत	अदिक्षाताम्	अदिक्षन्त
म०	अदिक्ष	अदिक्षतम्	अदिक्षत	अदिक्षथा	अदिक्षाथाम्	अदिक्षध्वम्
उ०	अदिक्षम्	अदिक्षाव	अदिक्षाम	अदिक्षि	अदिक्षावहि	अदिक्षामहि

दिह्—उभय०

प्र०	अधिक्षत्	अधिक्षताम्	अधिक्षन्	अधिक्षत, अदिग्ध	अधिक्षाताम्	अधिक्षन्त
म०	अधिक्ष	अधिक्षतम्	अधिक्षत	अधिक्षथा, अदिग्धा,	अधिक्षायाम्	अधिक्षध्वम्, अधिग्ध्वम्
उ०	अधिक्षम्	अधिक्षाव	अधिक्षाम	अधिक्षि	अधिक्षावहि, अदिह्वहि	अधिक्षामहि

इसी प्रकार दुह् के रूप चलेंगे।

लिह्

प्र०	अलिक्षत्	अलिक्षताम्	अलिक्षन्	अलिक्षत, अलीढ	अलिक्षाताम्	अलिक्षन्त
म०	अलिक्ष	अलिक्षतम्	अलिक्षत	अलिक्षथा, अलीढा	अलिक्षाथाम्,	अलिक्षध्वम्, अलीढ्वम्
उ०	अलिक्षम्	अलिक्षाव	अलिक्षाम	अलिक्षि	अलिक्षावहि, अलिह्वहि	अलिक्षामहि

गुह्[1]—उभय०

प्र०	अघुक्षत्	अघुक्षताम्	अघुक्षन्	अघुक्षत, अगूढ	अघुक्षाताम्	अघुक्षन्त
म०	अघुक्ष	अघुक्षतम्	अघुक्षत	अघुक्षथा, अगूढा	अघुक्षाथाम्	अघुक्षध्वम्, अघूढ्वम्
उ०	अघुक्षम्	अघुक्षाव	अघुक्षाम	अघुक्षि	अघुक्षावहि, अगुह्वहि	अघुक्षामहि

धातु	प्र० पु० एक०	धातु	प्र० पु० एक०
रिश्	—अरिक्षत्	त्विष्	—अत्विक्षन्, अत्विक्षत
रुश्	—अरुक्षत्	द्विष्	—अद्विक्षन्, अद्विक्षत
लिश्	—अलिक्षन्, अलिक्षत	विष्	—अविक्षत्
विश्	—अविक्षत्	श्लिष्	—अश्लिक्षन्

१. गुह् धातु वेट् है। इसमें विकल्प से पंचम भेद भी लगता है। अगूहीत्, अगूहिष्ट आदि।

धातु	प्र० पु० एक०	धातु	प्र० पु० एक०
तुश्—	अतुक्षत्	गृह्—	अघृक्षत-अर्गाहिष्ट
क्लिश्[1]—	अक्लिक्षत्, अक्लेशीत्	मिह्—	अमिक्षत्
स्पृश्—	अस्पृक्षत्, अस्पार्क्षीत्, अस्प्राक्षीत्	तृह्—	अतृक्षत्
मृश्—	अमृक्षत्, अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्,	स्तृह्—	अस्तृक्षत्, अस्तर्हीत्
निर्+कुष्—	निरकुक्षत्, निरकोषीत्	वृह—	अभृक्षत्, अबर्हीत्
कृष्—	अकृक्षत्, अकृक्षत, अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत्, अकृष्ट	वृह्—	अवृक्षत्, अवर्हीत्
		रुह—	अरुक्षत्

चतुर्थ भेद

५६४ तिङ प्रत्यय —

	परस्मै०			आत्मने०		
प्र०	मीत्	स्ताम्	सु	स्त	साताम्	सत
म०	सी	स्तम्	स्त	स्था	साथाम्	ध्वम्
उ०	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि

५६५. (क) जिन अनिट् धातुओ मे पूर्वोक्त कोई भेद नही लगते है, उनमे यह भेद लगता है। जिन अनिट् धातुओ मे विकल्प से कोई पूर्वोक्त भेद लगता है, उनमे यह भेद भी लगता है। वेट् धातुओ मे भी यह भेद विकल्प से लगता है ।

अपवाद-नियम (१) परस्मैपदी स्तु और सु धातु मे पचम भेद लगता है।

(२) सयुक्त वर्ण से प्रारम्भ होने वाली ऋकारान्त धातुओ मे आत्मनेपद मे चतुर्थ और पचम दोनो भेद लगते है ।

(३) परस्मैपदी अञ्ज् और धू धातुओ मे पचम भेद ही लगता है। धू (आ०) म चतुर्थ और पचम दोनो भेद लगते है ।

(४) वृ और दीर्घ ॠकारान्त सेट् धातुओं से आत्मनेपद मे चतुर्थ और पचम दोनो भेद लगते हैं। आत्मनेपदी स्तु और क्रम् धातु से चतुर्थ भेद ही लगता है।

---

१. जो वेट् धातुएँ अनिट् रूप मे इस भेद मे आती हैं, वे सेट् रूप मे पंचम भेद मे विकल्प से आती हैं।

५६६ (क) परस्मैपद में धातु के स्वरों की वृद्धि हो जाती है। जैसे—नी—अनैषीत्, कृ—अकार्षीत्, भञ्ज्—अभाङ्क्षीत्, आदि।

(ख) आत्मनेपद में धातु के अन्तिम इ ई और उ ऊ को गुण हो जाता है। अन्तिम ऋ और उपधा के स्वरों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। धातु के अन्तिम ॠ को नियम ३९४ के अनुसार ईर् या ऊर् होगा। चि—अचेष्ट, नी—अनेष्ट, च्यु—अच्योष्ट, सू—असोष्ट। कृ के रूप आगे देखिए। भिद्—अभित्त, स्तॄ—अस्तीर्ष्ट, वॄ—अवूर्ष्ट।

(ग) अनिट् धातुओं के उपधा के ऋ को विकल्प से र हो जाता है। तृप्-अतार्प्सीत्-अत्राप्सीत्।

५६७ ह्रस्व स्वर के बाद और झल् (वर्ग के पंचम अक्षर और अन्तःस्थ को छोड़कर सभी व्यंजन) के बाद स्त और स्थ से प्रारम्भ होने वाले प्रत्ययों के स् का लोप हो जाता है। हु—अहुत (प्र० एक०), कृ—अकृथा (म० एक०); क्षिप्—अक्षिप्त, अक्षिप्था, कृष्—अकृष्ट (प्र० एक०), आदि।

उदाहरण

पच्

प्र०	अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः	अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत
म०	अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त	अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्
उ०	अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि

इसी प्रकार अन्य हलन्त अनिट् धातुओं के रूप चलेंगे—प्र० पु० एक० क्षिप्—अक्षैप्सीत् (पर०), अक्षिप्त (आ०), युज्—अयौक्षीत् (प०), अयुक्त (आ०), सृज्—अस्राक्षीत्,[1] अस्राष्टाम् (म० २), दृश्—अद्राक्षीत्,[1] सम्—दृश्—समदृष्ट, प्रच्छ्—अप्राक्षीत्, म० पु० अप्राक्षीः अप्राष्टम्, अप्राष्ट, रुध्—अरौत्सीत्, म० पु० १—अरौत्सीः, म०पु० २—अरौद्धम्, उ० १—अरौत्सम्, आ०—अरुद्ध, अरुत्साताम् आदि, उ० १—अरुत्सि, दह्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम् आदि, उ० १—अधाक्षम्।

	जि—पर०			वि+जि—आ०		
प्र०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः	व्यजेष्ट	व्यजेषाताम्	व्यजेषत
म०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट	व्यजेष्ठाः	व्यजेषाथाम्	व्यजेढ्वम्
उ०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म	व्यजेषि	व्यजेष्वहि	व्यजेष्महि

१. देखो नियम ४६५।

इसी प्रकार इनके रूप चलेंगे—चि, नी, ली[1] आदि, श्रु, यु (९ उ०) आदि। प्र० पु० १—अचैषीत्, अचेष्ट; ली (९ प०, ४ आ०)—अलैषीत्, अलेष्ट-अलासि। श्रु—अश्रौषीत्, आदि।

कृ—उभय०

प्र०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

स्तृ (उ०) के रूप इसी प्रकार चलेंगे। वृ (आ०) के रूप इसी प्रकार चलेंगे।

	वृ—आ०			स्तृ—आ०		
प्र०	अवूर्ष्ट	अवूर्षाताम्	अवूर्षत	अस्तीर्ष्ट	अस्तीर्षाताम्	अस्तीर्षत
म०	अवूर्ष्ठाः	अवूर्षाथाम्	अवूर्ढ्वम्	अस्तीर्ष्ठाः	अस्तीर्षाथाम्	अस्तीर्ढ्वम्
उ०	अवूर्षि	अवूर्ष्वहि	अवूर्ष्महि	अस्तीर्षि	अस्तीर्ष्वहि	अस्तीर्ष्महि

	धृ—आ०			कृष्[2]—पर०		
प्र०	अधृष्ट	अधृषाताम्	अधृषत	अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत्	अकार्ष्टाम्, अक्राष्टाम्	अकार्क्षुः, अक्राक्षुः
म०	अधृष्ठाः	अधृषाथाम्	अधृढ्वम्	अकार्क्षीः, अक्राक्षीः	अकार्ष्टम्, अक्राष्टम्	अकार्ष्ट, अक्राष्ट
उ०	अधृषि	अधृष्वहि	अधृष्महि	अकार्क्षम्, अक्राक्षम्	अकार्क्ष्व, अक्राक्ष्व	अकार्क्ष्म, अक्राक्ष्म

आत्मनेपद में अकृष्ट आदि।

इसी प्रकार तृप्, दृप्, स्पृश् आदि के रूप चलेंगे।

तृप्—अतार्प्सीत्, अत्राप्सीत्, आदि।

स्पृश्—अस्पार्क्षीत्, अस्प्राक्षीत्, आदि।

मृश्—अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्, आदि।

---

१. जब ली के ई को आ हो जाता है, तब इसमें षष्ठ भेद भी लगता है।

२. दृप्, स्पृश् और मृश् धातुओं में सप्तम भेद भी लगता है। तृप् और दृप् धातुओं में इसके अतिरिक्त द्वितीय और पंचम भेद भी लगता है।

	मृज्—पर०				वम्—पर०	
प्र०	अमार्क्षीत्	अमार्ष्टाम्	अमार्क्षुः	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
म०	अमार्क्षीः	अमार्ष्टम्	अमार्ष्ट	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उ०	अमार्क्षम्	अमार्क्ष्व	अमार्क्ष्म	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

वह्—उभय०

प्र०	अवाक्षीत्	अवोढाम्	अवाक्षुः	अवोढ	अवक्षाताम्	अवक्षत
म०	अवाक्षीः	अवोढम्	अवोढ	अवोढाः	अवक्षाथाम्	अवोढ्वम्
उ०	अवाक्षम्	अवाक्ष्व	अवाक्ष्म	अवक्षि	अवक्ष्वहि	अवक्ष्महि

	गाह्[2]—आ०			प्र+क्रम्—आ०	
प्र०	अगाढ	अघाक्षाताम्	अघाक्षत	प्राक्रंस्त	प्राक्रंसाताम्	प्राक्रंसत
म०	अगाढाः	अघाक्षाथाम्	अघाढ्वम्	प्राक्रंस्थाः	प्राक्रंसाथाम्	प्राक्रन्ध्वम्
उ०	अघाक्षि	अघाक्ष्वहि	अघाक्ष्महि	प्राक्रंसि	प्राक्रंस्वहि	प्राक्रंस्महि

इसी प्रकार क्षम् के रूप चलेंगे।
अक्षस्त आदि।

चतुर्थ भेद की अनियमित धातुएँ:—

५६८ दा, धा धातुओं तथा जिन धातुओं का दा या धा रूप रहता है (देखो नियम ४५९) और स्था धातु के अन्तिम स्वर को इ हो जाता है, आत्मनेपद में। इस इ को गुण नहीं होता है। परस्मैपद में इन धातुओं में प्रथम भेद लगता है। (देखो नियम ५३२)।

५६९ आ+हन् (आ०) के न् का लोप हो जाता है, बाद में लिङ् प्रत्यय होने पर।

हन् धातु में परस्मै० और आत्मने० दोनों में विकल्प से पंचम भेद भी लगता है और उस अवस्था में हन् के स्थान पर वध् हो जाता है।

५७० गम् और उप+यम् (विवाह करना) के म् का विकल्प से लोप

---

१ वस् के लिए देखो नियम ४८०। अवास्+स्ताम्=अवात्+स्ताम्=अवात्ताम् (प्र० पु० द्वि०)। वस् (आ०) सेट् है, अतः उसमें पंचम भेद लगता है।

२. इसमें पंचम भेद भी लगता है।

हो जाता है, बाद मे आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय होने पर। जब यम् धातु का अर्थ 'दूसरो के दोष प्रकट करना' होगा तो म् का लोप अवश्य होगा।

५७१. पद् धातु का प्र० पु० एक० मे अपादि रूप बनता है। बुध् धातु (४ आ०) से प्र० पु० एक० मे विकल्प से इ लगता है और उससे पहले धातु के उ को गुण होता है।

उदाहरण

आ+हन्—आ०

प्र० आहत	आहसाताम्	आहसत
म० आहथा	आहसाथाम्	आहध्वम्
उ० आहसि	आहस्वहि	आहस्महि

उद्+आ+यम्

प्र० उदायत	उदायसाताम्	उदायसत
म० उदायथा	उदायसाथाम्	उदायध्वम्
उ० उदायसि	उदायस्वहि	उदायस्महि

सम्+गम् (१)

प्र० समगस्त	समगसाताम्	समगसत
म० समगस्था	समगसाथाम्	समगन्ध्वम्
उ० समगसि	समगस्वहि	समगस्महि

(२)

प्र० समगत	समगसाताम्	समगसत
म० समगथा	समगसाथाम्	समगध्वम्
उ० समगसि	समगस्वहि	समगस्महि

इसी प्रकार उप+यम् के रूप चलेंगे। प्र० एक—उपायस्त-उपायत, म० एक०—उपायस्था-उपायथा, उ० एक० उपायसि—उपायसि, उ० द्वि०—उपायस्वहि-उपायस्वहि, आदि।

बुध्

प्र० अबुद्ध, अबोधि	अभुत्साताम्	अभुत्सत
म० अबुद्धा	अभुत्साथाम्	अभुद्ध्वम्
उ० अभुत्सि	अभुत्स्वहि	अभुत्स्महि

पद्

प्र० अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत

म० अपत्था	अपत्माथाम	अपद्ध्वम्
उ० अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

अधि + इ[1]

प्र० अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० अध्यगीष्ठा	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
उ० अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि
प्र० अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
म० अध्यैष्ठा	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
उ० अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

स्था	—	प्र० एक०	—	समस्थित
दा	—	"	—	अदित
धा	—		—	अधित
मी	—		—	अमास्त

पञ्चम भेद

५७२. तिङ प्रत्यय—चतुर्थ भेद वाले तिङ में पूर्व इ लगा देने से पञ्चम भेद के लिए तिङ् प्रत्यय प्राप्त हो जाते हैं। इसमें प्र० पु० और म० पु० एक० में म् का लोप हो जाता है। जैसे—

	परस्मै०			आत्मने०	
प्र० ईत्	इष्टाम्	इषु	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० ई	इष्टम्	इष्ट	इष्ठा	इषाथाम्	इढ्वम्
उ० इषम्	इष्व	इष्म	इषि	इष्वहि	इष्महि

५७३ जिन धातुओं में पूर्वोक्त कोई भेद नहीं लगता है, उनमें यह भेद लगता है। यह भेद मुख्यतया सेट धातुओं में लगता है। (देखो नियम ५६५)

५७४ (क) परस्मैपद में निम्नलिखित स्थानों पर वृद्धि होती है—धातु के अन्तिम स्वर को, र् या ल् अन्त वाली धातुओं की उपधा के अ को, वद् और व्रज् धातुओं की उपधा के अ को। लू—अलावीत्, चर्—अचारीत्, फल्—अफालीत्, आदि।

---

१. देखो नियम ४८६।

(ख) धातुओं की उपधा के ह्रस्व स्वर को गुण होता है। बुध्—अबोधीत्, आदि।

(ग) हलादि (जिसके प्रारम्भ में कोई व्यंजन है) धातु की उपधा के ह्रस्व अ को विकल्प से वृद्धि होती है, धातु के अन्त में र् या ल् न हो तो। पठ्—अपाठीत् अपठीत्, गद्—अगादीत्-अगदीत्।

(घ) निम्नलिखित धातुओं में स्वर को वृद्धि नहीं होती है—ह्, म्, य् अन्त वाली धातुएँ, क्षण्, श्वस्, जागृ, श्वि, कट् (ढकना, घेरना), चट् (ताडना, चोट पहुँचाना), चत्, चद् (मांगना), पथ् (जाना, हिलना), मथ् (मथना), लग् (लगना), ह्म् और ह्ल्म् (शब्द करना, न्यून होना)।

(ङ) आत्मनेपद में धातु के स्वर को गुण होता है। लू—अलविष्ट।

उदाहरण

स्तु— प्र० एक० अस्तावीत्
उ० एक० अस्ताविषम्

सु— प्र० एक० असावीत्
उ० एक० असाविषम्

धू— प्र० एक० अधावीत्, अधविष्ट
उ० एक० अधाविषम्, अधविषि

वृ, वॄ—पर० प्र० एक० अवारीत्
उ० एक० अवारिषम्

वृ, वॄ—आ० प्र० एक० अवरिष्ट-अवरीष्ट
म० एक० अवरिष्ठा अवरीष्ठा
उ० एक० अवरिषि-अवरीषि
उ० द्वि० अवरिष्वहि-अवरीष्वहि

स्तृ— प्र० एक० अस्तरिष्ट
उ० एक० अस्तरिषि

स्तॄ— प्र० एक० पर० अस्तारीत्।
आ० अस्तरिष्ट-अस्तरीष्ट[1]।
म० एक० अस्तरिष्ठा अस्तरीष्ठा
उ० एक० अस्तरिषि अस्तरीषि।

स्नु—प्र० एक० अस्नावीत्
उ० एक० अस्नाविषम्

मृज्—प्र० एक० अमार्जीत्
उ० एक० अमार्जिषम्

हन्—(उ०) प्र० एक० अवधीत्, अवधिष्ट
उ० एक० अवधिषम्, अवधिषि
(देखो नियम ५६९)

क्रम्—प्र० एक० अक्रमीत्
उ० एक० अक्रमिषम्

इन धातुओं के वैकल्पिक रूपों के लिए देखो पूर्वोक्त भेद।

---

१ देखो नियम ४७५।

दिव—प्र० १ (=एक०) अदवयीत्
उ० १— अदवयिषम्
जागृ—प्र० १— अजागरीत्
उ० १— अजागरिषम्
अञ्ज्—प्र० १—आञ्जीत्
उ० १—आञ्जिषम्
व्रज्—प्र० १—अव्राजीत्
उ० १—अव्राजिषम्
विज्[1] (७ प०)—अविजीत्
(६ आ०)—अविजिष्ट
भण्—प्र० १—अभाणीत्-अभणीत्
वद्—प्र० १—अवादीत्
उ० १—अवादिषम्
दवस्—प्र० १—अदवसीत्
उ० १—अदवसिषम्
ग्रह (उ०) प्र० १—अग्रहीत् अग्रहीष्ट
उ० १—अग्रहीषम्, अग्रहीषि

गुप्[2]—प्र० १—अगोपायीत्, अगोपीत्
उ० १—अगोपायिषम्, अगोपिषम्
तृप्—प्र० १—अतर्पीत्
उ० १—अतर्पिषम्
स्यम्—प्र० १—अस्यमीत्
उ० १—अस्यमिषम्
क्षम्—प्र० १—अक्षमिष्ट
उ० १—अक्षमिषि
व्यय्—प्र० १—अव्ययीत्, अव्ययिष्ट
उ० १—अव्ययिषम्, अव्ययिषि
क्षर्—प्र० १—अक्षारीत्
ह्मल्—प्र० १—अह्मालीत्
गाह्—प्र० १—अगाहिष्ट
उ० १—अगाहिषि
गुह्[3]—प्र० १—अगूहीत्, अगूहिष्ट
उ० १—अगूहिषम्, अगूहिषि

पचम भेद की अनियमित धातुएँ —

५७५ इन धातुओ म आत्मने० प्र० पु० एक० म विकल्प स इप्ट के स्थान पर इ हो जाता है—दीप जन्, पूर् ताय् और प्याय्।

५७६ तनादिगण (गण ८) की ण् या न् अन्त वाली धातुओ के ण् या न् का आत्मने० म विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर प्र० पु० एक० मे इप्ट के स्थान पर त और म० पु० एक० मे इष्ठा के स्थान पर था हो जाता है। सन् धातु म न् का लोप होने पर सन् के अ को आ हो जाता है।

५७७ ऊर्णु धातु के उ के स्थान पर पर० मे विकल्प से वृद्धि होती है।

---

१. देखो नियम ४६६।
२. देखो नियम ४६१।
३ अदुपधायां गोह (६-४-८९)। गुह् धातु मे सप्तम भेद भी लगता है।

अन्यत्र विकल्प से गुण होता है और विकल्प से उ का उ ही रहता है, बाद में इ होने पर। (देखो नि० ४६६, ५१८)

५७८. लुङ् में दरिद्रा के आ का लोप विकल्प से होता है। अब इसमें पंचम और षष्ठ भेद लगते हैं।

उदाहरण

ऊर्णु (ढकना)

परस्मै०

प्र०	और्णुवीत्	और्णुविष्टाम्	और्णुविषु
म०	और्णुवी	और्णुविष्टम्	और्णुविष्ट
उ०	और्णुविषम्	और्णुविष्व	और्णुविष्म

प्र०	और्णावीत्	और्णाविष्टाम्	और्णाविषु	और्णवीत्	और्णविष्टाम्	और्णविषु
म०	और्णावी	और्णाविष्टम्	और्णाविष्ट	और्णवी	और्णविष्टम्	और्णविष्ट
उ०	और्णाविषम्	और्णाविष्व	और्णाविष्म	और्णविषम्	और्णविष्व	और्णविष्म

आत्मने०

प्र०	और्णुविष्ट	और्णुविषाताम्	और्णुविषत
म०	और्णुविष्ठा	और्णुविषाथाम्	और्णुविढ्वम्-ड्ढ्वम्
उ०	और्णुविषि	और्णुविष्वहि	और्णुविष्महि
प्र०	और्णविष्ट	और्णविषाताम्	और्णविषत
म०	और्णविष्ठा	और्णविषाथाम्	और्णविढ्वम्-ड्ढ्वम्
उ०	और्णविषि	और्णविष्वहि	और्णविष्महि

प्र० पु० एक०, उ० पु० एक०	प्र० पु० एक०, उ० पु० एक०
दरिद्रा—अदरिद्रीत्, अदरिद्रिषम्	ताय्—अतायि-अतायिष्ट, अतायिषि
जन्—अजनि-अजनिष्ट, अजनिषि	प्याय्—अप्यायि-अप्यायिष्ट, अप्यायिषि
दीप्—अदीपि-अदीपिष्ट, अदीपिषि	पूर्—अपूरि-अपूरिष्ट, अपूरिषि

तनादिगणी धातुएँ —

ऋण्—पर० आर्णीत्, आ० प्र० १ – आर्णिष्ट-आर्त, म० १ – आर्णिष्ठा-आर्था, उ० १ – आर्णिषि।

तन्—पर० अतानीत्-अतनीत्, आ० प्र० १ – अतत-अतनिष्ट, म० १ – अतथा-अतनिष्ठा, उ० १ – अतनिषि।

ऊर् होगा । जैसे—जि–जीयात्, स्तु–स्तूयात्, तृ–त्रियात्, कृ–कीर्यात्, पृ–पूर्यात्, आदि ।

५८२ उपर्युक्त स्थितियो मे ही सयुक्त वर्ण पूर्ववाली ऋकारान्त धातु को और ऋ धातु को गुण होता है । स्मृ–स्मर्यात्, ऋ–अर्यात् ।

५८३ जिन धातुओ मे सप्रसारण हो सकता है, उनमे सप्रसारण होगा । शास् के आ को इ हो जाता है ।

५८४ धातुओ की उपधा के अनुनासिक (ञ्, न्, म्) का प्राय लोप हो जाता है । जिनके अनुनासिक का लोप होता है, ऐसी कुछ धातुएँ ये हैं—अञ्च्, अञ्ज्, भञ्ज्, रञ्ज्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, ग्रन्थ्, मन्थ्, उन्द्, स्कन्द्, स्यन्द्, इन्ध्, बन्ध्, दम्भ्, स्तम्भ्, दश्, भ्रश्, स्रस् और तृह् ।

५८५ इन धातुओ के अन्तिम स्वर को ए नित्य होता है—दा, धा, अन्य धातुएँ जिनका दा या धा रूप शेष रहा है, मा, स्था, गै, पा (पीना), हा (छोडना) और सो । यदि अन्तिम आ (मूल रूप मे हो या आदेश रूप मे हो, देखो नि० ४५९) से पूर्व सयुक्त वर्ण होगा तो आ को ए विकल्प से होगा । दा–देयात्, पा–पेयात्, गै–गेयात्, ग्ला–ग्लेयात्–ग्लायात्, आदि । पा (रक्षा करना) का पायात् ही बनेगा ।

आत्मनेपद

५८६ (क) सेट् धातुओ मे तिङ् प्रत्ययो (Terminations) से पूर्व इ नित्य लगेगा और वेट् धातुओ मे विकल्प से ।

(ख) इन धातुओ मे इ विकल्प से लगता है—सयुक्त वर्ण पूर्व वाली ऋकारान्त धातुएँ, वृ धातु और दीर्घ ॠकारान्त धातुएँ ।

५८७ आत्मनेपद के तिङ् प्रत्यय (Terminations) अङित् (सबल) हैं । इनसे पूर्व धातु के स्वर को गुण होगा । जहाँ पर बीच मे इ नही लगा है, वहाँ पर ऋ को गुण नही होगा, दीर्घ ॠ को इर् होगा, पवर्ग या व् पहले होगा तो ॠ को उर् होगा । चि–चेषीष्ट, धु–धोषीष्ट, लू–लविषीष्ट, स्तृ–स्तरिषीष्ट–स्तीर्षीष्ट, पृ–परिषीष्ट–पूर्षीष्ट, आदि ।

उदाहरण

	पर०		चि	आत्मने०	
प्र० चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासु	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्

म० चीया चीयास्तम् चीयास्त चेषीष्ठा चेषीयास्थाम् चेषीढ्वम्
उ० चीयासम् चीयास्व चीयास्म चेषीय चेषीवहि चेषीमहि

भू—उभय०

प्र० भूयात् भूयास्ताम् भूयासु भविषीष्ट भविषीयास्ताम् भविषीरन्
म० भूया भूयास्तम् भूयास्त भविषीष्ठा भविषीयास्थाम् भविषीध्वम्-ढ्वम्
उ० भूयासम् भूयास्व भूयास्म भविषीय भविषीवहि भविषीमहि

कृ—उभय०

प्र० क्रियात् क्रियास्ताम् क्रियासु कृषीष्ट कृषीयास्ताम् कृषीरन्
म० क्रिया क्रियास्तम् क्रियास्त कृषीष्ठा कृषीयास्थाम् कृषीढ्वम्
उ० क्रियासम् क्रियास्व क्रियास्म कृषीय कृषीवहि कृषीमहि

स्मृ—पर० ऋ—पर०

प्र० स्मर्यात् स्मर्यास्ताम् स्मर्यासु अर्यात् अर्यास्ताम् अर्यासु
म० स्मर्या स्मर्यास्तम् स्मर्यास्त अर्या अर्यास्तम् अर्यास्त
उ० स्मर्यासम् स्मर्यास्व स्मर्यास्म अर्यासम् अर्यास्व अर्यास्म

स्तृ—आत्मने०

प्र० स्तरिषीष्ट स्तरिषीयास्ताम् स्तरिषीरन् स्तृषीष्ट स्तृषीयास्ताम् स्तृषीरन्
म० स्तरिषीष्ठा स्तरिषीयास्थाम् स्तरिषीध्वम्-ढ्वम् स्तृषीष्ठा स्तृषीमास्थाम् स्तृषीध्वम्-ढ्वम्
उ० स्तरिषीय स्तरिषीवहि स्तरिषीमहि स्तृषीय स्तृषीवहि स्तृषीमहि

स्तृ पर० के रूप स्मृ के तुल्य चलेंगे।

प्र० पु० एक०

स्तृ—स्तीर्यात्, स्तरिषीष्ट, स्तीर्षीष्ट
वृ—वूर्यात्, वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट
दा—देयात्, दासीष्ट
धा—धेयात् धासीष्ट
घ्रा—घ्रायात् घ्रेयात्, घ्रासीष्ट
वच्—उच्यात्
स्वप्—सुप्यात्
वप्—उप्यात्, वप्सीष्ट
वह्—उह्यात्, वक्षीष्ट
वे—ऊयात्, वासीष्ट
व्ये—वीयात्, व्यासीष्ट
ह्वे—हूयात्, ह्वासीष्ट
ग्रह्—गृह्यात, ग्रहीषीष्ट
व्रश्च्—वृश्च्यात्

प्रच्छ्--पृच्छ्यात् शास्--शिष्यात्
भ्रस्ज्--भृज्ज्यात्, भ्रक्षीष्ट-भर्क्षीष्ट शी--शयिषीष्ट
यज्--इज्यात्-यक्षीष्ट हन्--वध्यात्

आशीर्लिङ की अपवाद धातुएँ

५८८ ई (जाना)--ईयात् । यदि इससे पहले उपसर्ग होगा तो ई को ह्रस्व हो जाएगा। समियात् । आत्मने० एषीष्ट । ऊह् धातु से पहले यदि उपसर्ग होगा तो ऊ को ह्रस्व हो जाएगा, बाद मे ङित् यकारादि प्रत्यय होंगे तो। समुह्यात्।

भाग २

कर्मवाच्य, भाववाच्य (Passive)

५८९ दसों गणो की सभी धातुओ से कर्मवाच्य या भाववाच्य होता है। इसके रूप दिवादिगण (गण ४) की आत्मनेपदी धातुओ के तुल्य चलते है।[1]

५९० कर्मवाच्य या भाववाच्य धातुओ के तीन भेद हैं --

(१) कर्मवाच्य या कर्मणि प्रयोग (Passive) । जैसे--रामेण द्रव्य दीयते।

(२) भाववाच्य या भावे प्रयोग (Impersonal Passive)। जैसे--गम्यते (जाया जाता है) । (३) कर्मकर्तृ वाच्य या कर्मकर्तरि प्रयोग (Reflexive) । जैसे--ओदन पच्यते (भात पकता है) ।

सार्वधातुक लकार[2] (Conjugational Tenses)

५९१ धातु से अग (Base) इस प्रकार बनता है --

---

१. दोनों मे केवल स्वर मे अन्तर होता है । कर्मवाच्य या भाववाच्य मे प्रत्यय य उदात्त होता है और दिवादिगण आ० मे धातु का स्वर उदात्त होता है।

२ इस विषय मे श्री मोनियर विलियम्स (Monier Williams) का कथन है कि :--

यहाँ पर यह सन्देह उचित है कि सभवत कर्मवाच्य से पृथक् स्वतन्त्र दिवादिगणी धातुओ की सत्ता का कारण यह रहा हो कि कर्मवाच्य धातु कभी कभी अकर्मक अर्थ को प्रकट करती है और उसके साथ परस्मैपदी तिङ् प्रत्यय लगते हैं। इस प्रकार के उदाहरण प्राप्य हैं, जहाँ पर कर्मवाच्य धातुओं के साथ परस्मैपदी तिङ प्रत्यय लगते हैं और कुछ कर्मवाच्य धातुओ को भारतीय वैयाकरणों ने दिवादिगण की आत्मनेपदी धातु माना है।

(क) धातु से य प्रत्यय होता है। य ङित् (निर्बल) है, अतः उससे पूर्व धातु को गुण या वृद्धि नहीं होगी। नी-नीय, भिद्-भिद्य।

(ख) परस्मै० आशीर्लिङ् के 'या' से पहले धातु में जो परिवर्तन होते हैं, वे यहां पर भी य से पहले होंगे। जैसे—जि-जीय, धृ-ध्रिय, स्मृ-स्मर्य, ऋ-अर्य, कॄ-कीर्य, पॄ-पूर्य, वन्द्-वन्द्य (निन्द् का निन्द्य होता है), वच्—उच्य, ग्रह—गृह्य, आदि।

(ग) य बाद में होने पर इन धातुओं के अन्तिम आ (मूल या आदेशरूप) को ई हो जाता है—दा (देना), दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा (पीना), स्था और हा (छोड़ना)। अन्य स्थानों पर आ का आ ही रहता है। दा या दो—दीय, गै—गीय, हा—हीय। अन्यत्र दा (काटना, शुद्ध करना)-दाय, ज्ञा—ज्ञाय, ध्यै—ध्याय।

४६२. कर्मवाच्य या भाववाच्य धातु के रूप दिवादिगणी (गण ४) आत्मने० धातु के तुल्य चलते हैं। जैसे—

भू—होना

लट्

प्र० भूयते	भूयेते	भूयन्ते
म० भूयसे	भूयेथे	भूयध्वे
उ० भूये	भूयावहे	भूयामहे

लङ्

प्र० अभूयत	अभूयेताम्	अभूयन्त
म० अभूयथा	अभूयेथाम्	अभूयध्वम्
उ० अभूये	अभूयावहि	अभूयामहि

(जैसे—जन् से जायते—वह उत्पन्न होता है, पृ से पूर्यते—वह पूरा होता है और तप् से तप्यते—वह तपाया जाता है)। दिवादिगण में बहुत सी अकर्मक धातुएं हैं, जो कि अन्य ९ गणों में से किसी एक में प्राप्य हैं और वहां पर वे सकर्मक हैं। जैसे—युज् (जोड़ना) धातु रुधादिगण और चुरादिगण में सकर्मक है, वही दिवादिगण में अकर्मक है। इसी प्रकार पुष् (पोषण करना), क्षुभ् (उद्विग्न करना), क्लिश् (क्लेश देना) और सिध् (पूरा करना) धातुएं हैं।

लोट्

प्र० भूयताम्	भूयेताम्	भूयन्ताम्
म० भूयस्व	भूयेथाम्	भूयध्वम्
उ० भूयै	भूयावहै	भूयामहै

विधिलिङ्

प्र० भूयेत	भूयेयाताम्	भूयेरन्
म० भूयेथा	भूयेयाथाम्	भूयेध्वम्
उ० भूयेय	भूयेवहि	भूयेमहि

बुध्—लट्

प्र० बुध्यते	बुध्येते	बुध्यन्ते
म० बुध्यसे	बुध्येथे	बुध्यध्वे
उ० बुध्ये	बुध्यावहे	बुध्यामहे

लङ्

प्र० अबुध्यत	अबुध्येताम्	अबुध्यन्त
म० अबुध्यथा	अबुध्येथाम्	अबुध्यध्वम्
उ० अबुध्ये	अबुध्यावहि	अबुध्यामहि

लोट्

प्र० बुध्यताम्	बुध्येताम्	बुध्यन्ताम्
म० बुध्यस्व	बुध्येथाम्	बुध्यध्वम्
उ० बुध्यै	बुध्यावहै	बुध्यामहै

विधिलिङ्

प्र० बुध्येत	बुध्येयाताम्	बुध्येरन्
म० बुध्येथा	बुध्येयाथाम्	बुध्येध्वम्
उ० बुध्येय	बुध्येवहि	बुध्येमहि

५६३ (क) खन्, जन्, तन् और सन् धातुओं के न् का विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर उनके अ को आ हो जाता है। खन्—खायते-खन्यते आदि।

(ख) शी (सोना) का शय्य और श्वि का शूय अंग होता है।

(ग) ऊह् से पहले उपसर्ग होने पर धातु के ऊ को ह्रस्व हो जाता है।

(घ) य बाद में होने पर दरिद्रा, दीधी और वेवी के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है।

(ङ) इन धातुओं के स्थान पर ये आदेश हो जाते हैं— ब्रू को वच्, अस् को भू, घस् को अद् और अज् को वी।

२६४ छात्रों की सुविधा के लिए नीचे कुछ नियमित और अनियमित धातुओं के लट् प्र० पु० एक० के रूप दिए जाते हैं —

धातु	प्र० १	धातु	प्र० १
घ्रा	घ्रायते	हा (प०)	हीयते
ज्या	जीयते	हा (आ०)	हायते
दा (१ प०, ३ उ०)	दीयते	चि	चीयते
दा (२ प०)	दायते	श्वि	शूयते
धा	धीयते	मि	मीयते
पा (पीना)	पीयते	मी	मीयते
		शी	शय्यते
पा (रक्षा करना)	पायते	ऊर्णु	ऊर्णूयते
मा	मीयते		
ऋ	अर्यते	अद्	अद्यते
वृ	ब्रियते	वद्	उद्यते
		वन्द्	वन्द्यते
जागृ	जागर्यते	इन्ध्	इध्यते
स्मृ	स्मर्यते	व्यध्	विध्यते
वृ	वूर्यते	बन्ध्	बध्यते
स्तृ	स्तर्यते	रुध्	रुध्यते
		सन्	सायते, सन्यते
कॄ	कीर्यते	जन्	जायते, जन्यते
स्तॄ	स्तीर्यते	तन्	तायते, तन्यते
दे	दीयते	पन्	पनाय्यते, पन्यते
धे	धीयते	गुप्	गुप्यते, गोप्यते, गोपाय्यते
वे	ऊयते	वप्	उप्यते

धातु	प्र० १	धातु	प्र० १
व्ये	वीयते	स्वप्	सुप्यते
ह्वे	हूयते	कम्	कम्यते, काम्यते
गै	गीयते	चुर्	चोर्यते
पै	पायते	दिव्	दीव्यते
दो	दीयते	वश्	उश्यते
सो	सीयते	वस्	उष्यते
वच्	उच्यते	वस् (पहनना)	वस्यते
व्रश्च्	वृश्च्यते	भ्रम्	भूयते
व्यच्	विच्यते	शास्	शिष्यते
प्रच्छ्	पृच्छयते	स्रस्	स्रस्यते
विच्छ्	विच्छयते, विच्छाय्यते	वह्	उह्यते
भ्रस्ज्	भृज्ज्यते	ग्रह्	गृह्यते
यज्	इज्यते	सम् + ऊह्	समुह्यते
पण्	पणाय्यते, पण्यते		इत्यादि
ऋत्	ऋत्यते, ऋतीयते		

आर्धधातुक लकार

(१) लिट्

५६५ (क) कर्मवाच्य और भाववाच्य मे द्वित्व वाला लिट् सामान्य रूप से बनाया जाता है। इसमे सभी धातुएँ आत्मनेपदी मानी जाती हैं। नी–निन्ये, भू–बभूवे, निन्द्–निनिन्दे, अश्–आनशे, गम्–जग्मे, आदि।

(ख) कर्म० और भाववाच्य मे आम् अन्त वाले लिट् मे सामान्य कर्तृवाच्य वाले प्रयोग से विशेष अन्तर नही होता है। यहाँ पर अन्तर केवल यह होता है कि आमन्त के बाद मे कृ, भू और अस् का आत्मनेपदी ही प्रयोग होगा। ईक्ष्–ईक्षाचक्रे, ईक्षाबभूवे, ईक्षामासे, कथयाचक्रे, ० बभूवे, कथयामासे, आदि।

(२-५) लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ्

५६६ (क) लुट्, लृट्, लृङ् और आशीर्लिङ् मे कर्मवाच्य मे धातुरूप उसी प्रकार बनते है, जिस प्रकार कर्तृवाच्य मे बनते हैं। कर्मवाच्य मे सभी धातुएँ

आत्मनेपदी मानी जाती है। बुध्–बोधिता, बोधिष्यते, अबोधिष्यत, बोधिषीष्ट; तुद्–तोत्ता, तोत्स्यते, अतोत्स्यत, आदि।

(ग) लुट्, लृट्, लृङ और आशीर्लिङ में कर्मवाच्य में अजन्त धातुओं[1], हन्, ग्रह् और दृश् धातुओं के दो दो रूप बनते हैं। (१) सामान्य रूप से आत्मनेपदी रूप। (२) इनमें धातु के स्वर की वृद्धि होगी और आत्मनेपदी तिङ् प्रत्ययों से पूर्व इ अवश्य लगेगा। आत्मनेपदी ही तिङ् प्रत्यय लगेंगे। जो आकारान्त धातुएँ हैं (या जिन ए, ऐ और ओ को आ हो जाता है), उनमें धातु और इ के बीच में य् लगता है। दा—दायिता-दाता, दायिष्यते-दास्यते, अदायिष्यत-अदास्यत, दायिषीष्ट-दासीष्ट। इसी प्रकार ह्वे—ह्वायिता-ह्वाता आदि। नी—नायिता-नेता, नायिष्यते-नेष्यते, अनायिष्यत-अनेष्यत, नायिषीष्ट-नेषीष्ट। हन्—घानिता[2]-हन्ता, घानिष्यते-हनिष्यते, अघानिष्यत-अहनिष्यत, घानिषीष्ट-वधिषीष्ट। ग्रह्—ग्राहिता-ग्रहीता, ग्राहिष्यते-ग्रहीष्यते, अग्राहिष्यत-अग्रहीष्यत, ग्राहिषीष्ट-ग्रहीषीष्ट आदि। दृश्—दर्शिता-द्रष्टा दर्शिष्यते-द्रक्ष्यते, अदर्शिष्यत-अद्रक्ष्यत, दर्शिषीष्ट-दृक्षीष्ट, आदि।

(६) लुङ

४६७ (क) ४र्थ, ५म और ७म भेद वाली धातुओं के कर्मवाच्य लुङ में उसी प्रकार आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय लगाने से रूप बनते हैं।

उ० पु० एक० भू–अभविषि, वृ–अवृषि, धा–अधिषि, पच्–अपक्षि, दिश्—अदिक्षि, द्विष्—अद्विक्षि, आदि।

(ख) प्रथम द्वितीय, तृतीय और षष्ठ भेद वाली धातुओं के कर्मवाच्य लुङ में चतुर्थ, पंचम या सप्तम भेद लगता है। साथ ही सामान्य नियम भी लगेंगे। उ० पु० एक०—स्था–अस्थिषि, ख्या–अख्यासि सृ–असर्गिषि श्रि–अश्रयिषि, सु–असोषि, नम्–अनंसि आदि।

(ग) कर्मवाच्य लुङ में सभी धातुओं से प्र० पु० एक० में इ लगता है —

(१) इस इ से पहले उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण हो जाता है और उपधा

---

१. यहाँ पर नु और धृ धातुओं को भी वृद्धि होगी। साधारणतया उनको वृद्धि नहीं होती है। देखो नियम ४६३। दृश् को केवल गुण ही होता है।

२. हन् धातु के ह् को घ् हो जाता है, यदि उसके तुरन्त बाद न् हो या हन् धातु के बाद ञ् या ण् इत्संज्ञक कोई प्रत्यय हो। यहाँ पर इ यह ञ्णित् प्रत्यय है।

मे अ को तथा धातु के अन्तिम स्वरों को वृद्धि हो जाती है। इन स्थानों पर वृद्धि नहीं होगी—जन् धातु, अम् अन्त वाली सेट् धातुएँ। अम् अन्त वाली आ+चम्, वम् और वम् को वृद्धि होगी। भिद्–अभेदि। निन्द्–अनिन्दि। संयुक्त वर्ण के कारण नि का इ दीर्घ है। तुद्–अतोदि, कृप्–अकर्पि, वद्–अवादि, पठ्–अपाठि। किन्तु जन्–अजनि। गम्–अगमि, किन्तु दम्–अदमि, आदि। आ+चम्–अचामि, वम्–अवामि, आदि। नी–अनायि, स्तु–अस्तावि, लू–अलावि, कृ या कॄ–अकारि।

(२) इस इ से पहले आकारान्त धातुओं (मूल या आदेश रूप, जैसे—, ऐ, ओ के स्थान पर आ) से य् लग जाता है। दा–अदायि, धे–अधायि, गै–अगायि, शो–अशायि, आदि।

(३) रध्, जभ् और रभ् धातुओं मे अन्तिम वर्ण से पहले अनुनासिक (न्, म्) लग जाता है, अतएव उपधा के अ को वृद्धि नहीं होगी। अरन्धि, अजम्भि, अरम्भि।

(४) लभ् धातु से पहले उपसर्ग होगा तो अन्तिम वर्ण से पूर्व म् नित्य लगेगा। पहले उपसर्ग नहीं होगा तो विकल्प से। जैसे—अलम्भि–अलाभि, प्र+लभ्–प्रालम्भि।

(५) इनके ये रूप बनते हैं—भञ्ज् (तोडना)–अभञ्जि–अभाजि। शम् (१० आ०, देखना)—अशमि–अशामि।

(६) मृज् को वृद्धि होती है और गुह् के उ को दीर्घ होता है। अमार्जि, अगूहि।

(७) इ (जाना)–अगायि। अधि+इ (आ०) –अध्यायि–अध्यगायि।

(८) नियम ४६१ मे परिगणित धातुओ के दो रूप बनते हैं—गुप्–अगोपि–अगोपायि, विच्छ्–अविच्छि–अविच्छायि, आदि। ऋत्–आर्ति–आर्तियि।

(ङ) नियम ५९६ (ख) कर्मवाच्य लुङ् मे भी लगता है, प्र० पु० एक० को छोडकर। वैकल्पिक रूपो मे पचम भेद के आत्मनेपद वाले तिङ् प्रत्यय लगेंगे, क्योंकि इनमे बीच म इ नित्य लगता है। उ० पु० १—दा–अदिषि–अदायिषि, नी–अनेषि–अनायिषि, कृ–अकृषि–अकारिषि, हन्–अहसि, अघानिषि, अव-धिषि, ग्रह्–अग्रहीषि, अग्राहिषि, आदि।

५९८ चुरादिगणी (गण १०) धातुएँ —

(क) लिट् को छोड़कर अन्य आर्धधातुक लकारों में अय् (अर्थात् अय के अन्तिम अ का लोप होने पर) का विकल्प से लोप हो जाता है। लुङ् में प्र० पु० एक० को छोड़कर अन्यत्र पंचम भेद के तिङ् प्रत्यय लगेंगे। चुर्–लिट् प्र० १––चोरयाञ्चक्रे,० बभूवे, चोरयामासे; लुट्–प्र०१–चोरयिता, चोरिता, लृट्–चोरयिष्यते, चोरिष्यते, लुङ्–अचोरयिष्ट, अचोरिष्ट, आशीर्लिङ्–चोरयिषीष्ट, चोरिषीष्ट।

(ख) जिन धातुओं के उपधा के अ को वृद्धि नहीं होती है, (देखो नियम ६०३ भी) उनके भी अ को विकल्प से आ हो जाता है, कर्मवाच्य में आर्धधातुक लकारों में, अय् का लोप होने पर। लिट् में यह अ को आ नहीं होता है। कथ्––अकथयिष्ट, अकथिष्ट, आदि।

(ग) कर्मवाच्य लुङ् प्र० पु० एक० में अय् का लोप नित्य होता है और अन्त में इ जुड़ता है। चोरय–अचोर्–अचोरि, पीड्–अपीडि, पृ–अपारि, आदि। रह्–लुङ् प्र० १––अरहि, अराहि, रम्–लुङ् प्र० १––अरमि, अरामि, आदि।

उदाहरण

बुध् (जानना), १ प०

	लिट्			लुट्		
प्र०	बुबुधे	बुबुधाते	बुबुधिरे	बोधिता	बोधितारौ	बोधितारः
म०	बुबुधिषे	बुबुधाथे	बुबुधिध्वे	बोधितासे	बोधितासाथे	बोधिताध्वे
उ०	बुबुधे	बुबुधिवहे	बुबुधिमहे	बोधिताहे	बोधितास्वहे	बोधितास्महे

लृट्

प्र०	बोधिष्यते	बोधिष्येते	बोधिष्यन्ते
म०	बोधिष्यसे	बोधिष्येथे	बोधिष्यध्वे
उ०	बोधिष्ये	बोधिष्यावहे	बोधिष्यामहे

लृङ्

प्र०	अबोधिष्यत	अबोधिष्येताम्	अबोधिष्यन्त
म०	अबोधिष्यथाः	अबोधिष्येथाम्	अबोधिष्यध्वम्
उ०	अबोधिष्ये	अबोधिष्यावहि	अबोधिष्यामहि

लुङ्

प्र०	अबोधि	अबोधिषाताम्	अबोधिषत

म० अबोधिष्ठा	अबोधिषाथाम्	अबोधिध्वम्
उ० अबोधिषि	अबोधिष्वहि	अबोधिष्महि

आशीर्लिङ्

प्र० बोधिषीष्ट	बोधिषीयास्ताम्	बोधिषीरन्
म० बोधिषीष्ठा	बोधिषीयास्थाम्	बोधिषीध्वम्
उ० बोधिषीय	बोधिषीवहि	बोधिषीमहि

सूचना—चुरादिगणी धातुओ के कर्मवाच्य के रूप उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार णिजन्त धातुओ के कर्मवाच्य के रूप चलते हैं। इनके लिए देखो अगले अध्याय मे णिजन्त बुध् धातु के कर्मवाच्य मे रूप।

भाग ३

प्रत्ययान्त धातुएँ और उनके रूप

(Derivative Verbs and their conjugation)

५९९ प्रत्ययान्त धातुओ के चार विभाग हैं —
(१) णिजन्त (causals,), (२) सन्नन्त (Desideratives), (३) यङन्त (Frequentatives) और (४) नामधातु (Denominatives)। इस भाग मे इनके स्वरूप निर्माण का प्रकार तथा इनके रूप दिए जाएँगे।

१ णिजन्त (Causals)

६०० दसो गणो की प्रत्येक धातु का णिजन्त रूप बन सकता है। इनके रूप चुरादिगणी धातुओ के तुल्य चलेंगे।

६०१ णिच् प्रत्ययान्त का अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से काम करवाता है या उसे वैसा करने के लिए प्रेरित करता है। कभी-कभी अकर्मक धातु को सकर्मक बनाने के लिए भी णिच् प्रत्यय का उपयोग किया जाता है।

(क) णिच् प्रत्ययान्त अग को बनाना

६०२ णिच् प्रत्ययान्त अग उसी प्रकार बनते है, जिस प्रकार चुरादिगणी धातुओ के अग बनते है। चुरादिगणी धातुओ का जो रूप चुरादिगण मे बनता है णिच् प्रत्यय करने पर भी वही रूप बनता है। णिजन्त धातुओ के दोनो पदो मे रूप

चलने है। बुध् का णिजन्त अग बोधय होता है, बोधयति-ते (बताता है), क्षुभ्–
क्षोभयति (क्षुब्ध करता है); गण्–गणयति (गिनवाता है), नी–नाययति
(लिवा कर जाता है), कृ (करना) और कॄ (फैलाना)–कारयति (करवाता
है या फैलवाता है), कृत्–कीर्तयति, आदि।

६०३ अम् अन्त वाली धातुओ और मित् (म्-सकेतवाली) धातुओं[1] के
स्वर को वृद्धि नहीं होती है, अपितु गुण होगा। अम् अन्त वाली इन धातुओ मे
वृद्धि होगी—अम् (जाना आदि), कम् (चाहना), चम् (खाना), शम्
(देखना अर्थ मे) और यम् (खाना अर्थ को छोड कर अन्य अर्थों मे)। गम्–
गमयति, क्रम्–क्रमयति, घट्–घटयति, जन्–जनयति, व्यथ्–व्यथयति, जॄ–जर-
यति, श्रा[2]–श्रपयति, ज्ञा[2]–ज्ञपयति, आदि। अन्यत्र कम्–कामयते, चम्–चाम-
यति, शम्–शामयति (देखता है)—अन्य अर्थों मे शमयति, यम्–यामयति,
आदि। खाना अर्थ मे यम् का यमयति रूप होगा।

(क) यदि कोई उपसर्ग पहले नही होगा तो इन धातुओ के अ को विकल्प
से आ हो जाता है—वम्, नम्, वन्, ज्वल्, ह्वल् और ह्मल्। नमयति–नामयति।
परन्तु प्रणमयति ही रूप होगा।

---

1. ये धातुएँ हैं :—घट्, व्यथ्, प्रथ्, प्रस् (फैलना), मृद् (चूर्ण करना), स्खद्
(१ आ०, फाडना, नष्ट करना), क्षञ्ज् (१ आ०, जाना), दक्ष्, कृप्
(१ आ०, कृपा करना), क्रन्द्, क्लन्द् (१ आ०), त्वर्, ज्वर्, गड्
(१ प०, सींचना), हेड् (घेरना), वट्, भट् (बोलना), नट् (नाचना),
स्तक् (१ प०, रोकना), चक् (१ प०, तृप्त होना), कख् (प०, हँसना),
रग् (प०, शका करना), लग् (प०, लगना), ह्रग्, ह्लग्, सग्, स्तग्
(चारो का अर्थ है घेरना), कग्, अक्, अग् (टेढा चलना), कण्, रण्
(प०, जाना), चण्, शण्, श्रण् (प०, देना), श्रथ्, श्लथ्, क्रथ्, क्लथ्
(चारो परस्मै० हैं, हिंसा अर्थ है), वन् (हिंसा करना), ज्वल् (चम-
कना), ह्वल्, ह्मल् (हिलना, चलना), स्मृ, दॄ (१ प०, डरना),
नॄ (ले जाना), श्रा (पकाना), ज्ञा (मारना, तुष्ट करना, तेज करना,
प्रकट करना), चल्, छद् (रहना, होना), (अन्य अर्थों मे छादयति),
लड् (क्रीडा करना, जीभ हिलाना), मद् (दीन होना), ध्वन्, स्वन्,
जन्, जॄ, क्नस् (कुटिल होना, चमकना), रञ्ज्, रम्, क्रम्, गम् और
फण् (१ प०, जाना)।
2. देखो नियम ६०५ (ख)।

म० अबोधिष्ठा:	अबोधिषाथाम्	अबोधिध्वम्
उ० अबोधिषि	अबोधिष्वहि	अबोधिष्महि

आशीर्लिङ्

प्र० बोधिषीष्ट	बोधिषीयास्ताम्	बोधिषीरन्
म० बोधिषीष्ठा:	बोधिषीयास्थाम्	बोधिषीध्वम्
उ० बोधिषीय	बोधिषीवहि	बोधिषीमहि

सूचना—चुरादिगणी धातुओं के कर्मवाच्य के रूप उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार णिजन्त धातुओं के कर्मवाच्य के रूप चलते हैं। इसके लिए देखो अगले अध्याय में णिजन्त बुध् धातु के कर्मवाच्य में रूप।

भाग ३

प्रत्ययान्त धातुएँ और उनके रूप

(Derivative Verbs and their conjugation)

५९९ प्रत्ययान्त धातुओं के चार विभाग हैं —
(१) णिजन्त (causals,), (२) सन्नन्त (Desieratives), (३) यङन्त (Frequentatives) और (४) नामधातु (Denominatives)। इस भाग में इनके स्वरूप-निर्माण का प्रकार तथा इनके रूप दिए जाएँगे।

१ णिजन्त (Causals)

६०० दसों गणों की प्रत्येक धातु का णिजन्त रूप बन सकता है। इनके रूप चुरादिगणी धातुओं के तुल्य चलेंगे।

६०१ णिच् प्रत्ययान्त का अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु से काम करवाता है या उसे वैसा करने के लिए प्रेरित करता है। कभी-कभी अकर्मक धातु को सकर्मक बनाने के लिए भी णिच् प्रत्यय का उपयोग किया जाता है।

(क) णिच् प्रत्ययान्त अंग को बनाना

६०२ णिच् प्रत्ययान्त अंग उसी प्रकार बनते हैं, जिस प्रकार चुरादिगणी धातुओं के अंग बनते हैं। चुरादिगणी धातुओं का जो रूप चुरादिगण में बनता है, णिच् प्रत्यय करने पर भी वही रूप बनता है। णिजन्त धातुओं के दोनों पदों में रूप

क्नू या क्नूय् (शब्द करना)	—क्नोपयति (शब्द करवाता है) ।
क्ष्माय् (काँपना)	—क्ष्मापयति (कँपवाता है) ।
गूह् (छिपाना)	—गूहयति (छिपवाता है) ।
चि (५, चुनना)	—चापयति-ते, चाययति-ते (चुनवाता है) ।
चि (१०)	—चपयति-ते, चययति-ते (") ।
जागृ (जागना)	—जागरयति (जगाता है) ।
दुष् (पाप करना, दुष्ट होना)	—दूषयति-ते (पाप करवाता है) । अन्यत्र—दुषयति-ते, दोषयति-ते (दूषित करता है)
धू (हिलाना)	—धूनयति-ते (हिलवाता है) ।
प्री (प्रसन्न करना)	—प्रीणयति (प्रसन्न करवाता है) ।
भी (डरना)	—भाययति-ते (डराता है) भापयते भीषयते (भय की वस्तु से डराता है)
भ्रस्ज् (भूनना)	—भर्जयति-ते, भ्रज्जयति-ते (भुनवाता है) ।
मृज् (साफ करना)	—मार्जयति ।
रञ्ज् (रँगना)	—रञ्जयति (रँगता है) । प्रसन्न या सन्तुष्ट करने अर्थ में भी यही रूप बनता है । जैसे—ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति (भर्तृ०नीति० ३) । अन्यत्र—रजयति ही होगा । (वह मृगों का शिकार करता है) । (देखो किराता० ६-३४) ।
रुह् (उगना)	—रोहयति-ते, रोपयति-ते (पेड़ लगाता है या उगाता है) ।
ला (लेना)	लालयति-ते, विलापयति-ते, लीनयति और
ली (चिपकना, लगना)	—लापयति (स्निग्ध वस्तु को द्रवित करता है) ।
(बहना)	—{ वापयति (हिलाता है) । वाजयति (कँपाता है) ।
(मुस्कराना)	— विस्माययति (आश्चर्य में डालता है याद राता है) । विस्मापयते (किसी कारण से आश्चर्य में डालता है) ।

६०४ इन धातुओं मे अय से पहले प् लगेगा और धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है :—आकारान्त धातुएँ (ए ऐ और ओ अन्त वाली भी धातुएँ, जिनके स्थान पर आ होता है। देखो नियम ४५९), ऋ (जाना), ह्री (लज्जित होना), री (९ प०, जाना, ४ आ०, बहना) और व्ली (छाँटना, जाना) । दा, दे या दो —दापयति, धे—धापयति, गै—गापयति, आदि। ऋ—अर्पयति, ह्री—ह्रेपयति, री—रेपयति, व्ली—व्लेपयति ।

६०५ (क) इन धातुओ मे अन्तिम स्वर को आ हो जाता है और अय से पहले प् लगता है :—मि (फेंकना); मी (नष्ट करना), दी (नष्ट होना), जि (जीतना) और क्री (खरीदना) । मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ख) कोई उपसर्ग पहले नही होगा तो प् से पूर्ववर्ती आ को इन धातुओ मे नित्य अ हो जाएगा :—क्षै, श्रा या श्रै (पकाना) और ज्ञा (मित्) । ग्लै और स्ना मे विकल्प से आ को अ होगा । श्रपयति, ज्ञपयति (पशु संज्ञपयति—पशु को मारता है । प्रज्ञपयति शरम्, आदि) । अन्यत्र—ज्ञापयति । ग्लपयति—ग्लापयति, स्नपयति—स्नापयति । अन्यत्र—प्रग्लापयति, उपस्नापयति ही होगे ।

६०६ इन धातुओ मे प् के स्थान पर बीच मे य् लगेगा :—शो (छीलना, तेज करना), छो (काटना), सो (समाप्त करना), ह्वे (पुकारना), व्ये (ढकना), वे (बुनना), सै (क्षय होना) और पा (पीना) । शाययति, साययति, वाययति, , पाययति, आदि ।

(क) पा (रक्षा करना) मे अय से पहले ल् लगेगा और वे (हिलाना) मे ज् । पालयति (वह रक्षा करता है), वाजयति (वह हिलाता है) ।

६०७ जभ्, रध्, रभ् और लभ् मे अन्तिम वर्ण से पूर्व अनुनासिक लगता है । जम्भयति-ते, रन्धयति-ते, आदि ।

६०८ गुप्, धूप्, विच्छ्, पण्, पन् और ऋत् धातुओ के णिच् मे दो रूप बनते है । गोपयति-ते, गोपाययति-ते; विच्छयति-ते, विच्छाययति-ते, आदि ।

६०९ अय् बाद मे होने पर दीधी, वेवी और दरिद्रा के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है । दीधयति-ते, वेवयति-ते, दरिद्रयति-ते ।

६१० निम्नलिखित धातुओ के णिजन्त रूप अनियमित रूप से बनते है :—

इ (जाना)– गमयति । अधि + इ (स्मरण करना)–अधिगमयति ।

अधि + इ (पढना)–अध्यापयति । प्रति + इ–प्रत्याययति ।

वी (जाना आदि) { —वापयति, वाययति (गर्भाधान करवाता है)।
वाययति (अन्य अर्थों में)।

शद् (गिरना) { —शातयति (गिराता है, काटता है)।
शादयति (भेजता है)।

सिध् (पूरा होना) { —साधयति (वह पूरा करता है या तैयार होता है)।
सेधयति (यज्ञ आदि को पूरा करता है)। जैसे—
सेधयति तापस तप, आदि।

स्फाय् (सूजना)— —स्फावयति (सूजन उत्पन्न करता है)।

स्फुर् (काँपना, चमकना) —स्फोरयति, स्फारयति (कँपाता है, चमकाता है)।

हन् (मारना) —घातयति (हिंसा कराता है)।

(ख) णिजन्त धातुओं के रूप

६११ णिजन्त धातुओं के रूप परस्मैपद, आत्मनेपद और कर्मवाच्य में दसों लकारों में चुरादिगणी धातुओं के तुल्य चलते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि लुङ् और आशीर्लिङ् को छोड़ कर अन्य आर्धधातुक लकारों में अय् (अन्तिम अ का लोप होगा) शेष रहता है और कर्मवाच्य में य से पहले अय् का लोप हो जाता है। नियम ५४८ से ५५६ में चुरादिगणी धातुओं के लुङ् के प्रसंग में णिजन्त धातुओं के भी लुङ् के रूप निर्माण का प्रकार बताया गया है।

६१२ बुध् धातु के णिच् प्रत्ययान्त अंग बोधय् के परस्मै०, आत्मने० और कर्मवाच्य में उदाहरणार्थ रूप दिए जाते हैं।

बोधय्—सार्वधातुक लकार

लट्

	पर०			आत्मने०		
प्र०	बोधयति	बोधयतः	बोधयन्ति	बोधयते	बोधयेते	बोधयन्ते
म०	बोधयसि	बोधयथः	बोधयथ	बोधयसे	बोधयेथे	बोधयध्वे
उ०	बोधयामि	बोधयावः	बोधयामः	बोधये	बोधयावहे	बोधयामहे

लङ्

पर०

प्र०	अबोधयत्	अबोधयताम्	अबोधयन्

म०	अबोधय	अबोधयतम्	अबोधयत
उ०	अबोधयम्	अबोधयाव	अबोधयाम

आत्मने०

प्र०	अबोधयत	अबोधयेताम्	अबोधयन्त
म०	अबोधयथा	अबोधयेथाम्	अबोधयध्वम्
उ०	अबोधये	अबोधयावहि	अबोधयामहि

लोट्

	प०			आ०		
प्र०	बोधयतु	बोधयताम्	बोधयन्तु	बोधयताम्	बोधयेताम्	बोधयन्ताम्
म०	बोधय	बोधयतम्	बोधयत	बोधयस्व	बोधयेथाम्	बोधयध्वम्
उ०	बोधयानि	बोधयाव	बोधयाम	बोधयै	बोधयावहै	बोधयामहै

विधिलिङ

	पर०			आ०		
प्र०	बोधयेत्	बोधयेताम्	बोधयेयु	बोधयेत	बोधयेयाताम्	बोधयेरन्
म०	बोधये	बोधयेतम्	बोधयेत	बोधयेथा	बोधयेयाथाम्	बोधयेध्वम्
उ०	बोधयेयम्	बोधयेव	बोधयेम	बोधयेय	बोधयेवहि	बोधयेमहि

आर्धधातुक लकार

लिट्

पर०

प्र०	बोधयाचकार[1]	बोधयाचक्रतु	बोधयाचक्रु
म०	बोधयाचकर्थ	बोधयाचक्रथु	बोधयाचक्र
उ०	बोधयाचकार चकर	बोधयाचकृव	बोधयाचकृम

आत्मने०

प्र०	बोधयाचक्रे[1]	बोधयाचक्राते	बोधयाचक्रिरे
म०	बोधयाचकृषे	बोधयाचक्राथे	बोधयाचकृढ्वे
उ०	बोधयाचक्रे	बोधयाचकृवहे	बोधयाचकृमहे

१. बोधयमास, बोधयाबभूव आदि भी रूप बनेंगे।

लुट्

पर०

प्र०	बोधयिता	बोधयितारौ	बोधयितार
म०	बोधयितासि	बोधयितास्थः	बोधयितास्थ
उ०	बोधयितास्मि	बोधयितास्वः	बोधयितास्म

आत्मने०

प्र०	बोधयिता	बोधयितारौ	बोधयितार
म०	बोधयितासे	बोधयितासाथे	बोधयिताध्वे
उ०	बोधयिताहे	बोधयितास्वहे	बोधयितास्महे

लृट्

परस्मै०

प्र०	बोधयिष्यति	बोधयिष्यत.	बोधयिष्यन्ति
म०	बोधयिष्यसि	बोधयिष्यथ.	बोधयिष्यथ
उ०	बोधयिष्यामि	बोधयिष्याव.	बोधयिष्याम

आत्मने०

प्र०	बोधयिष्यते	बोधयिष्येते	बोधयिष्यन्ते
म०	बोधयिष्यसे	बोधयिष्येथे	बोधयिष्यध्वे
उ०	बोधयिष्ये	बोधयिष्यावहे	बोधयिष्यामहे

लृङ्

पर०

प्र०	अबोधयिष्यत्	अबोधयिष्यताम्	अबोधयिष्यन्, आदि

आत्मने०

प्र०	अबोधयिष्यत	अबोधयिष्येताम्	अबोधयिष्यन्त, आदि

लुङ्

पर०

प्र०	अबूबुधत्	अबूबुधताम्	अबूबुधन्
म०	अबूबुध	अबूबुधतम्	अबूबुधत
उ०	अबूबुधम्	अबूबुधाव	अबूबुधाम

आत्मने०

प्र० अबूबुधत	अबूबुधेताम्	अबूबुधन्त
म० अबूबुधथा	अबूबुधेथाम्	अबूबुधध्वम्
उ० अबूबुधे	अबूबुधावहि	अबूबुधामहि

आशीर्लिङ्

पर०

प्र० बोध्यात्	बोध्यास्ताम्	बोध्यासु
म० बोध्या	बोध्यास्तम्	बोध्यास्त
उ० बोध्यासम्	बोध्यास्व	बोध्यास्म

आत्मने०

प्र० बोधयिषीष्ट	बोधयिषीयास्ताम्	बोधयिषीरन्
म० बोधयिषीष्ठा	बोधयिषीयास्थाम्	बोधयिषीध्वम्-ढ्वम्
उ० बोधयिषीय	बोधयिषीवहि	बोधयिषीमहि

कर्मवाच्य

लट्			लङ्		
प्र० बोध्यते	बोध्येते	बोध्यन्ते	अबोध्यत	अबोध्येताम्	अबोध्यन्त
म० बोध्यसे	बोध्येथे	बोध्यध्वे	अबोध्यथा	अबोध्येथाम्	अबोध्यध्वम्
उ० बोध्ये	बोध्यावहे	बोध्यामहे	अबोध्ये	अबोध्यावहि	अबोध्यामहि

लोट्			विधिलिङ्		
बोध्यताम्	बोध्येताम्	बोध्यन्ताम्	बोध्येत	बोध्येयाताम्	बोध्येरन्
बोध्यस्व	बोध्येथाम्	बोध्यध्वम्	बोध्येथा	बोध्येयाथाम्	बोध्येध्वम्
बोध्यै	बोध्यावहै	बोध्यामहै	बोध्येय	बोध्येवहि	बोध्येमहि

लिट्

० बोधयाचक्रे-बभूवे, बोधयामासे	बोधयाचक्राते-बभूवाते, बोधयामासाते	बोधयाचक्रिरे-बभूविरे, बोधयामासिरे
म० बोधयाचकृषे-बभूविषे, बोधयामासिषे	बोधयाचक्राथे-बभूवाथे, बोधयामासाथे	बोधयाचकृढ्वे-०बभूविध्वे-ढ्वे, बोधयामासिध्वे

उ० बोधयाचक्रे-बभूवे,	बोधयाचकृवहे-बभूविवहे,	बोधयाचकृमहे-ब्बभूविमहे,
बोधयामासे	बोधयामासिवहे	बोधयामासिमहे
	लुट्	
प्र० बोधयिता,	बोधयितारौ,	बोधयितार,
बोधिता	बोधितारौ	बोधितार
म० बोधयितासे,	बोधयितासाथे,	बोधयिताध्वे,
बोधितासे	बोधितासाथे	बोधिताध्वे
उ० बोधयिताहे,	बोधयितास्वहे,	बोधयितास्महे,
बोधिताहे	बोधितास्वहे	बोधितास्महे
	लृट्	
प्र० बोधयिष्यते,	बोधयिष्येते,	बोधयिष्यन्ते,
बोधिष्यते	बोधिष्येते	बोधिष्यन्ते
म० बोधयिष्यसे,	बोधयिष्येथे,	बोधयिष्यध्वे,
बोधिष्यसे	बोधिष्येथे	बोधिष्यध्वे
उ० बोधयिष्ये,	बोधयिष्यावहे,	बोधयिष्यामहे,
बोधिष्ये	बोधिष्यावहे	बोधिष्यामहे
	लृङ्	
प्र० अबोधयिष्यत,	अबोधयिष्येताम्,	अबोधयिष्यन्त,
अबोधिष्यत	अबोधिष्येताम्	अबोधिष्यन्त
म० अबोधयिष्यथा,	अबोधयिष्येथाम्,	अबोधयिष्यध्वम्,
अबोधिष्यथा	अबोधिष्येथाम्	अबोधिष्यध्वम्
उ० अबोधयिष्ये,	अबोधयिष्यावहि,	अबोधयिष्यामहि,
अबोधिष्ये	*अबोधिष्यावहि*	*अबोधिष्यामहि*
	आशीर्लिङ्	
प्र० बोधयिषीष्ट,	बोधयिषीयास्ताम्,	बोधयिषीरन्,
बोधिषीष्ट	बोधिषीयास्ताम्	बोधिषीरन्
म० बोधयिषीष्ठा,	*बोधयिषीयास्थाम्,*	*बोधयिषीध्वम्-ढ्वम्,*
बोधिषीष्ठा	बोधिषीयास्थाम्	बोधिषीध्वम्

उ० बोधयिषीय, बोधिषीय	बोधयिषीवहि, बोधिषीवहि	बोधयिषीमहि, बोधिषीमहि
	लुङ्	
प्र० अबोधि	अबोधयिषाताम्, अबोधिषाताम्	अबोधयिषत, अबोधिषत
म० अबोधयिष्ठाः, अबोधिष्ठाः	अबोधयिषाथाम्, अबोधिषाथाम्	अबोधयिढ्वम्-ध्वम्, अबोधिढ्वम्
उ० अबोधयिषि, अबोधिषि	अबोधयिष्वहि, अबोधिष्वहि	अबोधयिष्महि, अबोधिष्महि

अन्य अनियमित रूपों आदि के लिए तृतीय भेद देखो।

२ सन् प्रत्ययान्त (Desideratives)

६१३ दसों गणों की किसी भी मूल धातु से तथा णिच् प्रत्ययान्त धातु से विकल्प से सन् प्रत्यय होता है।[1] इससे तीनों वाच्यों और दसों लकारों में रूप चलते हैं।

६१४ सन् प्रत्ययान्त का अर्थ होता है कि कोई व्यक्ति या वस्तु कोई कार्य करना चाहता है या करने वाला है अथवा धातु या सन्नन्त द्वारा वर्णित अर्थ को प्रकट करता है। पठ्—पिपठिषति (वह पढ़ना चाहता है)। मृ—मुमूर्षति (वह मरणासन्न है) आदि।

---

१ इच्छा अर्थ सन् प्रत्यय तथा सामान्य वाक्य दोनों प्रकार से प्रकट किया जा सकता है। जैसे—पिपठिषति या पठितुम् इच्छति (वह पढ़ना चाहता है), आदि।

विशेष—(१) सन् प्रत्यय तभी होगा, जब धातु के द्वारा व्यक्त की गई क्रिया और इच्छा करने वाला व्यक्ति एक ही हो। अतः 'शिष्यः पठतु इति इच्छति गुरुः' में सन् नहीं होगा और पिपठिषति रूप नहीं होगा। यह भी आवश्यक है कि धातु का अर्थ इच्छा का कर्म हो। अतः गमनेन इच्छति और जिगमिषति समानार्थक नहीं हैं।

(२) यद्यपि सन्-प्रत्ययान्त धातुओं के तिङन्त रूप संस्कृत-साहित्य में कम मिलते हैं, तथापि सन्नन्त के उ प्रत्यय लगा कर संज्ञा-शब्द और क्त, तुम्, शतृ आदि कृत् प्रत्यय लगाकर बने हुए रूप पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं।

६१५. कुछ मूल धातुएँ ऐसी हैं, जिनसे सन् प्रत्यय तो होता है, परन्तु वे इच्छा अर्थ को प्रकट नही करती हैं, (देखो नियम ३९६)। ये सन् प्रत्ययान्त धातुएं भी मूल-धातु मानी जाती है, अत. इनसे इच्छा अर्थ को व्यक्त करने के लिए पुन. सन् प्रत्यय किया जाता है। जैसे--जुगुप्स से जुगुप्सिषते (वह निन्दा करना चाहता है), आदि।

६१६. नियम ४४४ से ४४९ और ४५९ (क) (ख) मे वर्णित द्वित्व के सामान्य नियमो के अनुसार धातु या अग को द्वित्व करके सन् प्रत्ययान्त अग बनाया जाता है। धातु को द्वित्व करने के बाद अन्त मे स् लगता है। इस स् को सन्धि के नियमानुसार ष् भी हो जाता है। द्वित्व के बाद अभ्यास के अ को इ हो जाता है। जैसे--पठ्--पपठ्-पिपठ् + स् = पिपठिष् (आगे वर्णित नियमानुसार)।

सूचना--जहाँ पर प्रत्यय के स् को ष् होता है, वहाँ पर धातु के स् को ष् नही होगा। सि-सिसीष्, सिच्-सिसिक्ष् (क् + ष् = क्ष्), स्मि-सिस्मयिष्, सू-सुसूष्। अन्यत्र-स्था-तिष्ठास्, सू + णिच्-सावय्-सुषावयिष्। स्तु का तुष्टूषति ही रूप बनता है।

६१७ इससे पहले सेट् धातुओ मे इ नित्य लगेगा, वेट् धातुओ मे विकल्प से और अनिट् धातुओ मे सर्वथा नही लगेगा। इसके निम्नलिखित अपवाद है .--

(१) इन धातुओ मे इ नही लगेगा--उ, ऊ, ऋ और ॡ अन्त वाली धातुएँ तथा ग्रह् और गुह् धातुएँ। नु--नुनूष् (देखो नियम ६१८ घ), भू-बुभूष्, आदि।

अपवाद--इनमे इ लगता है--ऋ (जाना), दृ (आ०, आदर करना), धृ (६ आ०, धारण करना) और पू (आ०, पवित्र करना)। देखो आगे (४) भी।

(२) स्मि, अञ्ज्, प्रच्छ्, अश् मे इ नित्य लगता है।

(३) वृत्, वृध्, शृध्, स्यद् और क्लृप् मे परस्मै० मे इ नही लगता है (देखो नियम ४८४)। इनमे आत्मनेपद मे इ लगता है, अन्तिम दो धातुओ मे विकल्प से। वृत्-विवृत्सति, विवर्तिषते, आदि।

(४) इन धातुओ मे विकल्प से इ लगता है--दीर्घ ॠ और इव् अन्त वाली धातुएँ तथा दरिद्रा, श्रि, ऊर्णु, यु, भृ, वृ, स्वृ, ऋध् (समृद्ध होना), दम्भ्, भ्रस्ज्, ज्ञप् (चुरादिगणी ज्ञप् धातु और ज्ञा का वैकल्पिक णिजन्त रूप), सन् (देना), तन्, पत्, दृन्, स्मृ, शृद्, छृद् और नृत् (देखो नि० ४८५)।

अपवाद—कृ (फैलाना) और गृ (निगलना) में इ नित्य होता है। इन धातुओं में इस इ को दीर्घ नही होगा। विकरिषु, आदि।

(५) क्रम्, गम् और सु धातुओं में परस्मै० में इ होता है और आत्मने० में नहीं।

६१८ सन् प्रत्यय होने पर धातु के स्वरों में निम्नलिखित परिवर्तन होते है —

(क) इष् अकित् (सबल) है और केवल स् कित् (निर्बल) है।

जहाँ पर इष् होगा वहाँ पर गुण होगा और जहाँ पर केवल स् होगा वहाँ पर गुण नही होगा। वृत्–विवर्तिषु, विवृत्सु, दृ–दिदरिषु, आदि।

(ख) जहाँ पर स् से पूर्व इ नही लगता है, वहाँ पर धातु में ये परिवर्तन होते हैं—अन्तिम इ और उ को दीर्घ होता है। हन् और गम् (इ, २ प० जाना तथा अधि+इ, पढना या स्मरण करना का स्थानीय) के उपधा के अ का आ होता है। अन्तिम ऋ और ॠ को ईर् होता है, पवर्ग या व् पूर्व में होगा तो ऊर् होगा। जि–जिगीषु, द्रु–दुद्रूषु, कृ–चिकीर्षु, तृ–तितीर्षु, मृ–मुमूर्षु, पृ–पुपूर्षु, आदि।

(ग) रुद्, विद् और मुष् धातुओं के स्वर का गुण नही होता है। ग्रह्, स्वप् और प्रच्छ् धातुओं में सम्प्रसारण होता है। रुरुदिषु, विविदिषु, मुमुषिषु, जिघृक्षु, सुषुप्सु, पिपृच्छिषु।

(घ) जहाँ पर स् से पूर्व इ लगता है, वहाँ पर इस प्रकार की धातुओं के स्वर को विकल्प से गुण होता है—धातु हलादि हो, उपधा में ह्रस्व इ या उ हो और अन्त में य् और व् को छोड़कर कोई व्यंजन हो। द्युत्–दिद्युतिषु, दिद्योतिषु, मुद्–मुमुदिषु, मुमोदिषु, आदि।

६१९ णिजन्त और चुरादिगणी धातुओं से सन् प्रत्ययान्त रूप बनाने में अन्य धातुओं के साथ लगने वाले नियम ही लगेंगे।

चुरादिगणी और णिजन्त धातुओं से सन्नन्त रूप बनाने में नियम ५५० का ध्यान रखना चाहिए।

६२० सामान्य धातुओं से परस्मै० और आत्मने० में जो तिङ् प्रत्यय लगते हैं, वे ही सन्-प्रत्ययान्त धातुओं से भी लगेंगे। ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं में सन् प्रत्यय होने पर आत्मनेपद ही होता है।

६२१ इन धातुओं के सन्-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं.—

धातु	सन्नन्त अंग	लट् पु० पु० एक०
अद् (खाना)	जिघत्स्	जिघत्सति
आप्	ईप्स्	ईप्सति
इ (जाना)	जिगमिष्	जिगमिषति
अधि+इ (पढ़ना)	अधिजिगास्	अधिजिगासते
प्रति+इ (विश्वास करना)	प्रतीषिष्	प्रतीषिषति
इ	एषिषिष्	एषिषिषति
उ (शब्द करना)	ऊषिष्	ऊषिषति
ऊर्णु	ऊर्णुनूष्	ऊर्णुनूषति-ते
	ऊर्णुनुविष्	ऊर्णुनुविषति-ते
	ऊर्णुनविष्	ऊर्णुनविषति-ते
ऋ–	अरिरिष्	अरिरिषति
ऋध् (समृद्ध होना)	ईर्त्स्	ईर्त्सति
	अर्दिधिष्	अर्दिधिषति
गम्—	जिगमिष्	जिगमिषति
सम्+गम् (आ०)	संजिगांस्	संजिगांसते
गॄ (निगलना)	जिगरिष्	जिगरिषति
	जिगलिष्	जिगलिषति
चि (इकट्ठा करना)	चिचीष्	चिचीषति
	चिकीष्	चिकीषति
जि (जीतना)	जिगीष्	जिगीषति
ज्ञप् (१०उ०तथा ज्ञा + णिच् का वैकल्पिक रूप)	ज्ञीप्स्	ज्ञीप्सति
	जिज्ञपयिष्	जिज्ञपयिषति
ज्ञाप (ज्ञा+णिच् वैक० रूप)	जिज्ञापयिष्	जिज्ञापयिषति
तन् (फैलाना)	तितंस्, तितांस्	तितंसति, तितांसति,
	तितनिष्	तितनिषति
तृह (हिंसा करना)	तितृक्ष्	तितृक्षति
	तितृंहिष्	तितृंहिषति

धातु	सन्नन्त अंग	लट् प्र० पु० १
दम्भ	धिप्स धीप्स्	धिप्सति धीप्सति
	दिदम्भिष	दिदम्भिषति
दरिद्रा	दिदरिद्रास	दिदरिद्रासति
	दिदरिद्रिष	दिदरिद्रिषति
दा (देना)	दित्स	दित्सति
दे (रक्षा करना)	दित्स	दित्सते
दो (काटना)	दित्स	दित्सति
दिव	दुद्यूष् दिदेविष	दुद्यूषति दिदेविषति
धा	धित्स	धित्सति
धे	धित्स	धित्सति
नश	निनङ्क्ष	निनङ्क्षति
	निनशिष	निनशिषति
पत	पित्स	पित्सति
	पिपतिष	पिपतिषति
पद	पित्स	पित्सते
पू (आ०)	पिपविष	पिपविषते
भ्रस्ज्	बिभक्ष	बिभक्षति
	बिभ्रक्ष	बिभ्रक्षति
	बिभर्जिष	बिभर्जिषति
	बिभ्रज्जिष	बिभ्रज्जिषति
मस्ज्	मिमङ्क्ष	मिमङ्क्षति
	मिमज्जिष	मिमज्जिषति
मा (नापना)	मित्स	मित्सति
मि (फेंकना)	मित्स	मित्सति
मी (नष्ट करना)	मित्स	मित्सति
मे (अदल बदल करना)	मित्स	मित्सते
मुच्	मोक्ष	मोक्षते
		(मुक्त होना चाहता है)

धातु	सन्नन्त अंग	लट् प्र० पु० १
मुच्	मुमुक्ष्	मुमुक्षते (मुक्त होना चाहता है)
"	मुमुक्ष्	मुमुक्षति (मुक्त करना चाहता है)
मृज्	मिमृक्ष्	मिमृक्षति
	मिमार्जिष्	मिमार्जिषति
यु	युयूष्	युयूषति
	यियविष्	यियविषति
रभ्	रिप्स्	रिप्सते
राध् (हिंसा करना)	रित्स्	रित्सति
" (प्रसन्न करना)	रिरात्स्	रिरात्सति
लभ्	लिप्स्	लिप्सते
शक्	शिक्ष्	शिक्षति
सन् (८ उ०, पाना)	सिसनिष्	सिसनिषति
	सिषास्	सिषासति
सिव्	सुस्यूष्	सुस्यूषति
	सिसेविष्	सिसेविषति
हन्	जिघांस्	जिघांसति
हि (फेंकना)	जिघीष्	जिघीषति
श्वायय् (श्वि + णिच्)	शिश्वाययिष्	शिश्वाययिषति
	शुशावयिष्	शुशावयिषति
स्फारय् (स्फुट् + णिच्)	पुस्फारयिष्	पुस्फारयिषति-ते
स्वापय् (स्वप् + णिच्)	सुष्वापयिष्	सुष्वापयिषति-ते
स्वादय्[1] (स्वद् + णिच्)	सिस्वादयिष्	सिस्वादयिषति-ते
स्वेदय्[1] (स्विद् + णिच्)	सिस्वेदयिष्	सिस्वेदयिषति-ते
साहय्[1] (सह् + णिच्)	सिसाहयिष्	सिसाहयिषति-ते
ह्वायय् (ह्वे + णिच्)	जुहावयिष्	जुहावयिषति-ते

१. इन धातुओं के स् को ष् नहीं होता है।

(ख) सन्नन्त धातुओं के रूप

सार्वधातुक लकार (Conjugational Tenses)

६२२ सार्वधातुक लकारों में सन्नन्त अंग के अन्त में अ लगता है और इसके रूप तुदादिगणी (गण ६) धातुओं के तुल्य कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में चलते हैं।

आर्धधातुक लकार (Non conjugational Tenses)

६२३ (क) लिट् लकार में अंग के अन्त में आम् लगेगा और उसके बाद अस्, भू और कृ धातु के लिट् लकार वाले रूप लगेंगे। (देखो नियम ४९०, ५२६)।

(ख) लुङ् लकार में पंचम भेद वाले तिङ् प्रत्यय लगेंगे।

(ग) आशीर्लिङ् में परस्मै० में बिना इ के तिङ् प्रत्यय लगेंगे और आत्मने० में इ के साथ तिङ् प्रत्यय लगेंगे।

(घ) अन्य लकारों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता है।

६२४ कर्मवाच्य में लुङ् प्र० पु० एक० नियम ५९७ (ग) के अनुसार बनता है। अन्य लकारों के रूप सामान्य विधि से बनते हैं।

उदाहरण

बुबोधिष् (बुध्+सन्)—प्र० पु० एक०

लकार	पर०	आ०	कर्मवाच्य
लट्	बुबोधिषति	बुबोधिषते	बुबोधिष्यते
लङ्	अबुबोधिषत्	अबुबोधिषत	अबुबोधिष्यत
लोट्	बुबोधिषतु	बुबोधिषताम्	बुबोधिष्यताम्
विधिलिङ्	बुबोधिषेत्	बुबोधिषेत	बुबोधिष्येत
लिट्	बुबोधिषाचकार	बुबोधिषाचक्रे	बुबोधिषाचक्रे
	बुबोधिषामास	बुबोधिषामास	बुबोधिषामास
	बुबोधिषाबभूव	बुबोधिषाबभूव	बुबोधिषाबभूवे
लुट्	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता
लृट्	बुबोधिषिष्यति	बुबोधिषिष्यते	बुबोधिषिष्यते
लृङ्	अबुबोधिषिष्यत्	अबुबोधिषिष्यत	अबुबोधिषिष्यत
लुङ्	अबुबोधिषीत्	अबुबोधिषिष्ट	अबुबोधिषि
आशीर्लिङ्	बुबोधिष्यात्	बुबोधिषिषीष्ट	बुबोधिषिषीष्ट

धातु	लट् प्र० १	धातु — लट् प्र० १
रुद्—	रुरुदिषति	कृत्— चिकर्तिषति, चिकृत्सति
विद्—	विविदिषति	छृद्— चिच्छर्दिषति-ते, चिच्छृत्सति-ते

मुष्— मुमुषिषति
स्वप्— सुषुप्सति
प्रच्छ्—पिपृच्छिषति
कृ— चिकरिषति
धृ (६ आ०)–दिधरिषते
धृ (१ उ०)–दिधरिषति-ते
गुह्— जुघुक्षति
वृत्— विवर्तिषते, विवृत्सति
द्युत्— दिद्युतिषते, दिद्योतिषते
श्रि— शिश्रीषति, शिश्रयिषति
स्वृ— सुस्वूर्षति, सिस्वरिषति
वृध्—विवृत्सति, विवर्तिषते
स्यन्द्—सिस्यन्त्सति, सिस्यन्दिषते,
सिस्यन्त्सते
क्लृप्—चिक्लृप्सति, चिक्लिपिषते,
चिक्लृप्सते

तॄ— तितरिषति, तितरीषति,
तितीर्षति
वृ (उ०)–विवरिषति-ते, विवरीषति-ते,
वुवूर्षति-ते
उच्छ्— उचिच्छिषति
स्था— तिष्ठासति
स्नु+णिच्–सिस्नावयिषति-ते,
सुस्नावयिषति-ते
श्रु+णिच्– शिश्रावयिषति-ते,
शुश्रावयिषति-ते,
प्रु+णिच्–पिप्रावयिषति-ते,
पुप्रावयिषति-ते
प्लु+णिच्–पिप्लावयिषति-ते,
पुप्लावयिषति-ते
च्यु+णिच्–चिच्यावयिषति-ते,
चुच्यावयिषति-ते, आदि

३. यङ प्रत्ययान्त (Frequentative or intensive)

६२५ यङ (य) प्रत्यय प्रारम्भिक ९ गणो की किसी भी एकाच् और हलादि धातु से हो सकता है। यङ प्रत्यय धातु के द्वारा निर्दिष्ट क्रिया को बार-बार करने या आधिक्य से करने अर्थ मे होता है।[1]

---

१. धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ (३-१-२२)। पौनःपुन्य भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः। तस्मिन् द्योत्ये यङ स्यात्। (सि० कौ०)।

अपवादः--

६२६ (क) निम्नलिखित अजादि और अनेकाच् (चुरादिगणी) धातुओं से भी यङ् प्रत्यय होता है[1]--(१) अजादि धातुएँ--अट् (जाना), ऋ (जाना), अश् (खाना) और ऊर्णु (ढकना)। (२) अनेकाच् (चुरादिगणी) धातुएँ--सूचि (१०, सूचित करना), सूत्रि (१०, संक्षिप्त रूप में रखना) और मूत्रि (१०)।

(ख) गति (जाना) अर्थ वाली धातुओं से कुटिल गति अर्थ में ही यङ् प्रत्यय होता है, बार-बार करने अर्थ में नहीं।[2] निम्नलिखित धातुओं से निन्दित ढंग से कार्य करने अर्थ में ही यङ् प्रत्यय होता है--लुप् (काटना), सद् (बैठना), चर् (जाना), जप् (जप करना), जभ् (जँभाई लेना), दह् (जलाना), दश् (काटना, डँसना), और गॄ (निगलना)।[3] लोलुप्यते (निन्दित ढंग से काटता है), सासद्यते (बुरे ढंग से बैठता है), चञ्चूर्यते आदि।

६२७ धातुओं से दो प्रकार के यङ् प्रत्ययान्त रूप बनते हैं। दोनों प्रकार की धातुओं में असाधारण ढंग से द्वित्व का कार्य होता है। एक प्रकार की धातुओं में अन्त में यङ् (य) प्रत्यय लगता है और उन धातुओं के रूप केवल आत्मनेपद में ही चलते हैं। दूसरे प्रकार की धातुओं में यङ् (य) का लोप हो जाता है और उन्हें यङ्लुगन्त कहते हैं। इन धातुओं के रूप परस्मैपद में ही चलते हैं। (कुछ वैयाकरणों के मतानुसार आत्मनेपद में भी इनके रूप चलते हैं)। सुविधा के लिए इनमें से प्रथम को यङन्त कहा जाता है और दूसरे को यङ्लुगन्त।

यङन्त या आत्मनेपद यङन्त (आत्मनेपदFrequentative)

६२८ धातु से यङ् (य) प्रत्यय करके यङन्त अंग बनता है। इस य से पूर्व धातु में वही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य य प्रत्यय से पहले होते हैं। दा-दीय, चि-चीय, नी-नीय, भू-भूय, स्मृ-स्मर्य, ऋ-अर्य, कॄ-कीर्य, धे-धीय आदि। भिद्-भिद्य, पॄ-पूर्य, बन्ध्-बध्य, नन्द्-नन्द्य आदि।

(क) घ्रा और ध्मा के आ को ई हो जाता है। धातु के ऋ को री होगा,

---

१. सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः (वार्तिक पूर्वोक्त सूत्र पर)
२. नित्यं कौटिल्ये गतौ (३-१-२३)
३. लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् (३-१-२४)

रि नहीं, यदि उससे पूर्व एक व्यजन वर्ण होगा तो। घ्रा–घ्रीय, ध्मा–ध्मीय, कृ–क्रीय।

(ख) निम्नलिखित धातुओ मे ये परिवर्तन होते है —(१) व्यच्, व्यध्, स्यम्, स्वप्, ग्रह्, प्रच्छ्, भ्रस्ज् और व्रश्च् धातुओ मे सप्रसारण होता है। (२) ज्या और व्ये के अन्तिम स्वर को ई होता है। (३) ह्वे को हू हो जाता है। (४) शास् को शिष् और प्याय् को पी होता है। व्यच्–विच्य, स्वप्–सुप्य, ग्रह्–गृह्य, ह्वे–हूय, ज्या–जीय, शास्–शिष्य, प्याय्–पीय।

(ग) नियम ३९५ यहाँ भी लगेगा।

६२९ य अन्त वाले अग को द्वित्व के सामान्य नियमों के अनुसार द्वित्व होगा।

(क) यदि धातु अजादि है तो उसके दूसरे वर्ण को द्वित्व होगा।

(ख) द्वित्व होने पर अभ्यास के इ और उ को गुण हो जाता है तथा अभ्यास के अ को आ हो जाता है। पुन पुन अतिशयेन वा भवति—बोभूयते, पच्–पापच्यते, आदि।

दा–दीय	(नि० ६२८)	दिदीय	(द्वित्व से)	देदीय	(नि० ६२९ ख से)-ते-	देदीयते,
ज्ञा–ज्ञाय	"	जज्ञाय	"	जाज्ञाय	"	=जाज्ञायते
धे–धीय	"	दिधीय	"	देधीय	"	" =देधीयते
भू–भूय	"	बुभूय	"	बोभूय	"	" =बोभूयते
ऋ–अर्य	"	अरर्य (नि० ६२९क)		अरार्य		" =अरार्यते
कृ–क्रीय	"	चिक्रीय (द्वित्व से)		चेक्रीय	"	" =चेक्रीयते
पृ–पूर्य	"	पुपूर्य	"	पोपूर्य	"	" =पोपूर्यते
अट्–अट्य	"	अटट्य (नि०६२९क)		अटाट्य	"	" =अटाट्यते
अश्–अश्य	"	अशश्य	"	अशाश्य	"	" =अशाश्यते
व्रज्–व्रज्य	"	वव्रज्य (द्वित्व से)		वाव्रज्य	"	" =वाव्रज्यते

इसी प्रकार ढौक्–डोढौक्यते, व्यच्–वेविच्यते, स्वप्–सोषुप्यते, शास्–शेशिष्यते, प्याय्–पेपीयते आदि। घ्रा–घ्रीय–जिघ्रीय–जेघ्रीयते, ध्मा–देध्मीयते आदि।

६३० जिन धातुओ के अन्त मे अनुनासिक वर्ण (न्, म्) हैं और उपधा मे अ हैं, उनके अभ्यास के अ के बाद न् लगता है। इस न् को अनुस्वार होता है या

परसवर्ण होता है। यहां पर नियम ६२९ (ग) नहीं लगेगा और अभ्यास के अ को आ नहीं होगा।

यम्–यम्य–ययम्य=ययम्यते–यंय्यम्यते, जन्–जन्य–जजन्य=जजन्यते–जञ्जन्यते। परन्तु जब जन्=जाय होगा तो रूप होगा जाजाय–जाजायते (प्र० १)

(क) उपर्युक्त नियम इन धातुओं में भी लगता है —चर्, फल्, जप्, जभ्, दह्, दश्, भञ्ज् और पश्। चर् और फल् धातुओं में अभ्यास में न् लगने के बाद बाद के अ को उ हो जाता है। चर्–चर्य–चचर्य=चचुर्य या चञ्चुर्य=चचूर्यते या चञ्चूर्यते (नि० ३९४ से)। फल्–फल्य–पफल्य=पफुल्यते या पम्फुल्यते, दह्–दह्य–ददह्य–ददह्यते या दन्दह्यते, जप्–जजप्यते या जञ्जप्यते।

(ख) इन धातुओं में अभ्यास के अ के बाद नी लगेगा और अ को दीर्घ नहीं होगा —वञ्च्, स्रस्, ध्वस्, भ्रम, कस्, पत्, पद् और स्कन्द्। वञ्च्–वञ्च्य–ववञ्च्य–वनीवञ्च्यते, स्रस्–स्रस्य–सनीस्रस्यते, ध्वस्–दनीध्वस्यते, भ्रम्–बनीभ्रम्यते, कस्–चनीकस्यते, पत्–पनीपत्यते, पद्–पनीपद्यते, स्कन्द्–चनीस्कद्यते।

६३१ जिन धातुओं की उपधा में ऋ या लृ है (मूल रूप में या सम्प्रसारण के द्वारा), उनके अभ्यास के अ के बाद री लग जाता है और अभ्यास के अ को आ (नि० ६२९ ग से) नहीं होता है। वृत्–वृत्य–ववृत्य–वरीवृत्यते, प्रच्छ्–पृच्छ्य–परीपृच्छ्यते, नृत्–नरीनृत्यते ग्रह्–जरीगृह्यते।

यङन्त धातुओं के रूप

६३२ यङन्त धातुओं के सार्वधातुक लकारों में रूप दिवादिगणी धातुओं के आत्मनेपद के रूपों के तुल्य चलते। आर्धधातुक लकारों में तथा कर्मवाच्य के सभी लकारों में जहाँ पर य से पहले स्वर होगा, वहाँ पर य के अ का लोप होगा और जहाँ पर य से पहले व्यंजन होगा वहाँ पर पूरे य का ही लोप हो जाएगा। लिट् लकार में आम् अन्त वाले रूप बनेंगे। लुङ् लकार में पंचम भेद के आत्मनेपद वाले तिङ् प्रत्यय लगेंगे। अन्य लकारों में तिङ् प्रत्ययों से पहले इ लगेगा और सामान्य रूप से आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय लगेंगे। प्रत्ययान्त धातुओं के कर्मवाच्य के तुल्य इसके भी कर्मवाच्य के रूप बनेंगे।

६३३ उदाहरण —

(क) बोबुध्य (बुध्+यङ) के प्र० पु० एक० के रूप।

(ख) देदीय (दा+यङ) के प्र० पु० एक० के रूप ।

लकार	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य	
लट्	बोबुध्यते	देदीयते	बोबुध्यते	देदीय्यते
लङ	अबोबुध्यत	अदेदीयत	अबोबुध्यत	अदेदीय्यत
लोट्	बोबुध्यताम्	देदीयताम्	बोबुध्यताम्	देदीय्यताम्
वि०लिङ	बोबुध्येत	देदीयेत	बोबुध्येत	देदीय्येत
लिट्	बोबुधाचक्रे आदि	देदीयाचक्रे आदि		कर्तृवाच्यवत्
लुङ	अबोबुधिष्ट	अदेदीयिष्ट	अबोबुधि	अदेदीयि
लुट्	बोबुधिता	देदीयिता		कर्तृवाच्यवत्
लृट्	बोबुधिष्यते	देदीयिष्यते		,,
लृङ	अबोबुधिष्यत	अदेदीयिष्यत		,,
आशीर्लिङ	बोबुधिषीष्ट	देदीयिषीष्ट		,,

सूचना––अनियमित यङन्त धातुओं के रूप नियम ६३९ के नीचे दिए गए हैं।

यङलुगन्त (परस्मैपद Frequentative)

यङलुगन्त के रूप प्राय वेद मे ही मिलते है। इसका प्रयोग श्रेण्य संस्कृत साहित्य मे बहुत कम होता है।

यङलुगन्त अंग की रचना

६३४ धातु का द्वित्व के सामान्य नियमानुसार द्वित्व होता है। द्वित्व होने पर अभ्यास के इ और उ को गुण होता है और अभ्यास के अ को आ होता है। दा–ददा–दादा, श्रि–शिश्रि–शेश्रि, भू–बुभू–बोभू, वृ–ववृ–वावृ, विद्–विविद्–वेविद्, बुध्–बुबुध्–बोबुध् आदि।

६३५ नियम ६३० (क) (ख) यङलुगन्त मे भी लगते है। यम्–यंयम् या यँय्यम्, दह्–ददह् या दन्दह्, वञ्च्–वनीवञ्च् आदि।

६३६ जिन धातुओं के अन्त मे या उपधा मे ह्रस्व ऋ है, उनमे द्वित्व होने पर अभ्यास के अ के बाद र्, रि या री लगते हैं। इसी प्रकार क्लृप् धातु मे अभ्यास के अ के बाद ल्, लि या ली लगते है। वृत्–ववृत्=वर्वृत्, वरिवृत्, वरीवृत्, कृ–चर्कृ, चरिकृ, चरीकृ, क्लृप्–चल्क्लृप्, चलिक्लृप्, चलीक्लृप्, दृश्–दर्दृश्, दरिदृश्, दरीदृश्।

यङ्लुगन्त धातुओं के रूप

६३७ यङ्लुगन्त धातुओं के सार्वधातुक लकारों में रूप जुहोत्यादिगण की पर० धातुओं के तुल्य चलते हैं। इन स्थानों पर तिङ् प्रत्ययों से पूर्व विकल्प से ई लगेगा--लट् के तीनों एकवचन में, लङ् के प्र० और म० पु० में और लोट् के प्र० एक० में। जहाँ पर बीच में ई लगेगा वहाँ पर उपधा के ह्रस्व स्वरों को गुण नहीं होगा। दा-दादाति, दादेति; वृत्-वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति, वर्वृतीति, वरिवृतीति, वरीवृतीति, कृ-चर्कर्ति-चर्करीति, चरिकर्ति-चरिकरीति, चरीकर्ति-चरीकरीति।

६३८. आर्धधातुक लकारों के रूपों के विषय में वैयाकरणों में पर्याप्त मतभेद है। लिट् लकार के रूप अनेकाच् धातुओं के तुल्य चलते हैं। अन्य लकारों में तिङ् प्रत्ययों से पहले इ नित्य लगता है, आशीर्लिङ् में नहीं।

यङ्लुगन्त का प्रयोग अधिकांशतः वेद में ही प्राप्त होता है, अतः इसका विशेष विस्तार यहाँ पर नहीं दिया जा रहा है।

उदाहरण

बोभू या बोभव् (भू + यङ्लुक्)

	लट्			लङ्		
प्र०	बोभोति बोभवीति	बोभूतः	बोभुवति	अबोभोत् अबोभवीत्	अबोभूताम्	अबोभवुः
म०	बोभोषि बोभवीषि	बोभूथः	बोभूथ	अबोभोः अबोभवीः	अबोभूतम्	अबोभूत
उ०	बोभोमि बोभवीमि	बोभूवः	बोभूमः	अबोभवम्	अबोभूव	अबोभूम

	लोट्			विधिलिङ्		
प्र०	बोभोतु बोभवीतु	बोभूताम्	बोभुवतु	बोभूयात्	बोभूयाताम्	बोभूयुः
म०	बोभूहि	बोभूतम्	बोभूत	बोभूयाः	बोभूयातम्	बोभूयात
उ०	बोभवानि	बोभवाव	बोभवाम	बोभूयाम्	बोभूयाव	बोभूयाम

लिट्

प्र०	बोभवाचकार आदि बोभाव	बोभवाचक्रतुः बोभुवतुः, बोभूवतुः	बोभवाचक्रुः बोभुवुः, बोभूवुः

म० बोभवाञ्चकर्थ आदि	बोभवाञ्चक्रथुः	बोभवाञ्चक्र
बोभविथ	बोभुवथुः	बोभुव
बोभूविथ	बोभूवथुः	बोभूव
उ० बोभवाञ्चकार-कर आदि	बोभवाञ्चकृव	बोभवाञ्चकृम
बोभव, बोभाव, बोभूव	बोभुविव, बोभूविव	बोभुविम, बोभूविम

लुङ्

प्र० अबोभवीत्, अबोभोत्	अबोभूताम्	अबोभूवुः
अबोभवीत्, अबोभूत्		अबोभुवुः
अबोभावीत्	अबोभाविष्टाम्	अबोभाविषुः
म० अबोभोः, अबोभवीः	अबोभूतम्	अबोभूत
अबोभूः, अबोभूवीः		
अबोभावीः	अबोभाविष्टम्	अबोभाविष्ट
उ० अबोभूवम्	अबोभूव	अबोभूम
अबोभाविषम्	अबोभाविष्व	अबोभाविष्म

लुट्

प्र० बोभविता | बोभवितारौ | बोभवितारः इत्यादि

लृट्

प्र० बोभविष्यति | बोभविष्यतः | बोभविष्यन्ति इत्यादि

लृङ्

प्र० अबोभविष्यत् | अबोभविष्यताम् | अबोभविष्यन् इत्यादि

आशीर्लिङ्

प्र० बोभूयात् | बोभूयास्ताम् | बोभूयासुः इत्यादि

लकार	आत्मनेपद	कर्मवाच्य
लट्	बोभूते	बोभूयते
लङ्	अबोभूत	अबोभूयत
लोट्	बोभताम्	बोभूयताम्
विधिलिङ्	बोभुवीत	बोभूयेत
लिट्	बोभवाचक्रे, आदि	बोभवाचक्रे
लुट्	बोभविता	बोभविता, बोभाविता
लृट्	बोभविष्यते	बोभविष्यते, बोभाविष्यते

	आत्मनेपद	कर्मवाच्य
ऌकार	अबोभविष्यत	अबोभविष्यत, अबोभाविष्यत
लृङ्	अबोभविष्ट	अबोभावि
लुङ्	बोभविषीष्ट	बोभविषीष्ट, बोभाविषीष्ट
आशीर्लिङ्		

६३९ निम्नलिखित धातुओं के यङ् प्रत्यय वाले रूप अनियमित ढंग से बनते हैं --

धातु	यङन्त रूप (आ०)	यङ्लुगन्त रूप (पर०)
ऊर्णु (ढकना)	ऊर्णोनूयते	--
कु (१ आ० शब्द करना)	कोकूयते	--
खन् (खोदना)	चङ्खन्यते	चखनीति
	चखन्यते	चङ्खन्ति आदि
	चाखायते	
गॄ (निगलना)	जेगिल्यते	जार्गति
चर् (घूमना)	देखो नि० ६३० ब	चञ्चरीति, चञ्चर्ति
चाय् (पूजा करना)	चेकीयते	चेकीयति, चेकेति
जन् (उत्पन्न होना)	दे० नि० ६३० ब	जञ्जनीति, जञ्जन्ति, आदि
द्युत् (चमकना)	देद्युत्यते	देद्युतीति, देद्योति
फल् (फैलना)	दे० नि० ६३० ब	पफुलीति, पफुल्ति
शी (सोना)	शाशय्यते	शेशयीति, शेशेति
श्वि (सूजना)	शेश्वियते, शोशूयते	शेश्वयीति, शेश्वेति
सन् (पाना)	ससन्यते, सासायते	ससनीति, ससन्ति
हन् (हिंसा करना)	जेघीयते	जघनीति, जघन्ति
,, (अन्य अर्थों मे)	जङ्घन्यते, जघन्यते	--

४. नामधातु-प्रक्रिया (Nominal Verbs)

६४० प्रातिपदिकों से कुछ प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाई जाती है। नामधातुओं का अधिक प्रचार नही है। इनका रूप सामान्यतया लट् लकार में ही मिलता है। ये धातुएँ कई अर्थों मे बनती है। ये प्रत्यय कभी-कभी 'आचरति' अर्थात् संज्ञाशब्द के द्वारा उक्त अर्थ के अनुकूल आचरण या व्यवहार करने अर्थ में होते

हैं। ये नामधातु सकर्मक के तुल्य प्रयुक्त होते है। ये प्रत्यय कभी-कभी तद्वत् व्यवहार करने या तद्वत् होने अर्थ मे भी होते है। कभी-कभी ये प्रत्यय सज्ञा-शब्द के द्वारा उक्त अर्थ का चाहने अर्थ मे भी होते है। विभिन्न प्रत्ययो के आधार पर इनको चार भागो मे यहाँ रक्खा गया है।

(क) क्यच् (य) प्रत्यय—(परस्मै० मे रूप चलेंगे)

६४१ किसी भी सुबन्त मे इच्छा अर्थ मे क्यच् (य) प्रत्यय लगाकर नामधातु बना सकते हैं। इस य प्रत्यय को लगाकर बनी हुई धातु के रूप परस्मैपद मे ही चलते हैं।

६४२ यह य प्रत्यय करने पर शब्द मे निम्नलिखित परिवर्तन होते है —

(१) शब्द के अन्तिम अ या आ को ई हो जाता है। आत्मन पुत्रम् इच्छति–पुत्रीयति (पुत्र + य = पुत्री + य + ति), (वह पुत्र की इच्छा करता है)।

(२) अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। कवि–कवीयति (वह कवि की इच्छा करता है)।

(३) अन्तिम ऋ को री हो जाता है। कर्तृ–कर्त्रीयति।

(४) अन्तिम ओ का अव् और औ को आव् होता है। गो गव्यति, नौ-नाव्यति।

(५) शब्द का अन्तिम न् लुप्त हो जाता है और उससे पूर्ववर्ती स्वर को मूल स्वर के तुल्य कार्य होते हैं। राजन्–राजीयति (वह राजा की इच्छा करता है)।

(६) अन्य स्थानो पर अन्तिम व्यजन म कोई परिवर्तन नही होता है। वाच्–वाच्यति (वह वाणी या शब्दो की इच्छा करता है)। दिव्–दिव्यति (कुछ के मतानुसार दीव्यति) (वह स्वर्ग की इच्छा करता है)। समिध्–समिध्यति (वह समिधा की इच्छा करता है)।

(७) पुत्र आदि अर्थो म हुए तद्धित प्रत्यय का लोप हो जाता है और तत्पश्चात् शब्द मे पूर्वोक्त परिवर्तन होते है। आत्मन गार्ग्यम् (गर्ग का पुत्र) इच्छति–गार्गीयति (गार्ग्य + य + ति = गार्ग + य + ति = गार्गी + य + ति), आदि।

६४३ शब्द और य प्रत्यय के बीच म सभी शब्दो मे स् या अस् लग जाता है। आत्मन मधु इच्छति–मधुस्यति, मध्वस्यति (वह शहद की इच्छा करता है)। इसी प्रकार दधिस्यति, दध्यस्यति, आदि। अस् से पूर्ववर्ती शब्द के अन्तिम अ का लोप हो जाता है। पुत्र–पुत्रस्यति।

(क) अश्व और वृष शब्दो मे मैथुन की इच्छा अर्थ मे य प्रत्यय से पूर्व अस्

लगता है। क्षीर शब्द से पीनेकी इच्छा अर्थ मे और लवण शब्दसे चाटनेकी इच्छा अर्थ मे य प्रत्यय से पहले अस् लगता है। वृषस्यति गौ (गाय बैल मे सगम की इच्छा करती है), अश्वस्यति वडवा (घोडी घोडे से सगम की इच्छा करती है)। क्षीरस्यति बाल (बालक दूध पीना चाहता है), लवणस्यति उष्ट्र (ऊँट नमक चाटना चाहता है)। अन्यत्र वृषीयति (वह बैल प्राप्त करना चाहता है), अश्वीयति (वह घोडा प्राप्त करना चाहता है)। क्षीरीयति, लवणीयति।

६४४ म् अन्त वाले शब्दो से तथा अव्ययो मे क्यच् (य) प्रत्यय नही होता है। कमिच्छति, स्वरिच्छति (वह स्वर्ग की इच्छा करता है)।

६४५ खाने की इच्छा अर्थ मे अशन का अशनाय रूप बनता है, पीने की इच्छा अर्थ मे उदक का उदन्य और धनसग्रह की इच्छा अर्थ म धन का धनाय रूप बनता है। अशन–अशनायति (वह खाना चाहता है) अन्यत्र अशनीयति (वह अन्नसग्रह करना चाहता है)। उदक उदन्यति (वह पानी पीना चाहता है), अन्यत्र उदकीयति (वह पानी प्राप्त करना चाहता है)। धन–धनायति (वह धनसग्रह करना चाहता है), अन्यत्र धनीयति (धनी होना चाहता है)।

६४६ इस क्यच् (य) प्रत्यय का केवल इच्छा ही अर्थ नही होता है।

(क) यह क्यच् (य) प्रत्यय तद्वत मानने या व्यवहार करने अर्थ मे भी होता है। पुत्रीयति छात्रम् (छात्र को पुत्र वत् मानता है), विष्णूयति द्विजम् (वह ब्राह्मण को विष्णु के तुल्य समझता है), प्रासादीयति कुट्या भिक्षु (भिक्षुक अपनी कुटिया को महल के तुल्य समझता है), कुटीयति प्रासादे राजा (राजा अपने महल मे अपने आप को कुटिया मे रहने वाले के तुल्य समझता है)।

(ख) नमस् शब्द से पूजा अर्थ म, वरिवस् शब्द मे परिचर्या (सेवा) अर्थ मे और चित्र शब्द से आश्चर्ययुक्त करना अर्थ म क्यच् (य) लगता है। नमस्यति देवान् (देवो की पूजा करता है), वरिवस्यति गुरुम् (गुरु की सेवा करता है), चित्रीयते लोकान् (लोगो को आश्चर्यान्वित करता है)। तपस् शब्द मे अभ्यास करना अर्थ मे य होता है। तपस्यति।

६४७ आर्धधातुक लकारो मे व्यजन के बाद के य (क्यच् और क्यङ्) का विकल्प से लोप हो जाता है। समिध्य का लिट्–समिधाचकार, लुट्–समिधिता–समिध्यिता, लृट्–समिधिष्यति–समिध्यिष्यति। परन्तु पुत्रीयते का लिट् पुत्रीयाचकार होगा।

(ख) काम्यच् (काम्य) प्रत्यय (परस्मै० मे रूप चलेंगे)

६४८ इच्छा अर्थ मे सज्ञाशब्द से काम्यच् (काम्य) प्रत्यय होता है। क्यच् (य) प्रत्यय के तुल्य यह सज्ञा-शब्द के बाद मे जुड जाता है और इसके परस्मैपद मे रूप चलते हैं। पुत्रकाम्यति (वह पुत्र की कामना करता है), यशस्काम्यति (वह यश की इच्छा करता है), सर्पिष्काम्यति (वह घी चाहता है)।

६४९ नियम ६४४ मे वर्णित अपवाद यहाँ नहीं लगता है । किंकाम्यति, स्वःकाम्यति।

(ग) क्विप् (०) प्रत्यय (परस्मै० मे रूप चलेंगे)

६५० क्विप् प्रत्यय का कुछ भी अश शेष नहीं रहता है, अत क्विप् प्रत्यय होने पर सज्ञाशब्द उसी रूप मे धातु बन जाता है। उससे ही साक्षात् लिङ्प्रत्यय जुडेंगे। क्विप् प्रत्यय तद्वत् आचरण करने का अर्थ बताता है। इसके रूप परस्मैपद मे ही चलते हैं।

६५१ अनुनासिक (न्, म् आदि) अन्त वाले शब्दों की उपधा के अ इ उ को दीर्घ हो जाता है। क्विप्-प्रत्ययान्त अग भ्वादिगणी धातु के तुल्य माना जाता है। मध्य मे शप् (अ) होने पर धातु के अन्तिम स्वर को गुण होता है । अ (विष्णु) इव आचरति—अति (विष्णु के तुल्य आचरण करता है)। कृष्ण—कृष्णति (कृष्ण के तुल्य आचरण करता है), उ०१—कृष्णामि। कवि–कवयति (कवि के तुल्य आचरण करता है)। वि–वयति (पक्षिवत् आचरण करता है)। माला–मालाति (माला के तुल्य आचरण करता है), लिट्–मालाचकार आदि। पितृ–पितरति (पिता के तुल्य आचरण करता है)। भू–भवति (पृथ्वी के तुल्य आचरण करता है), लिट्–बुभाव। राजन्–राजानति (राजा के तुल्य आचरण करता है)। पथिन्–पथीनति (मार्ग के तुल्य काम देता है), आदि। इसी प्रकार इदम्–इदामति, ऋभुक्षिन्–ऋभुक्षीणति (इन्द्रवत् आचरण करता है)।

(क) अवगल्भ (निर्भय व्यक्ति), होड (बालक) और क्लीब शब्दों से क्विप् और क्यङ् प्रत्यय विकल्प से होते है। इनके रूप आत्मनेपद मे ही चलते है। अवगल्भते-अवगल्भायते, होडते-होडायते, क्लीबते-क्लीबायते ।

(घ) क्यङ् (य) प्रत्यय (आत्मने० मे रूप चलेंगे)

६५२ क्यच् (य) आदि के तुल्य क्यङ् (य) प्रत्यय भी इच्छा आदि अर्थों मे सज्ञा-शब्दों से होता है। इससे बने हुए अग से आत्मनेपद मे ही रूप चलते हैं।

६५३ इस क्यङ (य) से पूर्व नामधातु के अन्तिम अ को आ हो जाता है, आ का आ ही रहता है और अन्य अन्तिम वर्णों मे वही परिवर्तन होते हैं जो क्यच् (य) से पहले होते हैं। शब्द के अन्तिम स् को विकल्प से आ हो जाता है। अप्सरस् और ओजस् के स् को आ नित्य हो जाता है। कृष्ण इव आचरति–कृष्णायते (कृष्ण के तुल्य आचरण करता है)। यशस्–यशायते, यशस्यते (यशस्वी के तुल्य आचरण करता है)। विद्वस्–विद्वायते, विद्वस्यते (विद्वान् के तुल्य आचरण करना है), आदि। किन्तु ओजस्–ओजायते (ओजस्वी के तुल्य आचरण करता है)। अप्सरस्–अप्सरायते (अप्सरा के तुल्य आचरण करती है)।

(क) उपधा मे क न हो तो स्त्रीलिंग शब्दों के अन्तिम स्त्री-प्रत्यय का लोप हो जाता है। कुमारी इव आचरति–कुमारायते (वह लड़की के तुल्य व्यवहार करता है)। हरिणी इव आचरति–हरिणायते (वह मृगी के तुल्य आचरण करता है)। गुर्वी इव आचरति–गुरुयते (वह भारी औरत के तुल्य आचरण करता है)। अन्यत्र–पाचिका इव आचरति–पाचिकायते इसका पाचकायते नहीं बनेगा।

(ख) सपत्नी के रूप होते हैं—सपत्नायते, सपत्नीयते, सपतीयते (वह सौत के तुल्य व्यवहार करती है)। युवति का युवायते होता है, (वह युवती के तुल्य व्यवहार करती है)।

६५४ भृश (अधिक), मन्द (सुस्त), पण्डित (विद्वान्), सुमनस् (सहृदय), उन्मनस् (व्याकुल) आदि शब्दों से 'जैसा पहले नहीं था वैसा होना' अर्थ मे क्यङ (य) प्रत्यय होता है। शब्द के अन्तिम व्यंजन का लोप होता है। अभृश भृशः भवति–भृशायते (जो पहले अधिक नहीं था, अब अधिक हो रहा है)। उन्मनायते (जो पहले उत्कंठित नहीं था, अब उत्कंठित होता है।) इसी प्रकार सुमनायते आदि।

६५५ निम्नलिखित स्थानों पर कुछ विशेष शब्दों से विशिष्ट अर्थों मे क्यङ (य) होता है।

(क) सत्र, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गहन शब्दों से 'पाप करने की इच्छा' अर्थ मे क्यङ (य) प्रत्यय होता है। पाप चिकीर्षति–सत्रायते, कष्टायते आदि। कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ मे भी क्यङ (य) होता है। कष्टाय क्रमते–कष्टायते (पाप कर्तुम् उत्सहते इत्यर्थः, सि० कौ०)।

(ख) रोमन्थ शब्द से 'करना' अर्थ मे। रोमन्थायते (जुगाली करता है)।

(ग) वाष्प (आँसू), ऊष्मन् (गर्मी) और फेन शब्दों से 'बाहर निकालना या उगलना' अर्थ में। वाष्पायते (आँसू बहाता है), ऊष्मायते (गर्मी बाहर निकालता है), फेनायते (फेन निकालता है)।

(घ) सुख आदि शब्दों से स्वयं अनुभव करना अर्थ में। सुखं वेदयते–सुखायते (वह सुख अनुभव करता है)। अन्यत्र–परस्य सुखं वेदयते (दूसरे के सुख को प्रकट करता है)।

(ङ) शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व (पाप), मेघ, सुदिन (स्वच्छ दिन) दुर्दिन (मेघावृत दिन) और नीहार (कुहरा) शब्दों से 'करना' अर्थ में। शब्दं करोति–शब्दायते (शब्द करता है)। इसका णिच् प्रत्यय करके शब्दयति भी रूप बनता है। सुदिनायते, आदि।

(ङ) क्यष् (य) प्रत्यय (दोनों पदों में रूप चलेंगे)

६५६ लोहित आदि शब्दों से तथा डाच् (आ) प्रत्ययान्त शब्दों से क्यष् (य) प्रत्यय होता है। क्यष् (य) प्रत्ययान्त नामधातुओं के रूप परस्मै० और आत्मनेपद दोनों में चलते हैं। जैसे–लोहित-लोहितायति-ते (लाल होता है), पटपटायते (पट पट शब्द करता है)।

(च) णिच् और णिङ् (इ) प्रत्यय (दोनों पदों में रूप चलेंगे)

६५७ निम्नलिखित स्थानों पर विभिन्न अर्थों में णिङ् (इ) या णिच् (इ) प्रत्यय होते हैं। णिङ् (इ) प्रत्ययान्त नामधातुओं के आत्मने० में रूप चलते हैं और णिच् (इ) प्रत्ययान्त के परस्मै० में। जैसे–वि, उत् और परि के बाद पुच्छ से। उत्पुच्छयते (पूँछ उठाता है), विपुच्छयते, परिपुच्छयते। सभाण्डयते (बर्तनों को एकत्र करता है), सचीवरयते भिक्षु (भिक्षुक फटे वस्त्रों को एकत्र करता है या उन्हें पहनता है)। मुण्ड–मुण्डयति माणवकम् (बच्चे का मुंडन करता है), मिश्र–मिश्रयति अन्नम् (भात को दही आदि से मिश्रित करता है), श्लक्ष्ण–श्लक्ष्णयति वस्त्रम् (बहुत पतले धागे का वस्त्र तैयार करता है), लवणयति व्यंजनम् (भोज्य वस्तुओं में नमक मिलाता है), व्रतयति पयः (केवल दूध पीने का ही व्रत करता है), व्रतयति शूद्रान्नम् (शूद्र का अन्न न खाने का व्रत करता है), वस्त्र–संवस्त्रयति (वस्त्र पहनता है), हल–हलयति (बड़े हल का प्रयोग करता है), कलि–कलयति (झगड़ा करता है), कृत–कृतयति (कृतं गृह्णाति, सि० कौ०), तूस्त (बाल, जटादार केश या पाप) (तूस्तं केशा इत्येके, जटीभूता केशा

उत्यन्ये, पार्पमित्यपरे, सि० कौ०)–तूस्तयति (बालों की जटा बनाता है)।

६५८. सत्य, अर्थ और वेद शब्दों के बाद इ को आपि हो जाता है। सत्य करोति आचष्टे वा सत्यापयति। अर्थापयति, वेदापयति।

६५९ निम्नलिखित स्थानों पर भी इ प्रत्यय होता है —

सेनया अभियाति––अभिषेणयति, लोमानि अनुमार्ष्टि–अनुलोमयति, वीणया उपगायति–उपवीणयति, श्लोकैः उपस्तौति-उपश्लोकयति, त्वच गृह्णाति–त्वचयति, चर्मणा सन्नह्यति–सचर्मयति, वर्णं गृह्णाति–वर्णयति, चूर्णैः अवध्वसते-अवचूर्णयति, एनीमाचष्टे–एनयति (उसको चित्र विचित्र वर्ण का कहता है)।

(छ) यक् (य) प्रत्यय

य प्रत्यय से पहले जो विभिन्न परिवर्तन दिखाई देते हैं, उनका विशेष कार्य ही समझना चाहिए।

६६० कण्ड्वादि[1]––कण्डू आदि शब्द धातु और प्रातिपदिक दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं। इनसे यक् (य) प्रत्यय करके नामधातु बनते हैं। कण्ड्वादि की मुख्य धातुएँ यहाँ दी जाती हैं —

कण्डू–कण्डूयति-ते (वह खुजाता है)
मन्तु–मन्तूयति (वह अपराध करता है, वह क्रोध करता है) चन्द्र आचार्य के मतानुसार मन्तूयते भी होता है।
वल्गु–वल्गूयति (वह सुन्दर होता है, वह आदर करता है)
असु–असूयति-ते (अस्यति) (ईर्ष्या करता है)
लेला–लेलायति (वह चमकता है)
उषस्–उषस्यति (उषा समय होता है)
मेधा–मेध्यति (वह शीघ्र समझता है)
सुख–सुख्यति (वह सुखी होता है)
दुःख–दुःख्यति (वह दुःखी होता है)
सपर–सपर्यति (पूजा करता है)
भिषज्–भिषज्यति (चिकित्सा करता है)
इषुध–इषुध्यति (तूणीर का काम देता है)
गद्गद–गद्गदयति (हकलाता है)
केला–केलायति (खेलता है)
खेला–खेलायति (खेलता है)
हृणी–हृणीयते (क्रुद्ध होता है या लज्जित होता है)
रेखा–रेखायति (वह पहुँचता है)
मही–महीयते (वह पूजा को पाता है)
तिरस्–तिरस्यति (अन्तर्धान होता है)
अगद–अगद्यति (वह नीरोग होता है)
उरस्–उरस्यति (बलवान् होता है)
पयस्–पयस्यति (वह फैलता है)

---

१. सिद्धान्तकौमुदी में इन धातुओं को कण्ड्वादिगण में रक्खा गया है। इस गण की प्रथम धातु कण्डू के आधार पर यह नाम पड़ा है।

अध्याय १३

परस्मैपद और आत्मनेपद

६६१ पहले उल्लेख किया जा चुका है कि संस्कृत में दो पद होते हैं--परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का अभिप्राय है कि क्रिया का फल कर्ता के अतिरिक्त अन्य किसी को मिलता है। जैसे--पचति (वह दूसरे के लिए पकाता है), कारयति (वह दूसरे के लिए किसी के द्वारा काम करवाता है), आदि। आत्मनेपद का अभिप्राय है कि क्रिया का फल कर्तृगामी है अर्थात् कर्ता को मिलता है। जैसे--पचते (वह अपने लिए पकाता है), कारयते (वह अपने लिए दूसरे से काम करवाता है), आदि।[1]

(क) यदि वाक्य में ऐसा कोई पद है, जिससे यह प्रकट होता है कि क्रिया का फल कर्तृगामी है तो वहाँ पर विकल्प से आत्मनेपद होता है। जैसे--स्वं यज्ञं यजते यजति वा (वह अपना यज्ञ करता है), स्वं कटं कुरुते करोति वा (वह अपनी चटाई बनाता है), स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा, आदि।

(ख) यदि किसी सकर्मक क्रिया का णिजन्त रूप स्व कर्तृक रूप से प्रयुक्त होता है या सामान्य क्रिया का कर्म णिजन्त का कर्ता हो जाता है तो वहाँ पर आत्मनेपद होता है। यदि खेदपूर्वक स्मरण करना आदि अर्थ होगा तो आत्मनेपद नहीं होगा। भक्ता भवं पश्यन्ति (भक्त भव को देखते हैं), भवो भक्तान् दर्शयते (भव स्वयं भक्तों को अपना रूप दिखाता है। अन्यत्र--स्मरति वनगुल्मं कोकिलः, स्मरयति वनगुल्मं कोकिलम् (उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवतीत्यर्थ, मि० कौ०)। देखो सूत्र १ ३-६७ पर मि० कौ०।

---

1 इस अन्तर का वस्तुतः बहुत कम पालन हुआ है। संस्कृत के उद्भट लेखकों ने भी दोनों पदों का बिना किसी भेद के ही प्रयोग किया है। यह नहीं माना जा सकता है कि जिस धातु में दोनों पद होते हैं, उसमें यह अन्तर करना आवश्यक है। दशकुमारचरित और कादम्बरी में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ पर दोनों पदों का एक ही अर्थ में प्रयोग मिलता है।

(ग) यदि क्रिया का कर्ता कोई चेतन है तो उससे णिच् प्रत्यय होने पर कर्तृ-
गामी फल होने पर भी परस्मैपद ही होता है। जैसे--कृष्ण शेते (कृष्ण सोता
है), गोपी कृष्ण शाययति (गोपी कृष्ण को सुलाती है)। अन्यत्र--फल पतति
(फल गिरता है), वायु फल पातयति (वायु फल को गिराती है), आदि।
(घ) अद् को छोड कर अन्य खाने अर्थ की धातुओं और चलने अर्थ की
धातुओं के णिजन्त रूप मे कर्तृगामी फल होने पर भी परस्मैपद ही होता है। निगा-
रयति, आदयति (खिलाता है), चालयति, कम्पयति (कँपाता है), आदि।
अपवाद (ग) और (घ) के--(ग) के अपवाद--दम् (दमन करना),
आ+यम् (लाना), आ+यस् (प्रयत्न करना), परिमुह् (मूर्छित होना), रुच्
(चमकना), वद् (कहना), वस् (रहना) और धे (पीना)। (घ) के
अपवाद--पा (पीना), नृत् (नाचना)। इन धातुओं मे सामान्य नियम लगने
है। दमयति-दमयते, शमयति-ते, आदि।

६६२ कर्मव्यतिहार (जो कार्य करना उचित न हो उसको करना या
कार्यों का अदल-बदल करना) अर्थ मे धातु से आत्मनेपद होता है। ब्राह्मण
सस्यानि व्यतिलुनीते (ब्राह्मण खेती को काटता है, यह शूद्र का कार्य है उसका
नहीं)। धर्म व्यतिस्ते (कर्तव्य कर्म बदल जाते है, यदि शूद्र वैश्य के कार्य को
करता है तो), आदि। सम्प्रहरन्ते राजान (राजा लोग परस्पर प्रहार करते
है)।

(क) कर्मव्यतिहार अर्थ मे इन धातुओ से आत्मनेपद नही होता है--गति
अर्थ वाली धातुएँ, हिंसा अर्थ वाली धातुएँ और हम् आदि धातुएँ। व्यतिगच्छन्ति,
व्यतिघ्नन्ति, व्यतिहसन्ति, व्यतिजल्पन्ति।

६६३ इन धातुओं से णिच् प्रत्यय होने पर परस्मैपद होता है--बुध्, युध्,
नश्, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु और स्रु। बोधयति पद्मम्, योधयति काष्ठानि, नाश-
यति दु खम्, जनयति सुखम्, अध्यापयति वेदम्, प्रावयति (प्रापयतीत्यर्थ, सि०
कौ०), द्रावयति (विलापयतीत्यर्थ, सि० कौ०), स्रावयति (स्यन्दयतीत्यर्थ,
सि० कौ०)।

६६४ आगे अकारादिक्रम से धातुएँ दी जा रही है, जिनमे अपने मौलिक
पद के स्थान पर कुछ विशेष अर्थों मे उपसर्ग पहले लगने पर पद-परिवर्तन
होता है।

अस्--उपसर्ग पहले लगने पर अस् धातु से दोनो पद होते हैं। वन्धं निरस्यति-ते।

अधि + इ--णिच् प्रत्यय होने पर परस्मै० होती है। अध्यापयति।

ऊह्--उपसर्ग पहले लगने पर दोनों पदों में रूप चलते हैं। पापम् अपोहति-ते (वह पापों को नष्ट करता है), तदपोहति (उनको हटाता है), समूहति-ते (वह संग्रह करता है)।

सम् + ऋ--आत्मनेपदी है। समारन्त ममाभीप्सा (भट्टि० ८-१६) (मेरी सभी इच्छाएँ मुझे प्राप्त हो गई हैं अर्थात् सफल हो गई है)।

सम् + ऋच्छ्--सकर्मक परस्मै० है और अकर्मक आत्मने०। समृच्छति (वह एकत्र करता है), समृच्छते (संग्रह की गई है)।

कृ--बिना उपसर्ग के यह उभयपदी है। अनु और परा के बाद कृ परस्मै० है।[1] अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (वाद०), तां हनुमान् पराकुर्वन्० (भट्टि० ८-५०)। निम्नलिखित अर्थों में उपसर्गों के साथ यह आत्मनेपदी है[2]-- (१) गन्धन (हिंसा करना या हानि पहुँचाना)। जैसे--उत्कुरुते (दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए उसके विरुद्ध चुगली करता है), (२) अवक्षेपण (डराना, धमकाना)। श्येनो वर्तिकाम् उदाकुरुते (बाज चिड़िया को डराता है)। (३) सेवन (सेवा करना)। हरिम् उपकुरुते (हरि की सेवा करता है)। (४) साहसिक्य (बलात् काम करना)। जैसे--परदारान् प्रकुरुते (परस्त्री से बलात्कार करता है)। (५) प्रतियत्न (दूसरे के गुण को भी ग्रहण करना। सतो गुणान्तराधानम्, काशिका)। जैसे--एध उदकस्य उपस्कुरुते (ईंधन जल की गर्मी को ग्रहण करती है)। (६) प्रकथन (वाँचना)। जैसे--गाथा प्रकुरुते (वेद की कथाओं को बाँचता है)। (७) उपयोग (काम में लगाना)। जैसे--शत प्रकुरुते (१०० रुपए को धार्मिक कार्यों में लगाता है। धर्मार्थं शतं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः)। (देखो भट्टि० ८-१८)। अधि + कृ आत्मने० है, क्षमा करना और तिरस्कार करना अर्थ में।[3] शत्रुम् अधिकुरुते (शत्रु को क्षमा करता है या उसको तिरस्कृत करता है)। अन्यत्र--मनुष्यान् अधिकरोति स्थानम् (स्थान मनुष्यों

---

१. अनुपराभ्यां कृञः (१-३-७९)।

२. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः (१-३-३२)।

३. अधेः प्रसहने (१-३-३३)।

को अधिकार देता है)। वि+कृ उच्चारण या पढना अर्थ मे आत्मनेपदी है। जहाँ पर यह अकर्मक है, वहाँ पर भी आत्मनेपद होगा।[1] छात्रा विकुर्वते (छात्र विकार को प्राप्त होते हैं), स्वरान् विकुरुते गायक (गायक स्वरो का उच्चारण करता है)। अन्यत्र--चित्त विकरोति काम (कामभाव चित्त को विकृत करता है)। विकुर्वे नगरे तस्य (भट्टि० ८-२१)। उप+कृ का उपकार करना अर्थ मे दोनो पदो मे प्रयोग होता है। नहि प्रदीपौ परस्परस्य उपकुरुत। (शारीरभाष्य) (दो दीपक एक दूसरे का उपकार नही करते हे), सा लक्ष्मीरुपकुरुते मया परेषाम् (लक्ष्मी वह है, जिसके द्वारा दूसरे का उपकार किया जाता है) (किराता० ७-२८)।

मिथ्या पहले होने पर णिजन्त कृ का आत्मनेपद मे प्रयोग होता है। पद मिथ्या-कारयते (पद के स्वर का अशुद्ध उच्चारण करता है)।

कृ (बखेरना)--अप+कृ इन अर्थों मे आत्मनेपदी है--हर्ष के साथ खोदना या फैलाना, पक्षी या पशुओ के द्वारा अपना आश्रय बनाना या जीविका निर्वाह अर्थ मे।[2] इन अर्थों मे कृ धातु से पहले स् लग जाता है। अपस्किरते वृषो हृष्ट (बैल प्रसन्नता के साथ भूमि को खोदता है)। इसी प्रकार अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी, अपस्किरते श्वा आश्रयार्थी (कुत्ता रहने के लिए गड्ढा खोदता है) देखो--छायापस्किरमाणविष्किर० (उत्तरराम० २९)।

जब धातु का अर्थ बखेरना या फैलाना ही होगा तो परस्मै० ही होगा और धातु से पहले स् नही लगेगा। कुसुमानि अपकिरति स्त्री (स्त्री फूलो को फैलाती है)। अपकिरति गजो धूलिम्।

क्रम्[3]--कोई उपसर्ग पहले नही होगा तो इसके रूप दोनो पदो मे चलते हैं। इन अर्थों मे इसका आत्मने० मे ही प्रयोग होता है--वृत्ति (अबाध गति),

---

१. वेः शब्दकर्मण (१-३-३४)। अकर्मकाच्च (१-३-३५)।
२. अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने (६-१-१४२)। अपात् किरते. सुट् स्यात्। सुडपि हर्षादिष्वेव वक्तव्य। (सि० कौ०)।
३. वृत्तिसर्गतायनेषु क्रम. (१-३-३८)। उपपराभ्याम् (१-३-३९)। आङ उद्गमने (१-३-४०)। ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम् (वा०)। वेः पाद-विहरणे (१-३-४१)। प्रोपाभ्या समर्थाभ्याम् (१-३-४२)। अनुपसर्गाद् वा (१-३-४३)।

सर्ग (उत्साह) और तायन (वृद्धि या विस्तार)। ऋचि क्रमते वृद्धि (उसकी वृद्धि ऋग्वेद में अबाधगति से चलती है), क्रममाणोऽरिससदि (शत्रुओं की सभा में अवाधगति से चलता हुआ, भट्टि० ८-२२), अध्ययनाय क्रमते (अध्ययन में अपना उत्साह दिखाता है), न रञ्जनाय क्रमते जडानाम् (विक्रमो० १-१६), क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (इस व्यक्ति में शास्त्र विस्तार को प्राप्त होते हैं या इसने शास्त्रों पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया है)। यदि उप या परा उपसर्ग पहले होंगे तो भी उपर्युक्त अर्थों में आत्मने० होगा। यदि अन्य उपसर्ग पहले होंगे तो परस्मै० होगा। उपक्रमते, पराक्रमते। तुलना करो—इत्युक्त्वा खे पराक्रंस्त (उसने अपना पराक्रम दिखाया), परीक्षितुमुपाक्रंस्त (साहस किया) राक्षसी तस्य विक्रमम् (भट्टि० ८ २२-२३)। अन्यत्र-सङ्क्रामति (शास्त्रेषु बुद्धि) आ। उपसर्ग पहले होने पर किसी दिव्य ज्योति के निकलने अर्थ में आत्मने० होता है। आक्रमते सूर्य (सूर्य निकलता है)। अन्यत्र आक्रामति धूमो हर्म्यतलात् (महल के ऊपरी छज्जे से धूँआ निकल रहा है)। वि उपसर्ग पहले होने पर ठीक ढग से पैर चलाने अर्थ में आत्मने० होता है। साधु विक्रमते वाजी (घोडा ठीक ढग से चलता है)। अन्यत्र–विक्रामति सन्धि (जोड खुलता है)। प्र और उप सपसग पहले होने पर प्रारम्भ अर्थ में आत्मने० होता है। प्रक्रमते, जैसे—वक्तु मिथ प्राक्रमतैवमेनम् (कुमार० ३-२)। (इस प्रकार उसने एकान्त में उससे यह *कहना प्रारम्भ किया)। अन्यत्र—प्रक्रामति (जाता है), उपक्रामति (पास* आता है)।

क्री[१]—अव, परि और वि उपसर्ग पहले होने पर क्री को आत्मने० होता है। वि+क्री का अर्थ बेचना होता है। अवक्रीणीते, परिक्रीणीते। देखो भट्टि० (८- ८)–कृतेनोपकृत वायो परिक्रीणानमुत्थितम्।

क्रीड्[२]—अनु, आ, परि और सम् उपसर्ग पहले होने पर क्रीड् आत्मने० होती है। अनुक्रीडते, आक्रीडते, परिक्रीडते, सक्रीडते। जब अनु कर्मप्रवचनीय *होगा तो नहीं। माणवकमनुक्रीडति (माणवक या बालक के साथ खेलता है)।* सम्+क्रीड् शब्द करना अर्थ में परस्मै० है, सक्रीडति चक्रम् (पहिया शब्द करता है)।

१. परिव्यवेभ्य क्रिय (१-३-१८)।
२. क्रीडोऽनुसपरिभ्यश्च (१-३-२१)। अनो कर्मप्रवचनीयान्न (सि० कौ०)।

क्षिप्[1]--अभि, प्रति और अति उपसर्ग पहले होने पर परस्मै० होता है। अभिक्षिपति (ऊपर फेंकता है), अतिक्षिपति (बाहर फेंकता है), प्रतिक्षिपति (पीछे फेंकता है) ।

क्ष्णु--सम् + क्ष्णु आत्मने० है। संक्ष्णुते शस्त्रम् (अपने शस्त्र को तेज करता है), उत्कण्ठा संक्ष्णुते (चिन्ता को दूर करता है) ।

गम्[2]--सम् + गम् युक्त होना, मिलना अर्थ मे आत्मने० है। वाक्य संगच्छते, सखीभिः संगच्छते, आदि । अन्यत्र--ग्रामं संगच्छति (गाँव को जाता है)। धैर्य रखना या प्रतीक्षा करना अर्थ मे गम् का णिजन्त रूप आत्मने० होता है। आगमयस्व तावत् (पहले धैर्य धारण करो) ।

गृध्--धोखा देना अर्थ मे इसका णिजन्त रूप आत्मने० है। माणवकं गर्धयते (वह बच्चे को धोखा देता है)। अन्यत्र--श्वानं गर्धयति (वह कुत्ते को लालची बनाता है) ।

गॄ[3]--सम् + गॄ प्रतिज्ञा करना या घोषित करना अर्थ मे आत्मने० है। संगिरते शब्दम् (वह अपने वचन की शपथ लेता है), शतं संगिरते (वह १०० रु० की प्रतिज्ञा करता है), संगिरते स्वामिनो गुणान् (अपने स्वामी के गुणों की घोषणा करता है) । अन्यत्र--संगिरति ग्रासम् (ग्रास को निगलता है) । अव + गॄ (तुदादि०) आत्मने० है। अवगिरते शोणितं पिशाचः (राक्षस खून को पीता है) ।

चर्[4]--उद् + चर् सकर्मक होने पर आत्मने० है। धर्मम् उच्चरते (धर्म का उल्लंघन करता है), पानशौण्डाः पथि क्षीबा वृन्दैरुदचरन्त च (भट्टि० ८-३१) । अन्यत्र--बाष्पमुच्चरति (भाप उठती है) । सम् और समुदा के साथ चर् आत्मने० है, यदि तृतीयान्त रथादि यानों के साथ हो । रथेन संचरते (वह रथ मे बैठ कर घूमता है) । देखो भट्टि० ८-३२ । क्वचित् पया संचरते

---

१. अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः (१-३-८०) ।
२. समो गम्यृच्छिभ्याम् (१-३-२९) ।
३ अवाद् ग्रः (१-३-५१) । समः प्रतिज्ञाने (१-३-५२) ।
४. उदश्चरः सकर्मकात् (१-३-५३) । समस्तृतीयायुक्तात् (१-३-५४) दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे (१-३-५५) ।

कुछ० के मतानुसार अनु + तप् आत्मने० है। अनुतप्यते (पश्चात्ताप करता है)।

दा[1]—बिना उपसर्ग के दा (जुहोत्यादि) धातु उभयपदी है। आ + दा धातु मुंह आदि खोलना अर्थ को छोड कर अन्य अर्थों में आत्मनेपदी है। धनम् आदत्ते (धन लेता है), विद्याम् आदत्ते (विद्या ग्रहण करता है), नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् (शाकु०) (जो प्रेम के कारण तुम्हारे पत्तों को नहीं तोडती है)। अन्यत्र—मुखं व्याददाति (अपना मुंह खोलता है)। विपादिका व्याददाति पादम् (बिवाई पैर को फाड़ती है)। नदी कूलं व्याददाति (नदी किनारे को तोडती है)। यदि दूसरे का मुख अर्थ होगा तो निषेध नहीं लगेगा। व्याददते पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखम् (चींटियां कीड़े के मुंह को खोलती हैं या नोचती हैं, महाभारत)।

दा—(देना, भ्वादि०) सम् + दा या सम् + प्र + दा आत्मने० है, यदि चतुर्थी के अर्थ में तृतीयान्त पद साथ में हो। दास्या संयच्छते या संप्रयच्छते (दासी को कुछ धनादि देता है)। अन्यत्र—दास्या धनं संप्रयच्छति विप्राय (दासी के द्वारा ब्राह्मण को धन देता है)।

दृश्—सम् + दृश् अकर्मक होने पर आत्मने० है। संपश्यते (ठीक देखते हो या ठीक समझते हो)। सन्नन्त दृश् आत्मने० है। दिदृक्षते (देखना चाहता है)।

द्रु—णिजन्त द्रु परस्मै० है।

नह्—सम् + नह् तैयार होना अर्थ में आत्मने० है। युद्धाय संनह्यते (युद्ध के लिए तैयार होता है)। देखो—छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते (भर्तृ०)।

नाथ्[2]—नाथ् धातु आशा करना, आशीर्वाद देना, शुभ कामना अर्थों में नित्य आत्मने० है। मांगना आदि अर्थों में यह परस्मै० है। सर्पिषो नाथते (सर्पिर्मे स्यादित्याशास्ते इत्यर्थः, सि० कौ०)। मोक्षाय नाथते मुनिः।

किराता० (१३-५९) 'नाथसे किमु पतिं न भूभृताम्' में आत्मने० का प्रयोग है। भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि यहाँ पर याचसे पाठ होना चाहिए,

---

१. आङो दोऽनास्यविहरणे (१-३-२०)। आस्यग्रहणमविवक्षितम् (सि० कौ०)। पराङ्गकर्मकान्न निषेधः (वा०)।

२. आशिषि नाथः (वा०)।

नायसे नहीं। मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में 'दीनं त्वामनुनायते कुचयुग पत्रावृतं मा कृथा ०' की आलोचना करते हुए कहा है कि यहाँ पर नायते के स्थान पर नायति पाठ होना चाहिए। नायते प्रयोग अशुद्ध है।

नी[1]—उद्, उप, वि आदि उपसर्गों के बाद नी धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

(१) सम्मानन (सम्मान प्रदर्शन करना)—शास्त्रे नयते (शास्त्र के सिद्धान्त शिष्यों को बताता है, इससे उनका सम्मान होता है) (तेन च शिष्यसम्मानं फलितम्, सि० कौ०), (२) उत्सञ्जन (उठाना)—दण्डम् उन्नयते (उत्क्षिपतीत्यर्थः), (३) आचार्यकरण (उपनयन संस्कार करना)—माणवकम् उपनयते (विधिना आत्मसमीपं प्रापयतीत्यर्थः। उपनयनपूर्वकेणाध्यापनेन हि उपनेतरि आचार्यत्वं क्रियते, सि० कौ०), (४) ज्ञान (वस्तु स्थिति का ठीक-ठीक निश्चय करना)—तत्त्वं नयते (निश्चिनोतीत्यर्थः), (५) भृति (वेतन के आधार पर नियुक्त करना)—कर्मकारान् उपनयते (वेतन के आधार पर श्रमिकों को नियुक्त करता है), (६) विगणन (ऋण या कर आदि चुकाना)—करं विनयते (राज्ञे देयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः), (७) व्यय (सत्कर्मों में धनादि लगाना)—शतं विनयते (धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः, सि० कौ०)। वि+नी आत्मनेपदी है, यदि कर्ता के अन्दर रहने वाली शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु हो। जैसे—कोपं विनयते। अन्यत्र—गुरोः क्रोधं विनयति शिष्यः, गडुं विनयति (हटाता है)।

नु[2]—आ+नु आत्मने० है। आनुते (वह प्रशंसा करता है)।

प्रच्छ्—आ+प्रच्छ् विदाई लेना अर्थ में आत्मने० है। आपृच्छस्व प्रियसखममुम् (मेघ० १०) (अपने इस प्रिय मित्र से विदाई लो)। सम्+प्रच्छ् अकर्मक होने पर आत्मने० है। संपृच्छते (वह निश्चय करता है)।

---

१. सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः (१-३-३६)। कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि (१-३-३७)। नियः कर्तृस्थे कर्मणि यदात्मनेपदं प्राप्तं तच्छरीरावयवभिन्ने एव स्यात्। सूत्रे शरीरशब्देन तदवयवो लक्ष्यते। तेनेह न—गडुं विनयति। कथं तर्हि—विगणय्य नयन्ति पौरुषमिति। कर्तृगामित्वाविवक्षाया भविष्यति (सि० कौ०)।

२ आङि नुप्रच्छ्योः (वा०)।

भुज्[1]—रक्षा के अतिरिक्त अन्य अर्थों में आत्मने० है। ओदन भुङ्क्ते (भात खाता है)। बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम् (पृथिवी के रक्षक राजा ने केवल पृथिवी का ही उपभोग किया)। वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते (वृद्ध व्यक्ति सैकड़ों दुःखों का अनुभव करता है)। महीं भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है)।

मृष्—परि + मृष् परस्मै० है। परिमृष्यति (सहन करता है)। अन्यत्र—आमृष्यते (वह छूता है)।

यम्[2]—आ + यम् आत्मने० है, अकर्मक होने पर या कर्ता के शरीर का कोई अवयव कर्म हो। आयच्छते तरुः (वृक्ष फैलता है), आयच्छते पाणिम् (हाथ को फैलाता है)। अन्यत्र—आयच्छति कूपाद् रज्जुम् (कूएँ से रस्सी को बाहर निकालता है)। सम् उद् और आ के बाद यम् आत्मने० है, ग्रन्थ का अर्थ नहीं होना चाहिए। वस्त्रम् आयच्छते (वस्त्र पहनता है), भारम् उद्यच्छते (भार उठाता है), व्रीहीन् संयच्छते (चावलों को एकत्र करता है)। अन्यत्र—उद्यच्छति वेदम् (वेदाध्ययन के लिए उद्यम करता है)। उप + यम् आत्मने० है, स्वीकार करना और कन्या से विवाह करना अर्थ में। दानम् उपयच्छते (दान की वस्तु को स्वीकार करता है), उपयच्छते कन्याम् (कन्या से विवाह करता है)। लुङ् में इसके म् का विकल्प से लोप होता है। रामः सीताम् उपायत (देखो उत्तरराम० ३-१२), उपायस्त। अन्यत्र—परस्य भार्याम् उपयच्छति (दूसरे की स्त्री को अपनी स्त्री बनाता है)।

युज्[3]—युज् धातु से पहले प्र या उप उपसर्ग हो अथवा अजादि या अजन्त कोई भी उपसर्ग पहले हो तो आत्मने० होता है, यदि यज्ञ-पात्र के लिए प्रयोग न हो तो। प्रयुङ्क्ते, उपयुङ्क्ते, प्रयुञ्जानः प्रिया वाच (भट्टि० ८-३९)। अन्यत्र—यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति (यज्ञ-पात्रों को ठीक लगाता है)। य इमाम् आश्रमधर्मे

---

१. भुजोऽनवने (१-३-६६)। अदन इति वक्तव्येऽनयन इति पर्युदासग्रहणाद् अवनभिन्ने उपभोगादावर्थेऽपि आत्मनेपदविधानार्थमिदम्।
२. आङो यमहनः (१-३-२८)। समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे (१-३-७५)। उपाद्यमः स्वीकरणे (१-३-५६)। विभाषोपयमने (१-२-१६)
३. प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु (१-३-६४)। स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम् (वा०)।

नियुङ्क्ते (जो इसको आश्रम के कार्यों में नियुक्त करता है, शाकु०), अन्वयुङ्क्त गुरुमीश्वरः क्षितेः। (रघु० ११-६२, राजा ने अपने गुरु से पूछा), षण्णवषमुगान् गुणानजः षडुपायुङ्क्त (शान्ति आदि ६ गुणों का अज ने उपयोग किया, रघु० ८-२१)।

युप्—णिजन्त युप् परस्मै० है।

रम्[1]—वि, आ और परि उपसर्ग के बाद रम् परस्मै० हो जाती है। यन्ते-तस्माद् विरम (पुत्र, इस कार्य को न करो, उत्तर० १-३३), गानिरेव व्यरंसीत् (उत्तर० १-२७)। आरमति, विरामोऽस्त्विति चाग्नेत् (मनु० २-७९), परिरमति, क्षण पर्यरमत्तस्य दर्शनात् (उसके दर्शन से वह कुछ समय के लिए आनन्दित हुआ)। उप + रम् परस्मै० है। यज्ञदत्तम् उपरमति (उपरमयतीत्यर्थं, सि० कौ०)। अकर्मक के रूप में प्रयोग होने पर दोनों पद होते हैं। उपरमति-ते (क्रीडा करता है)। देखो—उपारंसीच्च पश्यन्, नात्र सीतेत्युपारंस्त० (भट्टि० ८५४-५५)।

ली—णिजन्त ली धातु पूजा पाना, हराना और धोखा देना अर्थों में आत्मने० है। जटाभिर्लापयते (जटाओं के कारण पूजा पाता है), दण्डेन लापयते श्वा (कुत्ता डंडे से पराजित होता है), श्येनो वर्तिकाम् उल्लापयते (वञ्चयतीत्यर्थं, धोखा देता है या हराता है), मौर्ख्येण लापयते ब्राह्मण (ब्राह्मण मूर्खता के कारण धोखा खाता है), बालम् उल्लापयते (वञ्चयतीत्यर्थं)।

वञ्च्[2]—णिजन्त वञ्च् धातु धोखा देना अर्थ में आत्मने० है। माणवकं वञ्चयते (बच्चे को धोखा देता है)। अन्यत्र—अहिं वञ्चयति (साँप से बचता है)।

वद्[3]—निम्नलिखित अर्थों में वद् धातु आत्मनेपदी है—(१) भासन (चमकना या विशेष योग्यता प्राप्त करना)—शास्त्रे वदते (शास्त्रों में विशेष योग्य है), (२) उपसंभाषा (सान्त्वना देना) (प्राय उप उपसर्ग के साथ वद्)

---

१. व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३)। उपाच्च (१-३-८४)। विभाषाऽकर्मकात् (१-३-८५)।

२. गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने (१-३-६९)।

३. भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः (१-३-४७)। व्यक्तवाचां समुच्चारणे (१-३-४८)। अनोरकर्मकात् (१-३-४९)। विभाषा विप्रलापे (१-३-५०)। अपाद् वदः (१-३-७३)।

धातु इस अर्थ में आती है)—भृत्यानुपवदते (सान्त्वयनीत्यर्थः), (३) ज्ञान (जानना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र को जानता है), (४) यत्न (प्रयत्न)—क्षेत्रे वदते (खेत मे परिश्रम करता है), (५) विमति (मतभेद, विवाद) (इस अर्थ मे प्राय वि उपसर्ग के साथ वद् धातु आती है)—विवदन्ते । परस्पर विरुद्ध-मानाना शास्त्राणाम् (परस्पर विरोधी विचारो वाले शास्त्रो का), (६) उपमन्त्रण (प्रार्थना करना, अनुकूल बनाना)—दातारम् उपवदते (दानी का गुणगान करता है), आदि । सम्प्र + वद् मनुष्यो आदि के स्पष्ट और सामूहिक उच्च स्वर से भाषण अर्थ मे आत्मने० है । सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणा (ब्राह्मण सामूहिक रूप से उच्च स्वर से बोल रहे है) । अन्यत्र—सम्प्रवदन्ति पक्षिण , वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः (सुन्दरी, मुर्गे बोल रहे है) । अनु + वद् अकर्मक प्रयोग होने पर पूर्वोक्त अर्थो मे आत्मने० है । अनुवदते कठ कलापस्य (कठ ब्राह्मण कलाप ब्राह्मण के तुल्य उच्चारण करता है)। अन्यत्र—उक्तम् अनुवदति (कहे हुए का अनुवाद करता है)। अनुवदति वीणा (वीणा स्वरो का अव्यक्त उच्चारण करती है) । वि + प्र + वद् मतभेद या विरोध अर्थ म विकल्प से आत्मने० है । विप्रवदन्ति-न्ते वैद्या (वैद्यो मे मतभेद है) । अप + वद् तिरस्कार या निषेध अर्थ म आत्मने० है, क्रिया का फल कर्तृगामी हो तो । अपवदते धनकामो अन्यायम् (धन का इच्छुक अन्यायपूर्वक दूसरो का तिरस्कार करता है) । इसी प्रकार न्यायम् अपवदते (न्याय का विरोध करता है) । अन्यत्र—अपवदति । (तिरस्कार करता है यहाँ पर क्रिया का फल कर्तृगामी नही है) । नार्तोऽप्यपवदेद् विप्रान् (मनु० ४-२३६) । जहाँ पर क्रिया का फल कर्तृगामी होता है, वहाँ पर आत्मने० विकल्प म होता है । स्वपुत्रम् अपवदति-न्ते वा (सूत्र १-३-७७ पर सि० कौ०) । उप + वद् सकर्मक होने पर उपदेश देना और चोरी से बोलना अर्थ मे आत्मने० है । शिष्यम् उपवदते (शिष्य को उपदेश देता है), परदारान् उपवदते (दूसरे की स्त्री से चोरी से बात करता है) ।

वह्—उभयपदी है । प्र + वह् परस्मै० ही है । प्रवहति ।

विद्[1]—(२, जानना) । सम् + विद् जानना या समझना अर्थ मे अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मने० है । इसको प्र० पु० बहु० मे विकल्प से द् के बाद र् लग जाता है । सविदते-सविद्रते (वे अच्छी तरह से जानते हैं) । के न सविद्रते वायो मैनाकाद्रियथा सखा (भट्टि० ८-१७, कौन नहीं जानते हैं कि मैनाक पर्वत वायु

1. विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् (वा०) । वेत्तेर्विभाषा (७-१-७) ।

का मित्र है ?)। अन्यत्र—संवित्त सहपुष्पानौ तच्छोंसिता सरदूषणौ (भट्टि० ५-३७)। यहाँ पर सकर्मक प्रयोग है। सम्+विद् पहचानना अर्थ में आत्मने० है। संवित्ते।

विश्[1]—नि+विश् आत्मने० है। निविशते। निविविशुर्यादिन्द्रयादिशः (भट्टि० ६-१४३)। अभि+नि+विश् भी आत्मने० है। अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग को अपनाता है, सि० कौ०)। देखो भट्टि० ८-८०।

शप्[2]—क्रिया का फल कर्तृगामी न हो तो ताना देना अर्थ में यह आत्मने० है। कृष्णाय शपते।

शिक्ष्[3]—जिज्ञासा या जानने की इच्छा अर्थ में यह आत्मने० है। धनुषि शिक्षते (धनुर्विद्या सीखना चाहता है)।

श्रु[4]—सम्+श्रु अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मने० है। संशृणुते (ठीक सुनता है)। संशृणुष्व कपे (हे कपि, ध्यान से सुनो, भट्टि० ७-१६)। तु० करो—हिताम्न यः संशृणुते स किं प्रभुः (किराता० १-५)। अन्यत्र—शब्दं संशृणोति (वह शब्द सुनता है)। सन्नन्त श्रु धातु आत्मने० है। यदि आ या प्रति उपसर्ग पहले होंगे तो परस्मै० होगी। शुश्रूषते। किन्तु आशुश्रूषति, प्रतिशुश्रूषति।

स्था[5]—सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पहले होने पर स्था आत्मने० होती है) संतिष्ठते। मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते (मुद्रा० १-२६) (परिभव के भय से सरल व्यक्ति का कहना नहीं मानता है)। देखो मृच्छ० १-३६। स्थिर रहना अर्थ में परस्मै० ही होता है। क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः (हरिवंश)। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः (यदि कोई जीव क्षण भर भी सांस लेता हुआ जीवित रहता है), अनीरवा पक्ता धूलिमुदक नावतिष्ठते (शिशु० २-३४)। प्रतिष्ठते (देखो रघु० ४-६, कुमार० ३-२२)।

---

१. नेर्विशः (१-३-१७)। २. शप उपालम्भे (वा०)।
३. शिक्षेर्जिज्ञासायाम् (वा०)। ४. अतिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् (वा०)।
५. समवप्रविभ्यः स्थः (१-३-२२)। आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् (वा०)। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च (१-३-२३)। उदोऽनूर्ध्वकर्मणि (१-३-२४)। ईहायामेव (वा०)। उपान्मन्त्रकरणे (१-३-२५)। उपाद् देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् (वा०)। वा लिप्सायाम् (वा०)। अकर्मकाच्च (१-३-२६)।

वितिष्ठते। पदैर्भुव व्याप्य वितिष्ठमानम् (शिशु० ४-४)। आ+स्था किसी
सिद्धान्त या निश्चय की स्थापना मे आत्मने० है। शब्द नित्यम् आतिष्ठते (शब्द
को नित्य मानता है)। जल विष वा तव कारणाद् आस्थास्ये (महाभाष्य)
(तुम्हारे लिए मैं जल या विष भी पी सकता हूँ)। जब आ+स्था का सकर्मक के
तुल्य प्रयोग होगा और कार्य करना अर्थ होगा तो परस्मै० होगा। विधिमातिष्ठति
(विधि या व्रत का अनुष्ठान करता है)। अपने भाव को प्रकट करना और कहना
मानना अर्थ मे स्था आत्मने० है। गोपी कृष्णाय तिष्ठते (आशय प्रकाशयति
इत्यर्थ), सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य (किराता० ३ १४, सन्देह होने पर वह
कर्ण आदि की समति लेता है और उनका कहना मानता है)। उद्+स्था आत्मने०
है, उठना और अधिकार के रूप मे पाना अर्थ होतो नही। मुक्तावुत्तिष्ठते (मुक्ति
के लिए प्रयत्नशील है)(देखा किराता० ११-१३ और शिशु० १४-१७)। अन्यत्र--
पीठादुत्तिष्ठति, ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति (गाँव से सौ रु० लगान आदि के रूप मे
प्राप्त होता है)। उप+स्था इन अर्थों मे आत्मने० है--(१) मन्त्रपाठ-सहित
देवपूजा अर्थ मे--आग्नेय्याग्नीध्रमुपतिष्ठते (वैदिक मन्त्रो के द्वारा आग्नीध्र
अग्नि की पूजा करता है), ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रा (भट्टि० ८ १३)। अन्यत्र---
भर्तारम् उपतिष्ठति यौवनेन (यौवन के कारण पति के पास जाती है), पतिमुप-
तिष्ठति नारी (वोप०) (देखो भट्टि० ५-६८)। (२) देवपूजा अर्थ मे--
आदित्यमुपतिष्ठते। भट्टोजि दीक्षित का कथन है कि राजा को देवो का अश
मानने के कारण उसके लिए भी आत्मने० हो सकता है। अत 'स्तुत्य स्तुतिभि-
रथ्याभिरुपतस्थे सरस्वती' (रघु० ६ ६) मे आत्मने० है। (३) सगम या मिलना
अर्थ मे--गगा यमुनामुपतिष्ठते। (४) मित्रता करना अर्थ मे--रथिकानुप-
तिष्ठते (मित्रीकरोतीत्यर्थ, सि० कौ०)। (५) मार्ग जाता है अर्थ म--पन्था
स्रुघ्नम् उपतिष्ठते (रास्ता स्रुघ्न की ओर जाता है)। धनादि प्राप्त करने की
इच्छा अर्थ होने पर उप+स्था विकल्प से आत्मने० है। भिक्षुक प्रभुमुपतिष्ठतिने
(भिक्षुक धनादि की आशा से स्वामी के पास जाता है)। अकर्मक के रूप मे
प्रयोग होने पर उप+स्था आत्मने० है। भोजनकाले उपतिष्ठते (भोजन के समय
उपस्थित होता है)।

स्मृ--सनन्त स्मृ आत्मने० है। सुस्मूर्षते।

स्रु--णिजन्त स्रु परस्मै० है। स्रावयति।

स्वृ—सम् और आ उपसर्ग पहले होने पर आत्मने० है। सस्वरते (डराने के लिए गरजता है), द्रुत सस्वरिणीष्टास्व० (भट्टि० ९-२८)। आस्वरते (जोर से बोलता है।) ।

हन्[1]—आ+हन् अकर्मक प्रयोग में या कर्ता के शरीर का अवयव कर्म होने पर आत्मने० है। आहते (मारता है)। स्वशिर आहते (अपना शिर पीटता है)। अन्यत्र—परस्य शिर आहन्ति (सि० कौ०)।

हृ[2]—अनु+हृ प्राकृतिक स्वभाव को अपनाने या प्राप्त करने अर्थ मे आत्मने० है। पैतृकमश्वा अनुहरन्ते (घोड़े सदा अपने पिता की चाल को अपनाते हैं)। इसी प्रकार मातर गाव अनुहरन्ते। अनुकरण के द्वारा कोई गुण सीखने अर्थ मे यह परस्मै० है। पितरम् अनुहरति (पिता का अनुकरण करता है)।

ह्वे[3]—उप, नि, वि और सम् उपसर्ग पहले होने पर तथा अकर्मक के रूप मे प्रयोग होने पर ह्वे आत्मने० है। उपह्वयते, निह्वयते आदि। आ+ह्वे युद्धार्थ आह्वान अर्थ म आत्मने० है। कृष्णश्चाणूरमाह्वयते (कृष्ण चाणूर को युद्धार्थ पुकारते हैं)। आह्वत चेदिराण्मुरारिम्० (शिशु० २१-१)। अन्यत्र—पुत्रमाह्वयति।

इस अध्याय मे जो कुछ दिया गया है, उसके सारांश के रूप मे निम्नलिखित कारिकाएँ आख्यातचन्द्रिका से उद्धृत की जा रही हैं। इनमे यथास्थान कुछ परिवर्तनादि भी किया गया है। इससे अध्याय का सारांश स्मरण करने मे छात्रो को सुविधा होगी।

आत्मनेपद-परस्मैपद विवेकवर्ग.

भावे कर्मणि सर्वस्माद् धातो स्यादात्मनेपदम्।
ङिद्भ्यस्तथाऽनुदात्तेभ्यो भूयते प्यायते तु दिक् ॥१॥
क्रियाव्यतिहृतौ तद्वद् व्यतिस्ते व्यतिविञ्जते।
शब्दार्थहस्प्रकाराहृगतिहिंसार्थकान्न तत् ॥२॥

१ आङो यमहन (१-३-२८)। कथ तर्हि आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्ष इति भारवि। अहध्व मा रघूत्तमम् इति भट्टिश्च। प्रमाद एवायमिति भागवृत्ति। प्राप्येतमध्याहारो वा (सि० कौ०)।
२ हरतेर्गतताच्छील्ये (वा०)।
३ निसमुपविभ्यो ह्व (१-३-३०)। स्पर्धायामाङ (१-३-३१)।

व्यतिभ्या जल्पति हसत्येव हन्तीत्यमूर्दिश ।
नात्र सम्प्रवदन्ते सम्प्रहरन्ते निषेधनम् ॥३॥
द्विरुयतान्यतरेतरोपपदान्नात्मनेपदम् ।
अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्त्येषा दिङ्‌ निपराद्‌ विशे ॥४॥
परिव्यवेभ्य क्रीणातेर्जयतेर्विपरापरात् ।
आङो दोऽनास्यविकासस्वास्यप्रसारणयोर्न हि ॥५॥
गमे क्षमाया णेराङि नुपृच्छ्यो क्रीडतेरनो ।
पर्याङ्भ्या च समोऽकूजे जिज्ञासायां शपे सन ॥६॥
अप किरतेर्हरतेर्गततताच्छील्य आशिषि ।
नाथे शपेस्तु शपथे स्थो निर्णीत प्रकाशने ॥७॥
प्रतिज्ञाया चावसविप्रादुदोऽनूर्ध्वचेष्टने ।
देवार्चासगकरणमंत्रीषु पथिन्कर्तु के ॥८॥
धात्वर्थे मन्त्रकरणेऽकर्मके चोपपूर्वकात् ।
या लिप्साया सम पृच्छिगमृच्छिस्वृश्रुवेत्तित ॥९॥
दृशोर्तेश्चाकर्मकेभ्य आङ्पूर्वाभ्यां यमेर्हन ।
उद्‌विभ्या तपते स्वागकर्मकेभ्योऽप्ययास्यते ॥१०॥
ऊहेर्वा सोपसर्गाभ्यां ह्व सनिव्युपपूर्वकात् ।
आङस्तु स्पर्धते सूचनावक्षेपणसेवने ॥११॥
प्रतियत्नप्रकथनोपयोगे साहसे कृञ ।
अधे प्रसहने वेस्तु शब्दकर्मण्यकर्मकात् ॥१२॥
पूजाचार्यकृतिज्ञानोत्सञ्जने च भृती व्यये ।
नियो विगणने कर्तृस्थे तु चामूर्तकर्मणि ॥१३॥
वृत्त्युत्साहस्फीततासु क्रमेस्तद्‌वत्‌ परोपयो ।
ज्योतिरुद्‌गमने त्वाङो वे पादविहृतार्थकात् ॥१४॥
आरम्भणेऽर्थे प्रोपाभ्या विभाषाऽनुपसर्गकात् ।
अपह्नवेऽकर्मकाच्च ज्ञोऽनाध्याने सम प्रते ॥१५॥
यत्नोपसान्त्वनज्ञानभासनेपूपमन्त्रणे ।
विपत्तौ चापि वदते समनुभ्या त्वकर्मकात् ॥१६॥
विपत्तौ चापि वदते समनुभ्या त्वकर्मकात् ॥
व्यक्तवाचा सहोक्तौ च विप्रलापे विभाषया ।

प्रोऽवात् सम प्रतिज्ञाने चरेरदि सकर्मकात् ॥१७॥
समस्तृतीयायुक्तात् स्वीकरणे तूपयच्छते ।
तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे दाण शिति शदेर्मृङ ॥१८॥
लिङ्लुङोश्च कृञ प्राग्वदासो यस्तु प्रयुज्यते ।
सन श्रुस्मृदृशिज्ञाभ्यो नानोर्ज्ञो नाङ प्रते श्रुव ॥१९॥
अयज्ञपात्रेषु युजेरजाद्यन्तोपसर्गत ।
सम क्ष्णौतेरनवने भुनक्तेरत्य णेरणौ ॥२०॥
यत्कर्म णौ स कर्ता चेद् भवेदाध्यानवर्जिते ।
यथा रोहयते हस्ती स्वय दर्शयते नृप ॥२१॥
भीस्म्यो प्रयोजकाद भीतिस्मययोर्वञ्चतेर्गृधे ।
प्रलम्भने लिय पूजान्यक्लृत्योर्वञ्चनेऽपि च ॥२२॥
मिथ्याशब्दोपपदत पौनपुन्ये कृञो णिच ।
फले च कर्त्रभिप्राये स्वरितेतो ञितो णिच ॥२३॥
पचते कुरुते ब्रूते घट कारयते तथा ।
अपाद् वद समाङ्दृभ्यो यमेरग्रन्थगोचरे ॥२४॥
ज्ञश्चोपसर्गरहिताच्छब्दान्तरगतौ तु वा ।
इति आत्मनेपदाधिकार ।

अथ परस्मैपदाधिकार

परस्मैपदमन्यस्मात् कृञोऽप्यनुपरापरात् ॥२५॥
क्षिपोऽभिप्रत्यतिभ्य प्राद् वहेर्मृ पिवहो परे ।
व्याङ्परिभ्यो रम उपाद् विभाषा चेदकर्मक ॥२६॥
आहारचलनार्थाण्णेरण्यन्ते यद्यकर्मक ।
चित्तवत्कर्तृको यद्वत् तोषयत्येष पार्थिव ॥२७॥
प्रद्रुस्नुजन्युधबुधेङनशिभ्यश्च णिचोऽस्य न ।
दम्यायमायसपरिमुहो न रुचिवद्वस ॥२८॥
नृतिधेट्पिबतिभ्यश्च क्यषन्ताच्च विभाषया ।
वा द्युतादेर्लुङि वृद्भ्य स्यसनोर्लुटि कल्पते ॥२९॥
परस्मैपदमन्यस्मात् तथा शिष्टप्रयोगत ॥

अध्याय १४

कृदन्त प्रकरण (कृत्-प्रत्यय)

(Verbal Derivatives or Primary Nominal Bases)

६६५ कृत् प्रत्यय (देखो नि० ३३७) धातुओं से या धातुनिर्मित अंग से होते हैं। इनसे बने हुए शब्द संज्ञा, विशेषण या अव्यय होते हैं। जैसे—कृ-कार, कर्तृ, करण, कुर्वत्, करिष्यत्, चकृवस्, कृत्वा, कर्तुम्, आदि। कृत् प्रत्ययों से बने हुए शब्दों को कृदन्त (Primary Nominal Bases) कहते हैं। इनसे भिन्न तद्धित प्रत्ययों से बने हुए रूपों को तद्धित-प्रत्ययान्त (Secondary Derivatives) कहते हैं।

६६६ कृत् प्रत्ययों का एक और भेद है। इसको संस्कृत के वैयाकरणों ने उणादि नाम दिया है। कृ वा पा आदि धातुओं से उण् (उ) प्रत्यय होकर कार, वायु आदि रूप बनते हैं। इस उण् प्रत्यय के आधार पर यह उणादि नाम पड़ा है। इस गण का पहला प्रत्यय उण् है। उण् में उ प्रत्यय है, ण् इत् संज्ञक होकर लुप्त हो जाता है। अन्य कृत् प्रत्ययों के तुल्य उणादि-प्रत्यय भी धातुओं से होते हैं और इनसे बने हुए रूप कृदन्त माने जाते हैं। इनको पृथक् करके इसलिए रक्खा गया है कि इनसे बने हुए शब्द गिने चुने हैं। साथ ही इन प्रत्ययों से बने हुए संज्ञा-शब्द या तो अनियमित रूप से बनते हैं या जिन धातुओं से वे संज्ञा शब्द बनाए गए हैं, उन धातुओं के अर्थों में और संज्ञा शब्दों के अर्थों में वह स्पष्ट धात्वर्थ का नियम दिखाई नहीं पड़ता है, जो कि अन्य कृदन्त संज्ञा शब्दों में दिखाई देता है। जैसे—अश्नुते अध्वानं व्याप्नोतीति वा अश्व (घोड़ा)। अश्व अश् (व्याप्त होना) धातु से बना है, अथवा अध्वन् (मार्ग) शब्द और वि+आप् धातु को मिला कर बना है। कृ धातु से कार (शिल्पी) बना है, इत्यादि।

भाग १

शतृ आदि कृत् प्रत्यय (अव्यय और अव्ययभिन्न)
(Participles Declinable and Indeclinable)
१. शतृ आदि प्रत्यय (अव्ययभिन्न)
(क) वर्तमान अर्थ वाले कृत् प्रत्यय
(Participles of the Present Tense)

६६७ वर्तमानार्थक शतृ प्रत्ययान्त रूप बनाने का प्रकार यह है कि धातु (मूल धातु या प्रत्यययुक्त) का लट् लकार प्र०पु० बहुवचन में तिङ् से पहले जो स्वरूप रहता है, वह शतृ (अत्) प्रत्यय करने पर भी होगा। धातु के उस स्वरूप के साथ अत् जुड़ जाएगा। यह परस्मैपदी धातुओं से ही होना है। यदि अग के अन्त में अ है तो उसका लोप हो जाएगा। जैसे—

भू (१ प०)–भव् + अन्ति लट् प्र० ३ भव् + अत् = भवत् (शतृ) (होता हुआ)
स्था (१ प०)–तिष्ठ् + अन्ति " तिष्ठ् + अत् = तिष्ठन् (खड़ा होता हुआ)
द्विष् (२ प०)–द्विष् + अन्ति " द्विष् + अत् = द्विषत् (द्वेष करता हुआ)

इसी प्रकार इनके ये रूप होते हैं —

अद् (२ प०) अदत् (खाता हुआ) रुध् (७ प०) रुन्धत् (रोकता हुआ)
या (२ प०) यात् (जाता हुआ) कृ (८ प०) कुर्वत् (करता हुआ)
हु (३ प०) जुह्वत् (यज्ञ करता हुआ) तन् (८ प०) तन्वत् (फैलाता हुआ)
दिव् (४ प०) दीव्यत् (जुआ खेलता हुआ) क्री (९ प०) क्रीणत् (खरीदता हुआ)
सु (५ प०) सुन्वत् (रस निकालता हुआ) मुष् (९ प०) मुष्णत् (चुराता हुआ)
तुद् (६ प०) तुदत् (दुःख देता हुआ) चुर् (१० प०) चोरयत् (चुराता हुआ)

बुध् + णिच्—बोधय्—बोधयत् (बताता हुआ)
बुध् + सन्—बुबोधिष्–बुबोधिषत् (जानने की इच्छा करता हुआ)
दा + सन्—दित्स्—दित्सत् (देना चाहता हुआ)
क्षिप् + यङ्लुक्—चेक्षिप्—चेक्षिपत (बार बार फेंकता हुआ)

इत्यादि।

(क) विद् के बाद शतृ (अत्) को विकल्प से वस् होता है। विद्वस् या विदत् (जानता हुआ)।

(ख) द्विष् और सु (यज्ञ में सोमरस निकालना) धातु से शतृ (अत्)

प्रत्यय करने पर कर्ता अर्थ होता है। जैसे—द्विषत् (पु०, शत्रु), सर्वे यज्ञे सुन्वन्तः
(यज्ञ मे सभी सोमरस निकालने वाले हैं)।
(ग) अर्ह् से अत् प्रत्यय होने पर पूज्य अर्थ होता है। अर्हत् (पूज्य, पूजा के योग्य)।
(घ) इ (२ पर०) और णिजन्त धृ (धारि) से 'सरलता से कार्य होना' अर्थ मे अत् प्रत्यय होता है। अधीयत् (सरलता से पढता है), धारयत् (सरलता से धारण करता है)। अन्यत्र—कृच्छ्रेण अधीते, कृच्छ्रेण धारयति।

६६८ अत्-प्रत्ययान्त के रूप चलाने के लिए नियम ११६ देखे। वहाँ पर इसका वर्णन है।

६६९ आत्मनेपदी धातुओ से लट् के स्थान पर शानच् (आन) होता है। लट् लकार प्र० पु० बहु० मे अते या अन्ते से पूर्व जो धातु रूप रहता है, वही आन से भी पूर्व रहेगा। इन स्थानो पर आन् का मान हो जाता है—भ्वादि० (१), दिवादि० (४), तुदादि० (६) और चुरादि० (१०) की धातुओ के अ के बाद तथा अन्य सभी प्रत्ययान्त धातुएँ जिनके अग के अन्त मे अ शेष रहता है। जैसे—एध् (१ आ०) एधमान (बढता हुआ), वन्द् (१ आ०) वन्दमान (वन्दना करता हुआ), शी (२ आ०) शयान (सोता हुआ), द्विष् (२ आ०) द्विषाण, आ+हन् (२ आ०) आघ्नान (हिंसा करता हुआ), धा (३ आ०) दधान (रखता हुआ), हु (३ आ०) जुह्वान, दिव् (४) दीव्यमान (जूआ खेलता हुआ), सु (५ आ०) सुन्वान (रस निकालता हुआ), तुद् (६ आ०) तुदमान (दुःख देता हुआ), रुध् (७ आ०) रुन्धान (रोकता हुआ), तन् (८ आ०) तन्वान, (फैलाता हुआ), कृ (८ आ०) कुर्वाण (करता हुआ), क्री (९ आ०) क्रीणान (खरीदता हुआ), चुर् (१० आ०) चोरयमाण (चुराता हुआ), आदि। बुध्+णिच्—बोधय—बोधयमान (बताता हुआ), बुध्+सन्—बुबोधिष—बुबोधिषमाण (जानने की इच्छा करता हुआ), इत्यादि।

६७० (क) आस् (२ आ० बैठना) के बाद आन को ईन हो जाता है। अस्—आसीन।
(ख) पू और यज् धातुओ से आन प्रत्यय होकर सज्ञा शब्द बनता है। जैसे—

पवमान (पवित्र करने वाला, अत वायु)। देखो–रघु० ८-९। एक यज्ञिय अग्नि। यजमान (यज्ञ करने वाला)।

६७१ स्वभाव, आयु-बोधक भाव और सामर्थ्य अर्थ मे किसी भी धातु से चानश् (आन) प्रत्यय हो सकता है।[1] जैसे—भोग भुञ्जान (भोगो का भोग करने वाला), कवच बिभ्राण (कवच धारण करने के योग्य अर्थात् युवक या बडी आयु का व्यक्ति), शत्रु निघ्नान (शत्रु को नष्ट करने की सामर्थ्य वाला), आदि।

६७२ भाववाच्य या कर्मवाच्य प्रयोगो मे लट् लकार मे य प्रत्ययान्त अग से मान लगेगा। जैसे—बुध्यमान (जाना जाता हुआ), अद्यमान (खाया जाता हुआ), दीयमान (दिया जाता हुआ), चीयमान (सचय किया जाता हुआ), क्रियमाण (किया जाता हुआ), कॄ—कीर्यमाण (फैलाया जाता हुआ), चोर्यमाण (चुराया जाता हुआ)। बुध् + णिच्—बोधय—बोध्यमान (बताया जाता हुआ), बुध् + सन्=बुबोधिष—बुबोधिष्यमाण (जानने की इच्छा किया जाता हुआ), आदि।

६७३ नियम ६६९ के अनुसार बने हुए शब्दो के रूप पु० मे रामवत्, स्त्री० मे रमावत् और नपु० मे फलवत् चलते हैं।

(ख) लिट् के स्थानीय प्रत्यय (Participles of the Perfect)

६७४ लिट् लकार के स्थान पर होने वाले प्रत्यय तथा क्त (त), क्तवतु (तवत्) प्रत्यय ङित् (निर्बल) हैं, अत इनसे पूर्व धातु के स्वर को गुण नही होता है। उपधा के अनुनासिक (न्, म्, ञ् आदि) का प्राय लोप हो जाता है। (देखो नि० ५८८)।

६७५ लिट् लकार के स्थान पर परस्मै० मे वस् और आत्मने० मे आन लगता है। इनसे पूर्व धातु का रूप प्राय वह रहता है जो लिट् प्र० पु० बहु० में प्रत्यय से पूर्व रहता है। यदि धातु का रूप एकाच् है अथवा धातु आकारान्त है तो वस् से पहले इ और लगेगा। गम्, हन्, दृश्, विश् और विद् (६ ग०) के बाद वस् से पूर्व इ विकल्प से लगता है। जन्, खन्, गम् और हन् धातुओ मे जहाँ पर वस् से पूर्व इ नही लगता है, वहाँ पर लिट् म० पु० एक० मे थ प्रत्यय से पहले इनका जो रूप रहता है, उससे वस् लगेगा। जैसे —

१. ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् (३-२-१२९)।

परस्मैपद

धातु	लिट् का अंग (प्र० ३)	वस् प्रत्ययान्त रूप	
इ (जाना)	ईय्	ईयिवस्	(गया हुआ)
ऋ (जाना)	आर्	आरिवस्	(" ")
नी (ले जाना)	निनी	निनीवस्	(ले जाया हुआ)
पच् (पकाना)	पेच्	पेचिवस्	(पकाया हुआ)
वच् (कहना)	ऊच्	ऊचिवस्	(कहा हुआ)
यज् (यज्ञ करना)	ईज्	ईजिवस्	(यज्ञ किया हुआ)
भञ्ज्(तोड़ना)	बभञ्ज्	बभञ्ज्वस्	(तोडा हुआ)
अस् (फेंकना)	आस्	आसिवस्	(फेंका हुआ)
स्तु (स्तुति करना)	तुष्टु	तुष्टुवस्	(स्तुति किया हुआ)
कृ (करना)	चकृ	चकृवस्	(किया हुआ)
भिद् (तोडना)	बिभिद्	बिभिद्वस्	(तोडा हुआ)
दा (देना)	दद्	ददिवस्	(दिया हुआ)
घस् (खाना)	जक्ष्	जक्षिवस्	(खाया हुआ)
दृश् (देखना)	ददृश्	ददृशिवस्, ददृश्वस्	(देखा हुआ)
विद् (जानना)	विविद्	विविदिवस्, विविद्वस्	(जाना हुआ)
विश् (घुसना)	विविश्	विविशिवस्, विविश्वस्	(घुसा हुआ)

इनके ये रूप होते है--जन्--जजन्वस्, खन्--चखन्वस्, गम्--जग्मिवस्-जगन्वस्, हन्-जघ्निवस्-जघन्वस् ।

(१) अकारादि धातुओं मे लिट् के तुल्य बीच में न् नही लगता है। अञ्ज्-आजिवस् ।

(क) वस्-प्रत्ययान्त शब्दों के रूपों के लिए देखो नियम १२४।

आत्मनेपद

नी (ले जाना)	निनी	निन्यान
दा (देना)	दद्	ददान
पच् (पकाना)	पेच्	पेचान
यज् (यज्ञ करना)	ईज्	ईजान
कृ (करना)	चकृ	चक्राण

वच् (कहना)	ऊच्	ऊचान
स्तु (स्तुति करना)	तुष्टु	तुष्टुवान
श्रु (सुनना)	शुश्रु	शुश्रुवाण

इत्यादि ।

(ख) इनके रूप पु०, स्त्री० और नपु० मे राम, रमा और फलवत् चलते हैं।

६७६ ॠ अन्त वाली धातुओ (तृ और जृ भी) के वस् और आन प्रत्यय होने पर अनियमित ढग से रूप बनते है। वस् धातु के अन्त मे लगता है, तत्पश्चात् इसमे नियम ३९४ के अनुसार परिवर्तन होते हैं और बाद मे इसको द्वित्व होता है। जहाँ धातु आत्मनेपदी है, वहाँ पर पहले द्वित्व होता है और बाद मे आन लगता है और अन्तिम ॠ मे पूर्ववत् परिवर्तन होते है। जैसे—कॄ + वस्=कीर्वस्—द्वित्व होकर चिकीर्वस्, कृ को द्वित्व होकर चकृ + आन=चकिराण। इसी प्रकार तॄ—तितीर्वस्, ततिराण, शॄ—शिशीर्वस्, शशिराण, पॄ—पुपूर्वस्, पपुराण, इत्यादि।

६७७ लिट् लकार से बनने वाले कृदन्त रूपो का प्रयोग अधिक नही होता है। निम्नलिखित धातुओ से बनने वाले लिट् के कृदन्त रूपो का प्रयोग अधिकांशतः मिलता है —सद्, वस्, स्था और श्रु।

६७८ आम् अन्त वाले लिट् लकार का कृदन्त रूप परस्मै० और आत्मने० मे अन्त मे जुडने वाली कृ, भू और अस् धातुओ के वस् या आन प्रत्यय वाले रूप लगा कर बनते है। आम् प्रत्ययान्त अग मे ये रूप जुड जाते हैं। जैसे—दयामासिवस्, उन्दावभूवस्, गण्—गणयामासिवस्, गणयावभूवस्, आदि।

(ग) भूतार्थक क्त प्रत्यय (Past Passive Participles)

६७९ भूतार्थक कर्मवाच्य कृदन्त रूप धातु से क्त (त) प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। जैसे—स्ना–स्नात (नहाया), जि–जित (जीता), नी–नीत (ले गया), श्रु–श्रुत (सुना), भू–भूत (हुआ), हृ–हृत (हरण किया), त्यज्–त्यक्त (छोडा), चित्–चित्त (सोचा, विचारा), आदि।

६८० जिन धातुओ मे सप्रसारण हो सकता है, उनमे त से पहले सप्रसारण होता है।

६८१. त प्रत्यय ङित् (निर्बल) है।

अपवाद—

(क) इन धातुओ मे त से पहले इ लगने पर धातु को गुण होता है—

दी, स्विद्¹ (भ्वादि०), मिद्, क्ष्विद्, धृष् और मृष् । पू (१ आ०) में भी त से पहले इ लगने पर गुण होता है। (देखो नियम ६८६ ग)।

(ख) भ्वादिगण की जिन धातुओं की उपधा में उ है, उनके उ को विकल्प से गुण होता है, यदि बाद में त प्रत्यय से पहले इ लगा हो और इसका प्रयोग भाव-वाच्य में या कार्य के प्रारम्भ अर्थ में हो। मुद् (प्रसन्न होना)—मुदित। प्रसन्न होने या प्रारम्भ अर्थ होने पर रूप होंगे—प्रमुदित या प्रमोदित। प्रमुदित प्रमोदित वा साधुना। प्रमुदित प्रमोदित वा साधु। इसी प्रकार द्युत्–प्रद्युतित, प्रद्योतित, आदि।

६८२ साधारणतया धातु की उपधा के अनुनासिक का लोप हो जाता है। (देखो नि० ६७४)

६८३ इस क्त (त) से पहले कुछ धातुओं में इ नित्य लगता है, कुछ में विकल्प से और कुछ में सर्वथा नहीं।

६८४ सामान्यतया इन धातुओं में त से पहले इ नहीं लगता है—(१) सभी अजन्त धातुएँ, (२) जिन धातुओं में किसी भी प्रत्यय में पहले विकल्प से इ लगता है, (३) हलन्त अनिट् धातुएँ। पूर्व अध्यायों में वर्णित सन्धि के नियम यथास्थान लगेंगे।

धातु	क्त प्रत्ययान्त रूप	
पा	पात	(रक्षा की)
श्रि	श्रित	(आश्रय लिया)
नी	नीत	(ले गया)
श्रु	श्रुत	(सुना)
भू	भूत	(हुआ)
कृ	कृत	(किया)
ऊर्णु	ऊर्णुत	(ढका)
वे	उत	(बुना)
व्ये	वीत	(ढका)
ह्वे¹	हूत	(पुकारा)
वच्	उक्त	(कहा)

धातु	क्त प्र० रूप	
त्यज्	त्यक्त	(छोड़ा)
भ्रस्ज्	भृष्ट	(भुना)
यज्	इष्ट	(यज्ञ किया)
बुध्	बुद्ध	(जागा)
व्यध्	विद्ध	(बींधा)
स्वप्	सुप्त	(सोया)
लभ्	लब्ध	(पाया)
बन्ध्	बद्ध	(बाँधा)
दृश्	दृष्ट	(देखा)
क्रुश्	क्रुष्ट	(रोया, चिल्लाया)
दंश्	दष्ट	(काटा)

१. ह्वे में व् को ऊ हो जाता है।

धातु		क्त प्रत्ययान्त रूप	धातु		क्त प्र० रूप
गुह्	गूढ	(छिपाया)	द्विष्	द्विष्ट	(द्वेष किया)
मृज्	मृष्ट	(स्वच्छ किया)	शास्[1]	शिष्ट	(समझाया)
सिध्	सिद्ध	(पूरा किया)	दह्	दग्ध	(जलाया)
तृप्	तृप्त	(सन्तुष्ट हुआ)	वह्	ऊढ	(ढोया)
नश्	नष्ट	(नष्ट हुआ)	सह्	सोढ	(सहा)
वृध्	वृद्ध	(बडा हुआ)	ध्वस्	ध्वस्त	(नष्ट किया)
वृत्	वृत्त	(हुआ, पूरा किया)	लिह्	लीढ	(चाटा)
शक्	शक्त	(समर्थ)	मुह्	मुग्ध, मूढ	(बेहोश हुआ)
सिच्	सिक्त	(सींचा)	नह्	नद्ध	(बाँधा)
प्रच्छ्	पृष्ट	(पूछा)	स्रंस्	स्रस्त	(गिरा)

अपवाद—(क) शी, जागृ, स्था और दरिद्रा में इ होता है। शी और जागृ के अन्तिम स्वर को गुण होता है तथा स्था और दरिद्रा के अन्तिम आ का लोप होता है। शयित, जागरित, स्थित, दरिद्रित।

(ख) पत् में इ होता है, यद्यपि सन् प्रत्यय करने पर इसमें इ विकल्प से होता है। पतित।

(ग) अनिट् वस् और क्षुध् धातुओं में त और त्वा बाद में होने पर इ होता है। उषित, क्षुधित।

६८५ सभी सेट् धातुओं में (नियम ६८४ का पालन करते हुए) तथा सभी प्रत्ययान्त धातुओं में इ लगता है। चुरादि० और णिजन्त धातुओं के अन्तिम अय का लोप हो जाता है। यङन्त में अन्तिम य का और यङ्लुगन्त में अन्तिम अ का लोप हो जाता है।

धातु		क्त प्र० रूप	धातु	क्त प्र० रूप
शक्	शकित	(शंका किया गया)	बुध् + णिच्—बोधय—बोधित	(बताया)
वद्	उदित	(कहा हुआ)		
कथ्	कथित	(कहा गया)	कृ + सन्—चिकीर्ष्—चिकीर्षित	(करना चाहा)
प्रथ्	प्रथित	(फैला हुआ)		
एध्	एधित	(बढा)	बुध् + यङ्—बोबुध्य-बोबुधित	(बार बार जाना)

१. देखो नि० ४३७।

धातु	क्त प्र० रूप	
कम्प्	कम्पित	(कांपा)
मुष्	मुषित	(चुराया)
ग्रह्	गृहीत	(लिया, पकड़ा)

धातु	क्त प्र० रूप
भू-यङ्-बोभूय—बोभूयित	(बार बार हुआ)

अपवाद--इन्ध्, ऋप् (जाना, मारना), विद् (जानना, देखना), जुष्, भ्रम्, दीप्, मद् और यत्। इद्ध, ऋप्त, वित्त, जुष्ट, भ्रान्त, दीप्त, मत्त, यत्त।

सूचना--इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी सेट् धातुएँ हैं, जिनमें इ नहीं लगता है, परन्तु उनमें से कुछ के क्त-प्रत्ययान्त रूपों में त को न होता है या अनियमित ढंग से रूप बनते हैं, उनका आगे यथास्थान विचार किया गया है।

९८८ इन धातुओं में इ विकल्प से लगता है --

(क) दम्, शम्, पूर्, दस्, स्पश्, छद्, ज्ञप्, रुष्, अम्, सम् + घुष्, आ + स्वन् और हृष् (१, ४ पर०) धातु (जब इसका लोमन् के साथ प्रयोग हुआ हो और चाह, आश्चर्य या निराशा अर्थ हो)। दान्त-दमित (देखो नि० ६०६ क), शान्त-शमित, पूर्ण-पूरित (देखो नि० ६४८), दस्त (नष्ट हुआ)-दसित, स्पष्ट-स्पशित, छन्न-छादित, ज्ञप्त-ज्ञपित, रुष्ट-रुषित, आन्त (देखो नि० ६०६ क)-अमित, संघुष्ट-संघुषित, आस्वान्त-आस्वनित, हृष्ट-हृषित लोमन् (आनन्द से रोमांचित), हृष्टो हृषितो वा मैत्र (विस्मित प्रतिहतो वा)।

(ख) क्लिश् और पू धातु में न या क्त्वा बाद में होने पर इ विकल्प से लगता है। क्लिष्ट-क्लिशित, पूत-पवित।

६८७ (क) अञ्च् धातु मे पूजा अर्थ मे इ लगता है। अञ्चित (पूजित)। अन्यत्र अक्त (गया)। सम्+अञ्च्–समक्त।

(ख) धृष् और शस् धातु मे धृष्ट अर्थ मे इ नही लगता है। धृष्ट (ढीठ), विशस्त (अशिष्ट)। अन्यत्र—धर्षित (डराया गया, डरा हुआ), विशसित (पीडित)।

६८८ धातु के अन्तिम द् और र् के बाद त को न हो जाता है तथा अन्तिम द् को भी न् हो जाता है।[1] भिद्-भिन्न, शृ–शीर्ण, तुर्व्-तूर्ण (देखो नि० ६९८)।

अपवाद—(क) आधा या टुकडा अर्थ होने पर भिद् का भित्त रूप बनता है। अन्यत्र भिन्न।

(ख) विद् (६ उ०) का 'भोग के योग्य वस्तु और प्रसिद्ध' अर्थ मे वित्त रूप बनता है। वित्तम् (धन, सम्पत्ति), वित्त पुरुष (प्रसिद्ध पुरुष)। अन्य अर्थों मे विन्न।

(ग) मद्, पुर् और मूर्च्छ् के बाद त को न नही होगा। मत्त, पूर्त (भरा हुआ) (पृ धातु वाला अर्थ होने पर उसका पूर्ण रूप भी होता है), मूर्त।

६८९ जिन धातुओं के अन्त म आ (ए, ऐ और ओ का स्थानीय भी आ) है, यदि वे सयुक्त अक्षर से प्रारम्भ होने वाली है और बीच मे अन्तस्थ वर्ण है, तो त को न हो जाएगा।[2] द्रा (दौडना, सोना)–द्राण, ग्लै (मुरझाना)–ग्लान, स्त्यै–स्त्यान (समूहरूप मे एकत्र), आदि।

अपवाद—ख्या (कहना), ध्यै (ध्यान करना), व्ये और ह्वे। ख्यात, ध्यात, वीत, हूत।

६९० नियम ४१४ मे दी हुई धातुओं और ज्या धातु के बाद त को न हो जाता है।[3]

धातु	क्त प्र०	रूप	धातु	क्त प्र०	रूप
री	(जाना, बहना)	रीण	जृ	(वृद्ध होना)	जीर्ण
ली	(पिघलना आदि)	लीन	दृ	(फाडना)	दीर्ण

१. रदाभ्या निष्ठातो न. पूर्वस्य च दः (८-२-४२)।
२. संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः (८-२-४३)।
३. ल्वादिभ्यः (८-२-४४)।

धातु		क्त प्र० रू०	धातु		क्त प्र० रू०
व्ली	(जाना, पकडना)	व्लीन	नॄ	(ले जाना)	नीर्ण
प्ली	(जाना, हिलना)	प्लीन	पॄ	(भरना, तुष्ट करना)	पूर्ण
धू	(हिलाना)	धून	भॄ	(धारण करना, पालना)	भूर्ण
पू	(नष्ट करना)	पून	मॄ	(मारना)	मूर्ण
लू	(काटना)	लून	वॄ	(चुनना)	वूर्ण
ॠ	(जाना)	ईर्ण	शॄ	(फाडना)	शीर्ण
कॄ	(फैलाना)	कीर्ण	स्तॄ	(फैलाना)	स्तीर्ण
गॄ	(कहना, प्रशसा करना)	गीर्ण	ज्या	(वृद्ध होना)	जीन

६६१ दु (जाना) और गु (अस्पष्ट शब्द करना) धातुओं के बाद त को न हो जाता है और इनके स्वर को दीर्घ हो जाता है। दून (गया), गून।

६६२ निम्नलिखित धातुओं मे त को न हो जाता है--

धातु		क्त प्र० रूप	धातु		क्त प्र० रूप
डी	(४ आ०, उडना)	डीन, उड्डीन	सू	(४ आ०, जन्म देना)	सून
दू	(तग करना)	दून	विज्		विग्न, उद्विग्न
धी	(पकडना, पूरा करना)	धीन	व्रश्च्		वृक्ण
ली	(४ आ०)	लीन	स्फुर्ज्	(१ प०)	स्फूर्ण
मी	(४ आ०, दु ख देना)	मीन	भञ्ज्	(तोडना)	भग्न
दी	(४ आ०, नष्ट होना)	दीन	भुज्	(६ प०)	भुग्न
री	(४ आ०, दु ख देना)	रीण	मस्ज्	(६ प०)	मग्न
हा	(जाना)	हान	रुज्	(६ प०, तोडना)	रुग्ण
हा	(छोडना)	हीन	लज्	(६ आ०)	लग्न
वै	(सूखना)	वान	लस्ज्	(लज्जित होना)	लग्न
व्री	(४ आ०, हिलना)	व्रीण	वि+स्यन्द्		विस्यन्न
			परि+स्यन्द्		परिस्यन्न-ष्यण्ण
शिव	(१ प०, सूजना)	शून	विद्	(४ आ०)	विन्न

६६३ (क) ऋ धातु के बाद त को न हो जाता है, ऋण अर्थ मे।[1] ऋण (कर्जा)। अन्यत्र ऋत (बीता हुआ)।

---

1. ऋणमाधमर्ण्ये (८-२-६०)।

छोड कर सभी वर्ण) कोई डित् (निर्बल) प्रत्यय हो तो। शम्-शान्त, श्रम्-श्रान्त, आदि।

(ख) अनुनासिक अन्त वाली अनिट् धातुओं, वन् (१ प०) धातु और तनादिगण की तन् आदि ८ धातुओं (देखो नि० ५७८) के अनुनासिक का लोप हो जाता है, बाद में कोई झलादि डित् प्रत्यय हो तो।

धातु	क्त प्र० रू०	धातु	क्त प्र० रू०
मन् (सोचना)	मत	नम् (झुकना)	नत
हन् (मारना)	हत	यम् (रोकना)	यत
रम् (क्रीडा करना)	रत	वन् (१ प०, सेवा करना)	वत
गम् (जाना)	गत	घृण् (चमकना)	घृत
तन्	तत	तृण् (चरना)	तृत
क्षण्	क्षत	वन् (मांगना)	वत
ऋण्	ऋत		

६९७ खन्, जन् और सन् धातुओं के अन्तिम न् का लोप हो जाता है तथा अ को आ हो जाता है। खात, जात, सात।

६९८ धातु के व् के पहले या बाद में स्वर होने पर कभी-कभी उसे ऊ हो जाता है, बाद में त या न हो तो। यदि र् पहले होगा तो व् का लोप हो जाएगा। वर्-ऊर्ण, त्वर्-तूर्ण, तुर्व्-तूर्ण, सिव्-स्यूत, दिव्-द्यूत या द्यून (देखो नि० ६९३ग)।

६९९ निम्नलिखित धातुओं में कुछ विशेष अर्थों में इ नहीं लगता है। इनमें से कुछ क्त-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं।

क्षुभ्—क्षुब्ध (मथनी, रई)
स्वन्—स्वान्त (मन)
ध्वन्—ध्वान्त (अन्धकार)
लग्—लग्न (सक्त, लगा हुआ)
म्लेच्छ्—म्लिष्ट (अस्पष्ट)
विरेभ्—विरिब्ध (एक स्वर)
फण्—फाण्ट (मट्ठा या सरलता से साध्य खट्टी वस्तु। अनायास-साध्य कषायविशेष, सि० कौ०,)
वाह्—वाढ (बहुत)

अपने अन्य स्वाभाविक अर्थों में इनके रूप होंगे—क्षुभित, ध्वनित, लगित, म्लेच्छित, विरेभित, फणित और वाहित।

७०० दा (देना) और दे का क्त-प्रत्ययान्त रूप दत्त होता है। यदि कोई अजन्त उपसर्ग पहले होगा तो दत्त के द का लोप हो जाएगा। प्रत्त, अवत्त आदि।

दत्त के द का लोप होने पर पूर्ववर्ती उपसर्ग के अन्तिम इ और उ को दीर्घ हो जाता है। नीत्त, सूत्त आदि। उपसर्गों के बाद दत्त या द विकल्प से रह भी सकता है। प्रदत्त, अवदत्त, सुदत्त आदि।[1]

७०१ निम्नलिखित क्त-प्रत्ययान्त रूप अनियमित ढंग से बनते हैं —

धातु०	क्त प्र० रू०	धातु	क्त प्र० रू०
अद् (खाना)	जग्ध, अन्न	मव् (बाँधना)	मूत
अर्द् (सम्, नि, वि +)	समर्ण, न्यर्ण, व्यर्ण +	मा (नापना)	मित
		मे (आदान-प्रदान करना)	मित
अभि + अर्द् (समीप अर्थ में)	अभ्यर्ण	मूर्च्छ् (मूर्च्छित होना)	मूर्त, मूर्च्छित
अर्द् (अन्य अर्थों में)	अर्दित	लाघ् (उत् +)	उल्लाघ (पथ्यकारी)
ऊय् (१ आ०, बुनना)	ऊत	बृह्, बृह् (परि +)	परिवृढ
कष् (कष्टकारी या दुःसद होना)	कष्ट, जैसे—कष्ट व्याकरणम् (व्याकरण का अध्ययन कष्ट साध्य है), कष्ट वनम्, आदि। अन्यत्र कषित सुवर्णम् (कसौटी पर रगड़ा गया सोना)	बृह्, बृह् (,,)	परिबृंहित परिबृंहित परिबृंहित परिबृंहित (बढ़ा हुआ)
		शो (तेज करना)	शात, शित
		सिव् (जाना, सूखना)	स्यूत
कृश् (निर्बल होना)	कृश	ह्लाद् (प्रसन्न होना)	ह्लन्न
क्षीव् (मत्त होना)	क्षीब	श्रा (पकाना) (श्रा + णिच्-श्रप्)	शृत (पकाया हुआ) (जब यह क्षीर या हवि का विशेषण होगा)। अन्यत्र श्राण, श्रपित
क्नूय् (शब्द करना)	क्नूत		
क्ष्माय् (हिलाना)	क्ष्मात		
क्षै (कृश होना)	क्षाम		

१ अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते॥ (महाभाष्य)

धातु	क्त प्र० रू०
गै (गाना)	गीत
छो (तोड़ना)	छात, छित
ज्यो (निर्देश देना)	जीत
दो (बाटना)	दित
दृह् (दृढ़ होना)	दृढ
दृह् (अन्य अर्थों में)	दृहित, दृहित
धा (रखना)	हित
धाव् (स्वच्छ करना)	धौत, धावित
धे (पीना, चूसना)	धीत
पच् (पकाना)	पक्व
पा (पीना)	पीत
पूय् (दुर्गन्धित होना)	पूत
फल् (फैलना)	फुल्ल
स्तम्भ् (प्रति या नि +)	प्रतिस्तब्ध, निस्तब्ध (यहाँ पर स् का ष् नहीं होता है)
स्फाय् (बढ़ना)	स्फीत
स्त्यै (प्र +)	प्रस्तीत, प्रस्तीम (शब्द किया)
स्ना (नि +)	निष्णात (चतुर)
स्ना (नदी +)	नदीष्ण (चतुर, अनुभवी, शाब्दिक अर्थ है—नदी के गहरे के स्थानों को जानने वाला)। अन्य अर्थों में— निस्नात, नदीस्नात।

७०२ सु और यज् धातुओं से त के तुल्य ही वन् प्रत्यय कर्तृवाच्य में लगता है। सुत्वन् (जिसने सोमरस निकाला है), यज्वन् (जिसने यज्ञ किया है)। जृ धातु से पूर्वोक्त अर्थ में विकल्प से अन् होता है। जीर्ण या जरन् (जो वृद्ध हो गया है)। जीर्णवन् भी रूप बनता है।

७०३ क्त (त या न) प्रत्ययान्त के रूप अकारान्त शब्दों के तुल्य तीनों लिंगों में चलेंगे।

क्त प्रत्यय इन स्थानों पर कर्मवाच्य में नहीं होता है —

७०४ बैठना, जाना और खाना अर्थ वाली धातुओं से क्त (न) प्रत्यय अधिकरण (स्थान) अर्थ को बताता है।[1] इदं मुकुन्दस्य आसितम् (यह मुकुन्द के बैठने का स्थान है), इदं यातं रमापतेः (यह रमा के पति विष्णु के जाने का मार्ग है), भुक्तम् एतद् अनन्तस्य (यह अनन्त के भोजन करने का स्थान है)।

१. क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः (३-४-७६)।

७०५ इन स्थानों पर क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य मे होता है—गमन-अर्थ वाली धातुओं, अकर्मक धातुओं, श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस् (रहना), जन्, रुह् और जॄ धातुओं से। गतोऽहं मद्रपुरम् (मैं मद्रास गया था), ग्लानो बालः (बालक क्षीण हो गया है), लक्ष्मीम् आश्लिष्टो हरिः (हरि ने लक्ष्मी का आलिंगन किया), शेषम् अधिशयित (शेषनाग पर सोया), वैकुण्ठम् अधिष्ठित (वैकुण्ठ मे रहा), शिवमुपासित (शिव की उपासना की), हरिदिनम् उपोषित (हरि के प्रिय दिन उसने उपवास किया), रामम् अनुजात (राम के बाद उत्पन्न हुआ), गरुडम् आरूढ (गरुड पर बैठा), विश्वम् अनुजीर्ण (संसार के बाद मे वृद्ध हुआ)।

७०६ क्त (त) प्रत्यय कहीं कहीं पर भाववाचक सज्ञा शब्द बनाते हैं। जैसे—जल्पितम् (भाषण), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना)। इसी प्रकार स्थितम्, गतम् आदि। देखो भट्टि० ७-१२५।

७०७ इन धातुओं से वर्तमान अर्थ मे क्त (त) प्रत्यय होता है—मति (सोचना, चाहना), बुद्धि (जानना) और पूजा अर्थ वाली धातुओं से तथा इन्धु, भी आदि धातुओं से। राज्ञ मत (राजा के द्वारा सम्मानित है), मता पूजित, इद्ध अग्नि (अग्नि जलाई गई है)। इसी प्रकार भीत आदि।

(घ) क्तवतु (तवत्) प्रत्यय (Past active Participles)

७०८ क्त (त या न) प्रत्ययान्त रूपो मे अन्त मे वत् लगा देने से क्तवतु (तवत्) प्रत्ययान्त रूप बन जाते हैं।

धातु	क्त प्र० रू०	क्तवतु प्र० रू०
भू (होना)	भूत	भूतवत् (हुआ)
कृ (करना)	कृत	कृतवत् (किया)
कॄ (फैलाना)	कीर्ण	कीर्णवत् (फैलाया)
छिद् (काटना)	छिन्न	छिन्नवत् (काटा)
	इत्यादि।	

(ङ) लृट् के स्थानीय प्रत्यय (Participles of Future tense)

७०९ कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य मे लृट् के स्थानीय कृत् प्रत्ययान्त शब्द इस प्रकार बनाए जाते हैं—इसके लिए लृट् लकार का प्र० पु० एक० का रूप लिया जाता है। परस्मै० मे अन्तिम इ हटा दिया जाता है तथा आत्मनेपद और कर्मवाच्य मे ते के स्थान पर मान लगा देते हैं। जैसे —

धातु	पर०[1]	आत्मने०	कर्मवाच्य	
दा	दास्यन्	दास्यमान	दास्यमान,	दायिष्यमाण
भू	भविष्यत्	भविष्यमाण	भविष्यमाण,	भाविष्यमाण
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण,	चोरिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्	संगमिष्यमाण	गमिष्यमाण	
जि	जेष्यत्	विजेष्यमाण	जेष्यमाण,	जायिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण,	कारिष्यमाण
श्रु	श्रोष्यत्	संश्रोष्यमाण	श्रोष्यमाण,	श्राविष्यमाण
एध् (आ०)	—	एधिष्यमाण	एधिष्यमाण	
तुद्	तोत्स्यत्	तोत्स्यमान	तोत्स्यमान	

इसी प्रकार पठ् + सन्—पिपठिष् पिपठिषिष्यत्, पिपठिषिष्यमाण आदि।

भू + यङ—बोभू—बोभविष्यत्, बोभविष्यमाण आदि।

७१०. तवत् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप त् अन्त वाले शब्दों के तुल्य चलेंगे और मान अन्त वालों के अकारान्त शब्दों के तुल्य।

(च) तव्य, अनीय आदि प्रत्यय (Potential Participles)

७११ धातुओं या प्रत्ययान्त धातुओं से तव्य, अनीय या कहीं कहीं एलिम प्रत्यय होते है।[1] ये प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य में और अकर्मक धातुओं से भाववाच्य में होते हैं। ये शब्द योग्य आदि अर्थ बताते हुए विशेषण के तुल्य भी प्रयुक्त होते है।

(१) तव्य और अनीय प्रत्यय

७१२ धातुओं या प्रत्ययान्त धातुओं से 'योग्य या होना चाहिए' अर्थ में तव्य और अनीय प्रत्यय होते है। इन प्रत्ययों के बाद में होने पर धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के ह्रस्व स्वरों का गुण हो जाता है। तव्य से पहले सेट् धातुओं में नित्य इ लगेगा, वेट् धातुओं में विकल्प से और अनिट् धातुओं में सर्वथा इ नहीं लगेगा। अनीय से पहले धातु की उपधा के ऋ को अर् होगा। र नहीं होगा, जैसा कि कहीं कहीं पर होता है। जैसे—

धातु	तव्य	अनीय	अर्थ
दा	दातव्य	दानीय	देने योग्य

१. तव्यत्तव्यानीयरः (३-१-९६)। केलिमर उपसंख्यानम् (वा०)।

धातु	तव्य	अनीय	अर्थ
चि	चेतव्य	चयनीय	संग्रह के योग्य
नी	नेतव्य	नयनीय	ले जाने योग्य
श्रु	श्रोतव्य	श्रवणीय	सुनने योग्य
भू	भवितव्य	भवनीय	होने योग्य
कृ	कर्तव्य	करणीय	करने योग्य
बुध्	बोधितव्य, बोद्धव्य	बोधनीय	जानने योग्य
मुच्	मोक्तव्य	मोचनीय	छोड़ने योग्य
मृज्	मार्ष्टव्य[1]	मार्जनीय	स्वच्छ करने योग्य
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	बनाने योग्य
भ्रस्ज्	भर्ष्टव्य, भ्रष्टव्य	भर्जनीय, भ्रज्जनीय	भूनने योग्य
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	तोड़ने योग्य
निन्द्	निन्दितव्य	निन्दनीय	निन्दा के योग्य
गुह्	गोढव्य, गूहितव्य[2]	गूहनीय	छिपाने योग्य

७१२ अनीय बाद में होने पर धातुओं में ये कार्य होते है—चुरादि० और णिजन्त के अय का लोप हो जाता है, यङन्त रूपों में यदि य से पहले कोई स्वर है तो य के अ का लोप होगा और यदि य से पहले कोई व्यंजन है तो पूरे य का लोप होगा । सन्-प्रत्ययान्त अंग में कोई परिवर्तन नहीं होता है । जैसे—

धातु	अनीय	अर्थ
कथ्	कथनीय	कहने योग्य
चुर्	चोरणीय	चुराने योग्य
बोधय (बुध्+णिच्)	बोधनीय	बताने योग्य
बोबुध्य (बुध्+यङ्)	बोबुधनीय	बार-बार जानने योग्य
बोभूय (भू+यङ्)	बोभूयनीय	बार-बार होने योग्य
बुबोधिष् (बुध्+सन्)	बुबोधिषणीय	जिज्ञासा के योग्य

---

१. मृज् के ऋ को आर् हो जाता है ।
२. अजादि पित् (सबल) प्रत्यय बाद में होने पर गुह् के उ को गुण न होकर दीर्घ हो जाता है ।

(२) य (यत्, क्यप्, ण्यत्) प्रत्यय

यत् (य) प्रत्यय

७१४ अजन्त धातुओं से 'योग्य या होना चाहिए' अर्थ में यत् (य) प्रत्यय होता है।[1] इससे पूर्व धातु के स्वर को गुण होता है तथा अन्तिम आ (ए, ऐ और ओ का स्थानीय आ भी) को ए होता है।

दा	देय	देने योग्य
धे	धेय	चूसने योग्य
गै	गेय	गाने योग्य
छो	छेय	काटने योग्य
चि	चेय	चुनने योग्य
नी	नेय	ले जाने योग्य

७१५ जिन धातुओं की उपधा में अ है और अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण है, उनसे य प्रत्यय होता है। शप्–शप्य, लभ्–लभ्य, रम्–रम्य, आदि।

(क) लभ् से पहले आ उपसर्ग होगा तो ल और भ् के बीच में न् (न् का म् हो जाता है) लगता है। आलभ्–आलम्भ्य (हिंसा के योग्य)। उप+लभ् में भी प्रशंसा अर्थ में बीच में न् लगता है। उपलम्भ्य साधु (प्रशंसा के योग्य साधु)। अन्यत्र–उपलभ्य धनम् (धन प्राप्त करना चाहिए)।

७१६ इन धातुओं से य प्रत्यय होता है—तक् (हँसी उड़ाना), शस् (हिंसा करना), चत् (पूछना), यत् (प्रयत्न करना), जन्, शक् और सह्। तक्यम् (हँसी उड़ाने के योग्य), शस्य (हिंसा के योग्य), आदि।

७१७ यदि कोई उपसर्ग पहले न हो तो गद्, मद्, चर् और यम् धातुओं से य प्रत्यय होता है। गद्-गद्य (कहने योग्य), मद्य, चर्य, यम्य। आ+चर् से आचार्य अर्थ में ण्यत् (य) प्रत्यय होता है, अन्य अर्थों में य प्रत्यय होता है। आचर्यो देशः (घूमने के योग्य देश)। अन्यत्र—आचार्य (आचार्य)।

७१८ इन धातुओं से इन विशेष अर्थों में य प्रत्यय होता है—वद् से निन्दनीय अर्थ में, पण् से विक्रेय अर्थ में और वृ (९ आ०) से अप्रतिबन्ध अर्थ में। जैसे—अवद्य पापम् (पाप निन्दनीय है)। अन्यत्र—अनुद्य (अन्+वद्+क्यप् अर्थात् य) गुरुनाम (आदरणीय होने के कारण गुरु का नाम उच्चारण नहीं

---

१. अचो यत् (३-१-९७)।

करना चाहिए)। पण्या गौ (गाय बेचने के योग्य है)। अन्यत्र पाण्य (पण् + ण्यत् अर्थात् य) ब्राह्मण (प्रशसनीय ब्राह्मण)। वर्य (चुने जाने योग्य या वरण किए जाने योग्य)। जैसे—शतेन वर्या कन्या (सैकड़ो के द्वारा अर्थात् किसी भी व्यक्ति के द्वारा वरण की जाने योग्य कन्या)। अन्यत्र वृत्या (वृ + क्यप् अर्थात् य) कन्या (किसी एक व्यक्ति से विवाह के योग्य कन्या)।

७१९ वह् धातु से ढोने के साधन अर्थ मे और ऋ धातु मे स्वामी और वैश्य अर्थ में य प्रत्यय होता है। वह्यम् (गाडी)। अन्यत्र—वाह्य (वह् + ण्यत्, ढोने योग्य)। अर्य (स्वामी या वैश्य)। अन्यत्र आर्य (ऋ + ण्यत्, आदरणीय)।

७२० उप + सृ से गर्भाधान के योग्य अर्थ में य प्रत्यय होता है। उपसर्या गौ (गर्भाधानार्थं वृषभेण उपगन्तु योग्येत्यर्थ, मि० कौ०)। अन्यत्र उपसार्या (उपसृ + ण्यत्) काशी (प्राप्तव्या इत्यर्थ, मि० कौ०)।

७२१ नञ् (अ) पूर्वक जॄ धातु से य प्रत्यय होकर अजर्य रूप बनता है। यह सगतम् का विशेषण होना चाहिए। अजर्यं सगतम् (ऐसी मित्रता जो कभी पुरानी नही होती है)। तु० करो—तेन सगतमार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम् (भट्टि० ६-५३)। मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध (रघु० १८-७)। इस श्लोक मे सगतम् का अध्याहार करना चाहिए। जहाँ पर यह सगतम् का विशेषण नही होगा, वहाँ पर तृ प्रत्यय लग कर अजरिता रूप बनेगा। अजरिता कम्बल।

७२२ हन् धातु से विकल्प से यत् (य) प्रत्यय होता है। य प्रत्यय होने पर हन् को वध् आदेश हो जाता है। हन् + य = वध्य (हिंसा के योग्य)। इससे विकल्प मे ण्यत् (य) प्रत्यय भी होता है और उसके होने पर हन् को घात् हो जाता है। घात्य।

क्यप् (य) प्रत्यय

७२३ 'योग्य या चाहिए' अर्थ मे ही इन धातुओं से क्यप् (य) प्रत्यय होता है—इ (१, २ प०, जाना), स्तु, शास्, वृ (५ उ०), दृ, जुष्, उपधा म ऋ वाली धातुएँ, कृप् और चृत् को छोड कर। ह्रस्व स्वर अन्त वाली धातुओं के बाद य से पहले त् और लग जाता है। जैसे—इत्य (जिसके पास जाना चाहिए), स्तुत्य (स्तुति के योग्य), शास्-शिष्य (उपदेश के योग्य), वृ-वृत्य, दृ-आदृत्य, जुष् जुष्य (सेवा के योग्य), वृत्-वृत्य, वृध्-वृध्य (बढाने के योग्य, जैसे धनादि)।

सूर्य (सृ + क्यप् या सृ ६ प० प्रेरणा देना + क्यप्)। सरति आकाशे। कर्तरि क्यप्, निपातनाद् उत्वम्, यद्वा षू प्रेरणे तुदादि । सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयति[1] क्यपा रुट्। मृषोद्यम् (असत्य) (मृषा + वद्+क्यप्)। रोचते इति रुच्य । कुप्यम् (कोई घटिया धातु) (गुप् +क्यप्),गुपेरादे कुत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्न धन कुप्यम्। तु० करो—किराता० १-३५, मनु० ७-९६। अन्य अर्थों में गुप् धातु से ण्यत् होगा। गोप्यम् (छिपाने योग्य)। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्या कर्म-कर्तरि। शुद्धे तु कर्मणि कृष्टपाक्या (जुती हुई भूमि में उत्पन्न होने वाला)। न व्ययते अव्यथ्य (कष्ट अनुभव न करने वाला)।

७३० (क) निम्नलिखित दो शब्द, जो कि नदियों के नाम हैं, क्यप् प्रत्यय के द्वारा बनते हैं। भिनत्ति कूल भिद्य (भिद् +क्यप्), उज्झति उदकम् उद्ध्य (उज्झ् + क्यप्, उज्झ् को उद्ध् हो जाता है)। देखो रघु० ११ ८। अन्यत्र इनमें तृ प्रत्यय होता है। भेत्ता, उज्झिता।

(ख) इसी प्रकार पुष्य और सिध्य शब्द पुष् और सिध् धातु से क्यप् प्रत्यय करके बनते हैं। ये दोनो पुष्य नक्षत्र के नाम हैं। पुष्यन्ति अस्मिन्नर्था पुष्य । सिध्यन्ति अस्मिन् सिध्य ।

७३१ वि+पू, वि+नी और जि धातु से क्यप् प्रत्यय होता है, यदि इनका क्रमश सम्बन्ध मुञ्ज, कल्क और हलि शब्दों से हो। विपूयो मुञ्ज (रज्ज्वादिकरणाय शोधयितव्य इत्यर्थ , सि० कौ०, मूज घास रस्सी आदि बनाने के लिए साफ करनी चाहिए)। विनीय कल्क (पाप नष्ट करना चाहिए)। जित्यो हलि (हल जो कि अधिक बल से खींचा जा सके, बलेन कृष्टव्य)। अन्य अर्थों में इनसे यत् प्रत्यय होता है। विपव्यम्, विनेयम्, जेयम्।

७३२ निम्नलिखित शब्द ग्रह् धातु से क्यप् प्रत्यय करके बनते हैं—अवगृह्यम्, प्रगृह्य पदम् (अवग्रह और प्रगृह्य ये दोनो व्याकरण के पारिभाषिक शब्द है), गृह्यका शुका (पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थ , सि० कौ०, तोते आदि जो कि पीजरे आदि में बन्धन के द्वारा परतन्त्र बना लिए गए है)। ग्रामगृह्या सेना (गाँव से बाहर स्थित सेना) । आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्य (तत्पक्षाश्रित इत्यर्थ , सि० कौ०, आर्यों का पक्ष लेने वाला)। देखो रघु० २ ४३।

---

१. तु० करो—मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो० (ऋग्० ३-५९-१)।

७३३ कृ और वृष् धातुओं से क्यप् और ण्यत् दोनों प्रत्यय होते हैं। कृत्य-कार्य, वृष्य-वर्ष्य।

७३४ युज् धातु से 'रथादि में जुतने योग्य' अर्थ में क्यप् प्रत्यय होता है और अन्तिम ज् को ग् हो जाता है। युग्य गौ (जूए में जुतने योग्य बैल)। अन्य अर्थों में युज् से ण्यत् होता है। योज्य।

ण्यत् प्रत्यय

७३५ ऋकारान्त और हलन्त धातुओं में 'योग्य या चाहिए' अर्थ में ण्यत् (य) प्रत्यय होता है। ण्यत् से पहले धातु के च् को क् और ज् को ग् होता है। धातु के अन्तिम स्वर और उपधा के अ को वृद्धि हो जाती है। उपधा के अन्य स्वरों का प्राय गुण हो जाता है।

कृ–कार्यम् (करने योग्य), धृ–धार्यम् (धारण करने योग्य), आदि। वच्–वाक्यम् (क्रम-ग्रह्–ग्राह्यम्, दभ्–दाम्यम् (प्रेरणा देने योग्य), आदि। वच्–वाक्यम् (क्रम-बद्ध बोलने योग्य, वाक्य), पच्–पाक्यम् (पकाने योग्य), मृज्–मार्ग्यम् (साफ करने के योग्य), आदि।

७३६ अमा+वस् से ण्यत् (य) प्रत्यय होता है और वस् की उपधा के अ को विकल्प से आ होता है। अमा सह वसतोऽस्या चन्द्रार्कौ अमावस्या, अमावास्या (अमावास्या, जिस दिन सूर्य और चन्द्रमा एक साथ या एक स्थान पर रहते हैं)।

(क) पाणि शब्द या समव उपसर्ग पहले होने पर सृज् धातु से ण्यत् होता है। पाणिभ्या सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जु। इसी प्रकार समवसर्ग्या।

७३७ (क) ण्यत् होने पर इन धातुओं के च् या ज् को क् या ग् नहीं होता है—यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच्, त्यज् और पच्। याज्यम्, याच्यम्, रोच्यम्, प्रवाच्यम् (ग्रन्थविशेष), अर्च्यम्, त्याज्यम्, पाच्यम्।

(ख) ण्यत् बाद में होने पर वच् के च् को क् नहीं होता है वक्तव्य अर्थ में। वाच्यम् (कहने योग्य, वक्तव्य)। अन्यत्र–वाक्यम् (वाक्य)।

(ग) वञ्च् धातु के च् को क् नहीं होता है, जाना अर्थ में। वञ्च्यम्। मोड़ना या टेढ़ा करना अर्थ में इसके च् को क् होगा। वङ्क्यं काष्ठम्।

(घ) प्र और नि उपसर्गों के बाद शक्य (संभव या करना संभव) अर्थ में युज् धातु से ण्यत् प्रत्यय होता है और इसके ज् को ग् नहीं होता है। प्रयोक्तु शक्यः प्रयोज्य, नियोक्तु शक्य नियोज्य भृत्य।

(ङ) भुज् धातु का अन्न अर्थ मे भोज्य रूप बनता है और उपभोग के योग्य अर्थ में भोग्य।

७३८ ह्रस्व और दीर्घ उकारान्त धातुओ से 'अवश्य कर्तव्य' अर्थ मे ण्यत् (य) प्रत्यय होना है। लू–लाव्यम् (अवश्य काटे जाने योग्य), पाव्यम् (अवश्य स्वच्छ करने योग्य), आ+यू–आसाव्यम्, यु (मिलाना)–याव्यम्, आदि।

(क) इन धातुओ से भी अवश्य कर्तव्य अर्थ मे ण्यत् होता है––वप्, रप्, लप्, त्रप् और चम्। वाप्यम् (अवश्य बोने योग्य), राप्यम् (अवश्य स्पष्ट कहने योग्य), लाप्यम्, त्राप्यम्, चाम्यम्।

७३९ निम्नलिखित शब्द ण्यत् (य) प्रत्यय के द्वारा अनियमित रूप से बनते है––आ+नी–आनाय्य (गार्हपत्य अर्थात् दक्षिणाग्नि से लाने योग्य) (दक्षिणाग्निविशेप एवेदम्। स हि गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च सततमप्रज्वलनात्, सि० कौ०)। अन्यत्र–आनेय (लाने योग्य घड़ा आदि)। प्र+नी–प्रणाय्यः चोर (प्रीत्यनर्ह इत्यर्थ, सि० कौ०, सासारिक भोगो से प्रेम के अयोग्य), प्रणाय्य अन्तेवासी (विरक्त इत्यर्थ)। अन्य अर्थो मे प्रणेय।

७४० ये शब्द भी निपातन से बनते है––मीयते अनेन इति पाय्यम् (मा धातु से, एक नाप), सम्यङ् नीयते होमार्थम् अग्नि प्रति इति सान्नाय्यम् (सम्+नी+ण्यत्) हविविशेष (एक प्रकार की हवि) (देखो शिशु० ११-८१), निचीयतेऽस्मिन् धान्यादिक निकाय्य निवास (नि+चि+ण्यत्), धीयतेऽनया समिदिति धाय्या ऋक् (धा+ण्यत्), कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम ––कुण्डपाय्य क्रतु, सचीयतेऽसौ सचाय्य (एक यज्ञ)। परिचाय्य, उपचाय्य, समूह्य (विशेष स्थान जहाँ पर यज्ञिय अग्नि रक्खी जाती है)। अन्य अर्थों मे––परिचेयम्, उपचेयम्, सवाह्यम्। चीयते असौ चित्य अग्नि, अग्ने चयनम् अग्निचित्या।

७४१ निम्नलिखित धातुओ से कर्तृवाच्य मे ये प्रत्यय होते है––भू और गै से यत्, वच् और स्था से अनीय, जन् प्लु और पत् से ण्यत्। भवतीति भव्य (भव्यम् अनेन वा), गायतीति गेय (गाने वाला) (गेय साम अनेन यह भी बनता है), प्रवचनीय (वक्ता), उपस्थानीय (पास मे खड़ा रहने वाला)। जन्य, प्लाव्य, पात्य।

(३) केलिमर् (एलिम) प्रत्यय

७४२ योग्य या चाहिए अर्थ मे कुछ सकर्मक धातुओ से केलिमर् (एलिम)

प्रत्यय लगता है। पच्–पचेलिम (पकाने योग्य)। जैसे–पचेलिमा माषा, भिद्–भिदेलिमा सरला (काटने के योग्य चीड़ के पेड़), आदि।

७४३ एलिम-प्रत्ययान्त के रूप तीनों लिंगों में अकारान्त शब्दों के तुल्य चलेंगे।

२. अव्यय कृदन्त प्रत्यय (Indeclinable Participles)

(क) क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय

७४४ अव्यय कृदन्त रूप दो प्रकार से बनाए जाते हैं––(१) मूल धातु के साथ क्त्वा (त्वा) प्रत्यय करके (२) उपसर्ग या उपसर्ग के तुल्य प्रयोग में आने वाले शब्दों के साथ समास होने पर धातु से ल्यप् (य) प्रत्यय करके। गम्-गत्वा (जाकर) अनु+भू-अनुभूय (अनुभव करके) इत्यादि।

१ क्त्वा प्रत्यय से बने अव्यय कृदन्त रूप

७४५ धातु से पहले कोई उपसर्ग या उपसर्गवत् प्रयुक्त होने वाला शब्द नहीं होता तो धातु या प्रत्ययान्त धातु से क्त्वा (त्वा) प्रत्यय लगाकर अव्यय कृदन्त रूप बनता है। क्त्वा प्रत्यय के होने पर भी वे सभी कार्य प्रायः होते हैं, जो क्त (त) प्रत्यय करने पर होते हैं। क्त्वा प्रत्ययान्त रूप बनाने का सरल प्रकार यह है कि क्त प्रत्ययान्त रूपों में से अन्तिम त या न को हटाकर त्वा लगा देने से त्वा-प्रत्ययान्त रूप बन जाता है। जैसे––

धातु	क्त प्र० रूप	त्वा प्र० रूप
ज्ञा (जानना)	ज्ञात	ज्ञात्वा
दा (देना)	दत्त	दत्त्वा
स्था (खड़ा होना)	स्थित	स्थित्वा
हा (जाना)	हान	हात्वा
हा (छोड़ना)	हीन	हित्वा
हृ (हरना)	हृत	हृत्वा
जि (जीतना)	जित	जित्वा
पू (पवित्र करना)	पवित, पूत	पवित्वा, पूत्वा
भू (होना)	भूत	भूत्वा
कृ (करना)	कृत	कृत्वा
तॄ (पार करना)	तीर्ण	तीर्त्वा
पॄ (पूरा करना)	पूर्ण	पूर्त्वा

धातु		क्त प्र० रूप	क्त्वा प्र० रूप
त्रै	(रक्षा करना)	त्रात	त्रात्वा
मुच्	(छोड़ना)	मुक्त	मुक्त्वा
अद्	(खाना)	जग्ध	जग्ध्वा
छो	(काटना)	छात, छित	छात्वा, छित्वा
दृश्	(देखना)	दृष्ट	दृष्ट्वा
क्षुध्	(भूखा होना)[१]	क्षुधित	क्षुधित्वा, क्षोधित्वा
वस्	(रहना)[१]	उषित	उषित्वा
वच्	(कहना)	उक्त	उक्त्वा
वह्	(ढोना)	ऊढ	ऊढ्वा
यज्	(यज्ञ करना)	इष्ट	इष्ट्वा
वप्	(बोना)	उप्त	उप्त्वा
बन्ध्	(बाँधना)	बद्ध	बद्ध्वा
बुध्	(जानना)	बुद्ध	बुद्ध्वा
शास्	(उपदेश देना)	शिष्ट	शिष्ट्वा

७४६ जहाँ पर त्वा से पहले इ लगता है, वहाँ पर धातु के अन्तिम स्वर को गुण हो जाता है। शी-शयित्वा, कु-कवित्वा, जागृ-जागरित्वा, आदि।

(क) तृष्, मृष्, कृष् और ऋत् धातुओं को गुण विकल्प से होता है। तृषित्वा-तर्षित्वा, मृषित्वा मर्षित्वा, कृषित्वा-कर्षित्वा, ऋत्-ऋतित्वा-अर्तित्वा।

(ख) इन धातुओं में गुण नहीं होता है--मृड्, मृद्, गुध्, कुष्, मुष् और क्लिश्, नियम ४६३ में दी हुई धातुएँ और विज् (रुधादि०)। मृड्-मृडित्वा (आनन्द पाकर), मृद्-मृदित्वा, गुध्-गुधित्वा (ढककर), कुषित्वा, मुषित्वा, क्लिश्-क्लिशित्वा-क्लिष्ट्वा, कुट्-कुटित्वा, विज्-विजित्वा, आदि।

७४७ इन धातुओं में त्वा से पहले विकल्प से इ लगता है--वेट् (विकल्प से इ वाली) धातुओं से, नियम ४७२ में उल्लिखित पाँच धातुओं से और अन्त में उ इत्संज्ञक धातुओं से।[२] (व्रश्च् धातु में इ नित्य लगता है। स्वृ सू और धू, धातुओं में इ सर्वथा नहीं लगता है)। जैसे--

---

१. देखो नि० ६८४ (ग) और ७५०।
२. उ इत्संज्ञक मुख्य धातुएँ ये हैं:--

धातु	क्त्वा प्र० रूप
मृज् (स्वच्छ करना)	मार्जित्वा, मृष्ट्वा
गाह् (प्रवेश करना)	गाहित्वा, गाढ्वा
गुह् (छिपाना)	गुहित्वा, गूहित्वा, गूढ्वा
गुप् (रक्षा करना)	गोपायित्वा, गोपित्वा, गुपित्वा, गुप्त्वा
इष् (चाहना)	एषित्वा, इष्ट्वा
सह् (सहन करना)	सहित्वा, सोढ्वा
लुभ् (लोभ करना)	लोभित्वा, लुब्ध्वा
अञ्च् (जाना)	अक्त्वा (जाकर)
अञ्च् (पूजा करना)	अञ्चित्वा (पूजा करके)
क्षण् (मारना)	क्षत्वा, क्षणित्वा
खन् (खोदना)	खनित्वा, खात्वा
तन् (फैलाना)	तनित्वा, तत्वा

अच् (१ उ०), अञ्च् (१, १० उ०), अस् (४ प०), क्रण्, क्रम् (५
प०, १ आ०), कुज्, क्रम् (१ प०), क्लम् (४ प०), क्षण् (८ उ०),
क्षिण् (८ उ०), क्षिव् (१, ४ प०), क्षीव् (१ प०), क्ष्वेद् (१ प०),
खन् (१ उ०), गृध् (४ प०), ग्रस् (१ आ०), ग्रुच् (१ प०), ग्लुच्
(१ प०), ग्लुञ्च् (१ प०), घृण् (८ उ०), घृष् (१ प०), घञ्च् (१
प०), चम् (१, ५ प०), छृद् (७, ५ आ०), जभ् (१ प०), जस् (४,
प०, १० उ०), तञ्च् (१ प०), तन् (८ उ०, १ उ०, १० प०),
तृण् (८ उ०), दम्भ् (५ प०), दम् (४ प०), दिव् (४ प०, १० आ०),
धाव् (१ उ०), ध्वस् (१ आ०), पूष् (१ प०), प्लुष् (१ प०), बस्
(४ प०), भृश् (४ प०), भ्रम (१, ४ प०), भ्रंश् (१ आ०, ४ प०),
भ्रस् (१ आ०), मन् (८ आ०), मृष् (१ प०), म्रुच्, म्रुञ्च्, म्लुच्,
म्लुञ्च् (१ प०), यस्, मुष्, रुष्, लुप् (ये सभी ४ प०), वञ्च् (१ उ०),
वन् (८ प०), वस् (४ प०), विष् (१ प०), वृत् (१, ४ आ०, १० उ०),
वृध् (१ आ०, १० उ०), वृष् (१ प०), शम् (४ उ०), शस् (१ प०),
दास् (१ प०), शास् (१ प०, २ उ०), शृध् (१ उ०), श्रम्भ् (१ प०),
श्रम् (४ प०), श्रिष् (१, ४ प०), श्लिष् (१ प०), सन् (१ प०, ८ उ०),
ष्ठिव् (१, ४ प०), सिध् (१, ४ प०), स्कम्भ्, स्तम्भ् (४, ९ प०), स्यम्
(१ प०), स्रंस् (१ आ०), स्रिव् (४ प०), हृष् (१ प०)।

धातु	क्त्वा प्र० रूप
दम् (मयत करना)	दमित्वा, दान्त्वा
शम् (शान्त करना)	शमित्वा, शान्त्वा
क्रम् (जाना आदि)	क्रमित्वा, क्रन्त्वा, क्रान्त्वा[1]
वस् (४ प०, दृढ रहना)	वसित्वा, वस्त्वा
वृत् (१ आ० होना)	वर्तित्वा, वृत्त्वा, इत्यादि ।

किन्तु--व्रश्च् व्रश्चित्वा, स्वृ-स्वृत्वा, सू सूत्वा, धू धूत्वा होंगे ।

७४८ इन धातुओं में क्त्वा से पहले इ लगता है--श्वि, डी, शी, पू और जृ, हलन्त सेट् धातुएँ, चुरादिगणी तथा अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ । क्त्वा से पहले चुरादिगणी धातुओं का अय् लुप्त नहीं होता है । श्वि-श्वयित्वा, डी-डयित्वा, जृ-जरित्वा-जरीत्वा, नृत्-नर्तित्वा, व्यच् विचित्वा, लज् लजित्वा, जीव्-जीवित्वा आदि । चुर्-चोरयित्वा, कथ्-कथयित्वा । बोधय (बुध्+णिच्)-बोधयित्वा, बुबोधिष् (बुध्+सन्)-बुबोधिषित्वा, बुध्+यङ-बुबोध्य-बुबोधित्वा, आदि ।

७४९ (क) स्कन्द् और स्यन्द् के न् का लोप नहीं होता है ।

स्कन्द्--स्कन्त्वा, स्यन्द्--स्यन्त्वा, स्यन्दित्वा ।

(ख) इन धातुओं की उपधा के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है---थ् या फ् अन्त वाली धातुएँ, वञ्च् (घूमना, धोखा देना) और लुञ्च् (नोचना) । ग्रन्थ्-ग्रन्थित्वा, ग्रथित्वा, गुम्फ्-गुम्फित्वा, गुफित्वा, वञ्च्--वञ्चित्वा, वचित्वा, वक्त्वा, लुञ्च्-लुञ्चित्वा, लुचित्वा ।

(ग) क्त्वा से पहले इन धातुओं के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है-- ज् अन्त वाली भञ्ज्, रञ्ज्, मञ्ज्, स्वञ्ज् आदि और तञ्च् धातु। भञ्ज्-भङ्क्त्वा, भक्त्वा, रञ्ज्--रङ्क्त्वा, रक्त्वा, अञ्ज्--अञ्जित्वा, अङ्क्त्वा, अक्त्वा

(घ) मस्ज् और नश् धातुओं में विकल्प से बीच में न् लगता है । मक्त्वा, मङ्क्त्वा, नशित्वा, नष्ट्वा, नष्ट्वा ।

७५० क्त्वा से पहले इ लगने पर हलादि और हलन्त (य्, व् को छोड कर) धातुओं की उपधा के इ और उ को विकल्प से गुण होता है । लिख्-लिखित्वा, लेखित्वा, विद्-विदित्वा, वेदित्वा (वित्त्वा भी), लुभ् (६ प०)-

१. क्त्वा से पहले अ को विकल्प से आ हो जाता है ।

लुभित्वा, लोभित्वा, द्युत्–द्युतित्वा, द्योतित्वा, रिप्–रिपित्वा, रेपित्वा, ग्लिष्ट्वा।
इसी प्रकार रप् के रूप होंगे। अन्यत्र–दिव्–देवित्वा, द्युत्वा।

२. ल्यप्-प्रत्ययान्त अव्यय कृदन्त

७५१ एक या अनेक उपसर्गो के साथ अथवा उपसर्गो के तुल्य प्रयुक्त होने वाले शब्दों के साथ धातु का समास होने पर क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (य) प्रत्यय धातु के अन्त मे लगता है। ह्रस्व स्वरान्त धातुओ के बाद य को त्य हो जाता है। (यदि धातु का स्वर उपसर्ग के साथ सन्धि होकर दीर्घ हो जाएगा, तब भी य को त्य हो जाएगा।) जैसे—

आ+दा	आदाय	प्र+इ	प्रेत्य
निस्+चि	निश्चित्य	सम्+कृ	सत्कृत्य
परा+जि	पराजित्य	द्विधा+कृ	द्विधाकृत्य
वि+नी	विनीय	निस्+भिद्	निर्भिद्य
अनु+भू	अनुभूय	उत्+प्लु	उत्प्लुत्य
अधि+इ	अधीत्य	इत्यादि।	

७५२ नियम ३९४, ३९५, ४९९, ५०२ और ५८७ ल्यप् (य) प्रत्यय करने पर भी लगते है —

प्र+दिव्	प्रदीव्य	प्र+वच्	प्रोच्य
अव+कॄ	अवकीर्य	प्र+वस्	प्रोष्य
आ+पॄ	आपूर्य	वि+ग्रह्	विगृह्य
नि+बन्ध्	निबध्य	आ+ह्वे	आहूय
अनु+मि, मी, मा, मे[1]	अनुमाय	उप+दी	उपदाय
परि+त्रै	परित्राय	वि+ली	विलीय, विलाय
आ+दे	आदाय		इत्यादि।

७५३ इन धातुओ के अन्तिम अनुनासिक का नित्य लोप हो जाता है— तनादि गण (गण ८) की धातुएँ (सन् को छोडकर), मन्, वन् और हन्। गम्, नम्, यम् और रम् के न् का लोप विकल्प से होता है। वि+तन्—वितत्य, अव+मन्—अवमत्य, नि+यम्–नियम्य, नियत्य, वि+रम्–विरम्य, विरत्य, प्र+नम्–प्रणम्य, प्रणत्य, इत्यादि।

[1] मे के ए को विकल्प से इ हो जाता है। अत अनुमित्य भी होता है।

धातु	क्त्वा प्र० रूप
दम् (संयत करना)	दमित्वा, दान्त्वा
शम् (शान्त करना)	शमित्वा, शान्त्वा
क्रम् (जाना आदि)	क्रमित्वा, क्रन्त्वा, क्रान्त्वा[1]
वस् (४ प०, दृढ़ रहना)	वसित्वा, वस्त्वा
वृत् (१ आ० होना)	वर्तित्वा, वृत्त्वा, इत्यादि ।

किन्तु--व्रश्च्-व्रश्चित्वा, स्वृ-स्वृत्वा, सू-सूत्वा, धू-धूत्वा होंगे ।

७४८ इन धातुओं में क्त्वा से पहले इ लगता है--श्वि, डी, शी, पू और जृ, हलन्त सेट् धातुएँ, चुरादिगणी तथा अन्य प्रत्ययान्त धातुएँ। क्त्वा से पहले चुरादिगणी धातुओं का अय् लुप्त नहीं होता है। श्वि-श्वयित्वा, डी-डयित्वा, जृ-जरित्वा-जरीत्वा, नृत्-नर्तित्वा, व्यच्-विचित्वा, लज्-लजित्वा, जीव्-जीवित्वा आदि। चुर्-चोरयित्वा, कथ्-कथयित्वा। बोधय (बुध्+णिच्)-बोधयित्वा, बुबोधिष् (बुध्+सन्)-बुबोधिषित्वा, बुध्+यङ-बुबोध्य-बुबोधित्वा, आदि।

७४९ (क) स्कन्द् और स्यन्द् में न् का लोप नहीं होता है।

स्कन्द्--स्कन्त्वा, स्यन्द्--स्यन्त्वा, स्यन्दित्वा ।

(ख) इन धातुओं की उपधा के अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है--थ् या फ् अन्त वाली धातुएँ, वञ्च् (घूमना, धोखा देना) और लुञ्च् (नोचना)। ग्रन्थ्-ग्रन्थित्वा, ग्रथित्वा, गुम्फ्-गुम्फित्वा, गुफित्वा, वञ्च्-वञ्चित्वा, वचित्वा, वक्त्वा, लुञ्च्-लुञ्चित्वा, लुचित्वा ।

(ग) क्त्वा से पहले इन धातुओं में अनुनासिक का विकल्प से लोप होता है--ज् अन्त वाली भञ्ज्, रञ्ज्, सञ्ज्, स्वञ्ज् आदि और तञ्च् धातु। भञ्ज्-भङ्क्त्वा, भक्त्वा, रञ्ज्-रङ्क्त्वा, रक्त्वा, अञ्ज्-अञ्जित्वा, अङ्क्त्वा, अक्त्वा।

(घ) मस्ज् और नश् धातुओं में विकल्प से बीच में न् लगता है। मक्त्वा, मङ्क्त्वा, नशित्वा, नष्ट्वा, नंष्ट्वा ।

७५० क्त्वा से पहले इ लगने पर हलादि और हलन्त (य्, व् को छोड़कर) धातुओं की उपधा के इ और उ को विकल्प से गुण होता है। लिख्-लिखित्वा, लेखित्वा; क्लिद्-क्लिदित्वा, क्लेदित्वा (क्लित्त्वा भी), क्षुभ् (९ प०)-

1. क्त्वा से पहले अ को विकल्प से आ हो जाता है।

लुभित्वा, लोभित्वा, द्युत्–द्युतित्वा, द्योतित्वा, रिष्–रिषित्वा, रेषित्वा, रिष्ट्वा। इसी प्रकार रुष् के रूप होंगे। अन्यत्र–दिव्–देवित्वा, द्युत्वा।

२. ल्यप्-प्रत्ययान्त अव्यय कृदन्त

७५१ एक या अनेक उपसर्गों के साथ अथवा उपसर्गों के तुल्य प्रयुक्त होने वाले शब्दों के साथ धातु का समास होने पर क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (य) प्रत्यय धातु के अन्त में लगता है। ह्रस्व स्वरान्त धातुओं के बाद य को त्य हो जाता है। (यदि धातु का स्वर उपसर्ग के साथ सन्धि होकर दीर्घ हो जाएगा, तब भी य को त्य हो जाएगा।) जैसे––

आ+दा	आदाय	प्र+इ	प्रेत्य
निस्+चि	निश्चित्य	सम्+कृ	सस्कृत्य
परा+जि	पराजित्य	द्विधा+कृ	द्विधाकृत्य
वि+नी	विनीय	निस्+भिद्	निर्भिद्य
अनु+भू	अनुभूय	उत्+प्लु	उत्प्लुत्य
अधि+इ	अधीत्य	इत्यादि।	

७५२ नियम ३९४, ३९५, ४५९, ५०२ और ५८७ ल्यप् (य) प्रत्यय करने पर भी लगते है ––

प्र+दिव्	प्रदीव्य	प्र+वच्	प्रोच्य
अव+कॄ	अवकीर्य	प्र+वस्	प्रोष्य
आ+पॄ	आपूर्य	वि+ग्रह्	विगृह्य
नि+बन्ध्	निबध्य	आ+ह्वे	आहूय
अनु+मि, मी, मा, मे[1]	अनुमाय	उप+दी	उपदाय
परि+त्रै	परित्राय	वि+ली	विलीय, विलाय
आ+दे	आदाय		इत्यादि।

७५३ इन धातुओं के अन्तिम अनुनासिक का नित्य लोप हो जाता है—तनादि गण (गण ८) की धातुएँ (सन् को छोडकर), मन्, वन् और हन्। गम्, नम्, यम् और रम् के न् का लोप विकल्प से होता है। वि+तन्––वितत्य, अव+मन्––अवमत्य, नि+यम्–नियम्य, नियत्य, वि+रम्–विरम्य, विरत्य, प्र+नम्–प्रणम्य, प्रणत्य, इत्यादि।

१. मे के ए को विकल्प से इ हो जाता है। अत अनुमित्य भी होता है।

७५४ खन, जन् और सन् के न् को विकल्प से आ हो जाता है। निखन्य–निखाय, प्रजन्य–प्रजाय, प्रसन्य–प्रसाय।

७५५ य बाद म होने पर क्षि के इ को दीर्घ हो जाता है और जागृ के ऋ का गुण हो जाता है। प्रक्षीय, प्रजागर्य।

• ७५६ वे, ज्या और व्ये को सम्प्रसारण नहीं होता है। प्रवाय, प्रज्याय (वृद्ध होकर), उपव्याय (ढक कर)। किन्तु सम् और परि उपसर्ग पहले होने पर व्ये को विकल्प से सम्प्रसारण होता है। परिव्याय–परिवीय, सव्याय सवीय।

७५७ नियम ४८६ म दी हुई धातुओ के आ को ई नही होता है। प्रयाय, प्रधाय, प्रमाय, आदि।

७५८ यदि उपधा म ह्रस्व स्वर है तो चुरादिगणी और णिजन्त धातुओ का अय् शेष रहता है य बाद म होने पर। यदि ऐसा नही है तो अय् का लोप हो जाएगा। चोरय–प्रचोर्य, बोधय–प्रबोध्य, वृ+णिच्–विकार्य, आ+नी+णिच्–– आनाय्य, आदि। किन्तु गण्–विगणय्य, प्रणमय्य, प्रकथय्य, प्रवेभिदय्य (बार-बार तुड़वा कर)।

७५९ आपि (आप्+णिच्) के अय् का विकल्प से लोप होता है। प्राप्य, प्रापय्य।

७६० सन्नन्त अग मे ल्यप् (य) तुरन्त बाद मे लगता है। यङन्त अग मे यदि यङ के य से पहले व्यजन है तो यङ के य का लोप हो जाएगा और यदि यङ के य से पहले स्वर है तो यङ के य के अ का ही लोप होगा। बुध्+सन्––प्रबुबोधिष्य, बुध्+यङ––प्रबोबुध्य, भू+यङ–प्रबोभूय्य, आदि।

(ख) णमुल् (अम्) प्रत्यय (अव्यय कृदन्त)

(The Adverbial Indeclinable Participle)

७६१ त्वा (कर या करके) वाले अर्थ म ही णमुल् (अम्) प्रत्यय लगा कर भी अव्यय कृदन्त शब्द बनते है। इस प्रत्यय के होने पर धातु मे या प्रत्ययान्त धातु म प्राय वही परिवर्तन होते है जो कि कर्मवाच्य लुङ प्र० पु० एक० म इ से पहले धातु म होते हैं। धातु के अन्तिम स्वरो को वृद्धि होती है तथा उपधा के अ को आ होता है और अन्य उपधा के ह्रस्व स्वरो को गुण होता है। नी–नायम् (ले जा कर), दा–दायम् (देकर), भू–भावम्, भिद्–भेदम्, ग्रह्–ग्राहम्, गम्–गमम् इत्यादि।

७६२[1] ये अम् प्रत्ययान्त रूप साधारणतया समास के अन्त मे प्रयुक्त होते हैं। स लोष्ठघात हत (वह ढेले की चोट से मारा गया), वन्दिग्राह गृहीता (विक्रमो० १) (वह बन्दी बनाई गई), स मूलघात न्यवधीदरीश्च (भट्टि० १-२)। (उसने अपने शत्रुओं को समूल नष्ट कर दिया), आदि।

७६३ त्वा और अम् प्रत्ययान्त जब दो बार पढे जाते है तो वे क्रिया की द्विरुक्ति या पुन पुन होने का भाव प्रकट करते हैं।[1] जैसे—स्मृत्वा स्मृत्वा, स्मार स्मारम् (बार बार याद करके) पीत्वा पीत्वा, पाय पायम् (बार बार पीकर)। इसी प्रकार भुज्–भुक्त्वा भुक्त्वा, भोज भाजम्, श्रु–श्रुत्वा श्रुत्वा, श्राव श्रावम्; गम्–गत्वा गत्वा, गाम गामम्, गम गमम्, लभ्–लब्ध्वा लब्ध्वा, लम्भ लम्भम्, लाभ लाभम्, प्रलम्भ प्रलम्भम्, जागृ–जागर जागरम्, आदि ।[2]

७६४ कतिपय स्थानो पर अम्-प्रत्ययान्त कृदन्त द्विरक्त का भाव प्रकट नही करते हैं।

७६५ अग्रे, प्रथमम् और पूर्वम् उपसर्ग के तुल्य पहले प्रयुक्त होने पर धातु से त्वा या अम् लगता है और इन समासो मे द्विरुक्त का अर्थ नही होता है। अग्रे भोजम्, अग्रे भुक्त्वा वा व्रजति (पहले खाकर वह बाहर जाता है)। इसी प्रकार प्रथम भोजम्, प्रथम भुक्त्वा वा व्रजति। पूर्व भोजम्, पूर्व भुक्त्वा वा व्रजति।

७६६ कृ धातु का अम् प्रत्ययान्त कारम् रूप इन स्थानो पर लगता है[3] —

---

१. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च (३-४-२२)

२. समास के अन्त मे यह दो बार न पढे जाने पर भी द्विरुक्त का भाव प्रकट करता है। जैसे—

लतानुपात कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेश काकुत्स्य ईषत् स्मयमान आस्त ॥
(भट्टि० २-११)

ककुत्स्थ के वशज राम ने कुछ मुस्कराते हुए बार बार लताओं को झुका कर उनसे फूल तोडे, बार बार प्राप्त हुई नदियो को पार करते समय उनक जल पिया और कुतूहलता के कारण सुन्दर शिलाओ पर (दृश्य की प्रशसा करते हुए) बैठे।

३. कर्मण्याक्रोशे कृञ खमुञ् (३-४-२५)। स्वादुमि णमुल् (३-४-२६)। अन्यथैवकथमित्थसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् (३-४-२७)। यथातथयोरसूया-प्रतिवचने (३-४-२८)।

(ख) किसी द्वितीयान्त उपपद या इसके साथ समास हो और[1] निन्दा अर्थ अभिप्रेत हो। चौरंकारम् आक्रोशति (चोरशब्दम् उच्चार्येत्यर्थ, यह चोर है, चोर है, इस प्रकार चिल्लाता है)। यहाँ पर चोर शब्द के बाद म् लगता है।

(ग) स्वादु, लवण और सपन्न पहले होने पर कारम् लगता है। इन शब्दों के बाद में म् लगता है। अस्वादु स्वादु कृत्वा भुङ्क्ते, स्वादुंकारं भुङ्क्ते। इसी प्रकार लवणंकारं, सपन्नंकारं भुङ्क्ते (अपने भोजन को स्वादिष्ट या मसालेदार बना कर खाता है)।

(घ) अन्यथा, एवम्, इत्थम् और कथम् के बाद कारम् लगता है। इन स्थलों पर कारम् का स्वतन्त्र अर्थ नहीं होता है। अन्यथाकारं ब्रूते (दूसरे ढंग से बोलता है), एवंकारं भुङ्क्ते (वह इस प्रकार से खाता है)। इसी प्रकार इत्थंकारम्, कथंकारम्। अन्यत्र—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते।

(घ) यथा और तथा के साथ कारम् लगता है, क्रोधपूर्वक उत्तर देने अर्थ में। यथाकारम् अहं भोक्ष्ये तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन (सि० कौ०) (मैं इस तरह खाऊँगा, मैं उस तरह खाऊँगा, तुझे इससे क्या ?)

७६७ दृश् और विद् धातुओं के अम्-प्रत्ययान्त रूपों का अपने कर्म के साथ समास होता है, यदि समस्त (सभी) का अर्थ अभिप्रेत हो तो।[1] कन्यादर्शं वरयति (जितनी कन्याओं को देखता है, उन सभी को वरण करता है), ब्राह्मणवेदं भोजयति (यं यं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थ, सि० कौ०) (वह जिस किसी ब्राह्मण को जानता है या पाता है, उन सभी को भोजन खिलाता है)।

(क) विद् (पाना) और जीव् (जीवित रहना) का अम्-प्रत्ययान्त रूप यावत् के साथ उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।[2] यावद्वेदं भुङ्क्ते (जितना पाता है, उतना खाता है)। यावज्जीवम् अधीते।

(ख) चर्मन् और उदर पहले होने पर पूर् से अम् प्रत्यय होता है।[3] चर्मपूरं स्तृणाति। उदरपूरं भुङ्क्ते (पेट भरने के लिए खाता है)।

७६८ शुष्क, चूर्ण और रूक्ष पहले होने पर पिष् धातु से अम् प्रत्यय होता

---

१. कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये (३-४-२९)।
२. यावति विन्दजीवोः (३-४-३०)।
३. चर्मोदरयोः पूरेः (३-४-३१)।

है ।[1] शुष्कपेषं पिनष्टि (शुष्कं पिनष्टि इत्यर्थः, सि० कौ०) । इसी प्रकार चूर्ण-पेषं पिनष्टि (बहुत बारीक करके पीसता है) । रूक्षपेषम् ।

७६९ इन स्थानों पर अम् प्रत्यय होता है [2]—

(क) समूल, अकृत और जीव पहले होंगे तो क्रमशः हन्, कृ और ग्रह् धातुओं से कर्म अर्थ में अम् होता है। समूलघातं हन्ति (समूल नष्ट करता है), अकृतकारं करोति (न करने योग्य को करता है) । जीवग्राहं गृह्णाति (जीवित को ही सुरक्षित रखने के लिए पकड़ता है) ।

(ख) क्रिया के करण पहले होने पर हन् और पिष् धातुओं से अम् होता है। पादघातं हन्ति=पादेन हन्ति (पैर से चोट मारता है) । उदपेषं पिनष्टि=उदकेन पिनष्टि (जल के साथ पीसता है) ।

(ग) हस्त या हाथ वाची शब्द पहले होने पर वृत और ग्रह् से अम् होता है। हस्तवर्तं वर्तयति। इसी प्रकार करवर्तम् (हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः सि० कौ०)। हस्तग्राहं गृह्णाति। इसी प्रकार पाणिग्राहम्, करग्राहम् आदि। स्व पहले होने पर पुष् धातु से अम् होता है। स्वपोषं पुष्णाति।

७७० विशेष प्रकार की छन्द-रचना व बाधक आदि पद पहले होने पर बन्ध् से अम् प्रत्यय होता है।[3] चक्रबन्धं बध्नाति क्रौञ्चबन्धं बद्धः मुरजबन्धं बद्धः, मयूरिकाबन्धम्, अट्टालिकाबन्धम् आदि।

७७१ जीव और पुरुष शब्द कर्ता के रूप में पहले होने तो नश् और वह् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है।[4] जीवनाशं नश्यति (जीवो नश्यतीत्यर्थः), पुरुषवाहं वहति (पुरुषो वहतीत्यर्थः) ।

(क) ऊर्ध्व शब्द कर्ता के रूप में पहले होगा तो शुष् और पूर् धातुओं से अम् प्रत्यय होता है।[5] ऊर्ध्वशोषं शुष्यति (वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थः).

---

१. शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः (३-४-३५) ।
२. समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः (३-४-३६) । करणे हनः (३-४-३७) । स्नेहने पिषः (३-४-३८) । हस्ते वर्तिग्रहोः (३-४-३९) । स्वे पुषः (३-४-४०) ।
३. अधिकरणे बन्धः (३-४-४१) । संज्ञायाम् (३-४-४२) ।
४. कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः (३-४-४३) ।
५. ऊर्ध्वे शुषिपूरोः (३-४-४४) ।

ऊर्ध्वपूर पूर्यते (ऊर्ध्वमुख एव घटादिर्वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थ, सि० कौ०)।

(ख) उपमान-वाचक शब्द पहले होने पर धातु से अम् प्रत्यय होता है।[1] घृतनिधाय निहित जलम् (जल को घी की तरह बहुत संभाल कर रखा हुआ था), अजकनाश नष्ट (अजक इव नष्ट इत्यर्थ)।

७७२ इन स्थानो पर णमुल् (अम्) प्रत्यय होता है[2] —

(क) तृतीयान्त पद पहले होने पर हिंसा अर्थ वाली धातु से अम् प्रत्यय होता है, धातु का कर्म और अमन्त का कर्म एक ही होना चाहिए। दण्डोपघात गा कालयति (दण्डेनोपघातम्) (वह डण्डे से मार कर गायो को एकत्र करता है)। दण्ताडम्। अन्यत्र–दण्डेन चोरमाहत्य गा कालयति।

(ख) सप्तम्यन्त या तृतीयान्त पद पहले होने पर उपपूर्वक पीड्, रुध् और कर्ष् धातुओ से अम् प्रत्यय होता है। पार्श्वोपपीड शेते (पार्श्वाभ्याम् उपपीडम्), व्रजोपरोध गा स्थापयति (व्रजेन व्रजे वा उपरोधम्), पाण्युपकर्ष धाना सगृह्णाति (पाणावुपकर्षं पाणिनोपकर्षं वा, सि० कौ०)।

(ग) इसी प्रकार केशग्राह युध्यन्ते (केशेषु गृहीत्वा), हस्तग्राहम् (हस्तेन गृहीत्वा), द्वयङ्गुलोत्कर्ष खण्डिका छिनत्ति (द्वयङ्गुलेन द्वयङ्गुले वा उत्कर्षम्, सि० कौ०)।

(घ) पचमी और द्वितीया के अर्थ वाले शब्द पहले होने पर शीघ्रता अर्थ मे धातु से अम् प्रत्यय होता है। शय्योत्थाय धावति (शीघ्रता से बिस्तर छोडकर भागता है), यष्टिग्राह युध्यन्ते, लोष्टग्राहम्, आदि।

७७३ द्वितीयान्त शरीरावयववाची शब्द पहले होने पर धातु से अम् प्रत्यय होता है। यह शरीरावयव ऐसा होना चाहिए जिसके कटने पर भी मृत्यु न हो।[3] भ्रूविक्षेप कथयति (भौंआ को हिलाता हुआ कहता है)। अन्यत्र–शिर उत्क्षिप्य, यहाँ पर शिर उत्क्षेपम् नही होगा। शिर के कटने से मृत्यु हो जाती है।

---

१. उपमाने कर्मणि च (३-४-४५)।

२ हिंसार्थाना च समानकर्मकाणाम् (३-४-४८)। सप्तम्या चोपपीडरुधकर्ष (३-४-४९)। समासत्तौ (३-४-५०)। प्रमाणे च (३-४-५१)। अपादाने परीप्सायाम् (३-४-५२)। द्वितीयाया च (३-४-५३)।

३ स्वाङ्गेऽध्रुवे (३-४-५४)। येन बिना न जीवन तद् ध्रुवम्, सि० कौ०।

(क)[1] पूर्णतया पीडित द्वितीयान्त शरीरावयववाची शब्द पहले होने पर
तु से अम् होता है।[1] उर प्रतिपेष युध्यन्ते (कृत्स्नम् उर पीडयन्त इत्यर्थ,
सि० कौ०, सारे हृदय को पीडित करते हुए)। उरोविदार प्रतिचस्करे नखै ।

७७४ द्वितीयान्त पद पहले होने पर विश्, पत्, पद् और स्कन्द् धातुओ मे
अम् प्रत्यय होता है, पूर्णतया व्याप्त होना या बार बार क्रिया को करना अर्थ मे।[2]
गेहानुप्रवेशम् आस्ते। गेह गेहम् अनुप्रवेशम्। गेहम् अनुप्रवेशम् अनुप्रवेशम्। इसी
प्रकार गेहानुप्रपातम्, गेहानुप्रपादम्, गेहानुस्कन्दम्, आदि ।

७७५ (क) कालवाचक द्वितीयान्त शब्द पहले होने पर अस् और तृप्
धातुओ से अम् प्रत्यय होता है, यदि समय का व्यवधान अर्थ अभिप्रेत हो तो।[3]
द्व्यहात्यास द्व्यहमत्यास वा गा पाययति (दो दिन छोडकर गायो को पानी
पिलाता है) (अद्य पाययित्वा द्व्यहम् अतिक्रम्य पुन पाययतीत्यर्थ, सि० कौ०) ।
इसी प्रकार द्व्यहतर्षम्, द्व्यहतर्षम् ।

(ख) द्वितीयान्त नामन् शब्द पहले होने पर आ+दिश् और ग्रह् धातुओ से
अम् प्रत्यय होता है।[4] नामादेशम् आचष्टे, नामग्राहम् आह्वयति, आदि ।

(ग) तूष्णीम् और अन्वच् शब्द पहले होने पर भू धातु से विकल्प से अम्
प्रत्यय होता है। तूष्णीभूय-भूत्वा-भावम्। अन्वग्भूय, अन्वग्भूत्वा, अन्वग्भावम्।

(ग) तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive)

७७६ धातु से तुमुन् (तुम्) प्रत्यय होता है। धातु को गुण होता है।
जैसे—

धातु	तुम् प्र० रूप	धातु	तुम् प्र० रूप
इ (जाना)	एतुम्	ग्रन्थ् (ग्रन्थ बनाना)	ग्रन्थितुम्
एध् (बढ़ना)	एधितुम्	पच् (पकाना)	पक्तुम्
दा (देना)	दातुम्	व्रश्च् (काटना)	व्रश्चितुम्, व्रष्टुम्

१. परिक्लिश्यमाने च (३-४-५५)।
२. विशिपतिपदिस्कन्दा व्याप्यमानासेव्यमानयो (३-४-५६)। गेहादिद्रव्याणा
विशयादिक्रियाभि साकल्येन सबन्धो व्याप्ति। क्रियाया पौन पुन्यमा-
सेवा। (सि० कौ०)।
३. अस्यतितृषो क्रियान्तरे कालेषु (३-४-५७)।
४. नाम्न्यादिशिग्रहो (३-४-५८)।

उसे पहनने वाला)। द्वितीयान्त शब्द पहले होने पर अर्ह् धातु से अच् होता है।
पूजाम् अर्हतीति पूजार्हो ब्राह्मण (पूजा के योग्य ब्राह्मण)। सप्तम्यन्त स्तम्ब
और कर्ण शब्द पहले होने पर क्रमश रम् और जप् धातुओं से अच् प्रत्यय होता है।
स्तम्बेरम (हाथी), कर्णेजप (चुगलखोर, पिशुन)। शम् पहले होने पर किसी
भी धातु से अच् हो सकता है। शकर, शभव, शवद आदि। अधिकरण (आधार)
वाचक शब्द पहले होने पर शी धातु से अच् होता है। खे शेते-खशय, सशय
(आकाश मे रहने वाला)। इसी प्रकार हृच्छय-(हृदय मे रहने वाला, काम-
देव)। पार्श्व, उदर, पृष्ठ आदि तथा उत्तान आदि शब्द पहले होने पर शी से
अच् होता है। पार्श्वशय, उदरशय, पृष्ठशय, आदि (बगल से सोने वाला,
आदि)। उत्तानशय (ऊपर की ओर मुँह करके पीठ के बल सोने वाला)। इसी
प्रकार अवमूर्धशय (अवनतो मूर्धा अस्य तथा शेते, नीचे की ओर सिर करके
सोने वाला)। इकारान्त धातुओं तथा अन्य कुछ धातुओं से अच् प्रत्यय करके
भाववाचक शब्द बनते हैं। चि-चय (सग्रह), जि-जय, भी-भयम् वृष्-वर्ष-
(वर्षा), आदि।

अण्—कर्मवाचक शब्द पहले होने पर धातु से अण् (अ) प्रत्यय होता है।
कुम्भकार (कुम्हार), भारहार। कोई सुवन्त पहले होने पर सम्+हन् से अण्
होता है। धातु के न् को विकल्प से ट् हो जाता है। वर्णसघात, वर्णसघाट:
(शब्दो का समूह)।

अप्—ह्रस्व और दीर्घ उकारान्त और ऋकारान्त धातुओं से अप् (अ)
प्रत्यय होता है। अप् प्रत्यय लगा कर कुछ भाववाचक शब्द बनते है, कुछ स्थान-
वाचक और कुछ क्रिया के साधनवाचक शब्द होते हैं। स्तु-स्तव (प्रशसा),
यु-यव (जौ), पू-पव, भू-भव, कृ-कर (करने का साधन अर्थात् हाथ),
गृ-गर (विष), दृ-दर (डर), वृ-वर (वर), आदि। वि+स्तृ-विष्टर
(वृक्ष या आसन), अन्यत्र विस्तर। सम्+हन् से अप्। सघ (समूह)। गम् से
अप्-गम। कोई उपसर्ग पहले होने पर अद् से अप् और अद् को घस्। निघस,
विघस, प्रघस आदि (अन्न या भोजन)। जहाँ पर उपसर्ग पहले नही होता है,
वहाँ पर घञ् प्रत्यय होकर घास रूप होता है। उपसर्ग पहले न होने पर जप्
और व्यध् से अप्। जप (जप करना), व्यध (बीधना)। जहाँ पर उपसर्ग
पहले होता है, वहाँ पर घञ् होता है। जैसे—उपजाप (कान मे चुपके

कुछ कहना, वियाग आदि)। स्वन् और हस् में अप् और घञ् दोनों होते हैं। स्वन्—स्वन, स्वान (ध्वनि), हस्-हस, हास। उपसर्ग पहले होने पर घञ् ही होता है। प्रस्वान, प्रहास, आदि। उपसर्ग-रहित यम् धातु से तथा उप, नि, वि और सम् उपसर्ग-पूर्वक यम् धातु में अप् और घञ् दोनों होते हैं। यम-याम, (संयम, नियन्त्रण) आदि। उपयम-उपयाम (विवाह)। इसी प्रकार नियम-नियाम आदि। नि उपसर्गपूर्वक गद्, नद्, पद् और स्वन् में अप् और घञ् दोनों होते हैं। निगद-निगाद (भाषण, वचन), निनद-निनाद (ध्वनि), आदि। क्वण् धातु स्वतंत्र और नि-पूर्वक से अप् और घञ् दोनों होते हैं। क्वण-क्वाण, निक्वण-निक्वाण (वीणा का स्वर)। उपसर्ग के अतिरिक्त कोई शब्द पहले होने पर मद् में अप् होता है और उपसर्ग पहले होने पर घञ्। धनमद (धन का मद), उन्माद (घमण्ड, प्रमत्तता)। प्र या सम् पहले होने पर अप् ही होगा, प्रसन्नता अर्थ में। प्रमद, समद। अन्य अर्थों में घञ् होता है। प्रमाद, समाद (प्रमत्तता, असावधानी, भूल-चूक)। उपर्युक्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य बहुत सी धातुएँ हैं, जिनसे अप् और घञ् प्रत्यय होते हैं। उन सब का यहाँ पर उल्लेख करना संभव नहीं है। अप् और घञ् में अन्तर यह है कि घञ् होने पर धातु में वृद्धि होगी, अप् होने पर नहीं।

क—उपधा में इ, उ, ऋ या ऌ वाली धातुओं से तथा प्री और कॄ धातुओं से क (अ) प्रत्यय होता है। यह कर्ता का बोधक होता है। लिख्-लिख (लेखक), क्षिप्-क्षिप (फेंकने वाला), बुध्-बुध, आदि। प्री-प्रिय (आनन्दित करने वाला), कॄ-किर (फैलाने वाला)। उपसर्ग-रहित या उपसर्ग-सहित आकारान्त धातुओं से क होता है और अन्तिम आ का लोप हो जाता है। ज्ञा-ज्ञ या प्रज्ञ (जानने वाला, विद्वान्), ह्वे-ह्व या आह्व (पुकारने वाला)। आकारान्त धातु से पहले कोई सुबन्त होने पर भी क होता है। दा-गोद (गाया को देने वाला या बाल काटने वाला), पा-द्विप (द्वाभ्यां पिबतीति, हाथी)। स्था धातु से विभिन्न अर्थों में क होता है। समस्थ (प्रसन्न, स्वस्थ), विषमस्थ (विपत्तिग्रस्त), प्रस्थ (एक तोल), आदि। ग्रह् धातु से भी क होता है। ग्रह्—गृहम् (घर), गृहा (स्त्री, गृह)।

कञ्—कोई उपसर्ग पहले होने पर दृश् धातु से कञ् (अ) प्रत्यय होता है, देखना अर्थ न हो तो। तत्+दृश्+अ=तादृश (वैसा)। समान और अन्य

पहले हो तो भी कञ् होगा। सदृश (सदृश), अन्यादृश (दूसरे के सदृश)। बीच मे स भी लगता है। सदृक्ष, तादृक्ष, आदि।

खच् और खश्--इन प्रत्ययो के होने पर द्वितीयान्त उपपद के अ के बाद म् लग जाता है। प्रिय और वश पहले होने पर वद् से खच् (अ) होता है। प्रिय वदतीति प्रियवद (प्रिय बोलने वाला), वशवद (आज्ञाकारी)। क्षेम, प्रिय, भद्र और भय पहले होने पर कृ से खच् (अ) होता है। क्षेमकर, प्रियकर, भद्रकर (शुभ करने वाला), आदि। भयकर (भयकारी), अभयकर। सुबन्त पहले होने पर गम् से खच्। विहगम (आकाश मे घूमने वाला, पक्षी)। सज्ञावाचक होने पर भृ, तृ, वृ, जि, धृ, सह्, तप् और दम् से खच्। विश्वभर (परमात्मा), रथन्तरम् (सामवेद का एक अश), पतिवरा (पति का वरण करने वाली कन्या), शत्रुजय (हाथी), युगन्धर (एक पर्वत का नाम), परन्तप (एक राजा का नाम), अरिन्दम (एक राजा का नाम)। वाच् पहले होने पर यम् धातु से खच्। वाचयम (वाणी पर सयम रखने वाला, मौन)। सर्व और पुर पहले होने पर क्रमश सह् और दृ धातुओ से खच्। सर्वसहा (पृथ्वी), पुरन्दर (इन्द्र)। सर्व, कूल, अभ्र और करीष पहले होने पर कष् धातु से खच्। सर्वकष (सब को नष्ट करने वाला, सर्वशक्तिमान्), कूलकषा (नदी, किनारे को तोडने वाली), अभ्रकष (बादलो से रगडने वाला, वायु), करीषकष (सूखे गोबर को उडाने वाली, वायु या आँधी)। णिजन्त एज् से खश् होता है। जनमेजय (लोगो को भय से कँपा देने वाला, एक राजा का नाम)। वात, शुनी, तिल और शर्ध शब्द पहले होने पर क्रमश अज्, धे, तुद् और हा धातु से खश् होता है। वातमज (हवा को सहने वाला, एक प्रकार का मृग), शुनिधय (बिल्ली का बच्चा), तिलतुद (तेली) और शर्धजहा (उडद)। स्तन और नाडी पहले होने पर क्रमश धे और ध्मा से खश्। स्तनन्धय (दूध पीने वाला बच्चा), नाडिन्धम या नाडीधम (सुनार)। विधु और अरुष् पहले होने पर तुद् से खश्। विधुन्तुद (चन्द्रमा को दु ख देने वाला, राहु), अरुन्तुद (अरूषि मर्माणि तुदतीति, मर्मस्थलो को दु ख देने वाला, दु खद)। परिमाणवाची शब्द पहले होने पर पच् से खश्। जैसे--प्रस्थपचा स्थाली, खारिपच कटाह। मित और नख पहले होने पर पच् से खश्। मितपच (नापतोल कर खाना पकाने वाला, कजूस), नखपचा (नाखून को खरोचने वाली, जैसे यवागू)। असूर्य और ललाट पहले होने

पर दृश् और तप् मे खश्। असूर्यपश्या (सूर्य को न देखने वाली, अर्थात् महारानियाँ जो अन्त पुर से बाहर धूप मे नही निकलती हैं), ललाटतप (माथे को तपाने वाला)। उग्र, इरम् और पाणि पहले होने पर क्रमश दृश्, मद् और ध्मा से खश्। उग्रपश्य (देखने मे भयकर), इरमद (बिजली), पाणिधम (घोर अन्धकार से युक्त मार्ग, जहाँ पर मार्ग मे पडे हुए सर्प आदि को हटाने के लिए ताली पीटनी पडती है)। अपने आप को समझना अर्थ मे मन् धातु से खश्। जैसे—पण्डितमन्य (अपने आपको पण्डित समझने वाला), गामन्य (अपने आपको गाय समझने वाला, विनम्र), आदि।

खल्—ईषत्, दुर् या सु पहले होने पर कठिन या सरल अर्थ मे किसी भी धातु से खल् (अ) होता है। ईषत्कर (सरलता से किया गया), दुष्कर (कठिनाई मे किया गया), सुकर (सरलता से किया गया)। इसी प्रकार दु शासन, दुर्योधन आदि।

घ—साधन और स्थान अर्थ मे घ (अ) प्रत्यय होता है। इससे भाववाचक शब्द भी बनते हैं। आ + कृ—आकर (खान), आ + खन्-आखन (फावडा), आ + पण्-आपण (बाजार), कष्-निकष (कसौटी का पत्थर), चर्-गोचर (चरागाह), सचर (मार्ग), वह्—वह (कन्धा), निगम (लोगो का पथ-प्रदर्शक, वेद), व्रज और व्यज (पखा)। घ प्रत्यय होने पर छाद् धातु को छद् हो जाता है, यदि एक से अधिक उपसर्ग पहले न हो तो। दन्तच्छद (होठ), प्रच्छद। अन्यत्र—समुपच्छाद।

घञ्—प्राय सभी धातुओ से घञ् (अ) प्रत्यय होता है। यह विभिन्न अर्थों मे होता है। घञ् से पहले धातु के अन्तिम च् को क् और ज् को ग् होता है। पच् पाक (भोजन), कम्—काम (इच्छा), श्रम् विश्राम (आराम), सृ सार (बल या सारभाग), अति + सृ—अतिसार, अतीसार (पेचिश), हृ—हार (गले का हार), पद् पाद (पैर), भू-भाव (होना, वस्तु), आदि। विश्-वेश (घर), रुज्-रोग (रोग), स्पृश्-स्पर्श (छूना), इन्ध् एध (लकडी), श्रन्थ् प्रश्रन्थ (ढीलापन)। चि—चाय (चीयते ऽस्मिन् अन्नादिकम्, शरीर)। नि+चि-निकाय (घर), आदि। उपसर्ग पहले होने पर रु से घञ्। विराव (पक्षियो का कलरव), अन्यत्र—(ख) घञ् होने पर स्फुर् और स्फुल् के उ को आ हो जाता है। स्फार, स्फाल (हाथ का फडकना आदि)। आ पहले होने

र रु और प्लु से घञ् और अप् दोनो होते है। आराव -आरव (जोर का शब्द), प्लाव -आप्लव (बाढ) । कभी कभी घञ् और अप् भिन्न भिन्न अर्थों मे होते हैं। नी–नाय (प्रमुख), प्रणय (प्रेम, दयाभाव), परिणाय (शतरंज की गोटियो को इधर उधर हटाना, आदि), परिणय (विवाह) । नि + इ–न्याय (न्याय), न्यय (नाश) । अव और नि पहले होने पर ग्रह् से घञ् और अप् । अवग्राह , निग्राह (विघ्न, वियोग), अवग्रह (व्याकरण मे ऽचिह्न), चोरस्य निग्रह (चोर को पकडना) । किन्तु अवग्राह –अवग्रह (अनावृष्टि, वर्षा का अभाव) । पुष्प पहले होने पर चि से घञ्, यदि हाथ से फूल तोडना अर्थ हो तो। पुष्पचाय । अन्यत्र पुष्पचय (डडे से फूल तोडता है), आदि। भुज् और नि+उब्ज् से भी घञ् होता है। भुज (हाथ), न्युब्ज (कुब्बड वाला, वडका वृक्ष)।

ट—दिवा, भास्, यत्, तत्, किम्, सख्यावाचक शब्द और कर्मवाचक सज्ञा-शब्द पहले होने पर कृ धातु से ट (अ) प्रत्यय होता है। दिवा करोतीति दिवाकर, भास्कर (सूर्य), यत्कर आदि । पुर , अग्रत , अग्रे और पूर्व पहले हो तो सृ धातु से ट होता है । पुर सर, अग्रत सर (नेता), आदि । भिक्षा, सेना, दाय और अधिकरणवाचक शब्द पहले होने पर चर् से ट होता है। भिक्षाचर (भिखारी), सेनाचर (सैनिक) आदि ।

टक्—जाया और पति शब्द पहले होने पर हन् धातु से टक् (अ) होता है और हन् को घ्न हो जाता है, यदि शरीर पर मृत्युसूचक कोई अशुभ चिह्न अर्थ हो तो । जायाघ्न (पति के शरीर पर ऐसा चिह्न होना जो यह सूचित करे कि उसकी पत्नी मर जाएगी) । इसी प्रकार पतिघ्नी । क्रिया का कर्ता यदि मनुष्य से भिन्न कोई वस्तु पहले हो तो हन् से टक् होगा । पित्तघ्नम् (पित्त को नष्ट करने वाला, घी आदि), पतिघ्नी (पाणिरेखा), आदि । हस्तिन् और कपाट शब्द पहले होने पर हन् से टक् होगा, नष्ट करने की शक्ति अर्थ हो तो। हस्तिघ्न (जो हाथी को मार सकता है), आदि । पाणि और ताड शब्द पहले होने पर हन् से टक् होगा, वाद्यवादन मे चतुरता अर्थ हो तो। पाणिघ (तबला या ढोलक बजाने वाला) । उपसर्ग से भिन्न कोई शब्द पहले होगा तो पा (पीना) और गै धातु से टक् होगा। सोमप (सोमरस का पान करने वाला), साम गायतीति सामग (सामवेद का गान करने वाला) । अन्यत्र—उपसर्ग पहले होने पर सामसगाय । पा (रक्षा करना) से अ होता है । क्षीरपा ब्राह्मणी, आदि ।

ड—ये शब्द पहले होंगे तो गम् धातु से ड (अ) प्रत्यय होगा—अन्त, अत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पन्न (रगड़ते हुए भूमि पर चलना), उरस् और विहायस्। यह कर्ता अर्थ का बोधक होता है। दुर् और सु पहले होने पर गम् से ड प्रत्यय अधिकरण का बोधक होता है। ड प्रत्यय होने पर धातु की टि अर्थात् अन्तिम स्वर या अन्तिम स्वर-सहित व्यंजन का लोप हो जाता है। अन्त गच्छतीति अन्तगः (अन्त तक जाने वाला), अध्वगः (पथिक), पन्नग, उरोगः (साँप), विहायस् को विह हो जाता है। विहगः (पक्षी)। दुर्गः (किला), आदि। हन् धातु से ड होता है, आशीर्वाद अर्थ में। तव पुत्रः शत्रुह. भवेत् (तेरा पुत्र शत्रुओं को नष्ट करने वाला हो)। क्लेश और तमस् पहले हो तो अप+हन् से ड होता है। क्लेशापह. (दु खनाशक, पुत्र), तमोऽपह (अन्धकार का नाशक, सूर्य)। जातिभिन्न अर्थ में सप्तम्यन्त या पचम्यन्त शब्द पहले होने पर, अथवा कोई उपसर्ग पहले होने पर सज्ञावाचक अर्थ में जन् धातु से ड प्रत्यय होता है। मन्दुरजः (घुडसाल में पैदा हुआ), सरसिजम् (कमल), सस्कारजः (चीरा-फाडी के बाद उत्पन्न हुआ), अदृष्टजः आदि। प्रजा, अनुज (छोटा भाई)। द्विज., अज, ब्राह्मणज. आदि भी इसी प्रत्यय से बनते हैं। परि+खन् से भी ड होता है। परिखा (खाई)।

ण—इन स्थानो पर होता है—आकारान्त धातुओ से ण (अ) प्रत्यय होता है और आ के बाद य् लग जाता है। दा–दाय. (जो हिस्से को लेता है), धा–धाय. (जो पकडता है), आदि। अव और प्रति पहले होंगे तो श्यै से। अवश्यायः (कुहरा), प्रतिश्याय (सर्दी, जुकाम)। कोई उपसर्ग पहले हो तो इ, सु, सो और ह्रु धातुओ से। अत्याय. (उल्लघन), सस्राव (चूना, टपकना), अवसाय. (अन्त), अवहार (चोर)। लिह्, श्लिष्, ग्रह्, व्यध्, श्वस् और भू धातुओ से। लेह. (चाटने योग्य वस्तु, चटनी), श्लेष (आलिंगन), ग्राह (मगर), व्याध (बहेलिया), श्वास. (साँस), भाव. (वस्तु)। कोई उपसर्ग पहले न हो तो नी और दु धातुओ से। नाय. (नेता), दाव. (दावाग्नि)। ज्वल्, चल्, जल्, टल् (घबडा जाना), तल् (सूँघना), हल्, पल्, बल्, पुल्, कुल्, शल्, हुल्, पत्, क्वथ्, पथ्, मथ्, वम्, भ्रम्, क्षर्, सह्, शद्, क्रुश्, बुध् और कस् धातुओ से। इनसे अच् प्रत्यय भी होता है। ज्वाल.-ज्वल: (ज्वाला, लपट), आदि। यदि कर्म पहले होंगे तो शील्, कम् और भक्ष् धातुओ से। मासशील. (मास रखने वाला), मास-

कम (मास का इच्छुक), मासभक्ष (मास खाने वाला) । ईक्ष्, क्षम् और
आ+चर् से । सुखप्रतीक्ष (सुख का इच्छुक), बहुक्षम (बहुतो को क्षमा करने
वाला), कल्याणाचार (अच्छे आचरण वाला) । कर्म पहले होने पर ह्वे, वे
और मा से । स्वर्ग ह्वयते स्वर्गह्वाय , तन्तुवाय (जुलाहा), धान्यमाय (धान
को तोलने वाला) । नि+अद् से । न्यद (अन्न) ।

श--इन स्थानो पर होता है--पा, घ्रा, ध्मा, धे और दृश् से श (अ) होता
है । पिब (पीने वाला), जिघ्र (सूंघने वाला), दृश्--पश्य (देखने वाला) ।
जुहोत्यादि० की दा और धा से । दा--दद (देने वाला), धा--दध (रखनेवाला) ।
लिम्प् और विद् से । लिम्प (लीपने वाला), विन्द (जानने वाला) । नि+
लिम्प् और गो आदि +विद् से भी । निलिम्प (देवता), गोविन्द (विष्णु
का नाम) , अरविन्द (कमल) । णिजन्त चित्, पृ , उत्+एज् और धृ से । चेतय
(जानने वाला या सोचने वाला), पारय (पूरा करने वाला), उदेजय (दूसरो
को कँपाने वाला) (देखो भट्टि० १ २५), धारय (धारण करने वाला) ।
सभी धातुओ से श (अ) प्रत्यय करने पर भाववाचक स्त्रीलिंग शब्द बनते है ।
कृ--क्रिया (कार्य), इष्--इच्छा (इच्छा), परिचर्--परिचर्या (सेवा), मृग--
मृगया (शिकार खेलना), अट्--अटाट्या (घूमना), जागृ--जागर्या (जाग-
रकता), आदि ।

अ--प्रत्ययान्त धातुओ से इसे लगाकर भाववाचक शब्द बनाए जाते हैं ।
कृ--चिकीर्षा (करने की इच्छा), पुत्रकाम्या (पुत्र की इच्छा), आदि । उपधा
म दीर्घ स्वर वाली और हलन्त धातुओ से । ईह्--ईहा (इच्छा), ऊह्--ऊहा
(अनुमान, तर्क), आदि ।

अङ--इस प्रत्यय को लगाकर भी भाववाचक शब्द बनते है । यह षित्
(षड्वसवक वाली) और भिद् आदि धातुओ से होता है। जृ--जरा (बुढापा),
त्रप्--त्रपा, आदि । भिद्--भिदा (पृथक् करना), चिन्त्--चिन्ता (सोचना,
चिन्ता), मृज्--मृजा (स्वच्छता), आदि । कृप् धातु से । कृप् के र को ऋ हो
जाएगा । कृपा (दया) । यदि कोई उपसर्ग, श्रत् और अन्तर् शब्द पहले
होंगे तो आकारान्त धातुओ से अङ होगा । दा--प्रदा (दान देना), भा--प्रभा
(चमक), आदि। श्रत्+धा--श्रद्धा (विश्वास) । अन्तर्+धा--अन्तर्धा (लुप्त
होना) ।

अक--(क्वुन्, ण्वुल्, वुञ्, वुन्, ष्वुन्) —

क्वुन्--रञ्ज् से क्वुन् (अक)। रजक (धोबी)।

ण्वुल्—यह सभी धातुओ से होता है और कर्ता का अर्थ वताता है। कृ–कारक (करने वाला) आदि। पच्–पाचक (पकाने वाला), हन्–घातक, दा--दायक, धा--धायक, आदि। शम् आदि धातुओ से ण्वुल् होता है, परन्तु इनकी उपधा को वृद्धि नही होती है। शम्–शमक, दम्–दमक, वधक (वध करने वाला), जनक (पिता), आदि। कुछ धातुओ से ण्वुल् प्रत्यय होने पर रोगो के नाम वनते है। छृद्--प्रच्छर्दिका (कै), वह–प्रवाहिका (पेचिश, दस्त), चर्च्--विर्चचिका (खाज, खुजली), आदि। कभी कभी अक प्रत्यय करने पर भाववाचक शब्द वनता है और धात्वर्थ बताता है। आस्—आसिका (वैठना), शी–शयिका (सोना), आदि। यह कभी कभी भविष्य अर्थ भी वताता है। कृष्ण दर्शको याति (कृष्ण को देखने के लिए जाता है, सता पालक, आदि।

वुञ्--इन धातुओ से कर्ता अर्थ मे या स्वभाव अर्थ मे वुञ् (अक) होता है--निन्द्, हिंस, क्लिश्, खाद्, वि+नश्, परि+क्षिप्, रट्, वद्, व्ये, भाष् और सृ। निन्द्–निन्दक (निन्दा करने वाला या निन्दा करने के स्वभाव वाला), हिंस्–हिंसक, क्लिश्–क्लेशक, आदि। आपूर्वक दिव् और क्रुश् से। आदेवक (जुआरी), आक्रोशक (चिल्लाने वाला)।

वुन्--प्रु, सृ और लू धातुओ से कुशल अर्थ मे वुन् (अक) होता है। प्रु–प्रवक, सृ–सरक (चलने मे चतुर), लवक (काटने मे चतुर)। आशीर्वाद अर्थ म किसी भी धातु से अक हो सकता है। जीवकस्त्व भूया (तुम वहुत समय तक जीवित रहो), नन्दकस्त्व भूया (तुम आनन्दित करने वाले होओ)।

ष्वुन्—नृत्, खन् और रञ्ज् धातुओ से उस विद्या को जानने अर्थ म ष्वुन् (अक) होता है। नर्तक (नृत्यकला जानने वाला), खनक (खुदाई करने वाला), रञ्जक (रँगने वाला)।

अथु (अथुच्)--वेप्–वेपथु (कम्पन), श्वि श्वयथु (सूजन), दु–दवथु (पीडा, चिन्ता,) आदि।

अन—(ण्युत्, युच्, ल्यु, ल्युट्) --

ण्युन्—गै और हा से ण्युत् (अन) होता है। गायन (गाने वाला), हायन (वर्ष, एक प्रकार का चावल)।

युच्—जाना और शब्द करना अर्थ वाली धातुओं से युच् (अन) होता है। चल्-चलन (चलने वाला), रु—रवण (शब्द करने वाला)। इसी प्रकार शब्दन आदि। यह अलंकृत करना और क्रुद्ध होना अर्थ वाली धातुओं से भी होता है। भूष्-भूषण (अलंकार का साधन), मण्ड् मण्डन, क्रुध्-क्रोधन, रुष्-रोषण (क्रोधी)। यह जु, सृ, गृध्, ज्वल्, शुच्, लष्, पत्, पद् से भी होता है। जु—जवन (तीव्र चलने वाला), सृ-सरण (जाने वाला), गृध्-गर्धन (पेटू, लोभी), ज्वलन (जलाने वाली, आग)। कुछ हलन्त धातुओं से भी यह होता है। वृत्-वर्तन, वृध्-वर्धन, आदि। क्रम और द्रम के यङन्त रूप से। चङ्क्रमण, दन्द्रमण (बार बार जाने वाला)। णिजन्त धातुओं, श्रन्थ्, घट्, वन्द् और इच्छार्थक इष् धातु से अन होकर स्त्रीप्रत्ययान्त भाववाचक शब्द बनते हैं। कृ—कारणा (करना), हृ-हारणा, आस् आसना श्रन्थ् श्रन्थना, घट् घटना, वन्द्-वन्दना विद्-वेदना अनु+इष्—अन्वेषणा (अन्वेषण करना)।

ल्यु—नन्द् आदि धातुओं से ल्यु (अन) होता है। नन्दन (आनन्दित करने वाला पुत्र) मद् मदन (उन्मत्त करने वाला, कामदेव), साध् साधन (पूरा करने वाला), सह्-सहन (सहन करने वाला), सूद्-मधुसूदन (मधु राक्षस का नाशक), अर्द्-जनार्दन (पापियों का सहर्ता), भी-विभीषण (डराने वाला, रावण के भाई का नाम)।

ल्युट्—यह सभी धातुओं से होता है। इससे नपुंसकलिंग भाववाचक शब्द बनते हैं। सह्—सहनम् (सहना), हस्-हसनम् (हँसना), शी-शयनम् (सोना), पा-पानम् (पीना), भुज्-भोजनम्, साध्-साधनम्, आदि। यह करण अर्थ में भी होता है। व्रश्च्—व्रश्चन (काटने का साधन, कुल्हाड़ी), आदि। दुह्-गोदोहनी (गाय दुहने का पात्र), यहाँ पर यह अधिकरण अर्थ में है।

षाक (षाकन्)—स्वभाव अर्थ में जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट्, लुण्ट् और वृ से षाकन् (आक) होता है। जल्पाक (जल्पितुं शीलमस्य, अधिक बातूनी), भिक्ष्-भिक्षाक (भिखारी), कुट्टाक (काटने वाला), लुण्टाक (लुटेरा), वराक (बेचारा)।

आरु—शॄ-शरारु (घातक), वन्द्-वन्दारु (स्तुतिकर्ता)।

आलु—स्पृह्, गृह् और पत् के णिजन्त से, दय् धातु से और निद्रा, तन्द्रा तथा श्रद्धा शब्दो से होता है। स्पृहयालु (इच्छुक), दयालु (कृपालु), निद्रालु (अधिक सोने वाला), तन्द्रालु, श्रद्धालु (श्रद्धाभाव से युक्त)।

इ—(इक्, इञ्, इण्, कि)—

इक् (इ)—कृप्-कृपि (कृपक), गृ-गिरि (पर्वत)।

इञ् (इ)—वप् आदि से होता है। वापि (तालाब), वासि (घर)।

इण् (इ)—अज् आदि धातुओ से होता है। आजि (युद्ध), आति, आदि।

कि (इ)—दा और धा आदि धातुओ से कि (इ) प्रत्यय होकर ये रूप बनते है। धा-उपाधि. (छल, शर्त आदि), निधिः (कोश), सन्धि (जोड, मेल आदि), जलधि (समुद्र), यहाँ पर यह अधिकरण अर्थ मे है।

इत्रच् (इत्र)—ऋ, लू, धू, सू, खन्, सह् और चर् से इत्रच् (इत्र) होता है। ऋ-अरित्रम् (पतवार, डाड), लवित्रम् (चाकू, दराँती), धवित्रम्, (मृगचर्म से बना पखा), सवित्रम् (उत्पन्न करने वाला), खनित्रम् (फावडा), सहित्रम् (सहनशीलता), चरित्रम्।

इन्—(इनि, घिनुण्, णिनि)—

इनि (इन्)—यह इन धातुओ से होता है—प्र+जु, जि, दृ, क्षि, वि+श्रि, वम्, आ+व्यय्, अभि+अम्, परि+भू और प्र+सू। प्रजविन् (शीघ्र गामी), जयिन् (विजयी), दरिन् (सुस्त), आदि। क्षयिन् (क्षय करने वाला)। कर्म पहले होने पर वि+क्री से इन् होता है, निन्दा अर्थ मे। तैलविक्रयी, सोमविक्रयी, आदि।

घिनुण् (इन्)—इन स्थानो पर कर्ता अर्थ म होता है—त्यज्, रञ्ज्, भज्, रुष्, द्विष्, द्रुह्, दुह्, युज्, आ+यम्, आ+यस्, आ+क्रीड्, आ+मुष्, परिपूर्वक सृ, दिव्, क्षिप्, रट्, वद्, दह् और मुह् धातु, सम्पूर्वक सृज्, पृच् और ज्वर् धातु, विपूर्वक विच् और चर् धातु, प्रपूर्वक लप्, सृ, मन्थ्, वद् और वस्, अति और अपपूर्वक चर्, अभि+हन्, अनु+रुध्। त्यज्-त्यागिन् (त्यागी), रागिन् (प्रेमयुक्त, प्रेमी), भागिन् (हिस्सेदार), दोषिन् (दोष देने वाला)। इसी —— द्वेषिन्, द्रोहिन् आदि। यह शम् आदि धातुओ से भी होता है, परन्तु उनमे

गुण वृद्धि आदि नहीं होगी । शम्–शमिन् (शान्त), मद्–मदिन् । अन्यत्र उत्+मद्–उन्मादिन्, प्र+मद्–प्रमादिन् ।

णिनि (इन्)—कर्ता अर्थ मे ग्रह् आदि धातुओ से होता है । गृह्णातीति ग्राहिन् (लेने वाला), स्था–स्थायिन्, वि+सि–विषयिन् (भोगो मे लिप्त), अप+राध्–अपराधिन् (अपराधी), परि+भू–परिभाविन् (हराने वाला), आदि । कुमार और शीर्ष पहले होने पर हन् से । कुमार हन्तीति कुमारघातिन् (बच्चे की हत्या करने वाला), शीर्षघातिन् (सिर काटने वाला) । जाति-वाचक से भिन्न सुबन्त पहले होने पर स्वभाव अर्थ मे किसी भी धातु से इन् प्रत्यय हो सकता है। उष्णभोजिन् (उष्ण भोक्तु शीलमस्य, गर्म खाना खाने वाला), साधुकारिन् (सत्कर्म करने वाला), ब्रह्मवादिन् (ब्रह्म या वेद की व्याख्या करने वाला) । कोई सुबन्त पहले होने पर मन् धातु से । पण्डित-मानिन् (अपने आप को पण्डित मानने वाला), दर्शनीयमानिन् (अपने आपको सुन्दर समझने वाला), आदि । यज्ञवाचक शब्द पहले होने पर यज् धातु से भूत-काल मे इन् होता है । सोमयाजिन् (जिसने सोमयाग किया है) । इसी प्रकार अग्निष्टोमयाजिन् । कर्म पहले होने पर हन् धातु से । पितृव्यघातिन् (अपने चाचा को मारने वाला) । उपमान–शब्द पहले होने पर किसी भी धातु से यह हो सकता है । उष्ट्रक्रोशिन् (ऊँट की तरह बोलने वाला), ध्वाक्षराविन् (कौवे की तरह बोलने वाला) । व्रत के अर्थ म भी यह होता है। स्थण्डिलशायिन् (चबूतरे पर सोने की प्रतिज्ञा वाला) । यह अवश्य अर्थ मे और ऋण उतारने अर्थ मे भी होता है। अवश्यभाविन् (अवश्य होने वाला), शतदायिन् (सौ रु० ऋण उतारने वाला) ।

इष्णु (इष्णुच्, खिष्णुच्)—निम्नलिखित धातुओ से 'स्वभाव है, उसका गुण है और उस कार्य को ठीक ढग से करता है' अर्थो मे इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय होता है। अल+कृ, निरा+कृ, प्र+जन्, उत्+पच्, उत्+पत्, उत्+मद्, रुच्, अप+त्रप्, वृत्, वृध्, सह् और चर् से। अलकरिष्णु (सजाने वाला, सजाने मे निपुण), निराकर्तुं शीलमस्य निराकरिष्णु (देखो भट्टि० ५-१, हटाने वाला), उत्पतिष्णु (उडने मे चतुर), वर्तिष्णु, वर्धिष्णु, सहिष्णु, रोचिष्णु आदि। कवियो ने इस प्रत्यय का अन्य कुछ धातुओ के साथ भी प्रयोग किया है। जैसे—प्रभविष्णु (शक्तिशाली), भ्राजिष्णु (तेजस्वी), क्षयिष्णु आदि ।

इष्णु (खिष्णुच्) और उक (खुकञ्)--अभूततद्भाव (जैसा पहले नही था वैसा होना) अर्थ मे आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध और प्रिय शब्द पहले होने पर भू धातु से इष्णु और उक प्रत्यय होते हैं। अनाढ्य आढ्य सजात --आढ्यभविष्णु, आढ्यभावुक (जो पहले सेठ नही था, वह सेठ होता है, देखो भट्टि० ३-१) । इसी प्रकार ख्युन् (अन) प्रत्यय होकर आढ्यकरणम् आदि भी रूप बनते हैं।

उ--(उ और डु) --

उ--सन्नन्त धातुओ से उ प्रत्यय होकर सज्ञा शब्द बनते है। चिकीर्षु (करने का इच्छुक), विजिगीषु (जीतने का इच्छुक), आदि । आ+शस्, भिक्ष्, विद् और इष् से भी उ होता है । आशसु (इच्छुक, आशायुक्त), भिक्षु (भिखारी), विदु (जानने वाला), इच्छु (चाहने वाला) ।

डु (उ)--वि, प्र और सम् उपसर्ग पहले होने पर भू धातु से होता है। विभु (व्यापक), प्रभु (समर्थ), सभु (उत्पादक) । द्रु धातु से भी डु होता है। मितद्रु (निश्चित स्थान तक जाने वाला), शतद्रु (एक नदी का नाम, जो सैकडो नदियो म मिलती है) ।

उक (उकञ्)--इन धातुओ से कर्ता अर्थ म उक प्रत्यय होता है--लष्, पत्, पद्, स्था, भू, वृष्, हन्, कम्, गम् और शॄ। लष्--लाषुक (चमकने वाला इच्छुक), पातुक (गिरने वाला), भू--भावुक (होने वाला, जीवित), हन् --घातुक, कम्--कामुक (विषयी) ।

उर (कुरच्)--यह विद्, भिद् और छिद् से होता है। विदुर (जानने वाला), भिदुर (टूटने वाला), छिदुर (कटने वाला) ।

ऊक--यह जागृ धातु से तथा यज्, जप् और दश् के यङन्त अग से होता है। जागरूक (सावधान) आदि। (देखो भट्टि० २-२२, रघु० १४ ८५, शिशु० २० ३६) । पुन पुन अतिशयेन वा यजनशील यायजूक (बार बार यज्ञ करने वाला, देखो भट्टि० २-२०) । पुन पुन अतिशयेन वा जपतीति जजपूक (बार-बार जप करने वाला, एक यति) । पुन पुन अतिशयेन वा दशतीति ददशूक (बार बार काटने वाला, साँप, दैत्य, देखो भट्टि० १-२६) ।

क्विन्, क्विप् और ण्वि--धातुओ से इन प्रत्ययो को लगाकर रूप बनाए जाते हैं। इन प्रत्ययो का कुछ भी शेष नही रहता है। इन प्रत्ययो को लगाने से

अन्तर यह पड़ता है कि यदि धातु के अन्त मे ह्रस्व स्वर है तो उसके बाद त् और
जुड़ जाता है।

क्विन् (०)—इन स्थानो पर लगता है—यदि कोई सुबन्त पहले होगा तो
स्पृश् धातु से। घृतस्पृश् (घी को छूने वाला), मन्त्रस्पृश् (मन्त्र पढने के बाद
किसी वस्तु को छूने वाला)। यदि सुबन्त जलवाचक होगा तो नही। उदकस्पर्शः
(जल को छूने वाला), इसका उदकस्पृश् नहीं बनेगा। निम्नलिखित क्विन्-
प्रत्ययान्त शब्द निपातन (ऐसा इष्ट है) से बनते है—यज्—ऋत्विज् (ऋतौ
ऋतौ यजते, प्रत्येक ऋतु मे यज्ञ करने वाला, यज्ञ मे पुरोहित), धृष्—दधृष्
(घमण्डी), सृज्—स्रज् (माला), दिश्-दिश् (दिशा), स्निह्-उष्णिह् (एक
छन्द का नाम)। इस प्रत्यय से ही अञ्च् धातु से प्राङ् आदि रूप तथा युज् और
कुञ्च् रूप बनते हैं।

क्विप् (०)—धातुओ से यह प्रत्यय होता है, उपसर्ग पहले हो या न हो।
सूते असौ सू या प्रसू (जन्म देने वाली, माता), सद्—द्युसद (द्युलोक मे रहने
वाले, देवता), द्विष्—प्रद्विष् (शक्तिशाली शत्रु), युज्—अश्वयुज् (अश्विनी
नक्षत्र), नी—सेनानी (सेनापति), राज्—विराज् (विराट्), चि—अग्निचित्
(अग्निहोत्र करने वाला, गृहस्थ), जि—इन्द्रजित् (इन्द्र को जीतने वाला, रावण
का पुत्र मेघनाद), स्तु—देवस्तुत् (देवो की स्तुति करने वाला), सु—सोमसुत्
(सोमरस निकालने वाला), कृ—कर्मकृत्, भाषाकृत्, टीकाकृत् आदि। कर्म
पहले होने पर दृश्, स्पृश् और सृज् से क्विप् होता है। सर्वदृश् (सबको देखने
वाला), मर्मस्पृश् (मर्मस्थलो को छूने वाला), विश्वसृज् (ससार का स्रष्टा)।
अद् और हन् से। क्रव्याद् (मासभक्षक, राक्षस), ब्रह्महन् (ब्राह्मण का हन्ता)।
छाद् को क्विप् होने पर छद् हो जाता है। तनुच्छद् (वस्त्र)। क्विप् प्रत्यय
होने पर अनुनासिक अन्त वाली धातुओ की उपधा को दीर्घ हो जाता है। जैसे—
शम्—प्रशाम् (शान्त), तन्—प्रतान् (फैलाने वाला), आदि। इन धातुओ की
उपधा को दीर्घ नही होता है, अपितु इनके अन्तिम अनुनासिक का लोप हो जाता
है और अन्त मे त् जुड जाता है—गम्, नम्, यम् और तन्। अध्वान गच्छतीति
अध्वगत् (यात्री), परि तनोतीति—परीतत् (चारो ओर फैला हुआ), सुनत्
(झुकने वाला,'विनम्र'), सयत् (सयमी), आदि। क्विप् होने पर शास् के आ
को इ हो जाता है। मित्र शास्तीति—मित्रशिष् (मित्र को समति देने वाला),

आशिष् (आशीर्वाद)। गृ का गिर् (वाणी) बनता है

ध्वस् के अनुनासिक का लोप होता है और स् को द् हो जाता है। वाहभ्रत् (घोडे से गिरने वाला), उखास्रत् (बर्तन से नीचे गिरने वाला), पर्णध्वत् (पत्ते से नीचे गिरने वाला)। क्विप् प्रत्यय होने पर दिव् के व् को उ होता है और अन्य धातुओ के व् को ऊ होता है। अक्षद्यूत् (अक्षैर्दीव्यति, जुआरी), वे-ऊ (जुलाहा), अव्-ऊ (रक्षक)। इस ऊ को पूर्ववर्ती अ के साथ वृद्धि हो जाती है। जन+ऊ= जनौ (मनुष्यों का रक्षक)। ज्वर-जूर् (ज्वरयुक्त), त्वर्-तूर् (तीव्र चलने वाला)। क्विप् प्रत्यय होने पर धातु के र् के बाद च् और छ् का लोप हो जाता है। मूर्च्छ्-मूर् (मूर्च्छित), धुर्व्-धूर् (चोट पहुँचाने वाला), अक्षधूर् (गाडी की धुरी को हानि पहुँचाने वाला अर्थात् बोझ)। निम्नलिखित शब्द अनियमित रूप से बनते हैं---वच्-वाच् (वाणी), प्रच्छ्-प्राच्छ् (पूछने वाला), भ्रु-कटप्रू (इच्छानुसार काम करने वाला, शिव का नाम, एक कीडा, जुआरी), आदि। श्रि-श्री (लक्ष्मी, धन), व्रज्-परिव्राज् (सन्यासी), द्युत्-दिद्युत् (बिजली), गम्-जगत् (ससार), ध्यै-धी (बुद्धि)।

ण्वि (०)—भज् धातु से ण्वि होता है और धातु के अ को आ हो जाता है। अशभाज् (अपना हिस्सा लेने वाला), प्रभाज् (भक्त, पूजक), आदि।

ति (क्तिन्)—इससे स्त्रीलिंग सज्ञा शब्द बनते हैं। कृ-कृति (कार्य), स्तु-स्तुति (स्तुति, प्रशसा), गम्-गति (चाल), रम्-रति (आनन्द), नम्-नति (झुकना), स्था-स्थिति (परिस्थिति), गै-गीति (गाना), पा-पीतिः (पीना), पच्-पक्ति (पकाना), यज्-इष्टि, आदि। श्रु, त्यज्, स्तु और इष् धातुओ से करण (साधन) अर्थ मे ति होता है। श्रुति (श्रवण का साधन, कान), आदि। सम्+पद् और वि+पद् से क्तिन् और क्विप् दोनो होते हैं। सपत्ति - सपद् (धन, समृद्धि), विपत्ति -विपद् (आपत्ति)। दीर्घ ऋकारान्त धातुओ और लू आदि के बाद ति को नि हो जाता है। कृ-कीर्णि (बखेरना)। ये रूप निपातन से बनते हैं— सो-साति (अन्त), हन्-हेति (शस्त्र), कृत्-कीर्ति (यश)।

तृ (तृच्, तृन्)—तृच्-सभी धातुओ से कर्ता अर्थ मे तृच् (तृ) होता है। कृ-कर्तृ (करने वाला), गम्-गन्तृ, पच्-पक्तृ, सह्-सोढृ, सहितृ, इष्-एष्टृ,

एधितृ आदि। क्रम्-क्रन्तृ, क्रान्तृ, क्रमितृ (जाने वाला), आदि। तृन्-होतृ
(नियम से यज्ञ करने वाला), आदि।
त्र (ष्ट्रन्)--इन धातुओं से करण (साधन) अर्थ में त्र होता है--
दा या दो, नी, शस्, यु, युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह्, पत्, पद्, नह् और दश्।
दा या दो--दात्रम् (काटने का साधन, दरांती), नेत्रम् (आँख), शस्-शस्त्रम्
(शस्त्र), शास्-शास्त्रम्, यु-योत्रम्, युज्-योक्त्रम् (रथ आदि के जुए में पशु
को बांधने की रस्सी), स्तु-स्तोत्रम् (स्तोत्र), तुद्-तोत्रम् (चाबुक),
सिच्-सेक्त्रम् (सिंचाई का फव्वारा), मिह्--मेढ्रम्, पत्-पत्रम् (यान,
पख आदि), नह्--नद्ध्री (चमड़े का फीता), दश्-दंष्ट्रा (दाढ़)। करण
अर्थ में ही पू धातु से भी त्र होता है। पोत्रम् (सूअर का मुँह, हल की फाल,
बिजली, छोटे वस्त्र पोतड़े), पवित्रम् (पवित्रता का साधन, कुशा की बनी हुई
अँगूठी जो धार्मिक कृत्यों के समय अनामिका में पहनी जाती है)। धे और धा
से धात्री (माता, दाई, पृथ्वी, एक वृक्ष का नाम)।
त्रि (क्त्रि)--यह कुछ धातुओं से ही लगता है। इसके बाद अन्त में म
लग जाता है। पच्-पक्त्रिम (पाकेन निवृत्त, पका हुआ, परिपक्व), कृ--
कृत्रिम (बनावटी), दा-दत्रिम (दान से बना हुआ, देखो भट्टि० ११०, १३)।
थक--गै--गाथक (गाने वाला)
न--(नङ, नन्)--
नङ (न)--इन धातुओं से न लगता है--यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ्
और रक्ष्। यज्ञ (यज्ञ), याच्ञा (माँगना), यत्न (प्रयत्न), विश्न (जाना,
तेज), प्रश्न (प्रश्न), रक्ष्ण (रक्षण)।
नन् (न)--स्वप्-स्वप्न (सोना)।
नज् (नजिङ)--स्वभाव अर्थ में स्वप्, तृष् और धृष् से नज् होता है।
स्वप्नज् (निद्रालु), तृष्णज् (प्यासा), धृष्णज् (ढीठ, आत्मविश्वासी)।
नु (क्नु)--स्वभाव अर्थ में त्रस्, गृध्, धृष् और क्षिप् से नु होता है। त्रस्नु
(डरपोक), गृध्नु (लालची), धृष्णु (ढीठ), क्षिप्नु (फेंकने वाला)।
मर (क्मरच्)--सृ-सृमर (जाना, एक मृग), घस्-घस्मर (अधिक
खाने वाला), अद्-अद्मर (अधिक खाने वाला, पेटू)।
य (क्यप्)--इन स्थानों पर होता है--व्रज्, यज् और कृ से य होकर

भाववाचक स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं। व्रज्या (सन्यासीपन, आश्रमण), इज्या (यज्ञ), कृत्या (करना)। कृ से श और क्तिन् भी होते हैं, क्रिया, कृति। करण और अधिकरण अर्थों मे सम् + अज् (अज् को वी नहीं होगा), नि+सद्, नि+पत्, मन्, विद्, सु, शी, भृ और इ से य होगा। समज्या (सभागृह), निषद्या (बाजार, पलग, सभागृह), निपत्या (रपटन वाली भूमि), मन्या, विद्या, सुत्या (सोमरस छिड़कना), शय्या (बिस्तर), भृत्या (नौकरी, वेतन), इत्या (सवारी, यान)।

र—इन धातुओ से होता है—नम्, कम्प्, स्मि, कम्, हिंस् और दीप्। नम्र (झुकना, विनीत), कम्प्र (कांपने वाला), स्मेर (मुस्कराना), कम्र (सुन्दर), हिंस्र (हिंसक), दीप्त (चमकने वाला)। नञ् + जस् से अजस्रम् (क्रियाविशेषण) रूप बनता है। नञ् को अ हो जाता है। अन्त मे र प्रत्यय है।

रु—दा, धे, सि, शद् और सद् से रु होता है। दा—दारु (देने वाला या खाने वाला), धे–धारु (पीने वाला), सेरु (बांधने वाला), शद्रु (जाने वाला या नष्ट करने वाला), सद्रु (जाने वाला या विश्राम करने वाला)।

वन् (क्वनिप्)—दृश् से पारदृश्वन् (जिसने उसका अन्त देखा है, अत विद्वान् या चतुर), युध्–राजयुध्वन् (राजा से युद्ध करने वाला)। इसी प्रकार राजकृत्वन्, सहयुध्वन् और सहकृत्वन्।

वर (क्वरप्)—इ, जि, नश् और सृ से वर होता है। इत्वर (जाने वाला, क्रूर) जित्वर (विजयी), नश्वर (नष्ट होने वाला)। गम् से भी वर होता है। गत्वर (जाने वाला, नश्वर)।

अध्याय १५

वाक्य–विन्यास (Syntax)

७७८ वाक्य विन्यास मे वाक्य मे विभिन्न पदो को यथास्थान रखने की पद्धति पर विचार होता है। वाक्य विन्यास म तीन बातें आती हैं—पदो का परस्पर समन्वय, कारक और क्रम। सस्कृत के वाक्य विन्यास म प्रथम दो पर ही विचार हुआ है। इग्लिश मे वाक्य विन्यास मे अन्तिम पर ही मुख्यतया विचार हुआ है। सस्कृत और उसकी सजातीय भाषाएँ विभक्ति प्रधान हैं, अत उनमे परस्पर पदो का सबन्ध शब्द के अन्त मे होने वाली विभक्तियो से निर्धारित होता है, भले ही वे कही पर भी रख दिए जाएँ। क्रम परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन नही होता है। किन्तु इग्लिश तथा अन्य भाषाएँ विभक्ति हीन है उनमे क्रम ही सर्वोत्तम महत्त्व की बात है। उनमे क्रम परिवर्तन करते ही अर्थ मे परिवर्तन हो जाता है। अत सस्कृत मे केवल पदो का क्रम ही बहुत महत्त्व नही रखता है, तथापि सस्कृत मे इस विषय मे पूर्णतया स्वच्छन्दता नही बरती जा सकती है। सस्कृत वाक्य विन्यास मे सुप् और विभिन्न तिङ प्रत्ययो, कृत् प्रत्ययो आदि के अर्थ और प्रयोग पर भी विचार किया जाता है। इन पर आग यथास्थान विचार किया जाएगा।[1]

---

१ सस्कृत-साहित्य का अधिकाश भाग पद्य-बद्ध है, अत उसमे वाक्य-विन्यास के नियमो का कवियो ने प्राय पालन नहीं किया है। सामान्य गद्यात्मक रचना मे वाक्य मे पदो का क्रम प्राय इस प्रकार होता है—पहले कर्ता और कर्ता के विशेषण, उसके बाद कर्म और कर्म के विशेषण, उसके बाद क्रिया-विशेषण और अन्य अव्यय तथा अन्त मे विधेय या क्रिया-शब्द। प्रो० मैक्स मूलर (Max Muller) के कथनानुसार सस्कृत की शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—सबद्ध उपवाक्यो की अधिकता, सप्तम्यन्त क्रियार्थक क्रिया, उपवाक्य के स्थान पर समासयुक्त पदो और क्त्वा आदि प्रत्ययान्त रूपो का प्रयोग, तिङन्त रूपो के स्थान पर क्त या क्तवतु-प्रत्ययान्त प्रयोग, कर्मवाच्य प्रयोग की ओर अभिरुचि, अप्रत्यक्ष वाक्य रचना (Indirect Construction) और लेट् लकार के प्रयोग का अभाव। अतएव त्वारो का प्रयोग अपेक्षाकृत सरल है। विभक्तियो का प्रयोग लेटिन और ग्रीक की अपेक्षा अस्पष्ट है और कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित करता है।—M Williams' Grammar for Beginners.

वाक्यार्थनिर्णायक अव्यय शब्द (The Article)

७७६. जिस प्रकार इंग्लिश मे निश्चित और अनिश्चित के बोधक वाक्यार्थ-निर्णायक अव्यय शब्द है, उस प्रकार सस्कृत मे वाक्यार्थ-निर्णायक अव्यय शब्द नही हैं। 'कोई' अर्थ को सूचित करने के लिए सस्कृत में कश्चित् और एक शब्द हैं तथा इंग्लिश के The का अर्थ सूचित करने के लिए तत् (पु०, स्त्री०, नपु०) शब्द है। कश्चित् नर (कोई आदमी), एक पान्थ (एक पथिक), स राजा (वह राजा), आदि।

७८०. पहले (देखो नि० ५४) उल्लेख किया जा चुका है कि सस्कृत मे तीन वचन हैं। एक व्यक्ति या वस्तु के लिए एकवचन, दो के लिए द्विवचन और दो से अधिक के लिए बहुवचन। इन सामान्य नियमो के अतिरिक्त ऐसा भी होता है —

(क) जाति अर्थ मे एकवचन का प्रयोग होता है। सिंहः श्वापदराजः (शेर जानवरो का राजा है), बुद्धिमत्सु नर श्रेष्ठ, आदि।

(ख) कभी कभी द्विवचन उसी वर्ग के पुलिंग और स्त्रीलिंग का सूचक होता है। पितरौ (माता-पिता) चटकौ (पु० और स्त्री० चिड़िया)।

(१) सूचना—द्वय, द्वितीय, युग, द्वन्द्व आदि शब्द 'दो' अर्थ के बोधक हैं। इनका अर्थ द्विवचन वाला है और स्वरूप एकवचन वाला। इनका एकवचन मे ही प्रयोग होगा। जब कई जोडे का अर्थ होगा तब द्विवचन आदि होगे।

(२) सूचना—हस्तौ, नेत्रे, पादौ आदि शब्द सस्कृत मे सदा द्विवचनान्त ही प्रयुक्त होते हैं।

(ग) एकवचन की तरह बहुवचन भी जाति का सूचक होता है। ब्राह्मणा पूज्या या ब्राह्मण पूज्य (ब्राह्मण जाति पूजनीय है)।

(१) पूजा या आदर अर्थ की सूचना के लिए प्राय एकवचन के स्थान पर बहुवचन लगाया जाता है। इति श्रीशकराचार्या (श्रीशकराचार्यजी ऐसा कहते हैं), इति आचार्यपादा (पूजनीय आचार्यजी की यह सम्मति है), आदि।

(२) विशिष्ट व्यक्ति और विशिष्ट लेखक कभी कभी उत्तमपुरुष मे एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करते हैं। वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः (हम आप से कुछ पूछते हैं। यहाँ पर मैं के स्थान पर हम है)। इति तु वयम्

(यह हमारा अर्थात् लेखक का मत है)। वयमपि च गिरामीश्महे (हमारा वाणी या भाषा पर अधिकार है)।

(३) निम्नलिखित शब्दों का बहुवचन में ही प्रयोग होता है भले ही अर्थ एकवचन भी हो। दारा, गृहा, अक्षताः, सिकता, आप, प्राणाः, लाजा आदि।

(४) देश में निवासी जनता के नाम के आधार पर पड़े हुए देश के नामों में बहुवचन का ही प्रयोग होता है। स विदेहान् उपायसौ (वह विदेह देश को गया), आदि।

यदि समस्त पद के अन्त में देश, विषय आदि देशवाचक शब्द होंगे तो वहाँ पर एकवचन ही होगा। अस्ति मगधदेशे पाटलिपुत्र नाम नगरम् (मगध-देश में पाटलिपुत्र या पटना नामक नगर है)।

(५) व्यक्तिवाचक नामों में बहुवचन गोत्र या वंश का सूचक होता है। जनकाना रघूणा च यत् कृत्स्न गोत्रमङ्गलम् (उत्तर०)।

भाग १

पदों का परस्पर समन्वय (Concord)

७८१ पदों के परस्पर समन्वय का अर्थ है—वाक्य में पदों के लिंग, वचन, पुरुष या काल की समरूपता।

संस्कृत में पदों के परस्पर समन्वय के विषय में तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) कर्ता और क्रिया का समन्वय, (२) विशेषण और विशेष्य का समन्वय, (३) सापेक्ष शब्दों का अपने पूर्ववर्ती सबद्ध शब्द से समन्वय।

कर्ता और क्रिया का समन्वय

७८२ क्रिया का वचन और पुरुष वही होना चाहिए जो कर्ता का है। आसीत् राजा नलो नाम (नल नाम का एक राजा था), अहं गच्छामि (मैं जाता हूँ), ब्राह्मणौ गच्छतः (दो ब्राह्मण जाते हैं), इत्यादि।

७८३. (क) जब दो या अधिक कर्ताओं का च (और) शब्द के द्वारा सबन्ध हो और वे भिन्न-भिन्न वचनों के हों तो क्रिया में बहुवचन लगेगा। तत कुन्ती च राजा च भीष्मश्च सह बन्धुभि। ददु श्राद्ध तदा पाण्डो० (महाभारत)। कभी कभी समीपवर्ती कर्ता के आधार पर क्रिया का रूप होता है। सा च सत्य-वती देवी गान्धारी च यशस्विनी। गजदारै परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ। (महाभारत)। अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्।

(ग) जब सभी कर्ता एकवचन हों और उनका 'वा' (अथवा) के द्वारा सम्बन्ध हो तो क्रिया एकवचन होती है। जहाँ पर कर्ता विभिन्न वचनों के होंगे और वा के द्वारा सम्बद्ध होंगे, वहाँ पर निकटतम कर्ता के अनुसार क्रिया का रूप होगा। राम गोविन्दो वा व्रजतु (राम या गोविन्द जावे)। स वा इमे बालका वा आम्रं गृह्णन्तु (वह या ये बालक आम ले)।

७८४ (क) जहाँ पर प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष में से दो या तीन विभिन्न पुरुषों के कर्ता हों और 'च' के द्वारा सम्बद्ध हों, वहाँ पर प्रथम और मध्यम में उत्तम पुरुष प्रबल होता है तथा प्रथम और मध्यम में मध्यम प्रबल होता है। त्वमहं रामश्चैतत् करिष्याम (राम, तू और मैं इस काम को करेंगे), त्वं रामश्च पाठशालां गच्छतम्।

(ख) किन्तु जब 'वा (अथवा) के द्वारा कर्ताओं का सम्बन्ध होगा तो निकटतम कर्ता के अनुसार क्रिया का रूप होगा। स वा वयं वा तत् सम्पादयाम (वह या हम उस काम को पूरा करते हैं), अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति (मैं या राजा राम या लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त होगा)।

७८५. यह आवश्यक नहीं है कि विधेय तिङन्त क्रिया ही हो, अपितु कोई कृत्प्रत्ययान्त या संज्ञा अथवा विशेषण शब्द उसका स्थान ले सकता है।

(क) जब विधेय के रूप में क्त या क्तवतु प्रत्ययान्त का प्रयोग होता है तो क्त प्रत्ययान्त के लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं तथा क्तवतु-प्रत्ययान्त के लिंग और वचन कर्ता के अनुसार होते हैं। स तदुक्तवान् (उसने वह बात कही), सा तदुक्तवती (उस स्त्री ने वह बात कही), तेषां बन्धनानि छिन्नानि (उनके बन्धन कट गए), कार्यं कृतम् (काम किया), लता छिन्ना (लता काटी गई), आदि।

(ख) जब विशेषण या संज्ञा शब्द का विधेय के रूप में प्रयोग होता है तो उसके साथ अस् या भू धातु का कोई रूप प्रयुक्त होता है अथवा अनुमित रहता है। विधेय के रूप में प्रयुक्त विशेषण शब्दों के लिंग और वचन कर्ता के तुल्य होते हैं, किन्तु आस्पद, पात्र, भाजन, स्थान, पद आदि शब्दों के लिंग और वचन वही रहते हैं, उनमें अन्तर नहीं होता है। सुभृत्य दुर्लभ (अच्छा नौकर दुर्लभ है), सुपुत्र पितु गर्वास्पदम् (सुपुत्र पिता के लिए गर्व की वस्तु है), सम्पद पदमापदाम् (सम्पत्ति आपत्ति का घर है), मन्तु तस्या अभिमानभूमि, आदि।

इन स्थानों पर कर्ता के वचन के अनुसार क्रिया का वचन होगा, न कि विधेय के वचन के अनुसार। सम्पद् आपदः पद नहिं प्रयोग होगा, न कि अग्नि।

७८६ जहाँ पर अपूर्ण क्रिया के साथ संज्ञा या विशेषण का विधेय के रूप में प्रयोग होता है और क्रिया का लगना, प्रतीत होना, होना, प्रकट होना आदि अर्थ होता है, वहाँ पर विधेय के रूप में प्रयुक्त संज्ञा या विशेषण शब्द में कर्ता वाला ही कारक लगेगा। एष मे निश्चयः (यह मेरा निश्चय है), स भूपतिः प्रजागरकृशः लक्ष्यते (वह राजा रात्रिजागरण के कारण दुर्बल दिखाई दे रहा है), प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (तीनों लोकों का स्वामी होने का इच्छुक)।

(क) यदि सकर्मक धातु कर्मवाच्य में अपूर्ण विधेय के साथ प्रयुक्त होगी तो भी उपर्युक्त नियम लगेगा। तेन मुनिना स मूषकः बिडालः कृतः (उस मुनि ने उस चूहे को बिलाव बना दिया)। नृपो हि विष्णुः मन्यते (राजा को विष्णु माना जाता है)।

७८७ यदि क्रिया के स्थान पर किसी अव्यय का क्रियावत् प्रयोग होता है तो उसके कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।[1] विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् (कुमार० २-५५) (विष के वृक्ष को भी बढ़ा करके स्वयं उसे काटना उचित नहीं है)। यहाँ पर असाम्प्रतम् पद अव्यय न युज्यते के स्थान पर है और इसका पूरा वाक्य होगा—वृक्षं संवर्ध्य च छेत्तुम् असाम्प्रतम् (न युज्यते), योऽपि विषवृक्षः स्यात्।

विशेषण और विशेष्य का समन्वय

७८८. विशेषण (कृत्प्रत्ययान्त या शुद्ध) में लिंग, विभक्ति और वचन वही होता है जो विशेष्य में होता है। रूपवान् पुरुषः (सुन्दर पुरुष), रूपवती स्त्री (सुन्दर स्त्री), महत् नाटकम् (महान् नाटक)। एतानि मधुराणि पुस्तकानि, गच्छन्ती नारी, आदि।

किन्तु जिन संख्यावाचक विशेषण शब्दों के लिंग और वचन निश्चित हैं उनमें परिवर्तन नहीं होता है। शतं ब्राह्मणाः (सौ ब्राह्मण) शतं स्त्रियः (सौ स्त्रियाँ), विंशतिः बालकाः (२० बालक)।

७८९ जहाँ पर एक विशेषण के दो या अधिक विशेष्य होंगे, वहाँ पर विशेष्यों की सामूहिक संख्या के अनुसार विशेषण में वचन होगा। यदि विशेष्य

१. निपातेनाभिहिते कर्मणि न विभक्तिपरिगणनस्य प्रायिकत्वात्। (वामन)

विभिन्न लिंगों के हैं और उनमें से एक पुलिंग और दूसरा स्त्रीलिंग है तो विशेषण पुलिंग होगा और यदि विशेष्य पु०, स्त्री० और नपु० तीनों हैं तो विशेषण नपु० होगा। *राजा राज्ञी च स्तुत्यचरितौ स्तः* (राजा और रानी प्रशंसनीय चरित्र वाले हैं)। धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः। अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः॥ (धर्म, इच्छापूर्ति, गर्व, हर्ष, क्रोध, सुख, दीर्घ आयु, ये सभी चीजें धन से प्राप्त होती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है)।

(क) *कभी कभी अधिकतर विशेष्यों में जो लिंग होता है, वही विशेषण में* भी हो जाता है। वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्॥ (मनु का वचन है कि सैंकड़ों अनुचित कार्य करने पर भी वृद्ध माता पिता, सती स्त्री और छोटे बालक का पालन करना ही चाहिए)।

(ख) जहाँ पर च (और) अव्यय का प्रयोग होता है, वहाँ पर कभी कभी निकटतम शब्द का लिंग और वचन विशेषण में लगता है। उद्वेगः कलहः कण्डूः *सेव्यमाना च वर्धते।* (*खिन्नता, झगड़ा और खुजली सेवा किए जाने पर बढ़ते ही हैं*), यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च (कृतीनि) (जिसके पराक्रम से हम और तीनों लोक प्रसन्न हुए हैं)।

७६० जहाँ पर भूतकालिक कृदन्त (क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) या कृत्य-प्रत्ययान्त (तव्य आदि प्रत्ययान्त) किसी कर्ता के साथ विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वहाँ पर इनमें लिंग और वचन कर्ता के अनुरूप होंगे। कृता शरव्यं हरिणा तवासुराः (शाकु० ६) (इन्द्र ने असुरों को तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनाया है)।

यत् और तत् का परस्पर समन्वय

७६१ तत् शब्द में वही लिंग, वचन और पुरुष होता है, जो यत् शब्द में होता है। यत् और तत् में कारक का निर्णय वाक्य में उनकी स्थिति के अनुसार होता है। यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः (जिसके पास धन है, वह आदमी कुलीन माना जाता है)। यस्य बुद्धिर्बलं तस्य। यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत् (*संसार में जिस वस्तु को जिससे मिलाना उपयुक्त है विद्वान् को चाहिए कि* वह उस वस्तु को उससे मिला दे)।

७६२ जहाँ पर तत् शब्द के विशेष्य का लिंग यत् शब्द के विशेष्य के

लिंग से भिन्न होता है, वहाँ पर यत् शब्द में अपने विशेष्य का लिंग होता है और तत् शब्द में अपने विधेय का। परगुणासहिष्णुता हि यत् स दुर्जनानां स्वभावः (दूसरे के गुणों को न सहना, यह दुर्जनों का स्वभाव है), शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य।

७६३. यत् नपुं० एकवचन का प्रयोग 'कि' (इसलिए या That) के अर्थ में होता है और यह नए उपवाक्य का प्रारम्भ करता है। बाद में तत् शब्द में वही लिंग होगा जो कि पूर्ववाक्य में विशेष्य शब्द में है। यद् विद्वान् अपि नरः अन्यान् विगणयति स धनमद एव (यह धन का ही मद है कि विद्वान् मनुष्य भी अन्यों का तिरस्कार करता है)। सत्योऽयं जनप्रवादः यत् सम्पत् सम्पदमनुबध्नातीति (यह लोकोक्ति सत्य है कि सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति चलती है)।

विशेष—कभी कभी पूर्ववाक्य में संज्ञा या सर्वनाम शब्द लुप्त रहता है और उसका आगामी वाक्य के लिंग और वचन के आधार पर अनुमान किया जाता है। जैसे—धनेन किं यो न ददाति याचके (यहाँ पर तस्य धनेन किम्, अर्थ होगा। उसके धन से क्या लाभ, जो याचकों को नहीं देता है।)

भाग २

कारक-प्रकरण (Government)

७६४ संस्कृत व्याकरण में वाक्य-विन्यास में केवल कारक-प्रकरण का ही पृथक् विचार हुआ है। एक वाक्य में संज्ञा और क्रिया के बीच जो सम्बन्ध है, उसके आधार पर ही कारक नाम दिया गया है। संस्कृत में ६ कारक हैं। षष्ठी को कारक नहीं माना जाता है, क्योंकि उसमें संज्ञा शब्दों का ही सम्बन्ध बताया जाता है, क्रिया के साथ सबन्ध नहीं। ६ कारक ये हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण।

७६५ संस्कृत में कुछ अव्यय शब्द हैं जिनके आधार पर कारक होते हैं। इन अव्ययों के आधार पर होने वाली विभक्तियों (कारकों) को उपपदविभक्ति कहते हैं और क्रियाओं के आधार पर होने वाली विभक्तियों को कारक विभक्ति कहते हैं। जहाँ पर दोनों प्रकार की विभक्तियाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ पर उपपद-विभक्ति की अपेक्षा कारक-विभक्ति अधिक बलवान् होती है। (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)। जैसे—मुनित्रयं नमस्कृत्य, में नमः के कारण चतुर्थी होनी चाहिए थी, पर कारक-विभक्ति द्वितीया हुई।

७९६ इंग्लिश् तथा अन्य भाषाओं के तुल्य कर्ता कारक कर्ता या वस्तु का निर्देशमात्र करता है। प्रथमा विभक्ति इन अर्थों को प्रकट करती है—प्रातिपदिक के अर्थ को, लिंग, परिमाण और संख्या मात्र को।[1] क्रिया के साथ प्रयुक्त होने पर यह कर्ता होता है।

कर्मकारक या द्वितीया विभक्ति (Accusative case)

७९७ द्वितीया विभक्ति कर्म का संकेत करती है। जिस व्यक्ति या वस्तु पर क्रिया का फल पड़ता है, वह कर्म है। हरिं सेवते (वह हरि की सेवा करता है)। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (गाँव को जाता हुआ वह तिनके को छूता है)।[2]

७९८ सभी सकर्मक धातुओं में कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। पुष्पाण्यवचिनोति (वह फलों को चुनता है), अप एव ससर्जादौ (परमात्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया), इत्यादि। कुछ सकर्मक धातुओं में मुख्य कर्म के अतिरिक्त गौण या कृत्रिम कर्म भी होता है, इंग्लिश् में इसको Factitive object कहते हैं। त्वामामनन्ति प्रकृतिं त्वामेव पुरुषं विदुः (कुमार० २-१३, वे तुझको प्रकृति मानते हैं और तुझको ही पुरुष समझते हैं), कुमारं नेतारं कृत्वा (कुमार को सेना का नेता बनाकर)। नाम्ना तमात्मजन्मानम् अजं चकार (उसने अपने पुत्र का नाम अज रक्खा)।

७९९ अकर्मक धातुओं के साथ समय या स्थान की दूरी तथा स्थान या देश के वाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है।[3] कुरून् स्वपिति (कुरुदेश में सोता है), तत्र कतिपयान् दिवसान् अवसत् (वह वहाँ कुछ दिन रहा), गादोहम् आस्ते (वह गाय के दुहे जाने तक वहाँ बैठता है), क्रोशं प्रतिष्ठते (वह एक कोस जाता है), क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक टेढ़ी-मेढ़ी गई है)। अन्यत्र—मासस्य द्विरधीते (महीने में दो दिन पढ़ता है), क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (एक कोस के एक हिस्से में पहाड़ है)।

८०० गत्यर्थक धातुओं (वास्तविक या आलंकारिक) के साथ स्थानवाची शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है। ग्रामं गच्छति (गाँव को जाता है), अधिज्य-

---

१. प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (२-३-४६)।

२. जब कर्मवाच्य में क्रिया और कर्म का सम्बन्ध प्रकट करना होता है, तो वहाँ पर कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। हरिः सेव्यते।

३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (२-३-५)।

धन्वा विचचार दावम् (धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाए हुए वह सारे वन में घूमा),
आनन्दस्य परां कोटिमध्यगच्छन् (उन्होंने आनन्द की चरम सीमा प्राप्त की),
मनसा कृष्णमेति (मन से कृष्ण का ध्यान करता है), इति चिन्तयन्नेव स निद्रां
ययौ (यह सोचता हुआ ही वह सो गया)।

(घ) जहाँ पर वास्तविक क्रिया है, वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति भी होती है।
ग्रामाय ग्रामं वा गच्छति। परन्तु मार्गवाचक शब्दों में चतुर्थी नहीं होगी। पन्थानं
गच्छति, ही होगा। ठीक मार्ग पर आना अर्थ होगा तो चतुर्थी हो जाएगी। उत्पथेन
पथे गच्छति (कुमार्ग से सन्मार्ग पर आता है)।

८०१ अधि उपसर्गपूर्वक शी, स्था और आस् धातुओं के अधिकरण में द्वितीया
विभक्ति होती है।[1] अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। शिलापट्टम्
अधिशयाना (शिलापट्ट पर लेटी हुई), अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ (इन्द्र
के आधे आसन पर वह बैठा) अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्याम् (सभी ऋतुओं में
सुखदायी अयोध्या में वह रहा)।

८०२ अभिनि-पूर्वक विश् धातु के आधार में द्वितीया विभक्ति होती है।[2]
अभिनिविशते सन्मार्गम् (वह सन्मार्ग का आश्रय लेता है)। धन्या सा गणिका-
दारिका यामेव भवन्मनोऽभिनिविशते (वह वेश्या की पुत्री धन्य है जिस पर आपका
मन लगा है), (देखो भट्टि० ८-८०)। कभी-कभी इसके साथ सप्तमी भी होती
है। अभिनिविशते पापे (वह पाप में प्रवृत्त होता है)। विश् धातु से पहले उपसर्ग
होने पर आधार में द्वितीया होती है परन्तु उप—विश् (बैठना) के साथ सप्तमी
होती है। आसनेऽस्मिन्नुपविश (इस आसन पर बैठो)।

८०३ वस् धातु से पहले उप, अनु, अधि और आ उपसर्ग होंगे तो द्वितीया
होगी।[3] उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ
में रहते हैं)। शून्यमन्ववसद् वनम् (वह निर्जन वन में रहा)। उपवास अर्थ में
उप+वस् धातु के साथ सप्तमी होगी। उपवसति वने रामः (राम वन में उपवास
करता है)।

८०४ इन अव्ययों के साथ द्वितीया होती है—उभयतः, सर्वतः, उपर्युपरि,

१. अधिशीङ्स्थासां कर्म (१-४-४६)।
२. अभिनिविशश्च (१-४-४७)।
३. उपान्वध्याङ्वसः (१-४-४८)।

अधोऽध, अध्यधि, धिक्, अभित, परित, समया, निकषा, हा, प्रति•(ओर), अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना, बारे में)।[1] उभयत कृष्ण गोपा (कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं), सर्वत प्रासाद जाग्रति दण्डधारिण (महल के चारों ओर रक्षक जागरूक हैं), उपर्युपरि लोक हरि (हरि लोकों के ऊपर हैं), अधोऽधो लोक पाताल (ससार के नीचे पाताल है), अध्यधि लोकम्, धिग् त्वां जाल्मान् (तुम दुष्टो को धिक्कार है), धिक् मानुज कुरुपतिम् (भाइया के सहित कौरवो के पति को धिक्कार है)। कभी कभी प्रथमा और सबोधन के साथ भी धिक् का प्रयोग मिलता है। धिगर्था कष्टसश्रया (धनो को धिक्कार है, जो कष्टो के कारण है), धिङ् मूर्ख (तुझ मूर्ख को धिक्कार है)। रक्षासि वेदि परितो निरस्थाद् अङ्गान्ययाक्षीदभित प्रधानम् (उसने वेदी के चारो ओर से राक्षसो को भगा दिया और प्रधान देवता के चारो ओर स्थापित गौण देवताओ के लिए यज्ञ किया।) (भट्टि० १-१२)। अभितस्त पृथासूनु स्नेहेन परितस्तरे (किराता० ११-८), ग्राम समया निकषा वा व्रजति (वह गाँव के पास जाता है)। (देखो शिशु० १-६८, ६-७३)। हा कृष्णाभक्तम् (कृष्ण के अभक्त के लिए खेद है), मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमन प्रति (नगर की ओर जाने के लिए मेरी उत्सुकता मन्द पड गई है), अन्तरा त्वा मा हरि, हरिमन्तरेण न सुखम् (हरि के बिना सुख नही मिल सकता है), देवी वसुमतीमन्तरेण (देवी वसुमति के बारे मे)।

उपर्युक्त अव्ययो मे कुछ के साथ षष्ठी होती है। जैसे—उपर्युपरि सर्वेपामादित्य इव तेजसा (वह अपने तेज के कारण सूर्य के तुल्य सबसे ऊपर दिखाई पड रहा था)।

८०५ निम्नलिखित उपसर्गो के साथ द्वितीया होती है[2]—

(क) अति (अतिक्रमण करना बढकर होना, पूजा अर्थ मे), अनु (बाद

---

१. उभयसर्वतसो कार्या धिगुपर्यादिपु त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। अभित परित समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि। सूत्र १-४-४८ पर वार्तिक। अन्तरान्तरेण युक्ते (२-३-४)।

२ कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (२-२-८)। जो उपसर्ग स्वतन्त्ररूप से प्रयुक्त होकर कर्म आदि कारको के कारण होते हैं, उन्हे कर्मप्रवचनीय कहते है। तृतीयार्थे (१-४-८५)। हीने (१-४-८६)। उपोऽधिके च (१-४-८७)। लक्षणेत्थभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनव (१-४-९०)। अभिरभागे (१-४-९१)।

मे, तुरन्त बाद मे, पास मे, हीन अर्थ मे), अभि (समीप) और उप (समीप, हीन)। जैसे—अति देवान् कृष्ण (कृष्ण शक्ति मे देवो से बढकर है), अति राम गोविन्द (गोविन्द राम मे बढकर है), जपमनु प्रावर्षत् (जप के तुरन्त बाद मे वर्षा हुई), सर्वं मामनु ते (तुम्हारी सब वस्तु मेरे पीछे है), अनु पितर गच्छति सुत (पुत्र पिता का अनुसरण करता है), न भवान् अनु राम चेत् (यदि आप राम मे हीन नही है तो)। इसी प्रकार अनु हरिं सुरा, भक्तो हरिम् अभि (भक्त हरि के समीप है), उप शूर न ते वृत्तम् (तुम्हारा कार्य शूर के अनुकूल नही है, अर्थात् उससे हीन है), आदि।

(ख) अभि, अनु, परि और प्रति जब किसी वस्तु का सकेत करते है तो इनके साथ द्वितीया होती है। गिरिम् अभि-अनु-परि-प्रति वा विद्योतते विद्युत् (बिजली पहाड के समीप चमक रही है)। 'प्रत्येक' आदि अर्थों मे भी द्वितीया होती है। वृक्ष वृक्षम् अभि-अनु-परि-प्रति वा सिंचति (प्रत्येक वृक्ष को सीचता है)। इसी प्रकार अभि-अनु-परि-प्रति वा स्त्री स्त्री जातमन्मथ।

(ग) अनु, परि और प्रति के साथ 'अपना हिस्सा' अर्थ मे द्वितीया होती है। लक्ष्मी हरिम् अनु-परि-प्रति वा (लक्ष्मी हरि के हिस्से मे है)।

८०६. निम्नलिखित कारिका म दिए हुए धातुओ के साथ दो कर्म होत है —

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथित तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

अर्थात् इन धातुओं के साथ दो कर्म होते है—दुह् (दुहना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना) प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना), शास् (निर्देश देना, शिक्षा देना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), मुष् (चुराना), नी, हृ, कृष् और वह् धातुएँ तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुएँ। गा दोग्धि पय (वह गाय का दूध दुहता है), बलि याचते वसुधाम् (वह बलि से भूमि माँगता है), तण्डुलान् ओदन पचति (वह चावलो मे भात पकाता है)। इसी प्रकार ये रूप बनेंगे—गर्गान् शत दण्डयति, व्रजम् अवरुणद्धि गाम्, माणवक पन्थान पृच्छति, वृक्षम् अवचिनोति फलानि, माणवक धर्म ब्रूते शास्ति वा, शत जयति देवदत्तम्, सुधा क्षीरनिधि मथ्नाति, देवदत्त शत मुष्णाति, ग्रामम् अजा नयति-हरति-कर्षति-वहति वा। इसी प्रकार माणवक धर्मं भाषते—वक्ति वा, बलि सुधा भिक्षते, आदि। देखो भट्टि० ६ ८-१०।

८०७ जब इन धातुओं का कर्मवाच्य में प्रयोग होता है तो पहली बारह धातुओं के गौण कर्म में और अन्तिम चार धातुओं के प्रधान कर्म में प्रथमा होती है। अन्य कर्म में पूर्ववत् द्वितीया रहती है।[1] धेनु पय दुह्यते, दशरथ राम ययाचे कौशिकेन, उदधि सुधा ममन्थे देवै, आदि। तेन गाव ग्राम नीयन्ते ह्रियन्ते कृष्यन्ते उह्यन्ते वा, आदि।

८०८ निम्नलिखित धातुओं का अणिजन्त अवस्था का कर्ता णिजन्त के साथ कर्म हो जाता है:—जाना अर्थ वाली धातुऐं, ज्ञान अर्थ वाली धातुऐं, खाना अर्थ वाली धातुऐं, ग्रन्थ कर्मवाली धातुऐं, अकर्मक धातुऐं, तथा ये धातुऐं—दृश्, जल्प्, आ+भाप्, वि+लप्, ग्रह् और श्रु।[2]

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद् विधिम्।
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥ (सि० कौ०)

(पूजनीय हरि मेरी गति हैं। उन्होंने देवो के शत्रुओं को स्वर्ग भेजा है, उन्होंने अपने अनुयायियों को वेदों का अर्थ बताया है। उन्होंने देवों को अमृत पिलाया है, विधाता को वेद पढ़ाया है और पृथ्वी को जल पर स्थिर करके रक्खा है।)

दर्शयति हरि भक्तान् (उसने भक्तों को हरि को दिखाया), जल्पयति, भाषयति, विलापयति वा धर्म पुत्र देवदत्त। पुत्र विद्याम् अग्राहयन् (देखो कुमार० १-५२)। अश्रावयत् पारिपदान् कथाम्। जहाँ पर दो णिचो का प्रयोग होता है, वहाँ पर प्रथम णिजन्त का कर्ता द्वितीय णिजन्त का करण हो जाता है, अत उसमे तृतीया होती है। गमयति देवदत्त यज्ञदत्तम्, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्त विष्णुमित्र।

विशेष—कभी-कभी दृश् धातु के साथ चतुर्थी विभक्ति का भी प्रयोग मिलता है। प्रत्यभिज्ञानरत्न च रामायादर्शयत् कृती (रघु० १२-५४)।

(क) नी और वह् धातु के णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त अवस्था के कर्ता

---

१. गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्। ..लादयो मता। (विभाषा चिण्णमुलो, ७-१-६९ पर सि० कौ०)।

२. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ (१-४-५२)। जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वा०), दृशेश्च (वा०)।

मे तृतीया विभक्ति होती है, यदि कर्ता रथादि का चालक न हो तो ।[1] नाययति
वाह्यति वा भार भृत्येन (वह नौकर के द्वारा बोझा लिवा जाता है) । अन्यत्र—
वाहयति रथ वाहान् सूत (सारथि घोडो से रथ को खिचवाता है) ।

(१) अद् और खाद् धातुओ के णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त अवस्था के
कर्ता मे तृतीया होती है ।[2] आदयति खादयति वा अन्न वटुना (वह विद्यार्थी
को अन्न खिलना है) ।

(२) भक्ष् धातु के णिजन्त रूप के साथ भी अणिजन्त के कर्ता मे तृतीया
होती है, यदि हिंसा (कष्ट या दुःख देना) अर्थ न हो तो ।[3] भक्षयत्यन्न वटुना ।
अन्यत्र—भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् (बैलो को दूसरे का अन्न खिलाता है, अन्न
उसे दुःख देता है) ।

(ख) स्मृ (स्मरण करना) और घ्रा (सूंघना) के णिजन्त रूप के साथ
तृतीया होती है । दुःखपूर्वक स्मरण करना अर्थ होने पर स्मृ के णिजन्त के साथ
द्वितीया विभक्ति का भी कहीं-कहीं पर प्रयोग मिलता है । स्मारयति घ्रापयति
वा देवदत्तेन । अयि चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः ।
देखो शिशु० ६-५६ भी ।

(ग) नामधातु शब्दाय के णिजन्त के साथ भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग
होता है ।[4] शब्दाययति देवदत्तेन (वह देवदत्त से शब्द करवाता है) ।

सूचना—यहाँ पर अकर्मक से अभिप्राय है कि जिनका देश, काल आदि से
भिन्न कर्म नहीं है । जो धातुएँ सकर्मक होते हुए भी कर्म की अविवक्षा के कारण
अकर्मक है, वे यहाँ पर अकर्मक नहीं गिनी जायँगी ।[5] जैसे—मासम् आसयति देव-
दत्तम् । अन्यत्र—देवदत्तेन पाचयति, यहाँ पर देवदत्तम् नहीं होगा । पच् सकर्मक
है, किन्तु यहाँ पर कर्म की अविवक्षा के कारण अकर्मक है ।

८०६. हृ और कृ धातु तथा अभिवद् और दृश् (आत्मनेपदी होने पर) के

---

१. नीवह्योर्न (वा०), नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेध (वा०) ।
२. आदिखाद्योर्न (वा०) ।
३. भक्षेरहिंसार्थस्य न (वा०) ।
४. शब्दायतेर्न (वा०) ।
५. येषा देशकालादिभिन्न कर्म न सभवति तेऽत्राकर्मका । न त्वविवक्षित-
कर्माणोऽपि । (सि० कौ०)

णिजन्त रूप के साथ अणिजन्त के कर्ता में द्वितीया और तृतीया दोनों विभक्तियाँ होती हैं।[1] हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम् (वह नौकर से चटाई लिया जाता है या बनवाता है)। अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा (वह भक्त के द्वारा देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को देवता के दर्शन कराता है)।

८१०. णिजन्त धातुओं का जब कर्मवाच्य में प्रयोग होता है तब उनके मुख्य कर्म (अर्थात् मूलधातु का कर्ता) में प्रथमा होती है, परन्तु ज्ञानार्थक धातुओं, भक्षणार्थक धातुओं और शब्दादि कर्म वाली धातुओं के मुख्य कर्म में प्रथमा होती है और गौण कर्म में द्वितीया होती है, अथवा इसके विपरीत भी कार्य होता है अर्थात् गौण कर्म में प्रथमा और मुख्य कर्म में द्वितीया।[2] देवदत्तः कटं करोति (देवदत्त चटाई बनाता है), देवदत्तः देवदत्तेन वा कटं कारयति। देवदत्तः कटं कार्यते (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई जाती है)। देवदत्तः ग्रामं गच्छति (देवदत्त गाँव को जाता है), देवदत्तं ग्रामं गमयति (देवदत्त को गाँव भेजता है), देवदत्तः ग्रामं गम्यते (देवदत्त को गाँव भेजा जाता है), आदि। माणवकं धर्मं बोधयति (बालक को धर्म समझाता है), बोध्यते माणवकं धर्मः—माणवको धर्मं वा (बालक को धर्म समझाया जाता है), आदि। बटुम् ओदनं भोजयति (बालक को चावल खिलाता है), बटुरोदनं भोज्यते, अथवा बटुम् ओदनो भोज्यते (बालक को चावल खिलाया जाता है), आदि।

८११ जिन धातुओं के दो कर्म हैं, उनके णिजन्त रूप के साथ नि० ८०८ के अनुसार कार्य होगा। कौशिकं दशरथ रामम् अयाचत, देवा कौशिकेन दशरथं रामम् अयाचयन्। गोपोऽजां ग्रामं हरति, स्वामी गोपेन अजां ग्रामं हारयति, आदि।

तृतीया विभक्ति (Instrumental Case).

८१२ तृतीया विभक्ति मुख्यतया निम्नलिखित अर्थों को प्रकट करती है—कर्मवाच्य प्रयोग में कर्ता का अथवा क्रिया के करण या साधन को।[3] तब महिमा-

---

१. हृक्रोरन्यतरस्याम् (१-४-५३)। अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वा०)।

२. बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया। प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥ (सूत्र ७-१-६९ पर सि० कौ०)।

३. कर्तृकरणयोस्तृतीया (२-३-१८)।

नम् अजानता मया असत्कृतोऽसि (तुम्हारी महिमा को न जानने के कारण मैंने तुम्हारा अपमान किया है)। रामेण बाणेन हतो वाली (राम ने बाण से वाली को मारा)। यहाँ पर राम कर्ता है और बाण साधन या करण है।

(क) निम्नलिखित अर्थों में भी तृतीया होती है[1]—प्रकृत्या दर्शनीय (स्वभाव से ही दर्शनीय है), प्रायेण याज्ञिक (वह प्राय यज्ञकर्ता है), गोत्रेण गार्ग्य (उसका गोत्र-नाम गार्ग्य है), सुखेन याति (वह सुख से जाता है)। इसी प्रकार समेनैति, विषमेणैति, आदि। द्विद्रोणेन धान्य क्रीणाति (वह एक बार में दो द्रोण के हिसाब से धान खरीदता है), साहस्रेण पशून् क्रीणाति (वह एक बार में एक हजार पशुओं को खरीदता है), आदि।

(१) सख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों में द्वितीया भी होती है। द्विद्रोण क्रीणाति धान्यम्, शतेन शतेन शत शत वा वत्सान् पाययति पय, आदि।

(ख) **विशेष**—दिव् (जूआ खेलना) धातु के साथ साधन में द्वितीया और तृतीया दोनों होती है।[2] अक्षै अक्षान् वा दीव्यति (वह पाशों से जुआ खेलता है)।

(ग) सम्+ज्ञा के कर्म में द्वितीया और तृतीया दोनों होती है।[3] पित्रा पितर वा सजानीते (वह पिता को पहचानता है या पिता के साथ शान्ति से रहता है)। परन्तु विष्णु सजानीष्व (विष्णु को स्मरण करो)।

८१३. जब कार्य की पूर्णता या सफलता अर्थ प्रकट करना हो तो समय और मार्ग की दूरी के वाचक शब्दों में तृतीया होती है।[4] अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीत (उसने एक दिन में या कोस भर चलकर वेद का एक अनुवाक याद कर लिया)। अन्यत्र—मासम् अधीतो नायात यहाँ पर कार्य की सफलता नहीं हुई है।

८१४ शरीर के अग में विकार होने पर विकृत अग में तृतीया होती है।[5] अक्ष्णा काण (आँख का काणा)। इसी प्रकार पादेन खञ्ज, आदि।

---

१. प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम् (वा०)।
२. दिव कर्म च (१-४-४३)।
३. सज्ञोऽन्यतरस्या कर्मणि (२-३-२२)।
४. अपवर्गे तृतीया (२-३-६)। अपवर्ग फलप्राप्ति, तस्या द्योत्याया कालाध्वनोरत्यन्तसयोगे तृतीया स्यात्।
५ येनागविकार (२-३-२०)

८१५ किसी प्रकार का कोई विशेष चिह्न, जिससे किसी व्यक्ति या वस्तु की पहचान होती है, उसमें तृतीया होती है।[1] जटाभिः तापसः (वह जटाओं से तपस्वी ज्ञात होता है) (जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः, सि० कौ०)।

८१६. किसी कार्य के कारण, उद्देश्य या हेतु अर्थ को प्रकट करने के लिए भी तृतीया होती है।[2] यह साधारण करण से भिन्न है। पुण्येन दृष्टो हरिः (पुण्य के कारण हरि का देख सका)। तेनापराधेन दण्ड्योऽसि (उस अपराध के कारण तुम दण्ड के योग्य हो)। अध्ययनेन वसति (वह अध्ययन के हेतु रहता है)। जहाँ पर क्रिया अनुमेय है, वहाँ पर भी तृतीया होती है। अलं श्रमेण (श्रम मत करो अर्थात् श्रम से यह कार्य सिद्ध नहीं होगा) (श्रमेण साध्यं नास्ति इत्यर्थः, सि० कौ०)।

८१७ इन अर्थों को प्रकट करने वाले शब्दों में तृतीया होती है —

(क) बढ़कर होना। पूर्वान् महाभाग तयाऽतिशेषे (हे भाग्यवान्, तुम त्याग में अपने पूर्वजों से बढ़कर हो), धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्नः (मुद्रा० ३-१७, वह अपने तेज के द्वारा सूर्य के तेज से भी बढ़कर है)। दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः (शाकु०१)।

(ख) समानता, सदृशता, बराबरी। स्वरेण पितरम् अनुहरति (स्वर में पिता के समान है), दहबन्धेन स्वरेण च रामभद्रम् अनुहरति (उत्तर० ४)। अस्य मुखं मातुः मुखेन संवदति (इसका मुँह अपनी माता के मुँह से मिलता है)। विष्णुना सदृशो वीर्ये (पराक्रम में विष्णु के बराबर है)।

(ग) शपथ लेना, कसम खाना। भरतेनात्मना चाहं शपे (मैं अपनी और भरत की कसम खाता हूँ)। शापितासि मम जीवितेन (मेरे जीवन की कसम है)।

(घ) आनन्दित होना और प्रसन्न होना। भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि (गुरु पर तुम्हारी भक्ति और मुझ पर कृपा के कारण मैं तुमसे प्रसन्न हूँ)। कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति (नीच पुरुष थोड़े से भी सन्तुष्ट हो जाता है)।

(ङ) यान या शरीरावयव, जिस पर चढ़कर या रखकर यात्रा आदि की जाती है। रथेन सचरते (रथ में बैठकर जाता है)।

---

१ इत्थंभूतलक्षणे (२-३-२१)।

२ हेतौ (२-३-२३)। फलमपीह हेतुः। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। (सि० कौ०)।

(च) जिस मूल्य (वास्तविक या रूपकात्मक) से कोई वस्तु खरीदी जाती है। शतेन क्रीत (सौ रुपए में खरीदा), स्वप्राणव्ययेनापि रक्षणीया सुहृदसवः (अपने प्राण देकर भी मित्र के प्राणों की रक्षा करनी चाहिए।)

८१८. इन शब्दों के साथ भी तृतीया विभक्ति होती है —

(क) लाभ या प्रयोजन अर्थ के सूचक किम्, कार्यम्, अर्थ, प्रयोजनम् आदि शब्द तथा किम्+कृ धातु इसी अर्थ में हो तो। धनेन किं य० (ऐसे धन से क्या लाभ जो०), तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (धनवानों को भी तिनके की आवश्यकता पड़ जाती है)। इसी प्रकार कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान धार्मिकः, न स्वामिपादाना मया किमपि प्रयोजनम्, आदि।

(ख) बस या पर्याप्त अर्थ के सूचक अलम् और कृतम् शब्द। अलं रुदितेन (मत रोओ, रोने से बस करो), कृतम् अत्यादरेण (अति आदर मत कीजिए)। अलम् का क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त के साथ भी प्रयोग मिलता है। अलम् अन्यथा सभाव्य (मुझे उलटा मत समझिए)।

(ग) साथ अर्थ के सूचक साकम्, सार्धम्, समम्, सह आदि अव्यय। आस्स्व साकं मया सौधे (भट्टि० ८-७०), वनं मया सार्धमसि प्रपन्न (रघु० १४-६३), आहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः (शाकु० १-२७), आदि।

(घ) युक्त और अभाव या हीन अर्थ के सूचक शब्द। समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपण (धन से युक्त भी पुरुष०), अर्थेन हीन (धन से रहित)।

सूचना—तृतीया विभक्ति के वैकल्पिक प्रयोगों के लिए देखो पंचमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति के नियम।

चतुर्थी विभक्ति (Dative Case)

८१९. चतुर्थी विभक्ति का मुख्य अर्थ सप्रदान है।[1] दा धातु के गौण कर्म को सम्प्रदान कहते हैं। जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है, उस व्यक्ति या वस्तु को भी सप्रदान कहते हैं। विप्राय गां ददाति (वह ब्राह्मण को गाय दान देता है)। युद्धाय सनह्यते (वह युद्ध के लिए तैयार होता है)। न शूद्राय मतिं दद्यात् (शूद्र को वेद का ज्ञान न दे), आदि।

१. चतुर्थी सप्रदाने (२-३-१३)। कर्मणा यमभिप्रैति स सप्रदानम् (१-४-३२)। क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सप्रदानम् (वा०)।

किन्तु यज् धातु के कर्म में तृतीया होती है और उसके गौण कर्म में द्वितीया होती है।[1] पशुना रुद्रं यजते (वह रुद्र के लिए पशु की बलि देता है)।

सूचना—यद्यपि दा धातु के साथ गौण कर्म में चतुर्थी होती है, तथापि इसके साथ कभी कभी षष्ठी और सप्तमी का भी प्रयोग मिलता है। राज्यं शिबीना वृद्धं वै ददामि तव खेचर (हे आकाशगामी, मैं तुम्हें शिबियों का समृद्ध राज्य दूंगा), यस्त्वं रामे पृथिवीं दातुमिच्छसि (तुम जो पृथिवी राम को देना चाहते हो), आदि।

८२०. रुच् धातु तथा इस अर्थ वाली अन्य धातुओं के साथ सन्तुष्ट या प्रसन्न होने वाले व्यक्ति या वस्तु में चतुर्थी होती है।[2] हरये रोचते भक्तिः (हरि को भक्ति अच्छी लगती है), अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (जल से तृप्त व्यक्ति को स्वादिष्ट सुगन्धित और शीतल जल की धारा रुचिकर नहीं होती है)।

८२१. श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नु (छिपाना), स्था (रखना) और शप् (शपथ लेना) धातुओं के साथ अभीष्ट व्यक्ति में चतुर्थी होती है।[3] गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते-तिष्ठते-शपते वा (गोपी कामभाव के कारण कृष्ण की प्रशंसा करती है, उससे अपने भावों को छिपाती है, उसकी प्रतीक्षा करती है या उसके सम्मुख शपथ लेती है) (देखो भट्टि० ७ ७३-७४)। किन्तु —राजानं श्लाघते मन्त्री (मन्त्री राजा की प्रशंसा करता है) ही रूप होता है।

८२२ धारि (ऋणी होना) धातु के साथ जिसका ऋणी है, उसमें चतुर्थी होता है।[4] स्पृह् धातु के साथ जिस व्यक्ति या वस्तु को चाहते हैं, उसमें चतुर्थी होती है।[5] वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे (शाकु०, तुम मेरे दो वृक्षों को सींचने की ऋणी हो), भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (सि० कौ०), तस्यै स्पृहयति माणोऽसौ (वह उस स्त्री को चाहता हुआ, भट्टि० ८-१५), पुष्पेभ्यः स्पृहयति (वह फूलों को चाहता है)। अन्यत्र—पुष्पाणि स्पृहयति। जहाँ पर तीव्र इच्छा होगी, वहाँ पर द्वितीया ही होगी।

१. यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वा०)।
२. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (१-४-३३)।
३. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः (१-४-३४)।
४. धारेरुत्तमर्णः (१-४-३५)।
५. स्पृहेरीप्सितः (१-४-३६)।

८२३ क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् और असूय् धातुओं तथा इन अर्थों वाली अन्य धातुओं के साथ जिस पर क्रोध आदि किया जाए, उसमें चतुर्थी होती है।[1] हरये क्रुध्यति-द्रुह्यति-ईर्ष्यति-असूयति वा (सि० कौ०, वह हरि पर क्रोध करता है, उससे द्रोह करता है, उससे ईर्ष्या करता है या उसके दोष निकालता है)। सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत (भट्टि० ८-७५, राम सीता पर न क्रुद्ध हुए और न उन्होंने उसके दोष निकाले)। अन्यत्र—भार्याम् ईर्ष्यति (वह अपनी स्त्री पर ईर्ष्या भरी दृष्टि रखता है कि कोई अन्य व्यक्ति उसको न देखे। मैनामन्योऽद्राक्षीदिति, सि० कौ०)।

(क) क्रुध् और द्रुह् धातुओं से पहले कोई उपसर्ग होगा तो उसके साथ द्वितीया होगी।[2] किं मा सक्रुध्यसि (तुम मुझसे क्या क्रुद्ध हो ?), नित्यमस्मच्छरीरमभिद्रोग्धु यतते (मुद्रा० १, वह हमारे शरीर को सदा हानि पहुँचाने का यत्न करता है)।

विशेष—अभि+द्रुह् के साथ चतुर्थी का भी प्रयोग मिलता है। मया पुनरेभ्य एवाभिद्रुग्धमज्ञेन (उत्तर० ७)।

८२४ राध् और ईक्ष् (शुभाशुभ भाग्य का विचार करना) धातुओं के साथ जिस व्यक्ति के विषय में विचार किया जा रहा हो, उसमें चतुर्थी होती है।[3] कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा। पृष्टो गर्ग शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः (सि० कौ०)।

८२५ प्रति+श्रु और आ+श्रु (प्रतिज्ञा करना) के साथ उस व्यक्ति में चतुर्थी होती है, जिसकी प्रार्थना पर उसे कुछ वस्तु देने की प्रतिज्ञा की जाती है।[4] विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितः तत् प्रतिजानीते इत्यर्थः। (सि० कौ०)

८२६ परि+क्री (नौकर आदि को भाड़े पर खरीदना) के साथ जिस

---

१. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः (१-४-३७)। कोपोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः। ईर्ष्याऽक्षमा। असूया गुणेषु दोषाविष्करणम्। द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते। अतो विशेषणं सामान्येन। (सि० कौ०)।
२. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (१-४-३८)।
३. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः (१-४-३९)।
४. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता (१-४-४०)।

मूल्य पर खरीदा गया है, उसमें विकल्प से चतुर्थी होती है और पक्ष में तृतीया होती है।[1] शतेन शताय वा परिक्रीत (सि० कौ०)।

८२७ (क) इन स्थानों पर चतुर्थी होती है[2] —प्रयोजन-वाचक शब्द जिसके लिए कोई कार्य किया जाता है, या किसी कार्य का कोई परिणाम, या किसी वस्तु की सत्ता से होने वाला कोई कार्य। मुक्तये हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है), भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (भक्ति से ज्ञान होता है), मूत्राय कल्पते जायते संपद्यते यवागू (यवागू या जौ की लपसी मूत्र को उत्पन्न करती है, महाभारत), कुण्डलाय हिरण्यम् (महाभाष्य, कुण्डल के लिए सोना), यूपाय दारु (यज्ञिय स्तम्भ के लिए लकड़ी), आदि।

सूचना—इन अर्थों में जहाँ पर चतुर्थी होती है, वहाँ पर भू या अस् धातु का प्रयोग प्रायः नहीं होता है। काव्यं यशसे (भवति) (काव्य यश के लिए होता है)।

(ख) किसी उत्पात के द्वारा अशुभ कार्य की सूचना होने पर अशुभ कार्य में चतुर्थी होती है)[3] वाताय कपिला विद्युत् (पीली बिजली का चमकना आँधी आने का सूचक है)।

(ग) हित शब्द के साथ चतुर्थी होती है।[4] ब्राह्मणाय हितम् (ब्राह्मण का हित हो)।

८२८ वाक्य में अप्रयुक्त किन्तु अनुमित तुमुन् प्रत्ययान्त के कर्म में चतुर्थी होती है।[5] फलेभ्यो याति (अर्थात् फलानि आहर्तुं याति, फलों को लाने के लिए जाता है), नृसिंहाय नमस्कुर्मः (अर्थात् नृसिंहम् अनुकूलयितुम्, हम नृसिंह को प्रसन्न करने के लिए उसे नमस्कार करते हैं)।

(क) तुमुन् के अर्थ में हुए भाववाचक घञ् प्रत्ययान्त से चतुर्थी होती

१. परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (१-४-४४)। नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्। (सि० कौ०)।
२. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वा०)। क्लृपि सम्पद्यमाने च (वा०)।
३. उत्पातेन ज्ञापिते च (वा०)। वाताय कपिला विद्युद् आतपायातिलोहिनी। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्। (महाभाष्य)।
४. हितयोगे च (वा०)।
५. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२-३-१४)।

है ।१ यज्ञाय याति (यज्ञ के लिए जाता है), त्यागाय सभृतार्थानाम् (रघु० १-७, उन्होंने दान के लिए ही धन का संग्रह किया था) ।

८२६ इन अव्ययो के साथ चतुर्थी होती है—नम, स्वस्ति, स्वाहा (देवो को आहुति देने मे प्रयुक्त), स्वधा (पितरो को अन्नादि देने मे प्रयुक्त), अलम् (पर्याप्त या समर्थ अर्थ मे) और वषट् (देवो को आहुति देने मे प्रयुक्त) ।२ तस्मै नम शभवे (उस शभु को नमस्कार), प्रजाभ्य स्वस्ति (प्रजाओ का कल्याण हो), स्वस्त्यस्तु ते (रघु० ५-१७, तुम्हारा कुशल हो), अग्नये स्वाहा (अग्नि के लिए आहुति है) । इसी प्रकार पितृभ्य स्वधा, दैत्येभ्यो हरि: अलम् (हरि दैत्यो को हराने के लिए पर्याप्त है) । इसी प्रकार अल मल्लो मल्लाय (महाभाष्य—यह पहलवान उस पहलवान से लडने मे समर्थ है) । (देखो रघु० २-३९, भट्टि० ८-९८), इन्द्राय वषट् (यह इन्द्र के लिए आहुति है) ।

(क) जब नम+कृ का प्रयोग होगा तब यह मुख्य क्रिया हो जाएगी, अत इसके साथ द्वितीया विभक्ति होगी ।३ नमस्करोति देवान् (देवो को नमस्कार करता है) । यदि तुमुन् का अर्थ अनुमित होगा तो नियम ८२८ से चतुर्थी होगी।

(ख) अलम् अर्थ वाले प्रभु, समर्थ शक्त आदि शब्द तथा प्र+भू धातु के साथ चतुर्थी होती है । (सि० कौ०) । दैत्येभ्यो हरि प्रभु समर्थ शक्तो वा, प्रभु—समर्थ—शक्तो वा मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय, विधिरपि न येभ्य प्रभवति (भर्तृहरि २-९४) । प्रभु आदि शब्दो के साथ षष्ठी भी होती है । (सि० कौ०) । प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज ।(मालती०—महाराज का अपनी कन्याओ पर पूरा अधिकार है) ।

(ग) प्रणाम करना अर्थ वाली धातुओ प्रणम्, प्रणिपत् आदि के साथ चतुर्थी और द्वितीया दोनो होती हैं । न प्रणमन्ति देवताभ्य (कादम्बरी, वे देवताओ को प्रणाम नही करते हैं), ता भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (भक्तिभाव से युक्त चित्त से उसने उसको प्रणाम किया), प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम् (रघु० १०-१५), राक्षसो का सहार करने वाले उसको देवताओ ने प्रणाम किया), वागीश (वाग्भिरर्थ्याभि) प्रणिपत्य (कुमार० २-३, वाणी के स्वामी उसको प्रणाम करके) ।

१. तुमर्थाच्च भाववचनात् (२-३-१५) ।
२ नम स्वस्तिस्वाहास्वधालवषड्योगाच्च (२-३-१६) ।
३ उपपदविभक्ते. कारकविभक्तिर्बलीयसी (वा०) ।

८३० 'कहना' अर्थ वाली कथ्, ख्या, शस्, चक्ष्, निवेदि आदि धातुओं और 'भेजना' अर्थ वाली प्र+हि, वि+सृज्, आदि धातुओं के साथ गौण कर्म मे चतुर्थी होती है । राममिष्वसनदर्शनोत्सुक मैथिलाय कथयाम्बभूव स (रघु० ११-३७, उसने मिथिला के राजा जनक से कहा कि राम धनुष को देखने के लिए उत्सुक हैं), आख्याहि मे को भवानुग्ररूप (गीता ११-३१, मुझे बताइए कि भयकर रूप वाले आप कौन है ?) आदि । उपस्थिता होमवेला गुरवे निवेदयामि (शाकु० ४, मैं गुरु जी को बताने जाता हूँ कि हवन का समय हो गया है), हरिरस्मै सुराङ्गना प्रजिघाय (रघु० ८-७९, इन्द्र ने उसके तप को भग करने के लिए एक अप्सरा भेजी), रक्षस्तस्मै महोपल प्रजिघाय (रघु० १५-२१)।

८३१ मन् (दिवादि०, मानना) धातु के प्राणिभिन्न कर्म मे द्वितीया और चतुर्थी दोनो होती हैं, यदि अनादर अर्थ विवक्षित हो तो ।[1] न त्वा तृण मन्ये तृणाय वा (मैं तुझे तिनके के बराबर भी नही समझता हूँ) । अन्यत्र—न त्वा तृण मन्वे (यह तनादि० का रूप है, दिवादि० का नही, अत द्वितीया हुई) । जब केवल तुलना अर्थ अभिप्रेत होगा, तब द्वितीया ही होगी । त्वा तृण मन्ये (महाभाष्य) ।

८३२ जहाँ पर वास्तविक क्रिया होती है, ऐसे स्थान पर गति (चलना, जाना, हिलना) अर्थ वाली धातुओ के साथ कर्म मे द्वितीया और चतुर्थी दोनो विभक्तियाँ होती हैं, मार्ग अर्थ वाले शब्दो में नही ।[2] ग्राम ग्रामाय वा गच्छति (गाँव को जाता है) । अन्यत्र—मनसा हरिं व्रजति, पन्थान गच्छति ।

पचमी विभक्ति (Ablative Case)

८३३ पचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ है अपादान अर्थात् किसी स्थान से पृथक् होना, अत जिससे विश्लेष या पृथक्करण (वास्तविक या अनुमित) होता

१. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु (२-३-१७) । अप्राणिषु के विषय मे कात्यायन का कथन है कि 'अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्' अर्थात् इस सूत्र मे से अप्राणिषु (प्राणि-भिन्न) शब्द हटा कर यह कहना चाहिए कि नौ (नाव), काक (कौआ), अन्न, शुक (तोता) और शृगाल (गीदड) से भिन्न कर्म होना चाहिए । अतः न त्वां नावम् अन्नं वा मन्ये, मे प्राणिभिन्न कर्म होने पर भी चतुर्थी नहीं होगी । न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये, मे कर्म श्वन् प्राणि होने पर भी विकल्प से चतुर्थी होगी ।

२. गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि (२-३-१२) ।

है, उसमें पचमी विभक्ति होती है।[1] ग्रामादायाति (गाँव से आता है), धावतोऽश्वात् पतति (दौडते हुए घोडे से गिरता है), सदाचारात् भ्रशते।

(ख) जुगुप्सा (घृणा करना), विराम (रुकना) और प्रमाद (प्रमाद करना) अर्थ वाले शब्दो के साथ पचमी होती है।[2] पापात् जुगुप्सते (वह पाप से घृणा करता है), न नव प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मण (रघु० ८-२२, वह दृढ-निश्चयी नया राजा फल-प्राप्ति होने तक अपने कार्यों से निवृत्त नही होता था), धर्मात् प्रमाद्यति (धर्म से प्रमाद करता है), स्वाधिकारात् प्रमत्त (मेघ० १, अपने अधिकार के कार्यों को करने में प्रमत्त)। इसी प्रकार धर्मान्मुह्यति, असमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमासस्य भक्षणात् (मनु० ५-४९), आदि।

प्र+मद् (असावधानी करना) के साथ सप्तमी विभक्ति भी होती है। अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित (मनु० २-२१३, अतएव विद्वान् व्यक्ति अपनी स्त्रियो के विषय मे असावधानी नही बरतते हैं)।

८३४ भय और रक्षा अर्थ की धातुओ और शब्दो के साथ भय के कारण मे पचमी होती है।[3] चोराद् बिभेति (चोर से डरता है), भीतो रणे श्वेतवाहात् (युद्ध मे सफेद घोडो वाले अर्जुन से मैं डरा हुआ था), स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् (गीता २-४०, धर्म का थोडा भी अश मनुष्य को बडे भयों से बचाता है), कपेरत्रासिषुर्नादात् (भट्टि० ९-११, बन्दर की ध्वनि से वे सब डर गए)।

(क) जिससे किसी को हटाया जाता है, उसमे पचमी होती है।[4] पापान्निवारयति (पाप से हटाता है), यवेभ्यो गा वारयति (जौ से गाय को हटाता है)।

८३५ परा+जि के साथ असह्य वस्तु मे पचमी होती है।[5] अध्ययनात् पराजयते (पढाई से हार मानता है), ता पराजयमाना स प्रीते (भट्टि० ८-७१, वह सीता रावण के प्रेम से तग आई हुई थी)। अन्यत्र—शत्रून् पराजयते।

---

१. ध्रुवमपायेऽपादानम् (१-४-२४), अपादाने पञ्चमी (२-३-२८)।
२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०)।
३. भीत्रार्थानां भयहेतुः (१-४-२५)।
४. वारणार्थानामीप्सितः (१-४-२७)।
५. पराजेरसोढः (१-४-२६)।

८३६ छिपने अर्थ की धातुओं के साथ जिससे छिपना चाहता है, उसमें पचमी होती है।[1] मातुर्निलीयते कृष्ण (कृष्ण अपनी माता से छिपता है)। अन्यत्र—चोरान्न दिदृक्षते।

८३७. (क) जिस गुरु से नियमपूर्वक विद्या पढी जाती है, उसमे पचमी होती है।[2] उपाध्यायादधीते (गुरु से पढता है)। अन्यत्र—नटस्य गाथा शृणोति।

(ख) इसी प्रकार जन् (उत्पन्न होना) धातु के मूल कारण में और भू धातु के उत्पत्तिस्थान मे पचमी होती है।[3] ब्रह्मण प्रजा प्रजायन्ते (ब्रह्मा से सृष्टि उत्पन्न होती है), गोमयाद् वृश्चिको जायते (गोबर से बिच्छू उत्पन्न होता है), हिमवतो गङ्गा प्रभवति (हिमालय से गगा निकलती है), कामात् क्रोधोऽभिजायते (काम से क्रोध उत्पन्न होता है)।

सूचना—उत्पन्न होना या जन्म लेना अर्थ वाली धातुओं के साथ प्राय सप्तमी होती है। तस्या शतानन्द आङ्गिरसोऽजायत (उससे शतानन्द आगिरस उत्पन्न हुए), मेनकायाम् उत्पन्नाम् (मेनका से उत्पन्न उसको)। (देखो मनु० १-९)

८३८ जहाँ पर किसी ल्यप्-प्रत्ययान्त क्रिया का लोप है, उसके कर्म और अधिकरण (आधार या स्थान) मे पचमी होती है।[4] प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते, सि० कौ०, महल पर चढकर देखती है), इसी प्रकार आसनात् प्रेक्षते = आसने उपविश्य प्रेक्षते। श्वशुराज्जिह्रेति = श्वशुर वीक्ष्य जिह्रेति (सि० कौ०)।

८३९ (क) जिस स्थान और समय से किसी स्थान और समय की दूरी प्रकट की जाती है, उसमे पचमी होती है। स्थान की दूरी के वाचक शब्द मे प्रथमा और सप्तमी होती है तथा समय की दूरी के बोधक शब्द मे सप्तमी होती है।[5] वनात् ग्रामो योजन योजने वा (सि० कौ०, वन से गाँव एक योजन पर है), गवीधुमत साकाश्य चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु वा (महाभाष्य),

---

१. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (१-४-२८)।
२. आख्यातोपयोगे (१-४-२९)।
३. जनिकर्तु प्रकृति (१-४-३०)। भुव प्रभव (१-४-३१)।
४. ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वा०)।
५. यतश्चाध्वकालनिर्माण तत्र पञ्चमी (वा०)। तद्युक्तादध्वन: प्रथमासप्तम्यौ (वा०)। कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वा०)।

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (सि० कौ०, कार्तिक-पूर्णिमा से अगहन पूर्णिमा एक मास बाद होती है), समुद्रात् पुरी क्रोशे।

(ख) प्रश्न और उत्तर में भी पंचमी विभक्ति होती है।[1] कस्मात् त्वम्। नद्याः। (तुम कहाँ से आ रहे हो? नदी से), कुतो भवान्? पाटलिपुत्रात् (आप कहाँ से आ रहे हैं? पटना से)।

८४०. इन शब्दों के साथ भी पंचमी होती है[2] —अन्य, इतर तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्द, आरात् (दूर और समीप), ऋते (बिना), दिशावाची शब्द जो कि देश या काल के अर्थ में प्रयुक्त हुए हों (ये शब्द शरीरावयववाची होंगे तो नहीं), अञ्च् धातु से बने हुए शब्द उत्तरपद में हों तो, आ और आहि अन्त वाले अव्यय शब्द। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् (कृष्ण से भिन्न), इतरो रावणादेष राघवानुचरो यदि (भट्टि० ७-१०६, यदि यह रावण से भिन्न कोई राम का अनुचर है तो), आराद् वनात् (वन से दूर या वन के समीप), ऋते शौर्यात् समायात (भट्टि० ७-१०५, अपनी क्रूरता को छोड़कर आया है), ग्रामात् पूर्व उत्तरो वा (गाँव के पूर्व या उत्तर दिशा की ओर), चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः (फाल्गुन का महीना चैत्र से पहले आता है)। अन्यत्र—पूर्वं कायस्य (शरीर का अगला भाग)। प्राक् प्रत्यग् वा ग्रामात् (गाँव के पूर्व या पश्चिम की ओर), प्राक् प्रभातात् (भट्टि० ८-१०६, प्रातःकाल होने से पहले), दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (गाँव के दक्षिण की ओर), उत्तरा समुद्रात् (भट्टि०, समुद्र के उत्तर की ओर)।

विशेष—ऋते के साथ कभी-कभी द्वितीया भी होती है। ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे (गीता ११-३२, तुम्हारे बिना भी इन सब का नाश हो जाएगा)।

(ग) प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, ऊर्ध्वम्, परम् आदि शब्दों के साथ पंचमी होती है। प्रभृति शब्द का समयवाची क्रियाविशेषणों के साथ भी प्रयोग होता है। तस्मात् दिनात् प्रभृति (उस दिन से लेकर), ततः प्रभृति या तदाप्रभृति (तब से लेकर), अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः (कुमार० ५-८६)। ततः तस्माद् दिनाद् वा आरभ्य, मालत्याः प्रथमावलोकदिवसादारभ्य। ग्रामाद् बहिः (गांव से बाहर), पुरगाररत्नगोपुराद् बहिः निरगात् (वह नगर के रत्न-जटित

1. गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् (वा०)।
2. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (२-३-२९)।

द्वार से बाहर निकला), ऊर्ध्वं सवत्सरात् (मनु० ९-७७, एक वर्ष बाद), अत ऊर्ध्वम् (इसके बाद), वर्त्मन. परम् (रघु० १-१७, रास्ते से आगे), भाग्यायत्तमत परम् (शाकु०), पुराणपत्रापगमादनन्तरम् (रघु० ३-७०, पुराने पत्तो के गिर जाने के बाद) । देखो गीता १२-१२ ।

८४१. इन उपसर्गों के साथ पचमी होती है[1]—

(क) अप और परि (जब ये दोनो बिना, दूर या छोड कर अर्थ में हों) तथा आ (तक अर्थ मे हो । उस स्थान से पहले या उस स्थान को लेते हुए) । यत् सप्रत्यप लोकेभ्यो लकाया वसतिर्भयात् (रामायण, जो कि वह ससार से दूर भयपूर्वक लका मे रहा), अप हरे ससारः (ससार हरि से अलग ही स्थित है), अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव (त्रिगर्त देश को छोडकर और सभी जगह वर्षा हुई) । इसी प्रकार परि हरे ससार, परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देव (वोप०) आदि । आ मुक्ते ससार, आ सलकाद् ब्रह्म (ब्रह्म सभी स्थानो पर व्याप्त है), आ परितोषाद् विदुषाम् (शाकु०, विद्वानो के सन्तुष्ट होने तक) ।

(ख) प्रतिनिधि और आदान-प्रदान (अदल-बदल) अर्थ में प्रति उपसर्ग के साथ । प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति (सि० कौ०, प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है), तिलेभ्य प्रतियच्छति माषान् (तिलो के बदले मे उडद देता है) ।

८४२ यदि कोई ऋणवाची शब्द बन्धन आदि का कारण होगा तो उसमे पचमी होगी ।[2] शताद् बद्ध द्रव्यम् (सौ रुपए के लिए गिरवी रक्खी हुई वस्तु), ऋणाद् बद्धम् इव (ऋण के कारण बद्ध सा) ।

८४३ (क) किसी कार्य के कारण में भी प्राय पचमी होती है । अत इसका अनुवाद 'के कारण, कारण से या हेतु से' शब्दो से किया जाता है । मौनान्मूर्ख गण्यते (चुप रहने के कारण व्यक्ति मूर्ख समझा जाता है), गोमानुषाणा वधात् (हितो०, गायो और मनुष्यो को मारने के कारण मुझे) ।

(ख) युक्ति प्रदर्शन में या अनुमान का हेतु देने में पचमी होती है । पर्वतो वह्निमान् धूमात् (पहाड पर आग है, क्योकि धुआँ दिखाई पड रहा है), स्मृत्यन-

१. अपपरी वर्जने (१-४-८८), आङ् मर्यादावचने (१-४-८९) । पञ्चम्यपाङ्परिभि. (२-३-१०) । प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयो. (१-४-९२) । प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् (२-३-११) ।
२. अकर्तर्यृणे पञ्चमी (२-३-२४) ।

चकाशदोषप्रसग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसगात् (वेदान्तसूत्र २-१-१) (पूर्वपक्षी का कथन है कि यदि आप यह कहें कि हमारी युक्ति सदोष है, क्योकि उसमे तुम्हारी स्मृतियो को कोई स्थान नही रह जाता है तो हमारा उत्तर है कि आपका यह कथन भी युक्तियुक्त नही है, क्योकि इस प्रकार अन्य स्मृतियो को कोई स्थान नही रहता है)।

(ग) तुलना अर्थ मे या तुलना अर्थ के बोधक शब्दो के साथ पचमी होती है। भक्तिमार्गात् ज्ञानमार्ग श्रेयान् (भक्तिमार्ग से ज्ञान का मार्ग अधिक अच्छा है), अणोरप्यणीयान् (परमाणु से भी अधिक छोटा), अश्वमेधसहस्रेभ्य सत्यमेवातिरिच्यते (एक हजार अश्वमेध यज्ञ से भी बढकर सत्य है), चैत्ररथादनूने (चैत्ररथ से कुछ कम नही) ।

८४४ पृथक्, विना और नाना अव्ययो के साथ पचमी, द्वितीया और तृतीया तीनो विभक्तियाँ होती हैं।[1] पृथक् रामात-राम-रामेण वा (राम से भिन्न या राम के बिना) । इसी प्रकार नाना रामम् आदि । नाना नारी निष्फला लोकयात्रा (बोप०, स्त्री अर्थात् पत्नी के बिना यह लौकिक जीवन निष्फल है) ।

८४५ स्तोक (थोडा) अल्प (थोडा), कृच्छ्र (कठिनाई) और कतिपय (कुछ) शब्द जब क्रिया के साथ क्रिया-विशेषण के रूप म प्रयुक्त होते हैं तो इनम पचमी और तृतीया दोनो होती है।[2] स्तोकेन स्तोकाद् वा मुक्त (थोडे से छूट गया) । इसी प्रकार अल्पेन अल्पाद वा मुक्त । कृच्छ्रेण कृच्छ्राद् वा कृत (कठिनाई से किया) । कतिपयेन कतिपयाद् वा प्राप्त । अन्यत्र—स्तोकेन विषेण हत (थोडे विष से मारा गया) । यहाँ पर यह द्रव्यवाचक है। इनका क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयोग होने पर इनम द्वितीया भी होती है) स्तोक गच्छति।

(क) दूर और अन्तिक शब्द तथा इन अर्थों के अन्य शब्दो म पचमी, द्वितीया और तृतीया तीनो होती हैं।[3] ग्रामस्य दूरात दूर दूरेण वा (गाँव स दूर) । इसी प्रकार ग्रामस्य अन्तिकात् अन्तिकम् अन्तिकेन वा (गाँव के पास) ।

षष्ठी विभक्ति (Genitive Case)

८४६ पहले उल्लेख किया जा चुका है कि षष्ठी विभक्ति को कारक नही

---

१. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् (२-३-३२)।
२. करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य (२-३-३३) ।
३. दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (२-३-३५) ।

माना जाता है। इसमे वाक्य के अन्तर्गत सज्ञा-शब्दो के अन्दर विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट किया जाता है।[1] जैसे—राज्ञ पुरुष मे राजा और पुरुष के अन्दर विद्यमान स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध को षष्ठी से प्रकट किया जाता है। इस सम्बन्ध को कोई कारक-विभक्ति प्रकट नही करती है। राज्ञ पुरुष, पुत्रस्य माता, द्रव्यस्य गुण, आदि। जहाँ पर अन्य विभक्तियो के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है, वहाँ पर भी सम्बन्ध अर्थ ही प्रकट होता है। जैसे—सता गतम्, सर्पिषो जानीते, मातु स्मरति, एध उदकस्य उपकुरुते, भजे शभोश्चरणयो, फलाना तृप्त आदि।

८४७ जहाँ पर वाक्य मे हेतु शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ पर हेतु शब्द मे और हेतु के कर्म मे षष्ठी होती है।[2] अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के लिए या अन्न-प्राप्ति के निमित्त रहता है)। रोदिषि कस्य हेतो (मार्कण्डेय पुराण २३-१२), हेतोर्बोधस्य मैथिल्या प्रास्तावीद् रामसकथाम् (भट्टि० ८-१०३, हनुमान् राम का दूत है, इस बात को बताने के लिए उसने सीता से राम की कथा कहनी प्रारम्भ की)।

(क) हेतु शब्द के साथ यदि किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है तो उसमे तृतीया और षष्ठी दोनो विभक्तियो का प्रयोग होता है।[3] कस्य हेतो, केन हेतुना (किस लिए? किस उद्देश्य से?)। ऐसे स्थानो पर पचमी भी होती है। तेन हेतुना, तस्माद् हेतो, तस्य हेतो। जब हेतु शब्द के पर्यायवाची निमित्त, कारण आदि शब्दो का किसी सर्वनाम के साथ प्रयोग होता है तो वहाँ पर कोई भी विभक्ति हो सकती है। सर्वनाम और हेतुबोधक शब्दो मे एक ही विभक्ति होगी। कस्य निमित्तस्य, कस्य प्रयोजनस्य, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, आदि। सामान्यतया इनका द्वितीया विभक्ति मे क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयोग होता है। किं निमित्तम्, किं कारणम्, किं प्रयोजनम्, किमर्थम् आदि। जब सर्वनाम का प्रयोग नही होता

---

१. षष्ठी शेषे (२-३-५०)। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्त स्वस्वामिभावादिसबन्ध शेषस्तत्र षष्ठी स्यात्। कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षाया षष्ठ्येव। (सि० कौ०)।

२ षष्ठी हेतुप्रयोगे (२-३-२६)।

३ सर्वनामस्तृतीया च (२-३-२७)। निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासा प्रायदर्शनम् (वा०)।

तो प्रथमा और द्वितीया को छोड कर कोई भी अन्य विभक्ति हो सकती है। ज्ञानेन निमित्तेन (हरि सेव्य), ज्ञानाय निमित्ताय (ज्ञान-प्राप्ति के लिए) ।

८४८ इन शब्दो के साथ पष्ठी विभक्ति होती है[1]— त प्रत्यय अन्त वाले दिशावाचक शब्द तथा इन्ही अर्थों वाले अन्य शब्द, जैसे—उपरि, उपरिष्टात्, अध, अधस्तात्, पुर, पुरस्तात्, पश्चात्, अग्रे आदि । ग्रामस्य दक्षिणत, उत्तरत. आदि (गाँव के दक्षिण या उत्तर की ओर आदि), अर्कस्योपरि (शाकु० २-८, आक के वृक्ष के ऊपर), तरूणामध (शाकु० १, पेडो के नीचे), तस्य स्थित्वा कथमपि पुर (मेघ०, कठिनाई से उसके सामने खडे होकर) आदि ।

(क) एन प्रत्यय अन्तवाले दक्षिणेन उत्तरेण आदि शब्दो के साथ पष्ठी और द्वितीया दोनो होती हैं ।[2] दक्षिणेन ग्राम ग्रामस्य वा (गाँव के दक्षिण की ओर), उत्तरेण स्रवन्तीम् (मालती० ९-२४ नदी के उत्तर की ओर), दण्ड-कान् दक्षिणेनाहम् (भट्टि० ८-१०८), धनपतिगृहानुत्तरेण (मेघ० ८०, कुबेर के महल के उत्तर की ओर) ।

८४९. दूर और अन्तिक शब्द तथा इनके पर्यायवाची शब्दो के साथ पष्ठी और पचमी दोनो होती है ।[3] ग्रामात् ग्रामस्य वा वन दूर निकट समीप वा (वन गाँव से दूर या गाँव के समीप है) । रामाद् रुद्रस्य यो दूर पापाद् दु खस्य सोऽन्तिकम् (जो व्यक्ति राम या शिव से दूर है, वह पाप के समीप है) प्रत्यासन्नो माधवी-मण्डपस्य (माधवी लता के मण्डप के समीप), तस्य सकाशम् आदि ।

८५०. अवास्तविक ज्ञान अर्थ होने पर जो ज्ञा धातु के साथ पष्ठी होती है ।[4] तैल सर्पिपो जानीते (तेल को घी समझता है) । अन्यत्र—सर्पिर्जानीते ।

(क) इन धातुओ के कर्म मे पष्ठी होती है[5]—स्मरण अर्थ वाली धातुएँ, जैसे—स्मृ, अधि+इ, स्वामी होना अर्थ वाली धातुएँ, जैसे—ईश प्र+भू आदि, दया करना अर्थ वाली दय् आदि धातुएँ। कच्चिद् भर्तु स्मरसि (मेघ० ९०, क्या तुम अपने पति को स्मरण करती हो ?), स्मरन् राघवबाणाना विव्यथे राक्षसे-

---

१. पष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन (२-३-३०) ।
२ एनपा द्वितीया(२-३-३१)। एनपेति योगविभागात् पष्ठ्यपि।(सि०कौ०)।
३ दूरान्तिकार्थे पष्ठ्यन्यतरस्याम् (२-३-३४) ।
४. ज्ञोऽविदर्थस्य करणे (२-३-५१) ।
५. अधीगर्थदयेशां कर्मणि (२-३-५२) ।

ईश्वर (रामायण ६-६०-३), अध्येति तव लक्ष्मण (भट्टि० ८-११९, लक्ष्मण तुम्हें याद करता है), प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज (मालती० ४, महाराज का अपनी पुत्रियो पर पूर्ण अधिकार है), यदि त प्रेक्षमाणा आत्मन प्रभविष्यामि (उत्तर०, यदि उसको देखकर मैं अपने आपको सँभाल सकी तो), गात्राणाम् अनीशोऽस्मि सवृत्त (शाकु०, मेरा अपने अगो पर कोई अधिकार नही रहा है), कथचिदीशा मनसा वभूवु (कुमार० ३–३४, वडी कठिनाई से वे अपने मन को वश मे कर सके), शौवस्तिकत्व विभवा न येषा व्रजन्ति तेषा दयसे न कस्मात् (भट्टि० २-३३, जिनका ऐश्वर्य कल तक भी स्थायी नही है, उन पर दया क्यो नही करते हो ? (रामस्य दयमान (भट्टि० ८-११९, राम पर दया करते हुए) ।

(ग) कृ धातु अन्य गुणो के आधान अर्थ मे हो तो उसके साथ षष्ठी होती है ।[1] एधोदकस्योपस्कुरुते (लकडी जल के गुण को भी ग्रहण करती है) । मा वस्यचिदुपस्कृथा (भट्टि० ८-११९) ।

८५१. रोग अर्थ वाली धातुओ के कर्म मे षष्ठी होती है, जब उनका भाववाचक प्रयोग हुआ हो अथवा रोगो के नाम कर्ता होगे, तब षष्ठी होगी ।[2] चौरस्य ज्वरस्य रुजा (चोर ज्वर से पीडित है), पुरुषस्य रुजयत्यतिसार (पेचिश मनुष्य को दुःख देती है) । ज्वर और सन्ताप कर्ता होगे तो नही । देखो भट्टि० ८-१२० । त रुजयति ज्वर सन्तापो वा (ज्वर या सन्ताप उसको पीडित करता है)।

८५२ आशीर्वाद अर्थ होने पर नाथ् (चाहना) धातु के कर्म मे षष्ठी होती है ।[3] धर्मस्य नाथस्व (धर्म की इच्छा करो), धनस्य नाथते (धन की इच्छा करता है) । इसी प्रकार सर्पिष नाथनम् ।

८५३ हिंसा, दण्ड देना या हानि पहुँचाना अर्थ होगा तो इन धातुओ के कर्म मे षष्ठी होगी—जस्, नि या प्र उपसर्गो के साथ पृथक् पृथक् या समस्त रूप मे हन् धातु, नट्, क्रथ् और पिष् धातु ।[4] चौरस्योज्जासयति राजा (राजा

---

१. कृञ प्रतियत्ने (२-३-५३) ।
२. रुजार्थाना भाववचनानामज्वरे (२-३-५४) । अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम् । (वा०) ।
३ आशिषि नाथ (२-३-५५) ।
४. जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषा हिंसायाम् (२-३-५६) ।

चोर को दण्ड देता है), निजौजसोज्जासयितु जगद्द्रुहाम् (शिशु० १-३७, अपने तेज से जगत् के शत्रु राक्षसो को नष्ट करने के लिए), मन्योरुज्जासयात्मन (अपने क्रोध को नष्ट करो या दूर करो)। राक्षसाना निर्हनिष्यति-प्रहणिष्यति-निप्रहणिष्यति-प्रणिहनिष्यति राम (राम राक्षसो का सहार करेगा)। वृषलस्य उन्नाटयति क्राथयति वा (वृषल या शूद्र को नष्ट करता है), साहसिकस्य पिनष्टि गज आदि। अन्य अर्थो मे इनके साथ द्वितीया होती है। धाना पिनष्टि (धानो को पीसता है)।

८५४. व्यापार और जूए मे शर्त (बाजी) लगाना अर्थो मे इन धातुओ के कर्म मे षष्ठी होती होती है—व्यवहृ (वि+अव+हृ), पण और दिव्।[1] शतस्य व्यवहरति (सौ रु० व्यापार म लगाता है), प्राणानामपणिष्टासौ (उसने अपन प्राणो की बाजी लगा दी), अदेवीत् बन्धुभोगानाम् (उसने जूए मे अपने बन्धुओ और सभी भोगो को खो दिया), आदि। यदि दिव् धातु से पहले कोई उपसर्ग होगा तो षष्ठी और द्वितीया दोना होगी। शतस्य शत वा प्रतिदीव्यति (सि०कौ०)।

८५५. कृत्व (बार) प्रत्यय के अर्थ को सूचित करने वाले द्वि, त्रि, पञ्च-कृत्व आदि शब्दो के साथ कालवाचक अधिकरण मे षष्ठी होती है।[2] पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् (दिन मे पाँच बार भोजन करना), द्विरह्नो भुङ्क्ते आदि।

८५६. कृत्-प्रत्ययान्त शब्दो के साथ कर्ता और कर्म मे षष्ठी होती है।[3] कृष्णस्य कृति (कृष्ण का कार्य)। यहाँ पर कृष्ण कार्य का कर्ता है। जगत कर्ता (जगत् का कर्ता)। यहाँ पर जगत् कर्तृ का कर्म है। इसी प्रकार सता पालक: (सज्जनो का पालक), पयस पानम् (दूध का पीना), तस्य कवे क्रिया (उस कवि का कार्य) साधारणी सृष्टिरिय न धातु (रामचरित १२-११७) (यह विधाता की साधारण रचना नही है)।

(क) द्विकर्मक धातुओ के साथ गौण कर्म मे षष्ठी और द्वितीया दोनो होते हैं।[4] नेताश्वस्य स्रुघ्न स्रुघ्नस्य वा (सि० कौ०, घोडे को स्रुघ्न ले जाने वाला)।

---

१. व्यवहृपणो. समर्थयो (२-३-५७)। दिवस्तदर्थस्य (२-३-५८)। विभाषोपसर्गे (२-३-५९)।
२. कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (२-३-६४)।
३. कर्तृकर्मणो कृति (२-३-६५)।
४. गुणकर्मणि वेष्यते (वा०)।

(ख) जहाँ पर कृदन्त शब्द के साथ कर्ता और कर्म दोनों होते हैं; वहाँ पर कर्म में ही षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं।[1] आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (जो ग्वाला नहीं है, उसके द्वारा गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है)।

अपवाद-नियम—*अक* और *अ* कृत्प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग होंगे तो उनके साथ यह नियम नहीं लगेगा।[2] भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः (सि० कौ०, जगत् को विभाजित करने की रुद्र की इच्छा या रुद्र के द्वारा जगत् का विभाजित किया जाना)। कुछ आचार्यों के मतानुसार कृत्-प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग होंगे और उनके साथ कर्ता और कर्म दोनों का प्रयोग होगा तो कर्ता में षष्ठी और तृतीया दोनों होती हैं। कुछ के मतानुसार ये कृत्प्रत्ययान्त शब्द किसी भी लिंग में होंगे तो भी कर्ता में षष्ठी और तृतीया दोनों होंगी। विचित्रा जगतः कृतिः हरेर्हरिणा वा (हरि के द्वारा जगत् की रचना आश्चर्यजनक है), शब्दानामनुशासनम् आचार्येणाचार्यस्य वा (सि० कौ०), शोभना खलु पाणिनेः (पाणिनिना वा) सूत्रस्य कृतिः (महाभाष्य)।

८४७ जब क्त प्रत्यय वर्तमान अर्थ में होता है तो उसके साथ षष्ठी होती है।[3] राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा (राजाओं के द्वारा सम्मानित, विदित या पूजित), यो धर्मः स सतां मतः। रामस्य समतम् (भट्टि० ८-१२४)।

(क) अधिकरण या आधार-वाचक क्त प्रत्यय के साथ तथा भावार्थक क्त-प्रत्ययान्त के साथ षष्ठी होती है।[4] मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः। भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः॥ मयूरस्य नृत्तम्, कोकिलस्य व्याहृतम्, नटस्य भुक्तम्, छात्रस्य हसितम् आदि (महाभाष्य)। देखो भट्टि० ८-१२५।

८४८ इन स्थानों पर षष्ठी नहीं होती है[5]—शतृ और शानच् प्रत्ययान्तों के साथ (द्विष् में शतृ के साथ विकल्प से षष्ठी होगी), उ और उक कृत्प्रत्य-

१ उभयप्राप्तौ कर्मणि (२-३-६६)।
२. स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः (वा०)। शेषे विभाषा (वा०), स्त्रीप्रत्यये इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। (सि० कौ०)।
३. क्तस्य च वर्तमाने (२-३-६७)।
४. अधिकरणवाचिनश्च (२-३-६८)।
५. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (२-३-६९)।
कमेरनिषेधः (वा०), द्विषः शतुर्वा (वा०)।

यान्तों के साथ (कामुक के साथ षष्ठी होगी), कृत्य तुमुन् आदि कृत्प्रत्ययान्त अव्ययों के साथ, क्त और क्तवतु प्रत्ययान्तों के साथ, खल्-प्रत्ययान्त तथा खल् अर्थ वाले (स्वभाव, चतुर, निपुण आदि अर्थों वाले) अन्य प्रत्ययान्तों के साथ। कर्म कुर्वन् कुर्वाण वा। अन्यत्र—मुर मुरस्य वा द्विषन् हरि (मुर का शत्रु हरि)। हरि दिदृक्षु (हरि को देखने का इच्छुक), हरिम् अलङ्करिष्णु, दैत्यान् घातुको हरि (दैत्यों का नाशक हरि), लक्ष्म्या कामुक, जगत् सृष्ट्वा, सुख कर्तुम् आदि। विष्णुना हता दैत्या, दैत्यान् हतवान् विष्णु, ईषत्कर प्रपञ्चो हरिणा (जगत् का विस्तार हरि के लिए सरल कार्य है), आत्मानम् अलङ्करिष्णु (अपने आपको सजाने के स्वभाव वाला), अन्न भिक्षु (स्वभावत भिक्षा मांगने वाला), कर्ता कटम् (चटाई बनाने वाला)। जहाँ पर भविष्यत् अर्थ में कृत्-प्रत्यय अक होगा और ऋणी अर्थ में इन् प्रत्यय होगा, उनके साथ भी षष्ठी नहीं होगी।[1] हरिं दर्शको याति (हरि को देखने की इच्छा से जाता है), शत दायी (सौ रुपए देनदार)।

८५९. कृत्य-प्रत्ययान्त के साथ कर्ता में षष्ठी और तृतीया होती है।[2] मया मम वा सेव्यो हरि (हरि मेरे द्वारा सेवनीय है), राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्य मया लभ्य-मिद वनम् (भट्टि० ८-१२९, राक्षसों के स्वामी रावण के द्वारा रक्षणीय यह वन मेरे द्वारा नष्ट करने के योग्य है)। गन्तव्या ते वसतिरलका० (मेघ०, तुम्हें अलका जाना है)।

८६०. तुल्य या समानता अर्थ वाले तुल्य सदृश आदि शब्दों के साथ जिस व्यक्ति या वस्तु से समानता बताई जाती है, उसमें षष्ठी और तृतीया दोनों होती हैं। तुला और उपमा शब्दों के साथ केवल षष्ठी ही होती है।[3] तुल्य सदृश समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा (कृष्ण के सदृश)। कोऽन्योऽस्ति सदृशो मम (मेरे समान कौन है ?)। अन्यत्र—कृष्णस्य तुला उपमा वा नास्ति (सि० कौ०)।

विशेष—पाणिनि के इस नियम के विरुद्ध कतिपय महाकवियों ने तुला और उपमा शब्दों के साथ तृतीया का प्रयोग किया है। तुला यदारोहति दन्त-

१. अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः (२-३-७०)।
२. कृत्यानां कर्तरि वा (२-३-७१)।
३. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् (२-३-७२)।

वाससा (कुमार० ५-३४, वह तुम्हारे ओष्ठ की समानता को प्राप्त होगा है) । स्फुटोपम भूतिसितेन शभुना (शिशु० १-४, जिसकी उपमा राख से श्वेत शिव के साथ स्पष्ट रूप से दी जा सकती थी) । देखो रघु० ८-१५ ।

८६१. आयुष्यम्, मद्रम्, भद्रम्, कुशलम्, सुखम्, अर्थ और हितम् तथा इन अर्थो वाले अन्य शब्दो के साथ आशीर्वाद अर्थ मे चतुर्थी और षष्ठी दोनो होती हैं ।[1] आयुष्य चिरजीवित कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् (सि० कौ०, कृष्ण चिरजीवी हो) । इसी प्रकार मद्र भद्र कुशल निरामय सुख शम् अर्थ प्रयोजन हित पथ्य वा भूयात् (सि० कौ०) ।

८६२ मध्ये, पारे, कृते आदि अव्ययो के साथ षष्ठी होती है । गगाया मध्ये पारे वा (गगा के बीच मे या पार) । अमीषा प्राणाना कृते (इन प्राणो के लिए या इस जीवन के लिए) ।

८६३ तम प्रत्ययान्त या इस अर्थ वाले अन्य शब्दो के साथ षष्ठी होती है । नृणा ब्राह्मण श्रेष्ठ । अग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणाम् (रघु० ५-४, मन्त्रकर्ता ऋषियो मे प्रमुख) ।

सूचना—दो मे तुलना अर्थ वाले शब्दो के साथ पचमी होती है । कभी-कभी तृतीया भी होती है । अयमस्माद् बलेन हीन अधिको वा (यह व्यक्ति उससे बल मे न्यून या अधिक है) । इसी प्रकार देवदत्तो यज्ञदत्तात् पटु मूर्खो वा, को नु स्वन्ततरो मया (मुझसे अधिक अच्छे अन्त वाला कौन होगा ?) । अधिक शब्द के साथ षष्ठी, सप्तमी और तृतीया तीनो होती है । सुतैर्हि तासामधिकोऽपि सोऽभवत् (वह उनको अपने पुत्रो से भी अधिक प्रिय था), तेषामप्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपा (उन्होने उनकी अपेक्षा ५ मास १२ दिन और अधिक बिताए), कुडवेऽधिक प्रस्थ (कुडव से प्रस्थ बडा होता है) ।

सप्तमी विभक्ति (Locative case)

८६४ कर्ता और कर्म से सबद्ध किसी क्रिया का जो आधार (या स्थान) होता है, उसे अधिकरण कहते हैं[2] और उसमे सप्तमी विभक्ति होती है ।[3] स्वपिति गिरिगर्भे (भामती० १-६०), वासो नन्दनकानने (वही ६४),

१. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (२-३-७३) ।
२. आधारोऽधिकरणम् (१-४-४५) ।
३. सप्तम्यधिकरणे च (२-३-३६) ।

स्थाल्याम् ओदन पचति (पतीली मे चावल पकाता है), कर्णे कथयति (कान मे कुछ कहता है), मोक्षे इच्छा अस्ति, आदि। किसी कार्य के होने के समय-बोधक शब्दों मे सप्तमी होती है। तस्मिन् विप्रकृता काले दिवौकस (कुमार० २-१, उस समय व्याकुल देवों ने), दिनान्ते निलयाय गन्तुम् (रघु० २-१५)।

(क) क्त-प्रत्ययान्त शब्दो से इन् प्रत्यय होने पर उनके कर्म मे सप्तमी होती है।[1] अधीती व्याकरणे (जिसने व्याकरण पढ़ा है), गृहीती षड्स्वङ्गेषु (जिसने वेद के ६ अगों को पढ लिया है) आदि।

साधु और असाधु शब्दो के साथ जिसके प्रति साधुता आदि प्रदर्शित की जाती है, उसमे सप्तमी होती है।[2] साधु कृष्णो मातरि (कृष्ण अपनी माता के प्रति सज्जन है), असाधुर्मातुले (कृष्ण अपने मामा के प्रति अशिष्ट व्यवहार वाला है)।

(ख) जिस उद्देश्य या फल के लिए कोई कार्य किया जाता है, उसमे सप्तमी होती है, यदि उस फल का कर्म के साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध हो तो।[3] चर्मणि द्वीपिन हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्कलको हत॥ (महाभाष्य) (मनुष्य चर्म के लिए चीते को मारता है, हाथी-दातो के लिए हाथी को मारता है, बालो के लिए चमरी मृग को मारता है और कस्तूरी मृग को कस्तूरी के लिए मारता है)। यदि वस्तु का कर्म के साथ घनिष्ठ सबन्ध नही होगा तो चतुर्थी होगी।

विशेष—जिस उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है उसमे कभी कभी तृतीया का भी प्रयोग मिलता है। वेतनेन धान्य लुनाति (वेतन के लिए धान काटता है)। कभी कभी सामान्यतया उद्देश्य का बोध कराने के लिए सप्तमी होती है। यथा सृष्टोऽसि धात्रा कर्मसु तत् कुरु (परमात्मा ने तुम्हे कर्मों को करने के लिए उत्पन्न किया है, अत उन्हे करो)।

८६५. इन शब्दों के साथ षष्ठी और सप्तमी दोनो विभक्तियाँ होती

---

१. क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्यानम् (वा०)।
२. साध्वसाधुप्रयोगे च (वा०)।
३. निमित्तात् कर्मयोगे (वा०)। निमित्तमिह फलम्। योग सयोगसमवाया-त्मक०। (सि० कौ०)। समवायः नित्यसबन्धः। नित्य सबन्ध को समवाय कहते हैं (तर्ककौ०)।

हैं।[1] प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि की ओर उत्सुक)। पत्या प्रस्थितेन पत्यौ प्रस्थिते वा योषिदुत्सुका (पति के प्रस्थान के समय स्त्री व्याकुल हो जाती है)। तेजस्विभिरुत्सुकानाम् (किराता० १६-७)।

८७०. नक्षत्रवाचक शब्द यदि समय-विशेष के वाचक के रूप मे प्रयुक्त होते है तो उनके साथ सप्तमी और तृतीया दोनो होती है।[2] मूलेनावाहयेद् देवी श्रवणेन विसर्जयेत्। मूले श्रवणे इति वा। (सि० कौ०)।

८७१ समय और स्थान के अन्तर-बोधक शब्दो के साथ सप्तमी और पचमी होती हैं।[3] अद्य भुक्त्वाऽयं द्वयहे द्वयहाद् वा भोक्ता (आज खाना खा कर यह दो दिन बाद खाना खाएगा), इहस्थोऽयं कोशे क्रोशाद् वा लक्ष्य विध्येत् (यहाँ खड़ा होकर यह दो मील दूर के निशाने को मार सकता है)।

८७२. अधिक या बढ कर अर्थ मे उप उपसर्ग के साथ तथा स्वामी अर्थ मे अधि उपसर्ग के साथ सप्तमी होती है।[4] उप परार्धे हरेर्गुणा (हरि के गुण परार्ध से भी अधिक है), अधि भुवि राम, अधि रामे भू वा (राम पृथ्वी का स्वामी है)। अन्य अर्थो मे इन उपसर्गों के साथ द्वितीया होती है। देखो नियम ८०५।

८७३. दूर और अन्तिक शब्द तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्दो के साथ सप्तमी भी होती है। ग्रामस्य दूरे दूर दूरेण दूरात् वा, तस्या समीपे समीपेन समीपाद् गत्वा।

८७४. प्रेम, आदर और आसक्तिसूचक स्निह्, अनुरञ्ज्, अभिलष्, रम् आदि धातुओं के साथ तथा इनसे बने हुए शब्दो के साथ प्राय सप्तमी होती है। पिता पुत्रे स्निह्यति (पिता पुत्र से स्नेह करता है), अस्ति मे सोदरस्नेहोऽपि एतेषु (शाकु० १, इन पौधो पर मेरा सगी बहन के तुल्य प्रेम है)। न खलु तापसकन्यकाया ममाभिलाष (वस्तुत मेरा इस तपस्वी की कन्या से प्रेम नही है)। अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते (जिस राजा के मन्त्री दुश्चरित्र होते हैं, उससे जनता प्रेम नही करती है), भ्रातुर्मृतस्य भार्याया योऽनुरज्येत कामतः

१. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च। (२-३-४४)। विषयविवक्षया सप्तमी। करणत्वविवक्षया तृतीया (भट्टि० ८-११७ पर भरत)।
२. नक्षत्रे च लुपि (२-३-४५)।
३. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये (२-३-७)।
४. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी (२-३-९)।

(मनु० ३-१७९), रहसि रमते (मालती० ३-२, एकान्त मे आनन्दित रहता है), रत श्रेयसि (भट्टि० १, अपने कल्याण मे लगा हुआ) ।

सूचना—अनु+रञ्ज् और अभिलष् के साथ कभी कभी द्वितीया भी होती है। समस्यमनुरज्यन्ति (रामायण), मानुपानभिलपन्ती (भट्टि० ४-२२) ।

८७५. व्यवहार करना, वर्ताव करना अर्थ वाली वृत्, व्यवहृ आदि धातुओं तथा फेंकना अर्थ वाली अस्, मुच्, क्षिप् आदि धातुओ के साथ सप्तमी होती है। गुरुषु विनयेन वृत्ति. कार्या (अपने गुरुओ के प्रति विनय का व्यवहार करना चाहिए), कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शाकु० ४), ते तस्मिन् शरान् मुमुचु चिक्षिपुर्वा, न खलु न खलु बाण सनिपात्योऽयमस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे (शाकु० १), तस्मिनास्यदिषीकास्त्रम् (रघु० ७-२३), ।

८७६. अप+राध् (अपराध करना) धातु के साथ साधारणतया सप्तमी होती है। कभी कभी षष्ठी भी होती है। कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला (किसी पूजनीय के प्रति शकुन्तला ने अपराध किया है), न तु ग्रीष्मस्यैव सुभगमपराद्ध युवतिषु (शाकु० ३–९), किं पुनरसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धम् (विक्रमो० १) ।

भावलक्षणार्थक षष्ठी और सप्तमी
(The Genitive and the Locative Absolutes)

८७७. क्रिया के कर्ता से भिन्न यदि किसी कर्ता के साथ क्रिया शब्दों (Participle) का समन्वय होता है तो उसे भावलक्षणार्थक रचना (Absolute construction) कहते हैं। (Bain)

अंग्रेजी मे भावलक्षण अर्थ मे कर्ता (प्रथमा) का प्रयोग होता है, परन्तु संस्कृत मे ऐसे स्थानो पर षष्ठी और सप्तमी का प्रयोग होता है । अत अंग्रेजी के भावलक्षणार्थक कर्ता का अनुवाद संस्कृत मे भावलक्षणार्थक सप्तमी के द्वारा करना चाहिए। जहाँ पर भावलक्षणार्थक प्रयोग करना हो वहाँ पर कृदन्त क्रिया-शब्द (Participle) के कर्ता मे षष्ठी या सप्तमी का प्रयोग करना चाहिए और कृदन्त क्रिया-शब्द मे वही लिंग, विभक्ति और वचन होगा जो कर्ता मे होता है।

सूचना—जहाँ पर मुख्य वाक्य का कर्ता या कर्म और कृदन्त क्रिया शब्द का कर्ता या कर्म एक ही होते हैं, वहाँ पर भावलक्षणार्थक प्रयोग नही करना चाहिए। जैसे—अयोध्या निवृत्तो रामो राज्यम् अकरोत्, प्रयोग करना चाहिए। अयोध्या

निवृत्ते रामे स० नहीं । आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणामयच्छन् । इसके स्थान पर आगतेषु विप्रेषु तेभ्य० प्रयोग नहीं ।

८७८ जहाँ पर एक क्रिया दूसरी क्रिया के होने या सकेत करती है अर्थात् जहाँ पर एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होती है, वहाँ पर भावलक्षणार्थक सप्तमी का प्रयोग होता है।[1] गोषु दुह्यमानासु गत (जब गाएँ दुही जा रही थीं, तब वह गया), अवसन्नायां रात्रौ (रात्रि के बीतने पर), कुतो धर्मक्रियाविघ्न. सतां रक्षितरि त्वयि (जब तक सज्जनों के रक्षक आप विद्यमान हैं तब तक हमारी धार्मिक क्रियाओं मे विघ्न कहाँ से हो सकता है) ।

८७९. 'जब, जिस समय, यद्यपि, आदि अर्थों को प्रकट करने के लिए भी भावलक्षण अर्थ म षष्ठी और सप्तमी होती है। एव तयो परस्पर वदतो (जब ये दोनों इस प्रकार बात कर रहे थे) सूर्ये दृष्टे पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषम् (फिर जब सूर्य दिखाई पडे तब आप अपने शेष माग की यात्रा को पूरा कीजिएगा) ।

८८० जहाँ पर अनादर या अपमान अर्थ प्रकट करना होता है, वहाँ पर भी भावलक्षण अर्थ म षष्ठी और सप्तमी होती हैं।[2] रुदति रुदतो वा पुत्रे पुत्रस्य वा प्राव्राजीत् (पुत्र को रोता हुआ छोडकर वह सन्यासी हो गया)। ऐसे स्थानो पर षष्ठी का प्रयोग अधिक मिलता है। ऐसे प्रयोगो वाले स्थलो पर तथापि, फिर भी' आदि अर्थ प्रकट होता है।

(क) भावलक्षणार्थक षष्ठी और सप्तमी वाले प्रयोगो के बाद एव या मात्र का समास करने पर 'ज्योंही त्योंही, ज्योंही, जैसे ही आदि अर्थ प्रकट होते हैं। तस्मिन् सहितमात्र एव (रघु० १६-७८ ज्योंही बाण को धनुष पर चढाया त्योंही ०), अनवसितवचन एव मयि (मैंने अपनी बात समाप्त भी नहीं की थी तभी) ।

भाग ३

सर्वनाम (Pronoun)

८८१ सर्वनामों की वाक्य विचार-सबन्धी मुख्य विशेषताओ का उल्लेख अध्याय ४ म किया जा चुका है।

---

१. यस्य च भावेन भावलक्षणम् (२-३-३७)। यस्य क्रियया क्रियान्तर लक्ष्यते तत सप्तमी स्यात्। (सि० कौ०)

२. षष्ठी चानादरे (२-३-३८)।

८८२. मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष के सर्वनामो अर्थात् युष्मद् और अस्मद् शब्दो का कोई लिंग नही है। अन्य सर्वनामो का विशेष्य के अनुसार लिंग होता है। युष्मद् और अस्मद् शब्दो के छोटे रूपो के प्रयोग के लिए देखो अध्याय ४।

८८३. भवत् शब्द का प्रयोग तू के अर्थ मे होता है और यह आदर-सूचक शब्द है। भवत् शब्द को प्रथम पुरुष का सर्वनाम माना जाता है, अत इसके साथ प्र० पु० ही होता है। भवान् अत्र प्रष्टव्य (यहाँ आपसे पूछना है), भवान् अपि तत्र गच्छतु (आप भी वहाँ जाइए)।

(क) आदर-सूचनार्थ भवत् शब्द से पहले अत्र और तत्र शब्दो का प्रयोग होता है। समीपस्थ व्यक्ति के लिए अत्रभवान् और दूरस्थ या अनुपस्थित व्यक्ति के लिए तत्रभवान्। अत्रभवान् काश्यप (समीपस्थ पूजनीय काश्यप), इदमासनम् अलङ्करोत्वत्रभवान् (आप इस आसन को सुशोभित कीजिए), तत्रभवती इरावती (पूजनीया इरावती, जो यहाँ अनुपस्थित है)। कभी कभी आदरार्थ मे भवत् शब्द से पहले तद् शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—यन्मा विधेयविषये स भवान् नियुङ्क्ते (मालती० १)

८८४. तद् सर्वनाम का प्राय प्रसिद्ध या विख्यात अर्थ होता है। तौ पार्वतीपरमेश्वरौ (वे विख्यात पार्वती और परमेश्वर), तान्येव वनस्थलानि (वे प्रसिद्ध वन-प्रदेश)।

(क) जहाँ पर तद् शब्द का दो बार पाठ किया जाता है, वहाँ पर इसका 'विविध या अनेक' अर्थ होता है। तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु (उन विविध अति रमणीय स्थानो पर), *कृतैरपि तैस्तैं प्रयत्नै. (विविध प्रयत्नो के करने पर भी)*, कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना ० (गीता ७-२०)।

८८५. एक और अपर या अन्य सर्वनामो का 'कुछ . अन्य' अर्थ मे बहुवचन मे प्रयोग होता है। विधवाया पुनरुद्वाह सशास्त्र इत्येके, शास्त्रप्रतिषिद्ध इत्यन्ये, कलौ निषिद्ध इत्यपरे (कुछ का मत है कि विधवाओ का पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत है, अन्य लोगो का विचार है कि यह शास्त्रों मे निषिद्ध है और कुछ का मत है कि यह कलियुग मे निषिद्ध है)। एके के स्थान पर केचित् का भी प्रयोग होता है।

८८६. *युष्मद्, अस्मद्, यद् और किम् सर्वनामो का अन्य सर्वनामों के साथ* मिला हुआ भी प्रयोग होता है। सोऽहं ..रघूणामन्वयं वक्ष्ये (वह मैं रघुओ के

यदा का वर्णन करूँगा), सोऽहं सर्वाधमो लोके (मैं समाज में सब से नीच व्यक्ति हूँ), स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये—अग्न्यागारे—वसन् (वह तू मेरे पवित्र और आदरणीय अग्निशाला में रहता हुआ), ते वयं दमयन्त्यर्थं चराम पृथिवीमिमाम् (इस प्रकार के हम दमयन्ती के लिए इस पृथिवी पर घूम रहे हैं)। कहीं कहीं पर युष्मद् और अस्मद् शब्द लुप्त रहते हैं। सा क्षिप्रमातिष्ठ रथं गजं वा, अर्थात् सा त्वम् (वह तू शीघ्र ही रथ पर या हाथी पर बैठ), सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता (यह वह तेरा पुत्र है, जो मद बहाने वाले हाथियों का विजेता है), तथा विनाहृत पुत्रैर्योऽहमिच्छामि जीवितुम् (इस प्रकार पुत्रों से रहित होकर भी मैं जीवित रहना चाहता हूँ)।

तुलनार्थक और अतिशय-बोधक प्रत्यय

(Comparative and Superlative Degrees)

८८७ दो की तुलना वाले विशेषण शब्दों के साथ पंचमी का प्रयोग होता है। वर्धनाद् रक्षणं श्रेयः (प्रजा की वृद्धि की अपेक्षा उसकी रक्षा करना अधिक अच्छा है), अर्जुनाद् युधिष्ठिरो ज्यायान् (अर्जुन से युधिष्ठिर बड़ा था)।

(क) कभी कभी तुलनार्थक प्रत्ययान्तों के साथ तृतीया भी होती है। प्राणैः प्रियतरः (प्राणों से भी अधिक प्रिय)। देखो नियम ८६३ पर सूचना।

८८८ अतिशय-बोधक शब्दों के साथ षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं। अयमेतेषाम् एतेषु वा गरिष्ठः गुरुतमो वा।

८८९. तुलना और अतिशय का अर्थ विभिन्न विशेष विभक्तियों के प्रयोग से प्रकट किया जा सकता है। अस्य हृदयं पाषाणात् कठिनम् (इसका हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर है), छात्राणां छात्रेषु वा चैत्रः पटुः (चैत्र सभी छात्रों से अधिक चतुर है)।

८९०. जब अतिशय अर्थ में वर और प्रवर शब्दों का प्रयोग होता है तो इनके साथ षष्ठी और सप्तमी होती हैं। पुत्रः स्पर्शवतां वरः (स्पर्श के योग्य वस्तुओं में पुत्र सर्वोत्तम है), चतुष्पदां गौः प्रवरा लोहानां काञ्चनं वरम् (पशुओं में गाय सर्वश्रेष्ठ है और धातुओं में सोना)। नपुं० एक० वरम् का निषेधात्मक शब्दों के साथ 'अधिक अच्छा है, या पर नहीं' अर्थ में प्रयोग होता है। अकरणान्मन्दकरणं वरम् (कुछ न करने से धीरे धीरे काम करना अधिक अच्छा है), अजातमृतमूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः (तीन प्रकार के पुत्रों अर्थात्

अनुत्पन्न, मृत और मूर्ख में से प्रथम दो अच्छे हैं, पर अन्तिम अच्छा नहीं है)। याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (मेघ० १-६), वर प्राणे वियाग न तु मानहानि (मानहानि से मर जाना अधिक अच्छा है)।

भाग ४

कृत्प्रत्ययान्त क्रियाशब्द (Participles)

८९१ सभी कृत्प्रत्ययान्त क्रिया शब्द जिनके रूप चलते हैं, वे संस्कृत में विशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं अर्थात् विशेष्य के तुल्य उनके लिंग, विभक्ति और वचन होते हैं। कृत्प्रत्ययान्त क्रियाशब्द प्राय क्रिया का कार्य करते हैं। इनका विशेष रूप से प्रयोग भूत और भविष्यत् लकारो के स्थान पर होता है और मुख्यतया कर्मवाच्य तिङन्त प्रयोगो के स्थान पर। जब इनका इस प्रकार प्रयोग होता है तो इनमे वे ही वाक्य विचार के नियम लागू होते हैं, जो उन धातुओ के लिए बताए गए है।

शतृ और शानच् प्रत्यय (Present Participles)

८९२ शतृ और शानच् प्रत्ययो का प्रयोग कार्य की समान-कालीनता का बोध कराने के लिए होता है। इसका 'जब या जिस समय' अर्थ मे मुहावरे वाला प्रयोग होता है। अरण्ये चरन् (जब वह वन मे घूम रहा था), विवाहकौतुक बिभ्रत एव (जब वह विवाह का कगन पहने हुए था, तभी)।

देखो नियम ६७० (ख)।

८९३. किसी कार्य के करने के ढग मे, उसके कारण और फल अर्थ मे शतृ तथा शानच् प्रत्यय होते है।[1] शयाना भुञ्जते यवना (यवन लेटे हुए खाते है), हरिं पश्यन् मुच्यते (हरि का देखने से मनुष्य मुक्त हो जाता है)। इसी प्रकार तिष्ठन् मूत्रयति, गच्छन् भक्षयति (महाभाष्य)।

८९४. शतृ और शानच् प्रत्ययान्त रूपो के बाद मे स्था और आस् धातुओ का प्राय प्रयोग होता है और वह धातु के द्वारा उक्त कार्य की अबाधगति को सूचित करता है। पशूना वध कुर्वन् आस्ते (वह पशुओ का वध करता हुआ रहता था), स प्रतिपालयन् तस्थौ (वह उसकी प्रतीक्षा करता रहा)।

क्वसु प्रत्यय (Perfect participle)

८९५ क्वसु (वस) प्रत्यय का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। यह लिट्

---

१. लक्षणहेत्वो क्रियाया (३-२-१२६)। हेतु फल कारण च (सि० कौ०)

लृकार के स्थान मे 'हुआ है, हो चुका है' अर्थ मे होता है । त तस्थिवास नगरोपकण्ठे (रघु० ५-६१, नगर के समीप रुके हुए उसको), श्रेयासि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते (रघु० ५-३४, जिसने सभी कल्याणकारी वस्तुओ को प्राप्त कर लिया है, ऐसे तेरे), स शुश्रुवास्तद्वचनम् (भट्टि० १-२०, जब उसने उसकी बात सुनी), आदि ।

क्त और क्तवतु प्रत्यय (Past Participles)

८६६. क्त प्रत्यय का प्रयोग अधिकाश मे भूतकालिक तिङन्त रूप के स्थान पर होता है । इसका प्रयोग बहुत होता है । कभी कभी इसके बाद सहायक क्रिया अस् या भू का भी प्रयोग होता है । क्त प्रत्ययान्त के लिंग, विभक्ति और वचन कर्म के अनुसार होते हैं, कर्ता मे तृतीया होती है । क्तवतु प्रत्ययान्त के लिंग आदि कर्ता के तुल्य होते हैं । क्त प्रत्यय का प्रयोग कर्मवाच्य मे होता है और क्तवतु का कर्तृवाच्य मे । तेन कार्यं कृतम् (उसके द्वारा काम किया गया), तेन बन्धनानि छिन्नानि (उसके द्वारा बन्धन काटे गए) । आदिष्टास्मि देव्या धारिण्या (देवी धारिणी ने मुझे आदेश दिया है) । स कार्यं कृतवान् (उसने काय किया), राम दैत्यान् हतवान् (राम ने राक्षसो को मारा), कृतवत्यसि नावधीरणाम् (तुमने कभी मेरा अपमान नही किया) ।

८६७ अकर्मक धातुओ से जब क्त प्रत्यय होता है तो उसके कर्ता मे प्रथमा विभक्ति होती है । तदा प्ररुदितो राजा रक्षसाम् (तब राक्षसो का राजा रोया), सत्य मृतोऽय पाप , आदि ।

८६८ क्त प्रत्यय का भाववाच्य म भी प्रयोग होता है । तब कर्ता मे तृतीया होती है । प्रद्युतित प्रद्योतित वा सूर्येण (सूर्य के द्वारा प्रकाशित हुआ गया), जित पुत्रप्रेम्णा (पुत्र प्रेम की जय हुई) । पण्डितायित तत्रभवता (आपने अपनी पण्डिताई दिखाई) । प्रमुदित प्रमोदित वा साधुना, आदि ।

८६९ मन्, बुध्, पूज् और इन अर्थो वाली अन्य धातुओ मे क्त प्रत्यय वर्तमान अर्थ म होता है और इनके साथ षष्ठी होती है । देखो नियम ८५७ ।

अन्य विवरणो के लिए देखो नियम ७०५ स ७०७ ।

९००. कुछ स्थानो पर क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य मे होता है और कर्तृवाच्य लिट् के तुल्य उनके साथ द्वितीया होती है । आरूढमद्रीन् (रघु० ६-७७, जो पहाडो पर चढ गया है) । इसी प्रकार गगनमध्यमारूढ सविता, आपदमुत्तीर्णः

(उसने आपत्ति को पार कर लिया है) । यमुनाकच्छमवतीर्णः (यमुना के किनारे उतरा), आदि ।

६०१ क्तप्रत्ययान्त का प्रयोग नपुंसक० समासशब्द के तुल्य भी होता है । गतम् (जाना), दत्तम् (दान), खादम् (खाई), भुक्तम्, सुप्तम्, आदि ।

६०२ क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त के बाद सहायक क्रिया अस् और भू का किसी भी लकार में प्रयोग हो सकता है । तदनुसार ही इनके अर्थों में भी परिवर्तन होता जाएगा । गतोऽस्मि, गतवानस्मि (मैं गया हूँ) । इसी प्रकार गतवानभवम्, गतवानासम्, गतोऽभवम् (मैं गया था) । इसी प्रकार कृतवानस्मि, गतो वन श्वो भवितेति राम (राम कल वन को चले जाएँगे), सप्राप्त कीर्तिमतुला भविष्यसि (तुम्हें अनुपम कीर्ति प्राप्त होगी), आदि ।

भविष्यत् अर्थ वाले शतृ, शानच् (Future Participles)

६०३ भविष्यत् अर्थ मे होने वाले शतृ और शानच् यह प्रकट करते है कि धातु के द्वारा उक्त अर्थ होने वाला है या होगा । करिष्यन् (अभी करने वाला), करिष्यमाण (अभी किया जाने वाला या अभी करने वाला) ।

६०४. ये भविष्यत् अर्थ वाले प्रत्यय भविष्यत् अर्थ के अतिरिक्त इच्छा या उद्देश्य अर्थ को भी प्रकट करते है । अनुयास्यन् मुनितनयाम् (मुनि की पुत्री के पीछे जाने की इच्छा वाला), दास्यन् (देने की इच्छा वाला), वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान् (मानो वन के दुष्ट प्राणियो को विनीत बनाने की इच्छा वाला) ।

कृत्य प्रत्यय

(Potential Passive Participles)

६०५ कृत्य प्रत्ययो (*तव्य, अनीय आदि*) *का प्रयोग 'चाहिए या करना* चाहिए' अर्थ म होता है । इसके अतिरिक्त इनका अभिप्राय होता है कि योग्य है, समर्थ है, कर्तव्य है, उसम सामर्थ्य है, आदि । इनके साथ कर्ता मे तृतीया होती है । विमर्शमकरोच्चित्ते कि कर्तव्य मयाऽधुना (देवीभागवत ४-७-१, उसने मन मे सोचा कि मुझे क्या करना चाहिए) । धर्म अनुसरणीय (धर्म का अनुसरण करना चाहिए), त्वया भारो वहनीय (तुम इस भार को ढो सकते हो), हन्तव्योऽय शठ (इस धूर्त का वध करना चाहिए) । गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम् (तुम्हे अलका नगरी जाना है जहाँ यक्षो के राजा रहते है) ।

विशेष—कभी कभी कृत्य प्रत्ययो के साथ कर्ता मे पष्ठी भी होती है । मम सेव्यो हरि. (हरि मेरे द्वारा सेवनीय है), द्विजातीना भक्ष्यम् अन्नम् (भात ब्राह्मणो को खाना चाहिए) ।

६०६. कभी कभी कृत्य प्रत्ययो का भाववाच्य मे प्रयोग होता है और उसमे नपुसक० एक० रहता है । तत्रभवता तपोवन गन्तव्यम् (आपको तपोवन जाना चाहिए), मया चाण्डालै सह स्थातव्यम् (मुझे चाण्डालो के साथ रहना चाहिए), आदि ।

६०७ नपुसक लिंग वाले रूप भवितव्यम् और भाव्यम् का भाववाच्य मे प्रयोग होता है और इसका अर्थ होता है—'होना चाहिए, अधिक सभव है, होगा ।' इसके साथ कर्ता मे तृतीया होती है । अत्र केनापि कारणेन भवितव्यम् (इसमे अवश्य कोई कारण होना चाहिए), अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भवितव्य भाव्य था (अधिक सभव है कि इसके शब्द के अनुकूल ही इसका बल भी होगा) । आर्यया प्रवहणमारूढया भवितव्यम् (आर्या सभवत गाडी मे बैठी हुई होगी), आदि ।

६०८. कृत्य-प्रत्ययान्तो का कभी-कभी सज्ञा-शब्द के तुल्य भी प्रयोग होता है । प्रष्टव्य पृच्छतस्तस्य (पूछने योग्य बात पूछते हुए उसका), भवितव्य भवत्वेव (होनहार को होने दो) ।

क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय (Gerunds)

६०९. क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय कर्ता के द्वारा किए गए दो कार्यों मे से प्रथम का बोध कराते हैं । इति उक्त्वा विरराम (यह कहकर वह चुप हो गया), तान् पृष्ठम् आरोप्य जलाशय नीत्वा भक्षयति (उनको पीठ पर लाद कर तालाब के समीप ले जाकर वह उन्हे खा जाता था) ।

क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त रूप क्रिया-शब्द का कार्य करते हुए वाक्यो के सयोजक का भी काम करते हैं, अतएव सस्कृत मे सयोजक अव्ययों आदि का प्रयोग कम होता है । जहाँ पर किसी वाक्य मे कई क्त्वा या ल्यप् प्रत्ययान्त रूपो का प्रयोग होता है, उसका अनुवाद विभिन्न क्रिया-शब्दो और सयोजक अव्ययो का प्रयोग करके करना चाहिए, अथवा 'कर या करके' का प्रयोग करके अनुवाद किया जा सकता है । प्रवृत्ते प्रदोपसमये चन्द्रापीड चरणाभ्यामेव राजकुल गत्वा पितु समीपे मुहूर्त स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीम् आगत्य स्वभवन शयनतलमधिशिश्ये (साय काल का समय होने पर, चन्द्रापीड पैदल ही राजभवन मे गया,

थोडी देर पिता के समीप रहा और विलासवती को देख कर अपने महल में पहुँच कर विस्तर पर सोया)।

६१०. कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्तो का सस्कृत मे उपसर्ग के तुल्य प्रयोग होता है। विहाय, मुक्त्वा (सिवाय), आदाय (सहित), उद्दिश्य, अधिकृत्य, अनुरुध्य (विषय मे), आदि।

तुमुन् प्रत्यय (Infinitive Mood)

६११. सस्कृत मे तुमुन् प्रत्यय सामान्यतया उद्देश्य को सूचित करता है या जिस लिए कोई कार्य किया गया है। वह इंग्लिश के *Infinitive of* purpose या Gerund का समकक्ष है। अत सस्कृत मे तुमुन् वाले प्रयोगो मे चतुर्थी का अर्थ विद्यमान रहता है और यदि आवश्यकता हो तो तुमुन् प्रत्ययान्त रूप के स्थान पर धातु के ल्युट् (अन) प्रत्ययान्त शब्द का चतुर्थी विभक्ति वाला प्रयोग किया जा सकता है। पानीय पातु यमुनाकच्छम् अवततार (वह पानी पीने के लिए यमुना के किनारे उतरा)। यहाँ पर पातुम् के स्थान पर पानाय (पानीयस्य पानाय) प्रयोग किया जा सकता है। दारादीन् विषयान् भोक्तुम् (रघु० १०-२५)। यहाँ पर भोक्तुम् के स्थान पर भोगाय प्रयोग हो सकता है।

प्रो० मोनियर विलियम्स (Prof. Monier Williams) का कथन है कि —सस्कृत मे तुम् प्रत्यय से बने हुए क्रियाशब्द का उतने व्यापक ढग से प्रयोग नही किया जा सकता है, जितना कि अन्य भाषाओ मे (Infinitive का किया जाता है। लेटिन मे इसके समानार्थक प्रत्यय का जितना प्रयोग होता है, उसकी अपेक्षा सस्कृत मे इसका प्रयोग बहुत कम होता है।

(क) अत विद्यार्थी को सस्कृत के तुमुन् प्रत्यय और लेटिन तथा ग्रीक के Infinitive का अन्तर समझ लेना चाहिए। लेटिन और ग्रीक भाषाओ मे Infinitive किसी उपसर्ग का कर्ता हो सकता है, दूसरे शब्दो मे यह कह सकते है कि *Infinitive* कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त होता है और इससे पूर्व कर्म का प्रयोग प्राय हो सकता है। इसके कई रूप हो जाते है और वे वर्तमान, भूत तथा भविष्य का अर्थ प्रकट करते हैं, साथ ही क्रिया की पूर्णता या अपूर्णता का बोध कराते हैं। दूसरी ओर सस्कृत का तुमुन्-प्रत्ययान्त रूप कभी भी क्रिया का कर्ता नही हो सकता है। इससे पहले कभी भी

कर्म नहीं आ सकता है। यह अनिश्चित समय तथा अपूर्ण क्रिया को सूचित करता
है। जहाँ कहीं भी इसका प्रयोग होता है, इसको उक्त या अनुक्त क्रिया का कर्म
ही समझना चाहिए, कर्ता कभी भी नहीं। क्रिया के कर्म के रूप में इसे धातुज
प्रातिपदिक का समकक्ष समझना चाहिए और उस अवस्था में इसमें द्वितीया
तथा चतुर्थी इन दो विभक्तियों की शक्ति इसमें रहती है। अन्य प्रातिपदिकों में
विभिन्न विभक्तियाँ होती हैं, परन्तु इसमें नहीं। यह अन्य प्रातिपदिकों से इसका
अन्तर है। द्वितीया विभक्ति की शक्ति के साथ प्रातिपदिक के रूप में इसका प्रयोग
लेटिन के Infinitive के समान ही है। इस प्रकार—तत् सर्वं
श्रोतुम् इच्छामि (मैं वह सब कुछ सुनना चाहता हूँ) और लेटिन का
Id audire capio समानार्थक है। इसमें श्रोतुम् और audire
दोनों द्वितीया के बराबर हैं। इसी प्रकार रोदितुं प्रवृत्ता (उसने रोना प्रारम्भ
किया) और महीं जेतुम् आरेभे (उसने पृथ्वी को जीतना प्रारम्भ किया)। यहाँ
पर महीजयम आरेभे प्रयोग का भी वही अर्थ होगा।

(ख) 'बॉप (Bopp) का विचार है कि तुम् प्रत्यय 'तु' प्रत्यय
का द्वितीया का रूप है (देखो नियम ४५८)। यह सत्य है कि वेद में तु प्रत्यय के
ही अन्य विभक्तियों के रूप तुमुन् (तुम) प्रत्यय के अर्थ में प्राप्त होते हैं। जैसे–
तु के चतुर्थी के रूप तवे या तवै। हन् धातु से हन्तवे (मारने को), अनु+ इ से
अन्वेतवे (पीछे चलने को), मन् धातु से मन्तवै (सोचने को)। इसी प्रकार
इसका पंचमी वाला रूप तो पंचमी के अर्थ में मिलता है। जैसे—इ धातु से एतो.
(जाने से), हन् से हन्तो, जैसे पुरा हन्तो (मारने से पहले)। इसका ही एक
त्वि वाला प्रयोग मिलता है, जो श्रेण्य संस्कृत के त्वा प्रत्यय के समानार्थक है।
जैसे—हन् से हन्त्वि (मार कर), भू से भूत्वि (होकर), आदि।' (Sanskrit Grammar)

६१२ किसी क्रिया के कर्ता या कर्म के रूप में तुमुन् प्रत्ययान्त का प्रयोग
नहीं किया जा सकता है। इस कार्य के लिए भाववाचक शब्दों का प्रयोग करना
चाहिए। अतः अंग्रेजी में जहाँ पर वाक्य में कर्ता या कर्म के रूप में Infinitive
आता है, वहाँ पर संस्कृत में धातु से बने हुए ल्युट् (अन) प्रत्ययान्त का
प्रयोग करना चाहिए। अतः 'अपने धर्म का आचरण करना हितकर है' का अनुवाद
'स्वधर्माचरणं हितावहम्' करना चाहिए, न कि 'स्वधर्मम् आचरितुम्'०।

६१३ यदि क्रिया और इच्छा का कर्ता एक ही होगा तो इच्छा अर्थ वाली धातुओं और धातुज शब्दों के साथ तुम् प्रत्ययान्त का प्रयोग होता है।[१] को हर्तुमिच्छति हरे. दंष्ट्राम् (मुद्रा० १, कौन शेर की दाढ को उखाडना चाहता है), माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते (भर्तृहरि० ,२-६) । 'मैं चाहता हूँ कि वह यह काम करे' का अनुवाद तमेतत् कर्तुम् अहम् इच्छामि, अशुद्ध है ।

६१४ इन स्थानो पर भी तुमुन् (तुम्) का प्रयोग होता है—

(क) इन अर्थों वाली धातुओं के साथ तुम् होता है—सकना, धृष्ट होना, जानना, व्याकुल होना, लगना, प्रारम्भ करना, पाना, कार्य शुरू करना, सहना, योग्य होना और होना।[२] न शक्नोति शिरोधरा धारयितुम् (काद०, वह अपनी गर्दन को नही संभाल सकता है), जानासि कोपं निग्रहीतुम् (तुम अपने क्रोध को रोकना जानते हो), अगदेन सम योद्धुमघटिष्ट (भट्टि० १५-७७, वह अगद के साथ लडने लगा), गन्तु व्यवस्येद् भवान् (मेघ० २२, आप जाने का यत्न कीजिए), वक्तु प्रक्रमेथा (मेघ० १०३, तुम कहना शुरू करो), अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुमन्नम् (सि० कौ०, यहाँ पर खाने के लिए अन्न है), आदि ।

(ख) अलम् आदि शब्दो तथा पर्याप्त समर्थ कुशल अर्थ वाले शब्दो के साथ तुमुन् होता है।[३] पर्याप्तोऽसि प्रजा पातुम् (रघु० १०-२५, तुम प्रजा की रक्षा करने मे समर्थ हो), क समर्थो दैवमन्यथा कर्तुम् (भाग्य को कौन बदल सकता है), प्रासादास्त्वा तुलयितुमलम् (मेघ० ६६, वहाँ के महल ऊँचाई मे तुम्हारी समानता कर सकते हैं), भोक्तु प्रवीण. कुशल. पटुर्वा (सि० कौ०, खाने मे निपुण) ।

(ग) 'काम करने का यह समय है' इस अर्थ वाले शब्दो के साथ तुम् होता है।[४] काल समयो वेला अनेहा वा भोक्तुम् (सि० कौ०, यह खाना खाने का समय है) ।

---

१. समानकर्तृकेषु तुमुन् (३-३-१५८) ।
२. शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् (३-४-६५) । देखो Apte's Guide नियम १७६ और उस पर टिप्पणी ।
३. पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु (३-४-६६) ।
४. कालसमयवेलासु तुमुन् (३-३-१६७) ।

६१५. संस्कृत मे तुम् प्रत्ययान्त का कर्मवाच्य रूप नही होता है। अतः तुम् प्रत्ययान्त रूप से युक्त किसी कर्तृवाच्य प्रयोग का कर्मवाच्य बनाना हो तो क्रिया के रूप का कर्मवाच्य वाला रूप हो जाएगा और कर्ता मे तदनुसार तृतीया हो जाएगी। तुम प्रत्ययान्त रूप मे कोई अन्तर नही आएगा। स ग्राम गन्तुम् इच्छति, तेन ग्राम गन्तुम् इष्यते। स भार वोढुम् इच्छति का कर्मवाच्य होगा—तेन भारो वोढुम् इष्यते।

६१६ जब तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ अर्हं धातु का (मध्यम पुरुष मे) प्रयोग होता है तो वह प्रार्थना अर्थ को प्रकट करता है। अग्नि शमयितुमर्हसि (मेघ० ५५, अग्नि को शान्त करने की कृपा कीजिएगा), न चेद् रहस्य प्रतिवक्तुमर्हसि (कुमार० ५-४०, यदि कोई छिपाने की बात न हो तो कृपया उत्तर दीजिएगा), द्विनाण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन् (रघु० ५-२५, हे माननीय, दो तीन दिन प्रतीक्षा करने की कृपा कीजिएगा)। कही कही पर यह विनम्र आदेश अर्थ प्रकट करता है। इमा प्रसादयितुमर्हसि (आपको चाहिए कि इनको प्रसन्न करे), न त शोचितुमर्हसि (तुम्ह उसका शोक नही करना चाहिए)। जब तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ अर्हं धातु का प्रथम पुरुष म प्रयोग होता है तो वह योग्य या समर्थ अर्थ को प्रकट करता है। द्रोण हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात् (महाभारत ४-५८-२७), दैव प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति (महाभारत १-१-२४६)।

६१७ काम और मनस् शब्द बाद म होते है तो तुमुन् प्रत्ययान्त के अन्तिम म् का लोप हो जाता है और वह समस्त पद विशेषण के तुल्य प्रयुक्त होता है तथा उसका अर्थ होता है 'इच्छा वाले या करने के इच्छुक'।[1] एतावदुक्त्वा प्रतियातुकाम शिष्य महर्षे ० (रघु० ५-१८, यह कहकर महर्षि का शिष्य लौटने की इच्छा करने लगा), अय जन प्रष्टुमनास्तपोधने (कुमार० ५-४०, हे तपस्विनी, यह मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ)।

लकारार्थ-विचार

लट् लकार

६१८ लट् लकार का अर्थ है कि कार्य इस समय हो रहा है। अयमागच्छति तव पुत्र (तेरा पुत्र यह आ रहा है)। प्रो० बेन (Bain) का कथन है कि वस्तुत वर्तमान काल वह है जहाँ पर कोई कार्य प्रारम्भ हो चुका हो और वह

१. तुकाममनसोरपि।

निरन्तर चल रहा हो)[१] किसी क्रिया विशेषण शब्द के द्वारा या प्रसग के द्वारा क्रिया के वस्तुत वर्तमान काल का अर्थ निर्धारित किया जाता है। अधुना स इमा पुरीम् अधिवसति (अब वह इस नगरी मे रहता है)।

६१९ उपर्युक्त सामान्य अर्थ के अतिरिक्त सस्कृत मे लट् लकार निम्नलिखित अर्थों को भी प्रकट करता है —

(क) कभी कभी 'समीपवर्ती भविष्य' के अर्थ मे भी लट् का प्रयोग होता है।[२] कदा गमिष्यसि (कब जाओगे ?), एष गच्छामि (अभी जाता हूँ या जाऊँगा)। ऊर्ध्व म्रिये मुहूर्ताद्धि (एक क्षण या घटे बाद मर जाऊँगा)।

(ख) शीघ्र ही पूरा किए गए कार्य का सकेत करने के लिए भी लट् का प्रयोग होता है। कदा त्व नगराद् आगतोऽसि—अयमागच्छामि (तुम शहर से कब आए ? मैं अभी आया हूँ)।

(ग) वर्णनात्मक प्रसगो मे भूतकाल के अर्थ मे लट् का प्रयोग होता है। गृध्रो ब्रूते—कस्त्वम् (गृद्ध ने कहा—तुम कौन हो ?)।

(घ) कभी कभी यह स्वभाव या अभ्यस्त कार्य का बोध कराता है। पशुवधेनासौ जीवति।

६२०. यदि ननु अव्यय का प्रयोग होता है और किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाता है तो भूतकाल के स्थान पर लट् का प्रयोग होता है।[३] कटम् अकार्षीः किम्—ननु करोमि भो। यहाँ पर अकार्षम् के स्थान पर करोमि प्रयोग है। जहाँ पर न या नु अव्ययो का प्रयोग होता है, वहाँ पर विकल्प से लट्

---

१. 'वर्तमान काल का मुख्यतया प्रयोग इसलिए होता है कि जो बात सभी कालो मे सत्य हो, उसको प्रकट किया जाए। जैसे—सूर्य प्रकाश देता है, दो गुणा दो चार होते हैं। अत इसको शाश्वत काल नाम देना अधिक उपयुक्त है। यह शाश्वत काल का बोध कराते हुए वर्तमान अर्थ को प्रकट करता है। अत वर्तमान काल इन अर्थों को प्रकट करता है—प्राकृतिक नियम, स्थायी प्रबन्ध, जीवमात्र की विशेषताएँ, स्वभाव और गुण-धर्म तथा जो कुछ भी शाश्वत, स्थायी, नियमित और एकरूप है। विशेष क्रियाविशेषणो और प्रसग आदि के द्वारा इसका केवल वर्तमान काल अर्थ समझा जाता है।' बेन कृत हायर इगलिश ग्रामर।

२. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा (३-३-१३१)। देखो नियम ९३६।

३. ननौ पृष्टप्रतिवचने (३-२-१२०)

होता है।[1] वटम् अवार्षी विम्—न वरोमि-न अवार्षं वा, नु वरोमि-न्वकार्षं वा ।

६२१ प्रश्नवाचव विम् आदि शब्दो वा प्रयोग होने पर भविष्यत् अर्थ मे विवल्प से लट् होता है, कोई विचार या इच्छा अभिप्रेत हो तो ।[2] कि करोमि वरिष्यामि वा, क्व गच्छामि गमिष्यामि वा (मै क्या वरूँ, वहाँ जाऊँ ?) । एतयोः वतरम् एतेषा वतम वा भोजयसि–भोजयिष्यसि–भोजयितासि वा (इनमे से विसको आप भोजन खिलाएँगे ?) । इसी प्रकार व नु पृच्छामि दु सार्ता, आदि । अन्यत्र—व ग्राम गमिष्यति ।

(क) जहाँ पर अभीप्ट अर्थ की सिद्धि होती है वहाँ पर भी हेतुमत् वाक्यों मे भविष्यत् अर्थ मे ल्ट् लवार वा प्रयोग विवल्प से होता है ।[3] योऽन्न ददाति–दास्यति–दाता वा, स स्वर्ग याति–यास्यति–याता वा (जो अन्न वा दान वरता है, वह स्वर्ग वो जाता है) ।

६२२ यावत् और तावत् तथा इन अर्थों वाले अन्य शब्दो के साथ विवल्प से भविष्यत् अर्थ मे लट् होता है । यावत् स त्वा न पश्यति तावद् दूरम् अपसर (जव तव वह तुम्ह नही देख लेता, तब तव तुम यहाँ से दूर हट जावो) ।

(क) यावत् और पुरा निपाता वा प्रयोग होने पर भविष्यत् अर्थ म लट् लवार का प्रयोग होता है, निश्चय अर्थ हो तो ।[4] यावद् यते साधयितु त्वदर्थम् (रघु० ५-२५, मैं तुम्हारे वाम को पूरा करने वा प्रयत्न वरूँगा) । पुरा सप्त-द्वीपा जयति वसुधाम् (शाकु० ७-३३, वह सात द्वीपो वाली पृथ्वी को जीतेगा), पुरानुशेते तव चञ्चल मन (किराता० ८-८)

६२३ स्म निपात वे साथ लट् लवार वा प्रयोग होता है और वह भूतकाल वा अर्थ बताता है ।[5] कस्मिश्चिदधिष्ठाने मित्रशर्मा नाम ब्राह्मण प्रतिवसति स्म (एक गाँव मे मित्रशर्मा नाम वा एव ब्राह्मण रहता था), पौरा शतशोऽभिया-

---

१. नन्वोर्विभाषा (३-२-१२१) ।
२. किंवृत्ते लिप्सायाम् (३-३-६) ।
३. लिप्स्यमानसिद्धौ च (३-३-७) ।
४. यावत्पुरानिपातयोर्लट् (३-३-४) । । निपातावेतौ निश्चय द्योतयतः (सि० कौ०) ।
५. लट् स्मे (३-२-११८) ।

वन्ति स्म (सैंकडो नागरिक दौड पडे)। स्म को क्रिया के साथ ही रखना अनिवार्य नही है। त्व स्म वेत्थ महाराज यत् स्माह न विभीषण, मन्त्रे स्म हितमाचष्टे, आदि।

६२४ वाक्य मे अपि और जातु का प्रयोग होने पर लुङ आदि तीन लकारो के स्थान पर लट् होता है, निन्दा अर्थ अभिप्रेत हो तो।[१] अपि जाया त्यजसि, जातु गणिकाम् आधत्से। यहाँ पर त्यजसि और आधत्से भूत और भविष्यत् कालो का भी अर्थ बताते हैं। जातु तत्रभवान् वृपलान् याजयति (आप शूद्रो से भी यज्ञ कराएंगे)।

लङ, लिट् और लुङ
(Imperfect, Perfect, Aorist)

६२५ सस्कृत मे भूतकाल के बोधक तीन लकार है—लङ, लिट् और लुङ। मूल रूप मे इन लकारो का अपना अपना स्वतन्त्र अर्थ था और प्राचीन लेखों मे इनका विशेष अर्थो मे प्रयोग हुआ है।[२] जब से सस्कृत बोल चाल की भाषा नही रही, तब से इन लकारो के मौलिक भेदो का ध्यान नही रक्खा गया और लेखको ने इनका अन्धाधुन्ध प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। अत अब भूतकाल अर्थ मे कुछ नियमन के साथ तीनो लकारो मे से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। नीचे इनके तथा इनके अन्य भेदो के मौलिक अर्थों का उल्लेख किया गया है।

लङ (Imperfect)

६२६. पाणिनि के अनुसार लङ लकार आज को छोड कर अन्य किसी भी भूतकाल अर्थ मे होता है।[3] तानभाषत पौलस्त्य (भट्टि, विभीषण ने उनसे कहा)।

६२७. यदि वाक्य मे ह और शश्वत् अव्ययो का प्रयोग होगा तो लिट् के स्थान पर लङ विकल्प से होगा।[४] इति ह अकरोत्–चकार वा, शश्वद् अकरोत्–चकार वा।

१. गर्हायां लडपिजात्वो. (३-३-१४२)।
२. इन तीनो लकारों के अन्तर का और विवरण प्राप्त करने के लिए छात्रो को चाहिए कि वे डा० भाण्डारकर की पुस्तक (Second Book of Sanskrit) के प्रथम सस्करण की भूमिका देखें।
३. अनद्यतने लङ (३-२-१११)। ४. हशश्वतोर्लङ् च (३-२-११६)।

(ख) समीपवर्ती भूतकाल से संबद्ध यदि कोई प्रश्न किया जाता है तो वहाँ पर लिट् के स्थान में विकल्प से लङ् होगा।[1] (प्रश्न) अगच्छत् किम् ? (उत्तर) अगच्छत्, अथवा जगाम किम् ? जगाम। जहाँ पर दूरवर्ती भूतकाल का अभिप्राय होगा, वहाँ पर केवल लिट् का ही प्रयोग होगा। कृष्ण कंसं जघान किम् ? जघान।

६२८. जहाँ पर लोट् लकार के अर्थ में मा स्म निपातों के साथ लङ् लकार का प्रयोग होता है, वहाँ पर तिङन्त रूप में पहले लगे हुए अ का लोप हो जाता है। मा स्म भव, मा स्म करोत्, मा स्म प्रवदित युवाम्।

लिट् (Perfect)

६२९. लिट् लकार परोक्ष भूत में हुई घटना का सूचक है।[2] यह अति प्राचीन समय का बोध कराता है, अतः अतिप्राचीन भूतकाल में घटनाओं के प्रसंगों में ही इसका प्रयोग करना चाहिए। तां ताटकाख्यां निजघान रामः (उस ताडका को राम ने मारा), प्रययाविन्द्रजित् प्रत्यक् (भट्टि० १८-१६)।

(क) लिट् लकार के उत्तम पुरुष में चित्त के विक्षेप आदि के कारण परोक्षता समझनी चाहिए। वक्ता उस समय अचेतन अवस्था में था अतः उस समय घटी हुई घटना का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। अथवा उसने जो कुछ किया है, उससे वह मुकरना चाहता है। बहु जगद पुरस्तात् तस्य मत्ता किलाहम् (शिशु० ११-३९, मुझे ज्ञात हुआ है कि उन्मत्तावस्था में मैंने उसके सामने बहुत बकवाद की थी)। कलिङ्गेष्ववात्सीः किम् (क्या तुम कलिङ्ग प्रदेश में रहे हो ?), नाहं कलिङ्गान् जगाम (मैं कभी भी कलिङ्गदेश में नहीं गया हूँ)। इन अपवाद-स्थलों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर लिट् के उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

यज्ञ किया, पितरो को तृप्त किया, अपने सबन्धियो का आदर किया,⁶६ चीजो (काम, क्रोध आदि) पर विजय पाई, राजनीति मे रमा और अपने शत्रुओ का उसने समूल नाश किया। लुङ लकार वस्तुत उसी दिन के भूत काल के कार्य का बोध कराता है। डा० भाण्डारकर का कथन है कि[1] 'यह अंग्रेजी के Present Perfect के तुल्य है, जिसका लक्षण किया गया है कि वह कार्य जो वर्तमान दिन के ही किसी अश मे पूरा हुआ है। यह भूतकाल के कार्य को वर्तमान से सबद्ध करता है।' अभूद् वृष्टिरद्य (आज वर्षा हुई)।

६३१ जहाँ पर क्रिया की निरन्तरता और समय की समीपता बताई जाती है, वहाँ पर लुङ लकार होता है।[2] यावज्जीवमन्नमदात् (सि० कौ०, उसने जीवन भर अन्न का दान किया)। येय पौर्णमास्यतिक्रान्ता तस्यामग्नीनाधित सोमेनायष्ट (सि० कौ०, जो यह पूर्णिमा बीती है, उस दिन इसने अग्नि का आधान किया था और सोम-यज्ञ किया था)।

६३२ पुरा अव्यय का प्रयोग होगा तो वहाँ पर लुङ, लङ, लिट् और लट् चारो का प्रयोग होता है, यदि स्म का साथ मे प्रयोग होगा तो नही।[3] वसन्तीह पुरा छात्रा –अवात्सु –अवसन् –ऊषुर्वा (सि० कौ०, यहाँ पर पहले छात्र रहते थे)। यदि पुरा के साथ स्म भी होगा तो केवल लट लकार ही होगा। यजति स्म पुरा (वह पहले यज्ञ करता था)।

६३३ निषेधार्थक मा (माङ) और मा स्म के साथ लुङ लकार का प्रयोग होता है। धातु के पूर्ववर्ती अ (अट्) का लोप हो जाता है और यह लोट् लकार का अर्थ सूचित करता है। इति ते सशयो मा भूत् (महाभारत ५-१३२-१६, तुम्हे सन्देह न हो), मा स्म प्रतीप गम (प्रतिकूल न जाओ)। प्राचीन ग्रन्थो मे कुछ स्थानो पर मा के साथ धातु के पूर्ववर्ती अ की सत्ता भी मिलती है। मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा (हे निषाद, तू बहुत समय तक जीवित न रह)। जहाँ पर धातु से पूर्व कोई उपसर्ग होता है, वहाँ पर कभी कभी अ का लोप नही होता है। मा मन्युवशमन्वगा (तुम क्रोध या शोक के वशीभूत न होना)। यहाँ

१. Second Book of Sanskrit, पृष्ठ १५४।
२. नानद्यतनवत्० (३-३-१३५)।
३. पुरि लुङ् चास्मे (३-२-१२२)। पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषया लुङ् चाल्लट् न तु स्मयोगे। (सि० कौ०)

पर अ का लोप नही हुआ है। कही कही पर उपसर्ग पहले होने पर लोप होता भी है। जैसे—मावमस्या स्वमात्मानम् (अपनी आत्मा का अपमान न करो)। कुछ लोगो ने अ रहने वाले स्थानो का समाधान किया है कि यहाँ पर निषेधार्थक निपात मा है, माङ नही।

लुट् और लृट्

६३४ लुट् और लृट् मे वही अन्तर है जो लङ और लुङ मे है। दोनो मे अन्तर यही है कि लुट् और लृट् मे भविष्यत् विषयक अन्तर है और लङ-लुङ मे भूतकाल विषयक। लुट् भविष्यत् अर्थ को निश्चित रूप से बताता है, आज के भविष्य अर्थ को छोड कर। लृट् भविष्यत् अर्थ को अनिश्चित रूप से बताता है। वह आज के भविष्य अर्थ को भी बताता है। लृट् लकार समीपस्थ काल और निरन्तर भविष्यत् काल को भी बताने के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—अयोध्या द्व. प्रयातासि कपे भरतपालिताम् (भट्टि० २२, हे हनुमान्, तुम भरत के द्वारा पालित अयोध्या को कल जाओगे)। आनन्दितारस्त्वा दृष्ट्वा प्रष्टारश्चावयो शिवम्। मातर सह मैथिल्या तोष्टा च भरत परम् (भट्टि० २२-१४) (हमारी माताएँ तुम को देख कर आनन्दित होगी, वे हम दोनो और सीता का कुशल समाचार पूछेंगी। भरत भी बहुत अधिक प्रसन्न होगे), एते उन्मूलितार कपिकेतनेन (किराता० ३-२२, वे सब कपि ध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट किए जाएँगे)। मरिष्यामि विजेष्ये यास्यत्यद्य शकुन्तला (शाकु० ४, शकुन्तला आज जाएगी), मरिष्यामि विजेष्ये वा हताश्चेत् तनया मम (भट्टि० १६-१३, यदि मेरे पुत्र मारे गए होगे तो या मैं ही मरूँगा या शत्रुओ को नष्ट करूँगा), आदि।

लुट् (First Future या Periphrastic Future)

६३५ विशेष—यदि कार्य की निरन्तरता और समय की समीपता (अव्यवधान) बताई जाती है तो वहाँ पर लुट् लकार का प्रयोग नही होता है।[1] यावज्जीवमन्न दास्यति (वह जीवन भर अन्न-दान करेगा)। यहाँ पर 'दाता' प्रयोग नही हो सकता है। या इयम् अमावास्या आगामिनी तस्याम् अग्नीन् आधास्यते सोमेन च यक्ष्यते (वह इस आगामी अमावास्या के दिन अग्नि का आधान करेगा और सोम से यज्ञ करेगा)। यहाँ पर आधाता और यष्टा प्रयोग नही हो सकता है। जहाँ पर वाक्य मे अवर शब्द का प्रयोग होगा तथा समय या स्थान की कोई

१. नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययो (३-३-१३५)।

सीमा बताई जाएगी, वहाँ पर भी लुट् नही होगा ।[1] य अयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवर कौशाम्ब्या तत्र सक्तून् पास्याम । यहाँ पर पातास्म प्रयोग नही होगा । य अय सवत्सर आगामी तस्य यदवरम् आग्रहायण्या तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । यहाँ अध्येतास्महे प्रयोग नहीं होगा । यदि वाक्य मे अहन् या रात्र शब्द का प्रयोग होगा तो लुट् हो जाएगा । योऽय मास आगामी तस्य योऽवर पञ्चदशरात्र तत्र अध्येतास्महे (अगले महीने के शुरू के जो पन्द्रह दिन है, उनमे हम पढेंगे)। जहाँ पर वाक्य मे पर शब्द का प्रयोग होगा और किसी काल-विशेष से बाद का अर्थ अभिप्रेत होगा तो वहाँ पर लुट् और लृट् दोनो हो सकते है ।[2] योऽय सवत्सर आगामी तस्य यत्परम् आग्रहायण्या तत्र अध्येष्यामहे अध्येतास्महे वा।

लृट् (Second or Simple Future)

६३६ जहाँ पर वर्तमान का समीपवर्ती भविष्यत् अर्थ कहना होता है, वहाँ पर लृट् और लट् दोना होते हैं ।[3] कदा गमिष्यसि (कब जाओगे ?), एष गच्छामि गमिष्यामि वा (अभी जाता हूँ या जाऊँगा) ।

६३७ यदि हेतुमद् वाक्य मे आशा अर्थ भी होगा तो वहाँ पर भविष्यत् अर्थ मे लुङ, लट् और लृट् ये तीनो दोनो वाक्यो मे होते हैं ।[4] देवश्चेद् अवर्षीत्-वर्षति-वर्षिष्यति वा धान्यम् अवाप्स्म-वपाम-वप्स्याम वा (मि० कौ०) (यदि वर्षा होगी तो धान बोएगे) ।

६३८ यदि नम्रतापूर्ण आदेश अर्थ होगा तो भी लृट् लकार का प्रयोग होता है । पश्चात् सर प्रति गमिष्यसि (विक्रमो० ४, तब आप तालाब की ओर जाइएगा) ।

६३९ क्षिप्र (शीघ्र) या क्षिप्र के पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग होने पर आशा अर्थ मे लृट् लकार होता है ।[5] वृष्टिश्चेत् क्षिप्रम् आशु त्वरित वा यास्यति, शीघ्र वप्स्याम (यदि वर्षा शीघ्र हो जाती है तो हम शीघ्र ही धान बो देंगे) ।

---

१. भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् (३-३-१३६) । कालविभागे चानहोरात्राणाम् (३-३-१३७) ।
२. परस्मिन् विभाषा (३-३-१३८) ।
३. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा (३-३-१३१) ।
४. आशसाया भूतवच्च (३-३-१३२) ।
५. क्षिप्रवचने लृट् (३-३-१३३) ।

९४० यदि स्मरणार्थक स्मृ आदि धातुओं के साथ यत् शब्द का प्रयोग नहीं
है तो लङ् लकार के अर्थ में लृट् लकार होता है। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः
(हे कृष्ण, क्या तुम्हें याद है कि हम गोकुल में रहते थे ?)।

९४१. असंभावना या असहनशीलता अर्थ होने पर या प्रश्न रूप में निन्दा
अर्थ होने पर विधिलिङ् लकार के स्थान पर विकल्प से लृट् होता है।[1] न संभावयामि न मर्षये वा भवान् हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा (मैं यह आशा नहीं
करता हूँ, या सहन नहीं कर सकता हूँ कि आप हरि की निन्दा करेंगे या निन्दा
करें), क-कतर-कतम वा हरिं निन्देत्-निन्दिष्यति वा (कौन हरि की
निन्दा करेगा, अर्थात् मैं यह आशा नहीं करता हूँ कि कोई उसकी निन्दा करेगा),
आदि। जहां पर किंकिल (उग्र क्रोध-सूचक निपात) शब्द और होना अर्थ वाली किसी धातु का पहले प्रयोग होगा,
वहाँ पर लृट् लकार ही होता है।[2] न संभावयामि न मर्षये वा भवान् किंकिल
वृषल याजयिष्यति (मैं आशा नहीं करता हूँ या सहन नहीं कर सकता हूँ कि
आप शूद्र से यज्ञ कराएंगे)। इसी प्रकार अस्ति भवति विद्यते वा भवान् वृषलं
याजयिष्यति।

९४२. यदि आश्चर्य अर्थ हो और वाक्य में यच्च यत्र और यदि का प्रयोग
न हो तो लृट् लकार का प्रयोग होता है।[3] आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति
(यह आश्चर्य की बात है कि एक अन्धा कृष्ण को देख लेता है)।

(क) यदि सन्देह अर्थ में उत और अपि उपसर्ग होंगे तो उनके साथ लृट्
लकार होगा। उत दण्डः पतिष्यति (क्या डंडा गिरेगा ?), अपि धास्यति द्वारम्
(क्या वह दरवाजा बन्द करेगा ?)

(ख) समर्थ या अवश्य अर्थ में अलम् अव्यय होगा तो उसके साथ भी लृट्
लकार होगा। अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति (कृष्ण अवश्य हाथी को मार देगा
या कृष्ण हाथी को मारने में समर्थ है)।

लोट् (Imperative Mood)

९४३. लोट् लकार का केवल आज्ञा अर्थ ही नहीं होता है, अपितु इसके

---

१. किंवृत्ते लिङ्लृटौ (३-३-१४४), अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि (३-३-१४५)।
२. किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् (३-३-१४६)।
३. शेषे लृडयदौ (३-३-१५१)।

ये अर्थ भी है—विधि (आदेश या प्रेरणा देना), निमन्त्रण (निमन्त्रित करना), आमन्त्रण (स्वीकृति देना), अधीष्ट (सत्कारपूर्वक नियुक्ति), सप्रश्न (विनयपूर्वक प्रश्न पूछना), प्रार्थना (प्रार्थना करना), आशीर्वाद देना, परामर्श देना आदि।[1]

(क) लोट् लकार का मध्यम पुरुष मे प्रयोग इन अर्थों मे होता है—आज्ञा, प्रार्थना, परामर्श देना और आशीर्वाद देना। गच्छ (त्व) कुसुमपुरम् (कुसुमपुर जाओ), परित्रायध्व परित्रायध्वम् (बचाओ, बचाओ), क्षमस्वापराधम् (हे परमात्मन्, मेरे अपराधो को क्षमा कीजिए), शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने (शाकु० ४, अपने से बडो की सेवा करना और अपनी सपत्नियो से प्रिय सखी का सा व्यवहार करना), एधि कार्यकरस्त्व मे गत्वा प्रवद राघवम् (तुम मेरे सदेशवाहक होओ और राम के पास जाकर उनसे कहना), अनन्यभाज पतिमाप्नुहीति सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण (शिव ने उससे ठीक ही कहा कि तुम ऐसे पति को प्राप्त करना, जिसका अन्य किसी स्त्री से प्रेम न हो)।

(ख) प्रथम पुरुष मे यह प्राय आशीर्वाद का अर्थ प्रकट करता है और कभी कभी विनम्र आदेश का अर्थ। विधत्ता सिद्धि नो प्रकीर्ण पुष्पाणा हरिचरणयोरञ्जलिरयम् (हरि के चरणो मे डाली हुई यह फूलो की अजलि हमारी सिद्धि को करे), पर्जन्य कालवर्षी भवतु (मेघ समय पर वर्षा करें), पश्चात् तिष्ठन्तु वीरा शकनरपतय (मुद्रा० ५-११)।

(ग) उत्तम पुरुष मे यह इन अर्थों को प्रकट करता है—प्रश्न, आवश्यकता, योग्यता आदि। किं करवाणि ते (मैं तुम्हारा क्या काम करूँ ?), अधुनाह गच्छामि (मुझे अब जाना चाहिए), करवामैतद् वय देवि प्रिय तव (हे देवी, हम आपका यह प्रिय काम कर सकते हैं), नहि प्रेष्यवध घोर करवाण्यस्तु ते मति (भटटि० २०-६, तुम्हारा विचार यह होना चाहिए कि मैं किसी दूत का घोर वध नही करूँगा)।

६४४ लोट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का कर्मवाच्य का प्रयोग प्राय मिलता है और कहीं कहीं विनम्र कथन के ढग को प्रकट करता है। आनीयता राजपुत्र (राजकुमार को लाइए), श्रूयता भो पण्डिता (हे पण्डितो, आप सुनिए), एतदासनम् आस्यताम् (इस आसन पर बैठिए)।

१. लोट् च (३-३-१६२)। सूत्र ३-३-१६१ भी देखो। यह अगले पृष्ठ पर उद्धृत है।

९४५ जहां पर एक मुहूर्त (लगभग १ घटे का समय) से बाद का समय बताया
जाता है, वहाँ पर लोट् होता है। मुहूर्ताद् यजता स्म (एक घटे बाद यज्ञ करना)
९४६ जहाँ पर विनम्र प्रार्थना करना अर्थ होता है, वहाँ पर लोट् लकार
के साथ स्म का प्रयोग होता है। बालमध्यापय स्म (कृपया बच्चे को पढाइए)।
९४७ जब लाट् लकार का मा निपात के साथ प्रयोग होता है तो इसका
वर्तमान काल अर्थ होता है। मा भवतु (नही ऐसा नही है)। मा च ते निघ्नत
शत्रून् मन्युर्भवतु पार्थिव।
९४८ इच्छामि भवान् भुञ्जीत भुङ्क्तां वा (मैं चाहता हूँ कि आप खाना
खाएँ)। देखो नियम ९५८।
९४९ लोट् लकार का एक विचित्र प्रकार का प्रयोग हाता है, उसका ध्यान
रखना चाहिए। जब पौन पुन्य (बार बार करना) या अधिकता अर्थ कहना
होता है तो लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का दो बार पाठ किया जाता है
और उसके बाद धातु का किसी भी लकार म प्रयोग हो सकता है।[1] याहि याहि
इति याति (सि० कौ०, वह बार बार जाता है)। इसी प्रकार यात यातेति यूय
यात, याहि याहीत्ययासीत् अधीष्वाधीष्वेत्यधीते (वह निरन्तर पढता है)।
यदि एक ही व्यक्ति ने अनेक काम किए हैं तो भी लोट् मध्यम पुरुष का प्रयोग
होता है। सक्तून् पिब, धाना खादेत्यभ्यवहरति (सि० कौ०, वह खाना खाता
है, कभी सतू खाता है और कभी भुने चावल खाता है)। इसी प्रकार अन्नम् इत्थं
दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते (सि० कौ०)।

विधिलिङ् (Potential Mood)

९५० विधिलिङ् इन अर्थों म हाना है—विधि (आदेश देना, अधीनस्थ
को निर्देश देना आदि), निमन्त्रण (साग्रह निमन्त्रित करना), आमन्त्रण
(स्वीकृति देना), अधीष्ट (किसी को कोई अवैतनिक कार्य करने के लिए कहना),
सम्प्रश्न (नम्रतापूर्वक किसी से कोई प्रश्न पूछना) और प्रार्थना (प्रार्थना
करना)।[2] यजेत (यज्ञ करना चाहिए), त्वं ग्राम गच्छे (तू गाँव को जा),

१. क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः (३-४-२)। समुच्चयेऽ-न्यतरस्याम् (३-४-३)। यथाविध्यनुप्रयोग पूर्वस्मिन् (३-४-४)। समुच्चये सामान्यवचनस्य (३-४-५)। क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये (वा०)।
२. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् (३-३-१६१)।

इह भवान् भुञ्जीत (आप यहाँ खाना खाइए), इहासीत भवान् (आप यहाँ बैठिए), पुत्रमध्यापयेद् भवान् (आप मेरे पुत्र को पढ़ा दीजिए, अवैतनिक रूप से), किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् (मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र ?), भो भोजनं लभेय (श्रीमन्, क्या मुझे यहाँ भोजन मिलेगा ? अर्थात् क्या आप मुझे भोजन देंगे ?)। ये सभी अर्थ लोट् लकार के द्वारा भी विकल्प से प्रकट किये जाते हैं।

(ख) विधि, निमन्त्रण और 'उचित समय है' अर्थ में धातु से विधिलिङ् के स्थान पर कृत्य प्रत्यय (तव्य आदि) भी होते हैं।[1] भवता यष्टव्यम्, आदि।

९५१ यदि वाक्य में 'मुहूर्ताद् ऊर्ध्वम्' (एक घंटे बाद) शब्दों का प्रयोग होगा तो विधिलिङ्, लोट् और कृत्य प्रत्यय (तव्य आदि) भी होते हैं।[2] मुहूर्ताद् ऊर्ध्वं यजेत–यजताम्–यष्टव्यं वा (सि० कौ०)।

९५२ काल, समय और वेला शब्दों के साथ यदि यद् शब्द का भी प्रयोग होगा तो विधिलिङ् होता है।[3] कालः समयः वेला वा यद् भुञ्जीत भवान् (अब समय है कि आप खाना खावें)।

९५३ *योग्य अर्थ होने पर धातु से विधिलिङ्, कृत्य प्रत्यय (तव्य आदि)* और तृच् (तृ) प्रत्यय होते हैं।[4] त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा, त्वया कन्या वोढव्या वा (तुम कन्या से विवाह के योग्य हो)।

(क) जहाँ पर समर्थ अर्थ होना है, वहाँ पर भी विधिलिङ् और कृत्य प्रत्यय (तव्य आदि) होते हैं।[5] त्वं भारं वहेः, भारस्त्वया वोढव्यः वा (तुम इस भार को ले जा सकते हो)।

९५४ यदि प्रश्नवाचक शब्द किम्, कतर, कतम आदि का प्रयोग होगा तो विधिलिङ् और लृट् लकार होते हैं, निन्दा अर्थ हो तो।[6] देखो नियम ९४१। कः–कतरः–कतमो वा हरिं निन्देत्–निन्दिष्यति वा।

(क) जहाँ पर आश्चर्य अर्थ होगा और यदि शब्द का प्रयोग नहीं होगा तो वहाँ पर लृट् लकार होगा। यदि शब्द का प्रयोग होगा तो विधिलिङ् होगा।[7]

---

१. प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च (३-३-१६३)।
२. लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके (३-३-१६४)। ३. लिङ् यदि (३-३-१६८)।
४. अर्हे कृत्यतृचश्च (३-३-१६९)। ५. शकि लिङ् च (३-३-१७२)।
६. किंवृत्ते लिङ्लृटौ (गर्हायाम्) (३-३-१४४)।
७. शेषे लृडयदौ (चित्रीकरणे) (३-३-१५१)।

रक्षा करे, धन-व्यय करके भी तथा पत्नी-त्याग कर के भी)। यद्यद् रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद् दद्यादमत्सरः (मनुष्य को चाहिए कि ईर्ष्याभाव को छोडकर ब्राह्मणो को जो कुछ अच्छा लगे, वह वह वस्तु उन्हे दान करे)।

आशीर्लिङ् (Benedictive Mood)

६६० आशीर्लिङ् आशीर्वाद अर्थ को प्रकट करता है या वक्ता की कामना को व्यक्त करता है। चिर जीव्यात् भवान् (आप चिरजीवी हो)। वधिपीष्ठा स्वजातेषु वध्यास्त्व रिपुसहती । भूयास्त्व गुणिना मान्यस्तेषा स्थेया व्यवस्थितौ ॥ (भट्टि० १९-२६)। कृतार्थ भूयासम् (मैं कृतार्थ होऊँ)।

लृङ् (Conditional)

६६१ हेतुहेतुमद् (कारण-कार्यभाव) वाले वाक्यो मे लृङ् लकार होता है, जहाँ पर कार्य की असफलता या अपूर्णता होने पर विधिलिङ् होना चाहिए अथवा जहाँ पर कारण की असफलता सभव है।[1] यह भूत और भविष्यत् दोनो अर्थो को प्रकट करता है। लृङ् लकार कारण और कार्य दोनो वाक्यो मे होता है। सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत् (यदि अच्छी वर्षा होगी तो अनाज भी अच्छा होगा)। यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्ध तव रतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन् (यदि तुम्हे उसके श्वासो की मधुर गन्ध प्राप्त हो जाती तो क्या तुम इस कमल को चाहते ?)

६६२ विशेष—जहाँ पर किसी भूतकाल के कार्य का अर्थ बताना होता है, वहाँ पर विधिलिङ् के अर्थ मे विकल्प से लृङ् लकार होता है।[2] कथ नाम तत्रभवान् धर्ममत्यजत् त्यजे वा (आपने कैसे अपने धर्म का परित्याग किया ?)।

(क) जहाँ पर उत, अपि, जातु आदि के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, वहाँ पर भी लृङ् लकार होता है। अपि तत्र रिपु सीता नाथयिष्यत दुर्मति । क्रूर जातवदिप्यच्च जात्वस्तोप्यच्छिद्य स्वकाम् ॥ सकल्प नाकरिष्यच्च तत्रेव शुद्धमानसा । (मृषा) सत्यामर्षमवाप्स्यस्त्व रामसीतानिबन्धनम् (भट्टि० २१-३, ४)।

(ख) जहाँ पर यच्च, यत्र और यदि निपातो के साथ विधिलिङ् का प्रयोग

---

१. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ (३-३-१३९)। हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्। (सि० कौ०)।

२. भूते च (३-३-१४०)।

होता है और आश्चर्य अर्थ होता है, वहाँ पर विकल्प से लृट् लकार का प्रयोग होता है, यदि कोई चेष्टा न हुई हो तो। आश्चर्यं यत्र यत्र स्त्री इच्छेऽवस्थंमते तव। आसादस्या विनष्टाया कि विमाल्यस्यया फलम्॥ (भट्टि० २१-८)

भाग ५

अव्यय (Indeclinables)

क्रियाविशेषण (Adverbs)

६६३ कुछ संज्ञाशब्दों के नपुंसकलिंग प्रथमा एकवचन तथा अन्य विभक्तियों के रूप क्रियाविशेषण के तुल्य प्रयुक्त होते हैं। चिर–चिरेण–चिराय वा ध्यात्वा (बहुत देर तक विचार करके), दुःख-दुःखेन वा तिष्ठति (वह दुःख में है)। इसी प्रकार सुखं सुखेन वा ०, आदि।

(क) बहु, नाना आदि कई शब्दों के साथ विध शब्द लगता है और उनका क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग होता है। बहुविधम्, नानाविधम् (अनेक प्रकार से)। कुछ समस्त पदों के अन्त में पूर्वं शब्द लगता है और उसका क्रियाविशेषण के रूप में प्रयोग होता है। इन शब्दों में कुछ क्रिया के घटित होने का वर्णन होता है। सान्त्वपूर्वम् (सान्त्वना देने के साथ ही), बुद्धिपूर्वम् (बुद्धिपूर्वक, विचार से)। अबुद्धिपूर्वं भगवन् धेनुरेषा हता मया (हे भगवन्, मैंने अज्ञानवश इस गाय की हत्या की है), शपथपूर्वम् अकथयत्, आदि।

उपसर्ग (Prepositions)

६६४ नियम ३६५ से ३७१ में उपसर्गों के प्रयोग का वर्णन किया जा चुका है। जिन उपसर्गों के साथ विविध विभक्तियाँ होती हैं, उनका वाक्य के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है।

संयोजक (Conjunctions)

६६५ संयोजकों के प्रयोग में वाक्य विचार सम्बन्धी अधिक विशेषताएँ नहीं हैं, अतः उनका यहाँ विशेष वर्णन आवश्यक नहीं है। उनका वाक्यों में अपने विशेष अर्थों में प्रयोग होता है।

६६६ इन संयोजकों में सब से अधिक प्रयुक्त और सब से अधिक महत्त्वपूर्ण 'च' है। इसका वाक्य के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं किया जा सकता है और न ही इसका हिन्दी 'और' की तरह ही प्रयोग हो सकता है। यह जिन शब्दों या वाक्यों को जोड़ता है, उन शब्दों या वक्तव्यों के बाद इसका प्रयोग होता है। जैसे—रामश्च लक्ष्मणश्च,

अथवा—राम लक्ष्मणश्च । रामश्च जृम्भितगुणो नवयौवन च (विस्तृत गुणो से युक्त राम और नवयौवन), कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै ।

(क) कभी कभी 'च' वियोजक का भी काम करता है। शान्तमिदमाश्रमपद स्फुरति च बाहु (यह आश्रम शान्त है, तथापि मेरी भुजा फडक रही है) ।

(ख) कुछ थोडे स्थलो पर च का प्रयोग 'यदि' अर्थ मे भी हुआ है। जीवितु चेच्छसि मूढ हेतु मे गदत शृणु (हे मूर्ख, यदि तू जीवित रहना चाहता है तो मुझ से उसका कारण सुन) ।

(ग) कभी कभी इसका प्रयोग पाद-पूर्त्यर्थक के रूप मे भी होता है। भीम पार्थस्तथैव च ।

(घ) कभी-कभी गौण तथ्य को मुख्य तथ्य से सयुक्त करने के लिए भी इसका प्रयोग होता है। भिक्षामट गा चानय (भिक्षा के लिए घूमना और गाय को लाना), कुट्टिनी च शासिता गोपी च नि सारिता कन्दर्पकेतुश्च पुरस्कृत (कुट्टिनी को दण्ड दिया, गोपी को बाहर निकाला और कन्दर्पकेतु को पुरस्कार दिया) ।

(ङ) जहाँ पर च का दो बार प्रयोग होता है, वहाँ पर कभी कभी इसका अर्थ होता है—एक ओर दूसरी ओर फिर भी। क्व च हरिणकाना जीवित चातिलोल, क्व च निशितनिपाता वज्रसारा शरास्ते (एक ओर कहाँ तो छोटे मृगो का अति चचल जीवन और दूसरी ओर कहाँ तीक्ष्ण रूप से गिरने वाले तथा वज्र के तुल्य कठोर तेरे बाण) । न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनगविचेष्टितम् (एक ओर तो वह पूर्ण चन्द्रमुखी सुलभ नही है और दूसरी ओर फिर भी ये कामभाव की चेष्टाएँ हैं,) ।

(च) कभी कभी च की यह द्विरुक्ति दो घटनाओ की समकालीनता को सूचित करती है। ते च प्रापुरुदन्वन्त बुबुधे चादिपूरुष (वे समुद्र के समीप पहुँचे ही थे कि उसी समय आदिपुरुष जाग गए) ।

६६७ कभी कभी तथा (वैसा) का प्रयोग च के स्थान पर मिलता है। रामस्तथा लक्ष्मणश्च (राम और लक्ष्मण), अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति दोनो) । तथा हि (उदाहरणार्थ, स्पष्टीकरण के लिए, क्योकि), तथा च (उसी प्रकार), ये दोनो प्राय उद्धरण के प्रारम्भ म रक्खे जाते हैं।

६६८ तु (तो), हि (क्योकि) और वा, ये वाक्य के प्रारम्भ में नही

रक्खे जाते हैं। आत्मा पुत्र सखा भार्या कृच्छ्रं तु दुहिता किल (पुत्र अपनी आत्मा के तुल्य है, पत्नी मित्रवत् है, किन्तु पुत्री कष्ट का कारण है)। अप्याज्ञया शासितु-रात्मना वा प्राप्नोति सभावयितु वनान्माम्। कालो ह्ययं सक्रमितुं द्वितीयं सर्वो-पकारक्षममाश्रमं ते (रघु० ५-१०), अस्त्राणि वा शरीर वा वरय (चाहे अस्त्रों को वर रूप मे मांगो या अपना जीवन मांगो)।

६६६ यदि और चेत् (यदि) का प्राय विधिलिङ् और लृङ् के साथ प्रयोग होता है। जैसे—यदि सोऽत्र सनिहितो भवेत् तर्हि मम साहाय्यं कुर्यात् (यदि वह यहाँ होता तो मेरी सहायता करता) यदि देवदत्तोऽत्राभविष्यत् नूनमेनदकरि-ष्यत् (यदि देवदत्त यहाँ होता तो अवश्य इस काम को करता)। यदि और चेत् के साथ लट् का भी प्रयोग होता है। यदि जीवति भद्राणि पश्यति (यदि वह जीवित रहता है तो सुख को प्राप्त करता है), यदि मया देवपादाना प्रयोजनमस्ति (यदि आपको मेरी कुछ आवश्यकता है तो) शापितासि मम जीवितेन यदि वाचा न कथयसि (मैं अपने जीवन की कसम दिलाता हूँ यदि तुम स्पष्ट शब्दों में नहीं बताती हो)। चेत् का वाक्य के प्रारम्भ मे प्रयोग नहीं होता है। त चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (शाकु० ७ ४, यदि सूर्य उसको अपनी धुरा मे नहीं लगाता), यदि रोषमुरीकरोषि नो चेत्।

अथ और इति

६७० अथ का निम्नलिखित अर्थों मे प्रयोग होता है[1] —(१) यह मगल-सूचक शब्द है।[2] अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (अब यहाँ से ब्रह्म की जिज्ञासा का प्रसग प्रारम्भ होता है) देखो इस सूत्र का भाष्य। (२) यह किसी ग्रन्थ के प्रारम्भ का सूचक है। अथेदमारभ्यते प्रथम तन्त्रम् (अब पहला तन्त्र प्रारम्भ होता है), अथ यागानुशासनम्, आदि। (३) 'तब, उसके बाद'। अथ प्रजानामधिप० (रघु० २-१, इसके बाद अर्थात् रात्रि के बीतने पर प्रजा के स्वामी उस राजा ने। (४) प्रश्नपूछना अर्थ मे। अथ भगवान् लोकानुग्रहाय कुशली काश्यप (भगवान् काश्यप ससार पर अनुग्रह करने के लिए सकुशल तो हैं ?), अथ शक्नोषि भोक्तुम् (क्या तुम खाना खा सकते हो ?)। (५) 'और, साथ ही'। भीम अथ अर्जुनः

१. मगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ (अमर०)।

२. वस्तुतः यह अथ का अर्थ नहीं है। यह ब्रह्मा के कण्ठ से निकला हुआ शब्द माना गया है, अतः इसके उच्चारण और सुनने से मगल होता है।

(भीम और अर्जुन) । (६) 'यदि' । अथ मरणमवश्यमेव जन्तो (यदि एक जीव का मरना अवश्यभावी है तो), आदि ।

६७१ जिस प्रकार अथ प्रारम्भ का सूचक है, इसी प्रकार इति किसी ग्रन्थ की समाप्ति का सूचक है । यह निपात निम्नलिखित अर्थों मे प्रयुक्त होता है —(१) किसी दूसरे के द्वारा कहे गए शब्दो को ठीक उसी रूप मे उद्धृत करने अर्थ मे । इस प्रकार यह उद्धरण-चिह्न का काम करता है और प्राय उद्धृत किए गए शब्दो के बाद प्रयुक्त होता है ।[1] देव काचिच्चण्डालकन्यका शुकमादाय देव विज्ञापयति . देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति (हे स्वामिन्, एक चण्डाल-कन्या आपसे प्रार्थना करती है कि—'मैं आपके चरणो मे आई हूँ और आपके दर्शन के सुख का अनुभव करना चाहती हूँ') । ब्राह्मणा, ऊचु कृतकृत्या स्म इति (ब्राह्मणो ने कहा कि 'हम कृतार्थ हो गए हैं') । (२) कारण अर्थ मे । इसलिए , क्योकि आदि से हिन्दी मे इसका अनुवाद किया जाएगा । वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि (मैं विदेशी हूँ, अत आपसे पूछता हूँ), पुराणमित्येव न साधु सर्वम् (प्रत्येक वस्तु पुरानी है, इसलिए अच्छी नही हो सकती है) । (३) लक्ष्य या उद्देश्य अर्थ मे । मा भूदाश्रमपीडेति परिमितपुर सर (आश्रम को कोई कष्ट न हो, इसलिए बहुत थोडे से अनुचरो के साथ) । (४) 'इस प्रकार, ऐसा, निम्नलिखित रूप से' अर्थों मे । रामाभिधानो हरिरित्युवाच । (५) 'इस रूप मे, ऐसे ' अर्थों मे । पितेति स पूज्य , गुरुरिति निन्द्य (पिता के रूप मे उनका आदर करना चाहिए और गुरुरूप मे वे निन्दा के योग्य हैं) । (६) 'कोई मत प्रकट करना' अर्थ मे । इति आश्मरथ्य (यह आश्मरथ्य का मत है) । टीकाकारो ने इसका 'इस नियमानुसार' अर्थ मे प्राय प्रयोग किया है । इति शक्यार्थे लिङ्, इत्यादि ।

विस्मयसूचक अव्यय (Interjections)

६७२. भट्टिकाव्य के निम्नलिखित श्लोक मे कुछ विस्मयसूचक शब्दो को उदाहरण के रूप मे प्रयुक्त किया गया है —

आ· कष्टं बत ही चित्र हूँ मातर्दैवतानि धिक् ।
हा पित: क्वासि हे सुभ्रू बह्वेवं विललाप स. ॥

---

१. संस्कृत मे Indirect (अप्रत्यक्ष) रचना नहीं होती है । अतः अप्रत्यक्ष रचना का अनुवाद करते समय वक्ता के वास्तविक प्रयुक्त शब्दो के अन्त में 'इति' शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।

परिशिष्ट–१

छन्दःशास्त्र (Prosody)[1]

१ संस्कृत में काव्य-रचना दो प्रकार की मानी गई है,—गद्य (Prose) या पद्य (Verse) (छन्दोबद्ध रचना)।[2]

२ छन्द शास्त्र में छन्द निर्माण के नियमों पर विचार किया गया है। संस्कृत के छन्द वर्णों या मात्राओं से नियन्त्रित होते हैं, उदात्त स्वर से नहीं।

३ एक पद्य (Stanza) में चार पंक्तियाँ होती हैं। उनको पाद या चरण (Quarter) कहते हैं। प्रत्येक पाद में अक्षरों (या वर्णों) या मात्राओं की गणना की जाती है।

(क) अक्षर या वर्ण शब्द के उतने अंश को कहते हैं जितना कि उच्चारण के एक प्रयत्न से उच्चरित होता है, अर्थात् एक या अनेक व्यंजनों से सहित अथवा व्यंजनों से रहित एक स्वर वर्ण।

(ख) एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतने समय के परिमाण को एक मात्रा कहते हैं।

४ ह्रस्व स्वर को लघु कहते हैं और दीर्घ स्वर को गुरु।

(क) अ, इ, उ, ऋ और लृ, ये लघु (ह्रस्व) स्वर हैं और आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ और औ, ये गुरु (दीर्घ) स्वर हैं। ह्रस्व स्वर के बाद अनुस्वार, विसर्ग या कोई संयुक्त व्यंजन होगा तो उस ह्रस्व को गुरु माना जाता है।[3] जैसे—गन्ध, अच्छ, आदि।

५ पाद का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो या दीर्घ, वह छन्द की आवश्यकता के अनुसार ह्रस्व या दीर्घ दोनों माना जा सकता है।[4] जैसे इन स्थानों पर—वक्ष-स्थली रक्षतु सा जगन्ति, आदि (विक्रमो० १), तस्याः सुरत्यासपवित्रपांसुम् (रघु० २–२)।

---

१. छन्द शास्त्र का सबसे प्राचीन लेखक पिंगलाचार्य है। उसके ग्रन्थ का नाम है—पिंगलछन्द शास्त्र। यह सूत्रों में लिखा हुआ है। इसमें ८ अध्याय हैं। अग्निपुराण में भी इस विषय का पूर्ण विवेचन है। इस अध्याय का विवरण मुख्यतया वृत्तरत्नाकर और छन्दोमञ्जरी पर आश्रित है।

२. काव्य गद्य च पद्य च तद्द्विधैव व्यवस्थितम्। दण्डी–काव्यादर्श प्र० १

३. सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा।–छन्दोमञ्जरी

४. देखो वृत्तरत्नाकर १–६।

६ वर्णवृत्तों के प्रत्येक पाद गणों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक गण में ३ वर्ण होते हैं। ये गण ८ हैं। इनके नाम हैं —म, न, भ, य, ज, र, स और त। निम्नलिखित श्लोक में इनके नाम और इनके ह्रस्व या दीर्घ वर्णों का क्रम दिया गया है।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरु पुनरादिलघुर्य ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्य, सोऽन्तगुरु कथितोऽन्तलघुस्त ।।

अर्थात् म या मगण में तीनों अक्षर गुरु होते हैं, नगण में तीनों लघु, भगण में पहला अक्षर गुरु होता है, यगण में पहला अक्षर लघु होता है, जगण का बीच का अक्षर गुरु होता है, रगण का बीच का अक्षर लघु होता है, सगण का अन्तिम अक्षर गुरु होता है और तगण का अन्तिम अक्षर लघु होता है।[1]

लघु वर्ण के लिए। (या ˘) चिह्न है और गुरु वर्ण के लिए ऽ (या—) चिह्न है। इन चिह्नों के अनुसार गणों को इस प्रकार लिखा जाएगा —

म ऽऽऽ न ।।। भ ऽ।। य ।ऽऽ
ज ।ऽ। र ऽ।ऽ स ।।ऽ त ऽऽ।

इसी प्रकार पाद के अन्त में लघु के लिए ल वर्ण प्रयुक्त होता है और गुरु के लिए ग।

७ मात्रिक छन्दों में प्रत्येक पाद की मात्राओं की गणना की जाती है। प्रत्येक पाद को ४, ४ मात्राओं में विभक्त करते हैं और इन चार मात्राओं को मात्रागण कहते हैं। लघु (ह्रस्व) स्वर की एक मात्रा गिनी जाती है और गुरु (दीर्घ) की दो मात्राएँ। मात्रागण ५ हैं। इनको चिह्नों के अनुसार इस प्रकार लिखा जाएगा —

म ऽऽऽ स ।।ऽ ज ।ऽ। भ ऽ।। न ।।।।

८ पद्य दो प्रकार के होते हैं—वृत्त या जाति।

(क) जिन छन्दों में प्रत्येक पाद में गणों के अनुसार वर्णों की गणना की जाती है, उन्हें वृत्त कहते हैं।

(ख) जिन छन्दों में प्रत्येक पाद में मात्रागणों के अनुसार मात्राओं की गणना की जाती है, उन्हें जाति कहते हैं।

---

१. उपर्युक्त श्लोक के स्थान पर निम्नलिखित श्लोक को सरलता से स्मरण किया जा सकता है—

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम् ।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम् ॥

९ वृत्त ३ प्रकार के है—(१) समवृत्त, जिनमे चारो पादो मे वर्णों की सख्या बराबर होती है, (२) अर्धसमवृत्त, जिनमे १, ३ और २, ४ पाद समान होते है, (३) विषम, जिनमे प्रत्यक पाद मे वर्णों की सख्या विषम होती है।[1]

१० समवृत्तो के सामान्यतया २६ वर्ग स्वीकार किए गए है। यह वर्गीकरण इस बात पर निर्भर है कि पद्य के एक पाद मे एक अक्षर से लेकर २६ अक्षर तक हो सकते हैं। इनमे से प्रत्यक वर्ग मे कितने ही छन्द है। वे गणो के क्रम के भेद के आधार पर है और सभी छन्द एक दूसरे से भिन्न प्रकार के होते हैं।

११ सस्कृत मे यति का अभिप्राय है कि पद्य के एक पाद के पढने मे कितने अक्षरो के बाद अल्प-विराम या थोडा विश्राम होता है।

१२ यहाँ पर अधिक प्रचलित छन्दो का ही विवरण दिया गया है, साथ ही उनके गणो का भी निर्देश किया गया है। अप्रचलित छन्दो तथा वैदिक और प्राकृत के छन्दो का उल्लेख नही किया गया है।

भाग १

समवृत्त

[एक पाद मे ८ अक्षरो वाले छन्द]

(१) अनुष्टुभ् या श्लोक

१३ सस्कृत के छन्दो मे यह सब से प्रचलित छन्द है। रामायण, महाभारत और बहुत से पुराणो मे इसी छन्द का मुख्यतया प्रयोग हुआ है।

इस छन्द के कई भेद हैं, परन्तु सामान्यतया इसके एक चरण (पाद) मे ८ वर्ण होते हैं और उनमे पचम वर्ण ह्रस्व होता है। (रामायण और महाभारत मे इन नियमो के कितने ही अपवाद भी प्राप्त होते हैं।)

उदाहरण के लिए देखो रघुवश का प्रथम सर्ग।

(२) गजगति (४, ४)

लक्षण—नभलगा गजगति। गण—न, भ, ल, ग, (। । ।, ऽ । ।, ।ऽ)

रविसुतापरिसरे विहरतो दृशि हरे।
व्रजवधूगजगतिर्मुदमल व्यतनुत॥

---

१. सममर्धसम वृत्त विषम च तथा परम्॥ अङ्घ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिता। तच्छन्द शास्त्रतत्त्वज्ञा सम वृत्त प्रचक्षते॥ प्रथमाङ्घ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्। द्वितीयस्तुर्यवद् वृत्त तदर्धसममुच्यते॥ यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्न परस्परम्। तदाहुर्विषम वृत्त छन्दशास्त्रविशारदा॥

(३) प्रमाणिका (४, ४)

लक्षण—प्रमाणिका जरौ लगौ । गण—ज, र, ल, ग, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।ऽ

पुनातु भक्तिरच्युता सदाच्युताङ्घ्रिपद्मयो ।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणिका भवाम्बुराशितारिका ।।

(४) माणवक (४, ४)

लक्षण—भात्तलगा माणवकम् । गण—भ, त, ल, ग, ऽ।।,ऽऽ।, । ऽ

चञ्चलचूड चपलवत्सकुलै केलिपरम् ।
ध्याय सखे स्मेरमुखं नन्दसुतं माणवकम् ।।

(५) विद्युन्माला (४, ४)

लक्षण—मो मो गो गो विद्युन्माला । गण—म, म, ग, ग,
(ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽ)

वासोवल्ली विद्युन्माला बर्हश्रेणी शाक्रंचाप ।
यस्मिन्नास्ता तापोच्छित्यै गोमध्यस्थ कृष्णाम्भोद ।।

(६) समानिका (४, ४)

लक्षण—ग्लौ रजौ समानिका तु । गण—र, ज, ग, ल, ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ।

यस्य कृष्णपादपद्ममस्ति हृत्तडागसद्म ।
धी समानिका परेण नोचितात्र मत्सरेण ।।

बृहती

[एक पाद मे ९ वर्णों वाले छन्द]

(१) भुजगशिशुभृता (७, २)

लक्षण—भुजगशिशुभृता नौ म ।। गण—न, न, म, ।।।, ।।।, ऽऽऽ

हृदतटनिकटक्षौणी भुजगशिशुभृता याऽऽसीत् ।
मुररिपुदलिते नागे व्रजजनसुखदा साऽभूत् ।।

(२) भुजगसगता (३, ६)

लक्षण—सजरैर्भुजगसगता । गण—स, ज, र, ।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।ऽ,

तरला तरगिरिंगितैर्यमुना भुजगसगता ।
कथमेति वत्सचारकस्त्वचपल सदैव ता हरि ।।

(३) मणिमध्यम् (५, ४)

लक्षण—स्यान्मणिमध्य चेद्भ्रमसा ।। गण—भ, म, स, ऽ।।, ऽऽऽ ।।ऽ

कालियभोगाभोगगतस्तन्मणिमध्यस्फीतरुचा ।
चित्रपदाभो नन्दसुतश्चारु ननर्त स्मेरमुख ।।

पंक्ति

[एक पाद मे १० वर्णों वाले छन्द]

(१) त्वरितगति (५, ५)

लक्षण—त्वरितगतिश्च नजनगै ।

त्वरितगतिर्व्रजयुवतिम्नरणिगुना विपिनगता ।
मुररिपुणा रतिगुरुणा परिरमिता प्रमदमिता ॥

(२) मत्ता (४, ६)

लक्षण—ज्ञेया मत्ता मभसगसृष्टा । गण—म, भ, स, ग
(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ, ऽ)

पीत्वा मत्ता मधु मधुपाली कालिन्दीये तटवनकुञ्जे ।
उद्दीव्यन्तीर्व्रजजनरामा कामासक्ता मधुजिति चक्रे ॥

(३) रुक्मवती (५, ५)
(अथवा चम्पकमाला)

लक्षण—रुक्मवती सा यत्र भमस्गा । गण—भ, म, स, ग ।
(ऽ।।, ऽऽऽ, ।।ऽ, ऽ)

कायमनोवाक्यैः परिशुद्धैर्यस्य सदा कंसद्विपि भक्तिः ।
राज्यपदे हर्म्यालिरुदारा रुक्मवती विघ्नं खलु तस्य ॥

त्रिष्टुभ्

[एक पाद मे ११ वर्णों वाले छन्द]

(१) इन्द्रवज्रा (५, ६)

लक्षण—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग । गण—त, त, ज, ग, ग ।
(ऽऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽऽ)

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ॥

(२) उपेन्द्रवज्रा (५, ६)

लक्षण—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । गण—ज, त, ज, ग, ग ।
(।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽऽ)

उपेन्द्रवज्रादिमणिच्छटाभिर्विभूषणानां छुरितं वपुस्ते ।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम् ॥

(३) उपजाति

लक्षण—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

गण—इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों के मिश्रण से उपजाति छन्द होता है। इसके १४ भेद माने जाते हैं। उदाहरण के लिए देखो—रघुवंश सर्ग २, कुमार० सर्ग ३, किराता० सर्ग १७, भट्टि० सर्ग २, आदि ।

जहाँ पर किसी श्लोक में अन्य दो छन्दों का मिश्रण होता है, उसे भी उप-जाति ही कहते हैं । शिशुपालवध के निम्नलिखित श्लोक में वंशस्थ और इन्द्रवज्रा दोनों छन्दों का मिश्रण है ।

इत्थं रथाश्वेभनिषादिनां प्रगे गणो नृपाणामथ तोरणाद्बहिः ।
प्रस्थानकालक्षमवेशकल्पनाकृतक्षणक्षेपमुदैक्षताच्युतम् ॥

(४) दोधकम् (६, ५)

लक्षण—दोधकमिच्छति भत्रितयाद् गौ। गण—भ, भ, भ, ग, ग,

(ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽऽ)

देव सदोध कदम्बतलस्थ श्रीधर तावक नामपद ते।
कण्ठनले सुविनिर्गमकाले स्वल्पमणिक्षणमेष्यति योगम् ॥

(५) भ्रमरविलसितम् (५, ६)

लक्षण—म्भौ न्लौ ग स्याद्भ्रमरविलसितम्। गण—म, भ, न, ल, ग,

(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।।, ।ऽ)

मुग्धे मान परिहर न चिरात्तारुण्य ते सफलयतु हरि।
फुल्ला वल्ली भ्रमरविलसिताभावे शोभा कलयतु किमु ताम् ॥

(६) रथोद्धता (३, ८ या ४, ७)

लक्षण—रान्नराविह रथोद्धता लगौ। गण—र, न, र, ल, ग,

(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।ऽ)

राधिका दधिविलोडनस्थिता कृष्णवेणुनिनदैरथोद्धता।
यामुन तटनिकुञ्जमञ्जसा सा जगाम सलिलाहृतिच्छलात्।

(७) शालिनी (४, ७)

लक्षण—शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोब्धिलोकै। गण—म, त, त, ग, ग,

(ऽऽऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽऽ)

अघो हन्ति ज्ञानवृद्धि विधत्त धर्म दत्ते काममर्थं च सूते।
मुक्ति दत्ते सर्वदोपास्यमाना पुसा श्रद्धाशालिनी विष्णुभक्ति ॥

(८) स्वागता (३, ८)

लक्षण—स्वागता रनभगैर्गुरुणा च। गण—र, न, भ, ग, ग,

(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।।, ऽऽ)

यस्य चेतसि सदा मुरवैरी बल्लवीजनविलासविलोल।
तस्य नूनममरालयभाज स्वागतादरकर सुरराज ॥

जगती

[एक पाद मे १२ वर्णो वाले छन्द]

(१) वशस्थविल (वशस्थ या वशस्तनित) (५, ७)

लक्षण—वदन्ति वशस्थविल जतौ जरौ। गण—ज, त, ज, र,

(।ऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

विलासवशस्थविल मुखानिलै प्रपूर्य य पञ्चमरागमुद्गिरन्।
व्रजाङ्गनानामपि गानशालिना जहार मान स हरि पुनातु न ॥

(२) इन्द्रवशा

लक्षण—तच्चेन्द्रवशा प्रथमाक्षरे गुरौ। वशस्थविल छन्द मे ही पहला वर्ण गुरु होने पर इन्द्रवशा छन्द होता है। गण—त, त, ज, र।

(ऽऽ।, ऽऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

दैत्येन्द्रवशाग्निरुदीर्णदीधिति पीताम्वरोऽसौ जगतां तमोऽपह ।
यस्मिन्ममज्जुः शलभा इव स्वयं ते कंसचाणूरमुखा मखद्विषः ।।

(३) चन्द्रवर्त्म (४, ८)

लक्षण—चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसैः । गण—र, न, भ, स,
(ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।।, ।।ऽ)

चन्द्रवर्त्म पिहितं घनतिमिरै राजवर्त्म रहितं जनगमनैः ।
इष्टवर्त्म तदलंकुरु सरसे कुञ्जवर्त्मनि हरिस्तव कुतुकी ।।

(४) जलधरमाला (४, ८)

लक्षण—मो भस्मौ चेज्जलधरमालाऽब्ध्यन्त्यैः । गण—म, भ, स, म
(ऽऽऽ, ऽ।।, ।।ऽ ऽऽऽ,)

या भक्तानां कलिदुरितोत्तप्तानां तापच्छेदे जलधरमाला नव्या ।
भव्याकारा दिनकरपुत्रीकूले केलीलोला हरितनुरव्यात्सा वः ।।

(५) जलोद्धतगति (६, ६)

लक्षण—जसौ जसयुतौ जलोद्धतगतिः । गण—ज स, ज, स,
(।ऽ।, ।।ऽ ।ऽ।, ।।ऽ)

यदीयहलतो विलोक्य विपदं कलिन्दतनया जलोद्धतगतिः ।
विलासविपिने विवेश सहसा करोतु कुशलं हरिः स जगताम् ।।

(६) तामरसम् (५, ७)

लक्षण—इह वद तामरसं नजजा यः । गण—न, ज, ज, य,
(।।। ।ऽ।, ।ऽ।, ।ऽऽ)

स्फुटसुषमामकरन्दमनोज्ञं व्रजललनानयनालिनिपीतम् ।
तव मुखतामरसं मुरशत्रो हृदयतडागविकाशि ममास्तु ।।

(७) तोटकम् (४, ४)

लक्षण—वद तोटकमब्धिसकारयुतम् । गण—स, स, स, स,
(।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ)

यमुनातटमच्युतकेलिकलालसदङ्घ्रिसरोरुहसङ्गरुचिम् ।
मुदितोऽटं कलेरपनेतुमघं यदि चेच्छसि जन्म निजं सफलम् ।।

(८) द्रुतविलम्बितम् (४, ८ या ४, ४, ४)

लक्षण—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ । गण—न, भ, भ, र,
(।।।, ऽ।।, ऽ।।, ऽ।ऽ)

तरणिजापुलिने नववल्लवीपरिषदा सह केलिकुतूहलात् ।
द्रुतविलम्बितचारुविहारिणं हरिमहं हृदयेन सदा वहे ।।

(९) मन्दाकिनी या प्रभा (७, ५)

लक्षण—ननररघटिता तु मन्दाकिनी । गण—न, न, र, र,
(।।।, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ,)

बलिदमनविधौ बभौ सगना पदजलरुहि यस्य मन्दाकिनी ।
सुरनिहितसिताम्बुजस्रङ्निभा हरतु जगदघं स पीताम्बरः ॥

(१०) प्रमिताक्षरा (५, ७)

लक्षण—प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता । गण—स, ज, स, स,

(।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ।।ऽ)

अमृतस्य शीकरमिवोद्गिरती रदमौक्तिकांशुलहरीच्छुरिता ।
प्रमिताक्षरा मुररिपोर्भणितिर्व्रजसुभ्रुवामधिजहार मनः ॥

(११) भुजङ्गप्रयातम् (६, ६)

लक्षण—भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः । गण—य, य, य, य,

(।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ ।ऽऽ,)

सदारात्मजज्ञातिभृत्यो विहाय स्वमेतं ह्रदं जीवनं लिप्समानः ।
मया क्लेशितं कालियेत्थं कुरु त्वं भुजङ्गप्रयातं द्रुतं सागराय ॥

(१२) मणिमाला (६, ६)

लक्षण—त्यौ त्यौ मणिमाला छिन्नागुहवक्त्रैः । गण—त, य, त, य,

(ऽऽ।, ।ऽऽ, ऽऽ।, ।ऽऽ,)

प्रह्वामरमौली रत्नोपलक्लृप्ते जातप्रतिबिम्बा शोणा मणिमाला ।
गोविन्दपदाब्जे राजी नखराणामास्तां मम चित्ते ध्वान्तं शमयन्ती ॥

(१३) मालती (यमुना) (५, ७)

लक्षण—भवति नजावथ मालती जरौ । गण—न, ज, ज, र,

(।।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽ।ऽ)

इह कलयाच्युत केलिकानने मधुरससौरभसारलोलुपः ।
कुसुमकृतस्मितचारुविभ्रमामलिरपि चुम्बति मालती मुहुः ॥

(१४) वैश्वदेवी (५, ७)

लक्षण—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ । गण—म, म, य, य,

(ऽऽऽ, ऽऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ)

अर्चामन्येषां त्वं विहायामराणामद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च्य भक्त्या ।
तत्राशेषात्मन्यर्चिते भाविनी ते भ्रातः सम्पन्नाराधना वैश्वदेवी ॥

(१५) स्रग्विणी (६, ६)

लक्षण—कीर्तितैषा चतूरेफिका स्रग्विणी । गण—र, र, र, र,

(ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)

इन्द्रनीलोपलेनेव या निर्मिता शातकुम्भद्रवालङ्कृता शोभते ।
नव्यमेघच्छविः पीतवासा हरेर्मूर्तिरास्तां जयायोरसि स्रग्विणी ॥

अतिजगती

[एक पाद में १३ वर्णों वाले छन्द]

(१) कलहंसः (सिंहनाद या कुटजा) (७, ६)

लक्षण—सजसाः सगौ च कथितं कलहंसः । गण—स, ज, स, स, ग ।

यमुनाविहारकुतुके कलहंसो व्रजकामिनीकमलिनीकृतकेलि ।
जनचित्तहारिकलकण्ठनिनाद प्रमदं तनोतु तव नन्दतनूज ।।

(२) क्षमा (चन्द्रिका, उत्पलिनी) (७, ६)

लक्षण—तुरगरसयतिनौ ततौ ग क्षमा । गण—न, न, त, त, ग ।
इह दुरधिगमैः किंचिदेवागमैः सततमसुतरं वर्णयन्त्यन्तरम् ।
अमुमतिविपिन वेददिग्व्यापिन पुरुषमिव परं पद्मयोनि परम् ।।

(३) प्रहर्षिणी (३, १०)

लक्षण—त्र्याशाभिर्मनजरगा प्रहर्षिणीयम् । गण—म, न, ज, र, ग ।
ते रेखाध्वजकुलिशातपत्रचिह्नं सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ।
प्रस्थानप्रणतिभिरङ्गुलीषु चक्रुर्मौलिस्रक्च्युतमकरन्दरेणुगौरम् ।।

(४) मंजुभाषिणी (५, ७)

(इसको ही प्रबोधिता और सुनन्दिनी भी कहते है)

लक्षण—सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी । गण—स, ज, स, ज, ग ।
अमृतोर्मिशीतलकरेण लालयस्तनुकान्तिरोचितविलोचनो हरे ।
नियत कलानिधिरसीति वल्लवो मुदमच्युते व्यधित मञ्जुभाषिणी ।।

(५) मत्तमयूरी (४, ६)

लक्षण—वेदैरन्ध्रैर्म्तौ यसगा मत्तमयूरं । गण—म, त, य, स, ग ।
हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्णस्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं स ।
शल्यप्रोतं वीक्ष्य सकुम्भं मुनिपुत्रं तापादन्तःशल्य इवासीत्क्षितिपोऽपि ।।

(६) रुचिरा (४, ६) (इसको प्रभावती भी कहते हैं)

लक्षण—जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः । गण—ज, भ, स, ज, ग ।
अभून्नृपो विबुधसखः परन्तपः श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृतः ।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं सनातनः पितरमुपागमत्स्वयम् ।।

शक्वरी

[एक पाद मे १४ वर्णों वाले छन्द]

(१) अपराजिता (७, ७)

लक्षण—ननरसलघुगैः स्वरैरपराजिता । गण—न, न, र, स, ल, ग ।
मदनवधिभुजप्रतापकृतास्पदा यदुनिचयचमूः परैरपराजिता ।
व्यजयत समरे समस्तरिपुव्रजं स जयति जगतां गतिर्गरुडध्वजः ।।

(२) असम्बाधा (५, ६)

लक्षण—म्तौ न्सौ गावक्षग्रहविरतिरसम्बाधा । गण—म, त, न, स, ग, ग ।
वीर्याग्नौ येन ज्वलति रणवशात्क्षिप्ते दैत्येन्द्रे जाता धरणिरियमसम्बाधा ।
धर्मस्थित्यर्थं प्रकटिततनुसम्बन्धः साधूनां बाधां प्रशमयतु स कंसारिः ।।

(३) प्रहरणकलिका (७, ७)

लक्षण—ननभनलगिति प्रहरणकलिका । गण—न, न, भ, न, ल, ग,

व्ययति कुसुमप्रहरणकलिका प्रमदवनभवा तव धनुषि तता ।
विरहविपदि मे शरणमिह ततो मधुमथनगुणस्मरणमविरतम् ।।

(४) मध्यक्षामा (४, १०)

(इसको ही हसश्येनी और कुटिला भी कहते हैं)

लक्षण—*मध्यक्षामा युगदशविरमा म्भौ न्यौ गौ । गण—म, भ, न, य, ग, ग ।*
नीतोच्छ्राय मुहुरशिशिररश्मेरुस्रैरानीलाभैर्विरचितपरभागा रत्नैः ।
ज्योत्स्नाशङ्कामिह वितरति हंसश्येनी मध्येऽप्यह्नः स्फटिकरजतभित्तिच्छाया ।।

(५) वसन्ततिलका (८, ६)

लक्षण—ज्ञेय (उक्ता) वसन्ततिलक (का) तभजा जगौ गः । गण—त, भ, ज, ज, ग, ग ।
फुल्ल वसन्ततिलक तिलक वनाल्या लोलापर पिककुल कलमत्र रौति ।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो यातो हरिः स मथुरां विधिना हताः स्मः ।।

(६) वासन्ती (४, ६, ४)

लक्षण—मात्तो नो मो गौ यदि गदिता वासन्तीयम् । गण—म, त, न, म, ग, ग ।
भ्राम्यद्भृङ्गीनिर्भरमधुरालापोद्गीतैं श्रीखण्डाद्रेरद्भुतपवनैर्मन्दान्दोला ।
लीलालोला पल्लवविलसद्धस्तोल्लासै कंसारातौ नृत्यति सदृशी वासन्तीयम् ।।

अतिशक्वरी (पंचदशाक्षरा वृत्तिः)

[एक पाद मे १५ वर्णों वाले छन्द]

(१) तूणकम् (४, ४, ४, ३ या ७, ८)

लक्षण—तूणक समानिकापदद्वय विनान्तिमम् । गण—र, ज, र, ज, र ।
सा सुवर्णकेतक विकाशि भृङ्गपूरित पञ्चबाणबाणजाल पूर्ण हेतितूणकम् ।
राधिका वितर्क्य माधवाद्य मासि माधवे मोहमेति निर्भर त्वया विना कलानिधे ।

(२) मालिनी (८, ७)

लक्षण—ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः । गण—न, न, म, य, य ।
मृगमदकृतचर्चा पीतकौशयवासा रुचिरशिखिशिखण्डा बद्धधम्मिल्लपाशा ।
अनृजुनिहितमसे वशमुत्क्वाणयन्ती धृतमधुरिपुलीला मालिनी पातु राधा ।।

(३) लीलाखेलः

लक्षण—एकन्यूनौ विद्युन्मालापादौ चेल्लीलाखेल. । गण—म, म, म, म, म ।
पायाद्वो गोविन्दः कालिन्दीकूलक्षोणीचक्रे
रासोल्लासक्रीडद्गोपीभिः सार्धं लीलाखेल ।
मन्दाकिन्यास्तीरोपान्ते स्वैरक्रीडाभिर्लोलो
मद्वद्देवानामीशः स्वर्वेश्याभि खेलन्तीभिः ।।

(४) शशिकला (७, ८)

लक्षण—गुरुनिधनमनुलघुरिह शशिकला । गण—न, न, न, न, स ।
मलयजतिलकसमुदितशशिकला व्रजयुवतिलसदलिकगगनगता ।
सरसिजनयनहृदयसलिलनिधि व्यतनुत विततरभसपरितरलम् ।।

इस छन्द में ही यदि ६ठे और १५ वें वर्ण पर यति होगी तो इसे सर् छन्द कहेंगे और यदि ८ वें और १५ वें वर्ण पर यति होगी तो गुणिगुणनिकर छन्द कहेंगे। जैसे—

अयि मधुचरि रुचिरतरगुणमयो अदिभवगतिरनघगनपरिमला।
सगिव निवस विलसदनुपमरसा सुमुखि मुदितदनुजदलनहृदये ॥
नरकरिपुरवतु निखिलसुरगतिरमितमहिमभरसहजनिवगनि ।
अनवधिमणिगुणनिकरपरिचित सरिदधिपतिरिव धृततनुविभव ॥

अष्टिः (षोडशाक्षरा वृत्तिः)

[एक पाद में १६ वर्णों वाले   न्द]

(१) चित्रम् (८, ८ या ४, ४, ४, ४)

लक्षण—चित्रसञ्ज्ञमीरित समानिकापदद्वय तु।
समानिका छन्द के दो पादों को मिलाकर चित्र छन्द का एक पाद होता है।
गण—र ज, र, ज, र, ग।
विद्रुमारुणाधरोष्ठशोभिवेणुवाद्यहृष्टवल्लवीजनाङ्गसङ्गजातमुग्धकण्टकाङ्ग ।
त्वां सदैव वासुदेव पुण्यलभ्यपाद देव वन्यपुष्पचित्रवेश संस्मरामि गोपवेश ॥

(२) पञ्चचामरम् (८, ८ या ४, ४, ४, ४)

लक्षण—प्रमाणिकापदद्वय वदन्ति पञ्चचामरम्। गण—ज, र, ज, र, ज, ग।
सुरद्रुमूलमण्डपे विचित्ररत्ननिर्मिते लसद्वितानभूषिते सलीलविभ्रमालसम्।
सुराङ्गनाभवल्लवीकरप्रपञ्चचामरस्फुरत्समीरवीजित सदाच्युत भजामि तम् ॥

(३) वाणिनी

लक्षण—नजभजरैर्यदा भवति वाणिनी गयुक्तै। गण—न, ज, भ, ज, र, ग।
स्फुरतु ममाननेऽद्य ननु वाणि नीतिरम्य
तव चरणप्रसादपरिपाकत कवित्वम्।
भवजलराशिपारकरणक्षम मुकुन्द
सततमहं स्तावै स्वचरितै स्तवामि नित्यम् ॥

अत्यष्टि

[एक पाद में १७ वर्णों वाले छन्द]

(१) नर्दटकम् (८, ६)

लक्षण—यदि भवतो नजौ भजजला गुरु नर्दटकम्।
गण—न, ज, भ, ज, ज, ल, ग।
व्रजवनितावसन्तलतिकाविलसन्मधुप
मधुमथन प्रणम्रजनवाञ्छितकल्पतरुम्।
विभुमभिनौति कोपि सुकृती मुदितेन हृदा
रुचिरपदावलीघटितनर्दटकेन कवि ॥

(२) पृथ्वी (८, ६)

लक्षण—जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु ।
गण—ज, स, ज, स, य, ल, ग ।

दुरन्तदनजेश्वरप्रकरदुःस्थरं वीभर
जहार निजलोलया व्रजकुलेऽवतीर्याशु य ।
स एव जगतां गतिर्दुरितभारमस्मादृशां
हरिष्यति हरिः स्तुतिस्मरणचाटुभिस्तोषित ।।

(३) मन्दाक्रान्ता (४, ६, ७)

लक्षण—मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।
गण—म, भ, न, त, त, ग, ग ।

प्रेमालापैः प्रियवितरणैः प्रीणितालिङ्गनाद्यै-
र्मन्दाक्रान्ता तदनु नियतं वश्यतामेति बाला ।
एवं शिक्षावचनसुधया राधिकायाः सखीनां
प्रीतः पायात्स्मितसुवदनो देवकीनन्दनो नः ।।

(४) वंशपत्रपतितम् (१०, ७)

लक्षण—दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगैः ।। गण—भ, र, न, भ, न, ल, ग ।

सम्प्रति लब्धजन्म शनकैः कथमपि लघुनि
क्षीणपयस्युपेयुषि भिदां जलधरपटले ।
खण्डितविग्रहं बलभिदो धनुरिह विविधा
पूरयितुं भवन्ति विभवः शिखरमणिरुचः ।।

(५) शिखरिणी (६, ११)

लक्षण—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।
गण—य, म, न, स, भ, ल, ग ।

करादस्य भ्रष्टे ननु शिखरिणी दृश्यति शिशो-
र्विलीना स्म सत्यं नियतमवधेयं तदखिलैः ।
इति प्रस्यद्गापाञ्चितनिभृतालापजनितं
स्मितं बिभ्रद्देवो जगदवतु गोवर्धनधरः ।।

(६) हरिणी (६, ४, ७)

लक्षण—नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।
गण—न, स, म, र, स, ल, ग ।

व्यधित स विधिर्नेत्रं नीत्वा ध्रुवं हरिणीगणाद्
व्रजमृगदृशां मदोहम्योल्लसत्प्रमनश्रियम् ।
यदयमनिशं दूर्वाश्यामे मुरारिकलेवरे
व्यचिरदधिकं बद्धाशांसं विलासविलोचनम् ।।

धृतिः

[एक पाद मे १८ वर्णों वाले छन्द]

(१) चित्रलेखा (४, ७, ७)

लक्षण—मन्दाक्रान्ता नपरलघुयुता कीर्तिता चित्रलेखा ।
गण—म, भ, न, य, य, य ।

शङ्केऽमुष्मिन् जगति मृगदृशां साररूपं यदासी-
दाकृष्यैदं व्रजयुवतिसभां वेधसा सा व्यधायि ।
नैतादृक्चेत्कथमुदधिसुतामन्तरेणाच्युतस्य
प्रीतं तस्यां नयनयुगमभूच्चित्रलेखाङ्कितायाम् ॥

(२) नन्दनम् (११, ७)

लक्षण—नजभजरैस्तु रेफसहितैं शिवैर्हयैर्नन्दनम् । गण—न, ज भ, ज, र, र ।

तरणिसुतातरङ्गपवनैः सलीलमान्दोलितं
मधुरिपुपादपङ्कजरजःसुपूतपृथ्वीतलम् ।
मुरहरचित्रचेष्टितकलाकलापसंस्मारकं
क्षितितलनन्दनं व्रज सखे सुखाय वृन्दावनम् ॥

(३) नाराचम् (८, ५, ५)

लक्षण—इह ननरचतुष्कसृष्टं तु नाराचमाचक्षते । गण—न, न, र, र, र र ।

दिनकरतनयातटीकानने चारु सचारिणी
श्रवणनिकटकृष्टमेणेक्षणा कृष्ण राधा त्वयि ।
ननु विकिरति नेत्रनाराचमेषातिहृच्छेदनं
तदिह मदनविभ्रमोद्भ्रान्तचित्ता विधत्स्व द्रुतम् ॥

अतिधृतिः

[एक पाद मे १९ वर्णों वाले छन्द]

(१) मेघविस्फूर्जिता (६, ६, ७)

लक्षण—रसर्त्वश्वैर्म्यौ न्सौ ररगुरुयुतौ मेघविस्फूर्जिता स्यात् ।
गण—य, म, न, स, र, र, ग ।

कदम्बामोदाढ्या विपिनपवना केकिनः कान्तिकेका
विनिद्रा कन्दल्यो दिशि दिशि मुदा दर्दुरा दृप्तनादाः ।
निशानृत्यद्विद्युद्विलसितलसन्मेघविस्फूर्जिता चेत्
प्रिय स्वाधीनोऽसौ दनुजदलनो राज्यमस्मात्किमन्यत् ।

(२) शार्दूलविक्रीडितम् (१२, ७)

लक्षण—सूर्याश्वैर्मदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
गण—म, स, ज, स, त, त, ग ।

दण्डक

एक पाद में २७ या इससे अधिक वर्णों वाले छन्दों का सामान्य नाम दण्डक है। इसके बहुत से भेदों का उल्लेख है। (यहाँ तक कि एक पाद में ९९९ वर्ण तक हो सकते है।) जैसे—चण्डवृष्टिप्रयात, प्रचितक, मत्तमातंगलीलाकर, सिंहविक्रान्त, कुसुमस्तबक, अनंगशेखर, संग्राम, आदि। मालतीमाधव (५–२३) अन्त में उल्लिखित भेदों में से एक का उदाहरण है। इसमें प्रत्येक पाद में ५४ वर्ण है।

भाग २

अर्धसमवृत्तानि

[आधे अंश में समानता वाले छन्द]

(१) उपचित्रम्

लक्षण—विषमे यदि सौ सलगा दले भौ युजि भाद्गुरुकावुपचित्रम्।
गण—स, स, स, ल, ग (पाद १, ३) भ, भ, भ, ग, ग। (पाद २, ४)

मुखैरविपुस्तनुता मुद हेमनिभांशुकचन्दनलिप्तम्।
गगनं चपलामिलितं यथा शारदनीरधरैरुपचित्रम्॥

(२) अपरवक्त्रम्

(इसको ही वैतालीयम् भी कहते हैं)

लक्षण—अयुजि ननरला गुरुः समे तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।
गण—न, न, र, ल, ग, (विषम पाद) न, ज, ज, र। (सम पाद)

स्फुटसुमधुरवेणुगीतिभिस्तमपरवक्त्रमवेत्य माधवम्।
मृगयुवतिगणैः समं स्थिता व्रजवनिता धृतचित्तविभ्रमा॥

(३) पुष्पिताग्रा

(इसको ही औपच्छन्दसिके भी कहते हैं)

लक्षण—अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा
गण—न, न, र, य, (विषम पाद), न, ज, ज, र, ग। (सम पाद)

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं व्यसनकृशा परिपालयाबभूव।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम्॥

(४) मालभारिणी

लक्षण—विषमे ससजे नगे नगे नाविषमस्थयेण तु मालभारिणीयम्।
गण—स स, ज, ग, ग, (विषम पाद), स, भ, र, य। (सम पाद)

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु॥
(शाकुन्तल ३–२३)

(५) वियोगिनी

(इसको ही वैतालीय या सुन्दरी भी कहते हैं)

• (इसको ही वैतालीय या सुन्दरी भी कहते हैं) विषमे ससजा गुरु समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

लक्षण—विषमे ससजा गुरु समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।

गण—स, स, ज, ग, (विषम पाद), स, भ, र, ल, ग। (सम पाद)

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदा पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धा स्वयमेव सपद ॥

(६) वेगवती

लक्षण—सयुगात्सगुरू विषमे चेद् भाविह वेगवती युजि भाद्गौ।

गण—स, स, स, ग, (विषम पाद), भ, भ, भ, ग, ग। (सम पाद)

स्मरवेगवती व्रजरामा केशववशस्वैरतिमुग्धा।
रभसान्न गुरून् गणयन्ती केलिनिकुजगृहाय जगाम ॥

(७) हरिणप्लुता

लक्षण—सयुगात्सलघू विषमे गुरुर्युजि नभौ भरकौ हरिणप्लुता।

गण—स, स, स, ल, ग, (विषम पाद), न, भ, भ, र। (सम पाद)

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता बलिमनोज्ञतटा तरणे सुता।
कलहसकुलारवशालिनी विहरतो हरति स्म हरेर्मन ॥

भाग ३

विषमवृत्तानि (विषम वर्णों वाले छन्द)

इस वर्ग का सबसे प्रचलित छन्द उद्गता है।

लक्षण—प्रथमे सजौ यदि सलौ च नसजगुरुकाण्यनन्तरम्।
यद्यथ भनजलगा स्युरथो सजसा जगौ च भवतीयमुद्गता ॥

गण—स, ज, स ल, (पाद १), न, स, ज, ग। (पाद २)। भ, न, ज, ल, ग, (पाद ३)। स, ज, स, ज, ग। (पाद ४)

अथ वासवस्य वचनेन रुचिरवदनस्त्रिलोचनम्।
क्लान्तिरहितमभिराधयितु विधिवत्तपासि विदधे धनजय ॥
(किराता० १२–१)

उद्गता के एक और भेद का उल्लेख है, जिसमे तृतीय पाद मे भ, न, ज, ल, ग के स्थान पर भ, न, भ, ग होते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य छन्दो का सामान्य नाम 'गाथा' है, जिनके प्रत्येक चरण (पाद) मे वर्णों की सख्या पृथक्-पृथक् होती है। जिन छन्दो मे पादो की सख्या मे ४ कम या अधिक होती हैं, उनको भी गाथा ही कहा जाता है।

जाति (मात्रिक छन्द)

इन छन्दो मे मात्राएँ गिनी जाती हैं।

१४ मात्रिक छन्दो मे सबसे प्रचलित छन्द आर्या है। इसके ९ भेद हैं —

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

इनमे से अन्तिम चार का ही अधिक प्रयोग होता है। उनपर ही यहाँ विचार किया गया है।

आर्या

लक्षण—यस्या पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

इसके प्रथम और तृतीय पाद म १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय मे १८ और चतुर्थ मे १५ ।

येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत ।
कुटजे खलु तेनेहा तेनेहा मधुकरेण कथम् ॥

गीतिः

लक्षण—आर्याप्रथमार्धसम यस्या परार्धमीरिता गीति ।

इसके तृतीय और चतुर्थ पाद क्रमश आर्या के प्रथम और द्वितीय पाद के सदृश होते हैं।

पाटीर तव पटीयान्क परिपाटीमिमामुरीकर्तुम् ।
यत्पिषतामपि नृणा पिष्टोऽपि तनोषि परिमलैं पुष्टिम् ॥

उपगीतिः

लक्षण—आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम् ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद आर्या के तुल्य होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद मे १५, १५ मात्राएँ होती हैं।

नवगोपसुन्दरीणा लासोल्लासे मुरारातिम् ।
अस्मारयदुपगीति स्वर्गकुरङ्गीदृशा गीते ॥

उद्गीतिः

लक्षण—आर्याशकलद्वितये विपरीते पुनरिहोद्गीति ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद मे १२, १२ मात्राएँ होती हैं तथा द्वितीय म १५ और चतुर्थ मे १८ मात्राएँ।

नारायणस्य सनतमुद्गीति सस्मृतिर्भक्त्या ।
अर्चायामासक्तिर्दुस्तरससारसागरे तरणि ॥

आर्यागीति

लक्षण—आर्या प्राग्दलमन्तेऽधिकगुरु तादृक्परार्धमार्यागीति ।

इसके प्रथम और तृतीय पाद मे १२ मात्राएँ होती हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद मे २० मात्राएँ ।

चारुसमीरणविपिने हरिणकलङ्ककिरणावली सविलासा ।
आवद्धराममोहा वेलामूले विभावरी परिहीना ॥

(१) वैतालीयम्

लक्षण—षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्निरन्तरा ।
न सम पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरु ॥

इस छन्द के प्रथम और तृतीय पाद मे १४, १४ मात्राएँ होती है तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद मे १६, १६ मात्राएँ। इनमे से अन्तिम ८ मात्राएँ इस प्रकार होनी चाहिएँ—एक रगण (ऽ।ऽ) और उसके बाद लघु, गुरु (।ऽ)। द्वितीय और चतुर्थ चरण मे केवल लघु (ह्रस्व) या केवल गुरु (दीर्घ) मात्राएँ ही नही होनी चाहिएँ। प्रत्येक चरण मे सम मात्राएँ (अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ और अष्टम मात्रा) विषम मात्राओ (अर्थात् तृतीय, पचम और नवम मात्रा) पर आश्रित न हो।

कुशल खलु तुभ्यमेव तद् वचन कृष्ण यदभ्यधामहम्।
उपदेशपरा परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधव ॥

(२) औपच्छन्दसिकम्

लक्षण—पर्यन्ते यौ तथैव शेषमौपच्छन्दसिक सुधीभिरुक्तम्।

यह छन्द प्राय वैतालीय ही है, केवल प्रत्येक पाद के अन्त मे रगण और यगण रहेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि वतालीय छन्द के प्रत्येक पाद के अन्त मे एक गुरु वर्ण और जुड जाएगा।

आतन्वान मुरारिकान्तास्वौपच्छन्दसिक हृदो विनोदम्।
कस यो निर्जघान देवो वन्दे त जगता स्थिति दधानम् ॥

परिशिष्ट—२

धातुकोश

संक्षिप्त-रूप आदि

लट् (Present), लोट् (Imperative), लङ् (Imperfect), विधिलिङ् (वि० लिङ्, Potential), लिट् (Perfct), लुट् (Periphrastic, I Future), लृट् (Future Simple, II Future), लृङ् (Conditional), लुङ् (Aorist), आशीर्लिङ् (आ० लिङ्, Benedictive), णिच् (Causal), सन् (Desiderative), यङन्त या यङलुगन्त (Frequentative), परस्मैपद (प०, पर०), आत्मनेपद (आ०, आत्मने०), उभयपद (उ०, उभय०), कर्मवाच्य (Passive), क्त (त, Past Passive Participle), तुम् (Infinitive), क्त्वा, ल्यप् (Gerund), १, २, ३ आदि संख्याएँ धातु के बाद भ्वादि०, अदादि० आदि गण के सूचक हैं, शतृ-शानच् (Present Participle)।

अ

(अशापयति-
अंश्—१० उ०, विभाजने (बाँटना), लट्—अंशयति-ते, लृङ्—
ते, भी होता है), लिट्—अंशयाचकार-चक्रे-आस-बभूव, लुट्—अंशयिता,
आंशयिष्यत्, लुङ्—आंशिशत्-त, आ० लिङ्—अंश्यात्, अंशयिषीष्ट।

अंस्—१० उ०, धातुरूप अंश् पूर्वोक्त के तुल्य रूप चलेंगे। केवल अन्तर यह है कि श् के स्थान पर स् रहेगा।

अंह्—१ आ०, गतौ (जाना), लट्—अंहते, लिट्—आनंहे, लुट्—अंहिता
लुङ्—आंहिष्ट, आ० लिङ्—अंहिषीष्ट। णिच्-लट्-अंहयति-ते, लुङ्—
आंजिहत्-त।

अंह्—१० उ०, भासने (चमकना), लट्—अंहयति-ते, लिट्—अंहयाचकार-
चक्रे इत्यादि, लुट्—अंहयिता, लुङ्—आंजिहत्-त, आ० लिङ्—अंह्यात्,
अंहयिषीष्ट। तुम्—अंहितुम्, क्त—अंहिता।

अक्—१ प०, कुटिलायां गतौ (कुटिल गति से चलना), लट्—अकति,
लिट्—आक, लुट्—अकिता, लृट्—अकिष्यति, लुङ्—आकीत्। णिच्-लट्—
अकयति-ते। क्त—अकित।

अक्ष्—१, ५ प०, (पहुँचना, व्याप्त होना, एकत्र करना), लट्—अक्षति-
अक्ष्णोति, अक्षसि-अक्ष्णोषि, अक्षामि-अक्ष्णोमि, लङ्—आक्षत्-आक्ष्णोत्, आक्षः-
आक्ष्णोः, आक्षम्-आक्ष्णवम्, लोट्—अक्षतु-अक्ष्णोतु, अक्ष-अक्ष्णुहि, अक्षाणि-
अक्ष्णवानि, वि० लिङ्—अक्षेत्, अक्ष्णुयात्, अक्षेः-अक्ष्णुयाः, अक्षेयम्-अक्ष्णुयाम्,
लिट्—आनक्ष, लुट्—अक्षिता-अष्टा, लृट्—अक्षिष्यति, अक्ष्यति, आ० लिङ्—

अक्ष्यात्, लृङ–आक्षिष्यत्-आक्ष्यत्, लुङ–आक्षीत्, प्र० पु० द्विव०–आक्षिष्टाम्-आष्टाम्, प्र० पु० बहु०–आक्षिषु-आक्षु । सन्–अचिक्षिषति-अचिक्षति, कर्म०, लट्–अक्ष्यते, लुङ–आक्षि, णिच्-लट्–अक्षयति-ते, लुङ–आचिक्षत्-त । क्त–अष्ट, क्त्वा–अक्षित्वा-अष्ट्वा, तुम्–अक्षितुम्-अष्टुम्, क्वसु–आनक्ष्वस् ।

अग्—१ प०, कुटिलायां गतौ, (कुटिल गति से चलना), लट्–अगति, लिट्–आग, लुट्–अगिता, लुङ–आगीत् ।

अघ्—१० उ०, पापकरणे (पाप करना), लट्–अघयति-ते, लिट्–अघयाचकार-चक्रे, लुट्–अघयिता, लुङ–आजिघत्-त, आ० लिङ–अघ्यात्-अघयिषीष्ट ।

अङ्क्—१ आ०, लक्षणे (चिह्न करना), लट्–अङ्कते, लिट्–आनङ्के, लुट्–अङ्किता, लृट्–अङ्किष्यते, लृङ–आङ्किष्यत्, आ० लिङ–अङ्किषीष्ट, लुङ–आङ्किष्ट । सन्–अञ्चिकिषते, कर्म०–अङ्कयते ।

अङ्क्—१० उ०, पदे लक्षणे च, (गिनती करना, चिह्न लगाना), लट्–अङ्कयति-ते, लिट्–अङ्कयाम्बभूव-आस-अङ्कयाचकार-चक्रे इत्यादि, लुट्–अङ्कयिता, लृट्–अङ्कयिष्यति-ते, लृङ–आङ्कयिष्यत्-त, लुङ–आञ्चकत्-त, आ० लिङ–अङ्क्यात्-अङ्कयिषीष्ट । सन्–लट्–अञ्चिकयिषति-ते, कर्म०–अङ्क्यते (अङ्काप्यते भी) ।

अङ्ग्—१ प०, जाना, लट्–अगति, लिट्–आनङ्ग, लुट्–अगिता, लुङ–आङ्गीत् । सन्–अञ्जिगिषति, तुम्–अगितुम् ।

अङ्ग्—१० उ०, अङ्क् धातु के तुल्य ।

अंघ्—१ आ०, गत्याक्षेपे (जाना, दोष लगाना), लट्–अघते, लिट्–आनघे, लुट्–अघिता, लुङ–आघिष्ट, आ० लिङ–अघिषीष्ट । सन्–अञ्जिघिषति ।

अच्—१ उ०, गतौ अविस्पष्टकथने च (जाना, अस्पष्ट कहना), लट्–अचति-ते, लिट्–आच-आचे, लुट्–अचिता, लुङ–आचीत्-आचिष्ट । सन्–अचिचिषति-ते, क्त–अक्न, क्त्वा–अचित्वा, अक्त्वा ।

अज्—१ प०, गतिक्षेपणयो (जाना, दौड़ना, निन्दा करना), लट्–अजति, लिट्–विवाय, उ० पु० द्वि०–विव्यिव, आजिव, बहु०–विव्यिम, आजिम, म० पु० एक०–विवयिथ-विवेथ, आजिथ, लुट्–वेता या अजिता, लृट्–वेष्यति, अजिष्यति, लृङ–अवेष्यत्-आजिष्यत्, लुङ–अवैषीत्-आजीत्, आ० लिङ–वीयात् । सन्–विवीषति-अजिजिषति, क्त–वीत या अजित, क्त्वा–वीत्वा, अजित्वा, गत्वाय । णिच्, लट्–वाययति-ते, लुङ–अवीवयत्, कर्म० लट्–वीयते, लिट्०–विव्ये, लुट्–वायिता, वेता, अजिता, लृट्–वायिष्यते-वेष्यते-अजिष्यते, आ० लिङ–वायिषीष्ट-वेषीष्ट-अजिषीष्ट, लृङ–

अवायिष्यत अवेष्यत आजिष्यत लुङ—प्र० पु० एक०—अवायि द्विव० अवायिषाताम् अवेषाताम् आजिषाताम् म० पु० बहु०—अवायिध्वम्-ढ्वम अवेढ्वम आजिढ्वम ।

अञ्च—१ प० गतिपूजनयो[1] (जाना पूजा करना) लट—अञ्चति, लिट—आनञ्च लुट—अञ्चिता लृट—अञ्चिष्यति आ० लिङ—अच्यात अञ्च्यात लुङ—आञ्चीत लृङ—आञ्चिष्यत । णिच लट—अञ्चयति-ते सन—अञ्चिचिषति क्त—अञ्चित अक्त सम+अञ्च+क्त=समक्त क्त्वा—अञ्चित्वा या अक्त्वा ।

अञ्च—१ उ० गतौ याचने च (जाना मागना) लट—अञ्चति-ते लिट—आनञ्च ञ्चे लट—अञ्चिष्यति-ते लुङ—आञ्चीत आचिष्ट कम०—अञ्च्यते क्त—अक्त क्त्वा—अञ्चित्वा तुम्—अञ्चितुम ।

अञ्च—१० उ० विशेषणे (विशेषता बताना) लट—अञ्चयति-ते लिट—अञ्चयाचकार चक्रे लुट—अञ्चयिता लुङ—आञ्चकत त आ० लि०—अञ्चयात्-अञ्चयिषीष्ट ।

अञ्ज—७ प० व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिपु (स्वच्छ करना लीपना सजाना जाना) लट—अनक्ति लङ—आनक ग लोट—अनक्त (म० पु० एक० अङग्धि) वि० लिङ—अञ्ज्यात लिट—आनञ्ज लुट—अञ्जिता—अङक्ता लृट—अञ्जिष्यति अङक्ष्यति लङ—आञ्जिष्यत् आङक्ष्यत लुङ—आञ्जीत आ० लिङ—अज्यात् । सन—अञ्जिजिषति कम०-लट—अज्यते लुङ—आञ्जि णिच लट—अञ्जयति अञ्जयते लुङ—आञ्जिजत त क्त—अक्त तव्य—अञ्जितव्य' अङक्तव्य-व्यङग्य क्त्वा—अञ्जित्वा अक्त्वा ल्यप वि+व्यज्य तुम्—अञ्जितुम अङक्तुम ।

अट—१ प० गतौ (घूमना फिरना) लट—अटति लिट—आट लुट—अटिता लृट—अटिष्यति लुङ—आटीत आ० लिङ—अटयात । सन—अटिटिषति णिच-लट—आटयति-ते लुङ—आटिटत यङ—अटाटयते ।

अट्ट—१ आ० अतिक्रमणहिंसयो (अतिक्रमण करना हिंसा करना) लट—अट्टते लिट—आनट्ट लुट—अट्टिता लट—अट्टिष्यते लुङ—आट्टिष्ट सन्—अटिटिषते अट्टिषते णिच लट—अट्टयति-ते लुङ—आटिट्टत-त आट्टिटत-त ।

अट्ट—१० उ० अनादरे (अनादर करना) लुङ—आटिट्टत आट्टिटत आ० लिङ—अट्टयिषीष्ट । तुम—अट्टयितुम ।

अण—१ प० शब्दे (शब्द करना) लट—अणति लिट—आण लुट—अणिता लुङ—आणीत । सन—अणिणिषति । णिच लट—आणयति-ते लुङ—आणिणत्-त ।

---

१ नाञ्चे पूजायाम (६ ४ ३०) । पूजा अर्थ में अञ्च् धातु के न का लोप नही होता है बाद मे ङित प्रत्यय होने पर ।

अण्—४ आ०, प्राणने (साँस लेना, जीवित रहना), लट्–अण्यते, लिट्–आणे, लुट्–अणिता, लृट्–अणिष्यते, लुङ–आणिष्ट, आ० लिङ–अणिषीष्ट, सन्–अणिणिषते, णिच् लट्–अण्यते, लुङ–आणि।

अत्—१ प०, सातत्यगमने (निरन्तर चलना) लट्–अतति, लिट्–आत, लुट्– अतिता, लृट्–अतिष्यति, लृङ–आतिष्यत्, आ० लिङ–अत्यात, लुङ–आतीत् । सन्–अतितिषति, कर्म० लट्–अत्यते, लुङ–आति। णिच् लट्–आतयति-ते, लुङ–आतितत्-त, क्त–अतित।

अद्—२ प०, भक्षणे (खाना), लट्–अत्ति, लङ–प्र० पु० एक० आदत्, म० पु० एक० आद, लिट्–आद, जघास, लुट्–अत्ता, लृट्–अत्स्यति, लुङ–अघसत्, सन्–जिघत्सति, लृङ–आत्स्यत्, आ० लिङ–अद्यात्। णिच् लट्–आदयते (आदयति, अकर्त्रभिप्राये), लुङ–आदिदत्-त । कर्म० लट्–अद्यते, लिट्–आदे-जक्षे, क्त-जग्ध-(अन्न), क्त्वा-जग्ध्वा प्रजग्ध्य, तुम्-अत्तुम्।

अन्—२ प०, प्राणने (साँस लेना, जीवित रहना), लट्–अनिति, लङ–आनी-न (म० एक०), आनीत्,–आनत् (प्र० एक०), लिट्–आन, लुट्–अनिता, लृङ–आनिष्यत्, लुङ–आनीत्, सन्–अनिनिषति। णिच् लट्–आनयति-ते, लुङ–आनिनत्-त। कर्म० लट्–अन्यते, लुङ–आनि, क्त्वा–अनित्वा, प्र+अन् =प्राण्य।

अन्—४ आ०, (जीवित रहना), लट्–अन्यते, लिट्–आने, लुट्–अनिता। यह अण् धातु का ही अन् रूप है।

अन्त्—१ प०, बन्धने (बाँधना) लट्–अन्तति, लृट्–अन्तिष्यति, लुङ–आन्तीत्, आ० लिङ–अन्त्यात् । णिच्–अन्तयति, लुङ–आन्तीन्-त, सन्–अन्तितिषति।

अन्ध्—१० उ०, दृष्ट्युपघाते, दृष्ट्युपसंहारे (अन्धा होना, अपनी आँखें बन्द करना), लट्–अन्धयति-ते, लृङ–आन्धयिष्यत्, लुङ–आन्दधत्-त, आ० लिङ–अन्ध्यात्, अन्धयिषीष्ट। सन्–अन्दिधयिषति-ते।

अभ्र्—१ प०, गतौ (जाना, घूमना), लट्–अभ्रति, लिट्–आनभ्र, लुङ–आभ्रीत्।

अम्—१ प०, गतिशब्दसंभक्तिषु (जाना, शब्द करना, खाना), लट्–अमति, लिट्–आम, लुट्–अमिता, लृट्–अमिष्यति, लुङ–आमीत् । णिच्-लट्–आमयति-ते, लुङ–आमिमत्-त, सन्–अमिमिषति, कर्म० लुङ–आमि, क्त–आन्त।

अम्—१० उ०, रोगे (रोग उत्पन्न करना), लट्–आमयति-ते, लुङ–आमिमत्-त, आ० लिङ–अम्यात् आमयिषीष्ट।

अय्—१ आ०, गतौ (जाना), लट्–अयते, परा के साथ पलायते, लिट्–अयांचक्रे, लुट्–अयिता, लुङ–आयिष्ट, आ० लिङ–अयिषीष्ट, सन्–

अयियिषते । कर्म० लट्–अय्यते, लुङ्–आयि । णिच्–लट्–आययति-
ते, लुङ्–आयियत्–त, क्त्वा–आयित्वा, परा के साथ–पलाय्य ।

अर्क्—१० उ०, तपने स्तवने च (तपाना, स्तुति करना), लट्–अर्कयति-
ते, लिट्–अर्कयाञ्चकार-चक्रे आस-बभूव, लुट्–अर्कयिता, लुङ्–आर्चिकत्–त,
आ० लिङ्–अर्क्यात्–अर्कयिषीष्ट, क्त–अर्कित ।

अर्घ्—१ प०, मूल्ये (मूल्य होना, योग्य होना), लट्–अर्घति, लिट्–
आनर्घ, लुट्–अर्घिता, लुङ्–आर्घीत्, सन्–अर्जिघिषति । णिच्–लट्–
अर्घयति-ते, लुङ्–आर्जिघत्–त ।

अर्च्—१ प०, पूजायाम् (पूजा करना) लट्–अर्चति, लिट्–आनर्च,
लुट्–अर्चिता, लृट्–अर्चिष्यति, लुङ्–आर्चीत्, आ० लिङ्–अर्च्यात् ।
सन्–अर्चिचिषति, णिच्–लट्–अर्चयति-ते, लुङ्–आर्चिचत्–त, कर्म० लट्–
अर्च्यते, लुङ्–आर्चि, क्त्वा–अर्चित्वा ।

अर्च्—१० उ०, (पूजा करना), लट्–अर्चयति-ते, लिट्–अर्चयाम्बभूव-
आस-चकार-चक्रे, लुट्–अर्चयिता, लृट्–अर्चयिष्यति-ते, आ० लिङ्–अर्च्यात्-
अर्चयिषीष्ट, लृङ्–आर्चयिष्यत्–त, लुङ्–आर्चिचत्–त, सन्–अर्चिचयिषति ते,
कर्म० लट्–अर्च्यते, लुङ्–आर्चि, (आर्चयिषाताम् आर्चिषाताम् प्र० पु० द्वि०)

अर्ज्—१ प०, अर्जने (प्राप्त करना, लेना), लट्–अर्जति, लिट्–आनर्ज,
लुट्–अर्जिता, लृट्–अर्जिष्यति, लुङ्–आर्जीत्, आ० लिङ्–अर्ज्यात्, सन्–
अर्जिजिषति, णिच् लट्–अर्जयति-ते, लुङ्–आर्जिजत्–त ।

अर्ज्—१० उ०, प्रतियत्ने सम्पादने च (प्राप्त करना), (उपर्युक्त का प्रेरणार्थक
भी) लृट्–अर्जयिष्यति, सन्–अर्जिजयिषति-ते, कर्म० लुङ्–आर्जि, (आर्ज-
यिषाताम्-आर्जिषाताम्, द्विव०) ।

अर्थ्—१० आ०, उपयाच्ञायाम् (माँगना, प्रार्थना करना), लट्–अर्थयते,
लिट्–अर्थयाम्बभूव-आस-चक्रे, लुट्–अर्थयिता, लुङ्–आर्तथत, आ० लिङ्–
अर्थयिषीष्ट, सन्–अर्तिथयिषते । कर्म० लट्–अर्थ्यते-अर्थाप्यते, लुङ्–आर्थि ।

अर्द्—१ प०, गतौ याचने च (जाना, माँगना), लट्–अर्दति, लिट्–
आनर्द, लुट्–अर्दिता, लृङ्–आर्दिष्यत्, लुङ्–आर्दीत्, आ० लिङ्–अर्द्यात्,
सन्–अर्दिदिषति । णिच्–लट्–अर्दयति–ते, लुङ्–आर्दिदत्–त, कर्म०
लट्–अर्द्यते, लुङ्–आर्दि, क्त–अर्दित, समर्ण (पूछा), अभ्यर्ण (समीप) ।

अर्द्—१० उ०, हिंसायाम् (हिंसा करना), लुङ्–आर्दिदत्–त, आ०
लिङ्–अर्द्यात्–अर्दयिषीष्ट, सन्–अर्दिदयिषति-ते । कर्म० लट्–अर्द्यते,
लुङ्–आर्दि, क्त–अर्दित ।

अर्ह्—१ प०, पूजायां योग्यत्वे च–(पूजा करना, योग्य होना), लट्–
अर्हति, लिट्–आनर्ह, लुट्–अर्हिता, लृङ्–आर्हिष्यत्, लुङ्–आर्हीत्, आ०
लिङ्–अर्ह्यात्, सन–अर्जिहिषति । कर्म लट्–अर्ह्यते, लुङ्–आर्हि । णिच
के लिए देखो ।

लुङ–आन्दूदुलत्
आन्दोल्—१० उ०, आन्दोलने (गाना, क्षुब्ध करना),
–न, सन्–आन्दुदोलयिषति–ते ।
आप्—५ प०, व्याप्तौ–(व्याप्त होना, पाना), लट् प्र० पु० एक० आप्नोति,
० पु० एक० आप्नोषि, उ० पु० एक० आप्नोमि, (उ० पु० द्विव० आप्नुव,
० पु० बहु० आप्नुवन्ति), लङ–प्र० पु० एक० आप्नोत्, (उ० पु० एक०
ाप्नवम्, उ० पु० द्वि० आप्नुव, प्र० पु० बहु० आप्नुवन्) लोट्–प्र० पु० एक०
ाप्नोतु उ० पु० एक० आप्नवानि, म० पु० एक० आप्नुहि, प्र० पु० बहु०
ाप्नुवन्तु, लिट्–आप, लुट्–आप्ता, ऌट्–आप्स्यति, ऌङ–आप्स्यत्, लुङ–
ापन् । णिच्–लट्–आपयति–ते, लुङ–आपिपत्–त, क्त–आप्त,–क्त्वा–
प्राप्त्वा, तुम्–आप्तुम् ।
आप्—१० उ०, लम्भने (पाना), लुङ–आपिपत्–त ।
आस्—२ आ०, (बैठना), लट्–आस्ते, लिट्–आसाचक्रे–बभूव–आस,
लुट्–आसिता, ऌट्–आसिष्यते, ऌङ–आसिष्यत, लुङ–आसिष्ट, आ०
लिङ–आसिषीष्ट । कर्म०–लट्–आस्यते, णिच्–आसयति ।

इ

इ—१ प०, गतौ (जाना), लट्–अयति, लङ–आयत्, लिट्–इयाय,
लुट्–एता, ऌट्–एष्यति, ऌङ–ऐष्यत्, लुङ–ऐषीत्, आ० लिङ–इयात् ।
णिच् लट्–आययति–ते, लुङ–आयियित्–त, सन्–इयीषति, कर्म० लट्–
ईयते, लुङ–आयि ।
इ—२ प०, गतौ (जाना), लट्–एति, लिट्–इयाय, लुट्–एता,
ऌट्–एष्यति, ऌङ–ऐष्यत्, लुङ–अगात् । कर्म० लट्–ईयते, लुङ–
अगायि । णिच्–गमयति–ते, लुङ–अजीगमत्–त, प्रति के साथ प्रत्याययति–ते,
सन्–जिगमिषति, (प्रति के साथ प्रतीषिषति) ।
इ—२ आ०, (अधि+इ, पढना), लट्–अधीते, लिट्–अधिजगे,
लुट्–अध्येता, ऌट्–अध्येष्यते, ऌङ–अध्यगीष्यत–अध्यैष्यत, लुङ–अध्यगीष्ट
–अध्यैष्ट, आ० लिङ–अध्येषीष्ट । कर्म० लट्–अधीयते, लुङ–अध्यगायि–
अध्यायि (प्र० पु० द्वि०, अध्यगायिषाताम्–अध्यगीषाताम्–,अध्यायिषाताम्–
अध्यैषाताम्), लुट्–अध्यायिता, अध्येता, ऌट्–अध्यायिष्यते–अध्येष्यते,
ऌङ–अध्यगायिष्यत–अध्यगीष्यत, अध्यायिषत–अध्यैष्यत, आ० लिङ–
अध्यायिषीष्ट–अध्येषीष्ट । णिच्–लट्–अध्यापयति, लुङ–अध्यापिपत्–
अध्यजीगपत्, क्त–अधीत ।
इख्—१ प० गतौ (जाना, हिलना), लट्–एखति, लिट्–इयेख,
लट्–एखिता, लुङ–ऐखीत् ।
इङ्ग्—१ प०, (जाना, क्षुब्ध करना), लट्–इङ्गति, लिट्–
इङ्गाञ्चकार–बभूव–आस, लुट्–इङ्गिता, लुङ–ऐङ्गीत्, क्त–इङ्गित ।
इट्—१ प०, गतौ, (जाना), लट्–एटति, लिट्–इयेट, लुट्–एटिता,
लङ–ऐटीत् ।

इन्द्—१ प०, परमैश्वर्ये (शक्तिसपन्न होना), लट्–इन्दति, लङ्–ऐन्दत्, लिट्–इन्दाञ्चकार–म्बभूव–आस, लुट्–इन्दिता, लृट्–इन्दिष्यति, लृङ्–ऐन्दिष्यत्, लुङ्–ऐन्दीत्, आ० लिङ्–इन्द्यात्, क्त–इन्दित ।

इन्ध्—७ आ०, दीप्तौ (चमकना, जलाना), लट्–इन्धे, लिट्–इन्धाचक्रे–आस–म्बभूव (वेद मे ईधे), लुट्–इन्धिता, लृट्–इन्धिष्यते, लृङ्–ऐन्धिष्यत, लुङ्–ऐन्धिष्ट, सन्–इदिधिषते, आ० लिङ्–इधिषीष्ट, कर्म० लट्–इध्यते, णिच्–लट्–इन्धयति–ते, क्त–इद्ध ।

इष्—६ प०, इच्छायाम् (चाहना), लट्–इच्छति, लिट्–इयेष, लुट्–एष्टा या एषिता, लृट्–एषिष्यति, लृङ्–ऐषिष्यत्, लुङ्–ऐषीत्, सन्–एषिषिषति, आ० लिङ्–इष्यात् । कर्म० लट्–इष्यते, लुङ्–ऐषि । णिच्–लट्–एषयति–ते, लुङ्–ऐषिषत्–त, क्त्वा–इष्ट्वा या एषित्वा, क्त–इष्ट ।

इष्—४ प०, गतौ, (जाना), लट्–इष्यति, लुट्–एषिता, क्त–इषित, क्त्वा–एषित्वा ।

इष्—९ प०, आभीक्ष्ण्ये[१] (दुहराना) लट्–इष्णाति । लिट्–इयेष आदि इष् ६ प० के तुल्य ।

ई

ई—१ प०, गतौ (जाना), (२ प०, जाना, व्याप्त होना), लट्–अयति–एति, लिट्–अयाचकार–बभूव–आस, लुट्–एता, लृट्–एष्यति, लृङ्–ऐष्यत्, लुङ्–ऐषीत् ।

ई—४ आ०, (जाना), लट्–ईयते, लिट्–अयाचक्रे, लृट्–एष्यते, लुङ्–ऐष्ट, सन्–इयीषते । णिच्–लट्–आययति–ते ।

ईक्ष्—१ आ०, दर्शने (देखना), लट्–ईक्षते, लिट्–ईक्षाचक्रे–बभूव–आस, लुट्–ईक्षिता, लृट्–ईक्षिष्यते, लृङ–ऐक्षिष्यत, आ० लिङ्–ईक्षिषीष्ट, लुङ्–ऐक्षिष्ट । णिच्–लट्–ईक्षयति–ते, लुङ्–ऐचिक्षत्–त, सन्–ईचिक्षिषते, कर्म० लट्–ईक्ष्यते, लुङ्–ऐक्षि, क्त–ईक्षित, क्त्वा–ईक्षित्वा, तुम्–ईक्षितुम् ।

ईज्—१ आ०, गतिकुत्सनयो (जाना, निन्दा करना), लट्–ईजते, लिट्–ईजाचक्रे, लुङ्–ऐजिष्ट, क्त–ईजित ।

ईड्—२ आ० स्तुतौ (स्तुति करना), लट्–ईट्टे, लिट्–ईडाचक्रे–बभूव आस, लुट्–ईडिता, लृट्–ईडिष्यते, लृङ–ऐडिष्यत, लुङ्–ऐडिष्ट, आ० लिङ्–ईडिषीष्ट । कर्म० लट्–ईड्यते, णिच्–लट्–ईडयति–ते, लुङ्–ऐडिडत्–त, क्त्वा–ईडित्वा, तुम्–ईडितुम्, क्त–ईडित ।

ईर्—१ प०, गतौ (जाना, हिलाना), लट्–ईरति, क्त–ईरित ।

१. कुछ के मतानुसार इस धातु के लुट् और क्त्वा प्रत्यय मे एषिता और एषित्वा ही रूप होते हैं ।

ईर्—१२ आ०, गतौ (जाना आदि), लट्–ईर्ते, लिट्–ईराञ्चक्रे, लुट्–ईरिता, लृट्–ईरिष्यते, लृङ–ऐरिष्यत, लुङ–ऐरिष्ट, आ० लिङ–ईरिषीष्ट । णिच् लट्–ईरयति–ते, लुङ–ऐरिरत्–त, क्त–ईरित ।

ईर्—१० उ०, क्षेपे (हिलाना, फेंकना), लट्–ईरयति–ते, लिट्–ईरयाचकार–चक्रे, लुङ–ऐरिरत्–त, लुट्–ईरयिता, लृट्–ईरयिष्यति–ते, लृङ–ऐरयिष्यत्–त, आ० लिङ–ईर्यात्–ईरयिषीष्ट । क्त–ईरित ।

ईर्ष्य्—१ प०, ईर्ष्यायाम् (ईर्ष्या करना), लट्–ईर्ष्यति, लिट्–ईर्ष्याचकार–आस–बभूव, लुट्–ईर्ष्यिता, लृट्–ईर्ष्यिष्यति, लृङ–ऐर्ष्यिष्यत्, लुङ–ऐर्ष्यीत् । सन्–ईर्ष्यिषिषति या ईर्ष्यियिषति, णिच् लट्–ईर्ष्ययति–ते, लुङ–ऐर्ष्यियत्–त ।

ईश्—२ आ०, ऐश्वर्ये (स्वामी होना, शासन करना, रखना), लट्–ईष्टे, लिट्–ईशाचक्रे–आस–बभूव, लुट्–ईशिता, लृट्–ईशिष्यते, लृङ–ऐशिष्यत, आ० लिङ–ईशिषीष्ट, लुङ–ऐशिष्ट, कर्म०–लट्–ईश्यते, लुङ–ऐशि, णिच् लट्–ईशयति–ते, लुङ–ऐशिशत्–त, क्त–ईशित ।

ईष्—१ आ०, गतिहिंसादर्शनेषु (जाना, हिंसा करना, देखना), लट्–ईषते, लिट्–ईषाचक्रे, लुट्–ईषिता, लृट्–ईषिष्यते, लृङ–ऐषिष्यत, लुङ–ऐषिष्ट, आ० लिङ–ईषिषीष्ट, क्त–ईषित ।

ईह्—१ आ०, चेष्टायाम् (चेष्टा करना, चाहना), लट्–ईहते, लिट्–ईहाचक्रे–आस–बभूव, लुट्–ईहिता, लृट्–ईहिष्यते, लृङ–ऐहिष्यत, लुङ–ऐहिष्ट, सन्–ईजिहिषते, आ० लिङ–ईहिषीष्ट, णिच् लट्–ईहयति–ते, लुङ–ऐजिहत्–त ।

उ

उक्ष्—१ प०, सेचने (सींचना, गीला करना), लट्–उक्षति, लिट्–उक्षाचकार–बभूव–आस, लुट्–उक्षिता, लृट्–उक्षिष्यति, लृङ–औक्षिष्यत्, लुङ–औक्षीत्, आ० लिङ–उक्ष्यात्, सन्–उचिक्षिषति । क्त–उक्षित ।

उख्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–ओखति, लङ–औखत्, लिट्–उवोख, लुट्–ओखिता, लृट्–ओखिष्यति, लृङ–औखिष्यत्, लुङ–औखीत्, सन्–ओचिखिषति, आ० लिङ–उख्यात्, कर्म० लट्–उख्यते, णिच् लट्–ओखयति–ते, क्त–ओखित–उखित । (इसको उख् भी लिखते हैं । लट्–उखति आदि) ।

उच्—४ प०, समवाये (इकट्ठा करना), लट्–उच्यति, लिट्–उवोच, लुट्–ओचिता, लृट्–ओचिष्यति लृङ–औचिष्यत्, आ० लिङ–उच्यात्, लुङ–औचत् । क्त–उचित–उग्न ।

उच्छ्—१ प०, विवासे (पूरा करना, छोड़ना), लट्–उच्छति, लिट्–उच्छामास, लृट्–उच्छिष्यति, लुङ–औच्छीत्, सन्–उचिच्छिषति, णिच् लट्–उच्छयति–ते, लुङ–औचिच्छत्–त, क्त–उच्छित ।

उज्झ—६ प०, उत्सर्गे (छोडना, बचना), लट्–उज्झति, लिट्–उज्झाचकार-ग्रास-बभूव, लुट्–उज्झिता, लृट्–उज्झिष्यति, लृङ्–औज्झिष्यत्, लुङ्–औज्झीत् । णिच् लट्–उज्झयति-ते, लुङ्–औजिज्झत्, सन्–उजिज्झिषति क्त–उज्झित ।

उञ्छ—१, ६ प०, (कण चुनना), लट्–उञ्छति, लिट्–उञ्छाञ्चकार, लृट्–उञ्छिष्यति, लुङ्–औञ्छीत्, सन्–उञ्चिच्छिषति । णिच् लट्–उञ्छयति, लुङ्–औञ्चिच्छन्-त, क्त–उञ्छित ।

उठ—१ प०, उपघाते–(चोट मारना, नष्ट करना), लट्–ओठति, लिट्–उवोठ, लुट्–ओठिता, लृट्–ओठिष्यति, लुङ्–औठीत् । क्त–उठित ।

उन्द्—७ प०, क्लेदने (गीला करना), लट्–उनत्ति, लिट्–उन्दाचकार, लुट्–उन्दिता, लृट्–उन्दिष्यति, लृङ्–औन्दिष्यत्, लुङ्–औन्दीत्, सन्–उन्दिदिषति । क्त–उत्त या उन्न ।

उभ्—या उम्भ्–६ प०, पूरणे (पूरा करना, भरना), लट्–उभति या उम्भति, लिट्–उवोभ-उम्भाचकार, लृट्–ओभिष्यति-उभिष्यति, लुङ्–औभीत्-औम्भीत् । क्त–उभित-उम्भित ।

उर्द्—१ आ०, माने क्रीडायां च (तोलना, खेलना), लट्–उर्दते, लिट्–ऊर्दाचक्रे-बभूव-ग्रास, लुट्–ऊर्दिता, लृट्–ऊर्दिष्यते, लृङ्–और्दिष्यत, लुङ्–और्दिष्ट, सन्–ऊर्दिदिषते । णिच् लट्–ऊर्दयति-ते, लुङ्–और्दिदत्-त ।

उर्व्—१ प०, *हिंसायाम्* (*हिंसा करना*), लट्–ऊर्वति, *लिट्–ऊर्वाचकार*, लुट्–ऊर्विता, लृङ्–और्विष्यत्, लुङ्–और्वीत् ।

उष्—१ प०, दाहे (जलाना, दण्ड देना), लट्–ओषति, लिट्–उवोष, ओषाचकार-ग्रास-बभूव, लुट्–ओषिता, लृट्–ओषिष्यति, लृङ्–औषिष्यत्, आ० लिङ्–उष्यात्, लुङ्–औषीत्, क्त–ओषित, उषित ।

उह्—१ प०, अर्दने (चोट पहुँचाना, हिंसा करना, नष्ट करना), लट्–ओहति, लिट्–उवोह, लृट्–ओहिष्यति, लुङ्–औहत् औहीत् । क्त–उहत, ओहित ।

ऊ

ऊन्—१० उ०, परिहाणे (कम करना), लट्–ऊनयति-ते, लृट्–ऊनयिष्यति, लुङ्–औननत्-त, सन्–ऊनिनयिषति-ते ।

ऊय्—१ आ०, तन्तुसताने (बुनना, सीना), लट्–ऊयते, लिट्–ऊयाचक्रे-बभूव ग्रास, लुट्–ऊयिता, लृट्–ऊयिष्यते, लृङ्–औयिष्यत, लुङ्–औयिष्ट, आ० लिङ्–ऊयिषीष्ट । णिच् लट्–ऊययति-ते, क्त–ऊत ।

ऊर्ज्—१, १० उ०, बलप्राणनयो (शक्तियुक्त बनाना, जीवित रहना), लट्–ऊर्जति, ऊर्जयति-ते, लुङ्–और्जीत्, औजिजत्-त ।

ऊर्णु—२ उ०, आच्छादने (ढकना, छिपाना), लट्–ऊर्णोति-ऊर्णौति-ऊर्णुते, लिट्–ऊर्णुनाव नव-ऊर्णुनुवे, लुट्–ऊर्णुविता-ऊर्णविता, लृट्–ऊर्णविष्यति-ते-ऊर्णुविष्यति-ते, लुङ्–और्णवीत्-और्णावीत्-और्णुवीत्-और्णविष्ट-और्णुविष्ट, आ०

लिङ्–ऊर्णूयात्–ऊर्णविषीष्ट–ऊर्णुविषीष्ट । णिच् लट्–ऊर्णावयति–ते, लुङ्–और्णुनवत्–त, कर्म० लट्–ऊर्णूयते, लिट्–ऊर्णुनुवे, लुङ्–और्णावि, लुट्–ऊर्णविता, ऊर्णाविता ऊर्णुविता, आ० लिङ्–ऊर्णविषीष्ट, ऊर्णाविषीष्ट–ऊर्णुविषीष्ट, लङ्–और्णाविष्यत–और्णविष्यत या और्णुविष्यत ।

ऊर्द्—१ आ० (खेलना, क्रीडा करना), लट्–ऊर्दते । (शेष उर्द के तुल्य)

ऊष्—१ प० रुजायाम् (रुग्ण होना, खिन्न चित्त होना), लट्–ऊषति, लिट्–ऊषाचकार, लुङ्–औषीत् । क्त–ऊषित ।

ऊह्—१ आ० (कभी पर० भी) वितर्के (तर्क- वितर्क करना, अनुमान करना, अभिप्राय निकालना), लट्–ऊहते, लङ्–औहत, लिट्–ऊहाचक्रे, लुट्–ऊहिता, लृट्–ऊहिष्यते, लङ्–औहिष्यत, लुङ्–औहिष्ट आ० लिङ्–ऊहिषीष्ट, कर्म०– लट्–ऊह्यते, लुङ्–औहि, णिच् लट्–ऊहयति–ते, लुङ्–औजिहत्–त, क्त–ऊहित, क्त्वा–ऊहित्वा ।

ऋ

ऋ—१ प०, गतिप्रापणयो (जाना, पाना), लट्–ऋच्छति, लुङ्–आर्षीत् ।

ऋ—३ प० (जाना), लट्–ईर्यति, लुङ्–आरत्, (सम् के साथ समारत) ।

ऋ १ प० और ऋ ३ प० दोनो धातुओ का लिट् मे आर बनता है, और लुट् मे अर्ता बनता है । लृट्–अरिष्यति, लृङ्–आरिष्यत्, आ० लिङ्–अर्यात् । कर्म० लट्–अर्यते, लुङ्–आरि, लिट्–आरे, लुट्–आरिता अर्ता लृट्–आरिष्यते–अरिष्यते, आ० लिङ्–आरिषीष्ट, ऋषीष्ट । णिच् लट्–अर्पयति–ते, लुङ्–आर्पयत्–त, सन्–अरिरिषति, क्त–ऋत (ऋण भी रूप होता है), क्त्वा–ऋत्वा ।

ऋच्—६ प०, स्तुतौ (प्रशसा करना, चमकना), लट्–ऋचति, लिट्–आनर्च, लुङ्–आर्चीत् । क्त–ऋचित ।

ऋच्छ्—६ प०, गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु–(कठोर होना, इन्द्रिया की शक्ति नष्ट होना, जाना), लट्–ऋच्छति, लङ्–आर्च्छत्, लिट्–आनर्च्छ, लुट्–ऋच्छिता, लृट्–ऋच्छिष्यति, लुङ्–आर्च्छीत् । णिच् लट्–ऋच्छयति–ते लुङ्–आर्चिच्छत्–त, सन्–ऋचिच्छिषति, क्त–ऋच्छित ।

ऋज्—१ आ०, गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु (जाना, प्राप्त करना), लट्–अर्जते, लिट्–आनृजे, लुट्–अर्जिता, लृट्–अर्जिष्यते, लृङ्–आर्जिष्यत, लुङ्–आर्जिष्ट, सन्–अर्जिजिषते, आ० लिङ्–अर्जिषीष्ट । कर्म०–लट्–ऋज्यते, लुङ्–आर्जि, णिच्–लट्–अर्जयति–ते, लुङ्–आर्जिजत्–त, क्त–ऋजित ।

ऋण्—८ उ०, (जाना), लट्–ऋणोति ऋणुते–अर्णोति–अर्णुते, लिट्–आनर्ण–आनृणे, लुट्–अर्णिता, लुङ्–आर्णीत् आर्णिष्ट–आर्त, सन्–अर्णिणिषति ।

ऋत्[1]—जुगुप्सायां कृपायां च (निन्दा करना, दया करना), लट्–ऋतीयते, लिट्–ऋतीयाचक्रे–आनर्त, लुट्–ऋतीयिता अर्तिता, लृट्–ऋतीयिष्यते–

१. यह धातु धातुपाठ मे नहीं है, परन्तु ऋतेरीयङ् सूत्र में दी गई है ।

आर्तिष्यति, आ० लिङ्–ऋतीयिषीष्ट-ऋत्यात्, लुङ्–आर्तीयिष्ट या आर्तीत् ।

ऋध्—४ प०, वृद्धौ (समृद्ध होना, प्रसन्न होना), लट्–ऋध्यति, लिट्–आनर्ध, लुट्–अर्धिता, लुङ्–आर्धीत्, सन्–अर्दिधिषति–ईर्त्सति । क्त–ऋद्ध, क्त्वा–अर्धित्वा–ऋद्ध्वा ।

ऋध्—५ प० (समृद्ध होना, बढना), लट्–ऋध्नोति, लुङ्–आर्धीत् । (शेष रूप ऋध् ४ प० के तुल्य) ।

ऋफ् या ऋम्फ्—६ प०, (हिंसा करना), लट्–ऋफति, ऋम्फति, लिट्–आनर्फ, ऋम्फाञ्चकार ।

ऋष्—६ प०, (पहुँचना, हानि पहुँचाना), लट्–ऋषति, लिट्–आनर्ष, लुट्–अर्षिता, लृट्–अर्षिष्यति, लुङ्–आर्षीत्, क्त–ऋष्ट ।

ॠ

ॠ—९ प०, (जाना, हिलना), लट्–ऋणाति, लिट्–अराञ्चकार, लुट्–अरिता-अरीता, लृट्–अरिष्यति-अरीष्यति, लुङ्–आरीत्, आ० लिङ्–ईर्यात्। क्त–ईर्ण ।

ए

एज्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), प०, कम्पने (काँपना), लट्–एजते-ति, लङ्–ऐजत-त्, लिट्–एजाञ्चक्रे-चकार, लुट्–एजिता, लृट्–एजिष्यते-ति, लङ्–ऐजिष्यत-त्, लुङ्–ऐजिष्ट-ऐजीत् । क्त–एजित ।

एठ्—१ आ०, बाधायाम् (क्रुद्ध होना, रोकना), लट्–एठते । क्त–एठित ।

एध्[1]—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, समृद्ध होना), लट्–एधते, लिट्–एधाञ्चक्रे-बभूव-आस, लुट्–एधिता, लृट्–एधिष्यते, लृङ्–ऐधिष्यत, लुङ्–ऐधिष्ट, सन्–एदिधिषते, आ० लिङ्–एधिषीष्ट । कर्म० लट्–एध्यते, लुङ्–ऐधि, णिच्–एधयति-ते, लुङ्–ऐदिधत् । क्त–एधित ।

एष्—१ आ० (जाना), लट्–एषते । क्त–एषित ।

ओ

ओख्[1]—१ प०, शोषणालमर्थयो (सूखना, सजाना, पर्याप्त होना), लट्–ओखति, लिट्–ओखाञ्चकार-बभूव-आस, लुट्–ओखिता, लृट्–ओखिष्यति, लृङ्–औखिष्यत्, लुङ्–औखीत्, सन्–ओचिखिषति । णिच् लट्–ओखयति-ते, लुङ्–औचिखत्-त ।

ओलंड्—१० उ०, उत्क्षेपे (ऊपर फेंकना), लट्–ओलण्डयति । स–ओलण्डित ।

---

१. उप के साथ काँपने रूप होगा ।

२. प्र+ओलण्डि=प्रोलति ।

क

कक्—१ आ०, लौल्ये (चाहना, गर्वयुक्त होना), लट्-ककते, लिट्-चकके, लुट्-ककिता, लृट्-ककिष्यते, लङ्-अककिष्यत, लुङ्-अककिष्ट ।

कख्—१ प०, हसने (हँसना), लट्-कखति, लिट्-चकाख, लुट्-कखिता, लृट्-कखिष्यति, लङ्-अकखिष्यत्, लुङ्-अकखीत्-अकाखीत् ।

कक्—१ आ०, (जाना), लट्-ककते, लिट्-चकके, लुट्-ककिता, लुङ्-अककिष्ट, क्त-ककित ।

कच्—१ प०, रवे (शब्द करना), लट्-कचति, लिट्-चकाच, लुट्-कचिता, लृट्-कचिष्यति, लङ्-अकाचिष्यत्, लुङ्-अकचीत्-अकाचीत् ।

कच्—१ आ०, बन्धने, (बाँधना), लट्-कचते, लिट्-चकचे, लुट्-कचिता, लृट्-कचिष्यते, लङ्-अकचिष्यत, लुङ्-अकचिष्ट ।

कट् या कण्ट्—१ प० (जाना), लट्-कंटति-कटति, लिट्-चकाट-चकट, लुट्-कंटिता-कटिता, लृट्-कटिष्यति-कंटिष्यति, लङ्-अकटिष्यत् अकटिष्यत्, लुङ्-अकटीत्-अकटीत् ।

कठ्—१ प०, कृच्छ्रजीवने (कठिनाई से जीवन बिताना), लट्-कठति, लृट्-कठिष्यति, लुङ्-अकठीत-अकाठीत् ।

कण्ठ्—१ प०, १० उ०, आध्याने (खेदपूर्वक स्मरण करना), लट्-कंठति, कठयति-ते, लिट्-चकठ, कठयाचकार-चक्रे, लुट्-कठिता-कठयिता, लृट्-कठिष्यति-कठयिष्यति-ते, लङ्-अकठिष्यत् अकठयिष्यत्-त, लुङ्-अकठीत्, अचकठत्-त ।

कण्ठ्—१ आ०, शोके (चिन्तित होना), (उत्+), लट्-कठते, लिट्-चकठे, लुट्-कठिता, लुङ्-अकठिष्ट ।

कण्ड्—१ उ०, मदे (गर्वयुक्त होना), लट्-कडति-ते, लिट्-चकडे, लुट्-कडिता, लृट्-कडिष्यति-ते, लङ्-अकडिष्यत्-त, लुङ्-अकडीत्, अकडिष्ट ।

कण्ड्—१० उ०, भेदने (भेदन वितुषीकरणम्) रक्षणे च, (छिलका हटाना, रक्षा करना), लट्-कडयति-ते, लिट्-कडयाचकार-चक्रे, लुट्-कडयिता, लृट्-कडयिष्यति-ते, लुङ्-अचकण्डत्-त ।

कण्—१ प०, आर्तस्वरे (दुःख मे चिल्लाना), लट्-कणति, लिट्-चकाण, लुट्-कणिता, लृट्-कणिष्यति, लङ्-अकणिष्यत्, लुङ्-अकणीत्, अकाणीत् ।

कण्—१० उ०, निमीलने (आँख बन्द करना), लट्-काणयति-ते, लुङ्-अचीकणत्-त, अचकाणत्-त ।

कण्डूय्—१ उ०, गात्रविघर्षणे, (खुजाना, रगडना), लट्-कडूयति-ते, लुङ्-अकण्डूयीत्-अकण्डूयिष्ट, आ० लिङ्-कण्डूय्यात्-कण्डूयिषीष्ट ।

कत्थ्—१ आ०, श्लाघायाम्, (प्रशंसा करना, अपनी बडाई करना), लट्-कत्थते, लिट्-चकत्थे, लुट्-कत्थिता, लृट्-कत्थिष्यते, लङ्-अकत्थिष्यत, आ० लिङ्-कत्थिषीष्ट, लुङ्-अकत्थिष्ट । सन्-चिकत्थिषते, क्त-कत्थित ।

कथ्—१० उ०, वाक्यप्रबन्धे (कहना), लट्–कथयति–ते, लिट्–कथयाचकार, लुट्–कथयिता, लृट्–कथयिष्यति–ते, लृङ्–अकथयिष्यत्–त, लुङ्–अचकथत्–त, सन्–चिकथयिषति–ते, आ० लिङ्–कथ्यात् या कथयिषीष्ट, कर्म० लट्–कथ्यते ।

कद्—१ आ०, वैकलव्ये (दुःखित होना), लट्–कदते, लिट्–चकदे, लुट्–कदिता, लुङ्–अकदिष्ट, आ० लिङ्–कदिषीष्ट ।

कन्—१ प०, दीप्तिकान्तिगतिषु (चमकना आदि), लट्–कनति, लिट्–चकान, लुट्–कनिता, लुङ्–अकनीत् ।

कनय्—(नामधातु) लट्–कनयति ।

कम्—१ आ०, कान्तौ (चाहना), लट्–कामयते, लिट्–चकमे या कामयाचक्रे, लुट्–कामयिता या कमिता, लृट्–कामयिष्यते या कमिष्यते, लृङ्–अकामयिष्यत या अकमिष्यत, आ० लिङ्–कामयिषीष्ट या कमिषीष्ट, लुङ्–अचीकमत या अचकमत, कर्म०–लट्–काम्यते या कम्यते, लुङ्–अकामि । णिच्–लट्–कामयति–ते, क्त–कान्त, क्त्वा– कमित्वा, कान्त्वा, कामयित्वा ।

कम्प्—१ आ०, चलने (काँपना, हिलना), लट्–कपते, लिट्–चकपे, लुट्–कपिता, लृट्–कपिष्यते, लृङ्–अकपिष्यत, आ० लिङ्–कपिषीष्ट, लुङ्–अकपिष्ट, कर्म०–लट्–कप्यते । णिच्–लट्–कपयति–ते, लुङ्–अचकपत्–त, सन्–चिकम्पिषते ।

कम्ब्—१ प०, (जाना), लट्–कम्बति, लिट्–चकब, लुट्–कम्बिता, लुङ्–अकम्बीत् ।

कर्ण्—१० उ०, भेदने (छेद करना), लट्–कर्णयति–ते, लिट्–कर्णयाचकार–चक्रे, लुट्–कर्णयिता, लृट्–कर्णयिष्यति–ते, लृङ्–अकर्णयिष्यत्–त, लुङ्–अचकर्णत्–त ।

कर्त्—१० उ०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्–कर्तयति–ते, लुङ्–अचकर्तत्–त ।

कल्—१ आ०, शब्दसंख्यानयो (शब्द करना, गिनना), लट्–कलते, लिट्–चकले, लुट्–कलिता, लृट्–कलिष्यते, लृङ्–अकलिष्यत, आ० लिङ्–कलिषीष्ट, लुङ्–अकलिष्ट, क्त–कलित ।

कल्—१० उ०, गतौ सङ्ख्याने च (जाना, गिनना), लट्–कलयति–ते, लिट्–कलयाचकार–चक्रे, लुट्–कलयिता, लृट्–कलयिष्यति–ते, लृङ्–अकलयिष्यत्–त, लुङ्–अचकलत्–त, सन्–चिकलयिषति–ते, क्त–कलित् ।

कल्—१० उ०, क्षेपे (फेंकना), लट्–कालयति–ते, लिट्–कालयाचकार, लृट्–कालयिष्यति–ते, लुङ्–अचीकलत्–त । सन्–चिकालयिषति–ते, कर्म०–लट्–काल्यते, लुङ्–अकालि, क्त–कालित ।

कव्—१ आ०, स्तुतौ वर्णने च (प्रशंसा करना), लट्–कवते, लिट्–चकवे,
लुट्–कविता, लृट्–कविष्यते, लृङ–अकविष्यत, लुङ–अकविष्ट । णिच्–लट्–
कावयति–ते ।

कश्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–कशति, लुङ–अकशीत्–अकाशीत् ।
कश्—२ आ०, गतिशासनयो (जाना, दण्ड देना), लट्–कष्टे, लिट्–
चकशे, लुट्–कशिता, लुङ–अकशिष्ट ।
कष्—१ प०, घर्षणे (घिसना, परीक्षा करना), लट्–कषति, लिट्–
चकाष, लुट्–कषिता, लृट्–कषिष्यति, लृङ–अकषिष्यत्, लुङ–अकषीत्–अका-
षीत्, सन्–चिकषिषति, क्त–कषित (कष्ट, दुःखद) ।
कस्—१ प० (जाना), लट्–कसति, लिट्–चकास, लुट्–कसिता, लृट्–
कसिष्यति, लृङ–अकसिष्यत्, लुङ–अकासीत्–अकसीत्, सन्–चिकसिषति,
णिच्–लट्–कासयति–ते, लुङ–अचीकसत्–त ।

कस्—२ आ० गतिनाशनयो (जाना, कष्ट करना), लट्–कस्ते, लुङ–
अकसिष्ट । (इसको कस् भी लिखते हैं ।)
काक्ष्—१ प०, कांक्षायाम् (चाहना), लट्–कांक्षति, लिट्–चकांक्ष, लुट्
–कांक्षिता, लृट्–कांक्षिष्यति, लृङ–अकांक्षिष्यत्, लुङ–अकांक्षीत्, आ० लिङ–
कांक्ष्यात् । सन्–चिकांक्षिषति, क्त–कांक्षित ।
काश्—१, ४ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–काशते या काश्यते, लिट्
–चकाशे, लुट्–काशिता, लृट्–काशिष्यते, लृङ–अकाशिष्यत, आ० लिङ–
काशिषीष्ट, सन्–चिकाशिषते, लुङ–अकाशिष्ट, णिच्–लट्–काशयति–ते,
कर्म०–लट्–काश्यते, क्त–काशित, क्त्वा–काशित्वा, ल्यप्–प्रकाश्य ।
कास्—१ आ०, शब्दकुत्सायाम् (खांसना), लट्–कासते, लिट्–कासाचक्रे,
लुट्–कासिता, लृट्–कासिष्यते, लृङ–अकासिष्यत, लुङ–अकासिष्ट, सन्–चिका-
सिषते, आ० लिङ–कासिषीष्ट, णिच्–कासयति–ते, लुङ–अचकासत्–त ।
कित्—१ प०, संशये रोगापनये च (सन्देह करना, चिकित्सा करना),
लट्–चिकित्सति, लिट्–चिकित्साचकार, लुट्–चिकित्सिता, लृट्–चिकित्सिष्यति,
लृङ–अचिकित्सिष्यत्, लुङ–अचिकित्सीत्, कर्म०–लट्–चिकित्स्यते, णिच्–
लट्–चिकित्सयति–ते, सन्–चिकित्सिषति । (आत्मने० भी है) लट्–चिकित्सते,
लुङ–अचिकित्सिष्ट ।

कित—१ प०, इच्छायाम् (चाहना, जीवित रहना), लट्–केतति,
लिट्–चिकेत, लुङ–अकेतीत् ।
कित्—१० प०, निवासे (रहना), लट्–केतयति, लृट्–केतयिष्यति,
लुङ–अचीकितत् ।
किल्—१ प०, श्वेतक्रीडनयो (सफेद होना, खेलना), लट्–किलति, लिट्–
चिकेल, लुट्–केलिता, लृट्–केलिष्यति, लृङ–अकेलिष्यत्, लुङ–अकेलीत् ।

कोल्—१ प०, बन्धने (बांधना), लट्–कीलति, लिट्–चिकीर्ल, लुट्–कीलिता, लुङ–अकोलीत्, सन्–चिकीलिषति ।

कु—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–कवते, लिट्–चुकुवे, लुट्–कोता, लृट्–कोष्यते, लृङ–अकोष्यत्, लुङ–अकोष्ट ।

कु—२ प०, (शब्द करना), लट्–कौति, लिट्–चुकाव, (म० पु० एक० चुकविथ, चुकोथ), लुट्–कोता, लृट्–कोष्यति, लृङ–अकोष्यत्, लुङ–अकौषीत्, यङ–चोकूयते ।

कु—६ आ०, शब्दे (आर्तस्वरे) (शब्द करना, रोना), लट्–कुवते, लिट्–चुकुवे, लुट्–कुता, लुङ–अकुत, यङ–कोकूयते ।

कुच्—१ प०, शब्दे तारे सपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भनविलेखनेषु च (जोर से शब्द करना, सपर्क मे आना, कुटिल होना, आदि), लट्–कोचति, लिट्–चुकोच, लुट्–कोचिता, लृट्–कोचिष्यति, लृङ–अकोचिष्यत्, लुङ–अकोचीत् ।

कुच्—६ प०, सकोचने (कुटादि) (सकुचित होना), लट्–कुचति, लिट्–चुकोच (म० पु० एक० चुकुचिथ), लुङ–अकुचीत् । सन्–चिकुचिषति ।

कुट्—६ प०, (मोडना, टेढा करना), लट्–कुटति, लिट्–चुकोट (म० पु० एक० चुकुटिथ), लुट्–कुटिता, लृट्–कुटिष्यति, लृङ–अकुटिष्यत्, लुङ–अकुटीत् । णिच्–लट्–कोटयति–ते, क्त–कुटित ।

कुण्—६ प०, शब्दोपकरणयो (शब्द करना, सहायता करना), लट्–कुणति, लिट्–चुकोण, लुट्–कोणिता, लुङ–अकोणीत्, क्त–कुणित ।

कुण्ठ्—१ प०, प्रतिघाते (कुण्ठित होना), लट्–कुण्ठति, लुङ–अकुण्ठीत् ।

कुण्ठ्—१० उ०, वेष्टने (घेरना), लट्–कुण्ठयति–ते, लुङ–अचुकुण्ठत्–त ।

कुत्स्—१० आ०, अवक्षेपणे (निन्दा करना), लट्–कुत्सयते, लिट्–कुत्सयाचक्रे, लृट्–कुत्सयिष्यते, लुङ–अचुकुत्सत, आ० लिङ–कुत्सयिषीष्ट ।

कुन्थ्—१ प०, हिंसाक्लेशनयो (मारना, आदि), लट्–कुथति, लिट्–चुकुथ, लुट्– कुथिता, लृट्–कुथिष्यति, लृङ–अकुथिष्यत्, लुङ–अकुथीत्, सन्–चुकुथिषति । णिच्–लट्–कुथयति–ते, कर्म–लट्–कुन्थ्यते, क्त्वा–कुन्थित्वा, क्त–कुन्थित ।

कुप्—४ प०, क्रोधे (क्रोध करना), लट्–कुप्यति, लिट्–चुकोप, लुट्–कोपिता, लृट्–कोपिष्यति, लृङ–अकोपिष्यत्, लुङ–अकुपत् । सन्–चुकोपिषति, चुकुपिषति, आ० लिङ–कुप्यात्, क्त–कुपित, तुम्–कोपितुम् ।

कुप्—१० उ०, भाषाय द्युतौ च (बोलना, चमकना), लट्–कोपयति–ते, लुङ–अचूकुपत्–त ।

कुर्द्—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्–कूर्दते, लिट्–चुकूर्दे, लुङ–अकूर्दिष्ट ।

कुश्—१० उ०, १ प०, दीप्तौ (चमकना), लट्–कुशयति–ते, कुशति, लिट्–कुशयाचकार–चक्रे–चुकुश, लुट्–कुशयिता–कुशिता, लुङ्–अचुकुशत्–त–अकुशीत् ।

कुष्—९ प०, निष्कर्षे (फाडना, निकालना), लट्–कुष्णाति, लिट्–चुकोष,[1] लुट्–कोषिता, लृट्–कोषिष्यति, लुङ्–अकोषीत्, सन्–चिकोषिषति, चिकुषिषति, कर्म०–लट्–कुष्यते, लुङ्–अकोषि । णिच्–लट्–कोषयति–ते, लुङ्–अचूकुषत्–त ।

कुस्—४ प०, संश्लेषणे (आलिंगन करना), लट्–कुस्यति, लिट्–चुकोस, लुट्–कोसिता, लृट्–कोसिष्यति, लृङ्–अकोसिष्यत्, आ० लिङ्–कुस्यात्, लुङ्–अकुसत् । सन्–चिकुसिषति, चिकोसिषति, क्त्वा–कुसित्वा, कोसित्वा ।

कुस्—१० उ०, १ प०, भाषायाम् (कहना), लट्–कुसयति–ते, कुसति, लुङ्–अचुकुसत्–त, अकुसीत् ।

कुह्—१० आ०, विस्मापने (आश्चर्ययुक्त करना), लट्–कुहयते, लिट्–कुहयांचक्रे, लुङ्–अचुकुहत, सन्–चुकुहयिषते ।

कू—६ आ, शब्दे (शब्द करना, दुःख में चिल्लाना), लट्–कुवते, लिट्–चुकुवे, लुट्–कुविता, लृट्–कुविष्यते, लृङ्–अकुविष्यत, लुङ्–अकुविष्ट ।

कू—९ उ० शब्दे (शब्द करना), लट्–कुनाति–नीते, लृट्–कविष्यति–ते, लुङ्–अकावीत्, अकविष्ट ।

कूज्—१ प०, अव्यक्ते शब्दे (कूजना, अस्पष्ट शब्द करना), लट्–कूजति, लिट्–चुकूज, लुट्–कूजिता, लृट्–कूजिष्यति, लृङ्–अकूजिष्यत्, लुङ्–अकूजीत्, आ० लिङ्–कूज्यात्, कर्म–लट्–कूज्यते, लुङ्–अकूजि । णिच्–लट्–कूजयति–ते, क्त्वा–कूजित्वा, क्त–कूजित ।

कूड्—६ प०, दार्ढ्ये (दृढ होना), लट्–कूडति, लिट्–चुकूड, लुट्–कूडिता, लुङ्–अकूडीत् ।

कूण्—१० उ०, आभाषणे (कहना, बातचीत करना), लट–कूणयति–ते, क्त–कूणित ।

कूण्—१० आ०, संकोचने (बन्द करना), लट्–कूणयते, लुङ्–अचुकूणत, क्त–कूणित ।

कूर्द्—१ उ०, क्रीडायाम् (कूदना, उछलना), लट्–कूर्दति–ते, क्त–कूर्दित ।

कूल्—१ प०, आवरणे (ढकना), लट्–कूलति, लिट्–चुकूल, लुट्–कूलिता, लृट्–कूलिष्यति, लृङ्–अकूलिष्यत्, लुङ्–अकूलीत् ।

कृ—५ उ०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–कृणोति–कृणुते ।

---

१. निर्+कुष् सेट् है । लिट् म० पु० एक० निश्चुकोषिथ, निश्चुकोष्ठ, लुङ्–निरकोषीत्, निरकुक्षत् । सन् में निश्चुकुक्षति भी । तुम् में निष्कोष्टुम् भी ।

कृ—८ उ०, करणे (करना), लट्–करोति–कुरुते, लिट्–चकार–चक्रे, लुट्–कर्ता, लृट्–करिष्यति–ते, लृङ–अकरिष्यत्–त, लुङ–अकार्षीत्–अकृत, आ० लिङ–क्रियात्–कृषीष्ट । कर्म०- लट्–क्रियते, लुङ–अकारि (प्र० पु० द्वि० अकारिषाताम्–अकृषाताम्), लुट्–कारिता–कर्ता, लृट्–कारिष्यते–करिष्यते, आ० लिङ–कारिषीष्ट–कृषीष्ट, लृङ–अकारिष्यत–अकरिष्यत । णिच्–लट्–कारयति–ते, लुङ–अचीकरत्–त, सन्–चिकीर्षति–ते, क्त–कृत, क्त्वा–कृत्वा, ल्यप्–अनुकृत्य, तुम्–कर्तुम् ।

कृत्—६ प०, छेदने (काटना), लट्–कृन्तति, लिट्–चकर्त, लुट्–कर्तिता, लृट्–कर्तिष्यति, लृङ–अकर्तिष्यत्, लुङ–अकर्तीत, आ० लिङ–कृत्यात्, सन्–चिकर्तिषति–चिकृत्सति । णिच्–लट्–कर्तयति–ते, लुङ–अचकर्तत्–त और अचीकृतत्–त । कर्म० लट्–कृत्यते, लुङ–अकर्ति, क्त–कृत्त, क्त्वा–कर्तित्वा, ल्यप्–अनुकृत्य, तुम्–कर्तितुम् ।

कृत्—७ प०, वेष्टने (घेरना), लट्–कृणत्ति ।

कृश्—४ प०, तनूकरणे (पतला होना), लट्–कृश्यति, लिट्–चकर्श, लृट्–कर्शिष्यति, लृङ–अकर्शिष्यत्, लुङ–अकृशत् ।

कृष्—१ प०, विलेखने (खीचना, हल चलाना), लट्–कर्षति, लिट्–चकर्ष, लुट्–कर्ष्टा या क्रष्टा, लृट्–कर्क्ष्यति या क्रक्ष्यति, लृङ–अकर्क्ष्यत् या अक्रक्ष्यत्, लुङ–अकार्क्षीत् या अक्राक्षीत् या अकृक्षत् । सन्–चिकृक्षति, णिच्–लट्–कर्षयति–ते, लुङ–अचीकृषत्–त या अचकर्षत्–त, क्त–कृष्ट, क्त्वा–कृष्ट्वा, कर्म०–लट्–कृष्यते, लुङ–अकर्षि ।

कृष्—६ उ०, विलेखने (हल चलाना, जोतना), लट्–कृषति–ते, लिट्–चकर्ष–चकृषे, लुट्–कर्ष्टा–क्रष्टा, लृट्–कर्क्ष्यति–ते, क्रक्ष्यति–ते, लृङ–अकर्क्ष्यत्–त, अक्रक्ष्यत्–त, लुङ–अकार्क्षीत्–अक्राक्षीत्–अकृक्षत्, अकृष्ट–अकृक्षत, आ० लिङ–कृष्यात्–कृक्षीष्ट, सन्–चिकृक्षति–ते, क्त–कृष्ट ।

कॄ—६ प०, विक्षपे (फैलाना, बखेरना), लट्—किरति, लिट्–चकार, लुट्–करिता या करीता, लृट्–करिष्यति–करीष्यति, लृङ–अकरिष्यत्–अकरीष्यत्, लुङ–अकारीत्, आ० लिङ–कीर्यात् । सन्–चिकरिषति, कर्म०—लट्–कीर्यते, णिच्–लट्–कारयति–ते, क्त–कीर्ण ।

कॄ—९ उ०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट–कृणाति या कृणीते, लिट–चकार–चक्रे, लुङ–अकारीत्–अकरित्–रीत्–अकीर्ष्ट, सन्–चिकरिषति–ते, चिकरीषति–ते, चिकीर्षति–ते ।

कृत्—१० उ०, संशब्दने (नाम लेना, यश फैलाना), लट्–कीर्तयति–ते, लिट्–कीर्तयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–कीर्तयिता, लृट्–कीर्तयिष्यति–ते, लृङ–अकीर्तयिष्यत्–त, आ० लिङ–कीर्त्यात्–कीर्तयिषीष्ट, लुङ–अचीकृतत्–त, कर्म०–लट्–कीर्त्यते, क्त–कीर्तित ।

क्लृप्—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना), लट्–कल्पते, लिट्–चक्लृपे,
लुट्–कल्पिता–कल्प्ता, लृट्–कल्पिष्यते, कल्प्स्यते–ति, लुङ्–अक्लृपत्–
अकल्पिष्ट–अक्लृप्त, आ० लिङ्–कल्पिषीष्ट–क्लृप्सीष्ट । सन्–चिकल्पिषते–
चिक्लृप्सति, क्त्वा–कल्पित्वा–क्लृप्त्वा, तुम्–कल्पितुम्–क्लृप्तुम् ।
केप्—१ आ०, कम्पने (हिलाना), लट्–केपते, लिट्–चिकेपे, लुङ्–अके-
पिष्ट ।
केल्—१ प०, चलने (हिलाना), लट्–केलति, लुङ्–अकेलीत्, क्त–
केलित ।
कै—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–कायति, लिट्–चकौ, लुट्–काता,
लृट्–कास्यति, लृङ्–अकास्यत्, लुङ्–अकासीत्, आ० लिङ्–कायात् । सन्–
चिकासति, कर्म०–कायते ।
क्नथ्—१ प०, १० उ०, हिंसायाम् (मारना), लट्–क्नथति–क्नथयति–
ते, लुङ्–अक्नथीत्, अक्नाथीत्, अचिक्नथत्–त ।
क्नू—९ उ०, (शब्द करना), लट्–क्नूनाति–क्नूनीते, लुङ्–अक्नावीत्–
अक्नविष्ट ।
क्नूय्—१ आ०, शब्दे उन्दे च (धडाके का शब्द करना), लट्–क्नूयते,
लिट्–चुक्नूये, लुट्–क्नूयिता, लृट्–क्नूयिष्यते, लुङ्–अक्नूयिष्ट । णिच्–लट्–
क्नोपयति–ते, लुङ्–अचुक्नुपत्–त, सन्–चुक्नूयिषते ।
क्रन्द्—१ प०, रोदने आह्वाने च (रोना, पुकारना), लट्–क्रन्दति, लिट्
–चक्रन्द, लुट्–क्रन्दिता, लृट्–क्रन्दिष्यति, लृङ्–अक्रन्दिष्यत्, आ० लिङ्–क्रन्द्यात्,
लुङ्–अक्रन्दीत् । सन्–चिक्रन्दिषति । णिच्–लट्–क्रन्दयति–ते, लुङ्–अचक्र-
न्दत्–त, कर्म०–क्रन्द्यते, क्त–क्रन्दित,(आत्मने० भी है, लट्–क्रन्दते, लुङ्–अक्र-
न्दिष्ट) ।
क्रन्द्—१० उ०, क्रन्द सातत्ये (निरन्तर रोना), (प्राय आ के साथ), लट्–
क्रन्दयति–ते, लिट्–क्रन्दयामास–बभूव, लुट्–क्रन्दयिता, लृट्–क्रन्दयिष्यति–ते,
लृङ्–अक्रन्दयिष्यत्–त, लुङ्–अचक्रन्दत्–त, क्त–क्रन्दित ।
क्रम्—१ उ० और ४ प०, पादविक्षेपे (चलना, पैर रखना), लट्–क्रामति,
क्राम्यति–क्रमते, लिट्–चक्राम–चक्रमे, लुट्–क्रमिता, क्रन्ता, लृट्–क्रमिष्यति,
क्रंस्यते, लृङ्–अक्रमिष्यत्–अक्रंस्यत, आ० लिङ्–क्रम्यात्, क्रंसीष्ट, लुङ्–अक्रमीत्
–अक्रंस्त । सन्–चिक्रमिषति, चिक्रंसते । णिच्–क्रमयति–ते, लुङ्–अचिक्रमत्–
त, कर्म०–लट्–क्रम्यते, क्त–क्रान्त, क्त्वा–क्रमित्वा, क्रान्त्वा, क्रन्त्वा, ल्यप्–
आक्रम्य ।
क्री—९ उ०, द्रव्यविनिमये (खरीदना), लट्–क्रीणाति या क्रीणीते,
लिट्–चिक्राय या चिक्रिये, लुट्–क्रेता, लृट्–क्रेष्यति–ते, आ० लिङ्–क्रीयात्,
क्रेषीष्ट, लुङ्–अक्रैषीत्, अक्रेष्ट । सन्–चिक्रीषति–ते, कर्म० लट्–क्रीयते, लुङ्–
अक्रायि, क्त–क्रीत, णिच्–क्रापयति–ते, लुङ्–अचिक्रपत् ।

क्रीड्—१ प०, क्रीडायाम् (खेलना, आनन्दित होना), लट्–क्रीडति, लिट्–चिक्रीड, लुट्–क्रीडिता, लृट्–क्रीडिष्यति, लृङ–अक्रीडिष्यत्, आ० लिङ–क्रीडयात्, लुङ–अक्रीडीत्, सन्–चिक्रीडिषति, कर्म०–क्रीडयते, लुङ–अक्रीडि, णिच्–क्रीडयति–ते, लुङ–अचिक्रीडत्, क्त–क्रीडित, क्त्वा–क्रीडित्वा, तुम्–क्रीडितुम् ।

क्रुध्—४ प० क्रोधे (क्रुद्ध होना), लट्–क्रुध्यति, लिट्–चुक्रोध, लुट्–क्रोद्धा, लृट्–क्रोत्स्यति, लृङ–अक्रोत्स्यत्, आ० लिङ–क्रुध्यात् लुङ–अक्रुधत्, क्त–क्रुद्ध, कर्म०–लट्–क्रुध्यते, लुङ–अक्रोधि, णिच्–क्रोधयति–ते, लुङ–अचुक्रुधत्–त, सन्–चुक्रुत्सति ।

क्रुश्—१ प०, आह्वाने रोदने च (पुकारना, रोना), लट्–क्रोशति, लिट्–चुक्रोश, लुट्–क्रोष्टा, लृट्–क्रोक्ष्यति, लृङ–अक्रोक्ष्यत्, आ० लिङ–क्रुश्यात्, लुङ–अक्रुक्षत्, कर्म० लट्–क्रुश्यते, लुङ–अक्रोशि, णिच्–क्रोशयति–ते, लुङ–अचुक्रुशत्–त, सन्–चुक्रुक्षति, क्त–क्रुष्ट, क्त्वा–क्रुष्ट्वा, तुम्–क्रोष्टुम् ।

क्लेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–क्लेवते, लिट्–चिक्लेवे, लुट्–क्लेविता, लुङ–अक्लेविष्ट ।

क्लन्द्—१ प०, रोदने (रोना, बुलाना), लट्–क्लन्दति, लिट्–चक्लन्द, लुट्–क्लन्दिता, लुङ–अक्लन्दीत् ।

क्लद्—४ आ०, वैकल्ये (व्याकुल होना), लट्–क्लद्यते, लिट्–चक्लदे, लुट्–क्लदिता, लुङ–अक्लदिष्ट ।

क्लप्—१० उ०, अव्यक्तशब्दे (कानाफूसी करना), लट्–क्लपयति–ते, लिट्–क्लपयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्लपयिता, लुङ–अचिक्लपत् ।

क्लम्—१ और ४ प०, ग्लानौ (थका हुआ होना), लट्–क्लामति–क्लाम्यति, लिट्–चक्लाम, लुट्–क्लमिता, लृट्–क्लमिष्यति, आ० लिङ–क्लम्यात्, लुङ–अक्लमत्, सन्–चिक्लमिषति, क्त–क्लान्त, क्त्वा–क्लमित्वा–क्लान्त्वा ।

क्लिद्—४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना), लट्–क्लिद्यति, लिट्–चिक्लेद, लुट्–क्लेदिता–क्लेत्ता, लृट्–क्लेदिष्यति–क्लेत्स्यति, लृङ–अक्लेदिष्यत्–अक्लेत्स्यत्, आ० लिङ–क्लिद्यात्, लुङ–अक्लिदत्, क्त–क्लिन्न, कर्म०–क्लिद्यते, लुङ–अक्लेदि ।

क्लिन्द्—(क्लिदि), १ उ०, परिदेवने (रोना), लट्–क्लिन्दति–ते, लिट्–चिक्लिन्द–न्दे, लुट्–क्लिन्दिता, लृट्–क्लिन्दिष्यति–ते, लृङ–अक्लिन्दिष्यत्–त, लुङ–अक्लिन्दीत्–अक्लिन्दिष्ट, कर्म०–क्लिन्द्यते ।

क्लिश्—४ आ०, उपतापे (कभी पर० भी है, दुःखित होना, खिन्न होना), लट्–क्लिश्यते, लिट्–चिक्लिशे, लुट्–क्लेशिता, लृट्–क्लेशिष्यते, लृङ–अक्लेशिष्यत्, आ० लिङ–क्लेशिषीष्ट, लुङ–अक्लेशिष्ट, सन्–चिक्लिशिषते, चिक्लेशिषति । कर्म०–लट्–क्लिश्यते, लुङ–अक्लेशि, क्त–क्लिष्ट या क्लिशित ।

क्लिश्—९ प०, विबाधने (दुःखित करना), लट्–क्लिश्नाति, लिट्–चिक्लेश, लुट्–क्लेष्टा, लृट्–क्लेशिष्यति–क्लेक्ष्यति, लङ्–अक्लेशिष्यत्–अक्लेक्ष्यत्, आ० लिङ्–क्लिश्यात्, लुङ्–अक्लेशीत्–अक्लिक्षत्, सन्–चिक्लिशिषति–चिक्लेशिषति–चिक्लिक्षति, क्त–क्लिशित या क्लिष्ट, क्त्वा–क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा ।

क्लीब—१ आ०, अधाष्टर्ये (दब्बू होना), लट्–क्लीबते, लिट्–चिक्लीबे, लुट्–क्लीबिता, लुङ्–अक्लीबिष्ट ।

क्लेश्—१ आ०, अव्यक्तायां वाचि (अस्पष्ट बोलना), लट्–क्लेशते, लिट्–चिक्लेशे, लुट्–क्लेशिता, लृट्–क्लेशिष्यते; सन्–चिक्लेशिषते ।

क्वण्—१ प०, अव्यक्त शब्दे (गूंजना, अस्पष्ट शब्द करना), लट्–क्वणति, लिट्–चक्वाण, लुट्–क्वणिता, लृट्–क्वणिष्यति, लङ्–अक्वणिष्यत्, आ० लिङ्–क्वण्यात्, लुङ्–अक्वणीत्–अक्वाणीत् । क्त–क्वणित, णिच्–क्वणयति–ते, लुङ्–अचिक्वणत्–त, सन्–चिक्वणिषति ।

क्वथ्—१ प०, निष्पाके (पकाना, उबालना), लट्–क्वथति, लिट्–चक्वाथ, लुट्–क्वथिता, लृट्–क्वथिष्यति, लङ्–अक्वथिष्यत्, आ० लिङ्–क्वथ्यात्, लुङ्–अक्वथीत्, सन्–चिक्वथिषति ।

क्षज्—१ आ०, वधे (मारना), लट्–क्षजते, लृट्–क्षजिष्यते, लुङ्–अक्षजिष्ट ।

क्षंज्—१ आ०, गतौ दाने च (चलना, देना), लट्–क्षजते, लिट्–चक्षजे, लुट्–क्षजिता, लुङ्–अक्षजिष्ट । (यह १ प०, १० उ० भी है) लट्–क्षजयति–ते –क्षजति, लुट्–क्षजयिता–क्षजिता, लुङ्–अचक्षजत्–त–अक्षजीत् ।

क्षण्—८ उ०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्–क्षणोति–क्षणुते, लिट्–चक्षाण, चक्षणे, लोट्–म० प्र० एक० क्षणु, क्षणुष्व, लुट्–क्षणिता, लृट्–क्षणिष्यति–ते, लङ्–अक्षणिष्यत्–त, लुङ्–अक्षणीत्–अक्षणिष्ट–अक्षत । णिच्–लट्–क्षाणयति–ते, सन्–चिक्षणिषति, क्त्वा, क्षणित्वा, क्षत्वा ।

क्षप्—१० उ०, क्षेपे प्रेरणे च (भेजना, प्रेरणा देना), लट्–क्षपयति–ते, लिट्–क्षपयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्षपयिता, लृट्–क्षपयिष्यति–ते, लङ्–अक्षपयिष्यत्–त, लुङ्–अचक्षपत्–त, सन्–चिक्षपयिषति–ते ।

क्षम्—१ आ०, सहने (सहना, क्षमा करना), लट्–क्षमते, लिट्–चक्षमे, लुट्–क्षमिता, क्षन्ता, लृट्–क्षमिष्यते, क्षंस्यते, लङ्–अक्षमिष्यत्–त, आ० लिङ्–क्षमिषीष्ट, क्षंसीष्ट, लुङ्–अक्षमिष्ट, अक्षंस्त, सन्–चिक्षमिषते, चिक्षंसते । णिच्–क्षमयति–ते, लुङ्–अचिक्षमत्–त, क्त–क्षान्त–क्षमित, क्त्वा–क्षमित्वा–क्षान्त्वा, कर्म०–क्षम्यते, लुङ्–अक्षमि ।

क्षम्—४ प०, सहने (सहना), लट्–क्षाम्यति, लिट्–चक्षाम, लुट्–क्षमिता या क्षन्ता, लृट्–क्षमिष्यति–क्षंस्यति, लङ्–अक्षमिष्यत्–अक्षंस्यत्, आ० लिङ्–क्षम्यात्, लुङ्–अक्षमत् । सन्–चिक्षमिषति–चिक्षंसति ।

क्षर्—१ प०, संचलने (बहना), लट्–क्षरति, लिट्–चक्षार, लुट्–क्षरिता, लृट्–क्षरिष्यति, लृङ–अक्षरिष्यत्, लुङ–अक्षारीत्, सन्–चिक्षरिषति। क्त–क्षरित।

क्षल्—१० उ०, शौचकर्मणि (धोना, साफ करना), लट्–क्षालयति–ते, लिट्–क्षालयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्षालयिता, लृट्–क्षालयिष्यति–ते, लृङ–अक्षालयिष्यत्–त, आ० लिङ–क्षाल्यात्–क्षालयिषीष्ट, लुङ–अचिक्षलत्–त, सन्–चिक्षालयिषति–ते। क्त–क्षालित। (यह १ प० भी होती है,) लृट्–क्षलिष्यति, लुङ–अक्षालीत्। सन्–चिक्षलिषति।

क्षि—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्–क्षयति।
क्षि—५ प०, हिंसायाम् (नष्ट करना), लट्–क्षिणोति।
क्षि–६ प०, निवासगत्योः (रहना, जाना), लट्–क्षियति।
लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्, सन्–चिक्षीषति। णिच्–क्षाययति–ते, लुङ–अचिक्षयत्–त, क्त–क्षित–क्षीण,क्त्वा–क्षित्वा, कर्म–क्षीयते।

क्षिण्—८ उ० हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्–क्षिणोति–क्षेणोति, क्षिणुते, लिट्–चिक्षेण, चिक्षिणे, लुट्–क्षेणिता, लृट्–क्षेणिष्यति–ते, लृङ–अक्षेणिष्यत्–त, लुङ–अक्षेणीत् या अक्षेणिष्ट या अक्षित, सन्–चिक्षिणिषति–ते, चिक्षेणिषति–ते, क्त्वा–क्षिणित्वा–क्षेणित्वा–क्षित्वा।

क्षिप्—४ प०, प्रेरणे (फेंकना), लट्–क्षिप्यति, लिट्–चिक्षेप, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति, लृङ–अक्षेप्स्यत्, लुङ–अक्षैप्सीत्, आ० लिङ–क्षिप्यात्। कर्म०–क्षिप्यते, लुङ–अक्षेपि, णिच्–लट्–क्षेपयति–ते, लुङ–अचिक्षिपत्–त, सन्–चिक्षिप्सति, क्त–क्षिप्त।

क्षिप्–६ उ० (फेंकना), लट्–क्षिपति–ते, लिट्–चिक्षेप–चिक्षिपे, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति–ते, लुङ–अक्षैप्सीत्–अक्षिप्त, सन्–चिक्षिप्सति–ते।

क्षिव्–१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षेवति, क्षीव्यति, लिट्–चिक्षेव, लृट्–क्षेविष्यति, लुङ–अक्षेवीत्, सन्–चिक्षेविषति, चुक्ष्यूषति।

क्षी–४ आ०, हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्–क्षीयते, लिट्–चिक्षिये, लुङ–अक्षेष्ट। णिच्–क्षाययति–ते, अचिक्षयत्–त।

क्षी–६ प०, (हिंसा करना), लट्–क्षीणाति, लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्।

क्षीज्–१ प०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट बोलना), लट्–क्षीजति, लिट्–चिक्षीज, लुट्–क्षीजिता, लृट्–क्षीजिष्यति, लृङ–अक्षीजिष्यत्, आ० लिङ–क्षीज्यात्, लुङ–[illegible], सन्–चिक्षीजिषति। णिच्–क्षीजयति–ते, लुङ–अचिक्षिजत्–त।

क्षीब्—१ आ०, मदे (मत्त होना), लट्–क्षीबते, लिट्–चिक्षीबे, लुट्–क्षीबिता, लृट्–क्षीबिष्यते, लुङ्–अक्षीबिष्ट। णिच्–लट्–क्षीबयति–ते, लुङ्–अचिक्षीबत्–त, सन्–चिक्षीबिषते।

क्षीव्—१ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षीवति, लिट्–चिक्षीव, लुट्–क्षीविता, लुङ्–अक्षीवीत्।

क्षु—२ प० शब्दे (खाँसना), लट्–क्षौति, लिट्–चुक्षाव, लुट्–क्षविता, लृट्–क्षविष्यति, लृङ्–अक्षविष्यत्, लुङ्–अक्षावीत्, आ० लिङ्–क्षूयात्, सन्–चुक्षूषति, कर्म० लट्–क्षूयते, लुङ्–अक्षावि। णिच्–क्षावयति–ते, लुङ्–अचुक्षवत्–त, तुम्–क्षवितुम्।

क्षुद्—७ उ०, सपेषणे (पीसना, चूर करना), लट्–क्षुणत्ति–क्षुन्ते, लिट्–चुक्षोद–चुक्षुदे, लुट्–क्षोत्ता, लृट्–क्षोत्स्यति–ते, आ० लिङ्–क्षुद्यात्–क्षुत्सीष्ट, लुङ्–अक्षुदत्–अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त, सन्–चुक्षुत्सति–ते। क्त–क्षुण्ण।

क्षुध्—४ प०, बुभुक्षायाम् (भूखा होना), लट्–क्षुध्यति, लिट्–चुक्षोध, लुट्–क्षोद्धा, लृट्–क्षोत्स्यति, लृङ्–अक्षोत्स्यत्, आ० लिङ्–क्षुध्यात्, लुङ्–अक्षुधत्। णिच्–लट्–क्षोधयति–ते, लुङ्–अचुक्षुधत्–त, क्त–क्षुधित, क्त्वा–क्षुधित्वा, क्षोधित्वा, कर्म० लट्–क्षुध्यते, लुङ्–अक्षोधि।

क्षुभ्—१ आ०, सचलने (क्षुब्ध होना, तंग करना), लट्–क्षोभते, लिट्–चुक्षुभे, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यते, लृङ्–अक्षोभिष्यत, आ० लिङ्–क्षोभिषीष्ट, लुङ्–अक्षुभत्–अक्षोभिष्ट, सन्–चुक्षुभिषते, चुक्षोभिषते। णिच्–लट्–क्षोभयति–ते, लुङ्–अचुक्षुभत्–त, कर्म०–क्षुभ्यते, लुङ्–अक्षोभि, क्त–क्षुभित–क्षोभित।

क्षुभ्—४ और ९ प० (काँपना), लट्–क्षुभ्यति और क्षुभ्नाति, लिट्–चुक्षोभ, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यति, लृङ्–अक्षोभिष्यत्, आ० लिङ्–क्षुभ्यात्, लुङ्–अक्षुभत् (४), अक्षोभीत् (९), क्त–क्षुब्ध, क्षुभित।

क्षुर्—६ प०, विलेखने (चिह्न लगाना, खुरचना), लट्–क्षुरति, लिट्–चुक्षोर, लुट्–क्षोरिता, लुङ्–अक्षोरीत्।

क्षै—१ प०, क्षये (नष्ट करना), लट्–क्षायति, लिट्–चक्षौ, लुट्–क्षाता, लृट्–क्षास्यति, लृङ्–अक्षास्यत्, लुङ्–अक्षासीत्। णिच्–लट्–क्षपयति–ते, लुङ्–अचिक्षपत्–त। सन्–चिक्षासति, क्त–क्षाम।

क्ष्णु—२ प०, तेजने (तेज करना), लट्–क्ष्णौति, लिट्–चुक्ष्णाव, लुट्–क्ष्णविता, लृट्–क्ष्णविष्यति, लृङ्–अक्ष्णविष्यत्, लुङ्–अक्ष्णावीत्, सन्–चुक्ष्णूषति, क्त–क्ष्णुत।

क्ष्माय्—१ आ०, विधूनने (हिलाना), लट्–क्ष्मायते, लिट्–चक्ष्माये, लुट्–क्ष्मायिता, लृट्–क्ष्मायिष्यते, लुङ्–अक्ष्मायिष्ट, णिच्–क्ष्मापयति–ते, लुङ्–अचक्ष्मपत्–त, सन्–चिक्ष्मायिष्यते, क्त–क्ष्मायित।

क्षर्—१ प०, सञ्चलने (बहना), लट्–क्षरति, लिट्–चक्षार, लुट्–क्षरिता, लृट्–क्षरिष्यति, लृङ–अक्षरिष्यत्, लुङ–अक्षारीत्, सन्–चिक्षरिषति। क्त–क्षरित।

क्षल्—१० उ०, शौचकर्मणि (धोना, साफ करना), लट्–क्षालयति–ते, लिट्–क्षालयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–क्षालयिता, लृट्–क्षालयिष्यति–ते, लृङ–अक्षालयिष्यत्–त, आ० लिङ–क्षाल्यात्–क्षालयिषीष्ट, लुङ–अचिक्षलत्–त, सन्–चिक्षालयिषति–ते। क्त–क्षालित। (यह १ प० भी होती है,) लट्–क्षलिष्यति, लुङ–अक्षालीत्। सन्–चिक्षलिषति।

क्षि—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्–क्षयति।
क्षि—५ प०, हिंसायाम् (नष्ट करना), लट्–क्षिणोति।
क्षि–६ प०, निवासगत्यो. (रहना, जाना), लट्–क्षियति।
लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्, सन्–चिक्षीषति। णिच्–क्षाययति–ते, लुङ–अचिक्षयत्–त, क्त–क्षित–क्षीण, क्त्वा–क्षित्वा, कर्म–क्षीयते।

क्षिण्—८ उ० हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्–क्षिणोति–क्षेणोति, क्षिणुते, लिट्–चिक्षेण, चिक्षिणे, लुट्–क्षेणिता, लृट्–क्षेणिष्यति–ते, लृङ–अक्षेणिष्यत्–त, लुङ–अक्षेणीत् या अक्षेणिष्ट या अक्षित, सन्–चिक्षिणिषति–ते, चिक्षेणिषति–ते, क्त्वा–क्षिणित्वा–क्षेणित्वा–क्षित्वा।

क्षिप्—४ प०, प्रेरणे (फेंकना), लट्–क्षिप्यति, लिट्–चिक्षेप, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति, लृङ–अक्षेप्स्यत्, लुङ–अक्षैप्सीत्, आ० लिङ–क्षिप्यात्। कर्म०–क्षिप्यते, लुङ–अक्षेपि, णिच्–लट्–क्षेपयति–ते, लुङ–अचिक्षिपत्–त, सन्–चिक्षिप्सति, क्त–क्षिप्त।

क्षिप्–६ उ० (फेंकना), लट्–क्षिपति–ते, लिट्–चिक्षेप–चिक्षिपे, लुट्–क्षेप्ता, लृट्–क्षेप्स्यति–ते, लुङ–अक्षैप्सीत्–अक्षिप्त, सन्–चिक्षिप्सति–ते।

क्षिव्–१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षेवति, क्षीव्यति, लिट्–चिक्षेव, लुट्–क्षेविष्यति, लुङ–अक्षेवीत्, सन्–चिक्षेविषति, चुक्ष्यूषति।

क्षी–४ आ०, हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्–क्षीयते, लिट्–चिक्षिये, लुङ–अक्षेष्ट। णिच्–क्षाययति–ते, अचिक्षयत्–त।

क्षी–६ प०, (हिंसा करना), लट्–क्षीणाति, लिट्–चिक्षाय, लुट्–क्षेता, लृट्–क्षेष्यति, लृङ–अक्षेष्यत्, आ० लिङ–क्षीयात्, लुङ–अक्षैषीत्।

क्षीज्–१ प०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट बोलना), लट्–क्षीजति, लिट्–चिक्षीज, लुट्–क्षीजिता, लृट्–क्षीजिष्यति, लृङ–अक्षीजिष्यत्, आ० लिङ–क्षीज्यात्, लुङ–[illegible], सन्–चिक्षीजिषति। णिच्–क्षीजयति–ते, लुङ–अचिक्षिजत्–त।

क्षीव्—१ आ०, मदे (मत होना), लट्–क्षीवते, लिट्–चिक्षीवे, लुट्–क्षीविता, लृट्–क्षीविष्यते, लुङ–अक्षीविष्ट । णिच्–लट्–क्षीवयति–ते, लुङ–अचिक्षीवत्–त, सन्–चिक्षीविषते ।

क्षीव्—१ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षीवति, लिट्–चिक्षीव, लुट्–क्षीविता, लुङ–अक्षीवीत् ।

क्षु—२ प० शब्दे (खांसना), लट्–क्षौति, लिट्–चुक्षाव, लुट्–क्षविता, लृट्–क्षविष्यति, लृङ–अक्षविष्यत्, लुङ–अक्षावीत्, आ० लिङ–क्षूयात्, सन्–चुक्षूषति, कर्म० लट्–क्षूयते, लुङ–अक्षावि । णिच्–क्षावयति–ते, लुङ–अचुक्षवत्–त, तुम्–क्षवितुम् ।

क्षुद्—७ उ०, सपेषणे (पीसना, चूर करना), लट्–क्षुणत्ति–क्षुन्ते, लिट्–चुक्षोद–चुक्षुदे, लुट्–क्षोत्ता, लृट्–क्षोत्स्यति–ते, आ० लिङ–क्षुद्यात्–क्षुत्सीष्ट, लुङ–अक्षुदत्–अक्षौत्सीत्, अक्षुत्त, सन्–चुक्षुत्सति–ते । क्त–क्षुण्ण ।

क्षुध्—४ प०, बुभुक्षायाम् (भूखा होना), लट्–क्षुध्यति, लिट्–चुक्षोध, लुट्–क्षोद्धा, लृट्–क्षोत्स्यति, लृङ–अक्षोत्स्यत्, आ० लिङ–क्षुध्यात्, लुङ–अक्षुधत् । णिच्–लट्–क्षोधयति–ते, लुङ–अचुक्षुधत्–त, क्त–क्षुधित, क्त्वा–क्षुधित्वा, क्षोधित्वा, कर्म० लट्–क्षुध्यते, लुङ–अक्षोधि ।

क्षुभ्—१ आ०, सचलने (क्षुब्ध होना, तंग करना), लट्–क्षोभते, लिट्–चुक्षुभे, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यते, लृङ–अक्षोभिष्यत, आ० लिङ–क्षोभिषीष्ट, लुङ–अक्षुभत्–अक्षोभिष्ट, सन्–चुक्षुभिषते, चुक्षोभिषते । णिच्–लट्–क्षोभयति-ते, लुङ–अचुक्षुभत्–त, कर्म०–क्षुभ्यते, लुङ–अक्षोभि, क्त–क्षुभित–क्षोभित ।

क्षुभ्—४ और ९ प० (कांपना), लट्–क्षुभ्यति और क्षुभ्नाति, लिट्–चुक्षोभ, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यति, लृङ–अक्षोभिष्यत्, आ० लिङ–क्षुभ्यात्, लुङ–अक्षुभत् (४), अक्षोभीत् (९), क्त–क्षुब्ध, क्षुभित ।

क्षुर्—६ प०, विलेखने (चिह्न लगाना, खुरचना), लट्–क्षुरति, लिट्–चुक्षोर, लुट्–क्षोरिता, लुङ–अक्षोरीत् ।

क्षै—१ प०, क्षये (नष्ट करना), लट्–क्षायति, लिट्–चक्षौ, लुट्–क्षाता, लृट्–क्षास्यति, लृङ–अक्षास्यत्, लुङ–अक्षासीत् । णिच्–लट्–क्षपयति-ते, लुङ–अचिक्षपत्–त । सन्–चिक्षासति, क्त–क्षाम ।

क्ष्णु—२ प०, तेजने (तेज करना), लट्–क्ष्णौति, लिट्–चुक्ष्णाव, लुट्–क्ष्णविता, लृट्–क्ष्णविष्यति, लृङ–अक्ष्णविष्यत्, लुङ–अक्ष्णावीत्, सन्–चुक्ष्णूषति, क्त–क्ष्णुत ।

क्ष्माय्—१ आ०, विधूनने (हिलाना), लट्–क्ष्मायते, लिट्–चक्ष्माये, लुट्–क्ष्मायिता, लृट्–क्ष्मायिष्यते, लुङ–अक्ष्मायिष्ट, णिच्–क्ष्मापयति-ते, लुङ–अचक्ष्मपत्–त, सन्–चिक्ष्मायिषते, क्त–क्ष्मायित ।

क्षर्—१ प०, संचलने (बहना), लट्—क्षरति, लिट्—चक्षार, लुट्—क्षरिता, लृट्—क्षरिष्यति, लृङ—अक्षरिष्यत्, लुङ—अक्षारीत्, सन्—चिक्षरिषति। क्त—क्षरित।

क्षल्—१० उ०, शौचकर्मणि (धोना, साफ करना), लट्—क्षालयति—ते, लिट्—क्षालयाञ्चकार—चक्रे, लुट्—क्षालयिता, लृट्—क्षालयिष्यति—ते, लृङ—अक्षालयिष्यत्—त, आ० लिङ—क्षाल्यात्—क्षालयिषीष्ट, लुङ—अचिक्षलत्—त, सन्—चिक्षालयिषति—ते। क्त—क्षालित। (यह १ प० भी होती है,) लृट्—क्षलिष्यति, लुङ—अक्षालीत्। सन्—चिक्षलिषति।

क्षि—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्—क्षयति।
क्षि—५ प०, हिंसायाम् (नष्ट करना), लट्—क्षिणोति।
क्षि—६ प०, निवासगत्योः (रहना, जाना), लट्—क्षियति।
लिट्—चिक्षाय, लुट्—क्षेता, लृट्—क्षेष्यति, लृङ—अक्षेष्यत्, आ० लिङ—क्षीयात्, लुङ—अक्षैषीत्, सन्—चिक्षीषति। णिच्—क्षाययति—ते, लुङ—अचिक्षयत्—त, क्त—क्षित—क्षीण, क्त्वा—क्षित्वा, कर्म—क्षीयते।

क्षिण्—८ उ० हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्—क्षिणोति—क्षेणोति, क्षिणुते, लिट्—चिक्षेण, चिक्षिणे, लुट्—क्षेणिता, लृट्—क्षेणिष्यति—ते, लृङ—अक्षेणिष्यत्—त, लुङ—अक्षेणीत् या अक्षेणिष्ट या अक्षित, सन्—चिक्षिणिषति—ते, चिक्षेणिषति—ते, क्त्वा—क्षिणित्वा—क्षेणित्वा—क्षित्वा।

क्षिप्—४ प०, प्रेरणे (फेंकना), लट्—क्षिप्यति, लिट्—चिक्षेप, लुट्—क्षेप्ता, लृट्—क्षेप्स्यति, लृङ—अक्षेप्स्यत्, लुङ—अक्षैप्सीत्, आ० लिङ—क्षिप्यात्। कर्म०—क्षिप्यते, लुङ—अक्षेपि, णिच्—लट्—क्षेपयति—ते, लुङ—अचिक्षिपत्—त, सन्—चिक्षिप्सति, क्त—क्षिप्त।

क्षिप्—६ उ० (फेंकना), लट्—क्षिपति-ते, लिट्—चिक्षेप-चिक्षिपे, लुट्—क्षेप्ता, लृट्—क्षेप्स्यति-ते, लुङ—अक्षैप्सीत्-अक्षिप्त, सन्—चिक्षिप्सति-ते।

क्षिव्—१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्—क्षेवति, क्षीव्यति, लिट्—चिक्षेव, लृट्—क्षेविष्यति, लुङ—अक्षेवीत्, सन्—चिक्षेविषति, चुक्ष्यूषति।

क्षी—४ आ०, हिंसायाम् (हिंसा करना), लट्—क्षीयते, लिट्—चिक्षिये, लुङ—अक्षेष्ट। णिच्—क्षाययति—ते, अचिक्षयत्—त।

क्षी—९ प०, (हिंसा करना), लट्—क्षीणाति, लिट्—चिक्षाय, लुट्—क्षेता, लृट्—क्षेष्यति, लृङ—अक्षेष्यत्, आ० लिङ—क्षीयात्, लुङ—अक्षैषीत्।

क्षीज्—१ प०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट बोलना), लट्—क्षीजति, लिट्—चिक्षीज, लुट्—क्षीजिता, लृट्—क्षीजिष्यति, लृङ—अक्षीजिष्यत्, आ० लिङ—क्षीज्यात्, लुङ—[illegible], सन्—चिक्षीजिषति। णिच्—क्षीजयति-ते, लुङ—अचिक्षिजत्-त।

क्षीव्—१ आ०, मदे (मत्त होना), लट्–क्षीवते, लिट्–चिक्षीवे, लुट्–क्षीविता, लृट्–क्षीविष्यते, लुङ्–अक्षीविष्ट । णिच्–लट्–क्षीवयति–ते, लुङ्–अचिक्षीवत्–त, सन्–चिक्षीविषते ।

क्षीव्—१ प०, निरसने (थूकना), लट्–क्षीवति, लिट्–चिक्षीव, लुट्–क्षीविता, लुङ्–अक्षीवीत् ।

क्षु—२ प० शब्दे (खाँसना), लट्–क्षौति, लिट्–चुक्षाव, लुट्–क्षविता, लृट्–क्षविष्यति, लृङ्–अक्षविष्यत्, लुङ्–अक्षावीत्, आ० लिङ्–क्षूयात्, सन्–चुक्षूषति, कर्म० लट्–क्षूयते, लुङ्–अक्षावि । णिच्–क्षावयति–ते, लुङ्–अचुक्षवत्–त, तुम्–क्षवितुम् ।

क्षुद्—७ उ०, सपेषणे (पीसना, चूर करना), लट्–क्षुणत्ति–क्षुन्ते, लिट्–चुक्षोद–चुक्षुदे, लुट्–क्षोत्ता, लृट्–क्षोत्स्यति–ते, आ० लिङ्–क्षुद्यात्–क्षुत्सीष्ट, लुङ्–अक्षुदत्–अक्षौत्सीत्, अक्षुत, सन्–चुक्षुत्सति–ते । क्त–क्षुण्ण ।

क्षुध्—४ प०, बुभुक्षायाम् (भूखा होना), लट्–क्षुध्यति, लिट्–चुक्षोध, लुट्–क्षोद्धा, लृट्–क्षोत्स्यति, लृङ्–अक्षोत्स्यत्, आ० लिङ्–क्षुध्यात्, लुङ्–अक्षुधत् । णिच्–लट्–क्षोधयति–ते, लुङ्–अचुक्षुधत्–त, क्त–क्षुधित, क्त्वा–क्षुधित्वा, क्षोधित्वा, कर्म० लट्–क्षुध्यते, लुङ्–अक्षोधि ।

क्षुभ्—१ आ०, सचलने (क्षुब्ध होना, तंग करना), लट्–क्षोभते, लिट्–चुक्षुभे, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यते, लृङ्–अक्षोभिष्यत, आ० लिङ्–क्षोभिषीष्ट, लुङ्–अक्षुभत्–अक्षोभिष्ट, सन्–चुक्षुभिषते, चुक्षोभिषते । णिच्–लट्–क्षोभयति–ते, लुङ्–अचुक्षुभत्–त, कर्म०–क्षुभ्यते, लुङ्–अक्षोभि, क्त–क्षुभित–क्षोभित ।

क्षुभ्—४ और ९ प० (काँपना), लट्–क्षुभ्यति और क्षुभ्नाति, लिट्–चुक्षोभ, लुट्–क्षोभिता, लृट्–क्षोभिष्यति, लृङ्–अक्षोभिष्यत्, आ० लिङ्–क्षुभ्यात्, लुङ्–अक्षुभत् (४), अक्षोभीत् (९), क्त–क्षुब्ध, क्षुभित ।

क्षुर्—६ प०, विलेखने (चिह्न लगाना, खुरचना), लट्–क्षुरति, लिट्–चुक्षोर, लुट्–क्षोरिता, लुङ्–अक्षोरीत् ।

क्षै—१ प०, क्षये (नष्ट करना), लट्–क्षायति, लिट्–चक्षौ, लुट्–क्षाता, लृट्–क्षास्यति, लृङ्–अक्षास्यत्, लुङ्–अक्षासीत् । णिच्–लट्–क्षपयति–ते, लुङ्–अचिक्षपत्–त । सन्–चिक्षासति, क्त–क्षाम ।

क्ष्णु—२ प०, तेजने (तेज करना), लट्–क्ष्णौति, लिट्–चुक्ष्णाव, लुट्–क्ष्णविता, लृट्–क्ष्णविष्यति, लृङ्–अक्ष्णविष्यत्, लुङ्–अक्ष्णावीत्, सन्–चुक्ष्णूषति, क्त–क्ष्णुत ।

क्ष्माय्—१ आ०, विधूनने (हिलाना), लट्–क्ष्मायते, लिट्–चक्ष्माये, लुट्–क्ष्मायिता, लृट्–क्ष्मायिष्यते, लुङ्–अक्ष्मायिष्ट, णिच्–क्ष्मापयति–ते, लुङ्–अचक्ष्मपत्–त, सन्–चिक्ष्मायिषते, क्त–क्ष्मायित ।

क्ष्विड्–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयो (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेडति ने, क्ष्विडयति, लिट्–चिक्ष्वेड, चिक्ष्विडे, लुट्–क्ष्वेडिता, लृट्–क्ष्वेडिष्यति–ने, लङ्–अक्ष्वेडिष्यत्–त, लुङ्–अक्ष्विडत्–अक्ष्वेडिष्ट, अक्ष्विडत्, क्त–क्ष्वेडित या क्ष्विट्ट।

क्ष्विद्–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयो (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेदति–ते-क्ष्विद्यति, लिट्–चिक्ष्वेद-चिक्ष्विदे, लुट्–क्ष्वेदिता, लृट्–क्ष्वेदिष्यति-ते, लङ्–अक्ष्वेदिष्यत्–त, लुङ्–(४ प०), अक्ष्विदत् १, अक्ष्विदत्, अक्ष्वेदिष्ट, सन्–चिक्ष्विदिषति-ते, चिक्ष्वेदिषति-ते। क्त–क्ष्विण्ण या क्ष्वेदित।

क्ष्वेल्–१ प०, चलने (काँपना), लट्–क्ष्वेलति, लिट्–चिक्ष्वेल, लुट्–क्ष्वेलिता, लुङ्–अक्ष्वेलीत्। णिच्–लट्–क्ष्वेलयति-ते, लुङ्–अचिक्ष्वेलत्–न, सन्–चिक्ष्वेलिषति।

ख

खक्ख्—१ प०, हसने (हँसना), लट्–खक्खति, लिट्–चखक्ख, लुट्–खक्खिता, लृट्–खक्खिष्यति, लुङ्–अखक्खीत्, आ० लिङ्–खक्ख्यात्।

खच्–९ प०, भूतप्रादुर्भावे (दुबारा उत्पन्न या प्रकट होना), लट्–खच्नाति, लिट्–चखाच, लुट्–खचिता, लृट्–खचिष्यति, लुङ्–अखचीत्–अखाचीत्, सन्–चिखचिषति।

खज्–१ प०, (घटादि) मन्थे (मथना), लट्–खजति, क्त–खजित।

खञ्ज्–१ प०, गतिवैकल्ये (लँगडा कर चलना), लट्–खञ्जति, लिट्–चखञ्ज, लुट्–खजिता, लृट्–खजिष्यति, लङ्–अखजिष्यत्, लुङ्–अखजीत्, आ० लिङ्–खज्यात्। क्त–खजित।

खट्–१ प०, काङ्क्षायाम् (चाहना, खोजना), लट्–खटति, लिट्–चखाट, लुट्–खटिता, लृट्–खटिष्यति, लङ्–अखटिष्यत्, लुङ्–अखटीत्–अखाटीत्।

खट्ट्—१० उ०, संवरणे (ढकना), लट्–खट्टयति–ते, लिट्–खट्टयाञ्चकार–चक्रे, लुङ्–अचखट्टत्–त।

खण्ड्—१ आ०, भेदने (तोडना), लट्–खडते। क्त–खडित।

खण्ड्—१० उ० (तोडना), लट्–खडयति–ते, लङ्–अचखण्डत्–त, सन्–चिखडयिषति–ते।

खद्–१–प०, स्थैर्यहिंसाभक्षणेषु (स्थिर होना, हिंसा करना, खाना), लट्–खदति, लिट्–चखाद, लुट्–खदिता, लृट्–खदिष्यति, लङ्–अखदिष्यत्, लुङ्–अखदीत्–अखादीत्, आ० लिङ्–खद्यात्, कर्म०–लट्–खद्यते, लुङ्–अखादि। णिच्–लट्–खादयति–ते, लुङ्–अचीखदत्–त, सन्–चिखदिषति, क्त–खदित।

खन्—१ उ०, अवदारणे (खोदना), लट्–खनति–ते, लिट्–चखान या चख्ने, लुट्–खनिता, लृट्–खनिष्यति–ते, लङ्–अखनिष्यत्–त, लुङ्–अखनीत्,

अखानीत्, अखनिष्ट, आ० लिङ्-खन्यात्, खायात्, खनिषीष्ट । कर्म०-खन्यते, खायते, लुङ्-अखानि । णिच्-खानयति-ते, लुङ्-अचीखनत्-त, सन्-चिखनिषति-ते, क्त-खात, क्त्वा-खात्वा या खनित्वा (उद् के साथ उत्खाय, उत्खन्य) ।

खब्---१ प०, गतौ (जाना), लट्-खवति, लिट्-चखाब, लुङ्-अखवीत्, अखावीत् ।

खर्ज्---१ प०, पूजाव्यथनयो (पूजा करना, दु:ख देना, दु:खित होना), लट्- खर्जति, लिट्-चखर्ज, लुट्-खर्जिता, लृट्-खर्जिष्यति, लृङ्-अखर्जिष्यत्, लुङ्-अखर्जीत् । क्त-खर्जित ।

खर्द्---१ प०, दन्दशूके (दाँत से काटना), लट्-खर्दति, लिट्-चखर्द, लुट्-खर्दिता, क्त-खर्दित ।

खर्व्---१ प०, खर्वे (गर्वयुक्त होना, जाना, हिलना), लट्-खर्वति, लिट्-चखर्व, लुङ्-अखर्वीत् । क्त-खर्वित ।

खल्---१ प०, चलने सचये च (चलना, इकट्ठा करना), लट्-खलति, लिट्-चखाल, लुट्-खलिता, लृट्-खलिष्यति, लुङ्-अखालीत् । क्त-खलित ।

खव्---९ प०, भूतप्रादुर्भावे (प्रकट होना, पवित्र करना), लट्-खव्नाति ।

खष्---१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्-खषति ।

खाद्---१ प०, भक्षणे (खाना), लट्-खादति, लिट्-चखाद, लुट्-खादिता, लृट्-खादिष्यति, लृङ्-अखादिष्यत्, लुङ्-अखादीत्, आ० लिङ्-खाद्यात् । क्त-खादित ।

खिद्---६ प०, परिघाते परितापे च (चोट मारना, दु:ख देना), लट्-खिन्दति, लिट्-चिखेद, लुट्-खेत्ता, लृट्-खेत्स्यति, लृङ्-अखेत्स्यत्, लुङ्-अखैत्सीत्, सन्-चिखित्सति । क्त-खिन्न ।

खिद्---४ और ७ आ०, दैन्ये (खिन्न होना, दीन होना), लट्-खिद्यते, खिन्ते, लिट्-चिखिदे, लुट्-खेत्ता, लृट्-खेत्स्यते, लुङ्-अखित्त । क्त-खिन्न ।

खिल्---६ प०, उञ्छे (कण इकट्ठा करना), लट्-खिलति ।

खुज्---१ प०, स्तेयकरणे (चुराना), लट्-खोजति । क्त-खुग्न ।

खुर्---६ प०, छेदने (काटना), लट्-खुरति, लुङ्-अखोरीत् ।

खूर्द्---१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्-खूर्दते ।

खेल्---१ प०, चलने (हिलाना, इधर-उधर जाना, खेलना), लट्-खेलति, लिट्-चिखेल, लुट्-खेलिता, लृट्-खेलिष्यति, लृङ्-अखेलिष्यत्, लुङ्-अखेलीत् । णिच्-लट्-खेलयति, लुङ्-अचिखेलत्, सन्-चिखेलिषति ।

खेला---विलासे (क्रीडा करना), लट्-खेलायति, लिट्-खेलायाञ्चकार लुट्-खेलायिता, लुङ्-अखेलायीत् ।

खेव्---१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्-खेवते, लिट्-चिखेवे, लृट्-खेविष्यते, लुङ्-अखेविष्ट । णिच्-खेवयति-ते ।

क्ष्विड्–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयो (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेडति-ते, क्ष्विडयति, लिट्–चिक्ष्वेड, चिक्ष्विडे, लुट्–क्ष्वेडिता, लृट्–क्ष्वेडिष्यति–ते, लृङ–अक्ष्वेडिष्यत्–त, लुङ–अक्ष्विडत्–अक्ष्वेडिष्ट, अक्ष्विडत्, क्त–क्ष्वेडित या क्ष्विट्ट।

क्ष्विद्–१ उ०, ४ प०, स्नेहमोचनयो (गीला होना, मुक्त करना), लट्–क्ष्वेदति-ते-क्ष्विद्यति, लिट्–चिक्ष्वेद-चिक्ष्विदे, लुट्–क्ष्वेदिता, लृट्–क्ष्वेदिष्यति-ते, लृङ–अक्ष्वेदिष्यत्–त, लुङ–(४ प०), अक्ष्विदत् १, अक्ष्विदत्, अक्ष्वेदिष्ट, सन्–चिक्ष्विदिषति-ते, चिक्ष्वेदिषति-ते। क्त–क्ष्विण्ण या क्ष्वेदित।

क्ष्वेल्–१ प०, चलने (काँपना), लट्–क्ष्वेलति, लिट्–चिक्ष्वेल, लुट्–क्ष्वेलिता, लुङ–अक्ष्वेलीत्। णिच्–लट्–क्ष्वेलयति-ते, लुङ–अचिक्ष्वेलत्–त, सन्–चिक्ष्वेलिषति।

ख

खक्ख्–१ प०, हसने (हँसना), लट्–खक्खति, लिट्–चखक्ख, लुट्–खक्खिता, लृट्–खक्खिष्यति, लुङ–अखक्खीत्, आ० लिङ–खक्ख्यात्।

खच्–९ प०, भूतप्रादुर्भावे (दुबारा उत्पन्न या प्रकट होना), लट्–खच्नाति, लिट्–चखाच, लुट्–खचिता, लृट्–खचिष्यति, लुङ–अखचीत्–अखाचीत्, सन्–चिखचिषति।

खज्–१ प०, (घटादि) मन्थे (मथना), लट्–खजति, क्त–खजित।

खञ्ज्–१ प०, गतिवैकल्ये (लँगडा कर चलना), लट्–खञ्जति, लिट्–चखज, लुट्–खजिता, लृट्–खजिष्यति, लृङ–अखजिष्यत्, लुङ–अखजीत्, आ० लिङ–खज्यात्। क्त–खजित।

खट्–१ प०, काङ्क्षायाम् (चाहना, खोजना), लट्–खटति, लिट्–चखाट, लुट्–खटिता, लृट्–खटिष्यति, लृङ–अखटिष्यत्, लुङ–आखटीत्–अखाटीत्।

खट्ट्–१० उ०, सवरणे (ढकना), लट्–खट्टयति–ते, लिट्–खट्टयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अचखट्टत्–त।

खण्ड्–१ आ०, भेदने (तोडना), लट्–खडते। क्त–खडित।

खण्ड्–१० उ० (तोडना), लट्–खडयति–ते, लङ–अचखण्डत्–त, सन्–चिखडयिषति–ते।

खद्–१– प०, स्थैर्यहिंसाभक्षणेषु (स्थिर होना, हिंसा करना, खाना), लट्–खदति, लिट्–चखाद, लुट्–खदिता, लृट्–खदिष्यति, लृङ–अखदिष्यत्, लुङ–अखदीत्–अखादीत्, आ० लिङ–खद्यात्, कर्म०–लट्–खद्यते, लुङ–अखादि। णिच्–लट्–खादयति–ते, लुङ–अचीखदत्–त, सन्–चिखदिषति, क्त–खदित।

खन्–१ उ०, अवदारणे (खोदना), लट्–खनति–ते, लिट्–चखान या चख्ने, लुट्–खनिता, लृट्–खनिष्यति–ते, लृङ–अखनिष्यत्–त, लुङ–अखनीत्,

अखानीत्, अखनिष्ट, आ० लिङ्–खन्यात्, खायात्, खनिषीष्ट । कर्म०–खन्यते, खायते, लुङ–अखानि । णिच्–खानयति–ते, लुङ–अचीखनत्–त, सन्–चिखनिषति–ते, क्त–खात, क्त्वा–खात्वा या खनित्वा (उद् के साथ उत्खाय, उत्खन्य) ।

खब्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–खबति, लिट्–चखाब, लुङ–अखबीत्, अखाबीत् ।

खर्ज्—१ प०, पूजाव्यथनयो (पूजा करना, दुःख देना, दुःखित होना), लट्–खर्जति, लिट्–चखर्ज, लुट्–खर्जिता, लृट्–खर्जिष्यति, लृङ–अखर्जिष्यत्, लुङ–अखर्जीत् । क्त–खर्जित ।

खर्द्—१ प०, दन्दशूके (दाँत से काटना), लट्–खर्दति, लिट्–चखर्द, लुट्–खर्दिता, क्त–खर्दित ।

खर्व्—१ प०, खर्वे (गर्वयुक्त होना, जाना, हिलना), लट्–खर्वति, लिट्–चखर्व, लुङ–अखर्वीत् । क्त–खर्वित ।

खल्—१ प०, चलने सचये च (चलना, इकट्ठा करना), लट्–खलति, लिट्–चखाल, लुट्–खलिता, लृट्–खलिष्यति, लुङ–अखालीत् । क्त–खलित ।

खव्—९ प०, भूतप्रादुर्भावे (प्रकट होना, पवित्र करना), लट्–खव्नाति ।

खष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–खषति ।

खाद्—१ प०, भक्षणे (खाना), लट्–खादति, लिट्–चखाद, लुट्–खादिता, लृट्–खादिष्यति, लृङ–अखादिष्यत्, लुङ–अखादीत्, आ० लिङ–खाद्यात् । क्त–खादित ।

खिद्—६ प०, परिघाते परितापे च (चोट मारना, दुःख देना), लट्–खिन्दति, लिट्–चिखेद, लुट्–खेत्ता, लृट्–खेत्स्यति, लृङ–अखेत्स्यत्, लुङ–अखैत्सीत्, सन्–चिखित्सति । क्त–खिन्न ।

खिद्—४ और ७ आ०, दैन्ये (खिन्न होना, दीन होना), लट्–खिद्यते, खिन्ते, लिट्–चिखिदे, लुट्–खेत्ता, लृट्–खेत्स्यते, लुङ–अखित्त । क्त–खिन्न ।

खिल्—६ प०, उञ्छे (कण इकट्ठा करना), लट्–खिलति ।

खुज्—१ प०, स्तेयकरणे (चुराना), लट्–खोजति । क्त–खुग्न ।

खुर्—६ प०, छेदने (काटना), लट्–खुरति, लुङ–अखोरीत् ।

खूर्द्—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्–खूर्दते ।

खेल्—१ प०, चलने (हिलाना, इधर-उधर जाना, खेलना), लट्–खेलति, लिट्–चिखेल, लुट्–खेलिता, लृट्–खेलिष्यति, लृङ–अखेलिष्यत्, लुङ–अखेलीत्। णिच्–लट्–खेलयति, लुङ–अचिखेलत, सन्–चिखेलिषति ।

खेला—विलासे (क्रीडा करना), लट्–खेलायति, लिट्–खेलायाञ्चकार लुट्–खेलायिता, लुङ–अखेलायीत् ।

खेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–खेवते, लिट्–चिखेवे, लृट्–खेविष्यति, लुङ–अखेविष्ट । णिच्–खेवयति–ते ।

खं—१ प०, खेदने (चोट पहुँचाना), लट्–खायति, लृट्–खास्यति, लुङ–अखासीत् ।

खोर्—१ प०, गतिप्रतिघाते (लँगड़ाना), लट्–खोरति, लुङ–अखोरीत् ।

ख्या—२ प०, प्रकथने (कहना, सुनाना), लट्–ख्याति, लङ–प्र० पु० बहु०, अख्यान्–अख्युः । क्त–ख्यात ।

ग

गज्—१ प०, शब्दे मदे च (गरजना, मत्त होना), लट्–गजति, लिट्–जगाज, लुट्–गजिता, लुङ–अगजीत्–अगाजीत् ।

गञ्ज्—१ प० (विशेष ढंग से शब्द करना) लट्–गञ्जति, लिट्–जगञ्ज, लुट्–गञ्जिता, लुङ–अगञ्जीत् ।

गड्—१ प०, सेचने (सींचना, खींचना), लट्–गडति, लिट्–जगाड, लुट्–गडिता, लुङ–अगडीत् ।

गण्—१० उ०, सख्याने (गिनना), लट्– गणयति–ते, लिट्–गणयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–गणयिता, लृट्–गणयिष्यति–ते, लृङ–अगणयिष्यत्–त, लुङ–अजीगणत्–त, अजगणत्–त, आ० लिङ–गण्यात्–गणयिषीष्ट, सन्–जिगणयिषति–ते । क्त–गणित, क्त्वा–गणयित्वा, विगणय्य, कर्म० लट्–गण्यते ।

गद्—१ प०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, कहना), लट्–गदति, लिट्–जगाद, लुट्–गदिता, लृट्–गदिष्यति, लृङ–अगदिष्यत्, लुङ–अगदीत्–अगादीत्, आ० लिङ–गद्यात्, सन्–जिगदिषति । णिच्–लट्–गादयति–ते, लुङ–अजीगदत्–त, कर्म० लट्–गद्यते, लुङ–अगादि, क्त्वा–गदित्वा, तुम्–गदितुम्, क्त–गदित ।

गन्ध्—१० आ०, अर्दने (हानि पहुँचाना, पूछना, जाना), लट्–गन्धयते, लुङ–अजगन्धत ।

गम्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–गच्छति, लिट्–जगाम, लुट्–गन्ता, लृट्–गमिष्यति, लृङ–अगमिष्यत्, लुङ–अगमत्, आ० लिङ–गम्यात् । सन्–जिगमिषति । कर्म०– गम्यते, लुङ–अगामि । णिच्–गमयति–ते, लुङ–अजीगमत्–त । क्त–गत, क्त्वा–गत्वा, तुम्–गन्तुम् ।

गर्ज्—१ प०, शब्दे (गरजना), लट्–गर्जति, लिट्–जगर्ज, लुट्–गर्जिता, लृट्–गर्जिष्यति, लुङ–अगर्जीत्, लृङ–अगर्जिष्यत्, आ० लिङ–गर्ज्यात्, सन्–जिगर्जिषति ।

गर्ज्—१० उ०, (गरजना), लट्–गर्जयति–ते, लुङ–अजगर्जत्–त ।

गर्द्—१ प०, शब्दे (चिल्लाना, शब्द करना), लट्–गर्दति, लिट्–जगर्द, लृट्–गर्दिष्यति, लुङ–अगर्दीत् ।

गर्द्—१० उ०, (शब्द करना), लट्–गर्दयति–ते, लिट्–गर्दयाञ्चकार–चक्रे ।

गर्घ्—१० उ०, अभिकाङ्क्षायाम् (चाहना), लट्–गर्धयति-ते, लिट्–गर्धयाचकार–चक्रे, लुङ्–अजगर्धत्–त ।

गर्ब्—१ प०, (जाना), लट्–गर्बति, लिट्–जगर्ब, लुट्–गर्बिता, लृट्–गर्बिष्यति ।

गर्व्—१ प०, दर्पे (गर्वयुक्त होना), लट्–गर्वति, लिट्–जगर्व, लुट्–गर्विता, लुङ्–अगर्वीत्, सन्–जिगर्विषति ।

गर्व्—१० आ०, माने (गर्व करना), लट्–गर्वयते, लुङ्–अजगर्वत, सन्–जिगर्वयिषते ।

गर्ह्—१ आ०, कुत्सायाम्, (निन्दा करना), लट्–गर्हते, लिट्–जगर्हे, लुट्–गर्हिता, लृट्–गर्हिष्यते, लृङ्–अगर्हिष्यत, लुङ्–अगर्हिष्ट, लिङ्–गर्हिषीष्ट । णिच्–गर्हयति-ते, लुङ्–अजगर्हत्–त, सन्–जिगर्हिषते ।

गर्ह्—१० उ०, १ प०, विनिन्दने (निन्दा करना, बुरा भला कहना), लट्–गर्हयति–ते, गर्हति, लिट्–गर्हयाचकार–चक्रे आदि, जगर्ह, लुट्–गर्हयिता, गर्हिता, लृट्–गर्हयिष्यति–ते, गर्हिष्यति, लुङ्–अजगर्हत्–त, अगर्हीत् । सन्–जिगर्हयिषति–ते, जिगर्हिषति ।

गल्–१ प०, भक्षणे स्रावे च (खाना, गिरना, बहना), लट्–गलति, लिट्–जगाल, लुट्–गलिता, लृट्–गलिष्यति, लृङ्–अगलिष्यत्, लुङ्–अगालीत्, सन्–जिगलिषति, कर्म० लट्–गल्यते, लुङ्–अगालि ।

गल्—१० आ०, स्रवणे (बहना, निकालना), लट्–गालयते, लिट्–गालयाचक्रे, लुङ्–अजीगलत, क्त–गलित ।

गल्भ्—१ आ०, धाष्ट्‍र्ये (ढीठ होना) (प्राय. प्र के साथ), लट्–गल्भते, लिट्–जगल्भे, लुङ्–अगल्भिष्ट, सन्–जिगल्भिषते ।

गवेष्—१० उ०, मार्गणे (ढूँढना, खोजना), लट्–गवेषयति–ते, लिट्–गवेषयाचकार, चक्रे, लुट्–गवेषयिता, लृट्–गवेषयिष्यति–ते, लुङ्–अजगवेषत्–त । क्त–गवेषित, क्त्वा–गवेषयित्वा ।

गह्—१० उ०, गहने (घना होना, गहराई मे घुसना), लट्–गहयति–ते, लिट्–गहयाचकार–चक्रे, लुङ्–अजगहत्–त ।

गा—१ आ०, (जाना), लट्–गाते, लिट्–जगे, लुट्–गाता, लृट्–गास्यते, लृङ्–अगास्यत, लुङ्–अगास्त, आ० लिङ्–गासीष्ट । सन्–जिगासते । णिच् लट्–गाययति–ते, लुङ्–अजीगपत्, कर्म० लट्–गायते, लुङ्–अगायि ।

गा–३ प०, (प्रशसा करना), लट्–जिगाति (वैदिक) ।

गाध्—१ आ०, प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (प्रतिष्ठित होना, चाहना, ग्रन्थ बनाना), लट्–गाधते, लिट्–जगाधे, लुट्–गाधिता, लृट्–गाधिष्यते, लुङ्–अगाधिष्ट, आ० लिङ्–गाधिषीष्ट । कर्म लट्–गाध्यते, लुङ्–अगाधि, सन्–जिगाधिषते ।

गाह्—१ आ०, विलोडने (नहाना, डुबकी लगाना), लट्-गाहते, लिट्-जगाहे, लुट्-गाहिता या गाढा, लृट्-गाहिष्यते, घाक्ष्यते, लृङ्-अगाहिष्यत, अघाक्ष्यत, लुङ्-अगाहिष्ट, अगाढ, आ० लिङ्-गाहिषीष्ट, घाक्षीष्ट। णिच्-लट्-गाहयति-ते, लुङ्-अजीगहत्-त क्त-गाढ, गाहित, क्त्वा-गाहित्वा-गाढ्वा, तुम्-गाढुम्।

गु—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे गतौ च (अस्पष्ट शब्द करना, जाना), लट्-गवते, लिट्-जुगुवे, लुट्-गोता, लृट्-गोष्यते, लृङ्-अगोष्यत, लुङ्-अगोष्ट, आ० लिङ्-गोषीष्ट। सन्-जुगूषते, णिच्-गावयति-ते, लुङ्-अजगवत्-त।

गु—६ प०, पुरीषोत्सर्गे (शौच करना), लट्-गुवति, लिट्-जुगाव, लुट्-गुता, लृट्-गुष्यति, लृङ्-अगुष्यत्, लुङ्-अगुषीत्। क्त-गून।

गुज्, गुञ्ज्-१ प०, कूजने (गूंजना, भिनभिनाना), लट्-गोजति, गुञ्जति, लिट्-जुगोज, जुगुञ्ज, लुङ्-अगुजीत्, अगुञ्जीत्।

गुड्—६ प०, रक्षणे (रक्षा करना), लट्-गुडति, लिट्-जुगोड (म० पु० एक० जुगुडिथ), लुङ्-अगुडीत्।

गुण्—१० उ०, आमन्त्रणे (आमन्त्रित करना, गुणा करना), लट्-गुणयति-ते, लिट्-गुणयाचकार-चक्रे, लुट्-गुणयिता, लृट्-गुणयिष्यति, लृङ्-अगुणयिष्यत्, लुङ्-अजूगुणत्-त, सन्-जुगुणयिषति।

गुण्ठ्—१० उ०, वेष्टने, (ढकना, घेरना), लट्-गुण्ठयति-ते, लुङ्-अजुगुण्ठत्-त। सन्-जुगुण्ठयिषति। १ प० भी है-लट्-गुण्ठति, लिट्-जुगुण्ठ। क्त-गुण्ठित।

गुद्—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्-गोदते, लिट्-जुगुदे, लुङ्-अगोदिष्ट। क्त-गुदित।

गुध्—१ आ०, (खेल करना), लट्-गोधते, लिट्-जुगुधे, लुट्-गोधिता। शेष गुद् की तरह रूप चलेंगे।

गुध्—४ प०, परिवेष्टने (ढकना), लट्-गुध्यति, लिट्-जुगोध, लुङ्-अगोधीत्।

गुध्—६ प०, रोषे (क्रुद्ध होना), लट्-गुध्नाति, (शेष रूप पूर्ववत्)

गुप्—१ प०, रक्षणे (रक्षा करना, छिपाना), लट्-गोपायति, लिट्-जुगोप, गोपायाचकार, लुट्-गोपायिता, गोपिता, गोप्ता, लृट्-गोपायिष्यति, गोपिष्यति, गोप्स्यति। लुङ्-अगोपायीत्, अगौप्सीत्। सन्-जुगोपायिषति, जुगुपिषति, जुगोपिषति, जुगुप्सति। णिच्-लट्-गोपाययति-ते, गोपयति-ते, लुङ्-अजुगोपायत्-त, अजूगुपत्-त, कर्म० लट्-गोपाय्यते, गुप्यते, क्त-गोपायित, गुप्त, क्त्वा-गोपायित्वा, गोपित्वा, गुप्त्वा।

गुप्—१ आ०, निन्दायाम् (निन्दा करना), लट्-जुगुप्सते, लिट्-जुगुप्साञ्चक्रे, लुट्-जुगुप्सिता, लृट्-जुगुप्सिष्यते, लुङ्-अजुगुप्सिष्ट, आ० लिङ्-जुगुप्सिषीष्ट। कर्म० लट्-जुगुप्स्यते।

गुप्—४ प०, व्याकुलत्वे (व्याकुल होना), लट्-गुप्यति, लिट्-जुगोप, लुट्-गोपिता, लुङ्-अगुपत् । णिच्-लट्-गोपयति-ते, लुङ्-अजूगुपत्-त । सन्-जुगुपिषति, जुगोपिषति, क्त-गोपित ।

गुप्—१० उ०, भाषायां भासने च (बोलना, चमकना), लट्-गोपयति-ते, लिट्-गोपयाचकार-चक्रे, लुट्-गोपयिता, लुङ्-अजूगुपत्-त, सन्-जुगोपिषति-ते, क्त-गोपित ।

गुफ्, गुम्फ्—६ प०, ग्रन्थे (गूंथना), लट्-गुफति, गुम्फति, लिट्-जुगोफ, जुगुम्फ, लुट्-गोफिता, गुम्फिता, लुङ्-अगोफीत्, अगुम्फीत् । क्त-गुफित, गुम्फित, क्त्वा-गुफित्वा ।

गुर्—(कुटादि) ६ आ०, उद्यमने (प्रयत्न करना), लट्-गुरते, लिट्-जुगुरे, लुट्-गुरिता, लृट्-गुरिष्यते, लङ्-अगुरिष्यत, आ० लिङ्-गुरिषीष्ट, लुङ्-अगुरिष्ट । कर्म० लट्-गुर्यते, लुङ्-अगोरि । णिच्-लट्-गोरयति-ते, लुङ्-अजूगुरत्-त, सन्-जुगुरिषते, क्त-गूर्ण, तुम्-गुरितुम् ।

गुर्द्—१ आ०, क्रीडायाम् (खेलना), लट्-गूर्दते, लृट्-गूर्दिष्यते, लुङ्-अगूर्दिष्ट ।

गुर्द्—१० उ०, निवेतने (रहना), लट्-गूर्दयति-ते, लिट्-गूर्दयाचकार-चक्रे, लृट्-गूर्दयिष्यति-ते, लुङ्-अजुगूर्दत्-त ।

गुह्—१ उ०, संवरणे (ढकना, गुप्त रखना, छिपाना), लट्-गूहति-ते, लिट्-जुगूह, जुगुहे, लुट्-गूहिता, गोढा, लृट्-गूहिष्यति-ते, घोक्ष्यति-ते, लुङ्-अगूहीत्, अगूहिष्ट (५), अघुक्षत्-त, अगूढ (७), आ० लिङ्-गुह्यात्, गूहिषीष्ट-घुक्षीष्ट । सन्-जुघुक्षति-ते । कर्म० लट्-गुह्यते, लुङ्-अगूहि, णिच्-गूहयति-ते, लुङ्-अजूगुहत्-त, क्त-गूढ ।

गूर्—४ आ०, हिंसागत्योः (मारना, जाना), लट्-गूर्यते, लिट्-जुगूरे, लुट्-गूरिता, लुङ्-अगूरिष्ट । सन्-जुगूरिषते, क्त-गूर्ण ।

गूर्—१० आ०, उद्यमने (प्रयत्न करना), लट्-गूरयते, लुङ्-अजूगुरत ।

गूर्द्—१० उ०, स्तुतौ (प्रशंसा करना), लट्-गूर्दयति-ते, लुङ्-अजुगूर्दत्-त ।

गृ—१ प०, सेचने (सींचना), लट्-गरति, लिट्-जगार, लुट्-गर्ता, लृट्-गरिष्यति, लुङ्-अगार्षीत् ।

गर्ज्—१ प०, शब्दे (गरजना, चिल्लाना), लट्-गर्जति, लिट्-जगर्ज, लुङ्-अगर्जीत् । णिच्-लट्-गर्जयति-ते, लुङ्-अजीगृजत्-त, अजगर्जत्-त । (गृञ्ज् धातु भी है) लट्-गृञ्जति, लिट्-जगृञ्ज, लुङ्-अगृञ्जीत् ।

गृध्—४ प०, अभिकाङ्क्षायाम् (चाहना, लालच करना), लट्-गृध्यति, लिट्-जगर्ध, लुट्-गर्धिता, लुङ्-अगृधत् । णिच्-गर्धयति-ते, लुङ्-अजीगृधत्-त, अजगर्धत्-त, सन्-जिगर्धिषति, क्त-गृद्ध, क्त्वा-गर्धित्वा-गृद्ध्वा ।

गृह्—१ आ०, ग्रहणे (लेना, पकड़ना), लट्–गर्हते, लिट्–जगर्हे, लुट्–गर्हिता, गर्ढा, लृट्–गर्हिष्यते, घक्ष्यते, लृङ्–अगर्हिष्यत, अघक्ष्यत, आ० लिङ्–गर्हिषीष्ट, घृक्षीष्ट, लुङ्–अगर्हिष्ट, अघृक्षत । सन्–जिगर्हिषते, जिघृक्षते । णिच्–गर्हयति–ते, लुङ्–अजीगृहत्–त, अजगर्हत्–त ।

गृह्—१० आ०, ग्रहणे (पकड़ना), लट्–गृह्यते, लिट्–गृह्याञ्चक्रे, लुङ्–अजगृहत । सन्–जिगृहयिषते ।

गृ—६ प०, निगरणे (खाना, निगलना), लट्–गिरति या गिलति, लिट्–जगार या जगाल, लुट्–गरिता, गरीता या गलिता, गलीता, लृट्–गरिष्यति, गरीष्यति या गलिष्यति, गलीष्यति, लुङ्–अगारीत् या अगालीत्, आ० लिङ्–गीर्यात् । सन्–जिगरिषति या जिगलिषति, णिच्–गारयति–गालयति, कर्म० लट्–गीर्यते, लुङ्–अगारि या अगालि, क्त–गीर्ण ।

गृ—९ प०, शब्दे (बोलना, पुकारना), लट्–गृणाति, लिट्–जगार, लुट्–गरिता, गरीता, लृट्–गरिष्यति, गरीष्यति, लुङ्–अगारीत् । णिच् लट्–गारयति–ते, लुङ्–अजीगरत्–त, सन्–जिगरिषति, जिगरीषति, जिगीर्षति, क्त–गीर्ण ।

गेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–गेवते, लिट्–जिगेवे, लुङ्–अगेविष्ट ।

गेष्—१ आ०, अन्विच्छायाम् (ढूंढना), लट्–गेषते, लिट्–जिगेषे, लृट्–गेषिष्यते, लुङ्–अगेषिष्ट, क्त–गेष्ण ।

गै—१ प०, शब्दे (गाना, गाने के ढंग से बोलना), लट्–गायति, लिट–जगौ, लुट्–गाता, लृट्–गास्यति, लृङ्–अगास्यत्, लुङ्–अगासीत्, आ० लिङ्–गेयात् । सन्–जिगासति, कर्म० लट्–गीयते, लुङ्–अगायि, णिच्–लट्–गापयति–ते, लुङ्–अजीगपत्–त, क्त–गीत, क्त्वा–गीत्वा, ल्यप्–प्रगाय ।

गोष्ठ्—१ आ०, सघाते (इकट्ठा होना), लट्–गोष्ठते, लिट्–जुगोष्ठे, लुङ्–अगोष्ठिष्ट ।

ग्रन्थ्—१ आ०, कौटिल्ये (कुटिल होना), लट्–ग्रन्थते, लिट्–जग्रन्थे, लुट्–ग्रन्थिता, लृट्–ग्रन्थिष्यते, लुङ्–अग्रन्थिष्ट । सन्–जिग्रन्थिषते, कर्म० लट्–ग्रन्थ्यते, लुङ्–अग्रन्थि, क्त–ग्रन्थित ।

ग्रन्थ्—९ प०, सन्दर्भे (एकत्र करना, बांधना), लट्–ग्रथ्नाति, लोट्–म० पु० एक० ग्रथान, लिट्–जग्रन्थ, लुट्–ग्रन्थिता, लृट्–ग्रन्थिष्यति, लुङ्–अग्रन्थीत्, आ० लिङ्–ग्रथ्यात्, कर्म० लट्–ग्रथ्यते, लुङ्–अग्रन्थि । णिच्–लट्–ग्रन्थयति–ते, लुङ्–अजग्रन्थत्–त, सन्–जिग्रन्थिषति, क्त–ग्रथित, क्त्वा–ग्रथित्वा, ग्रन्थित्वा ।

ग्रन्थ्—१० उ०, बन्धने, सन्दर्भे च (इकट्ठा करके गूंथना, कोई रचना करना), लट्–ग्रन्थयति–ते, लिट्–ग्रन्थयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–ग्रन्थयिता, लुङ्–अजग्रन्थत्–त, आ० लिङ्–ग्रन्थ्यात्, ग्रन्थयिषीष्ट । सन्–जिग्रन्थयिषति–ते । (१ प० भी है), लट्–ग्रन्थति, लुङ्–अग्रन्थीत् ।

ग्रस्—१ आ०, अदने (निगलना,), लट्–ग्रसते, लिट्–जग्रसे, लुट्–ग्रसिता, लृट्–ग्रसिष्यते, लुङ्–अग्रसिष्ट, आ० लिङ्–ग्रसिषीष्ट । णिच् लट्–ग्रासयति, लुङ्–अजिग्रसत्, सन्–जिग्रसिषते, क्त–ग्रस्त, क्त्वा–ग्रसित्वा या ग्रस्त्वा ।

ग्रस्—१० उ०, ग्रहणे (लेना), लट्–ग्रासयति–ते, लुङ्–अजिग्रसत्–त ।

ग्रह्—९ उ०, उपादाने (लेना, पकडना), लट्–गृह्णाति, गृह्णीते, लोट्–म० पु० एक० गृहाण, लिट्–जग्राह, जगृहे, लुट्–ग्रहीता, लृट्–ग्रहीष्यति–ते, लुङ्–अग्रहीत्, अग्रहीष्ट, आ० लिङ्–गृह्यात्, ग्रहीषीष्ट । सन्–जिघृक्षति–ते, कर्म० लट्–गृह्यते, लुङ्–अग्राहि, णिच्–लट्–ग्राहयति–ते, लुङ्–अजिग्रहत्–त, क्त–गृहीत, तुम्–ग्रहीतुम् ।

ग्राम्—१० उ०, आमन्त्रणे (निमन्त्रित करना), लट्–ग्रामयति–ते, लुङ्–अजग्रामत्–त ।

ग्रुच्—१ प०, स्तेयकरणे गतौ च (चुराना, जाना), लट्–ग्रोचति, लिट्–जुग्रोच, लुट्–ग्रोचिता, लुङ्–अग्रुचत्, अग्रोचीत्, आ० लिङ्–ग्रुच्यात् । सन्–जुग्रुचिषति, जुग्रोचिषति, णिच्–लट्–ग्रोचयति–ते, लुङ्–अजुग्रुचत्–त ।

ग्लस्—१ आ०, अदने (खाना), लट्–ग्लसते, लिट्–जग्लसे, लृट्–ग्लसिष्यते, लुङ्–अग्लसिष्ट, क्त–ग्लस्त ।

ग्लह्—१ आ०, उपादाने (लेना), लट्–ग्लहते, लिट्–जग्लहे, लुङ्–अग्लहिष्ट ।

ग्लुच्—१ प०, स्तेयकरणे गतौ च (चुराना, जाना), लट्–ग्लोचति, लिट्–जुग्लोच, लुट्–ग्लोचिता, क्त–ग्लुक्त ।

ग्लुञ्च्—१ प०, (जाना), लट्–ग्लुञ्चति, लिट्–जुग्लुञ्च, लुट्–ग्लुचिता, लुङ्–अग्लुचत्–अग्लुञ्चीत् ।

ग्लेप्—१ आ०, दैन्ये कम्पने च (दीन होना, कांपना), लट्–ग्लेपते, लिट्–जिग्लेपे, लृट्–ग्लेपिष्यते, लुङ्–अग्लेपिष्ट ।

ग्लै—१ प०, हर्षक्षये (हर्षक्षयो धातुक्षयः), (तंग होना, खिन्न होना), लट्–ग्लायति, लिट्–जग्लौ, लुट्–ग्लाता, लृट्–ग्लास्यति, लृङ्–अग्लास्यत्, आ० लिङ्–ग्लेयात्, ग्लायात्, लुङ्–अग्लासीत् । सन्–जिग्लासति, कर्म०–लट्–ग्लायते, लुङ्–अग्लायि, णिच्–लट्–ग्लपयति–ते, ग्लापयति–ते, क्त–ग्लान, क्त्वा–ग्लात्वा, ल्यप्–सग्लाय, तुम्–ग्लातुम् ।

घ

घघ्—१ प०, हसने (हँसना), लट्–घघति, लिट्–जघाघ, लुङ्–अघघीत्, अघाघीत् ।

घट्—१ आ०, चेष्टायाम् (काम में लगा रहना, घटना घटित होना), लट्–घटते, लिट्–जघटे, लुट्–घटिता, लृट्–घटिष्यते, आ० लिङ्–घटिषीष्ट,

लुङ्-अघटिष्ट । कर्म०-लट्-घट्यते, लुट्-घाटिता, घटिता, लृट्-घटिष्यते, घाटिष्यते, लृङ्-अघाटिष्यत, अघटिष्यत, लुङ्-अघाटि, अघटि । णिच्-लट्-घटयति-ते, लुङ्-अजीघटत्-त, सन्-जिघटिषते ।

घट्—१० उ०, भाषाया सघाते च (कहना, इकट्ठा करना), लट्-घाटयति-ते, लिट्-घाटयाचकार-चक्रे, लुङ्-अजीघटत्-त । सन्-जिघाटयिषति-ते ।

घट्ट्—१ आ० चलने (हिलाना, छूना), लट्-घट्टते, लिट्-जघट्टे, लुट्-घट्टिता, लृट्-घट्टिष्यते, आ० लिङ्-घट्टिषीष्ट, लुङ्-अघट्टिष्ट । सन्-जिघट्टिषते, क्त-घट्टित ।

घट्ट्—१० उ०, चलने (हिलाना, चलाना), लट्-घट्टयति-ते, लुङ्-अजघट्टत्-त । सन्-जिघट्टयिषति ।

घण्ट्—१० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्-घण्टयति-ते, लुङ्-अजघण्टत्-त । (१ प० भी है), लट्-घण्टति, लुङ्-अघण्टीत् ।

घस्[1]—१ प०, (खाना), लट्-घसति, लङ्-अघसत्, लिट्-जघास, लुट्-घस्ता, लृट्-घत्स्यति, लृङ्-अघत्स्यत्, लुङ्-अघसत् । सन्-जिघत्सति, क्त-घस्त ।

घिण्ण्—१ आ०, ग्रहणे (लेना), लट्-घिण्णते, लिट्-जिघिण्णे, लुङ्-अघिण्णिष्ट ।

घु—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्-घवते, लिट्-जुघुवे, लुङ्-अघोष्ट । सन्-जुघूषते, क्त-घुत ।

घुट्—१ आ०, परिवर्तने (लौटाना, बदलना), लट्-घोटते, लिट्-जुघुटे, लुङ्-अघुटत्, अघोटिष्ट, क्त-घुटित ।

घुट्—६ प०, प्रतिघाते (कुटादि), (चोट मारना), लट्-घुटति, लिट्-जुघोट (म० पु० एक० जुघुटिथ), लुङ्-अघुटीत् ।

घुड्—६ प०, (चोट मारना), लट्-घुडति ।

घुण्—६ प०, भ्रमणे (घूमना, मुडना), लट्-घुणति, लिट्-जुघोण, लुट्-घोणिता, लुङ्-अघोणीत्, क्त-घुणित ।

घुण्—१ आ०, भ्रमणे (घूमना, चक्कर खाना), लट्-घोणते, लिट्-जुघुणे, लुङ्-अघोणिष्ट ।

घुण्ण्—ग्रहणे (लेना, पाना), लट्-घुण्णते, लिट्-जुघुण्णे, लुट्-घुण्णिता, लुङ्-अघुण्णिष्ट, क्त-घुण्णित ।

घुर्—६ प०, भीमार्थशब्दयो (भयकर होना, शब्द करना), लट्-घुरति, लिट्-जुघोर, लुट्-घोरिता, लृट्-घोरिष्यति, लृङ्-अघोरिष्यत्, लुङ्-अघोरीत् ।

---

१. यह अपूर्ण धातु है और प्रायः अद् धातु के स्थान पर प्रयुक्त होती है । इसके लिट् लकार मे अद् के स्थानीय के रूप मे विकल्प से रूप चलते हैं ।

घुष्—१ प०, अविशब्दने (शब्दे इत्यन्ये) (शब्द करना, घोषणा करना),
लट्–घोषति, लिट्–जुघोष, लुट्–घोषिता, लृट्–घोषिष्यति, आ० लिङ्–घुष्यात्,
लङ्–अघुषत्, अघोषीत् । णिच्–लट्–घोषयति–ते, लुङ्–अजूघुषत् । सन्–जुघो-
षिषति, जुघुषिषति, क्त–घुषित, घोषित या घुष्ट ।

घष्—१ आ०, कान्तिकरणे (चमकीला होना), लट्–घोषते, लिट्–जुघुषे,
लुङ्–अघोषिष्ट । सन्–जुघोषिषते, जुघुषिषते ।

घुष्—१० उ०, विशब्दने (घोषणा करना), लट्–घोषयति–ते, लिट्–
घोषयाचकार–चक्रे, लुट्–घोषयिता, लृट्–घोषयिष्यति–ते, लुङ्–अजूघुषत्–त,
क्त–घुषित, घुष्ट ।

घूर्—४ आ०, हिंसावयोहान्यो (हिंसा करना, वृद्ध होना), लट्–घूर्यते,
लुङ्–अघूरिष्ट ।

घूर्ण्—६ उ०, भ्रमणे (इधर उधर घूमना, चक्कर खाना), लट्–घूर्णति,
घूर्णते, लिट्–जुघूर्ण, जुघूर्णे, लुट्–घूर्णिता, लृट्–घूर्णिष्यति–ते, लृङ्–अघूर्णिष्यत्
–त, लुङ्–अघूर्णीत् । सन्–जुघूर्णिषति–ते । कर्म०–लट्–घूर्ण्यते, लुङ्–अघूर्णि ।
णिच्–लट्–घूर्णयति–ते, लुङ्–अजुघूर्णत्–त, क्त–घूर्णित ।

घृ—१ प०, सेचने, १० उ०, प्रस्रवणे छादने च (टपकना, ढकना), लट्–
घरति और घारयति–ते, लिट्–जघार, घारयाचकार, लुट्–घर्ता, घारयिता,
लुङ्–अघारीत्, अजीघरत्–त, क्त–घृत, घारित ।

घृण्—८ उ०, दीप्तौ (चमकना, जलाना), लट्–घृणोति, घर्णोति और
घृणुते, घर्णुते, लिट्–जघर्ण, जघृणे, लुट्–घर्णिता, लृट्–घर्णिष्यति–ते, लुङ्–
अघर्णीत्–अघर्णिष्ट, अघृत । सन्–जिघर्णिषति, क्त–घृत, क्त्वा–घृणित्वा,
घृत्वा ।

घृष्—१ प०, सघर्षे स्पर्धायां च (रगड़ना, स्पर्धा करना), लट्–घर्षति,
लिट्–जघर्ष, लुट्–घर्षिता, लृट्–घर्षिष्यति, लृङ्–अघर्षिष्यत्, लुङ्–अघर्षीत्,
आ० लिङ्–घृष्यात् । सन्–जिघर्षिषति, कर्म० लट्–घृष्यते, लुङ्–अघर्षि । णिच्
लट्–घर्षयति–ते, लुङ्–अजीघृषत्–त, अजघर्षत्–त, क्त–घृष्ट, क्त्वा–घर्षित्वा,
घृष्ट्वा ।

घ्रा—१ प०, गन्धोपादाने (सूंघना), लट्–जिघ्रति, लिट्–जघ्रौ, लुट्–
घ्राता, लृट्–घ्रास्यति, लृङ्–अघ्रास्यत्, लुङ्–अघ्रात्, अघ्रासीत्, आ० लिङ्–
घ्रायात्–घ्रेयात् । सन्–जिघ्रासति, कर्म०–लट्–घ्रायते, लुङ्–अघ्रा'य णिच्–
लट्–घ्रापयति–ते, लुङ्–अजिघ्रपत्–त, अजिघ्रिपत्–त, क्त–घ्रात, घ्राण ।

ङ

ङु—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–ङवते, लिट्– जुङुवे, लुट्–
ङोता, लङ्–अङोष्ट, आ० लिङ्–ङोषीष्ट । सन्–जुङूषते ।

च

चक्—१ आ०, तृप्तौ प्रतिघाते च (तृप्त होना, रोकना), लट्–चकते, लुट्–चेके, लुट्–चकिता, लृट्–चकिष्यते, लुङ्–अचकिष्ट। णिच्–लट्–चाकयति–ते, लुङ्–अचीचकत्–त, सन्–चिचकिषते, क्त–चकित ।

चक्—१ प०, तृप्तौ (तृप्त होना), लट्–चकति, लिट्–चचाक, लुट्–चकिता, लुङ्–अचकीत्, अचाकीत्, णिच्–लट्–चकयति–ते, सन्–चिचकिषति, कर्म० लट्–चक्यते, लुङ्–अचकि, अचाकि ।

चकास्—२ उ०, दीप्तौ (चमकना, समृद्ध होना), लट्–चकास्ति–स्ते, लिट्–चकासाञ्चकार–चक्रे, लुट्–चकासिता, लृट्–चकासिष्यति, लृङ्–अचकासिष्यत्, लुङ्–अचकासीत्, अचकासिष्ट । णिच्–लट्–चकासयति–ते, लुङ्–अचीचकासत्–त, अचचकासत्–त, क्त–चकासित, क्त्वा–चकासित्वा, तुम्–चकासितुम् ।

चक्ष्[1]—२ आ०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, कहना), लट्–चष्टे, लिट्–चचक्षे, चख्यौ, चख्ये, चक्शौ, चक्शे, लुट्–ख्याता, क्शाता, लुङ्–अख्यत्–त, अक्शासीत्, अक्शास्त, आ० लिङ्–ख्यायात्, ख्येयात्, ख्यासीष्ट, क्शायात्, क्शेयात्, क्शासीष्ट । णिच्–लट्–ख्यापयति–ते, क्शापयति–ते, लुङ्–अचिख्यपत्–त, अचिक्शपत्–त, सन्–चिख्यासति–ते ।

चञ्च्—१ प०, (जाना, कूदना), लट्–चञ्चति, लिट्–चचञ्च, लुट्–चञ्चिता, लुङ्–अचञ्चीत्, क्त–चञ्चित ।

चट्—१ प०, वर्षावरणयो (तोडना, ढकना), लट्–चटति, लिट्–चचाट, लुट्–चटिता, लुङ्–अचटीत् । णिच्–लट्–चाटयति–ते, सन्–चिचटिषति ।

चट्—१० उ०, भेदने (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–चाटयति–ते, लिट्–चाटयाचकार–चक्रे, लुङ्–चाटयिता, लृट्–चाटयिष्यति–ते, लृङ्–अचाटयिष्यत्–त, लुङ्–अचीचटत्–त । क्त–चटित ।

चण्—१ प०, दाने गतौ च (देना), लट्–चणति, लिट्–चचाण, लुट्–चणिता, लुङ्–अचणीत्, अचाणीत् । णिच्–चणयति–ते, सन्–चिचणिषति ।

चण्ड्—१ आ०, (क्रुद्ध होना), लट्–चण्डते, लिट्–चचण्डे, लुट्–चण्डिता, लुङ्–अचण्डिष्ट, '(परस्मैपदी भी है) लट्–चण्डति, लुङ्–अचण्डीत् ।

चण्ड्—१० उ०, (क्रुद्ध होना), लट्–चण्डयति–ते, लुङ्–अचचण्डत्–त, सन्–चिचण्डयिषति–ते ।

चद्—१ उ०, याचने (मांगना), लट्–चदति–ते, लिट्–चचाद, चेदे, लृट्–चदिष्यति–ते, लुङ्–अचदीत्, अचदिष्ट ।

---

१. इस धातु का आर्धधातुक लकारों मे ही प्रयोग होता है । 'छोडना' अर्थ होने पर इसको क्शा आदेश नहीं होता है । लुङ्–समचक्षिष्ट ।

चन्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–चनति, लिट्–चचान, लृट्–
चनिष्यति, लुङ्–अचनीत्, अचानीत् । णिच्–चनयति–ते, सन्–चिचनिषति ।
चत्—१० उ०, श्रद्धापहनयोः (विश्वास करना, चोट पहुँचाना), लट्–
चानयति–ते, लुङ्–अचीचनत्–त ।
चन्द्—१ प०, आह्लादे दीप्तौ च (प्रसन्न होना, चमकना) लट्–चन्दति,
लिट्–चचन्द, लुट्–चन्दिता, लुङ्–अचन्दीत्, सन्–चिचन्दिषति ।
चप्—१ प०, सान्त्वने (सान्त्वना देना), लट्–चपति, लिट्–चचाप,
लुट्–चपिता, लुङ्–अचपीत्, अचापीत् । णिच्–चापयति–ते, सन्–चिचपिषति ।
चप्—१० उ०, परिकल्पने (पीसना), लट्–चपयति–ते, लिट्–चपया-
ञ्चकार–चक्रे, लुट्–चपयिता, लुङ्–अचीचपत्–त ।
चम्प्—१० उ०, (जाना, हिलना), लट्–चम्पयति–ते, लिट्–चम्पयाञ्च-
कार–चक्रे, लुट्–चम्पयिता, लुङ्–अचचम्पत् ।
चम्—१ प०, अदने (खाना), (आ+चम्, पीना) लट्–चमति, लिट्–
चचाम, लुट्–चमिता, लृट्–चमिष्यति, लुङ्–अचमीत् । णिच्–लट्–चामयति,
लुङ्–अचीचमत्, सन्–चिचमिषति, क्त–चान्त, क्त्वा–चान्त्वा या चमित्वा ।
चय्—१ आ०, (जाना), लट्–चयते, लिट्–चेये, लुट्–चयिता, लृट्–
चयिष्यते, लुङ्–अचयिष्ट ।
चर्—१ प०, गतौ (चलना), (आ+चर्, करना) लट्–चरति, लिट्–
चचार, लुङ्–चरिता, लृट्–चरिष्यति, लृङ्–अचरिष्यत्, आ० लिङ्–चर्यात्,
लुङ्–अचारीत् । सन्–चिचरिषति, कर्म० लट्–चर्यते, लुङ्–अचारि, क्त–चरित ।
चर्—१० उ०, संशये (संदेह करना), (वि+चर्, असंशये, सन्देह
दूर करना), लट्–चारयति–ते, लुङ्–अचीचरत्–त ।
चर्च्—१ प०, परिभाषणहिंसातर्जनेषु (निन्दा करना, वार्तालाप करना),
लट्–चर्चति, लिट्–चचर्च लुट्–चर्चिता, लृट्–चर्चिष्यति, लृङ्–अचर्चिष्यत्,
लुङ्–अचर्चीत्, क्त–चर्चित ।
चर्च्—१० उ०, अध्ययने (पढ़ना, बाँचना), लट्–चर्चयति–ते, लिट्–
चर्चयाचकार–चक्रे, लुट्–चर्चयिता, लुङ्–अचचर्चत्–त ।
चर्व्—१ प०, अदने, १० उ० भक्षणे (खाना, चबाना), लट्–चर्वति,
चर्वयति–ते, लिट्–चचर्व, चर्वयाचकार–चक्रे, लुट्–चर्विता, चर्वयिता, लुङ्–अच-
र्वीत्, अचचर्वत्–त ।
चल्—१ प०, कम्पने (चलना, हिलाना), लट्–चलति, लिट्–चचाल,
लुट्–चलिता, लुङ्–अचालीत्, णिच्–लट्–चलयति–ते (चालयति–ते),
लुङ्–अचीचलत्–त, क्त–चलित ।
चल्—६ प०, विलसने, (क्रीडा करना, विलास करना), (अन्य रूप पूर्वोक्त
धातु के तुल्य) लट्–चलति ।

चल्—१० उ०, भृतौ (पालना), लट्–चालयति–ते, लिट्–चालयाचकार–चक्रे, लुङ–अचीचलत् ।

चष्—१ उ०, भक्षणे (खाना), लट्–चषति–ते, लिट्–चचाष, चेषे, लुङ–अचषीत्, अचाषीत्, अचषिष्ट ।

चह —१ प०, १० उ०, परिकल्पने (दुष्ट होना), लट्–चहति, चहयति–ते, लुङ–अचहीत्, अचचहत्–त, अचीचहत्–त (घटादि) ।

चाय्—१ उ०, पूजानिशामनयो (पूजा करा, देखना), लट्–चायति–ते, लिट्–चचाय, चचाये, लुट्–चायिता, लृट्–चायिष्यति–ते, लुङ–अचायीत्, अचायिष्ट । णिच्–लट्–चाययति–ते, लुङ–अचचायत्–त, सन्–चिचायिषति–ते ।

चि—५ उ०, चयने, (चुनना, इकट्ठा करना), लट्–चिनोति, चिनुते, लिट्–चिकाय, चिचाय, चिक्ये, चिच्ये, लुट्–चेता, लृट्–चेष्यति–ते, लृङ–अचेष्यत्–त, लुङ–अचैषीत्, अचेष्ट, आ० लिङ–चीयात्, चेषीष्ट । सन्–चिकीषति–ते, कर्म०–लट्–चीयते, लुङ–अचायि, क्त–चित, क्त्वा–चित्वा ।

चि—१० उ०, (एकत्र करना), लट्–चययति–ते, चपयति–ते, लिट्–चययाञ्चकार–चक्रे, चपयाचकार–चक्रे, लुङ–अचीचपत्–त, अचीचयत्–त ।

चिट्—१ प०, १० उ०, परप्रेष्ये (भेजना), लट्–चेटति, चेटयति–ते, लिट्–चिचेट, चेटयाचकार–चक्रे, लुट्–चेटिता, चेटयिता, लुङ–अचेटीत्, अचीचिटत्–त ।

चित्—१ प०, सज्ञाने (देखना, समझना), लट्–चेतति, लिट्–चिचेत, लुट्–चेतिता, लृट्–चेतिष्यति, लृङ–अचेतिष्यत्, लुङ–अचेतीत्, आ० लिङ–चित्यात् । सन्–चिचितिषति, चिचेतिषति, णिच्–लट्–चेतयति–ते, लुङ–अचीचितत्–त, कर्म० लट्–चित्यते, लुङ–अचेति, क्त–चित्त, क्त्वा–चितित्वा–चेतित्वा ।

चित्—१० आ०, सचेतने (देखना, चिन्तित होना), चेतयते, लुङ–अचीचितत । सन्–चिचेतयिषते ।

चित्—१० उ० सचेतने (देखना, चिन्तित होना), लट्–चेतयते, लुङ–अचीचितत । सन्–चिचेतयिषते ।

चित्र्—१० उ०, चित्रकरणे, भद्भुतदर्शने च (चित्र बनाना, आदि), लट्–चित्रयति–ते, लुङ–अचिचित्रत्–त । सन्–चिचित्रयिषति–ते ।

चिन्त्—१ प०, (सोचना), लट्–चिन्तति, लिट्–चिचिंत, लुट्–चिन्तिता, लुङ–अचिंतीत् । क्त–चिंतित ।

चिन्त्—१० उ०, स्मृत्याम् (सोचना, विचारना), लट्–चिंतयति–ते, लिट्–चिंतयाचकार–चक्रे, लुट्–चिंतयिता, लुङ–अचिचिंतत्–त, आ० लिङ–

चिरयात्, चिन्तयिषीष्ट । कर्म० लट्-चिन्त्यते, लुङ्-अचिन्ति, क्त-चिन्तित, क्त्वा-चिंतयित्वा ।

चिल्—६ प०, वसने (वस्त्र पहनना), लट्-चिलति, लिट्-चिचेल, लुट्-चेलिता, लुङ्-अचेलीत् ।

चिल्ल्—१ प०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्-चिल्लति, लिट्-चिचिल्ल लुट्-चिल्लिता, लुङ्-अचिल्लीत् । क्त-चिल्लित ।

चीक—१० उ०, १ प०, आमर्षणे (दुःख सहना), लट्-चीकयति-ते चीकति, लिट्-चीकयाञ्चकार-चक्रे, चिचीक, लुङ्-अचीचिकत्-त, अचीकीत् ।

चीभ्—१ आ०, कत्थने (आत्मप्रशंसा करना), लट्-चीभते, लिट्-चिचीभे, लुट्-चीभिता, लुङ्-अचीभिष्ट ।

चीव्—१ उ०, आदानसंवरणयोः (लेना, ढकना), लट्-चीवति-ते, लिट्-चिचीव-वे, लुट्-चीविता, लुङ्-अचीवीत्-अचीविष्ट ।

चीव्-१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्-चीवयति-ते ।

चुच्य्—१ प० अभिषवे (नहाना), लट्-चुच्यति, लिट्-चुचुच्य, लृट्-चुच्यिष्यति, लुङ्-अचुच्यीत् ।

चुट्—६ प०, छेदने (कुटादि) (काटना), लट्-चुटति, लिट्-चुचोट, लुट्-चुटिता, लुङ्-अचुटीत् ।

चुड्—६ प०, संवरणे (कुटादि) (छिपाना), लट्-चुडति, लिट्-चुचोड, लुट्-चुडिता, लुङ्-अचुडीत् ।

चुण्ट्—१० उ०, १ प०, छेदने (काटना), लट्-चुण्टयति-ते, चुण्टति, लुङ्-अचुचुण्टत्-त, अचुण्टीत् ।

चुद्—१० उ०, संचोदने (प्रेरणा देना, फेंकना), लट्-चोदयति-ते, लिट्-चोदयाचकार-चक्रे, लुट्-चोदयिता, लृट्-चोदयिष्यति-ते, लृङ्-अचोदयिष्यत्-त, लुङ्-अचूचुदत्-त । सन्-चुचोदयिषति-ते, क्त-चोदित ।

चुप्—१ प०, मन्दायां गतौ (धीरे-धीरे जाना), लट्-चोपति, लिट्-चुचोप, लुट्-चोपिता, लुङ्-अचोपीत् । सन्-चुचु-चो-पिषति ।

चुम्ब्—१ प०, वक्त्रसंयोगे (चुम्बन करना), लट्-चुम्बति, लिट्-चुचुम्ब, लुट्-चुम्बिता, लुङ्-अचुम्बीत् । सन्-चुचुम्बिषति, क्त-चुम्बित ।

चुम्ब्—१० उ०, हिंसायाम् (मारना), लट्-चुम्बयति-ते, लिट्-चुम्बयाचकार-चक्रे, लुट्-चुम्बयिता, लुङ्-अचुचुम्बत्, क्त-चुम्बित ।

चुर्—१० उ०, स्तेये (चुराना, लूटना, लेना), लट्-चोरयति-ते, लिट्-चोरयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-चोरयिता, लृट्-चोरयिष्यति-ते, लुङ्-अचूचुरत्-त, आ० लिङ्-चोर्यात्, चोरयिषीष्ट । सन्-चुचोरयिषति-ते, कर्म०-चोर्यते, लुङ्-अचोरि, क्त-चोरित, क्त्वा-चोरयित्वा ।

चुप्—१० उ०, समुच्छ्राये (उठाना), लट्—चोलयति—ते, लुङ्—अचूचुलत्—त ।

चूर्—४ आ०, दाहे (जलाना), लट्—चूर्यते, लिट्—चुचूरे, लुङ्—अचूरिष्ट । क्त—चूर्ण ।

चूर्ण—१० उ०, प्रेरणे सकोचने (चूरा करना, सकुचित करना), लट्—चूर्णयति—ते, लिट्—चूर्णयाचकार—चक्रे, लुट्—चूर्णयिता, लृट्—चूर्णयिष्यति—ते, लृङ्—अचूर्णयिष्यत्—त, लुङ्—अचुचूर्णत्—त, क्त—चूर्णित ।

चूष्—१ प०, पाने (पीना, चूसना), लट्—चूषति, लिट्—चुचूष, लुट्—चूषिता, लुङ्—अचूषीत् । सन्—चुचूषिषति, क्त—चूषित ।

चृत्—६ प०, हिंसाग्रन्थनयो. (मारना, चोट पहुँचाना, मिलाना), लट्—चृन्तति, लिट्—चचर्त, लुट्—चर्तिता, लुङ्—अचर्तीत् । सन्—चिचर्तिषति, चिचृत्सति ।

चृप्—१० उ०, सदीपने (जलाना), लट्—चर्पयति—ते, लिट्—चर्पयाचकार—चक्रे, लुट्—चर्पयिता, लुङ्—अचीचृपत्—त, अचचर्पत्—त, (१ पर० भी है) लट्—चर्पति, लुङ्—अचर्पीत् ।

चेल्—१ प०, चलने (हिलना, जाना), लट्—चेलति, लिट्—चिचेल, लुट्—चेलिता, लुङ्—अचेलीत् ।

चेष्ट्—१ आ०, चेष्टायाम् (चेष्टा करना, यत्न करना), लट्—चेष्टते, लिट्—चिचेष्टे, लुट्—चेष्टिता, लृट्—चेष्टिष्यते, लुङ्—अचेष्टिष्ट, आ० लिङ्—चेष्टिषीष्ट । सन्—चिचेष्टिषते, णिच्—लट्—चेष्टयति, लुङ—अचिचेष्टत्—अचचेष्टत्, कर्म०—लट्—चेष्टयते, क्त—चेष्टित ।

च्यु—१ आ०, गतौ (जाना, उतरना), लट्—च्यवते, लिट्—चुच्युवे, लुट्—च्योता, लृट्—च्योष्यते, लुङ—अच्योष्ट, आ० लिङ्—च्योषीष्ट । णिच्—च्यावयति—ते, सन्—चुच्यूषते, क्त—च्युत ।

च्युत्—१ प०, आसेचने (बहना, गिरना), लट्—च्योतति, लिट्—चुच्योत, लुट्—च्योतिता, लृट्—च्योतिष्यति, लुङ—अच्युतत्, अच्योतीत्, आ० लिङ्—च्युत्यात् । णिच्—लट्—च्योतयति—ते, लुङ—अचुच्युतत्—त, सन्—चिच्युतिषति, चिच्योतिषति, क्त—च्युतित, च्योतित ।

छ

छद्—१ उ०, आच्छादने (ढकना), लट्—छदति—ते, लिट्—चच्छाद, चच्छदे, लुट्—छदिता, लुङ—अच्छदीन्, अच्छादीत्, अच्छदिष्ट । सन्—चिच्छदिषति—ते, क्त—छन्न, कर्म० लट्—छद्यते, लुङ—अच्छादि, णिच्—छादयति—ते ।

छद्—१० उ० (छिपाना), लट्—छादयति—ते, लिट्—छादयांचकार—चक्रे, लुट्—छादयिता, लुङ—अचिच्छदत—त । सन्—चिच्छादयिषति—ते, क्त—छन्न, छादित ।

छमु्—१ प०, अदने (खाना), लट्—छमति, लिट्—चच्छाम, लुट्—छमिता,
लुङ—अच्छमीत्, अच्छामीत् । क्त—छान्त, क्त्वा—छमित्वा, छान्त्वा ।
छर्द्—१० उ०, वमने (उगलना), लट्—छर्दयति—ते, लिट्—छर्दयाचकार—
चक्रे, लुट्—छर्दयिता, लुङ—अचिच्छर्दत्—त । सन्—चिच्छर्दयिषति—ते, क्त—छर्दित ।
छिद्—७ उ०, द्वैधीकरणे (काटना), लट्—छिनत्ति, छिन्ते, लिट्—चिच्छेद,
चिच्छिदे, लुट्—छेत्ता, लृट्—छेत्स्यति—ते, लृङ—अच्छेत्स्यत्—त, आ० लिङ—
छिद्यात्, छेत्सीष्ट, लुङ—अच्छिदत्, अच्छैत्सीत्—अच्छित्त । सन्—चिच्छित्सति—
ते, क्त—छिन्न ।
छिद्र्—१० उ०, भेदने (छेद करना), लट्—छिद्रयति—ते, लुङ—अचिच्छिद्रत्
—त । सन्—चिच्छिद्रयिषति—ते ।
छुट्—६ प०, भेदने (रखना), लट्—छुटति, लिट्—चुच्छोट, लुट्—छुटिता,
लुङ—अच्छुटीत् ।
छुप्—६ प०, स्पर्शे (छूना), लट्—छुपति, लिट्—चुच्छोप, लुट्—छोप्ता,
लृट्—छोप्स्यति, लृङ—अच्छोप्स्यत्, लुङ—अच्छौप्सीत् ।
लृट्—छोप्स्यति, लृङ—अच्छोप्स्यत्, लुङ—अच्छौप्सीत् ।
छुर्—६ प०, भेदने, (कुटादि), (काटना), लट्—छुरति, लिट्—चुच्छोर,
लृट्—छुरिष्यति, लुङ—अच्छुरीत् । सन्—चुच्छुरिषति ।
छृद्—१ प०, १० उ०, सदीपने (जलाना), लट्—छर्दति, छर्दयति—ते,
लिट्—चच्छर्द, छर्दयाचकार—चक्रे, लुट्—छर्दिता, छर्दयिता, लृट्—छर्दिष्यति,
छर्दयिष्यति—ते, लृङ—अच्छर्दिष्यत्, अच्छर्दयिष्यत्—त, लुङ—अच्छर्दीत्, अचि-
छृदत्—त, अचच्छर्दत्—त ।
छृद्—७ उ०, दीप्तिदेवनयो (चमकना, खेलना, कै करना) लट्—छृणन्ति,
छृन्ते, लिट्—चच्छर्द, चच्छृदे, लुट्—छर्दिता, लृट्—छर्दिष्यति—ते, छर्त्स्यति—ते,
लुङ—अच्छर्दत्—अच्छर्दीत्—अच्छर्दिष्ट, आ० लिङ—छृद्यात्, छर्दिषीष्ट—छृत्सीष्ट ।
सन्—चिच्छर्दिषति—ते, चिच्छृत्सति—ते ।
छेद्—१० उ०, द्वैधीकरणे (काटना), लट्—छेदयति—ते, लृट्—छेदयिष्यति,
लुङ—अचिच्छेदत्—त ।
छो—४ प०, छेदने (काटना), लट्—छ्यति, लिट्—चच्छौ, लुट्—छाता,
लृट्—छास्यति, लृङ—अच्छास्यत्, लुङ—अच्छात्, अच्छासीत् । सन्—चिच्छासति,
क्त—छात—छित, क्त्वा—छात्वा—छित्वा, कर्म०—लट्—छायते, लुङ—अच्छायि ।

ज

जक्ष्—२ प०, भक्ष्यहसनयो (खाना, हँसना), लट्—जक्षिति, लङ—अजक्षत्,
अजक्षीत्, लिट्—जजक्ष, लुट्—जक्षिता, लृट्—जक्षिष्यति, लृङ—अजक्षिष्यत्, लुङ—
अजक्षीत्, आ० लिङ—जक्ष्यात् । णिच्—लट्—जक्षयति, लुङ—अजजक्षत् । सन्—
जिजक्षिषति, क्त—जक्षित ।
जज्—जञ्ज्—१ प०, युद्धे (लडना), लट्—जजति, जञ्जति, लिट्—
जजाज, जजञ्ज, लुट्—जजिता, जञ्जिता, लुङ—अजजीत्, अजाजीत्, अजञ्जीत् ।

जट्—१ प०, सघाते (इकट्ठा होना, ऐंठा हुआ होना), लट्–जटति; लिट्–जजाट, लुट्–जटिता, लुङ–अजटीत्, अजाटीत् ।

जड्–पूर्ववत् रूप चलेंगे ।

जन्—४ आ०, प्रादुर्भावे (उत्पन्न होना), लट्–जायते, लिट्–जज्ञे, लुट्–जनिता, लृट्–जनिष्यते, लृङ–अजनिष्यत, लुङ–अजनि, अजनिष्ट, आ० लिङ–जनिषीष्ट । सन्–जिजनिषति, कर्म० लट्–जन्यते–जायते, लुङ–अजनि, णिच्–लट्–जनयति, लुङ–अजीजनत्, सन्–जिजनिषते, क्त्वा–जनित्वा, ल्यप् (य) –सजाय, सजन्य, क्त–जात ।

जप्—१ प०, व्यक्ताया वाचि मानसे च (जप करना), जपति, लिट्–जजाप, लुट्–जपिता, लृट्–जपिष्यति, लृङ–अजपिष्यत्, लुङ–अजपीत्, अजापीत्, आ० लिङ–जप्यात् । सन्–जिजपिषति, कर्म० लट्–जप्यते, लुङ–अजापि, णिच्–लट्–जापयति–ते, लुङ–अजीजपत्–त, क्त–जपित ।

जभ्—१ आ०, ' गात्रविताने (जँभाई लेना), लट्–जम्भते, लिट्–जजम्भे, लुट्–जम्भिता, लुङ–अजम्भिष्ट, आ० लिङ–जम्भिषीष्ट । सन्–जिजम्भिषते । णिच्–लट्–जम्भयति, लुङ–अजजम्भत्, कर्म०–जम्यते, लुङ–अजम्भि ।

जम्—१ प०, अदने (खाना), लट्–जमति, लिट्–जजाम, लुट्–जमिता, लुङ–अजमीत् । क्त–जान्त ।

जम्भ्—१ प०, १० उ०, नाशने (नष्ट करना), लट्–जम्भति, जम्भयति–ते, लिट्–जम्भयाचकार–जजम्भ, लुङ–अजम्भीत्, अजजम्भत् ।

जल्—१ प०, घातने (तीक्ष्ण होना), लट्–जलति, लुङ–अजालीत् ।

जल्—१० उ०, अपवारणे (ढकना), लट्–जालयति–ते, लुङ–अजीजलत् ।

जल्प्—१ प०, व्यक्ताया वाचि (कहना, बकवाद करना), लट्–जल्पति, लिट्–जजल्प, लुट्–जल्पिता, लृट्–जल्पिष्यति, लृङ–अजल्पिष्यत्, लुङ–अजल्पीत् । सन्–जिजल्पिषति । कर्म०–लट्–जल्प्यते, लुङ–अजल्पि, क्त–जल्पित ।

जष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, हिंसा करना), लट्–जपति, लिट्–जजाप, लुट्–जपिता, लुङ–अजषीत् ।

जस्—४ प०, मोक्षणे (छोडना, मुक्त करना,) लट्–जस्यति, लिट्–जजास, लुट्–जसिता, लुङ–अजसत्, क्त–जस्त ।

जस्—१० उ०, १ प० हिंसायां ताडने च (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–जासयति–ते, जसति, लिट्–जासयाचकार–चक्रे, जजास, लुट्–जासयिता, जसिता, लुङ–अजीजसत्–त, अजसीत्, अजासीत् । सन्–जिजासयिषति–ते, जिजसिषति ।

जस्—१० उ०, १ प०, रक्षणे मोक्षणे च (रक्षा करना, छोडना), लट्–जसयति–ते, जसति, लुङ–अजजसत्–त, अजसीत् ।

जागृ—२ प०, निद्राक्षये (जागना), लट्–जागर्ति, लिट्–जजागार–गर और जागराञ्चकार, लुट्–जागरिता, लृट्–जागरिष्यति, लृङ–अजागरिष्यत्,

लुङ्–अजागरीत्, आ० लिङ्–जागर्यात् । सन्–जिजागरिषति । कर्म०–लट्–जागर्यते, लुङ्–अजागारि, णिच्–लट्–जागरयति–ते, क्त–जागरित ।

जि[1]—१ प०, जये अभिभवे च (जीतना), लट्–जयति, लिट्–जिगाय, लुट्–जेता, लृट्–जेष्यति, लृङ्–अजेष्यत्, लुङ्–अजैषीत्, आ० लिङ्–जीयात्, सन्–जिगीषति, णिच्–लट्–जापयति–ते, लुङ्–अजीजपत्–त, यङ्–जेजीयते, जेजयीति, जेजेति । क्त–जित, क्त्वा–जित्वा, तुम्–जेतुम् ।

जिन्व्—१ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–जिन्वति, लिट्–जिजिन्व, लुङ्–अजिन्वीत् ।

जिन्व्—१ प०, १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–जिन्वति, जिन्वयति, लिट्–जिजिन्व, जिन्वयाचकार, लुट्–जिन्विता, जिन्वयिता, लुङ्–अजिन्वीत्, अजिजिन्वत्–त ।

जिम्—१ प०, भक्षणे (खाना), लुट्–जेमति, लिट्–जिजेम, लुङ्–अजेमीत्, क्त–जिन्त ।

जिरि—५ प०, (हिंसा करना), लट्–जिरिणोति (वैदिक) ।

जिष्—१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–जेषति, लिट्–जिजेष, लुट्–जेषिता, लृट्–जेषिष्यति, लुङ्–अजेषीत्, क्त्वा–जेषित्वा, जिष्ट्वा ।

जीव्—१ प०, प्राणधारणे (जीना), लट्–जीवति, लिट्–जिजीव, लुट्–जीविता, लृट्–जीविष्यति, लृङ्–अजीविष्यत्, लुङ्–अजीवीत् । कर्म० लट्–जीव्यते, लुङ्–अजीवि । णिच्–लट्–जीवयति–ते, क्त्वा–जीवित्वा, तुम्–जीवितुम्, क्त–जीवित ।

जुट्—६ प० (कुटादि) बन्धने (बाँधना), लट्–जुटति, लिट्–जुजोट, लुङ्–अजुटीत् ।

जुड्—६ प०, गतौ (जाना), लट्–जुडति, लुङ्–अजोडीत् ।

जुत्—१ आ०, भासने (चमकना) लट्–जोतते, लृट्–जोतिष्यते, लुङ्–अजोतिष्ट ।

जुष्—६ आ०, प्रीतिसेवनयो (चाहना, सेवन करना), लट्–जुषते, लिट्–जुजुषे, लुट्–जोषिता, लुङ्–अजोषिष्ट । कर्म० लट्–जुष्यते, लुङ्–अजोषि, णिच्–लट्–जोषयति–ते, लुङ्–अजूजुषत्–त । सन्–जुजोषिषते, जुजुषिषते, क्त–जुष्ट ।

जुष्—१ प०, १० उ०, परितर्कणे परितर्पणे च (सोचना, परीक्षा करना, तृप्त होना), लट्–जोषति और जोषयति–ते, लिट्–जुजोष और जोषयाचकार–चक्रे, लुट्–जोषिता, जोषयिता, लुङ्–अजोषीत्–अजूजुषत्–त । सन्–जुजोषिषते, जुजोषयिषति–ते, क्त–जुष्ट ।

१. वि और परा उपसर्ग पहले होने पर यह आत्मनेपदी है ।

जूर्—४ आ०, हिंसावयोहान्योः (मारना, वृद्ध होना), लट्–जूर्यते, लिट्–जुजूरे, लुङ्–अजूरिष्ट ।

जूष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–जूषति, लुङ्–अजूषीत् ।

जृम्भ्—१ आ०, गात्रविनामे (जँभाई लेना), लट्–जृम्भते, लिट्–जजृम्भे, लुट्–जृम्भिता, लृट्–जृम्भिष्यते, लुङ्–अजृम्भिष्ट । सन्–जिजृम्भिषते, क्त–जृम्भित ।

जॄ—४ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–जीर्यति, लिट्–जजार, लुट्–जरिता–जरीता, लृट्—जरिष्यति, जरीष्यति, लृङ्–अजरिष्यत्, अजरीष्यत्, लुङ्–अजारीत्, अजरत्, आ० लिङ्–जीर्यात् । सन्–जिजरिषति, जिजरीषति, जिजीर्षति, णिच्–लट्–जरयति–ते, कर्म०–लट्–जीर्यते, क्त–जीर्ण ।

जॄ—१ और ६ प०, (जीर्ण होना), लट्–जरति, जृणाति, लिट्–जजार, लुट्–जरिता, जरीता, लुङ्–अजारीत् । णिच् लट्–जारयति–ते ।

जॄ—१० उ० (वृद्ध होना), लट्–जारयति–ते, लिट्–जारयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–जारयिता, लुङ्–अजीजरत्–त । सन्–जिजारयिषति–ते ।

जेष्—१ आ०, (जाना), लट्–जेषते, लिट्–जिजेषे, लुट्–जेषिता, लुङ्–अजेषिष्ट ।

जेह्—१ आ०, प्रयत्ने गतौ च (प्रयत्न करना, जाना), लट्–जेहते, लिट्–जिजेहे, लुट्–जेहिता, लुङ्–अजेहिष्ट ।

जै—१ प०, क्षये (क्षीण होना), लट्–जायति, लिट्–जजौ, लुट्–जाता, लुङ्–अजासीत् । सन्–जिजासति ।

ज्ञप्—१० उ०, ज्ञाने ज्ञापने च (जानना, बताना, देखना, प्रसन्न करना), लट्–ज्ञापयति–ते, लिट्–ज्ञापयाचकार–चक्रे, लुट्–ज्ञापयिता, लृट्–ज्ञापयिष्यति, –ते, लृङ्–अज्ञपयिष्यत्–त, लुङ्–अजिज्ञपत्–त । सन्–ज्ञीप्सति–ते । कर्म०–लट्–ज्ञप्यते, लुङ्–अज्ञपि, अज्ञापि, क्त–ज्ञप्त, ज्ञपित ।

ज्ञा—९ उ०, अवबोधने (जानना), लट्–जानाति, जानीते, लिट्–जज्ञौ, जज्ञे, लुट्–ज्ञाता, लृट्–ज्ञास्यति–ते, लृङ्–अज्ञास्यत्–त, लुङ्–अज्ञासीत्, अज्ञास्त, आ० लिङ्–ज्ञायात्–ज्ञेयात्, ज्ञासीष्ट । सन्–जिज्ञासति–ते, णिच्–लट्–ज्ञापयति–ते और ज्ञपयति–ते (प्रशंसा करना, मारना और दिखलाना अर्थों में), लुङ्–अजिज्ञपत्–त । कर्म०–लट्–ज्ञायते, लुङ्–अज्ञायि, तुम्–ज्ञातुम्, क्त्वा–ज्ञात्वा, क्त–ज्ञात ।

ज्ञा—१० उ०, नियोगे (प्रेरित करना), लट्–ज्ञापयति–ते, लिट्–ज्ञापयाचकार–चक्रे, लुट्–ज्ञापयिता, लृट्–ज्ञापयिष्यति–ते । कर्म० ज्ञाप्यते, क्त–ज्ञापित ।

ज्या—९ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–जिनाति, लिट्–जिज्यौ, लुट्–ज्याता, लृट्–ज्यास्यति, लृङ–अज्यास्यत्, लुङ–अज्यासीत्, आ० लिङ–जीयात्। सन्–जिज्यासति, कर्म०–जीयते, लुङ–अज्यायि, णिच्–लट्–ज्यापयति–ते, क्त–जीन, क्त्वा–जीत्वा।

ज्युं—१ आ०, (जाना), लट्–ज्यवते, लिट्–जुज्युवे, लुट्–ज्योता, लुङ–अज्योष्ट।

ज्रि—१ प०, जये अभिभवे च (जीतना, हराना), लट्–ज्रयति, लिट्–जिज्राय, लुट्–ज्रेता, लुङ–अज्रैषीत्।

ज्रि—१० उ०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–ज्राययति–ते, लिट्–ज्राययाञ्चकार–चक्रे, लुट्–ज्राययिता, लुङ–अजिज्रयत्–त।

ज्वर्—१ प०, रोगे (ज्वर या काम से पीडित होना), लट्–ज्वरति, लिट्–जज्वार, लुट्–ज्वरिता, लृट्–ज्वरिष्यति, लुङ–अज्वारीत्। णिच्–ज्वरयति–ते, अजिज्वरत्–त, सन्–जिज्वरिषति, क्त–जूर्ण।

ज्वल्—१ प०, दीप्तौ (जलना, चमकना), लट्–ज्वलति, लिट्–जज्वाल, लुट्–ज्वलिता, लृट्–ज्वलिष्यति, लुङ–अज्वालीत्। णिच्–लट्–ज्वलयति–ते, ज्वालयति–ते (प्र+ज्वल्–प्रज्वलयति–ते), सन्–जिज्वलिषति, क्त–ज्वलित।

झ

झट्—१ प०, सघाते (एकत्र होना, जटारूप होना), लट्–झटति, लुङ–अझटीत्–अझाटीत्।

झम्—१ प०, अदने (खाना), लट्–झमति, लुट्–झमिता, लुङ–अझमीत्।

झष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–झषति, लिट्–जझाष, लुट्–झषिता, लुङ–अझषीत्–अझाषीत्।

झष्—१ उ०, आदानसंवरणयोः (लेना, पहनना, छिपाना), लट्–झषति–ते, लिट्–जझाष, जझषे, लुट्–झषिता, लुङ–अझषीत्, अझाषीत्, अझषिष्ट।

झॄ—४, ९ प०, वयोहानौ (वृद्ध होना), लट्–झीर्यति, झृणाति, लिट्–जझार, लुट्–झरिता, झरीता, लुङ–अझारीत्।

ट

टङ्क्—१ प०, १० उ०, (बाँधना), लट्–टङ्कति, टङ्कयति–ते, लिट्–टटङ्क, टङ्कयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–टङ्किता, टङ्कयिता, लुङ–अटङ्कीत्, अटटङ्कत्–त, क्त–टङ्कित।

टल्—१ प०, वैक्लव्ये (व्याकुल होना), लट्–टलति, लिट्–टटाल, लुट्–टलिता, लुङ–अटालीत्।

टिक्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–टेकते, लिट्–टिटिके, लुट्–टेकिता, लुङ–अटेकिष्ट। णिच्–लट्, टेकयति–ते, लुङ–अटिटेकत्–त।

टिप्—१० उ०, क्षेपे (फेंकना, भेजना), लट्–टेपयति–ते, लिट्–टेपयाचकार–चक्रे, लुट्–टेपयिता, लुङ–अटिटेपत्–त ।

टीक्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–टीकते, लिट्–टिटीके, लुट्–टीकिता, लुङ–अटीकिष्ट । सन्–टिटीकिषते ।

टौक्—१ आ०, (जाना), लट्—टौकते, लुङ–अटौकिष्ट ।

ड

डप्—१० आ०, सघाते (इकट्ठा करना), लट्–डापयते, लिट्–डापयाचक्रे, लुट्–डापयिता, लुङ–अडीडपत ।

डम्ब्—१० आ०, क्षेपे (फेंकना, भेजना), लट् डम्बयति–ते, लिट्–डम्बयाचकार–चक्रे, लुट्–डम्बयिता, लृट्–डम्बयिष्यति–ते, लुङ–अडडम्बत्–त ।

डिप्—४ प०, क्षेपे, (फेंकना), लट्–डिप्यति, लिट्–डिडेप, लुट्–डेपिता, लुङ–अडिपत् ।

डिप्—१० आ०, सघाते (इकट्ठा करना), लट्–डेपयते, लिट्–डेपयाचक्रे, लुट्–डेपयिता, लुङ–अडीडिपत ।

डी—१ आ०, विहायसा गतौ (उडना, जाना), लट्–डयते, लिट्–डिड्ये, लुट्–डयिता, लृट्–डयिष्यते, लुङ–अडयिष्ट, आ० लिङ–डयिषीष्ट । णिच्–डाययति–ते, लुङ–अडीडयत्–त, सन्–डिडयिषते, क्त–डयित, डान ।

डी—४ आ० (जाना, उडना), लट्–डीयते, लिट्–डिड्ये । क्त–डीन ।

डुल्—१० उ० (ऊपर फेंकना), लट्–डोलयति–ते, लिट्–डोलयाचकार–चक्रे, लुट्–डोलयिता, लुङ–अडूडुलत्–त ।

ढ

ढौक्—१ आ०, गतौ (जाना, पहुँचना), लट्–ढौकते, लिट्–डुढौके, लुट्–ढौकिता, लृट्–ढौकिष्यते, लुङ–अढौकिष्ट, आ० लिङ–ढौकिषीष्ट । णिच्–लट्–ढौकयति–ते, लुङ–अडुढौकत्–त । सन्–डुढौकिषते । कर्म०–ढौक्यते, क्त–ढौकित ।

त

तक्—१ प०, हसने सहने च (हँसना, सहन करना), लट्–तकति, लिट्–तताक, लुट्–तकिता, लुङ–अतकीत्, अताकीत् । क्त–तकित ।

तक्ष्—१ प०, त्वचने (त्वचन सवरण त्वचो ग्रहण च) (छिपाना, छीलना), लट्–तक्षति, लिट्–ततक्ष, लुट्–तक्षिता, लुङ–अतक्षीत् ।

तक्ष्—१ प०, तनूकरणे (छीलना, काटना), लट्–तक्षति, तक्ष्णोति, (सार्वधातुक लकारो मे विकल्प से स्वादिगणी भी है), लिट्–ततक्ष, लुट्–तक्षिता, लृट्–तक्षिष्यति, तक्ष्यति, लुङ–अतक्षीत् । णिच्–लट्–तक्षयति । क्त–तष्ट, क्त्वा–तक्षित्वा–तष्ट्वा ।

तङ्ग्—१ प०, गतौ स्खलने कम्पने च (जाना, लड़खड़ाना, हिलाना), लट्–तङ्गति, लिट्–ततङ्ग, लुट्–तङ्गिता, लुङ्–अतङ्गीत् । क्त–तङ्गित ।

तञ्च्—१ प०, (जाना), लट्–तञ्चति, लिट्–ततञ्च, लुट्–तञ्चिता, लुङ्–अतञ्चीत् । क्त–तक्त, क्त्वा–तञ्चित्वा, तक्त्वा ।

तञ्च्—७ प०, सकोचने (संकुचित होना, सिकुड़ना), लट्–तनक्ति, लिट्–ततञ्च, लुट्–तक्ता, तञ्चिता, लृट्–तङ्क्ष्यति, तञ्चिष्यति, लुङ्–अतञ्चीत्, अताङ्क्षीत् । णिच्–तञ्चयति–ते । सन्–तितञ्चिषति, तितङ्क्षति ।

तञ्ज्—तञ्च् के तुल्य ।

तट्—१ प०, उच्छ्राये (उगना), लट्–तटति, लिट्–तताट, लुट्–तटिता, लुङ्–अतटीत्–अताटीत् ।

तड्—१० उ०, आघाते भाषाया च (पीटना), लट्–ताडयति–ते, लिट्–ताडयाचकार–चक्रे, लुट्–ताडयिता, लृट्–ताडयिष्यति–ते, लुङ्–अतीतडत्–त । कर्म०–लट्–ताडयते, क्त–ताडित ।

तण्ड्—१ आ०, ताडने (पीटना), लट्–तण्डते, लिट्–ततण्डे, लुट्–तण्डिता, लुङ्–अतण्डिष्ट ।

तन्—८ उ०, विस्तारे (फैलाना, जाना), लट्–तनोति, तनुते, लिट्–ततान, तेने, लुट्–तनिता, लृट्–तनिष्यति, ते, लुङ्–अतनीत्, अतानीत्, अतनिष्ट, अतत, आ० लिङ्–तन्यात्–तनिषीष्ट । सन्–तितांसति–ते, तितसति–ते, तितनिषति–ते, कर्म०–लट्–तन्यते–तायते, लुङ्–अतानि, णिच्–लट्–तानयति–ते, लुङ्–अतीतनत–त, क्त–तत, क्त्वा–तनित्वा, तत्वा ।

तन्—१ प०, १० उ०, श्रद्धोपकरणयो: (विश्वास करना, साधन होना), लट्–तनति, तानयति–ते, लुङ्–अतनीत्, अतानीत्, अतीतनत्–त ।

तन्त्र्—१० आ०, कुटुम्बधारणे (पालन करना, स्वामी होना), लट्–तन्त्रयते, लिट्–तन्त्रयाचक्रे, लुङ्–अततन्त्रत । तितन्त्रयिषते, कर्म०–तन्त्र्यते ।

तप्—१ प०, सतापे, (तपाना, चमकना), लट्–तपति, लिट्–तताप, लुट्–तप्ता, लुङ्–अताप्सीत्, आ० लिङ्–तप्यात् । सन्–तितप्सति, कर्म०–लट्–तप्यते, लुङ्–अतप्त । णिच्–लट्–तापयति–ते, लुङ्–अतीतपत्–त, क्त–तप्त ।

तप्—४ आ०, ऐश्वर्ये (शासन करना, शक्तियुक्त होना), लट्–तप्यते, लिट्–तेपे, लुट्–तप्ता, लृट्–तप्स्यते, लङ्–अतप्स्यत, लुङ्–अतप्त, आ० लिङ्–तप्सोष्ट, क्त–तप्त ।

तप्—१० उ०, (तपाना), लट्–तापयति–ते, लिट्–तापयाचकार–चक्रे, लुट्–तापयिता, लुङ्–अतीतपत्–त ।

तम्—४ प०, काङ्क्षाया खेदे च (चिन्तित होना, थका हुआ होना), लट्–ताम्यति, लिट्–ततास, लुट्–तमिता, लृट्–तमिष्यति, लृङ्–अतमिष्यत्, लुङ्–अतमत्, क्त–तान्त, क्त्वा–तमित्वा, तान्त्वा ।

तय्—१ आ०, (जाना), लट्–तयते, लिट्–तेये, लुट्–तयिता, लुङ्–अतयिष्ट ।

तर्क्—१० उ०, वितर्के (अनुमान करना, तर्क करना), लट्–तर्कयति–ते, लिट्–तर्कयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–तर्कयिता, लृट्–तर्कयिष्यति–ते, लृङ्–अतर्कयिष्यत्–त, लुङ्–अततर्कत्–त, क्त–तर्कित, क्त्वा–तर्कयित्वा ।

तर्ज्—१ प०, भर्त्सने (डराना, धमकाना), लट्–तर्जति, लिट्–ततर्ज, लुट्–तर्जिता, लृट्–तर्जिष्यति, लृङ्–अतर्जिष्यत्, लुङ्–अतर्जीत् । सन्–तितर्जिषति, क्त–तर्जित ।

तर्ज्—१० आ०, भर्त्सने (आक्षेप लगाना), लट्—तर्जयते, लिट्–तर्जयाचक्रे, लुट्–तर्जयिता, लुङ्–अततर्जत, क्त–तर्जित ।

तर्द्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–तर्दति, लिट्–ततर्द, लुट्–तर्दिता, लुङ्–अतर्दीत् ।

तल्—१० उ०, प्रतिष्ठायाम् (स्थिर होना), लट्–तालयति–ते ।

तस्—४ प०, उपक्षये (क्षीण होना), लट्–तस्यति, लुङ्–अतसत् ।

तंस्—१ प०, १० उ०, अलकरणे (सजाना), लट्–तंसति और तंसयति–ते, लिट्–ततंस, तंसयाचकार–चक्रे, लुट्–तंसिता, तंसयिता, लुङ्–अतंसीत्, अततंसत्–त ।

ताय्—१ आ०, संतानपालनयोः (फैलाना, रक्षा करना), लट्–तायते, लिट्–तताये, लुट्–तायिता, लुङ्–अतायिष्ट, अतायि । णिच् लट्–तायति–ते, लुङ्–अततायत्–त । सन्—तितायिषते ।

तिक्—१ आ०, (जाना), लट्–तेकते, लुट्–तेकिता, लुङ्–अतेकिष्ट ।

तिक्—५ प०, आस्कन्दने वधे च (आक्रमण करना), लट्–तिक्नोति, लिट्–तितेक, लुट्–तेकिता, लुङ्–अतेकीत् ।

तिग्—५ प० (आक्रमण करना), लट्–तिग्नोति, लिट्–तितेग, लुट्–तेगिता, लुङ्–अतेगीत् ।

तिघ्—५ प०, हिंसायाम् (हानि पहुँचाना), लट्–तिघ्नोति, लिट्–तितेघ, लुट्–तेघिता, लुङ्–अतेघीत् ।

तिज्—१ आ०, क्षमायाम् (सहन करना), लट्–तितिक्षते, लिट्–तितिक्षाचक्रे, लुट्–तितिक्षिता, लृट्–तितिक्षिष्यते, लुङ्–अतितिक्षिष्ट, आ० लिङ्–तितिक्षिषीष्ट । सन्–तितिक्षिषते, णिच्–तितिक्षयति–ते । (जब इसका अर्थ तीक्ष्ण करना होगा, निशाने), लट्–तेजते, लृट्–तेजिष्यते, लुङ्–अतेजिष्ट ।

तिज्—१० उ०, निशाने (तीक्ष्ण करना) लट्–तेजयति–ते, लिट्–तेजयाचकार–चक्रे, लुट्–तेजयिता, लुङ्–अतीतिजत्–त ।

तिप्—१ आ०, क्षरणे (सींचना, टपकाना), लट्–तेपते, लिट्–तितिपे, लुट्–तेप्ता, लृट्–तेप्स्यते, लृङ्–अतेप्स्यत, आ० लिङ्–तिप्सीष्ट, लुङ्–अतिप्त ।

तिम्--४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना), लट्-तिम्यति, लिट्-तितेम, लुट्-तेमिता, लुङ्-अतेमीत् । सन्-तितिमिषति, तितेमिषति, यङ्-तेतिम्यते ।

तिल्--१ प०, गतौ (जाना), लट्-तेलति, लिट्-तितेल, लुट्-तेलिता, लुङ्-अतेलीत् ।

तिल्--६ प० और १० उ० (चिकना होना), लट्-तिलति, तेलयति-ते, लिट्-तितेल, तेलयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-तेलिता, तेलयिता, लुङ्-अतेलीत्, अतीतिलत्-त ।

तिल्ल्--१ प०, (जाना), लट्-तिल्लति, लुङ्-अतिल्लीत् ।

तीक्--१ आ०, (जाना), लट्-तीकते, लिट्-तितीके, लुट्-तीकिता, लुङ्-अतीकिष्ट ।

तीम्--४ प०, क्लेदने (गीला होना), लट्-तीम्यति, लुङ्-अतीमीत् ।

तीव्--१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना), लट्-तीवति, लिट्-तितीव, लुट्-तीविता, लुङ्-अतीवीत् ।

तु--२ प०, गतिवृद्धिहिंसासु (जाना, मारना, उगना), लट्-तौति, तवीति, लिट्-तुताव, लुट्-तोता, लृट्-तोष्यति, लङ्-अतौत्, लुङ्-अतावीत् ।

तुज्--१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्-तोजति, लिट्-तुतोज, लुट्-तोजिता, लुङ्-अतोजीत् ।

तुञ्ज्--१ प०, प्रापणे हिंसायां बले च (पहुँचना, मारना, शक्तिशाली होना), लट्-तुञ्जति, लिट्-तुतुञ्ज, लुट्-तुञ्जिता, लुङ्-अतुञ्जीत् ।

• तुज्, तुञ्ज्--१० उ०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु (मारना, शक्तिशाली होना, जीना), लट्-तोजयति-ते, तुञ्जयति-ते, लिट्-तोजयाञ्चकार-चक्रे, तुञ्जयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-तोजयिता, तुञ्जयिता, लुङ्-अतूतुजत्-त, अतुतुञ्जत्-त ।

तुट्--६ प०, कलहकर्मणि (कुटादि), (झगड़ा करना, काटना), लट्-तुटति, लिट्-तुतोट, लुट्-तुटिता, लुङ्-अतुटीत् ।

तुड्--१, ६ प० (कुटादि), तोडने (फाड़ना, मारना), लट्-तोडति, तुडति, लुट्-तोडिता, तुडिता, लुङ्-अतुडीत्, अतोडीत् ।

तुड्ड्--१ प०, अनादरे (अनादर करना), लट्-तुड्डति, लुङ्-अतुड्डीत् ।

तुण्--६ प०, कौटिल्ये (टेढ़ा करना), लट्-तुणति, लिट्-तुतोण, लुट्-तोणिता, लुङ्-अतोणीत् ।

तुत्थ्--१० उ०, आवरणे (ढकना), लट्-तुत्थयति-ते, लुङ्-अतुतुत्थत्-त ।

तुद्--६ उ०, व्यथने (दुःख देना, चोट मारना), लट्-तुदति-ते, लिट्-तुतोद-तुतुदे, लुट्-तोता, लृट्-तोत्स्यति-ते, लङ्-अतुदत्-त लुङ्-अतौ-

त्सीत्, अतुत्त, आ० लिङ्—तुद्यात्—तोत्सीष्ट । सन्—तुतुत्सति—ते, कर्म० लट्—तुद्यते, लुङ्—अतोदि, णिच्—लट्—तोदयति—ते, लुङ्—अतूतुदत्—त, क्त—तुन्न, क्त्वा—तुत्त्वा ।

तुन्द्—१ प० (खोजना), लट्—तुन्दति, लिट्—तुतुन्द, लुट्—तुन्दिता, लुङ्—अतुन्दीत् ।

तुप्—१ और ६ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्—तोपति, तुपति, लिट्—तुतोप, लुट्—तोपिता, लुङ्—अतोपीत् ।

तुफ्—१, ६ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्—तोफते ।

तुभ्—१ आ०, हिंसायाम् (मारना), लट्—तोभते, लुङ्—अतुभत, अतोभिष्ट ।

तुभ्—४, ६ प०, (मारना, चोट पहुँचाना) लट्—तुभ्यति, तुभ्नाति, लिट्—तुतोभ, लुट्—तोभिता, लुङ्—(४) अतुभत्, (६) अतोभीत् ।

तुम्प्, तुम्फ्—१, ६ (तुप् और तुफ् के तुल्य) लट्—तुम्पति, तुम्फति ।

तुम्ब्—१ प०, अर्दने (दुःख देना, कष्ट पहुँचाना), लट्—तुम्बति, लुङ्—अतुम्बीत् । १० उ० (अदर्शने च) भी है ।

तुर्—३ प०, त्वरणे (शीघ्रता करना), लट्—तुतोर्ति, लिट्—तुतोर, लुट्—तोरिता, लुङ्—अतोरीत् (वैदिक) ।

तुर्व्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्—तुर्वति, लिट्—तुतूर्व, लुट्—तूर्विता, लुङ्—अतूर्वीत् ।

तुल्—१० उ०, उन्माने (तोलना, परीक्षा करना), लट्—तोलयति—ते, लिट्—तोलयाञ्चकार—चक्रे, लुट्—तोलयिता, लृट्—तोलयिष्यति—ते, आ० लिङ्—तोल्यात्, तोलयिषीष्ट, लुङ्—अतूतुलत्—त । कर्म०—लट्—तोल्यते, लुङ्—अतोलीत्, क्त—तोलित ।

तुष्—४ प०, तुष्टौ (सन्तुष्ट होना), लट्—तुष्यति, लिट्—तुतोष, लुट्—तोष्टा, लृट्—तोक्ष्यति, लृङ्—अतोक्ष्यत्, आ०, लिङ्—तुष्यात्, लुङ्—अतुषत् । सन्—तुतुक्षति, कर्म० लट्—तुष्यते, लुङ्—अतोषि, क्त—तुष्ट, क्त्वा—तुष्ट्वा, तुमुन्—तोष्टुम् ।

तुस्—१ प० (शब्द करना), लट्—तोसति, लिट्—तुतोस, लुट्—तोसिता, लुङ्—अतोसीत् ।

तुह्—१ प०, अर्दने वधे च (दुःख देना, हिंसा करना), लट्—तोहति, लुङ्—अतुहत्—अतोहीत् । सन्—तुतु—तो—हिषति ।

तूण्—१० आ०, पूरणे (भरना), लट्—तूणयते, लुङ्—अतूतुणत ।

तूर्—४ आ०, त्वरणहिंसनयोः (शीघ्रता से जाना, हिंसा करना), लट्—तूर्यते, लिट्—तुतूरे, लुट्—तूरिता, लुङ्—अतूरिष्ट । सन्—तुतूरिषते ।

तूल्—१ प०, निष्कर्षे (तोल के द्वारा भार निश्चित करना), लट्–तूलति, लृट्–तूलिष्यति, लुङ्–अतूलीत् ।

तृक्ष्—१ प० (जाना), लट्–तृक्षति, लिट्–ततृक्ष, लुट्–तृक्षिता, लुङ्–अतृक्षीत्, आ०, लिङ्–तृक्ष्यात् ।

तृण्—८ उ०, अदने (खाना), लट्–तर्णोति, तर्णुते, तृणोति, तृणुते, लिट्–ततर्ण, ततृण, लुट्–तर्णिता, लृट्–तर्णिष्यति–ते, लुङ्–अतर्णीत्, अतर्णिष्ट, अतृत । सन्–तितर्णिषति–ते, क्त–तृत, क्त्वा–तृणित्वा, तृत्वा ।

तृद्—७ उ०, हिंसानादरयो (नष्ट करना, अनादर करना), लट्–तृणत्ति, तृन्ते, लिट्–ततर्द, ततृदे, लुट्–तर्दिता, लृट्–तर्दिष्यति–ते, तर्त्स्यति–ते, लङ्–अतर्दिष्यत्–त, लुङ्–अतृदत्, अतर्दीत्–अतर्दिष्ट, आ० लिङ्–तृद्यात्, तर्दिषीष्ट, तृत्सीष्ट । सन्–तितर्दिषति, तितृत्सति, क्त–तृण्ण, क्त्वा–तर्दित्वा, तृत्त्वा ।

तृप्—४ प०, तृप्तौ (तृप्त होना), लट्–तृप्यति, लिट्–ततर्प, लुट्–तर्पिता, तर्प्ता, त्रप्ता, लृट्–तर्पिष्यति, तर्प्स्यति, त्रप्स्यति, लृङ्–अतर्पिष्यत्, अतर्प्स्यत्, अत्रप्स्यत्, लुङ्–अतृपत्–अतर्पीत्–अत्राप्सीत्–अतार्प्सीत्, आ० लिङ्–तृप्यात् । सन्–तितर्पिषति, तितृप्सति, णिच्–तर्पयति–ते, लुङ्–अततर्पत्–त, अतीतृपत्–त, क्त–तृप्त, तुम्–तर्पितुम्, तर्प्तुम्–त्रप्तुम् ।

तृप्—५ प०, प्रीणने (प्रसन्न होना, प्रसन्न करना), लट्–तृप्नोति, लिट्–ततर्प, लुट्–तर्पिता, लुङ्–अतर्पीत्, आ० लिङ्–तृप्यात् । सन्–तितर्पिषति, तितृप्सति, क्त–तर्पित, क्त्वा–तर्पित्वा ।

तृप्—६ प०, (प्रसन्न होना, प्रसन्न करना), लट्–तृपति, (शेष रूप पूर्ववत्)

तृप्—१ प०, १० उ०, तृप्तौ सदीपने च, (सन्तुष्ट होना, जलाना), लट्–तर्पति, तर्पयति–ते, लिट्–ततर्प, तर्पयाचकार–चक्रे, लुट्–तर्पिता, तर्पयिता, लुङ्–अतर्पीत्, अततर्पत्–त, अतीतृपत्–त । क्त–तृपित, तर्पित ।

तृफ्, तृम्फ्—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–तृफति, तृम्फति, लुङ्–अतर्फीत्, अतृम्फीत् ।

तृम्प्—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–तृम्पति, लृट्–तृम्पिष्यति, लुङ्–अतृम्पीत् ।

तृष्—४ प०, पिपासायाम् (प्यासा होना), लट्–तृष्यति, लिट्–ततर्ष, लुट्–तर्षिता, लृट्–तर्षिष्यति, लृङ्–अतर्षिष्यत्, लुङ्–अतृषत्, आ० लिङ्–तृष्यात् । णिच्–लट्–तर्षयति–ते, लुङ्–अतीतृषत्–त, अततर्षत्–त, सन्–तितर्षिषति, क्त–तृष्ट, क्त्वा–तृषित्वा, तर्षित्वा ।

तृह्—६ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–तृहति, लिट्–ततर्ह, लुट्–तर्हिता, तर्ढा, लृट्–तर्हिष्यति, तर्क्ष्यति, लुङ्–अतर्हीत्, अतृक्षत् । सन्–तितर्हिषति, तितृक्षति, णिच्–अगली धातु के तुल्य । क्त–तृढ, क्त्वा, तर्हित्वा, तृढ्वा ।

तृह्—७ प०, (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–तृणेढि, लिट्–ततर्ह, लुट्–तर्हिता, लृट्–तर्हिष्यति, लृङ्–अतर्हिष्यत्, लुङ्–अतर्हीत्, आ० लिङ्–तृह्यात् । सन्–तितृक्षति, णिच् लट्–तर्हयति–ते, लुङ्–अततर्हत्–त, अतीतृहत्–त, कर्म० लट्– तृह्यते, लुङ्–अतर्हि, क्त–तृहित, क्त्वा–तर्हित्वा, तुम्–तर्हितुम् ।

तृंह्—६ प० (मारना), लट्–तृंहति, लिट्–ततृंह, लुट्–तृंहिता, तृंढा, लृट्–तृंहिष्यति, तृंक्ष्यति, लुङ्–अतृंहीत्, अताङ्क्षीत्, आ० लिङ्–तृंह्यात् । सन्–तितृंक्षति, तितृंहिषति, तुम्–तृंहितुम्, तृण्ढुम् ।

तॄ—१ प०, प्लवनतरणयो (तैरना, पार करना), लट्–तरति, लिट्–ततार, लुट्–तरिता, तरीता, लृट्–तरिष्यति, तरीष्यति, लुङ्–अतारीत्, आ० लिङ्–तीर्यात् । सन्–तितीर्षति, क्त–तीर्ण, क्त्वा–तीर्त्वा । कर्म० लट्–तीर्यते, लिट्–तेरे, लुट्–तारिता, तरिता, तरीता, लुङ्–अतारि, आ० लिङ्–तारिषीष्ट, तरिषीष्ट, तीर्षीष्ट, णिच्–लट्–तारयति–ते, लुङ्–अतीतरत्–त ।

तेज्—१ प०, निशाने पालने च (तीक्ष्ण करना, रक्षा करना), लट्–तेजति, लिट्–तितेज, लुट्–तेजिता, लुङ्–अतेजीत् ।

तेप्— १ आ०, क्षरणे कम्पे च्युतौ च (गिरना, हिलाना), लट्–तेपते, लिट्–तितेपे, लुट्–तेपिता, लुङ्–अतेपिष्ट ।

तेव्—१ आ०, देवने (खेलना), लट्–तेवते, लुङ्–अतेविष्ट ।

त्यज्—१ प०, हानौ (छोड़ना), लट्–त्यजति, लिट्–तत्याज, लुट्–त्यक्ता, लृट्–त्यक्ष्यति, लृङ्–अत्यक्ष्यत्, लुङ्–अत्याक्षीत्, आ० लिङ्–त्यज्यात् । णिच् लट्–त्याजयति–ते, लुङ्–अतित्यजत्–त, सन्–तित्यक्षति, कर्म० लट्–त्यज्यते, लुङ्–अत्याजि, क्त–त्यक्त, क्त्वा–त्यक्त्वा, तुम्–त्यक्तुम् ।

त्रङ्क्—१ आ०, (जाना), लट्–त्रङ्कते, लिट्–तत्रङ्के, लुट्–त्रङ्किता, लुङ्–अत्रङ्किष्ट ।

त्रख्—त्रङ्ख्—१ प०, (जाना), लट्–त्रखति, त्रङ्खति, लिट्–तत्राख, तत्रङ्ख, लुट्–त्रखिता, त्रङ्खिता, लुङ्–अत्रखीत्, अत्राखीत्, अत्रङ्खीत् ।

त्रङ्ग्—१ प०, (हिलना), लट्–त्रङ्गति, लिट्–तत्रङ्ग, लुट्–त्रङ्गिता, लुङ्–अत्रङ्गीत् ।

त्रप्—१ आ०, लज्जायाम् (लज्जित होना), लट्–त्रपते, लिट्–त्रेपे, लुट्—त्रपिता, त्रप्ता, लृट्–त्रपिष्यते, त्रप्स्यते, लृङ्–अत्रपिष्यत्, अत्रप्स्यत, लुङ्–अत्रपिष्ट, अत्रप्त, आ० लिङ्–त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट, णिच् लट्–त्रपयति–ते, लुङ्–अतित्रपत्–त । सन्–तित्रपिषते, क्त–त्रप्त, क्त्वा–त्रपित्वा, त्रप्त्वा, तुम्–त्रपितुम्, त्रप्तुम् ।

त्रस्—१ और ४ प०, उद्वेगे (डरना, कांपना) लट्–त्रसति, त्रस्यति, लिट्–तत्रास, लुट्–त्रसिता, लृट्–त्रसिष्यति, लृङ्–अत्रसिष्यत्, लुङ्–अत्रासीत्,

अत्रसीत्, आ० लिङ्-त्रस्यात्, कर्म० लट्-त्रस्यते, लुङ्-अत्रासि । णिच्-लट्-त्रासयति-ते, लुङ्-अतित्रसत्-त । सन्-तित्रसिषति, क्त-त्रस्त, क्त्वा-त्रसित्वा, तुम्-त्रसितुम् ।

त्रस्—१० उ०, ग्रहणे धारणे वारणे च (लेना, पकड़ना, हटाना), लट्-त्रासयति-ते, लिट्-त्रासयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-त्रासयिता, लुङ्-अतित्रसत्-त ।

त्रंस्—१ प० और १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्-त्रसति, त्रसयति-ते, लुङ्-अत्रसीत्, अतत्रसत्-त ।

त्रिह्व—१ प०, (जाना), लट्-त्रिह्वति, लिट्-तित्रिह्व, लुट्-त्रिह्विता, लुङ्-अत्रिह्वीत् ।

त्रुट्—६ प०, छेदने (कुटादि) (फाड़ना, तोड़ना), लट्-त्रुट्यति, लिट्-तुत्रोट, लुट्-त्रुटिता, लृट्-त्रुटिष्यति, लुङ्-अत्रुटीत्, आ० लिङ्-त्रुट्यात् । णिच् लट्-त्रोटयति-ते, लुङ्-अतुत्रुटत्-त । सन्-तुत्रुटिषति, कर्म० लट्-त्रुट्यते, लुङ्-अत्रोटि, क्त-त्रुटित, क्त्वा-त्रुटित्वा ।

त्रुट्—१० आ०, छेदने (फाड़ना), लट्-त्रोटयते, लिट्-त्रोटयाञ्चक्रे, लुट्-त्रोटयिता, लुङ्-अतुत्रुटत, आ० लिङ्-त्रोटयिषीष्ट ।

त्रुप्, त्रुम्प्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्-त्रोपति, त्रुम्पति, लुङ्-अत्रोपीत्, अत्रुम्पीत् ।

त्रुफ्, त्रुम्फ्—पूर्ववत् ।

त्रै—१ आ०, पालने (रक्षा करना), लट्-त्रायते, लिट्-तत्रे, लुट्-त्राता, लृट्-त्रास्यते, लङ्-अत्रास्यत, लुङ्-अत्रास्त, आ० लिङ्-त्रासीष्ट, णिच् लट्-त्रापयति-ते, लुङ्-अतित्रपत्-त सन्-तित्रासते, कर्म-लट्-त्रायते, लुङ्-अत्रायि, क्त-त्रात (त्राण), तुम्-त्रातुम् ।

त्रौक्—१ आ०, (जाना), लट्-त्रौकते, लिट्-तुत्रौके, लुट्-त्रौकिता, लृट्-त्रौकिष्यते, लुङ्-अत्रौकिष्ट ।

त्वक्ष्—१ प०, तनूकरणे (छीलना), लट्-त्वक्षति, लिट्-तत्वक्ष, लुट्-त्वक्षिता, त्वष्टा, लृट्-त्वक्षिष्यति, त्वक्ष्यति, लुङ्-अत्वक्षीत्, अत्वाक्षीत् आ० लिङ्-त्वक्ष्यात् । सन्-तित्वक्षिषति, तित्वक्षति, क्त-त्वष्ट, क्त्वा-त्वक्षित्वा त्वष्ट्वा ।

त्वङ्ग्—१ प०, गतौ कम्पने च (जाना, हिलाना), लट्-त्वङ्गति, लिट्-तत्वङ्ग, लुट्-त्वङ्गिता, लुङ्-अत्वङ्गीत् ।

त्वच्—६ प०, संवरणे (ढकना), लट्-त्वचति, लिट्-तत्वाच, लुट्-त्वचिता, लुङ्-अत्वचीत्, अत्वाचीत् ।

त्वञ्च्—१ प० (जाना, हिलना), लट्-त्वञ्चति, लिट्-तत्वञ्च, लुट्-त्वञ्चिता, लुङ्-अत्वञ्चीत्, आ० लिङ्-त्वच्यात् । सन्-तित्वञ्चिषति, कर्म० -त्वच्यते ।

त्वर्—१ आ०, सम्भ्रमे (शीघ्रता करना, शीघ्रता से जाना), लट्–त्वरते, लिट्–तत्वरे, लुट्–त्वरिता, लुङ–अत्वरिष्ट, आ० लिङ–त्वरिषीष्ट। सन्–तित्वरिषते, क्त–त्वरित या तूर्ण। णिच्, लट्–त्वरयति–ते, लुङ–अतत्वरत्–त।

त्विष्—१ उ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–त्वेषति–ते, लिट्–तित्वेष, तित्विषे, लुट्–त्वेष्टा, लृट्–त्वेक्ष्यति–ते, लृङ–अत्वेक्ष्यत्–त, लुङ–अत्विक्षत्–त। सन्–तित्विक्षति–ते।

त्सर्—१ प०, छद्मगतौ (छल पूर्वक जाना), लट्–त्सरति, लिट्–तत्सार, लुट्–त्सरिता, लुङ–अत्सारीत्।

थ

थुड्—६ प०, सवरणे (कुटादि) (ढकना, छिपाना), लट्–थुडति, लिट्–तुथोड, लुट्–थुडिता, लुङ–अथुडीत्।

थुर्व्—१ प०, हिंसायाम् (हानि पहुँचाना), लट्–थूर्वति, लिट्–तुथूर्व, लुट्–थूर्विता, लुङ–अथूर्वीत्।

द

दश्—१ प०, दशने भाषाया च (डक मारना, कहना) लट्–दशति, लिट्–ददश, लुट्–दष्टा, लृट्–दक्ष्यति, लुङ–अदाक्षीत् (द्विव० अदाष्टाम्), आ० लिङ–दश्यात्। सन्–दिदक्षति, कर्म०–दश्यते, लुङ–अदशि, क्त–दष्ट, क्त्वा–दष्ट्वा, तुम्–दष्टुम्।

दश्—१० आ०, दशने (डक मारना), लट्–दशयते, लुङ–अददशत। सन्–दिदशयिषते, कर्म० लट्–दश्यते, क्त–दशित।

दश्—१० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–दशयति–ते, लुङ–अददशत्–त।

दक्ष्—१ आ०, वृद्धौ शीघ्रार्थे (गतिहिंसनयोश्च), (बढना, शीघ्रता से जाना, जाना, मारना), लट्–दक्षते, लिट्–ददक्षे, लृट्–दक्षिष्यते, लुङ–अदक्षिष्ट।

दघ्—५ प०, घातने पालने च (हिंसा करना, रक्षा करना), लट्–दघ्नोति, लिट्–ददाघ, लुट्–दघिता, लुङ–अदघीत्, अदाघीत्, (वैदिक)।

दण्ड्—१० उ०, दण्डनिपातने दमने च (दण्ड देना), लट्–दण्डयति–ते, लिट्–दण्डयाचकार–चक्रे, लुट्–दण्डयिता, लृट्–दण्डयिष्यति–ते, लुङ–अददण्डत्–त। सन्–दण्डयिषीष्ट, क्त–दण्डित।

दद्—१ आ०, दाने (देना), लट्–ददते, लिट्–दददे, लुट्–ददिता, लृट्–ददिष्यते, लुङ–अददिष्ट, आ० लिङ–ददिषीष्ट। सन्–दिददिषते, णिच्–लट्–दादयति–ते, लुङ–अदीददत्–त।

दध्—१ आ०, धारणे (रखना, लेना), लट्–दधते, लिट्–देधे, लुट्–दधिता, लुङ–अदधिष्ट, आ० लिङ–दधिषीष्ट। सन्–दिदधिषते, णिच्–लट्–दाधयति–ते, कर्म० लट्–दध्यते।

दम्भ्—५ प०, दम्भने (चोट पहुँचाना, धोखा देना), लट्–दम्नोति, लिट्–ददम्भ, लुट्–दम्भिता, लृट्–दम्भिष्यति, लुङ–अदम्भीत् । सन्–धिप्सति, धीप्सति, दिदम्भिषति, कर्म० लट्–दम्यते, लुङ–अदम्भि, क्त–दब्ध, क्त्वा–दम्भित्वा–दब्ध्वा ।

दम्भ्—१० उ०, प्रेरणे (भेजना), लट्–दम्भयति–ते, लिट्–दम्भयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अददम्भत्–त, आ० लिङ–दम्भ्यात्, दम्भयिषीष्ट । कर्म०–दम्भ्यते ।

दम्—४ प०, उपशमे (शान्त होना), लट्–दाम्यति, लिट्–ददाम, लुट्–दमिता, लृट्–दमिष्यति, लृङ–अदमिष्यत्, लुङ–अदमत् । णिच्–दमयते, लुङ–अदीदमत, कर्म०–दम्यते, लुङ–अदमि, अदामि, क्त–दमित, दान्त, क्त्वा–दमित्वा, दान्त्वा ।

दय्—१ आ०, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु (देना, दया करना, रक्षा करना, चोट पहुँचाना, लेना), लट्–दयते, लिट्–दयाचक्रे, लुट्–दयिता, लृट्–दयिष्यते, लुङ–अदयिष्ट, आ० लिङ–दयिषीष्ट । सन्–दिदयिषते, क्त–दयित ।

दरिद्रा—२ प०, दुर्गतौ, (दरिद्र होना), लट्–दरिद्राति, लिट्–दरिद्राञ्चकार, ददरिद्रौ, लुट्–दरिद्रिता, लुङ–अदरिद्रीत्, अदरिद्रासीत्, आ० लिङ–दरिद्र्यात् । सन्–दिदरिद्रासति, दिदरिद्रिषति, क्त–दरिद्रित ।

दल्—१ प०, विशरणे (फटना, फैलना), लट्–दलति, लिट्–ददाल, लुट्–दलिता, लुङ–अदालीत् । क्त–दलित, णिच्–दलयति, दालयति, सन्–दिदलिषति ।

दल्—१० उ०, विदारणे (फाड़ना), लट्–दालयति, लुङ–अदीदलत्–त ।

दस्—४ प०, उपक्षये (नष्ट होना), लट्–दस्यति, लिट्–ददास, लुट्–दसिता, लुङ–अदसत् ।

दंस्—१ प०, १० आ०, दर्शनदशनयो (देखना, डक मारना), लट्–दसति, दसयते, लिट्–ददस, दसयाञ्चक्रे, लुङ–अदसीत्, अददसत ।

दंस्—१ प०, १० उ०, भाषायाम् (बोलना), लट्–दसति, दसयति–ते ।

दह्—१ प०, भस्मीकरणे (जलाना, दुःख देना), लट्–दहति, लिट्–ददाह, लुट्–दग्धा, लृट्–धक्ष्यति, लुङ–अधाक्षीत् (द्वि० अदाग्धाम्), आ० लिङ–दह्यात् । सन्–दिधक्षति, णिच् लट्–दाहयति–ते, लुङ–अदीदहत्–त, कर्म० लट्–दह्यते, लुङ–अदाहि, क्त–दग्ध, क्त्वा–दग्ध्वा, तुम्–दग्धुम् ।

दा—१ प०, दाने (देना) लट्–यच्छति, लिट्–ददौ, लुट्–दाता, लृट्–दास्यति, लृङ–अदास्यत्, लुङ–अदात्, आ० लिङ–देयात् । सन्–दित्सति, कर्म० लट्–दीयते, लुङ–अदायि, णिच्–लट्–दापयति–ते, लुङ–अदीदपत्–त, क्त–दत्त, क्त्वा–दत्त्वा, तुम्–दातुम् ।

दा—२ प०, लवने (काटना), लट्–दाति, (लिट् और लुट् मे पूर्ववत्), लुङ–अदासीत्, आ० लिङ–दायात् । सन्–दिदासति, कर्म–दायते, क्त–दात ।

दा—३ उ०, दाने (देना, रखना), लट्–ददाति, दत्ते, लिट्–ददौ, ददे, लुट्–दाता, लृट्–दास्यति–ते, लृङ–अदास्यत्–त, लुङ–अदात्, अदित, आ०, लिङ–देयात्, दासीष्ट । सन्–दित्सति–ते, क्त–दत्त, क्त्वा–दत्त्वा, तुम्–दातुम्, कर्म० लट्–दीयते, लुङ–अदायि ।

दान्—१ उ०, खण्डने आर्जवे च (काटना, सीधा करना), लट्–दीदांसति–ते, लिट्–दीदांसाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अदीदांसीत्, अदीदांसिष्ट । सन्–दीदांसिषति–ते ।

दान्—१० उ०, छेदने (काटना), लट्–दानयति–ते, लुङ–अदीदनत्–त ।

दाय्—१ आ०, दाने (देना), लट्—दायते, लिट्–ददाये, लृट्–दायिष्यते, लुङ–अदायिष्ट ।

दाश्—१ उ०, दाने (देना), लट्–दाशति–ते, लिट्–ददाश्, ददाशे, लुङ–अदाशीत्, अदाशिष्ट ।

दाश्—५ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–दाश्नोति (वैदिक) ।

दी—४ आ०, क्षये (नष्ट होना), लट्–दीयते, लिट्–दिदीये, लुट्–दाता, लृट्–दास्यते, लङ्–अदास्यत, लुङ्–अदास्त, आ० लिङ्–दासीष्ट । सन्–दिदीषते, क्त–दीन ।

दीक्ष्—१ आ०, मौण्डयेज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (यज्ञोपवीत धारण करना, किसी कार्य के लिए जीवन समर्पण करना, यज्ञ करना), लट्–दीक्षते, लिट्–दिदीक्षे, लुट्–दीक्षिता, लुङ्–अदीक्षिष्ट । कर्म० लट्–दीक्ष्यते, लुङ्–अदीक्षि, णिच्–लट्–दीक्षयति-ते, लुङ्–अदिदीक्षत्–त । सन्–दिदीक्षते, क्त–दीक्षित, क्त्वा–दीक्षित्वा ।

दीधी—२ आ०, दीप्तिदेवनयो (चमकना, प्रकट होना), लट्–दीधीते, लिट्–दीध्याञ्चक्रे, लुट्–दीधिता, लृट्–दीधिष्यते, लुङ्–अदीधिष्ट (वैदिक) ।

दीप्—४ आ०, दीप्तौ (चमकना, जलाना), लट्–दीप्यते, लिट्–दिदीपे, लुट्–दीपिता, लुङ्–अदीपिष्ट, अदीपि, आ० लिङ्–दीपिषीष्ट । सन्–दिदीपिषते, णिच् लट्–दीपयति-ते, लुङ्–अदीदिपत्–त, अदिदीपत्–त, कर्म० लट्–दीप्यते, लुङ्–अदीपि, क्त–दीप्त ।

दु—१ प०, (जाना), लट्–दवति, क्त–दून । शेष रूपो के लिए नीचे की धातु देखें ।

दु—५ प०, उपतापे (जलाना, दु खित करना, कष्ट देना), लट्–दुनोति, लिट्–दुदाव, लुट्–दोता, लृट्–दोष्यति, लङ्–अदोष्यत्, लुङ्–अदौषीत्, आ० लिङ्–दूयात् । सन्–दुदूषति, कर्म०–लट्–दूयते, लुङ्–अदावि, क्त–दून ।

दु ख—१० उ०, दु खक्रियाम् (दु ख देना), लट्–दु खयति, लुङ्–अदुदु खत्–त ।

दुर्व्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–दूर्वति, लिट्–दुदूर्व, लृट्–दूर्विष्यति, लुङ्–अदूर्वीत् ।

दुल्—१० उ०, उत्क्षेपे (इधर-उधर डुलाना), लट्–दोलयति-ते, लिट्–दोलयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–दोलयिता, लुङ्–अदूदुलत्–त । सन्–दुदोलयिषति –ते ।

दुष्—४ प०, वैकलव्ये (दुष्ट होना, अपवित्र होना), लट्–दुष्यति, लिट्–दुदोष, लुट्–दोष्टा, लङ्–अदोक्ष्यत्, लृट्–दोक्ष्यति, लुङ्–अदुषत्, आ० लिङ्–दुष्यात् । णिच् लट्–दूषयति-ते, दोषयति-ते भी होता है (दूषित करना), लुङ्–अदूदुषत्–त, सन्–दुदुक्षति, कर्म० लट्–दुष्यते, लुङ्–अदोषि, क्त–दुष्ट ।

दुह्—१ प०, अर्दने (दु ख देना, चोट पहुँचाना), लट्–दोहति, लिट्–दुदोह, लृट्–दोहिष्यति, लुङ्–अदुहत्, अदोहीत् । क्त–दुहित ।

दुह्—२ उ०, प्रपूरणे (दुहना, लाभ उठाना), लट्–दोग्धि, दुग्धे, लिट्–दुदोह, दुदुहे, लुट्–दोग्धा, लृट्–धोक्ष्यति-ते, लुङ्–अधुक्षत्, अधुक्षत, अदुग्ध, आ०

लिङ्-दुह्यात्, धुक्षीष्ट । सन्-दुधुक्षति-ते, कर्म० लट्-दुह्यते (दुग्ध भी होता है, देखो सूत्र ३, १, ८९) । लुङ्-अदोहि, (अदुग्ध, अधुक्षत), णिच् लट्-दोहयति-ते, लुङ्-अदूदुहत्-त, क्त-दुग्ध, क्त्वा-दुग्ध्वा, तुम्-दोग्धुम् ।

दू—४ आ०, परितापे (दुखित होना, कष्ट उठाना), लट्-दूयते, लिट्-दुदुवे, लुट्-दविता, लृट्-दविष्यते, लङ्-अदविष्यत, लुङ्-अदविष्ट, आ० लिङ्-दविषीष्ट । सन्-दुदूषते, णिच्-लट्-दावयति-ते, लुङ्-अदूदवत्-त, कर्म० लट्-दूयते, लुङ्-अदावि, क्त-दून ।

दृ—६ आ०, आदरे (पूजा करना), (आ+दृ) (आदर करना), लट्-द्रियते, लिट्-दद्रे, लुट्-दर्ता, लुङ्-अदृत, आ० लिङ्-दृषीष्ट । सन्-दिदरिषते, कर्म० लट्-द्रियते, लुङ्-अदारि, णिच्-लट्-दारयति-ते, लुङ्-अदीदरत्-त, क्त-दृत, क्त्वा-दृत्वा, तुम्-दर्तुम् ।

दृप्—४ प०, हर्षमोहनयो: (प्रसन्न होना, गर्वयुक्त होना), लट्-दृप्यति, लिट्-ददर्प, लुट्-दर्पिता, दर्प्ता, द्रप्ता, लृट्-दर्पिष्यति, दर्प्स्यति, द्रप्स्यति, लङ्-अदर्पिष्यत्, अदर्प्स्यत्, अद्रप्स्यत्, लुङ्-अदृपत्, अदर्पीत्, अदार्प्सीत्, अद्राप्सीत्, आ० लिङ्-दृप्यात् । सन्-दिदर्पिषति दिदृप्सति, णिच् लट्-दर्पयति-ते, लुङ्-अदीदृपत्-त, अददर्पत्-त, क्त-दृप्त, क्त्वा-दृप्त्वा, दर्पित्वा, तुम्-दर्पितुम्, दर्प्तुम्, द्रप्तुम् ।

दृप्—१ प०, १० उ०, सदीपने (क्रुद्ध करना, जलाना), लट्-दर्पति, दर्पयति-ते, लुट्-दर्पिता, दर्पयिता, लुङ्-अदर्पीत्, अदीदर्पत्-त, अददर्पत्-त, आ० लिङ्-दृप्यात्, दर्प्यात्, दर्पयिषीष्ट । सन्-दिदर्पिषति, दिदर्पयिषति-ते, कर्म० लट्-दृप्यते, दर्प्यते, लुङ्-अदर्पि, क्त-दृपित, दर्पित ।

दृभ्—६ प०, ग्रन्थे (एकत्र करना, धागे मे बाँधना), लट्-दृभति, लृट्-दर्भिष्यति, लुङ्-अदर्भीत् । णिच्-लट्-दर्भयति-ते, लुङ्-अदीदृभत्-त, अददर्भत्-त, लुङ्-दिदर्भिषति, क्त-दृब्ध, क्त्वा-दर्भित्वा ।

दृभ्—१ प०, १० उ०, भये सदर्भे च (डरना, धागे मे इकट्ठा करना), लट्-दर्भति, दर्भयति-ते ।

दृश्—१ प०, प्रेक्षणे (देखना, जानना), लट्-पश्यति, लिट्-ददर्श, लुट्-द्रष्टा, लृट्-द्रक्ष्यति, लङ्-अद्रक्ष्यत्, लुङ्-अदर्शत्, अद्राक्षीत्, आ० लिङ्-दृश्यात् । सन्-दिदृक्षते, णिच् लट्-दर्शयति-ते, लुङ्-अदीदृशत्-त, अददर्शत्-त, यङ्-दरीदृश्यते, दर्दृशीति, दर्दृष्टि, कर्म० लट्-दृश्यते, लुङ्-अदर्शि, क्त-दृष्ट, क्त्वा-दृष्ट्वा, तुम्-द्रष्टुम् ।

दृह्,—दृंह्-१ प०, वृद्धौ (बढ़ना, दृढ़ होना), लट्-दर्हति या दृंहति, लिट्-ददर्ह या ददृंह, लुट्-दर्हिता या दृंहिता, लुङ्-अदर्हीत् या अदृंहीत् क्त-दृढ, (पुष्ट) या दृंहित, दृंहित ।

* दृ—१ प०, भये (डरना), लट्–दरति, लिट्–ददार, लुट्–दरिता–दरीता, लुङ–अदारीत् ।

दृ—६ प०, विदारणे (फाडना), लट्–दृणाति, लिट्–ददार, लुट्–दरिता, दरीता, लृट्–दरिष्यति, दरीष्यति, लृङ–अदरिष्यत्, अदरीष्यत्, लुङ–अदारीत्, आ० लिङ–दीर्यात् । सन्–ददरिषति, दिदरीषति, दिदीर्षति, णिच्–दारयति–ते, (दरयति–ते, डरने अर्थ म), कर्म० लट्–दीर्यते, लुङ–अदारि, क्त–दीर्ण, क्त्वा–दीर्त्वा, ल्यप् विदीर्य, तुम्–दरितुम्, दरीतुम् ।

दे—१ आ०, पालने (पालन करना), लट्–दयते, लिट्–दिग्ये, लुट्–दाता, लुङ–अदित, आ० लिङ–दासीष्ट । सन्–दित्सते, कर्म० लट्–दीयते, णिच् लट्–दापयति–ते, लुङ–अदीदपत्–त, क्त–दात ।

देव्—१ आ०, देवने (क्रीडा करना, रोना), लट्–देवते, लिट्–दिदेवे, लुट्–देविता, लृट्–देविष्यते, लृङ–अदेविष्यत, लुङ–अदेविष्ट । सन्–दिदेविषते, कर्म० लट्–देव्यते ।

दै—१ प०, शोधने (शुद्ध करना, शुद्ध होना), लट्–दायति, लिट्–ददौ, लुट्–दाता, लृट्–दास्यति, लृङ–अदास्यत्, लुङ–अदासीत्, आ० लिङ–दायात् । सन्–दिदासति, कर्म० लट्–दायते, णिच्–लट्–दापयति–ते, क्त–दित, क्त्वा–दित्वा, ल्यप्–अवदाय ।

दो—४ प०, अवखण्डने (काटना, तोडना), लट्–द्यति, लिट्–ददौ, लुङ–अदात्, आ० लिङ–देयात् । सन्–दित्सति, णिच्–लट्–दापयति–ते, क्त–दित, क्त्वा, दित्वा, ल्यप्–अवदाय ।

द्यु—२ प०, अभिगमने (आक्रमण करना, आगे बढना), लट्–द्यौति, लिट्–दुद्याव, लुट्–द्योता, लृट्–द्योष्यति, लृङ–अद्योष्यत्, लुङ–अद्यौषीत् । सन्–दुद्यूषति, कर्म० लट्–द्यूयते, लुङ–अद्यावि, णिच्–लट्–द्यावयति–ते, लुङ–अदुद्यवत्–त, क्त–द्युत ।

द्युत्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–द्योतते, लिट्–दिद्युते, लुट्–द्योतिता, लृट्–द्योतिष्यते, लृङ–अद्योतिष्यत, लुङ–अद्योतिष्ट, अद्युतत्, आ० लिङ–द्योतिषीष्ट, सन्–दिद्युतिषते, दिद्योतिषते, णिच्–लट्–द्योतयति–ते, लुङ–अदुद्युतत्–त, यङन्त–देद्युत्यते, देद्योति, क्त–द्युतित, द्योतित ।

द्यै—१ प०, न्यक्करणे (तिरस्कार करना), लट्–द्यायति, लुट्–द्याता, लुङ–अद्यासीत्, आ० लिङ–द्यायात्–द्येयात् ।

द्रम्—१ प०, गतौ (दौडना), लट्–द्रमति, लिट्–दद्राम, लुङ–अद्रमीत् ।

द्रा—२ प०, कुत्सायां गतौ स्वप्ने च (दौडना, सोना), (प्राय नि+द्रा) लट्–द्राति, लिट्–दद्रौ, लुट्–द्राता, लृट्–द्रास्यति, लृङ–अद्रास्यत्, लुङ–अद्रासीत्, आ० लिङ–द्रायात्, द्रेयात् । सन्–दिद्रासति, क्त–द्राण ।

द्राघ्—१ आ०, सामर्थ्ये आयामे च (समर्थ होना, लम्बा करना), लट्—द्राघते, लिट्—दद्राघे, लुङ—अद्राघिष्ट, आ० लिङ—द्राघिषीष्ट ।

द्राक्ष्—१ प०, घोरवाशिते (भयकर शब्द करना), लट्—द्राक्षति, लिट्—दद्राक्ष, लुङ—अद्राक्षीत् ।

द्रु—१ प०, गतौ (दौडना, पिघलना) लट्—द्रवति, लिट्—दुद्राव, लुट्—द्रोता, लृट्—द्रोष्यति, लृङ—अद्रोष्यत्, लुङ—अदुद्रवत् । सन्—दुद्रूषति, कर्म० लट्—द्रूयते, लुङ—अद्रावि, णिच्—लट्—द्रावयति, लुङ—अदिद्रवत् या अदुद्रवत्, यङन्त—दोद्रूयते, दोद्रवीति, दोद्रोति, क्त—द्रुत ।

द्रुण्—६ प०, गतिहिंसाकौटिल्येषु (मारना, जाना आदि), लट्—द्रुणति, लिट्—दुद्रोण, लृट्—द्रोणिष्यति, लुङ—अद्रोणीत् ।

द्रुह्—४ प०, जिघांसायाम् (द्रोह करना), लट्—द्रुह्यति, लिट्—दुद्रोह, (म० पु० एक० दुद्रोहिथ, दुद्रोढ, दुद्रोग्ध), लुट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा, लृट्—द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति, लृङ—अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत्, लुङ—अद्रुहत् । सन्—दुद्रोहिषति, दुद्रुहिषति, दुध्रुक्षति, णिच्—लट्—द्रोहयति—ते, लुङ—अदुद्रुहत्—त, क्त—द्रुग्ध, या द्रूढ, तुम्—द्रोहितुम्, द्रोग्धुम्, द्रोढुम्, क्त्वा—द्रुहित्वा, द्रोहित्वा, द्रुग्ध्वा, द्रुढ्वा ।

द्रू—९ उ०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्—द्रूणाति, द्रूणीते, लिट्—दुद्राव, दुद्रुवे, लृट्—द्रविष्यति—ते, लुङ—अद्रावीत्, अद्रविष्ट ।

द्रेक्—१ आ०, शब्दोत्साहयो (शब्द करना, उत्साह दिखाना), लट्—द्रेकते, लिट्—दिद्रेके, लृट्—द्रेकिष्यते, लुङ—अद्रेकिष्ट ।

द्रै—१ प०, स्वप्ने (सोना), (साधारणतया नि के साथ) लट्—द्रायति, लिट्—दद्रौ, लुङ—अद्रासीत्, आ० लिङ—द्रायात्, द्रेयात् ।

द्विष्—२ उ०, अप्रीतौ (द्वेष करना, घृणा करना), लट्—द्वेष्टि, द्विष्टे, लङ—अद्वेट्—ड् (अन्य पु०, बहु० अद्विषन्—षु), लिट्—दिद्वेष, दिद्विषे, लुट्—द्वेष्टा, लृट्—द्वेक्ष्यति—ते, लृङ—अद्वेक्ष्यत्—त, लुङ—अद्विक्षत्—त, आ० लिङ—द्विष्यात्, द्विक्षीष्ट । सन्—दिद्विक्षति—ते, णिच्—लट्—द्वेषयति—ते, लुङ—अदिद्विषत्—त, यङन्त—देद्विष्यते, देद्वेष्टि, देद्विषिति, कर्म० लट्—द्विष्यते, लुङ—अद्वेषि, क्त—द्विष्ट, तुम्—द्वेष्टुम् ।

द्वृ—१ प०, संवरणे अंगीकृतौ च (ढकना, स्वीकार करना), लट्—द्वरति, लिट्—दद्वार, लुङ—अद्वार्षीत् ।

ध

धक्क्—१० उ०, नाशने (नष्ट करना), लट्—धक्कयति—ते, लिट्—धक्कयाचकार—चक्रे, लुङ—अदधक्कत्—त ।

धण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लिट्—धणति लुङ—अधणीत्, अधाणीत् ।

धन्—१ प० (शब्द करना), लट्–धनति ।
धन्—(वैदिक), ३ प०, धान्ये (धन उत्पन्न करना), लट्–दधन्ति,
दधन्त , दधनति, लिट्–दधान, लृट्–धनिष्यति ।
धन्व्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–धन्वति, लिट्–दधन्व, लुङ्–अधन्वीत् ।
धा—३ उ०, धारणपोषणयोर्दाने च (रखना, उत्पन्न करना, देना, धारण
करना), लट्–दधाति, धत्ते, लिट्–दधौ और दधे, लुट्–धाता, लृट्–धास्यति–
ते, लृङ्–अधास्यत्–त, लुङ्–अधात, अधित, आ० लिङ्–धेयात्, धासीष्ट ।
सन्–धित्सति–ते, कर्म० लट्–धीयते, लुङ्–अधायि, णिच्–लट्–धापयति–ते,
लुङ्–अदीधपत्–त, यङन्त–देधीयते, दाधाति, दाधेति, क्त–हित, क्त्वा–हित्वा,
ल्यप्–सधाय ।
धाव्—१ उ०, गतिशुद्ध्योः (रगड़ना, स्वच्छ करना, दौड़ना), लट्–
धावति–ते, लिट्–दधाव, दधावे, लुट्–धाविता, लृट्–धाविष्यति–ते, लृङ्–अधावि-
ष्यत्–त, लुङ्–अधावीत्—अधाविष्ट, आ० लिङ्–धाव्यात्, धाविषीष्ट । सन्
–दिधाविषति–ते, णिच्–लट्–धावयति–ते, लुङ्–अदीधवत्–त, क्त–धावित,
धौत, क्त्वा–धावित्वा, धौत्वा, ल्यप्–प्रधाव्य ।
धि—६ प०, धारणे (रखना, धारण करना), लट्–धियति, लिट्–दिधाय,
लुङ्–अधैषीत्, सन्–दिधिषति ।
धिक्ष्—१ आ०, सदीपनक्लेशनजीवनेषु (जलाना, थकना, जीवित रहना),
लट्–धिक्षते, लिट्–दिधिक्षे, लृट्–धिक्षिष्यते, लुङ्–अधिक्षिष्ट ।
धिन्व्—१ प०, प्रीणने (प्रसन्न होना, प्रसन्न करना), लट्–धिनोति,
लिट्–दिधिन्व, लुट्–धिन्विता, लुङ्–अधिन्वीत्, आ० लिङ्–धिन्व्यात् । क्त–
धिन्वित ।
धिष्—३ प०, (शब्द करना), लट्–दिधेष्टि (वेदों में ही प्रयोग होता है) ।
धी—४ आ०, आधारे (रखना, पकड़ना), लट्–धीयते, लिट्–दिध्ये,
लृट्–धेष्यते, लुङ्–अधेष्ट । णिच्–लट्–धाययति–ते, लुङ्–अदीधयत्–त, सन्–
दिधीषते, क्त–धीन ।
धु—५ उ०, कम्पने (हिलाना, उत्तेजित करना), लट्–धुनोति, धुनुते,
लिट्–दुधाव, दुधुवे, लुट्–धोता, लृट्–धोष्यति–ते, लृङ्–अधोष्यत्–त, आ० लिङ्–
धूयात्, धूषीष्ट, लुङ्–अधौषीत्, अधोष्ट । सन्–दुधूषति–ते, क्त–धुत ।
धुक्ष्—१ आ०, सदीपनक्लेशनजीवनेषु (जलना, व्याकुल होना, जीवित
रहना), लट्–धुक्षते, लिट्–दुधुक्षे, लुट्–धुक्षिता, लुङ्–अधुक्षिष्ट । सन्–दुधु-
क्षिषते, क्त–धुक्षित ।
धू—१ उ०, कम्पने और ६ प० विधूनने (हिलाना), लट्–धवति–ते,
धुवति, लिट्–दुधाव, दुधुवे, (धूतुदादि० कुटादि में है, दुधुविय म० पु० एक०),
लुट्–धविता, धुविता, लृट्–धविष्यति–ते, धुविष्यति, लृङ्–अधविष्यत्–त ।

अधुविप्यत्, लुङ–अधावीत्, अधविष्ट, अधुवीत्, आ० लिङ–धूयात्, धविषीष्ट, क्त–धूत, तुम्–धवितुम् (१), धुवितुम् (६) ।

धू—५, ६ उ०, कम्पने (हिलाना, कँपाना), लट्–धूनोति, धूनुते, धुनाति, धुनोते, लिट्–दुधाव, दुधुवे, लुट्–धोता, धविता, लृट्–धोष्यति–ते, धविष्यति–ते, लृङ–अधोष्यत्–त, अधविष्यत्–त, लुङ–अधावीत्, अधविष्ट, अधोष्ट, आ० लिङ–धूयात्, धविषीष्ट, धोषीष्ट, सन्–दुधूषति–ते, णिच्–धूनयति, लुङ–अदूधुनत्, कर्म० लट्–धूयते, लुङ–अधावि, क्त–धूत (५), धून (६) ।

धू—१० उ०, (हिलाना), लट्–धूनयति–ते, लिट्–धूनयाचकार–चक्रे, लृट्–धूनयिष्यति–ते, लुङ–अदूधुनत्, आ० लिङ–धून्यात्, धूनयिषीष्ट, णिच्–लट्–धूनयति, सन्–दुधूनयिषति–ते ।

धूप्—१ प०, सतापे (तपाना, तपना), लट्–धूपायति, लिट्–दुधूप, धूपायाचकार, लुट्–धूपिता, धूपायिता, लृट्–धूपिष्यति, धूपायिष्यति, लृङ–अधूपिष्यत्, अधूपायिष्यत्, लुङ–अधूपीत्, अधूपायीत्, आ० लिङ–धूप्यात्, धूपाय्यात् । णिच् लट्–धूपयति–ते, धूपाययति–ते, लुङ–अदुधूपत्–त, अदुधूपायत्–त, सन्–दुधूपिषति, दुधूपायिषति, कर्म० लट्–धूप्यते, धूपाय्यते, लुङ–अधूपायि, अधूपि, क्त–धूपित, धूपायित ।

धूप्—१० उ०, भाषाया दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्–धूपयति–ते, लिट्–धूपयाचकार–चक्रे, लुट्–धूपयिता, लुङ–अदूधुपत्–त ।

धूर्—४ आ०, हिंसागत्यो (मारना, जाना), लट्–धूर्यते, लिट्–दुधूरे, लुङ–अधूरिष्ट । क्त–धूर्त ।

धृ—१ उ०, धारणे (धारण करना), लट्–धरति–ते, लिट्–दधार, दध्रे (म० पु० एक० दधर्थ, दध्रिषे), लुट्–धर्ता, लृट्–धरिष्यति–ते, लृङ–अधरिष्यत्–त, लुङ–अधार्षीत, अधृत, आ० लिङ–ध्रियात्, धृषीष्ट । सन्–दिधीर्षति–ते, णिच् लट्–धारयति–ते, लुङ–अदीधरत्–त, कर्म० ध्रियते, क्त–धृत ।

धृ—१ आ०, अवध्वसने (नष्ट करना), लट्–धरते । (शेष पूर्ववत्) ।

धृ—६ आ०, अवस्थाने (होना, विद्यमान होना), लट्–ध्रियते, । सन्–दिधरिषते । (शेष रूपो के लिए धृ १ उ० के आत्मने० के रूप देखो) ।

धृ—१० उ०, धारणे (रखना, धारण करना), लट्–धारयति–ते, लिट्–धारयाचकार–चक्रे, लुट्–धारयिता, लुङ–अदीधरत्–त, आ० लिङ–धार्यात्, धारयिषीष्ट । सन्–दिधारयिषति–ते, कर्म०–धार्यते, लुङ–अधारि ।

धृज्, धृञ्ज्—१ प०, गतौ (जाना, हिलना), लट्–धर्जति, धृञ्जति, लिट्–दधर्ज, दधृञ्ज, लुङ–अधर्जीत, अधृञ्जीत् ।

धृष्—१ प० (एकत्र होना, चोट पहुँचाना), लट्–धर्षति, लिट्–दधर्ष, क्त–धर्षित ।

धृष—५ प०, प्रागल्भ्ये (निडर होना, धृष्ट होना, गर्वयुक्त या वीर होना) लट्–धृष्णोति, लिट्–दधर्ष, लुट्–धर्षिता, लृट्–धर्षिष्यति, लङ्–अधर्षिष्यत, लुङ्–अधर्षीत् । णिच् लट्–धर्षयति–ते, लुङ्–अदीधृषत्–त, अदधर्षत्–त, सन्–दिधर्षिषति, क्त–धर्षित, धृष्ट (अशिष्ट) ।

धृष्—१ प०, १० उ०, प्रहसने (आक्रमण करना, अपमान करना, जीतना), लट्–धर्षति, धर्षयति–ते, लिट्–दधर्ष, धर्षयाचकार–चक्रे, लुङ्–अधर्षीत्, अदी-धृषत्–त, अदधर्षत्–त । आ० लिङ्–धृष्यात्, धर्ष्यात्, धर्षयिषीष्ट । सन्–दिध-र्षिषति, दिधर्षयिषति–ते ।

धॄ—९ प०, (वृद्ध होना), लट्–धृणाति, लृट्–धरिष्यति, धरीष्यति, लुङ्–अधारीत् ।

धे—१ प०, पाने (पीना, चूसना, सींचना), लट्–धयति, लिट्–दधौ, लुट्–धाता, लुङ्–अधात्, अधासीत्, अदधत्, आ० लिङ्–धेयात् । सन्–धित्सति, कर्म० लट्–धीयते, लुङ्–अधायि, णिच्–लट्–धापयते (परस्मै० भी है, यदि स्व या कर्ता का अर्थ न हो तो, वत्सान् धापयति पय), लुङ्–अदीधपत्, क्त–धीत ।

धोर्—१ प०, गतिचातुर्ये (चतुरता से चलना, चतुर होना), लट्–धोरति लिट्–दुधोर, लुङ्–अधोरीत् ।

ध्मा—१ प०, शब्दाग्निसंयोगयो: (फूँकना, साँस बाहर छोड़ना, फेंकना), लट्–धमति, लिट्–दध्मौ, लुट्–ध्माता, लृट्–ध्मास्यति, लङ्–अध्मास्यत्, लुङ्–अध्मासीत्, आ० लिङ्–ध्मायात्, ध्मेयात्, सन्–दिध्मासति, कर्म० लट्–ध्मायते, लुङ्–अध्मायि, णिच् लट्–ध्मापयति–ते, लुङ्–अदिध्मपत्–त, क्त–ध्मात ।

ध्यै—१ प०, चिन्तायाम् (सोचना, ध्यान करना), लट्–ध्यायति, लिट्–दध्यौ, लुट्–ध्याता, लृट्–ध्यास्यति, लङ्–अध्यास्यत्, लुङ्–अध्यासीत्, आ० लिङ्–ध्येयात्–ध्यायात् । सन्–दिध्यासति, कर्म० लट्–ध्यायते, लुङ्–अध्यायि णिच्–लट्–ध्यापयति–ते, लुङ्–अदिध्यपत्–त, यङन्त–दाध्यायते, दाध्याति, दाध्येति, क्त–ध्यात, क्त्वा–ध्यात्वा, तुम्–ध्यातुम् ।

ध्रज (ध्रञ्ज्), १ प०, गतौ (जाना), लट्–ध्रजति या ध्रञ्जति, लिट्–दध्राज, दध्रञ्ज, लुङ्–अध्रजीत्, अध्राजीत्, अध्रञ्जीत् ।

ध्रण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, ढोल पीटना), लट्–ध्रणति, लिट्–दध्राण, लृट्–ध्रणिष्यति, लुङ्–अध्रणीत्, अध्राणीत् ।

ध्रस्—९ प०, उञ्छे (कण चुनना), लट्–ध्रस्नाति, लिट्–दध्रास, लृट्–ध्रसिष्यति, लुङ्–अध्रसीत्, अध्रासीत् । क्त–ध्रस्त ।

ध्रस्—१० उ०, ९ प०, (कण चुनना), लट्–ध्रासयति–ते, ध्रसति, लिट्–ध्रासयाचकार–चक्रे, दध्रास, लुट्–ध्रासयिता, ध्रसिता, लुङ्–अदिध्रसत्–त, अध्रसीत्, अध्रासीत् ।

ध्राक्ष्—१ प० (चाहना, शब्द करना), लट्–ध्राक्षति ।

ध्राघ्—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना), लट्–ध्राघते, लिट्–दध्राघे, लुङ्–अध्राघिष्ट ।

ध्राड्—१ आ०, विशरणे (काटना, फाडना), लट्–ध्राडते, लुङ्–अध्राडिष्ट ।

ध्रिज्—१ प०, (जाना), लट् ध्रेजति, लृट्–ध्रेजिष्यति, लुङ्–अध्रेजीत् ।

ध्रु—१ प०, (दृढ होना), लट्–ध्रवति, लिट्–दुध्राव, लुट्–ध्रोता, लुङ्–अध्रौषीत्, सन्–दुध्रूषति ।

ध्रु—६ प० (कुटादि) गति स्थैर्ययो (जाना, स्थिर होना), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एक० दुध्रुविथ, दुध्रुथ) लृट्–ध्रुष्यति, लुङ्–अध्रुवीत् ।

ध्रुव्—(पूर्वोक्त धातु का ही रूपान्तर), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एकवचन मे दुध्रुविथ), लृट्–ध्रुविष्यति, लुङ्–अध्रुवीत् ।

ध्रै—१ प०, तृप्तौ (सन्तुष्ट होना), लट्–ध्रायति, लिट्–दध्रौ, लुङ्–अध्रासीत्, आ० लिङ्–ध्रायात्, ध्रेयात् ।

ध्वस्—१ आ०, अवस्रंसने गतौ च (गिरना, नष्ट होना), लट्–ध्वसते, लिट्–दध्वसे, लुट्–ध्वसिता, लृट्–ध्वसिष्यते, लङ्–अध्वसिष्यत्, लुङ्–अध्वसत्, अध्वसिष्ट, आ० लिङ्–ध्वसिषीष्ट । सन्–दिध्वसिषते, कर्म० लट्–ध्वस्यते, लुङ्–अध्वसि, णिच् लट्–ध्वसयति–ते, क्त–ध्वस्त, क्त्वा–ध्वसित्वा, ध्वस्त्वा ।

ध्वज्-ध्वञ्ज्—१ प० (जाना), लट्–ध्वजति, ध्वञ्जति ।

ध्वन्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, प्रतिध्वनि होना, गरजना), लट्–ध्वनति, लिट्–दध्वान, लुट्–ध्वनिता, लृट्–ध्वनिष्यति, लङ्–अध्वनिष्यत्, लुङ्–अध्वनीत् या अध्वानीत् । णिच्–लट्–ध्वनयति–ते (अस्पष्ट ध्वनि करना), ध्वानयति–ते, सन्–दिध्वनिषति, क्त–ध्वनित, ध्वान्त (अन्धेरा) ।

ध्वन्—१० उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट शब्द कहना), लट्–ध्वनयति–ते, लुङ्–अदध्वनत्–त, सन्–दिध्वनयिषति–ते, कर्म० लट्–ध्वन्यते, लुङ्–अध्वनि ।

ध्वृ—१ प०, मूर्च्छने (हिंसा करना, प्रशंसा करना, वर्णन करना), लट्–ध्वरति, लिट्–दध्वार, लुङ्–अध्वार्षीत् ।

न

नक्क्—१० उ०, नाशने (नष्ट होना), लट्–नक्कयति–ते, लुङ्–अननक्कत्–त ।

नख्—१ प० (जाना, हिलना), लट्–नखति, लिट्–ननख, लुङ्–अनखीत् ।

नग्—१ प० (जाना), लट्–नगति, लुङ्–अनगीत् अनागीत् ।

¹नट्—१ प०, नाट्ये (नाचना, अभिनय करना), लट्–नटति, लिट्–ननाट, लुट्–नटिता, लृट्–नटिष्यति, लङ–अनटिष्यत्, लुङ–अनटीत्–अनाटीत् । णिच्–लट्–नाटयति–ते (प्रनाट०), लुङ–अनीनटत्–त, सन्–निनटिषति, कर्म० लट्–नट्यते, लुङ–अनाटि, अनटि, क्त–नटित ।

नट्—१० उ०, भाषायाम् (कहना, चमकना), लट्–नाटयति–ते ।

नद्—१ प०, अव्यक्ते शब्दे (शब्द करना, गरजना), लट्–नदति, लिट्–ननाद, लुट्–नदिता, लुङ–अनादीत्, अनदीत् । णिच् लट्–नादयति–ते, लुङ–अनीनदत्–त, सन्–निनदिषति, क्त–नदित ।

नद्—१० उ० (कहना, चमकना), लट्–नादयति–ते ।

नन्द्—१ प०, समृद्धौ (आनन्दित होना), लट्–नन्दति, लिट्–ननन्द, लुट्–नन्दिता, लुङ–अनन्दीत्, आ० लिङ–नन्द्यात् । सन्–निनन्दिषति, क्त–नन्दित, णिच् लट्–नन्दयति–ते, कर्म० लट्–नन्द्यते ।

नभ्—१ आ०, हिंसायाम् अभावेऽपि (हिंसा करना, हानि पहुँचाना), लट्–नभते, लिट्–नेभे, लुङ–अनभत्, अनभिष्ट ।

नम्—१ प०, प्रह्वत्वे शब्दे च (प्रणाम करना, झुकना, शब्द करना), लट्–नमति, लिट्–ननाम, लुट्–नन्ता, लृट्–नस्यति, लङ–अनस्यत्, लुङ–अनसीत्, आ० लिङ–नम्यात्, सन्–निनसति, णिच् लट्–नमयति–नामयति, लुङ–अनीनमत्–त, कर्म० लट्–नम्यते, लुङ–अनामि, क्त–नत, क्त्वा–नत्वा, तुम्–नन्तुम् ।

नय्—१ आ० (जाना, रक्षा करना), लट्–नयते, लिट्–नेये, लुङ–अनयिष्ट ।

नर्द्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, गरजना, चिंघाड़ना), लट्–(प्र) नर्दति, लिट्–ननर्द, लुट्–नर्दिता, लृट्–नर्दिष्यति, लङ–अनर्दिष्यत्, लुङ–अनर्दीत् । सन्–निनर्दिषति, क्त–नर्दित ।

नल्—१ प०, गन्धे बन्धने च (सूँघना, बाँधना), लट्–नलति, लिट्–ननाल, लृट्–नलिष्यति, लुङ–अनालीत् ।

नल्—१० उ०, भाषायाम् (कहना), लट्–नालयति–ते लृट्–नालयिष्यति–ते, लुङ–अनीनलत्–त ।

नश्—४ प०, अदर्शने (नष्ट होना, लुप्त होना), लट्–नश्यति, लिट्–ननाश, लुट्–नशिता, नष्टा, लृट्–नशिष्यति, नङ्क्ष्यति, लङ–अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत्, लुङ–अनशत्, आ० लिङ–नश्यात् । सन्–निनङ्क्षति, निनशिषति, णिच्–लट्–नाशयति–ते, लुङ–अनीनशत्–त, क्त–नष्ट, क्त्वा–नष्ट्वा, नंष्ट्वा, नशित्वा, तुम्–नशितुम्–नष्टुम् ।

नह्—४ उ०, बन्धने (बाँधना), लट्–नह्यति–ते, लिट्–ननाह, नेहे, लुट्–नद्धा, लृट्–नत्स्यति–ते, लङ–अनत्स्यत्–त, लुङ–अनात्सीत्, अनद्ध, आ० लिङ–

ध्राक्ष्—१ प० (चाहना, शब्द करना), लट्–ध्राक्षति ।

ध्राघ्—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना), लट्–ध्राघते, लिट्–दध्राघे, लुङ–अध्राघिष्ट ।

ध्राड्—१ आ०, विशरणे (काटना, फाड़ना), लट्–ध्राडते, लुङ–अध्राडिष्ट ।

ध्रिज्—१ प०, (जाना), लट् ध्रेजति, लृट्–ध्रेजिष्यति, लुङ–अध्रेजीत।

ध्रु—१ प०, (दृढ होना), लट्–ध्रवति, लिट्–दुध्राव, लुट्–ध्रोता, लुङ–अध्रौषीत्, सन्–दुध्रूषति ।

ध्रु—६ प० (कुटादि) गति स्थैर्ययो (जाना, स्थिर होना), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एक० दुध्रुविथ, दुध्रुथ) लृट्–ध्रुष्यति, लुङ–अध्रुवीत्।

ध्रुव्—(पूर्वोक्त धातु का ही रूपान्तर), लट्–ध्रुवति, लिट्–दुध्राव, (म० पु० एकवचन में दुध्रुविथ), लृट्–ध्रुविष्यति, लुङ–अध्रुवीत् ।

ध्रै—१ प०, तृप्तौ (सन्तुष्ट होना), लट्–ध्रायति, लिट्–दध्रौ, लुङ–अध्रासीत्,आ० लिङ–ध्रायात्, ध्रेयात् ।

ध्वस्—१ आ०, अवस्रसने गतौ च (गिरना, नष्ट होना), लट्–ध्वसते, लिट्–दध्वसे, लुट्–ध्वसिता, लृट्–ध्वसिष्यते, लृङ–अध्वसिष्यत्, लुङ–अध्वसत्, अध्वसिष्ट, आ० लिङ–ध्वसिषीष्ट । सन्–दिध्वसिषते, कर्म० लट्–ध्वस्यते, लुङ–अध्वसि, णिच् लट्–ध्वसयति–ते, क्त–ध्वस्त, क्त्वा–ध्वसित्वा, ध्वस्त्वा ।

ध्वज्-ध्वञ्ज्—१ प० (जाना), लट्–ध्वजति, ध्वञ्जति ।

ध्वन्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, प्रतिध्वनि होना, गरजना), लट्–ध्वनति, लिट्–दध्वान, लुट्–ध्वनिता, लृट्–ध्वनिष्यति, लृङ–अध्वनिष्यत्, लुङ–अध्वनीत् या अध्वानीत् । णिच्–लट्–ध्वनयति–ते (अस्पष्ट ध्वनि करना), ध्वानयति–ते, सन्–दिध्वनिषति, क्त–ध्वनित, ध्वान्त (अन्धेरा) ।

ध्वन्—१० उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट शब्द कहना), लट्–ध्वनयति–ते, लुङ–अदध्वनत्–त, सन्–दिध्वनयिषति–ते, कर्म० लट्–ध्वन्यते, लुङ–अध्वनि ।

ध्वृ—१ प०, मूर्च्छने (हिंसा करना, प्रशंसा करना, वर्णन करना), लट्–ध्वरति, लिट्–दध्वार, लुङ–अध्वार्षीत् ।

न

नक्क्—१० उ०, नाशने (नष्ट होना), लट्–नक्कयति–ते, लुङ–अननक्कत्–त ।

नक्ष्—१ प० (जाना, हिलना), लट्–नक्षति, लिट्–ननक्ष, लुङ–अनक्षीत् ।

नख्—१ प० (जाना), लट्–नखति, लुङ–अनखीत् अनाखीत् ।

*नट्—१ प०, नाट्ये (नाचना, अभिनय करना), लट्—नटति, लिट्—ननाट, लुट्—नटिता, लृट्—नटिष्यति, लृङ्—अनटिष्यत्, लुङ्—अनटीत्—अनाटीत् । णिच् लट्—नाटयति—ते (प्रनाट०), लुङ्—अनीनटत्—त, सन्—निनटिषति, कर्म० लट्—नट्यते, लुङ्—अनाटि, अनटि, क्त—नटित ।

नट्—१० उ०, भाषायाम् (कहना, चमकना), लट्—नाटयति—ते ।

नद्—१ प०, अव्यक्ते शब्दे (शब्द करना, गरजना), लट्—नदति, लिट्—ननाद, लुट्—नदिता, लुङ्—अनादीत्, अनदीत् । णिच् लट्—नादयति—ते, लुङ्—अनीनदत्—त, सन्—निनदिषति, क्त—नदित ।

नद्—१० उ० (कहना, चमकना), लट्—नादयति—ते ।

नन्द्—१ प०, समृद्धौ (आनन्दित होना), लट्—नन्दति, लिट्—ननन्द, लुट्—नन्दिता, लुङ्—अनन्दीत्, आ० लिङ्—नन्द्यात् । सन्—निनन्दिषति, क्त—नन्दित, णिच् लट्—नन्दयति—ते, कर्म० लट्—नन्द्यते ।

नभ्—१ आ०, हिंसायाम् अभावेऽपि (हिंसा करना, हानि पहुँचाना), लट्—नभते, लिट्—नेभे, लुङ्—अनभत्, अनभिष्ट ।

नम्—१ प०, प्रह्वत्वे शब्दे च (प्रणाम करना, झुकना, शब्द करना), लट्—नमति, लिट्—ननाम, लुट्—नन्ता, लृट्—नस्यति, लृङ्—अनस्यत्, लुङ्—अनसीत्, आ० लिङ्—नम्यात्, सन्—निनसति, णिच् लट्—नमयति—नामयति, लुङ्—अनीनमत्—त, कर्म० लट्—नम्यते, लुङ्—अनामि, क्त—नत, क्त्वा—नत्वा, तुम्—नन्तुम् ।

नय्—१ आ० (जाना, रक्षा करना), लट्—नयते, लिट्—नेये, लुङ्—अनयिष्ट ।

नर्द्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, गरजना, चिंघाडना), लट्—(प्र) नर्दति, लिट्—ननर्द, लुट्—नर्दिता, लृट्—नर्दिष्यति, लृङ्—अनर्दिष्यत्, लुङ्—अनर्दीत् । सन्—निनर्दिषति, क्त—नर्दित ।

नल्—१ प०, गन्धे बन्धने च (सूँघना, बाँधना), लट्—नलति, लिट्—ननाल, लृट्—नलिष्यति, लुङ्—अनालीत् ।

नल्—१० उ०, भाषायाम् (कहना), लट्—नालयति—ते लृट्—नालयिष्यति—ते, लुङ्—अनीनलत्—त ।

नश्—४ प०, अदर्शने (नष्ट होना, लुप्त होना), लट्—नश्यति, लिट्—ननाश, लुट्—नशिता, नष्टा, लृट्—नशिष्यति, नङ्क्ष्यति, लृङ्—अनशिष्यत्, अनङ्क्ष्यत्, लुङ्—अनशत्, आ० लिङ्—नश्यात् । सन्—निनङ्क्षति, निनशिषति, णिच् लट्—नाशयति—ते, लुङ्—अनीनशत्—त, क्त—नष्ट, क्त्वा—नष्ट्वा, नंष्ट्वा, नशित्वा, तुम्—नशितुम्—नष्टुम् ।

नह्—४ उ०, बन्धने (बाँधना), लट्—नह्यति—ते, लिट्—ननाह, नेहे, लुट्—नद्धा, लृट्—नत्स्यति—ते, लृङ्—अनत्स्यत्—त, लुङ्—अनात्सीत्, अनद्ध, आ० लि

नह्यात्–नत्सीष्ट । सन्–निनत्सति–ते, कर्म०–लट्–नह्यते, लुङ्–अनाहि, णिच् लट्–नाहयति–ते, लुङ्–अनीनहत्–त, यङन्त–नानह्यते, नानहीति, नानद्धि, क्त–नद्ध, क्त्वा–नद्ध्वा, तुम्–नद्धुम् ।

नाथ्—१ प०, याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु (मांगना, स्वामी होना, तंग करना), लट्–नाथति, लिट्–ननाथ, लुट्–नाथिता, लुङ्–अनाथीत्, (१ आ०, आशीर्वाद देना), लट्–नाथते, लिट्–ननाथे, लुट्–नाथिता, लुङ्–अनाथिष्ट, क्त–नाथित ।

नाध्—१ आ० (नाथ् के तुल्य) ।

निज्—३ उ०, शौचपोषणयोः (धोना, पवित्र होना, पालन करना), लट्–नेनेक्ति, नेनिक्ते, लिट्–निनेज, निनिजे, लुट्–नेक्ता, लृट्–नेक्ष्यति–ते, लङ्–अनेनेक्–क्त, लुङ्–अनिजत्, अनैक्षीत्, अनिक्त, आ० लिङ्–निज्यात्, निक्षीष्ट । सन्–निनिक्षति–ते, कर्म० लट्–निज्यते, लुङ्–अनेजि, णिच्–लट्–नेजयति–ते, लुङ्–अनेनिजत्–त, क्त–निक्त, क्त्वा–निक्त्वा ।

निञ्ज्—२ आ०, शुद्धौ (धोना, स्वच्छ करना), लट्–निङ्क्ते (प्रणिङ्क्ते), लिट्–निनिञ्जे, लृट्–निञ्जिष्यते, लुङ्–अनिञ्जिष्ट, आ० लिङ्–निञ्जिषीष्ट । सन्–निनिञ्जिषते, णिच्–लट्–निञ्जयति–ते, कर्म०–लट्–निञ्ज्यते, लुङ्–अनिञ्जि, क्त–निञ्जित ।

निन्द्—१ प०, कुत्सायाम् (निन्दा करना, दोष निकालना), लट्–निन्दति, लिट्–निनिन्द, लुट्–निन्दिता, लुङ्–अनिन्दीत्, आ० लिङ्–निन्द्यात् । सन्–निनिन्दिषति, णिच् लट्–निन्दयति–ते, लुङ्–अनिनिन्दत्–त, कर्म० लट्–निन्द्यते, क्त–निन्दित ।

निद्—१ उ०, कुत्सासन्निकर्षयोः (दोष देना, पहुँचाना), लट्–नेदति–ते, लिट्–निनेद, निनिदे, लुङ्–अनेदीत्, अनेदिष्ट ।

निन्व्—१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, खाना), लट्–निन्वति, लिट्–निनिन्व, लुङ्–अनिन्वीत् ।

निल्—६ प०, गहने (घना होना), लट्–निलति, लिट्–निनेल, लृट्–नेलिष्यति, लुङ्–अनेलीत् ।

निश्—१ प०, समाधौ (सोचना, चिन्तन करना), लट्–नेशति, लृट्–नेशिष्यति, लुङ्–अनेशीत् ।

निष्—१ प०, सेचने (सींचना), लट्–नेषति, लिट्–निनेष, लुङ्–अनेषीत् ।

निष्क—१० आ०, परिमाणे (तोलना, नापना), लट्–निष्कयते, लिट्–निष्कयाञ्चक्रे, लृट्–निष्कयिष्यते, लुङ्–अनिनिष्कत ।

निस्—२ आ०, चुम्बने (चूमना), लट्–निस्ते, लिट्–निनिसे, लृट्–निसिष्यते, लुङ्–अनिसिष्ट ।

नी—१ उ०, प्रापणे (ले जाना, ढोना, निर्वाह करना, रहना), लट्–नयति–ते, लिट्–निनाय निन्ये, लुट्–नेता, लृट्–नेष्यति–ते, लृङ्–अनेष्यत्–त,

लुङ्-अनैषीत्, अनेष्ट, आ० लिङ्-नीयात्, नेषीष्ट । सन्-निनीषति-ते, कर्म० लट्-नीयते, लुङ्-अनायि, णिच्-लट्-नाययति-ते, लुङ्-अनीनयत्-त, यङन्त-नेनीयते, नेनयीति, नेनेति, क्त-नीत, क्त्वा-नीत्वा, तुम्-नेतुम् ।

नील्—१ प०, वर्णे (रंग लगाना), लट्-नीलति, लुङ्-अनीलीत् ।

नीव्—१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना, बढ़ना), लट्-नीवति, लिट्-निनीव, लुङ्-अनीवीत् ।

नु—२ प०, स्तुतौ (स्तुति करना), लट्-नौति, लिट्-नुनाव, लुट्-नविता, लृट्-नविष्यति, लृङ्-अनविष्यत्, लुङ्-अनावीत् । सन्-नुनूषति, णिच्-लट्-नावयति-ते, लुङ्-अनूनवत्-त, सन्-नुनावयिषति-ते, क्त-नुत ।

नुद्—६ उ०, प्रेरणे (प्रेरणा देना, धक्का देना, हटाना, फेंकना), लट्-नुदति-ते, लिट्-नुनोद, नुनुदे, लुट्-नोत्ता, लृट्-नोत्स्यति-ते, लृङ्-अनोत्स्यत्-त, लुङ्-अनौत्सीत्, अनुत्त, आ० लिङ्-नुद्यात्, नुत्सीष्ट । सन्-नुनुत्सति-ते, णिच्-लट्-नोदयति-ते, लुङ्-अनूनुदत्-त, कर्म०-लट्-नुद्यते, लुङ्-अनोदि, क्त-नुत्त-नुन्न ।

नू—६ प०, स्तुतौ (कुटादि) (प्रशंसा करना), लट्-नुवति, लिट्-नुनाव, (म० पु० एक० नुनुविथ), लुट्-नुविता, लृट्-नुविष्यति, लुङ्-अनुवीत् । सन्-नुनूषति, णिच्-लट्-नावयति-ते, लुङ्-अनूनवत्-त, क्त-नूत, तुम्-नुवितुम् ।

नृत—४ प०, गात्रविक्षेपे (नाचना, अभिनय दिखाना), लट्-नृत्यति, लिट्-ननर्त, लुट्-नर्तिता, लुङ्-अनर्तीत्, आ० लिङ्-नृत्यात् । सन्-निनर्तिषति, निनृत्सति, कर्म० लट्-नृत्यते, लुङ्-अनर्ति, णिच्-लट्-नर्तयते, लुङ्-अनीनृतत, अननर्तत, क्त-नृत्त ।

नॄ—१, ९ प०, नये (ले जाना, आगे चलना), लट्-नृणाति, नरति, लुट्-नरिता, नरीता, लृट्-नरिष्यति, नरीष्यति, लुङ्-अनारीत् । णिच्-नरयति-ते (नये), नारयति-ते (अन्यत्र) ।

नेष्—१ आ० (जाना, पहुँचना), लट्-नेषते, लिट्-निनेषे, लुङ्-अनेषिष्ट ।

प

पक्ष्—१ प०, १० उ०, परिग्रहे (लेना, स्वीकार करना), लट्-पक्षति, पक्षयति-ते, लृट्-पक्षयिष्यति-ते, पक्षिष्यति, लुङ्-अपक्षीत्, अपपक्षत्-त । सन्-पिपक्षिषति, पिपक्षयिषति-ते, णिच्-लट्-पक्षयति-ते ।

पच्—१ उ०, (पकाना, हजम करना), लट्-पचति-ते, लिट्-पपाच, पेचे, लुट्-पक्ता, लृट्-पक्ष्यति-ते, लृङ्-अपक्ष्यत्-त, लुङ्-अपाक्षीत्, अपक्त आ० लिङ्-पच्यात्, पक्षीष्ट । सन्-पिपक्षति-ते, कर्म० लट्-पच्यते, लुङ्-अपाचि, णिच्-लट्-पाचयति-ते, लुङ्-अपीपचत्-त, क्त-पक्व ।

पञ्च्—१ आ०, व्यक्तीकरणे (स्पष्ट करना), लट्–पञ्चते, लिट्–पपञ्चे, लृट्–पञ्चिष्यते, लुङ–अपञ्चिष्ट ।

पञ्च्–१० उ०, १ प०, विस्तारवचने (फैलाना), लट्–पञ्चयति-ते, पञ्चति, लुङ–अपपञ्चत्-त, अपञ्चीत् ।

पट्—१ प० (जाना, हिलना), लट्–पटति, लिट्–पपाट, लुट्–पटिता, लृट्–पटिष्यति, लृङ–अपटिष्यत्, लुङ–अपटीत्-अपाटीत्, णिच्–लट् पाटयति-ते, लुङ–अपीपटत्–त । सन्–पिपटिषति ।

पट्—१० उ०, ग्रन्थे (कपडा पहनना, लपेटना), लट्–पटयति-ते, लिट्-पटयाचकार–चक्रे, लुट्–पटयिता, लुङ–अपपटत्-त । सन्–पिपटयिषति-ते ।

पट्—१० उ०, भाषाया वेष्टने च (कहना, ढकना), लट्–पाटयति-ते, लृट्–पाटयिष्यति-ते, लुङ–अपीपटत् त ।

पठ्—१ प०, व्यक्ताया वाचि लिखिताक्षरवाचने च (पढना, वर्णन करना), लट्—पठति, लिट्–पपाठ, लुट्–पठिता, लृट्–पठिष्यति, लृङ–अपठिष्यत्, लुङ–अपठीत्, अपाठीत् । सन्–पिपठिषति, कर्म० लट्–पठ्यते, लुङ–अपाठि, णिच्-लट्–पाठयति-ते, लुङ–अपीपठत्-त, क्त–पठित, क्त्वा–पठित्वा, तुम्-पठितुम् ।

पण्ड्—१ आ०, गतौ (जाना), लट्–पण्डते, लिट्–पपण्डे, लुङ–अपण्डिष्ट, क्त–पण्डित ।

पण्ड्—१० उ०, नाशने (नष्ट करना), १ प०, सहतौ च, (इकट्ठा करना, ढेर बनाना), लट्–पण्डयति-ते, पण्डति ।

पण्—१ आ०, व्यवहारे (खरीदना, बाजी लगाना), लट्–पणते, लिट्–पेणे, लुट्–पणिता, लुङ–अपणिष्ट, आ० लिङ–पणिषीष्ट । सन्–पिपणिषते, णिच् लट्–पाणयति-ते, लुङ–अपीपणत्-त, क्त–पणित ।

पण्—१ आ०, (पण्+आय पर० है), स्तुतौ (प्रार्थना करना), लट्–पणायति पणते, लिट्–पणायाचकार पेणे, लुट्–पणायिता, पणिता, लृट्–पणायिष्यति, पणिष्यते, लुङ–अपणायीत्, अपणिष्ट, आ० लिङ–पणाय्यात्, पणिषीष्ट । णिच् लट्–पणाययति-ते, पाणयति-ते, लुङ–अपपणायत्-त, अपीपणत् त । सन्–पिपणायिषति, पिपणिषते, क्त–पणायित ।

पत्—१ प० (गिरना, उडना, उतरना), लट्–पतति, लिट्–पपात, लुट्–पतिता, लृट्–पतिष्यति, लृङ–अपतिष्यत्, लुङ–अपप्तत्, आ० लिङ–पत्यात् । सन्–पित्सति, पिपतिषति, कर्म० लट्–पत्यते, लुङ–अपाति, णिच्–लट्–पातयति-ते, लुङ–अपीपतत्-त, यङन्त–पनीपत्यते, पनीपतीति, पनीपत्ति क्त–पतित, क्त्वा–पतित्वा, तुम्–पतितुम् ।

पत्—४ आ०, ऐश्वर्ये (स्वामी होना, शासन करना), लट्–पत्यते, लिट्–पेते, लुङ्–अपतिष्ट ।

पथ्—१ प० (जाना), लट्–पथति, लिट्–पपाथ, लुङ्–अपथीत् ।

पथ्—१० उ०, प्रक्षेपे (फेंकना, भेजना), लट्–पाथयति-ते, लुङ्–अपीपथत्-त ।

पद्—४ आ०, गतौ (जाना, पाना), लट्–पद्यते, लिट्–पेदे, लुट्–पत्ता, लृट्–पत्स्यते, लृङ्–अपत्स्यत्, लुङ्–अपादि, आ० लिङ्–पत्सीष्ट । सन्–पित्सते, कर्म० लट्–पद्यते, लुङ्–अपादि, णिच् लट्–पादयति-ते, लुङ्–अपीपदत्, क्त–पन्न, क्त्वा–पत्त्वा, तुम्–पत्तुम् ।

पद्—१० आ०, गतौ (जाना), लट्–पदयते, लिट्–पदयाञ्चक्रे, लृट्–पदयिष्यते, लुङ्–अपपदत । सन्–पिपदयिषते, कर्म० लट्–पद्यते, लुङ्–अपदि ।

पन्—१ आ० (प्रशंसा करना), लट्–पनते, पनायति, लिट्–पेने–पनायञ्चकार, लुट्–पनिता, पनामिता, लृट्–पनिष्यते, पनायिष्यति, लुङ्–अपनिष्ट, अपनायीत्, आ० लिङ्–पनिषीष्ट, पनाय्यात् । क्त–पनित, पनायित ।

पन्थ्—१० उ०, १ प०, (जाना) लट्–पन्थयति-ते, पन्थति, लुङ्–अपपन्थत्-त, अपन्थीत् ।

पय्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्–पयते, लिट्–पेये, लुङ्–अपयिष्ट ।

पर्ण्—१० उ०, हरितभावे (हरा करना), लट्–पर्णयति-ते, लिट्–पर्णयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–पर्णयिता, लुङ्–अपपर्णत्-त ।

पर्द्—१ आ० (अपानवायु छोडना), लट्–पर्दते, लिट्–पपर्दे, लुङ्–अपर्दिष्ट ।

पर्प्—१ प० (जाना), लट्–पर्पति, लिट्–पपर्प, लुङ्–अपर्पीत् ।

पर्ब्—१ प० (जाना), लट्–पर्बति, लिट्–पपर्ब ।

पर्व्—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्–पर्वति, लिट्–पपर्व, लुङ्–अपर्वीत् ।

पल्—१ प० (जाना, हिलना), लट्–पलति, लिट्–पपाल, लुङ्–अपालीत् ।

पश्—१० उ०, बन्धने (बाँधना), लट्–पाशयति-ते, लुङ्–अपीपशत्-त, आ० लिङ्–पाश्यात्, पाशयिषीष्ट । सन्–पिपाशयिषति-ते ।

पष्—१० उ० (जाना), लट्–पषयति-ते ।

पस्—१० उ०, १ प०, नाशने (नष्ट होना), लट्–पसयति-ते, पसति लुट्–पसयिता–पसिता, लुङ्–अपपसत्-त, अपसीत् ।

पा—१ प०, पाने (पीना), लट्–पिबति, लिट्–पपौ, लुट्–पाता, लृट्–पास्यति, लृङ्–अपास्यत्, लुङ्–अपात्, आ० लिङ्–पेयात् । सन्–पिपासति, कर्म० लट्–पीयते, लुङ्–अपायि, णिच्–लट्–पाययति-ते, लुङ्–अपीप्यत्-त यङन्त–पेपीयते, पापाति, पापेति, क्त–पीत, क्त्वा, पीत्वा, तुम्–पातुम् ।

पा—२ प०, रक्षणे (रक्षा करना, शासन करना), लट्–पाति, लिट्–पपौ, लृट्–पास्यति, लङ्–अपास्यत्, लुङ्–अपासीत्, आ० लिङ्–पायात्। सन्–पिपासति, कर्म० लट्–पायते, णिच्–लट्–पालयति-ते, लुङ्–अपीपलत्-त, क्त–पीत।

पार्—१० उ०, कर्मसमाप्तौ (पूरा करना, समर्थ होना, काम निपटाना), लट्–पारयति-ते, लिट्–पारयाचकार-चक्रे, लुट्–पारयिता, लृट्–पारयिष्यति-ते, लङ्–अपारयिष्यत्-त, लुङ्–अपपारत्-त। कर्म० लट्–पार्यते, क्त–पारित।

पाल्—१० उ०, रक्षणे (रक्षा करना), लट्–पालयति-ते, लिट्–पालयाचकार-चक्रे, लुट्–पालयिता, लुङ्–अपीपलत्-त, कर्म० लट्–पाल्यते, क्त–पालित, क्त्वा–पालयित्वा।

पि—६ प० (जाना, हिलाना), लट्–पियति, लुङ्–अपैपीत्।

पिञ्ज्—२ आ०, वर्ण सपर्चने (रँगना, छना आदि), लट्–पिक्ते, लुङ्–अपिञ्जिष्ट।

पिञ्ज—१० उ०, १ प०, भाषाया दीप्तौ च (चमकना, जीवित रहना, देना, हिंसा करना), लट्–पिञ्जयति–ते, पिञ्जति, लिट्–पिञ्जयाचकार–चक्र, पिपिञ्ज, लुङ्–अपिपिञ्जत्-त, अपिञ्जीत्।

पिट्—१ प०, शब्दसघातयो (शब्द करना, इकट्ठा करना), लट्–पेटति, लिट्–पिपेट, लुङ्–अपेटीत्।

पिट्—१ प०, हिंसासक्लेशनयो (मारना, दुःख देना), लट्–पेटति।

पिण्ड्—१ आ०, १० उ०, १ प०, सघाते (इकट्ठा करना, ढेर बनाना), लट्–पिण्डते, पिण्डयति-ते, पिण्डति, लिट्–पिपिण्डे, पिंडयाचकार-चक्रे, पिपिंड, लुङ्–अपिण्डिष्ट, अपिपिंडत्-त, अपिण्डीत्। क्त–पिण्डित।

पिल्—१० उ० (फेंकना, उत्तेजित करना), लट्–पेलयति–ते, लिट्–पेलयाचकार-चक्रे, लुट्–पेलयिता।

पिन्व्—१ प०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–पिन्वति, लिट्–पिपिन्व, लुट्–पिन्विता, लृट्–पिन्विष्यति, लृङ्–अपिन्विष्यत, लुङ्–अपिन्वीत्, आ० लिङ्–पिन्व्यात्। कर्म० लट्–पिन्व्यते।

पिश्—६ प०, अवयवे दीपनायां च (रूप बनाना, जलाना), लट्–पिशति, लिट्–पिपेश, लुट्–पेशिता, लुङ्–अपेशीत्। णिच्-लट्–पेशयति-ते, लुङ्–अपीपिशत्–त। सन्–पिपिशियति, पिपेशियति, क्त–पिशित, क्त्वा–पिशित्वा।

पिष्—७ प०, सचूर्णने (पीसना, दुःख देना), लट्–पिनष्टि, लिट्–पिपेश, लुट्–पेष्टा, लृट्–पेक्ष्यति, लृङ्–अपेक्ष्यत्, लुङ्–अपिषत्, आ० लिङ्–पिष्यात्, कर्म० लट्–पिष्यते, लुङ्–अपेषि, णिच्–लट्–पेषयति-ते, लुङ्–अपीपिषत–त। सन्–पिपिक्षति, क्त–पिष्ट, क्त्वा–पिष्ट्वा, तुम्–पेष्टुम्।

पिस्—१ प० (जाना), लट्–पेसति, लिट्–पिपेस, लुट्–पेसिता, लुङ–अपेसीत् ।

पिस्—१० उ० (जाना), लट्–पेसयति–ते, लिट्–पेसयाचकार–चक्रे ।

पी—४ आ०, पाने (पीना), लट्–पीयते, लिट्–पिप्ये, लृट्–पेष्यते, लुङ–अपेष्ट । णिच् लट्–पाययति–ते, लुङ–अपीपयत्–त, सन्–पिपीपते ।

पीड्—१० उ०, (पीडा देना, दुःख देना), लट्–पीडयति–ते, लिट्–पीडयाचकार–चक्रे, लुट्–पीडयिता, लृट्–पीडयिष्यति–ते, लृङ–अपीडयिष्यत्–त, लुङ–अपीपिडत्–त, अपिपीडत्–त । सन्–पिपीडयिषति–ते, क्त–पीडित ।

पीव्—१ प०, स्थौल्ये (मोटा या पुष्ट होना), लट्–पीवति, लृट्–पीविष्यति, लुङ–अपीवीत् ।

पुस्—१० उ०, अभिवर्धने (बढ़ना, दबाना), लट्–पुसयति–ते, लुङ–अपुपुसत्–त ।

पुट्—६ उ०, संश्लेषणे (कुटादि) (चिपटना), लट्–पुटति, लिट्–पुपोट, (म० पु० एक० पुपुटिथ) लृट्–पुटिष्यति, लुङ–अपुटीत् ।

पुट्—१० उ०, संसर्गे (जोडना), लट्–पुटयति–ते, लुट्–पुटयिता, लुङ–अपुपुटत्–त ।

पुट्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना, चूर्ण करना), लट्–पोटयति–ते, लिट्–पोटयाचकार–चक्रे, लृट्–पोटयिष्यति–ते, लुङ–अपुपुटत्–त ।

पुड्—१ प०, मर्दने (पीसना), लट्–पोडति, लिट्–पुपोड, लृट्–पोडिष्यति, लुङ–अपोडीत् ।

पुड्—६ प०, उत्सर्गे (कुटादि), (छोडना, पता लगाना), लट्–पुडति, लृट्–पुडिष्यति, लुङ–अपुडीत् । सन्–पुपुडिषति ।

पुण्—६ प०, शुभकर्मणि (शुभ कर्म करना), लट्–पुणति, लृट्–पुणिष्यति, लुङ–अपोणीत् । सन्–पुपुणिषति, पुपोणिषति ।

पुथ्—४ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, दुःख पहुँचाना), लट्–पुथ्यति, लिट्–पुपोथ, लुङ–अपोथीत् ।

पुथ्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्–पोथयति–ते, लुङ–अपुपुथत्–त ।

पुन्थ्—१ प०, हिंसावलेशनयो (हिंसा करना, क्लेश देना), लट्–पुन्थति, लृट्–पुन्थिष्यति, लुङ–अपुन्थीत् ।

पुर्—६ प०, अग्रगमने (आगे चलना), लट्–पुरति, लिट्–पुपोर, लृट्–पोरिष्यति, लुङ–अपोरीत् ।

पुर्व्—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्–पूर्वति, लिट्–पुपूर्व, लृट्–पूर्विष्यति, लुङ–अपूर्वीत् । कर्म० लट्–पूर्व्यते, लुङ–अपूर्वि ।

पूर्व्—१० उ०, निकेतने (रहना), लट्—पूर्वयति-ते, लुट्—पूर्वयिता, लुङ—अपुपूर्वत्-त ।

पुल्—१ प०, ६ प०, महत्त्वे, १० उ०, सघाते च (लम्बा होना, बडा होना), लट्—पोलति, पुलति, पोलयति-ते, लुङ—अपोलीत्, अपूपुलत्-त ।

पुष—४ प०, पुष्टौ (पुष्ट करना, पालन करना, बढाना, दिखाना), लट्—पुष्यति, लिट्—पुपोष, लुट्—पोष्टा, लृट्—पोक्ष्यति, लृङ—अपोक्ष्यत्, लुङ—अपुषत्, आ० लिङ—पुष्यात् । सन्—पुपुक्षति, क्त—पुष्ट ।

पुष्—१ और ९ प०, (पालन करना, बढाना, पुष्ट करना), लट्—पोषति, पुष्णाति, लिट्—पुपोष, लुट्—पोषिता, लृट्—पोषिष्यति, लुङ—अपोषीत् । कर्म० लट्—पुष्यते, लुङ—अपोषि, णिच्—लट्—पोषयति-ते, लुङ—अपूपुषत्-त, क्त—पुषित (पोषित भी), क्त्वा—पुषित्वा, पोषित्वा ।

पुष्—१० उ०, धारणे (मानना, बढ़ाना, पुष्ट करना), लट्—पोषयति—ते, लिट्—पोषयाचकार-चक्रे, लुट्—पोषयिता, लुङ—अपूपुषत्-त । सन्—पुपोषयिषति-ते ।

पुष्प्—४ प०, विकसने (विकसित करना, विकसित होना), लट्—पुष्प्यति, लिट्—पुपुष्प, लुट्—पुष्पिता, लृट्—पुष्पिष्यति, लृङ—अपुष्पिष्यत्, लुङ—अपुष्पीत् । णिच्—लट्—पुष्पयति-ते, क्त—पुष्पित ।

पुस्त्—१० उ०, आदरानादरयो (आदर करना, अनादर करना, बाँधना), लट्—पुस्तयति-ते, लुङ—अपुपुस्तत्-त ।

पू—१ प०, पवने (पवित्र करना, हवा मे उडाकर अन्नादि साफ करना), लट्—पवते, लिट्—पुपुवे, लुट्—पविता, लुङ—अपविष्ट, आ० लिङ—पविषीष्ट । सन्—पिपविषते, णिच्—लट्—पावयति-ते, लुङ—अपीपवत्—त, यङन्त—पोपूयते, पोपवीति, पोपोति, क्त—पूत ।

पू—९ उ० (पवित्र करना आदि), लट्—पुनाति, पुनीते, लिट्—पुपाव, पुपुवे, लुट्—पविता, लृट्—पविष्यति-ते, लृङ—अपविष्यत्-त, लुङ—अपविष्ट, अपावीत्, आ० लिङ—पूयात्, पविषीष्ट सन्—पुपूषति-ते, क्त-पूत ।

पूज्—१० उ०, पूजायाम् (पूजा करना, सत्कार करना, उपहार देना), लट्—पूजयति-ते, लिट्—पूजयाचकार—चक्रे, लुट्—पूजयिता, लृट्—पूजयिष्यति—ते, लृङ—अपूजयिष्यत्—त, लुङ—अपूपुजत्—त । सन्—पुपूजयिषति—ते, क्त—पूजित, क्त्वा—पूजयित्वा, तुम्—पूजयितुम् ।

पूण्—१० उ० (ढेर लगाना), लट्—पूणयति-ते, लिट्—पूणयाचकार-चक्रे ।

पूय्—१ आ०, विशरणे दुर्गन्धे च (घृणा करना, दुर्गन्धित होना), लट्—पूयते, लिट्—पुपूये, लुट्—पूयिता, लुङ—अपूयिष्ट । णिच्—लट्—पूययति-ते, लुङ—अपूपुयत्-त, सन्—पुपूयिषते, क्त—पूत ।

पूर्—४ आ०, आप्यायने, (भरना, सन्तुष्ट करना), लट्-पूर्यते, लिट्-पुपूरे, लुट्-पूरिता, लुङ्-अपूरिष्ट, अपूरि । णिच्-लट्-पूरयति-ते, लुङ्-अपूपुरत्-त । सन्-पुपूरिषते, क्त-पूर्त ।

पूर्—१० उ०, १ प० (भरना, ढकना), लट्-पूरयति-ते, पूरति, लिट्-पूरयाचकार-चक्रे, पुपूर, लुट्-पूरयिता, पूरिता, लृट्-पूरयिष्यति-ते, लङ्-अपूरयिष्यत्-त, अपूरिष्यत्, लुङ्-अपूपुरत्-त, लुङ्-अपूरीत् । क्त-पूरित, कर्म० लट्-पूर्यते ।

पूण्—१० उ०, सघाते (ढेर लगाना, इकट्ठा करना), लट्-पूर्णयति-ते, लुङ्-अपुपूर्णत्-त ।

पूल्—१ प०, १० उ० (इकट्ठा करना, सग्रह करना), लट्-पूलति, पूलयति-ते, लुट्-पूलिता, पूलयिता, लुङ्-अपूलीत्, अपूपुलत्-त ।

पूष्—१ प०, वृद्धौ (बढ़ना), लट्-पूषति, लिट्-पुपूष, लृट्-पूषिष्यति, लुङ्-अपूषीत् ।

पृ—३ प०, पालनपूरणयो (पूरा करना, पालन करना), लट्-पिपर्ति, लङ्-अपिप , लिट्-पपार, लृट्-परिष्यति, लुङ्-अपारीत्, आ० लिङ्-प्रियात्, णिच्-लट्-पारयति-ते, लुङ्-अपीपरत्-त । सन्-पुपूर्षति ।

पृ—६ आ०, व्यायामे व्यापारे च (प्राय आ+पृ) (लगा रहना, क्रियाशील होना), लट्-प्रियते, लिट्-पप्रे, लुट्-पर्ता, लृट्-परिष्यते, लङ्-अपरिष्यत, आ० लिङ्-पृषीष्ट, लुङ्-अपृत, कर्म० लट्-प्रियते, णिच् लट्-पारयति-ते, लुङ्-अपीपरत्-त, सन्-पुपूर्षते, क्त-पृत, तुम्-पर्तुम् ।

पृच्—२ आ०, सपर्चने (सपर्क मे आना), लट्-पृक्ते, लिट्-पपृचे, लुट्-पर्चिता, लुङ्-अपर्चिष्ट । सन्-पिपर्चिषते, क्त-पृक्त ।

पृच्—७ प० (मिलना, जुडना), लट्-पृणक्ति, लिट्-पपर्च, लृट्-पर्चिष्यति, लुङ्-अपर्चीत् । सन्-पिपर्चिषति, क्त-पृक्त, क्त्वा-पर्चित्वा, तुम्-पर्चितुम् ।

पृच्—१ प०, १० उ० (विघ्न डालना, मिलना), लट्-पर्चति, पर्चयति-ते, लुङ्-अपर्चीत्, अपपर्चत्-त, अपीपृचत्-त । सन्-पिपर्चिषति, पिपर्चयिषति-ते ।

पृञ्ज्—२ आ० (सपर्क मे आना), लट्-पृङ्क्ते, पपृञ्जे ।

पृड्—६ प०, सुखने (प्रसन्न होना, सुखी होना), लट्-पृडति, लृट्-पर्डिष्यति, लुङ्-अपर्डीत् ।

पृण्—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना, सन्तुष्ट करना), लट्-पृणति, लुङ्-अपर्णीत् ।

पृथ्—१० उ०, प्रक्षेपे (फेंकना, भेजना), लट्-पर्थयति-ते, लृट्-पर्थयिष्यति-ते, लुङ्-अपपर्थत्-त, अपीपृथत्-त ।

पुप्—१ प०, सेचनहिंसाक्लेशनेपु (सीचना, मारना, क्लेश देना), लट्–पर्पति, लिट्–पपर्प, लुङ्–अपर्पीत्, णिच् लट्–पर्पयति-ते, लुङ्–अपपर्पत्–त, अपीपृपत्-त । सन्–पिपर्पिषति, क्त–पर्पित, पृष्ट ।

पृ—३ प०, पालनपूरणयो. (भरना, पालन करना, पूरा करना), लट्–पिपर्ति, लिट्–पपार, लुट्–परिता, परीता, लृट्–परिष्यति, परीष्यति, लुङ्–अपारीत्, आ० लिङ्–पूर्यात् । सन्–पुपूर्षति, पिपरिषति, पिपरीषति, कर्म० लट्–पूर्यते, णिच्-लट्–पारयति–ते, लुङ्–अपीपरत्–त, क्त–पूर्ण, पूरित, क्त्वा, पूर्त्वा ।

पृ—६ प० (पूरा करना), लट्–पृणाति, लिट–पपार, (शेष पूर्ववत्), शतृ–पृणत् ।

पृ—१० उ०, १ प०, लट्–पारयति-ते, परति, लृट्–पारयिष्यति-ते, परिष्यति, परीष्यति, लुङ्–अपीपरत्-त, लुङ्–अपारीत् ।

पेल्—१ प०, १० उ० (जाना, हिलाना), लट्–पेलति, पेलयति-ते ।

पेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्–पेवते, लुङ्–अपेविष्ट ।

पेष्—१ आ०, सेवने निश्चये प्रयतने च (सेवा करना, निश्चय करना), लट्–पेषते, लुङ्–अपेषिष्ट ।

पेस्—१ प० (जाना), लट्–पेसति ।

पै—१ प०, (सूखना, मुरझाना), लट्–पायति, लुङ्–अपासीत् ।

पैण्—१ प०, गतिप्रेरणश्लेषणेषु (जाना, कहना, चिपकना), लट्–पैणति ।

प्याय्—१ आ०, वृद्धौ (बढना, सूजना), लट्–प्यायते, लिट्–पिप्ये, लुट्–प्यायिता, लृट्–प्यायिष्यते, लङ्–अप्यायिष्यत, लुङ्–अप्यायि, अप्यायिष्ट । सन्–पिप्यायिषते, क्त–प्यान, पीन ।

प्यै—१ आ०, वृद्धौ (बढना), लट्–प्यायते, लिट्–पप्ये, लुट्–प्याता, लृट्–प्यास्यते, लङ्–अप्यास्यत, लुङ्–अप्यास्त । क्त–पीन ।

प्रच्छ—१ प० ज्ञीप्सायाम् (पूछना), लट्–पृच्छति, लिट्–पप्रच्छ, लुट्–प्रष्टा, लृट्–प्रक्ष्यति, लङ्–अप्रक्ष्यत्, लुङ्–अप्राक्षीत् (द्वि० अप्राष्टाम्), आ० लिङ्–पृच्छ्यात् । सन्–पिपृच्छिषति-ते, कर्म० लट्–पृच्छ्यते, णिच्-लट्–प्रच्छयति-ते, क्त–पृष्ट, क्त्वा–पृष्ट्वा, तुम्–प्रष्टुम् ।

प्रथ्—१ आ०, प्रख्याते (प्रसिद्ध होना, बढना, उठना), लट्–प्रथते, लिट्–पप्रथे, लुट्–प्रथिता, लृट्–प्रथिष्यते, लङ्–अप्रथिष्यत, लुङ्–अप्रथिष्ट । णिच-लट्–प्रथयति-ते, लुङ्–अपप्रथत्–त । सन्–पिप्रथिषते, क्त–प्रथित ।

प्रथ्—१० उ०, (प्रसिद्ध होना), लट्–प्रथयति–ते, लिट्–प्रथयाचकार-चक्रे लट–प्रथयिता, लुङ्–अपप्रथत्–त । सन्–पिप्रथयिषति-ते ।

प्रा—१ प०, पूरणे (भरना), लट्-प्राति, लिट्-पप्रौ, लुट्-प्राता, लुङ्-अप्रासीत्, आ० लिङ्-प्रायात्, प्रेयात्, कर्म० प्रायते।

प्री—४ आ०, प्रीतौ (प्रेम करना, प्रसन्न होना), लट्-प्रीयते, लिट्-पिप्रिये, लुट्-प्रेता, लुङ्-अप्रेष्ट, आ० लिङ्-प्रेषीष्ट, सन्-पिप्रीषते, क्त-प्रीत, क्त्वा-प्रीत्वा, तुम्-प्रेतुम्।

प्री—९ उ०, तर्पणे (प्रसन्न करना, आनन्दित होना), लट्-प्रीणाति, प्रीणीते, लिट्-पिप्राय, पिप्रिये, लुट्-प्रेता, लृट्-प्रेष्यति-ते, लुङ्-अप्रैषीत्, अप्रेष्ट, आ० लिङ्-प्रीयात्, प्रेषीष्ट। सन्-पिप्रीषति-ते, क्त-प्रीत।

प्री—१० उ० और १ उ०, तर्पणे (प्रसन्न करना), लट्-प्रीणयति-ते, प्रयति-ते, लृट्-प्रीणयिष्यति-ते, प्रेष्यति-ते, लुङ्-अपिप्रीणत्-त, अप्रैषीत्, अप्रेष्ट।

प्रु—१ आ०, गतौ (जाना, कूदना), लट्-प्रवते, लिट्-पुप्रुवे, लुट्-प्रोता, लुङ्-अप्रोष्ट। कर्म० लट्-प्रूयते, णिच् लट्-प्रावयति-ते।

प्रुट्—१ प०, मर्दने (रगडना), लट्-प्रोटति, लिट्-पुप्रोट, लुङ्-अप्रोटीत्।

प्रुष्—१ प०, दाहे (जलाना), लट्-प्रोषति, लिट्-पुप्रोष, लृट्-प्रोषिष्यति, लुङ्-अप्रोषीत्। सन्-पुप्रुषिषति, पुप्रोषिषति, क्त-प्रुष्ट, क्त्वा-प्रुष्ट्वा, प्रोषित्वा, प्रुषित्वा।

प्रुष्—९ प०, स्नेहनस्वेदनपूरणेषु (गीला होना, सींचना, भरना), लट्-प्रुष्णाति। क्त-प्रुषित, क्त्वा-प्रोषित्वा।

प्रेङ्खोल्—१० उ०, आन्दोलने (हिलना, हिलाना), लट्-प्रेङ्खोलयति-ते, लुङ्-अपिप्रेङ्खोलत्-त। कर्म० लट्-प्रेङ्खोल्यते।

प्रेष्—१ आ० (जाना), लट्-प्रेषते, लुङ्-अप्रेषिष्ट।

प्रोथ्—१ उ०, पर्याप्तौ (पूरा होना, बराबर होना), लट्-प्रोथति-ते, लुङ्-अप्रोथीत्, अप्रोथिष्ट।

प्लक्ष्—१ उ०, अदने (खाना), लट्-प्लक्षति-ते, लुङ्-अप्लक्षीत्, अप्लक्षिष्ट।

प्लिह्—१ प० (जाना), लट्-प्लेहति-ते, लुङ्-अप्लेहिष्ट।

प्ली—९ प० (जाना), प्लीनाति, लृट्-प्लेष्यति, लुङ्-अप्लैषीत्।

प्लु—१ आ०, गतौ (तैरना, उडना, कूदना), लट्-प्लवते, लिट्-पुप्लुवे, लुट्-प्लोता, लृट्-प्लोष्यते, लृङ्-अप्लोष्यत, लुङ्-अप्लोष्ट। णिच्-लट्-प्लावयति-ते, लुङ्-अपुप्लुवत्-त, अपिप्लवत्-त, क्त-प्लुत।

प्लुष्—१ और ४ प०, दाहे (जलाना), लट्-प्लोषति, प्लुष्यति, लिट्-पुप्लोष, लुट्-प्लोषिता, लृट्-प्लोषिष्यति, लृङ्-अप्लोषिष्यत्, लुङ्-अप्लोषीत् (१), अप्लुषत् (४), क्त-प्लुष्ट (१), प्लुषित (४), क्त्वा-प्लुष्ट्वा (१) प्लुषित्वा, प्लोषित्वा (१,४)।

प्लुष्—९ प०, स्नेहनसेवनपूरणेषु (सींचना, भरना, गीला होना) लट्–प्लुष्णाति, लुङ्–अप्लोषीत् । (शेष रूप प्लुष् ४ के तुल्य) ।

प्सा—२ प०, भक्षणे (खाना, निगलना), लट्–प्साति, लिट्–पप्सौ, लुट्–प्साता, लृट्–प्यास्यति, लृङ्–अप्सास्यत्, लुङ्–अप्सासीत्, आ० लिङ्–प्सायात्, प्सेयात् । सन्–पिप्सासति, कर्म० लट्–प्सायते, णिच्–लट्–प्सापयति, लुङ्–अपिप्सत्, क्त–प्सात ।

फ

फक्क्—१ प०, नीचैर्गतौ (दुर्व्यवहार करना, धीरे से जाना), लट्–फक्कति, लिट्–पफक्क, लुङ्–अफक्कीत्, क्त–फक्कित ।

फण्—१ प०, गतिदीप्त्योः (जाना, सरलता से उत्पन्न करना), लट्–फणति, लिट्–पफाण, लुट्–फणिता, लुङ्–अफणीत्, अफाणीत्, आ० लिङ्–फण्यात् । सन्–पिफणिषति, णिच्–लट्–फणयति–ते, लुङ्–अपीफणत्–त, क्त–फणित ।

फल्—१ प०, विशरणे (फटना, खोलना, फाड़ना) लट्–फलति, लिट्–पफाल, लुट्–फलिता, लृट्–फलिष्यति, लृङ्–अफलिष्यत्, लुङ्–अफालीत् । सन्–पिफलिषति, क्त–फुल्ल (प्रफुल्ल) ।

फल्—१ प०, निष्पत्तौ (जाना, परिणाम होना, सफल होना), लट्–फलति । क्त–फलित । (शेष रूप पूर्ववत्) ।

फुल्ल्—१ प०, विकसने (खोलना, पुष्प आदि का विकसित होना), लट्–फुल्लति, लिट्–पुफुल्ल, लुट्–फुल्लिता, लृट्–फुल्लिष्यति, लृङ्–अफुल्लिष्यत्, लुङ्–अफुल्लीत् । सन्–पुफुल्लिषति, क्त–फुल्लित ।

फेल्—१ प०, (जाना), लट्–फेलति, लृट्–फेलिष्यति, लृङ्–अफेलीत् ।

ब

बंह्—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना), लट्–बहंति, लुट्–बंहिष्यते, लुङ्–अबंहिष्ट । क्त–बंहित ।

बठ्—१ प०, (बढ़ना), लट्–बठति ।

बण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–बणति, लिट्–बबाण, लुङ्–अबणीत्, अबाणीत् ।

बद्—१ प० (स्थिर होना), लट्–बदति, लिट्–बबाद, लुङ्–अबदीत्–अबादीत् ।

बध्—१ आ०, चित्तविकारे (घृणा करना, डरना), लट्–बीभत्सते, लिट्–बीभत्सांचक्रे, लुट्–बीभत्सिता, लृट्–बीभत्सिष्यते, लृङ्–अबीभत्सिष्यत्, आ० लिङ्–बीभत्सिषीष्ट, लुङ्–अबीभत्सिष्ट । सन्–बीभत्सिषते, कर्म० लट्–बीभत्स्यते, लुङ्–अबीभत्सि, क्त–बीभत्सित ।

बध्—१० उ०, संयमने (बाँधना), लट्—बाधयति, बाधयते, लुङ्—अबीबधत्—त, आ० लिङ्—बाध्यात्, बाधयिषीष्ट। सन्—बिबाधयिषति—ते।

बन्ध्—९ प०, बन्धने (बाँधना, आकृष्ट करना, बनाना), लट्—बध्नाति, लिट्—बबन्ध, लुट्—बन्द्धा, लृट्—भन्त्स्यति, लङ्—अभन्त्स्यत्, लुङ्—अभान्त्सीत्, आ० लिङ्—बध्यात्। सन्—बिभन्त्सति, कर्म० लट्—बध्यते, णिच् लट्—बन्धयति—ते, लुङ्—अबबन्धत्—त, क्त—बद्ध, क्त्वा—बद्ध्वा।

बन्ध्—१० उ० (बाँधना), लट्—बन्धयति—ते, लिट्—बन्धयाचकार—चक्रे, लुङ्—अबबन्धत्—त, सन्—बिबन्धयिषति—ते। कर्म०लट्—बन्ध्यते।

बर्ब्—१ प०, (जाना), लट्—बर्बति, लिट्—बबर्ब, लुट्—बर्बिता।

बह्—१ आ०, परिभाषणहिंसाप्रदानेषु (कहना, देना, हिंसा करना), लट्—बहते, लिट्—बबहे, लुङ्—अबहिष्ट।

बर्ह्—१० उ०, हिंसायां भाषायां दीप्तौ च (मारना, बोलना), लट्—बर्हयति—ते, लुङ्—अबबर्हत्—त।

बल्—१ प०, प्राणने धान्यावरोधने च (जीवित रहना, अन्न-संग्रह करना), लट्—बलति, लिट्—बबाल, लुट्—बलिता, लुङ्—अबालीत्।

बल्—१० उ०, प्राणने (साँस लेना), लट्—बलयति ते।

बस्—४ प०, स्तम्भे (रुकना), लट्—बस्यति, लिट्—बबास, लुट्—बसिता, लुङ्—अबसत्।

बाड्—१ आ०, आप्लाव्ये (नहाना, डुबकी लगाना), लट्—बाडते, लिट्—बबाडे, लुङ्—अबाडिष्ट।

बाध्—१ आ०, लोडने (तंग करना, दुःख देना), लट्—बाधते, लिट्—बबाधे, लुट्—बाधिता, लृट्—बाधिष्यते, लङ्—अबाधिष्यत, लुङ्—अबाधिष्ट। णिच्—लट्—बाधयति—ते, लुङ्—अबबाधत्—त, कर्म०—लट्—बाध्यते, लुङ्—अबाधि, क्त—बाधित, क्त्वा—बाधित्वा, तुम्—बाधितुम्।

बिट्—१ प०, आक्रोशे (शाप देना, चिल्लाना), लट्—बेटति, लिट्—बिबेट, लुट्—बेटिता, लुङ्—अबेटीत्।

बिन्द्—१ प०, अवयवे (काटना, पृथक् करना), लट्—बिन्दति, लिट्—बिबिन्द, लुट्—बिन्दिता।

बिल्—६ प०, भेदने (तोडना), लट्—बिलति, लिट्—बिबेल, लुट्—बेलिता, लुङ्—अबेलीत्, (१० उ०), लट्—बेलयति—ते।

बिस्—४ प०, क्षेपे प्रेरणे च (फेंकना, जाना, प्रेरणा देना), लट्—बिस्यति, लिट्—बिबेस, लृट्—बेसिष्यति, लुङ्—अबिसत्।

बुक्क्—१ प०, १० उ०, भाषणे (भौंकना, कहना), लट्—बुक्कति, बुक्कयति—ते, लुङ्—अबुक्कीत् अबुबुक्कत्—त।

बुध्—१ उ०, बोधने (जानना, देखना, आदर करना), लट्–बोधति-ते, लिट्–बुबोध, बबुधे, लुट्–बोधिता, लृट्–बोधिष्यति-ते, लङ्–अबोधिष्यत्–न, लुङ्–अबुधत्, अबोधीत्, अबोधिष्ट। णिच्–लट्–बोधयति-ते, लुङ्–अबूबुधत्-त। सन्–बुबुधिषति-ते, बुबोधिषति-ते, कर्म० लट्–बुध्यते, लुङ्–अबोधि, क्त–बुधित, क्त्वा–बुधित्वा, बोधित्वा।

बुध्—४ आ० (जानना, समझना), लट्–बुध्यते, लिट्–बुबुधे, लुट्–बोद्धा, लृट्–भोत्स्यते, लङ्–अभोत्स्यत, लुङ्–अबुद्ध, अबोधि, आ० लिङ्–भुत्सीष्ट। सन्–बुभुत्सते, कर्म०–लट्–बुध्यते, णिच्–लट्–बोधयति-ते, क्त–बुद्ध, क्त्वा–बुध्द्वा, तुम्–बोद्धम्।

बुल्—१० उ० (डूबना), लट्–बोलयति-ते, लिट्–बोलयाचकार-चक्रे, लुट्–बोलयिता।

बुस्—४ प० (उगलना), लट्–बुस्यति, लिट्–बुबोस।

बुस्त्—१० उ० (आदर करना, आदरयुक्त व्यवहार करना), लट्–बुस्तयति-ते, लिट्–बुस्तयाचकार-चक्रे, लुट्–बुस्तयिता।

बृह्—१ प०, वृद्धौ (बढना), लट्–बर्हति, लिट्–बबर्ह, लुट्–बर्हिता, लृट्–बर्हिष्यति, लङ्–अबर्हिष्यत्, लुङ्–अबर्हीत्।

बृह्—६ प०, उद्यमने (काम करना), लट्–बृहति, लिट्–बबर्ह (म० पु० एक० बर्बर्हिथ, बबर्ढ), लृट्–बर्हिष्यति, भर्क्ष्यति, लुङ्–अबर्हीत्, अभृक्षत्। णिच्–लट्–बर्हयति-ते, लुङ्–अबबर्हत्-त, अबीबृहत्-त, सन्–बिबर्हिषति, बिभृक्षति, क्त–बृढ, क्त्वा–बर्हित्वा, बृढ्वा।

बृंह्—१ प०, वृद्धौ शब्दे च (बढना, गरजना), लट्–बृंहति, लिट्–बबृंह, लृट्–बृंहिष्यति, लुङ्–अबृंहीत्।

बेहृ—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना), लट्–बेहते, लुङ्–अबेहिष्ट।

ब्रू—२ उ०, व्यक्तायां वाचि (कहना), लट्–ब्रवीति, ब्रूते-आह, लिट्–उवाच, ऊचे, लुट्–वक्ता, लृट्–वक्ष्यति-ते, लङ्–अवक्ष्यत्-त, लुङ्–अवोचत्-त, आ० लिङ्–उच्यात्, वक्षीष्ट। कर्म० लट्–उच्यते, णिच्–लट्–वाचयति-ते, लुङ्–अवीवचत्-न, क्त–उक्त, क्त्वा–उक्त्वा, तुम्–वक्तुम्।

ब्रूस्—हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुँचाना), लट्–ब्रूसयति-ते, लिट्–ब्रूसयाचकार-चक्रे, लुट्–ब्रूसयिता, लुङ्–अबुब्रूसत्-त।

भ

भक्ष्—१ उ०, भ्रक्ष् धातु के तुल्य।

भक्ष्—१० उ०, अदने (खाना, दाँत से काटना, उपयोग करना), लट्–भक्षयति-ते, लिट्–भक्षयाचकार-चक्रे-आस-बभूव, लुट्–भक्षयिता, लृट्–भक्षयिष्यति-ते, लुङ्–अबभक्षत्-त, आ० लिङ्–भक्ष्यात्, भक्षयिषीष्ट। सन्–

बिभक्षयिषति-ते, कर्म० लट्–भक्ष्यते, क्त–भक्षित, क्त्वा–भक्षित्वा, तुम्–भक्षितुम् ।

भज्—१ उ०, सेवायाम् (सेवा करना, प्राप्त करना, छाँटना, आदर करना), लट्–भजति-ते, लिट्–बभाज, भेजे, लुट्–भक्ता, लृट्–भक्ष्यति-ते, लृङ्–अभक्ष्यत्-त, लुङ्–अभाक्षीत्, अभक्त, आ० लिङ्–भज्यात्–भक्षीष्ट । सन्–बिभक्षति-ते, कर्म० लट्–भज्यते, लुङ्–अभाजि, णिच्–लट्–भाजयति-ते, लुङ्–अबीभजत्–त, क्त–भक्त, क्त्वा–भक्त्वा, तुम्–भक्तुम् ।

भज्—१० उ०, विश्राणने (पकाना, देना), लट्–भाजयति-ते, लिट्–भाजयाचकार-चक्रे, लुट्–भाजयिता, लुङ्–अबीभजत्-त । सन्–बिभाजयिषति-ते ।

भञ्ज्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–भञ्जयति-ते, लुङ्–अबभञ्जत्-त ।

भञ्ज्—७ प०, आमर्दने (तोडना, निराश करना), लट्–भनक्ति, लिट्–बभञ्ज, लुट्–भङ्क्ता, लृट्–भङ्क्ष्यति, लृङ्–अभङ्क्ष्यत्, लुङ्–अभाङ्क्षीत्, आ० लिङ्–भज्यात्, सन्–बिभङ्क्षति, कर्म० लट्–भज्यते, लुङ्–अभञ्जि, अभाजि, णिच्–लट्–भञ्जयति-ते, लुङ्–अबभञ्जत्-त, क्त–भग्न, क्त्वा–भक्त्वा, भङ्क्त्वा, तुम्–भङ्क्तुम् ।

भट्—१ प०, भृतौ (वेतन पाना, पालन करना), लट्–भटति, लिट्–बभाट, लुट्–भटिता, लुङ्–अभटीत्, अभाटीत् ।

भण्ड्—१ आ०, परिभाषणे (परिहास करना), लट्–भण्डते, लिट्–बभण्डे, लुट्–भण्डिता, लुङ्–अभण्डिष्ट ।

भण्ड्—१० उ०, कल्याणे सुखे प्रतारणे च (भाग्यशाली बनाना, धोखा देना), लट्–भण्डयति-ते, लिट्–भण्डयाचकार-चक्रे, लुट्–भण्डयिता, लुङ्–अबभण्डत्-त, (१ प० भी है), लट्–भण्डति, लुङ्–अभण्डीत् ।

भण्—१ प०, शब्दे (कहना, पुकारना), लट्–भणति, लिट्–बभाण, लुट्–भणिता, लृट्–भणिष्यति, लुङ्–अभणीत्, अभाणीत् । सन्–बिभणिषति, कर्म० लट्–भण्यते, लुङ्–अभाणि, क्त–भणित, क्त्वा–भणित्वा ।

भर्त्स्—१० आ०, (कभी पर० भी है) (डराना, धमकाना, गाली देना), लट्–भर्त्सयते, लिट्–भर्त्सयाचक्रे, लुट्–भर्त्सयिता, लुङ्–अबभर्त्सत । सन्–बिभर्त्सयिषते ।

भल्—१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु (कहना, मारना, देना), लट्–भलते, लुङ्–अभलिष्ट ।

भल्—१० आ०, आभण्डने (देखना), लट्–भालयते, लिट्–भालयाचक्रे, लुट्–भालयिता, लुङ्–अबीभलत् ।

भल्ल्—१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु (वर्णन करना, चोट मारना, देना), लट्–भल्लते, लिट्–बभल्ले, लुट्–भल्लिता, लुङ–अभल्लिष्ट, क्त–भल्लित ।

भष्—१ प०, (भौंकना), लट्–भषति, लिट्–बभाष, लुट्–भषिता, लुङ–अभषीत् । सन्–बिभषिषति ।

भस्—३ प०, भर्त्सनदीप्त्यो (धमकाना, दोष लगाना, चमकना), लट्–बभस्ति, लिट्–बभास (केवल वेदो मे प्रयुक्त होती है) ।

भा—२ प०, दीप्तौ (चमकना, प्रकट होना, होना), लट्–भाति, लुङ–प्र० पु० बहु० अभान्-अभु , लिट्–बभौ, लुट्–भाता, लुङ–अभासीत् । कर्म० । लट्–भायते, लुङ–अभायि, णिच्–लट्–भापयति-ते, लुङ–अबीभयत्-त ।

भाज्—१० उ०, पृथक्करणे (विभाजित करना), लट्–भाजयति-ते, लिट्–भाजयाचकार-चक्रे, लुट्–भाजयिता, लुङ–अबभाजत्-त । सन्–बिभाजयिषति-ते, क्त–भाजित ।

भाम्—१ आ०, क्रोधे (क्रोध करना), लट्–भामते, लिट्–बभामे, लृट्–भामिष्यते, लुङ–अभामिष्ट ।

भाष्—१ आ० (कहना, पुकारना), लट्–भाषते, लिट्–बभाषे, लुट्–भाषिता, लुङ–अभाषिष्ट। (१० उ० भी है), लुङ–अबभाषत्-त ।

भिक्ष्—१ आ०, भिक्षायां लाभेऽलाभे च (माँगना, पाना), लट्–भिक्षते, लिट्–बिभिक्षे, लुट्–भिक्षिता, लृट्–भिक्षिष्यते, लुङ–अभिक्षिष्ट । णिच्–लट्–भिक्षयति-ते, लुङ–अबिभिक्षत्-त ।

भिद्—७ उ०, विदारणे (तोडना, फोडना), लट्–भिनत्ति, भिन्ते, लिट्–बिभेद, बिभिदे, लुट्–भेत्ता, लृट्–भेत्स्यति-ते, लृङ–अभेत्स्यत्-त, लुङ–अभिदत्, अभैत्सीत्, (द्वि० अभैत्ताम्), अभित्त, णिच्–लुङ–अबीभिदत्-त, सन्–बिभित्सति, यङन्त–बेभिद्यते, बेभिदीति, बेभेत्ति, कर्म० लुङ–अभेदि, क्त–भिन्न (भित्त भी होता है) ।

भिन्द्—१ प० (विभाजित करना, काटना), लट्–भिन्दति, लिट्–बिभिन्दे, लुङ–अभिन्दीत्, कर्म० लट्–भिन्द्यते ।

भी—३ प०, भये (डरना, चिन्तित होना), लट्–बिभेति, लिट्–बिभाय, बिभयाचकार, लुट्–भेत्ता, लृट्–भेष्यति, लृङ–अभेष्यत्, लुङ–अभैषीत्, आ० लिङ–भीयात् । सन्–बिभीषति, कर्म० लट्–भीयते, लुङ–अभायि, णिच्–लट्–भाययति, भापयते, भीषयते, लुङ–अबीभयत्–अबीभपत–अबीभिषत, यङन्त–बेभीयते, बेभयीति, बेभेति, क्त–भीत ।

भुज्—६ प०, कौटिल्ये (मोडना, टेढा करना), लट्–भुजति, लिट्–बुभोज, लुट्–भोक्ता, लुङ–अभौक्षीत्, क्त–भुग्न ।

भुज्—७ उ०, पालनाभ्यवहारयो (रक्षा करना अर्थ मे आत्मने० है), (खाना, उपभोग करना, अर्थ मे पर० है), लट्–भुनक्ति, भुङ्क्ते, लिट्–बुभोज,

बुभुजे, लुट्-भोक्ता, लृट्-भोक्ष्यति-ते, लृङ्-अभोक्ष्यत्-त, लुङ्-अभौक्षीत्,
अभुक्त, आ० लिङ्-भुज्यात्, भुक्षीष्ट । सन्-बुभुक्षति, कर्म० लट्-भुज्यते,
लुङ्-अभोजि, णिच्-लट्-भोजयति-ते, लुङ्-अबूभुजत्-त, यङ्न्त-बोभुज्यते,
बोभुजीति, बोभोक्ति, क्त-भुक्त ।

भू—१ प०, सत्तायाम् (कभी कभी आत्मने० भी है), (होना, जीवित
रहना, उत्पन्न होना), लट्-भवति-ते, लिट्-बभूव, बभूवे, लुट्-भविता, लृट्-भवि-
ष्यति-ते, लृङ्-अभविष्यत्-त, लुङ्-अभूत्-अभविष्ट, आ० लिङ्-भूयात्, भवि-
षीष्ट । णिच्-लट्-बुभूषति-ते, कर्म० लट्-भूयते, लुट्-भाविता, भविता, लृट्-
भविष्यते, भाविष्यते, लुङ्-अभावि, आ० लिङ्-भाविषीष्ट, भविषीष्ट, णिच्-
लट्-भावयति-ते, लुङ्-अबीभवत्-त, यङ्न्त-बोभूयते, बोभोति, बोभवीति,
क्त-भूत ।

भू-१० आ०, प्राप्तौ (पाना), लट्-भावयते, लिट्-भावयाचक्रे, लुट्-
भावयिता, लुङ्-अबीभवत, आ० लिङ्-भावयिषीष्ट । कर्म०-भाव्यते ।

भू—१० उ०, अवकल्कने (पवित्र होना, समझना, मिलना), लट्-
भावयति-ते, लिट्-भावयाचकार-चक्रे, लुट्-भावयिता, लुङ्-अबीभवत्-त,
आ० लिङ्-भाव्यात्, भावयिषीष्ट ।

भूष्—१ प०, अलङ्कारे (सजाना), लट्-भूषति, लिट्-बुभूष, लुट्-
भूषिता, लुङ्-अभूषीत् । सन्-बुभूषिषति ।

भूष्—१० उ० (सजाना), लट्-भूषयति-ते, लिट्-भूषयाञ्चकार-चक्रे,
लुट्-भूषयिता, लुङ्-अबुभूषत्-त, आ० लिङ्-भूष्यात्, भूषयिषीष्ट । सन्-
बुभूषयिषति-ते, कर्म०-भूष्यते, लुङ्-अभूषि, क्त-भूषित ।

भृ—१ उ०, भरणे (पालन-पोषण करना, भरना), लट्-भरति-ते, लिट्-
बभार, बभ्रे, लुट्-भर्ता, लृट्-भरिष्यति-ते, लुङ्-अभार्षीत्, अभृत, आ० लिङ्-
भ्रियात्-भृषीष्ट । सन्-बुभूर्षति-ते, बिभरिषति-ते, यङ्न्त-बेभ्रीयते, बर्भर्ति,
बर्भरीति, कर्म० भ्रियते, क्त-भृत ।

भृ—३ उ०, धारणपोषणयो: (पालन-पोषण करना, धारण करना),
लट्-बिभर्ति-बिभृते, लिट्-बभार-बभ्रे-बिभरांचकार-चक्रे, लुट्-भर्ता,
लृट्-भरिष्यति-ते, लुङ्-अभार्षीत्-अभृत । सन्-बिभरिषति, बुभूर्षति, कर्म०
लट्-भ्रियते, लुङ्-अभारि, णिच्-लट्-भारयति-ते, लुङ्-अबीभरत्-त ।

भृज्—१ आ०, भर्जने (भूनना), लट्-भर्जते, लिट्-बभर्जे, लुट्-भर्जिता,
लुङ्-अभर्जिष्ट, आ० लिङ्-भर्जिषीष्ट । णिच्-भर्जयति-ते, लुङ्-अबभर्जत्-त,
सन्-बिभर्जिषते, कर्म० लट्-भृज्यते, लुङ्-अभर्जि, क्त-भृक्त, क्त्वा-भर्जित्वा ।

भृश्—४ प०, अधःपतने (गिरना), लट्-भृश्यति, लिट्-बभर्श, लुट्-
भर्शिता, लुङ्-अभृशत् । क्त-भृष्ट, क्त्वा-भृष्ट्वा, भर्शित्वा ।

भॄ—९ प० (भूनना, निन्दा करना, पालन करना), लट्-भृणाति, लिट्-
बभार, लुट्-भरिता, भरीता, लुङ्-अभारीत् । क्त-भूर्ण ।

भेष्—१ उ०, भये गतौ च (डरना, जाना), लट्-भेषति-ते, लृट्-भेषिष्यति-ते, लुङ्-अभेषीत्-अभेषिष्ट, आ० लिङ्-भेष्यात्, भेषिषीष्ट ।

भ्रंश्—१ आ०, अवस्रंसने, ४ प०, अध:पतने (गिरना, ढलना, बचना), लट्-भ्रशत, भ्रश्यति, लिट्-बभ्रंशे, बभ्रंश, लुट्-भ्रंशिता, लृट्-भ्रंशिष्यति-ते, लुङ्-अभ्रशत्, अभ्रंशिष्ट, अभ्रशत् । णिच्-भ्रंशयति-ते, लुङ्-अबभ्रंशत्-त, सन्-बिभ्रंशिषति-ते, यङन्त-बाभ्रश्यते, बाभ्रंशोति, बाभ्रंष्टि, क्त-भ्रष्ट, क्त्वा-भ्रंशित्वा, भ्रष्ट्वा ।

भ्रंस्—१ आ०, ४ प० (गिरना), लट्-भ्रसते, भ्रस्यति । (शेष भ्रश् की तरह रूप चलेंगे, श् को स् में बदल दें) ।

भ्रक्ष्—१ उ०, अदने (खाना), लट्-भ्रक्षति-ते, लिट्-बभ्रक्ष-क्षे, लुट्-भ्रक्षिता, लुङ्-अभ्रक्षीत्, अभ्रक्षिष्ट, आ० लिङ्-भ्रक्ष्यात्, भ्रक्षिषीष्ट ।

भ्रण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्-भ्रणति, लिट्-बभ्राण, लुट्-भ्रणिता, लुङ्-अभ्रणीत्, अभ्राणीत् ।

भ्रम्—१ प०, चलने, ४ प० अनवस्थाने (घूमना, इधर-उधर फिरना), लट्-भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति, लिट्-बभ्राम (म० पु० एक० बभ्रमिथ, भ्रेमिथ), लुट्-भ्रमिता, लृट्-भ्रमिष्यति, लुङ्-(१ प०) अभ्रमीत्, (४ प०) अभ्रमत् । णिच्-लट्-भ्रमयति, लुङ्-अबिभ्रमत्, सन्-बिभ्रमिषति, यङन्त-बम्भ्रम्यते, बम्भ्रमीति, बम्भ्रन्ति, कर्म० लट्-भ्रम्यते, लुङ्-अभ्रमि, क्त-भ्रान्त, क्त्वा-भ्रमित्वा, भ्रान्त्वा ।

भ्रश्—१ आ०, अवस्रंसने (गिरना), लट्-भ्रशते, लिट्-बभ्रशे, लृट्-भ्रशिष्यते, लुङ्-अभ्रशत्-अभ्रशिष्ट ।

भ्रस्ज्—६ उ०, पाके (भूनना), लट्-भृज्जति-ते, लिट्-बभ्रज्ज, बभर्ज, बभ्रज्जे, बभर्जे, लुट्-भ्रष्टा, भर्ष्टा, लृट्-भ्रक्ष्यति-ते, भर्क्ष्यति-ते, लुङ्-अभ्राक्षीत्-अभार्क्षीत्-अभ्रष्ट, अभर्ष्ट, आ० लिङ्-भृज्यात्, भ्रक्षीष्ट, भर्क्षीष्ट । सन्-बिभ्रक्षति-ते, बिभर्क्षति-ते, बिभ्रज्जिषति-ते, बिभर्जिषति-ते, कर्म० लट्-भृज्यते, लुङ्-अभर्जि, अभ्रज्जि, णिच्-लट्-भ्रज्जयति-ते, भर्जयति-ते, लुङ्-अबभ्रज्जत्-त, अबभर्जत्-त, क्त-भृष्ट, तुम्-भ्रष्टुम्, भर्ष्टुम् ।

भ्राज्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्-भ्राजते, लिट्-बभ्राजे, भ्रेजे, लुट्-भ्राजिता, लृट्-भ्राजिष्यते, लुङ्-अभ्राजिष्ट, आ० लिङ्-भ्राजिषीष्ट, णिच्-लट् भ्राजयति-ते, लुङ्-अबिभ्रजत्-त, अबभ्राजत्-त, सन्-बिभ्राजिषते, कर्म० लट्-भ्राज्यते, लुङ्-अभ्राजि, क्त-भ्राजित ।

भ्राश्—(भ्लाश्)-१ आ०, ४ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्-भ्राशते, भ्राश्यते, लिट्-बभ्राशे, भ्रेशे, लुट्-भ्राशिता, लुङ्-अभ्राशिष्ट, आ० लिङ्-भ्राशिषीष्ट । णिच्-भ्राशयति-ते, लुङ्-अबभ्राशत्-त । सन्-बिभ्राशिषते, क्त-भ्राशित, तुम्-भ्राशितुम् ।

भ्रास्—पूर्ववत् ।

भ्री—९ प०, भये भरण इत्येके (डरना, रक्षा करना), लट्-भ्रीणाति, भ्रीणाति, लिट्-बिभ्राय, लृट्-भ्रेष्यति, लुङ्-अभ्रैषीत् ।

भ्रुड्—६ प०, आच्छादने सञ्चये च (ढकना, इकट्ठा करना), लट्-भ्रुडति, लिट्-बुभ्रोड, बुभ्रुडिथ (कुटादि के तुल्य), लुट्-भ्रुडिता, लुङ्-अभ्रुडीत् ।

भ्रूण्—१० आ०, आशाविशङ्कयोः (चाहना, विश्वास करना), लट्-भ्रूणयते, लिट्-भ्रूणयाञ्चक्रे, लुट्-भ्रूणयिता, लुङ्-अबुभ्रूणत्, आ० लिङ्-भ्रूणयिषीष्ट । सन्-बुभ्रूणयिषते ।

भ्रेज्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्-भ्रेजते, लिट्-बिभ्रेजे, लृट्-भ्रेजिष्यते, लुङ्-अभ्रेजिष्ट ।

भ्रेष्—१ उ०, भये गतौ च (जाना, डरना), लट्-भ्रेषति-ते, लिट्-बिभ्रेष, बिभ्रेषे, लुङ्-अभ्रेषिष्ट ।

भ्लक्ष्—१ उ० (खाना), लट्-भ्लक्षति-ते, लिट्-बभ्लक्ष, बभ्लक्षे, लुङ्-अभ्लक्षीत्, अभ्लक्षिष्ट ।

भ्लाश् — देखो — भ्राश् केवल ल को र कर दें ।
भ्लास् — देखो — भ्रास् " " "
भ्लेष् — देखो — भ्रेष् " " "

म

मंह्—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना), १ प०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्-मंहते-ति, लिट्-ममंहे-ह, लुट्-मंहिता, लुङ्-अमंहिष्ट, अमंहीत्, आ० लिङ्-मंहिषीष्ट, मंह्यात्, कर्म० मंह्यते, सन्-मिमंहिषते-ति, क्त-मंहित ।

मंह्—१० उ० (कहना, चमकना), लृट्-मंहयिष्यति-ते, लुङ्-अममंहत्-त ।

मक्क्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्-मक्कते, लिट्-ममक्के, लुट्-अमक्किष्ट ।

मक्ष्—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना, क्रुद्ध होना), लट्-मक्षति, लिट्-ममक्ष, लुङ्-अमक्षीत् ।

मख्—१ प०, गतौ (जाना, रेंगना), लट्-मखति, लिट्-ममाख, लुट्-मखिता, लुङ्-अमखीत्, अमाखीत् ।

मङ्क्—१ आ०, मण्डने (सजाना), लट्-मङ्कते, लिट्-ममङ्के, लुट्-मङ्किता, लुङ्-अमङ्किष्ट ।

मङ्ख्—१ प०, गतौ (जाना), लट्-मङ्खति, लिट्-ममङ्ख, लुङ्-अमङ्खीत्, कर्म० मङ्ख्यते, लुङ्-अमङ्खि ।

मङ्ग्—१ प० (जाना, हिलना), पूर्ववत् ।

मद्ध्—१ प०, मण्डने (सजाना), लट्–मद्धति, लिट्–ममद्ध, लुट्–मधिता, लुङ–अमंधीत्, कर्म० मध्यते ।

मघ्—१ आ०, गत्याक्षेपे आरम्भे कैतवे च (शीघ्र चलना, प्रस्थान करना, प्रारम्भ करना, धोखा देना), लट्–मघते, लिट्–ममघे, लुट्–मघिता, लुङ–अमघिष्ट, आ० लिङ–मघिषीष्ट ।

मंच्—१ आ०, दम्भे कत्थने कल्कने च (धोखा देना, दुष्ट होना, अपनी प्रशंसा करना, पीसना), लट्–मचते, लिट्–मेचे, लुट्–मचिता, लुङ–अमचिष्ट ।

मंच्—१ आ०, धारणोच्छ्रायपूजनेषु (पकडना, ऊँचा होना, जाना, सजाना, चमकना), लट्–मञ्चते, लिट्–ममञ्चे, लुट्–मञ्चिता, लुङ–अमञ्चिष्ट ।

मञ्ज्—१० उ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–मञ्जयति–ते, लिट–मञ्जयाचकार–चक्रे, लुट्–मञ्जयिता, लुङ–अममञ्जत्–त ।

मठ—१ प०, मर्दननिवासनयो (पीसना, रहना, जाना), लट्–मठति, लिट्–ममाठ, लुट्–मठिता, लुङ–अमठीत् ।

मण्ठ—१ आ०, शोके (शोकपूर्वक स्मरण करना, चाहना), लट्–मण्ठते, लिट्–ममण्ठे, लुट्–मण्ठिता, लुङ–अमण्ठिष्ट ।

मण्—१ प०, शब्दे, (शब्द करना, चरचर करना), लट्–मणति, लिट्–ममाण, लुट्–मणिता, लुङ–अमणीत् ।

मण्ड्—१ प०, भूषायाम् (अपने आपको सजाना), लट्–मण्डति, लिट्–ममण्ड, लुट्–मण्डिता, लृट्–मण्डिष्यति, लुङ–अमण्डीत्, आ० लिङ–मण्ड्यात् । णिच्–लट्–मण्डयति–ते, लुङ–अममण्डत्–त । सन्– मिमण्डिषति ।

मण्ड्—१ आ०, विभाजने (बाँटना), लट्–मण्डते, लिट्–ममण्डे, लुट्–मण्डिता, लृट्–मण्डिष्यते, लुङ–अमण्डिष्ट, आ० लिङ–मण्डिषीष्ट । सन्–मिमण्डिषते, कर्म०–लट् मण्डयते, लुङ–अमण्डि ।

मण्ड्—१० उ०, (सजाना), लट्–मण्डयति–ते, लिट्–मण्डयाचकार–चक्रे, लुट्–मण्डयिता, लुङ–अममण्डत्–त, आ० लिङ–मण्डयात्, मण्डयिषीष्ट । सन्–मिमण्डयिषति–ते ।

मथ्—१ प०, विलोडने (मथना, हिलाना), लृट्–मथिष्यति, लुङ–अमथीत् । णिच्–लट्–माथयति–ते, लुङ–अमीमथत्–त, सन्–मिमथिषते ।

मद्—४ प०, हर्षग्लेपनयो. (प्रसन्न होना, दयनीय दशा मे होना), लट्–माद्यति, लिट्–ममाद, लुट्–मदिता, लृट्–मदिष्यति, लुङ–अमदीत्, अमादीत्, णिच्–लट्–मदयति–ते, (मादयति–ते, प्रमत्त करना) लुङ–अमीमदत्–त । सन्–मिमदिषति, यङन्त–मामद्यते, मामदीति, मामत्ति, कर्म० लट्–मद्यते, लुङ–अमादि–अमदि, क्त–मत्त ।

मद्—१० आ०, तृप्तियोगे (प्रसन्न करना), लट्–मादयते, लिट्–मादयाचक्रे, लुट्–मादयिता, लृट्–मादयिष्यते, लुङ–अमीमदत, आ० लिङ–मादयिषीष्ट । सन्–मिमादयिषते, कर्म० लट्–माद्यते, लुङ–अमादि, क्त–मादित ।

मन्—४ आ०, ज्ञाने (जानना, सोचना), लट्–मन्यते, लिट्–मेने, लुट्–
मन्ता, लृट्–मंस्यते, लृङ–अमंस्यत, लुङ–अमंस्त, आ० लिङ–मंसीष्ट । सन्–
मिमंसते, णिच्–लट्–मानयति-ते, लुङ–अमीमनत्–त, यङन्त–मन्मन्यते, मन्म-
नीते, मन्मन्ति, क्त–मत, क्त्वा–मत्वा, तुम्–मन्तुम् ।

मन्—८ आ०, अवबोधने (सोचना, मानना), लट्–मनुते, लिट्–मेने,
लुट्—मनिता, लृट्–मनिष्यते, लुङ–अमनिष्ट, अमत, (म० पु० एक० अमनिष्ठा,
अमथा) । सन्–मिमनिषते, तुम्–मनितुम्, णिच्–पूर्ववत् ।

मन्—१० आ०, स्तम्भे (गर्वयुक्त होना), लट्–मानयते, लिट्–मानयाञ्चक्रे,
लुट्–मानयिता, लुङ–अमीमनत, आ० लिङ–मानयिषीष्ट सन्–मिमानयिषते,
कर्म० लट्–मान्यते, क्त–मानित ।

मन्त्र्—१० आ०, गुप्तपरिभाषणे (मन्त्रणा करना, सम्मति देना, राय लेना,
कहना), लट्–मन्त्रयते, (कभी मन्त्रयति भी होता है), लिट्–मन्त्रयाञ्चक्रे, लुट्–
मन्त्रयिता, लृट्–मन्त्रयिष्यते, लुङ–अममन्त्रत । सन्–मिमन्त्रयिषते, क्त–मन्त्रित,
क्त्वा–मन्त्रयित्वा ।

मन्थ्—१ प०, ६ प०, विलोडने (मथना, क्षुब्ध करना), लट्–मन्थति,
मथ्नाति- (म० पु० एक० लोट्–मथान), लिट्–ममन्थ, लुट्–मन्थिता, लृट्–
मन्थिष्यति, लुङ–अमन्थीत्, आ० लिङ–मथ्यात् । सन्–मिमन्थिषति, कर्म०
मथ्यते लट्–मथ्यते, लुङ–अमन्थि, णिच्–लट्–मन्थयति-ते, लुङ–अममन्थत्–त,
यङन्त–मामन्थ्यते, मामन्थीति, मामन्ति, क्त–मथित, क्त्वा–मन्थित्वा, शतृ–
मन्थत् (१), मथ्नत् (६) ।

मन्थ्—१ प०, हिंसासंक्लेशनयोः (मारना, दुःख देना), लट्–मन्थति, लिट्–
ममन्थ, लुट्–मन्थिता, लृट्–मन्थिष्यति, लुङ–अमन्थीत्, कर्म० लट्–मन्थ्यते,
लुङ–अमन्थि, क्त–मन्थित, क्त्वा–मन्थित्वा ।

मन्द्—१ आ०, स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (प्रशंसा करना, प्रशंसित
होना, प्रसन्न होना, प्रमत्त होना, सोना, चमकना, मन्द गति होना), लट्–मन्दते,
लिट्–ममन्दे, लुट्–मन्दिता, लृट्–मन्दिष्यते, लुङ–अमन्दिष्ट, आ० लिङ–मन्दि-
षीष्ट, कर्म० लट्–मन्द्यते ।

मभ्र्—१ प०, गतौ (जाना, हिलना), लट्–मभ्रति, लिट्–ममभ्र, लुट्–
मभ्रिता, लुङ–अमभ्रीत् ।

मय्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्–मयते, लिट्–ममये, लुट्–मयिता,
लुङ–अमयिष्ट, आ० लिङ–मयिषीष्ट ।

मर्च्—१० उ०, शब्दे ग्रहणे च (लेना, शब्द करना, जाना, चोट पहुँचाना),
लट्–मर्चयति-ते, लिट्–मर्चयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–मर्चयिता, लुङ–अममर्चत्–त,
आ० लिङ–मर्च्यात्, मर्चयिषीष्ट ।

मर्ब्—१ प० (जाना, हिलना), लट्–मर्बति, लिट्–ममर्ब, लुट्–मर्बिता,
लुङ–अमर्बीत् ।

मर्व्—१ प०, पूरणे (पूरा करना), लट्–मर्वति, लिट्–ममर्व, लुट्–मर्विता, लुङ–अमर्वीत् । णिच्–(शब्द करना), लट्–मर्वयति-ते ।

मल्—१ आ०, १० उ०, धारणे (पकडना, रखना), लट्–मलते, मलयति-ते, लिट्–मेले, मलयाचकार-चक्रे, लुट्–मलिता, मलयिता, लुङ–अमलिष्ट, अमीमलत्–त ।

मल्ल्—१ आ०, (पकडना, रखना), लट्–मल्लते, शेष पूर्ववत् ।

मव्—१ प०, बन्धने हिंसायां च (बांधना, हिंसा करना), लट्–मवति, लिट्–ममाव, लुट्–मविता, लुङ–अमवीत्–अमावीत् ।

मश्—१ प०, शब्दे कोपे च (गूंजना, क्रोध करना), लट्–मशति, लिट्–ममाश, लुट्–मशिता, लुङ–अमशीत्–अमाशीत् ।

मष्—१ प०, हिंसायां शब्दे च (चोट मारना, नष्ट करना), लट्–मषति, लिट्–ममाष, लुट्–मषिता, लुङ–अमषीत्–अमाषीत् ।

मस्—४ प०, परिमाणे (तोलना, बदलना), लट्–मस्यति, लिट्–ममास, लुट्–मसिता, लुङ–अमसत्, क्त–मस्त, तुम्–मसितुम् ।

मस्क्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्–मस्कते, लिट्–ममस्के, लुट्–मस्किता, लृट्–मस्किष्यते, लुङ–अमस्किष्ट ।

मस्ज्—६ प०, शुद्धौ (नहाना, डूबना, शुद्ध करना), लट्–मज्जति, लिट्–ममज्ज, (म० पु० एक० ममज्जिथ, ममङ्क्थ) लुट्–मङ्क्ता, लृट्–मङ्क्ष्यति, लुङ–अमाङ्क्षीत्, (प्र० पु० द्वि० अमाङ्क्ताम्), आ० लिङ–मज्ज्यात् । सन्–मिमङ्क्षति, णिच्–लट्–मज्जयति, लुङ–अममज्जत्–त, कर्म० मज्ज्यते, क्त–मग्न ।

मह—१ प०, १० उ०, पूजायाम् (आदर करना, प्रसन्न होना, बढाना), लट्–महति, महयति-ते, लिट्–ममाह, महयाचकार-चक्रे, लुट्–महिता, महयिता, लुङ–अमहीत्, अममहत्–त । सन्–मिमहिषति, मिमहयिषति, णिच् (१ प०)–माहयति-ते, लुङ–अमीमहत्–त, कर्म० लट्–मह्यते, क्त–महित, तुम्–महितुम्–महयितुम् ।

मह्—१० आ०, पूजायाम् (आदर करना), लट्–महीयते, लिट्–महीयाचक्रे, लृट्–महीयिष्यते, लुङ–अमहीयिष्ट ।

मा—२ प०, माने (तोलना, तुलना करना, बनाना, दिखाना आदि), लट्–माति, लिट्–ममौ, लुट्–माता, लृट्–मास्यति, लृङ–अमास्यत्, लुङ–अमासीत्, आ० लिङ–मेयात् । सन्–मित्सति, यङन्त–मेमीयते, मामाति, मामेति, कर्म० लट्–मीयते, लुङ–अमायि, णिच्–लट्–मापयति-ते, लुङ–अमीमपत्–त, क्त–मित, क्त्वा–मित्वा ।

मा—३ और ४ आ०, (नापना, तोलना आदि), लट्–मिमीते, मायते, लिट्–ममे, लुट्–माता, लृट्–मास्यते, लुङ–अमास्त, आ० लिङ–मासीष्ट । सन्–मित्सते (शेष रूप पूर्ववत्) ।

मांक्ष—१ प०, कांक्षायाम् (चाहना), लट्–मांक्षति, लुङ्–अमांक्षीत् ।

मान्—१ आ०, जिज्ञासायाम् (जिज्ञासा करना), लट्–मीमांसते, लिट्–मीमांसांबभूव-आस-चक्रे, लुट्–मीमांसिता, लुङ्–अमीमांसिष्ट, आ०, लिङ्–मीमांसिसीष्ट । सन्–मीमांसिषते, णिच्–लुङ्–अमीमांसत्-त, कर्म० लट्–मीमांस्यते, लुङ्–अमीमांसि, क्त–मीमांसित ।

मान्—१० आ०, स्तम्भे (रोकना, गर्वयुक्त होना), लट्–मानयते, लृट्–मानयिष्यते, लुङ्–अमीमनत, आ० लिङ्–मानयिषीष्ट ।

मान्—१० प०, १ प०, पूजायाम् (आदर करना, पूजा करना), लट्–मानयति, मानति, लुङ्–अमीमनत्, अमानीत् । सन्–मिमानयिषति–मिमानिषति ।

मार्ग्—१ प०, अन्वेषणे (खोजना, ढूंढना, पीछा करना), लट्–मार्गति, लिट्–ममार्ग, लुट्–मार्गिता, लुङ्–अमार्गीत् । सन्–मिमार्गिषति, कर्म० लट्–मार्ग्यते, लुङ्–अमार्गि ।

मार्ग्—१० उ०, (ढूंढना, जाना, सजाना), लट्–मार्गयति-ते, लिट्–मार्गयाचकार-चक्रे, लुट्–मार्गयिता, लृट्–मार्गयिष्यति-ते, लुङ्–अममार्गत्-त, आ० लिङ्–मार्ग्यात्–मार्गयिषीष्ट, क्त–मार्गित, तुम्–मार्गयितुम् ।

मार्ज्—१० उ०, शब्दे शुद्धौ च (शब्द करना, पवित्र करना, साफ करना), लट्–मार्जयति-ते, लिट्–मार्जयाचकार-चक्रे, लुट्–मार्जयिता, लुङ्–अममार्जत्–त, आ० लिङ्–मार्ज्यात्–मार्जयिषीष्ट । सन्–मिमार्जयिषति–ते ।

मि—५ उ०, प्रक्षेपणे (फेंकना, फैलाना, तोलना), लट्–मिनोति, मिनुते, लिट्–ममौ, मिम्ये, लुट्–माता, लृट्–मास्यति–ते, लुङ्–अमासीत्, अमास्त, आ० लिङ्–मीयात्–मासीष्ट । सन्–मित्सति-ते, कर्म० लट्–मीयते, णिच्–लट्–मापयति-ते, लुङ्–अमीमपत्–त, क्त–मित ।

मिथ्—१ उ०, मेधाहिंसयो (मिलना, समझना, हिंसा करना, पकड़ना), लट्–मेथति-ते, लिट्–मिमेथ, मिमिथे, लुट्–मेथिता, लुङ्–अमेथीत्, अमेथिष्ट, आ० लिङ्–मिथ्यात्–मेथिषीष्ट ।

मिद्—१ आ०, स्नेहने (गीला होना, पिघलाना, प्रेम करना), लट्–मेदते, लिट्–मिमिदे, लुट्–मेदिता, लुङ्–अमिदत्–अमेदिष्ट, आ० लिङ्–मेदिषीष्ट । सन्–मिमिदिषते–मिमेदिषते । णिच्–लट्–मेदयति–ते, लुङ्–अमीमिदत्–त, क्त–मिन्न, मेदित, क्त्वा–मिदित्वा, मेदित्वा ।

मिद्—४ प० (पिघलाना, आदि), लट्–मेद्यति, लिट्–मिमेद, लुट्–मेदिता, लुङ्–अमिदत् । सन्–मिमिदिषति, मिमेदिषति ।

मिद्—१ उ० (मिथ् के तुल्य), लट्–मेदति–ते ।

मिन्द्—१ प०, १० उ०, लट्–मिन्दति, मिन्दयति–ते, लुट्–मिन्दिता, मिन्दयिता, लुङ्–अमिन्दीत्–अमिमिन्दत्–त, आ० लिङ्–मिन्द्यात्–मिन्दयिषीष्ट ।

मिन्व्—१ प०, स्नेहने सेचने च (आदर करना, सीचना), लट्–मिन्वति, लिट्–मिमिन्व, लृट्–मिन्विष्यति, लुङ–अमिन्वीत्, कर्म०–मिन्व्यते ।

मिल्—६ उ०, सगमे (मिलना, एक होना), लट्–मिलति-ते, लिट्–मिमेल-मिमिले, लुट्–मेलिता, लृट्–मेलिष्यति-ने, लृङ–अमेलिष्यत्–त, लुङ–अमेलीत्–अमेलिष्ट । सन्–मिमिलिषति-ते, मिमेलिषति-ने, कर्म०–लट्–मिल्यते, लुङ–अमेलि, णिच्–लट्–मेलयति-ते, लुङ–अमोमिलत्–त, क्त–मिलित, क्त्वा–मिलित्वा, मेलित्वा ।

मिश्—१ प०, शब्दे रोषकृते च (हल्ला करना, क्रोध करना), लट्–मेशति, लिट्–मिमेश, लुट्–मेशिता, लुङ–अमेशीत् ।

मिश्र्—१० उ०, सपर्के (मिलाना), लट्–मिश्रयति-ते, लिट्–मिश्रयाचकार–चक्रे, लुट्–मिश्रयिता, लुङ–अमिमिश्रत्–त, आ० लिङ–मिश्रयात्, मिश्रयिषोष्ट । सन्–मिमिश्रयिषति-ते, क्त–मिश्रित, क्त्वा–मिश्रयित्वा ।

मिष्—६ प० (आँख खोलना, देखना), लट्–मिषति, लिट्–मिमेष, लुट्–मेषिता, लुङ–अमेषीत्। सन्–मिमिषिषति, मिमेषिषति, क्त्वा–मिषित्वा, मेषित्वा ।

मिष्—१ प०, सेचने (सीचना, गीला करना), लट्–मेषति, (शेष पूर्ववत्)। क्त्वा–मिषित्वा, मेषित्वा, मिष्ट्वा ।

मिह्—१ प०, सेचने (गीला करना, मूत्र करना), लट्–मेहति, लिट्–मिमेह, लुट्–मेढा, लृट्–मेक्ष्यति, लुङ–अमिक्षत् । सन्–मिमिक्षति, णिच्–लट्–मेहयति-ते, लुङ–अमीमिहत्–त, क्त–मीढ, क्त्वा–मीढ्वा, तुम्–मेढुम् ।

मी—४ आ०, हिंसायाम्, (हिंसाऽत्र प्राणवियोग) (मरना, नष्ट होना), लट्–मीयते, लिट्–मिम्ये, लृट्–मेष्यते, लुङ–अमेष्ट । सन्–मिमीषते, णिच्–लट्–माययति-ते, लुङ–अमीमयत्–त ।

मी—६ उ०, हिंसायाम् (हिंसा करना, कम करना, बदलना, नष्ट होना), लट्–मीनाति, मीनीते, लिट्–ममौ, मिम्ये, लुट्–माता, लुङ–अमासीत्, अमास्त, आ० लिङ–मीयात्–मासीष्ट । सन्–मित्सति-ते, कर्म० लट्–मीयते, णिच्–लट्–मापयति-ते, लुङ–अमीमपत्–त, क्त–मीत, क्त्वा–मीत्वा ।

मी—१ प०, १० उ० गतौ (जाना, समझना), लट्–मयति, माययति-ते, लिट्–मिमाय, माययाचकार-चक्रे, लुट्–मेता, माययिता, लुङ–अमैषीत्–अमीमयत्–त ।

मील्—१ प०, निमेषणे (आँख आदि बन्द करना, फूलो आदि का बन्द होना, मिलना, बन्द करना), लट्–मीलति, लिट्–मिमील, लुट्–मीलिता, लुङ–अमीलीत् । णिच्–लट्–मीलयति-ते, लुङ–अमीमिलत्–त, अमिमीलत्–त । सन्–मिमीलिषति ।

मीव्—१ प०, स्थौल्ये (मोटा होना, जाना), लट्–मीवति, लिट्–मिमीव, लुट्–मीविता, लुङ–अमीवीत् ।

मच्—१ आ०, कल्कने (धोखा देना), लट्–मुञ्चते, लिट्–मुमुञ्चे, लुङ–अमुञ्चिष्ट ।

मुच्—६ उ०, मोक्षणे (छोडना, मुक्त करना, त्यागना), लट्–मुञ्चति–ते, लिट्–मुमोच, मुमुचे, लुट्–मोक्ता, लट्–मोक्ष्यति–ते, लुङ–अमुचत्, अमुक्त, आ० लिङ–मुच्यात्, मुक्षीष्ट । सन्–मुमुक्षति (मुमुक्षते, मोक्षते, अवमेव), णिच्–लट्–मोचयति–ते, लुङ–अमूमुचत्–त, क्त–मुक्त, क्त्वा–मुक्त्वा ।

मुज, मुञ्ज्—१ प०, १० उ०, शब्दे (साफ करना, पवित्र करना, शब्द करना), लट्–मोजति, मुञ्जति, मोजयति–ते, मुञ्जयति–ते, लिट्–मुमोज, मुमुञ्ज, मोजयाचकार-चक्रे, मुञ्जयाचकार-चक्रे ।

मुट्—१ प०, मर्दने (रगडना, पीसना, हिंसा करना), लट्–मोटति, लिट्–मुमोट, लुट्–मोटिता, लुङ–अमोटीत् ।

मुट्—६ प०, आक्षेपमर्दनबन्धनेषु (दोष लगाना, दबाना, बांधना), लुट्–मुटति, शेष पूर्ववत् ।

मुट्—१० उ०, सचूर्णने (तोडना, चूरा करना), लट्–मोटयति–ते, लुङ–अमूमुटत्–त ।

मुण्ट्—१ प०, मर्दने (पीसना, रगडना), लट्–मुण्टति, लिट्–मुमुण्ट, लुट्–मुण्टिता, लुङ–अमुण्टीत् ।

मुण्ठ्—१ आ०, पालने पलायने वा (रक्षा करना, भाग जाना), लट्–मुण्ठते, लिट्–मुमुण्ठे, लुट्–मुण्ठिता, लुङ–अमुण्ठिष्ट, आ० लिङ–मुण्ठिषीष्ट, कर्म०–लट्–मुण्ठ्यते, ।

मुण्ड्—१ प०, खण्डने (मुण्डन कराना, पीसना), लट्–मुण्डति, लिट्–मुमुण्ड, लुट्–मुण्डिता, लुङ–अमुण्डीत् । सन्–मुमुण्डिषति, णिच्–लट्–मुण्डयति–ते, लुङ–अमुमुण्डत्–त ।

मुण्ड्—१ आ०, मार्जने मज्जने वा (डूबना), लट्–मुण्डते, लिट्–मुमुण्डे, लुट्–मुण्डिता, लुङ–अमुण्डिष्ट ।

मुण्—६ प०, प्रतिज्ञाने (प्रतिज्ञा करना), लट्–मुणति, लिट्–मुमोण, लुट्–मोणिता, लुङ–अमोणीत् ।

मुद्—१ आ०, हर्षे (आनन्दित होना, प्रसन्न होना), लट्–मोदते, लिट्–मुमुदे, लुट्–मोदिता, लट्–मोदिष्यते, लुङ–अमोदिष्ट, आ० लिङ–मोदिषीष्ट, सन्–मुमुदिषते, मुमोदिषते, क्त–मुदित, मोदित ।

मुद्—१० उ०, संसर्गे (मिलाना, पवित्र करना), लट्–मोदयति–ते, लिट्–मोदयाचकार-चक्रे, लुट्–मोदयिता, लुङ–अमूमुदत्–त ।

मुर्—६ प०, संवेष्टने (ढकना), लट्–मुरति, लिट्–मुमोर, लुङ–अमोरीत् ।

मुर्च्छ्—१ प०, मोहसमुच्छाययोः (मूर्च्छित होना, सज्ञाहीन होना, बढना, व्याप्त होना, योग्य होना), लट्–मूर्च्छति, लिट्–मुमूर्च्छ, लुट्–मूर्च्छिता, लुङ–अमूर्च्छीत्, आ० लिङ–मूर्च्छ्यात्, णिच्–लट्–मूर्च्छयति-ते, लुङ–अमुमूर्च्छत्–त । सन्–मुमूर्च्छिषति, क्त–मूर्छित, मूर्त ।

मुर्व्—१ प०, बन्धने (बाँधना), लट्–मुर्वति, लिट्–मुमुर्व, लुट्–मुर्विता, लुङ–अमुर्वीत् ।

मुल्—देखो मूल् धातु ।

मुष्—६ प०, स्तेये (चुराना), लट्–मुष्णाति, लोट्–म० पु० एक० मुषाण, लिट्–मुमोष, लुट्–मोषिता, लृट्–मोषिष्यति, लुङ–अमोषीत्, आ० लिङ–मुष्यात् । सन्–मुमुषिषति, क्त–मुषित, क्त्वा–मुषित्वा, ल्यप्–सम्मुष्य, तुम्–मोषितुम् ।

मुस्—४ प०, खण्डने (फाडना, टुकडे करना), लट्–मुस्यति, लिट्–मुमोस ।

मुस्त्—१० उ०, सघाते (ढेर लगाना, इकट्ठा करना), लट्–मुस्तयति, –ते, लिट्–मुस्तयाचकार-चक्रे, लुट्–मुस्तयिता, लुङ–अमुमुस्तत्–त, आ० लिङ–मुस्त्यात्, मुस्तयिषीष्ट ।

मुह्—४ प०, वैचित्ये (मूर्च्छित होना, चक्कर खाना, गिरना, त्रुटि/करना, मूर्ख होना), लट्–मुह्यति, लिट्–मुमोह, लुट्–मोहिता, मोग्धा, मोढा, लृट्–मोहिष्यति, मोक्ष्यति, लृङ–अमोहिष्यत्–अमोक्ष्यत्, लुङ–अमुहत्, आ० लिङ–मुह्यात् । सन्–मुमुहिषति, मुमोहिषति, मुमुक्षति, कर्म०–लट्–मुह्यते, लुङ–अमोहि, णिच्–लट्–मोहयति-ते, लुङ–अमूमुहत्–त, क्त–मुग्ध–मूढ, क्त्वा–मोहित्वा, मुग्ध्वा, मूढ्वा, ल्यप्–सम्मुह्य, तुम्–मोहितुम्, मोग्धुम्, मोढुम् ।

मू—१ आ०, बन्धने (बाँधना), लट्–मवते, लिट्–मुमुवे, लृट्–मविष्यते, लुङ–अमविष्ट ।

मूल्—१ प०, प्रतिष्ठायाम् (दृढ होना), लट्–मूलति, लिट्–मुमूल, लुट्–मूलिता, लुङ–अमूलीत् । सन्–मुमूलिषति, णिच्–लट्–मूलयति-ते, लुङ–अमूमुलत्–त ।

मूल्—१० उ०, रोपणे (पेड लगाना, अकुरित होना), लट्–मूलयति-ते, लिट्–मूलयाचकार-चक्रे, लुट्–मूलयिता, लुङ–अमूमुलत्–त, सन्–मुमूलयिषति-ते, क्त–मूलित ।

मूष्—१ प०, स्तेये (चुराना), लट्–मूषति, लिट्–मुमूष, लुङ–अमूषीत् । सन्–मुमूषिषति, णिच्–लट्–मूषयति-ते, लुङ–अमूमुषत्–त, क्त–मूषित ।

मृ—६ आ०[1], प्राणत्यागे (मरना, नष्ट होना), लट्–म्रियते, लिट्–ममार, लुट्–मर्ता, लृट्–मरिष्यति, लुङ्–अमृत, आ० लिङ्–मृषीष्ट। सन्–मुमूर्षति, कर्म० लट्–म्रियते, णिच्–लट्–मारयति-ते, लुङ्–अमीमरत्–त, क्त–मृत, तुम्–मर्तुम्, क्त्वा–मृत्वा।

मृक्ष्—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्–मृक्षति, लिट्–ममर्क्ष, लुङ्–अमृक्षीत्।

मृग्—४ प०, अन्वेषणे (ढूंढना, शिकार खेलना, परीक्षा करना, मांगना), लट्–मृग्यति, लिट्–ममर्ग, लुट्–मर्गिता, लृट्–मर्गिष्यति, लुङ्–अमर्गीत्, क्त–मृगित।

मृग्—१० आ०, अन्वेषणे (ढूंढना आदि), लट्–मृगयते, लिट्–मृगयाचक्रे, लुट्–मृगयिता, लृट्–मृगयिष्यते, लुङ्–अममृगत, आ० लिङ्–मृगयिषीष्ट। सन्–मिमृगयिषते, कर्म० लट्–मृग्यते, लुङ्–अमर्गि।

मृज्—१ प०, शौचालङ्कारयो (सफाई करना, आदि), लट्–मार्जति, लिट्–ममार्ज, (नीचे की मृज् धातु देखो)।

मृज्—२ प०, शुद्धौ (स्वच्छ करना, शासन करना, घोडा आदि ले जाना, सजाना), लट्–मार्ष्टि, लिट्–ममार्ज, लुट्–मार्जिता, मार्ष्टा, लृट्–मार्जिष्यति, मार्क्ष्यति, लृङ्–अमार्जिष्यत्–अमार्क्ष्यत्, लुङ्–अमार्जीत्–अमार्क्षीत्, आ० लिङ्–मृज्यात्। सन्–मिमृक्षति, मिमार्जिषति, कर्म०–लट्–मृज्यते, लुङ्–अमार्जि, णिच्–लट्–मार्जयति-ते, लुङ्–अममार्जत्–त, अमीमृजत्–त, क्त–मृष्ट, मार्जित।

मृज्—१० उ०, शौचालङ्कारयो (स्वच्छ करना, आदि), लट्–मार्जयति-ते, लिट्–मार्जयाचकार-चक्रे, लुट्–मार्जयिता, लृट्–मार्जयिष्यति-ते, लुङ्–अममार्जत्–त, अमीमृजत्–त, कर्म० लट्–मार्ज्यते, लुङ्–अमार्जि।

मृड्—६ और ९ प०, सुखने (दया करना, क्षमा करना, प्रसन्न होना), लट्–मृडति, मृड्नाति, लिट्–ममर्ड, लुट्–मर्डिता, लुङ्–अमर्डीत्।

मृण्—६ प० हिंसायाम् (मारना, नष्ट करना), लट्–मृणति, लिट्–ममर्ण, लुङ्–अमर्णीत्।

मृद्—९ प०, क्षोदे (दबाना, मारना, रगडना), लट्–मृद्नाति, लिट्–ममर्द, लुट्–मर्दिता, लृट्–मर्दिष्यति, लृङ्–अमर्दिष्यत्, लुङ्–अमर्दीत्। कर्म०–लट्–मृद्यते, लुङ्–अमर्दि, णिच्०–लट्–मर्दयति-ते, लुङ्–अमीमृदत्–त, अममर्दत्–त। सन्–मिमर्दिषति, क्त–मृदित।

मृध्—१ उ०, उन्दने हिंसायां च (गीला होना, मारना, वेद में इसका मारना अर्थ है, अनादर करना), लट्–मर्धति-ते, लिट्–ममर्ध, ममृधे, लुङ्–अमर्धीत्–अमर्धिष्ट, क्त्वा–मर्धित्वा, मृद्ध्वा।

---

१. मृ धातु इन स्थानों पर परस्मैपदी है—लिट्, लुट्, लृट्, लुङ् और सन्।

मृश्—६ प०, आमर्शने (छूना, हिलाना, विचार करना), लट्—मृशति, लिट्—ममर्श, लुट्—मर्ष्टा, म्रष्टा, लृट्—मर्क्ष्यति—म्रक्ष्यति, लुङ्—अमार्क्षीत्, अम्राक्षीत्, अमृक्षत् । सन्—मिमृक्षति, कर्म० लट्—मृश्यते, लुङ्—अमर्शि, णिच्—लट्—मर्शयति-ते, लुङ्—अमीमृशत्—त, अममर्शत्—त, क्त—मृष्ट, क्त्वा—मृष्ट्वा ।

मृष्—१ प०, सेचने (सींचना, सहन करना), लट्—मर्षति, लिट्—ममर्ष, लुट्—मर्षिता, लुङ्—अमर्षीत्, णिच्-लट्—मर्षयति-ते, लुङ्—अममर्षत्—त, अमीमृषत्—त ।

मृष्—१ उ०, सहने (सहन करना, सींचना), लट्—मर्षति, (शेष रूप नीचे को धातु के तुल्य) ।

मृष्—४ उ०, तितिक्षायाम् (दु:ख सहना, क्षमा करना), लट्—मृष्यति-ते, लिट्—ममर्ष, ममृषे, लुट्—मर्षिता, लृट्—मर्षिष्यति-ते, लुङ्—अमर्षीत्—अमर्षिष्ट । सन्—मिमर्षिषति, कर्म० लट्—मृष्यते, णिच्—लट्—मर्षयति-ते, क्त्वा—मर्षित्वा, मृषित्वा ।

मृष्—१० उ०, (दु:ख सहना, आदि), लट्—मर्षयति-ते, लिट्—मर्षयाञ्चकार-चक्रे, लुङ्—अमीमृषत्—त, अममर्षत्—त ।

मॄ—६ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्—मृणाति, लिट्—ममार, लुट्—मरिता, मरीता, लृट्—मरिष्यति, मरीष्यति, लुङ्—अमारीत् । सन्—मिमरिषति, मिमरीषति, मुमूर्षति ।

मे—१ आ०, प्रणिदाने (अदल-बदल करना), लट्—मयते, लिट्—ममे, लुट्—माता, लृट्—मास्यते, लुङ्—अमास्त, आ० लिङ्—मासीष्ट । सन्—मित्सते, णिच्—लट्—मापयति-ते, लुङ्—अमीमपत्—त, कर्म० लट्—मीयते; लुङ्—अमायि ।

मेट्-मेड्—१ प०, (पागल होना), लट्—मेटति, मेडति ।

मेथ्—१ उ०, मेधाहिंसनयोः (जानना, दु:ख देना), लट्—मेथति-ते, लिट्—मिमेथ-थे, लुट्—मेथिता, लुङ्—अमेथिष्ट ।

मेद्-मेध्—१ उ०, सगमे (मिलना), पूर्ववत् ।

मेप्—१ आ०, गतौ (जाना, हिलना), लट्—मेपते, लिट्—मिमेपे, लुङ्—अमेपिष्ट ।

मेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना, पूजा करना), लट्—मेवते ।

मोक्ष्—१ प०, १० उ०, (मुक्त करना, छोड़ना), लट्—मोक्षति, मोक्षयति-ते, लिट्—मुमोक्ष, मोक्षयाञ्चकार-चक्रे ।

म्ना—१ प०, अभ्यासे, (मन मे दुहराना, पढना, याद करना, वेद मे प्रशसा करना अर्थ है), लट्—मनति, लिट्—मम्नौ, लुट्—म्नाता, लृट्—म्नास्यति, लुङ्—अम्नासीत्, आ० लिङ्—म्नायात्—म्नेयात् । सन्—मिम्नासति, णिच्—लट्—म्नापयति-ते, लुङ्—अमिम्नपत्—त, कर्म० लट्—म्नायते, लुङ्—अम्नायि, क्त—म्नात ।

म्रक्ष्—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना, चोट मारना), लट्–म्रक्षति, लिट्–मम्रक्ष, लुट्–म्रक्षिता, लुङ–अम्राक्षीत् ।

म्रक्ष्—१० उ०, संयोजने स्नेहने म्लेच्छने च (ढेर लगाना, मिलाना, चिकनाना, अस्पष्ट बोलना), लट्–म्रक्षयति-ते, लिट्–म्रक्षयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–म्रक्षयिता, लुङ–अमम्रक्षत्–त, आ० लिङ–म्रक्ष्यात्–म्रक्षयिषीष्ट ।

म्रद्—१ आ०, मर्दने (रगड़ना, पीसना), लट्–म्रदते, लिट्–मम्रदे, लृट्–म्रदिष्यते, लुङ–अम्रदिष्ट । सन्–मिम्रदिषते ।

म्रुच्—१ प० (जाना), लट्–म्रोचति, लिट्–मुम्रोच, लुङ–अम्रुचत्, अम्रोचीत् । सन्–मुम्रुचिषति, मुम्रोचिषति । क्त्वा–म्रोचित्वा, म्रुचित्वा ।

म्रुञ्च्—१ प० (जाना), लट्–म्रुञ्चति, लिट्–मुम्रुञ्च, लृट्–म्रुञ्चिष्यति, लुङ–अम्रुञ्चीत् । सन्–मुम्रुञ्चिषति, क्त–म्रुक्त, क्त्वा–म्रुञ्चित्वा, म्रुक्त्वा ।

म्रेट् (म्रेड्)–१ प०, (पागल होना), लट्–म्रेटति–म्रेडति ।

म्लक्ष्—१० उ० (काटना, पृथक् करना), लट्–म्लक्षयति-ते, लिट्–म्लक्षयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–म्लक्षयिता, लुङ–अमम्लक्षत्–त ।

म्लुच्—१ प० (जाना), लट्–म्लोचति, लिट्–मुम्लोच, लुट्–म्लोचिता, लृट्–म्लोचिष्यति, ,लुङ–अम्लुचत्–अम्लोचीत् ।

म्लुञ्च्—१ प० (जाना), लट्–म्लुञ्चति, लिट्–मुम्लुञ्च ।

म्लेच्छ—१ प०, १० उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्फुटे अपशब्दे च), (अस्पष्ट बोलना या जंगली की तरह बोलना), लट्–म्लेच्छति-ते लिट्–मिम्लेच्छ, म्लेच्छयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अम्लेच्छीत्, अमिम्लेच्छत्–त । सन्–मिम्लेच्छिषति, मिम्लेच्छयिषति–ते, क्त–म्लिष्ट, म्लेच्छित ।

म्लेट्, म्लेड्—१ प०, उन्मादे (पागल होना), लट्–म्लेटति, म्लेडति, अम्लेटीत्–अम्लेडीत् ।

म्लेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना, पूजा करना), लट्–म्लेवते, लिट्–मिम्लेवे, लृट्–म्लेविष्यते, लुङ–अम्लेविष्ट ।

म्लै—१ प०, हर्षक्षये (मुरझाना, खिन्न होना, दुःखित होना), लट्–म्लायति, लिट्–मम्लौ, लुट्–म्लाता, लृट्–म्लास्यति, लुङ–अम्लासीत्, आ० लिङ–म्लायात्–म्लेयात् । णिच्–लट्–म्लापयति-ते, लुङ–अमिम्लपत्–त, सन्–मिम्लासति, कर्म० लट्–म्लायते, लुङ–अम्लायि, क्त–म्लान ।

य

यक्ष्—१ प० (हिलाना, हिलना), लट्–यक्षति, लिट्–ययक्ष, लुट्–यक्षिता, लुङ–अयक्षीत् ।

यक्ष्—१० आ०, पूजायाम् (आदर करना, पूजा करना) लिट्–यक्षयाञ्चक्रे, लुट्–यक्षयिता, लुङ–अययक्षत, क्त–यक्षित ।

यज्—१ उ०, देवपूजासंगतिकरणयजनदानेषु (यज्ञ करना, आहुति डालना, देना, संगति करना), लट्–यजति-ते, लिट्–इयाज, ईजे, लुट्–यष्टा, लृट्–यक्ष्यति-ते, लृङ्–अयक्ष्यत्-त, लुङ्–अयाक्षीत् (द्वि० अयाष्टाम्), अयष्ट, आ० लिङ्–इज्यात्–यक्षीष्ट । सन्–यियक्षति-ते, कर्म० लट्–इज्यते, लुङ्–अयाजि, णिच्–लट्–याजयति-ते, लुङ्–अयीयजत्-त, क्त–इष्ट, क्त्वा–इष्ट्वा, ल्यप्–समिज्य, तुम्–यष्टुम् ।

यत्—१ आ०, प्रयत्ने (यत्न करना, परिश्रम करना), लट्–यतते, लिट्–येते, लुट्–यतिता, लृट्–यतिष्यते, लुङ्–अयतिष्ट, आ० लिङ्–यतिषीष्ट । सन्–यियतिषते, कर्म० लट्–यत्यते, लुङ्–अयाति, णिच्–लट्–यातयति–ते, लुङ्–अयीयतत्–त, क्त–यत, क्त्वा–यतित्वा, ल्यप्–आयत्य ।

यत्—१० उ०, निकारोपस्कारयोः (चोट पहुँचाना, उत्साहित करना), लट्–यातयति-ते, लृट्–यातयिष्यति-ते, लुङ्–अयीयतत्–त । सन्–यियातयिषति-ते ।

यन्त्र्—१० उ०, संकोचे (रुकना आदि), लट्–यन्त्रयति-ते, लिट्–यन्त्रयाचकार-चक्रे, लुट्–यन्त्रयिता, लृट्–यन्त्रयिष्यति-ते, लुङ्–अययन्त्रत्-त । सन्–यियन्त्रयिषति-ते, कर्म०–लट्–यन्त्र्यते, क्त–यन्त्रित, क्त्वा–यन्त्रयित्वा ।

यभ्—१ प०, मैथुने (संभोग करना), लट्–यभति, लिट्–ययाभ, लुट्–यब्धा, लृट्–यप्स्यति, लृङ्–अयप्स्यत्, लुङ्–अयाप्सीत् । णिच्–लट्–याभयति-ते, लुङ्–अयीयभत्–त, सन्–यियप्सते ।

यम्—१ प०, उपरमे (रोकना, देना, उठाना, जाना, दिखाना), लट्–यच्छति, लिट्–ययाम, लुट्–यन्ता, लृट्–यंस्यति, लृङ्–अयंस्यत्, लुङ्–अयंसीत्, आ० लिङ्–यम्यात्, सन्–यियंसति, णिच्–लट्–यामयति-ते, नियमयति-ते, लुङ्–अयीयमत्–त, कर्म० लट्–यम्यते, क्त–यत, क्त्वा–यत्वा ।

यम्—१० उ०, परिवेषणे (घेरना), लट्–यमयति-ते, लुङ्–अयीयमत्–त ।

यस्—४ प०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना, उद्यम करना), लट्–यसति[1]–यस्यति, लिट्–ययास, लुट्–यसिता, लृट्–यसिष्यति, लुङ्–अयसत् । णिच्–लट्–यासयति-ते, (आ+यस्, आत्मने० है), क्त–यस्त, क्त्वा–यसित्वा, यस्त्वा । तुम्–यसितुम् ।

या—२ प०, प्रापणे (प्रापण गति) (जाना, आक्रमण करना, बीतना), लट्–याति, लिट्–ययौ, लुट्–याता, लृट्–यास्यति, लुङ्–अयासीत्, आ० लिङ्–

१. सम् के अतिरिक्त कोई उपसर्ग पहले नहीं होगा तो यस् धातु विकल्प से भ्वादि० भी है । संयस्यति, संयसति ।

यायात् । सन्–यियासति, कर्म० लट्–याप्यति–ते, लुङ–अयीयपत्–त, क्त–यात, क्त्वा–यात्वा, प्रयाय, तुम–यातुम् ।

याच्—१ उ०, याञ्चायाम् (माँगना, विवाहार्थ माँगना), लट्–याचति-ते, लिट्, ययाच–ययाचे, लुट्–याचिता, लृट्–याचिष्यति-ते, लुङ–अयाचीत्–अयाचिष्ट, आ० लिङ–याच्यात्–याचिषीष्ट । णिच्–लट्–याचयति-ते, लुङ–अययाचत्–त, क्त–याचित, क्त्वा–याचित्वा, तुम्–याचितुम् ।

यु—२ प०, मिश्रणेऽमिश्रणे च (मिलना, पृथक् होना), लट्–यौति, लिट्–युयाव, लुट्–यविता, लृट्–यविष्यति, लुङ–अयवीत्, आ० लिङ–यूयात् । सन्–युयूषति–यियविषति, कर्म० लट्–यूयते, लुङ–अयावि, णिच्–लट्–यावयति-ते, लुङ–अयीयवत्–त, क्त–युत ।

यु—६ उ०, बन्धने (मिलना, मिलाना), लट्–युनाति, युनीते, लिट्–युयाव, युयुवे, लुट्–योता, लृट्–योष्यति-ते, लुङ–अयौषीत्, अयोष्ट, आ० लिङ–यूयात्–योषीष्ट । सन्–युयूषति-ते, क्त–युत ।

यु—१० आ०, जुगुप्सायाम् (निन्दा करना), लट्–यावयते, लिट्–यावयाचक्रे, लुट्–यावयिता, लुङ–अयीयवत । सन्–यियावयिषते ।

युज्—१ प०, संयमने (मिलाना आदि), लट्–योजति, लिट्–युयोज, लुट्–योक्ता, लुङ–अयौक्षीत् । सन्–युयुक्षति ।

युज्—४ आ०, समाधौ (ध्यान लगाना), लट्–युज्यते, लिट्–युयुजे, लुट्–योक्ता, लृट्–योक्ष्यते, लृङ–अयोक्ष्यत, लुङ–अयुक्त, आ० लिङ–युक्षीष्ट । सन्–युयुक्षते, णिच्–लट्–योजयति-ते, लुङ–अयूयुजत्–त ।

युज्—७ उ०, योगे (मिलाना, लगाना, देना, तैयार करना आदि), लट्–युनक्ति, युङ्क्ते, लिट्–युयोज, युयुजे, लुट्–योक्ता, लृट्–योक्ष्यति-ते, लुङ–अयुजत्, अयौक्षीत्, अयुक्त, आ० लिङ–युज्यात्, युक्षीष्ट । कर्म० लट्–युज्यते, णिच्–लट्–योजयति-ते, लुङ–अयूयुजत्–त, सन्–युयुक्षति-ते, क्त–युक्त ।

युज्—१० उ०, संयमने (मिलाना आदि), लट्–योजयति-ते, लिट्–योजयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–योजयिता, लृट्–योजयिष्यति-ते, लुङ–अयूयुजत्–त । सन्–युयोजयिषति-ते ।

युज्—१० आ० (निन्दा करना), लट्–योजयते ।

युत्—१ आ०, भासने (चमकना), लट्–योतते, लिट्–युयुते, लृट्–योतिष्यते, लुङ–अयोतिष्ट ।

युध्—४ आ०, संप्रहारे (लडना, युद्ध में जीतना), लट्–युध्यते, लिट्–युयुधे, लुट्–योद्धा, लृट्–योत्स्यते, लृङ–अयोत्स्यत, लुङ–अयुद्ध, आ० लिङ–युत्सीष्ट । कर्म० लट्–युध्यते, लुङ–अयोधि, णिच्–लट्–योधयति-ते, लुङ–अयूयुधत्–त, सन्–युयुत्सते, क्त–युद्ध ।

युप्—४ प०, विमोहने (पोछना, कष्ट देना, सरल बनाना), लट्–युप्यति, लिट्–युयोप, लुट्–योपिता, लुङ–अयुपत् ।

यूप्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–यूपति, लिट्–युयूप, लुङ–अयूपीत् ।

येष्—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना), लट्–येषते, लिट्–यियेषे, लुङ–अयेषिष्ट ।

यौट्, यौड्—१ प० (मिला देना), लट्–यौटति–यौडति, लिट्–युयौट, युयौड, लुङ–अयौटीत् अयौडीत् ।

र

रंह्—१ प०, गतौ (जाना, बहना), लट्–रहति, लिट्–ररह, लुट्–रहिता, लुङ–अरहीत् । णिच्–लट्–रहयति-ते, लुङ–अररहत्–त । सन्–रिरहिषति ।

रक्—१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (स्वाद लेना, पाना), लट्–राकयति–ते, लुट्–राकयिता, लिट्–राकयाचकार-चक्रे, लुट्–अरीरकत्–त । (रग्, रघ् भी इसी प्रकार चलेंगे) ।

रक्ष्—१ प०, पालने (रक्षा करना, बचाना), लट्–रक्षति, लिट्–ररक्ष, लुट्–रक्षिता, लृट्–रक्षिष्यति, लुङ–अरक्षीत्, आ० लिङ–रक्ष्यात् । कर्म० लट्–रक्ष्यते, णिच्–लट्–रक्षयति-ते, लुङ–अररक्षत्–त । सन्–रिरक्षिषति, क्त–रक्षित ।

रख्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–रखति, लिट्–ररास, लुङ–अरखीत्, अराखीत् ।

रग्—१ प०, शङ्कायाम् (सदेह करना), लट्–रगति, लिट्–रराग ।

रङ्ग्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–रङ्गति, लिट्–ररङ्ग, लुङ–अरङ्गीत् ।

रङ्घ्—१ उ० (तेज चलना), लट्–रङ्घति-ते, लिट्–ररघ, ररङ्घे, लुट्–रंघिता, लुङ–अरघीत्–अरंघिष्ट ।

रंघ्—१० उ० (चमकना, बोलना), लट्–रंघयति-ते, लिट्–रंघयाचकार–चक्रे, लुङ–अररंघत्–त, अरंघीत् ।

रच्—१० उ०, प्रतियत्ने (बनाना, रचना करना, लिखना, सजाना, निर्देश देना), लट्–रचयति-ते, लिट्–रचयाचकार-चक्रे, लुट्–रचयिता, लृट्–रचयिष्यति-ते, लुङ–अररचत्–त । सन्–रिरचयिषति-ते, क्त–रचित, क्त्वा–रचयित्वा ।

रञ्ज्—१ और ४ उ०, रागे (रगा जाना, रंगना, प्रसन्न होना, अनुरक्त होना, प्रेम करना), लट्–रजति-ते, रज्यति-ते, लिट्–ररञ्ज–ररञ्जे । लुट्–रङ्क्ता, लृट्–रङ्क्ष्यति-ते, लृङ–अरङ्क्ष्यत्–त, लुङ–अराङ्क्षीत्, अरङ्क्त, आ० लिङ–रज्यात्–रङ्क्षीष्ट । सन्–रिरङ्क्षति-ते, णिच्–लट्–रञ्जयति-

ते, लुङ्–अररञ्जत्–त, (मृगो का शिकार करना) लट्–रञ्जयति–ते, लुङ्–अरीरञ्जत्–त, कर्म० लट्–रज्यते, क्त–रक्त, शतृ–शानच्–(१) रजत्, रजमान (४) रज्यत्, रज्यमान, क्त्वा–रङ्क्त्वा, रक्त्वा ।

रट्—१ प०, परिभाषणे (चिल्लाना, रटना, पुकारना, आनन्द से पुकारना), लट्–रटति, लिट्–रराट, लुट्–रटिता, लुङ्–अरटीत्, अराटीत्, क्त–रटित ।

रठ्—१ प० (बोलना), लट्–रठति, लिट्–रराठ ।

रण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, जाना, वेद मे आनन्दित होना अर्थ है), लट्–रणति, लिट्–रराण, लुट्–रणिता, लुङ्–अरणीत्, अराणीत् । णिच् लट्–रणयति–ते, लुङ्–अरीरणत्–त, अरराणत्–त, सन्–रिरणिषति ।

रद्—१ प०, विलेखने (खोदना, रगडना, फाडना), लट्–रदति, लिट्–रराद, लुट्–रदिता, लृट्–रदिष्यति, लुङ्–अरदीत्–अरादीत् । सन्–रिरदिषति ।

रध्—४ प०, हिंसासराध्यो (सराद्धिनिष्पत्ति) (चोट पहुँचाना, नष्ट करना, समाप्त करना, पूरा करना, वेद मे पूर्ण होना अर्थ है), लट्–रध्यति, लिट्–ररन्ध, लुट्–रधिता, रद्धा, लृट्–रधिष्यति, रत्स्यति, लृङ्–अरधिष्यत्, अरत्स्यत्, लुङ्–अरधत् । कर्म० लट्–रध्यते, लुङ्–अरन्धि, णिच्–लट्–रन्धयति–ते, लुङ्–अररन्धत्–त । सन्–रिरधिषति, रिरत्सति, क्त–रद्ध ।

रप्—१ प०, व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना, वेद मे प्रशंसा करना अर्थ है), लट्–रपति, लिट्–रराप, लुङ्–अरपीत्–अरापीत् । सन्–रिरपिषति ।

रफ्—१ प०, हिंसायां गतौ च (मारना, जाना), लट्–रफति, लिट्–रराफ ।

रभ्—१ आ०, राभस्ये (प्रारम्भ करना, चिपकना, इच्छा करना, शीघ्रता से काम करना), लट्–रभते, लिट्–रेभे, लुट्–रब्धा, लृट्–रप्स्यते, लृङ्–अरप्स्यत, लुङ्–अरब्ध, आ० लिङ्–रप्सीष्ट । सन्–रिप्सते, णिच्–लट्–रम्भयति–ते, लुङ्–अररम्भत्–त, कर्म० लट्–रभ्यते, लुङ्–अरम्भि, क्त–रब्ध ।

रम्[1]—१ आ०, (खेलना, क्रीडा करना, विश्राम करना), लट्–रमते, लिट्–रेमे, लुट्–रन्ता, लृट्–रंस्यते, लृङ्–अरंस्यत, लुङ्–अरंस्त, (वि+रम्), व्यरंसीत्, आ० लिङ्–रंसीष्ट । सन्–रिरंसते, कर्म० लट्–रम्यते, णिच्–लट्–रमयति–ते, लुङ्–अरीरमत्–त, क्त–रत, क्त्वा–रत्वा, ल्यप्–आरम्य, आरत्य ।

रम्भ्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–रम्भते, लिट्–ररम्भे, लृट्–रम्भिष्यते, लुङ्–अरम्भिष्ट, कर्म० रम्भ्यते ।

रय्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्–रयते, लिट्–रेये, लुट्–रयिता, लुङ्–अरयिष्ट, क्त–रयित ।

---

१. वि, आ, परि और उप उपसर्ग पहले होमे तो यह परस्मैपदी है ।

रस्—१ प०, शब्दे (गरजना, हल्का करना, गाना, वेद मे प्रशसा करना अर्थ है), लट्–रसति, लिट्–ररास, लुट्–रसिता, लुङ–अरसीत्–अरासीत्, सन्–रिरसिषति ।

रस्—१० उ०, आस्वादनस्नेहनयो: (स्वाद लेना, अनुभव करना), लट्–रसयति–ते, लिट्–रसयाचकार–चक्रे, लुङ–अररसत्–त ।

रह्—१ प०, त्यागे (छोडना, त्याग करना), लट्–रहति, लिट्–रराह, लुट्–रहिता, लृट्–रहिष्यति, लुङ–अरहीत् । सन्–रिरहिसति ।

रह्—१० उ०, त्यागे (छोडना, त्याग करना), लट्–रहयति–ते, लिट्–रहयाचकार–चक्रे, लुट्–रहयिता, लृट्–रहयिष्यति–ते, लुङ–अररहत्–त, क्त –रहित, क्त्वा–रहयित्वा ।

रा—२ प०, दाने (देना), लट्–राति, लिट्–ररौ, लुट्–राता, लुङ–अरासीत् । णिच् लट्–रापयति–ते, लुङ–अरीरपत्–त । सन्–रिरासति ।

राख्—१ प०, शोषणालमर्थयो· (सूखना, सजाना, समर्थ होना, पर्याप्त होना), लट्–राखति, लिट्–रराख, लुङ–अराखीत् ।

राघ्—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना), लट्–राघते, लिट्–रराघे, लृट्–राघिष्यते, लुङ–अराघिष्ट ।

राज्—१ उ०, दीप्तौ (चमकना, प्रकट होना, निर्देश देना, राजा होना), लट्–राजति–ते, लिट्–रराज, रराजे, रेजे, लुट्–राजिता, लृट्–राजिष्यति–ते, लुङ–अराजीत्, अराजिष्ट, आ० लिङ–राज्यात्, राजिषीष्ट । सन्–रिराजिषति –ते, क्त–राजित, क्त्वा–राजित्वा, ल्यप्–विराज्य ।

राध्—४ प०, वृद्धौ (बढना, समृद्ध होना), लट्–राध्यति, लिट्–रराध, लुट्–राद्धा, लृट्–रात्स्यति, लङ–अरात्स्यत्, आ० लिङ–राध्यात् । लुङ–अरात्सीत्, (द्वि० अराद्धाम्), णिच् लुङ–अरीरधत्–त । सन्–रिरात्सति ।

राध्—५ प०, ससिद्धौ हिंसायां च (पूरा करना, मारना, प्रसन्न करना), लट्–राध्नोति, लिट्–रराध, (म० पु० एक० अप+राध्–अपरेधिथ) । सन्–रिरात्सति, (रित्सति, मारना चाहता, है), शतृ–राध्नुवत् ।

रास्—१ आ०, शब्दे (चिल्लाना, हल्ला करना, शब्द करना), लट्–रासते, लिट्–ररासे, लुङ–अरासिष्ट, सन्–रिरासिषते ।

रि—६ प०, (जाना, हिलना), लट्–रियति, लिट्–रिराय, लृट्–रेष्यति, लुङ–अरैषीत् ।

रि—५ प० (मारना), लट्–रिणोति (वैदिक) । सन्–रिरीषति ।

रि—६ उ० (निकालना, बाहर करना, जाना, हिंसा करना, उगलना, वेद मे पृथक् करना अर्थ है), लट्–रिणाति, रिणीते ।

रिख्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–रेखति, लिट्–रिरेख, लृट्–रेखिष्यति, लुङ–अरेखीत् ।

रिङ्ख, रिङ्ग—१ प०, गतौ (रेंगना, सरकना, धीरे चलना), लट्–रिङ्खति
–रिङ्गति, लिट्–रिरिङ्ख–रिरिङ्ग, लुङ्–अरिङ्खीत्–अरिङ्गीत् ।

रिच्—७ उ०, विरेचने (खाली करना, छोड़ना, रिक्त करना), लट्–
रिणक्ति–रिङ्क्ते, लिट्–रिरेच–रिरिचे, लुट्–रेक्ता, लृट्–रेक्ष्यति–ते, लृङ्–
–अरेक्ष्यत्–त, लुङ्–अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त, आ० लिङ्–रिच्यात्, रिक्षीष्ट ।
कर्म० लट्–रिच्यते, लुङ्–अरेचि, णिच्–लट्–रेचयति–ते, लुङ्–अरीरिचत्–त ।
सन्–रिरिक्षति–ते, क्त–रिक्त, क्त्वा–रिक्त्वा ।

रिच्—१ प०, १० उ०, वियोजनसम्पर्चनयोः (पृथक् करना, छोड़ना,
मिलकर आना), लट्–रेचति, रेचयति, लिट्–रिरेच, रेचयाञ्चकार, लुङ्–अरैक्षीत्,
अरीरिचत्–त । सन्–रिरिक्षति, रिरेचयिषति–ते, क्त–रेचित ।

रिफ्—६ प०, कत्थनयुद्धनिन्दादानेषु (आत्मप्रशंसा करना, कहना,
लड़ना, निन्दा करना, देना), लट्–रिफति, लिट्–रिरेफ, लुट्–रेफिता, लुङ्–
अरेफीत् । सन्–रिरिफिषति, रिरेफिषति, क्त–रिफित । (रिफ् को रिह् भी
लिखा जाता है) ।

रिभ्—१ आ०, (कड़कड़ करना, चरचर शब्द करना), लट्–रेभते,
लिट्–रिरिभे ।

रिम्फ्—६ प० (हिंसा करना, हानि पहुँचाना), लट्–रिम्फति, लिट्–
रिरिम्फ, लुट्–रिम्फिता, लुङ्–अरिम्फीत् ।

रिश्—६ प०, हिंसायाम् (फाड़ना, हानि पहुँचाना), लट्–रिशति, लिट्–
रिरेश, लुट्–रेष्टा, लृट्–रेक्ष्यति, लृङ्–अरेक्ष्यत्, लुङ्–अरिक्षत् । सन्–रिरिक्षति ।

रिष्—१ और ४ प०, हिंसायाम् (मारना, नष्ट होना, चोट खाना), लट्–
रेषति, रिष्यति, लिट्–रिरेष, लुट्–रेषिता, रेष्टा, लृट्–रेषिष्यति, लुङ्–अरेषीत्
(भ्वादि०), अरिषत् (दिवादि०), सन्–रिरिषिषति, रिरेषिषति, क्त–रिष्ट ।

री—४ आ०, स्रवणे (चूना, बहना), लट्–रीयते, लिट्–रिर्ये, लृट्–रेष्यते,
लुङ्–अरेष्ट ।

री—९ प०, गतिरेषणयोः (जाना, हानि पहुँचाना, रेंगना), लट्–रिणाति,
लिट्–रिराय, लृट्–रेष्यति, लुङ्–अरैषीत् । सन्–रिरीषति ।

रीव्—१ उ० (लेना, ढकना), लट्–रीवति–ते ।

रु—१ आ०, गतिरेषणयोः (जाना, चोट पहुँचाना, वेद में टुकड़े करना
अर्थ है), लट्–रवते, लिट्–रुरुवे, लुट्–रविता, लुङ्–अरविष्ट । णिच्–लट्–
रावयति–ते, लुङ्–अरीरवत्–त । सन्–रुरूषते ।

रु—२ प०, शब्दे (चिल्लाना, हल्ला करना, गूँजना, शब्द करना), लट्–
रौति या रवीति, लिट्–रुराव, लुट्–रविता, लृट्–रविष्यति, लुङ्–अरावीत्,
आ० लिङ्–रूयात् । सन्–रुरूषति, कर्म० लट्–रूयते, णिच्–लट्–रावयति–ते,
क्त–रुत ।

रुच्—१ आ०, दीप्तावभिप्रीतौ च (चमकना, सुन्दर लगना, अच्छा लगना, किसी मनुष्य से प्रसन्न होना), लट्–रोचते, लिट्–रुरुचे, लुट्–रोचिता, लृट्–रोचिष्यते, लुङ–अरुचत्–अरोचिष्ट । सन्–रुरुचिषते, रुरोचिषते, णिच्–लट्–रोचयते, लुङ–अरूरुचत, क्त–रुचित ।

रुज्—६ प०, भङ्गे (टुकडे टुकडे करना, दुःख देना, कष्ट देना), लट्–रुजति, लिट्–रुरोज, लुट्–रोक्ता, लृट्–रोक्ष्यति, लुङ–अरौक्षीत् (अरौक्ताम्, द्वि०) । णिच् लट्–रोजयति, लुङ–अरूरुजत्–त, सन्–रुरुक्षति, क्त–रुग्ण, क्त्वा–रुक्त्वा ।

रुज्—१० उ०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्–रोजयति-ते, लिट्–रोजयाचकार-चक्रे, लुट्–रोजयिता, लुङ–अरूरुजत्–त ।

रुट्—१ आ०, प्रतिघाते (चोट मारना), लट्–रोटते, लिट्–रुरुटे, लुङ–अरुटत्–अरोटिष्ट, आ० लिङ–रोटिषीष्ट ।

रुट्—१० उ० (विघ्न डालना, रोकना, चमकना, कहना), लट्–रोटयति-ते, लिट्–रोटयाचकार–चक्रे, लुङ–अरूरुटत्–त ।

रुठ्—१ प०, उपघाते (चोट मारना), लट्–रोठति, लिट्–रुरोठ, लृट्–रोठिष्यति, लुङ–अरोठीत् ।

रुठ्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–रोठयति-ते, लिट्–रोठयाचकार–चक्रे, लुङ–अरूरुठत्–त ।

रुठ्—१ आ० (रोकना, विरोध करना, दुःख देना, दुःख सहना), लट्–रोठते, लिट्–रुरुठे ।

रुण्ट्—१ प०, स्तेये (चुराना), लट्–रुण्टति, लिट्–रुरुण्ट, लुङ–अरुण्टीत् । कर्म० लट्–रुण्ट्यते, लुङ–अरुण्टि ।

रुण्ठ्—१ प० (जाना, चुराना, पालतू बनाना, विरोध करना), लट्–रुण्ठति, लिट्–रुरुण्ठ । (यह और पूर्वोक्त धातु एक ही है । इसे रुण्ड् भी लिखते हैं) ।

रुद्—२ प०, अश्रुविमोचने (रोना, चिल्लाना, चीखना), लट्–रोदिति, लङ–अरोदत्, अरोदीत्, लिट्–रुरोद, लुट्–रोदिता, लुङ–अरुदत्–अरोदीत्, आ० लिङ–रुद्यात् । सन्–रुरुदिषति, कर्म० लट्–रुद्यते, लुङ–अरोदि, णिच्–लट्–रोदयति-ते, लुङ–अरूरुदत्–त, क्त–रुदित ।

रुध्—४ आ० (अनु के साथ) कामे (चाहना, आज्ञा मानना), लट्–रुध्यते, लिट्–रुरुधे, लृट्–रोत्स्यते, लुङ–अरुद्ध । सन्–रुरुत्सते ।

रुध्—७ उ०, आवरणे (घेरना, रोकना, विरोध करना, दुःख देना, ढकना), लट्–रुणद्धि–रुन्द्धे, लिट्–रुरोध, रुरुधे, लुट्–रोद्धा, लृट्–रोत्स्यति-ते, लुङ–अरुधत्, अरौत्सीत्, अरुद्ध, (द्वि० अरौद्धाम्, अरुत्साताम्), आ० लिङ–रुध्यात्–

रुरुत्सति-ते, कर्म० लट्-रुध्यते, लुङ्-अरोधि, णिच्-लट्-
रुरुत्सिष्ट । सन्-रुरुत्सति-ते, कर्म० लट्-रुध्यते, लुङ्-अरोधि, णिच्-लट्-
रोधयति-ते, लुङ्-अरूरुधत्-त, क्त-रुद्ध, तुम्-रोद्धुम् ।

रुप्—४ प०, विमोहने (घबडाना, दुःख सहना, उल्लंघन करना, विघ्न
डालना, वेद मे दुःख देना अर्थ है), लट्-रुप्यति, लिट्-रुरोप, लुङ्-अरुपत्,
णिच्-लट्-रोपयति, लुङ्-अरूरुपत् । सन्-रुरुपिषति, रुरोपिषति ।

रुश्—६ प०, हिंसायाम् (हानि पहुँचाना, नष्ट करना), लट्-रुशति,
लिट्-रुरोश, लुङ्-अरुक्षत् । सन्-रुरुक्षति ।

रुश्—१० उ०, १ प०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्-रुश-
यति-ते, रुशति, लृट्-रुशयिष्यति, रुशिष्यति, लुङ्-अरुरुशत्-त, अरुशीत् ।

रुष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना, रुष्ट होना), लट्-
रोषति, लिट्-रुरोष, लुट्-रोषिता, रोष्टा, लृट्-रोषिष्यति, लुङ्-अरोषीत् ।
सन्-रुरुषिषति, रुरोषिषति, क्त्वा-रुषित्वा, रोषित्वा, रुष्ट्वा, तुम्-रोषितुम्-
रोष्टुम् ।

रुष्—४ प० (मारना, हानि पहुँचाना, तंग करना), लट्-रुष्यति, लुङ्-
अरुषत् । (शेष रूप पूर्ववत्) ।

रुष्—१० उ०, रोषे (रुष्ट होना), लट्-रोषयति-ते, लुङ्-अरूरुषत्-
त ।

रुह्—१ प०, बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च (उगना, बढ़ना, ऊपर निकलना,
पहुँचना), लट्-रोहति, लिट्-रुरोह, लुट्-रोढा, लृट्-रोक्ष्यति, आ० लिङ्-
रुह्यात्, लुङ्-अरुक्षत् । सन्-रुरुक्षति, क्त-रूढ, क्त्वा-रूढ्वा, ल्यप्-आरुह्य,
तुम्-रोढुम् ।

रूक्ष्—१० उ०, पारुष्ये (रूखा होना, निर्दय होना, वेद मे मुर्झाना अर्थ
है), लट्-रूक्षयति-ते, लिट्-रूक्षयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-रूक्षयिता, लुङ्-अरु-
रूक्षत्-त ।

रूप्—१० उ०, रूपक्रियायाम् (पता लगाना, बनाना, समझाना, लगाना),
लट्-रूपयति-ते, लिट्-रूपयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-रूपयिता, लुङ्-अरुरूपत्-त ।
सन्-रुरूपयिषति-ते ।

रूष्—१ प०, भूषायाम् (सजाना, अलङ्कृत करना), लट्-रूषति, लिट्-
रुरूष, लुट्-रूषिता, लुङ्-अरूषीत् । क्त-रूषित ।

रेक्—१ आ०, शङ्कायाम् (शंका करना), लट्-रेकते, लिट्-रिरेके,
लृट्-रेकिष्यते, लुङ्-अरेकिष्ट ।

रेज्—१ आ०, (चमकना, हिलाना), लट्-रेजते ।

रेट्—१ प०, परिभाषणे (कहना, पूछना), लट्-रेटति, लिट्-रिरेट,
लुङ्-अरेटीत् ।

रेप्—१ आ० (जाना), लट्–रेपते, लृट्–रेपिष्यते, लुङ्–अरेपिष्ट ।

रेभ्—१ आ०, शब्दे (शब्द करना), लट्–रेभते ।

रेष्—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (अव्यक्त शब्द करना, हिनहिनाना), लट्–रेषते, लिट्–रिरेषे, लुट्–रेषिता, लुङ्–अरेषिष्ट, क्त–रेषित । (रेष् को रेव् भी लिखा जाता है) ।

रै—१ प० (शब्द करना, भोंकना), लट्–रायति, लिट्–ररौ, लुङ्–अरासीत् ।

रोड्—१ प०, अनादरे उन्मादे च (अनादर करना), लट्–रोडति, लिट्–रुरोड, लुङ्–अरोडीत् ।

रोट् (रोड्)—१ प० (अनादर करना), लट्–रोटति, रोडति ।

ल

लक्—१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (स्वाद लेना, पाना), लट्–लाकयति-ते, लुङ्–अलीलकत्–त ।

लक्ष्—१ आ०, आलोचने (देखना), लट्–लक्षते, लिट्–ललक्षे, लुट्–लक्षिता, लुङ्–अलक्षिष्ट, आ० लिङ्–लक्षिषीष्ट ।

लक्ष्—१० उ०, दर्शनाङ्कनयो. (देखना, लक्षण बताना, मानना), लट्–लक्षयति–ते, लिट्–लक्षयाचकार-चक्रे, लुट्–लक्षयिता, लुङ्–अललक्षत्–त, क्त–लक्षित, सन्–लिलक्षयिषति–ते ।

लख्, लङ्ख्—१ प०, (जाना), लट्–लखति, लङ्खति ।

लग्—१ प०, सङ्गे (लगना, छूना, मिलना, पीछे लगना), लट्–लगति, लिट्–ललाग, लुट्–लगिता, लुङ्–अलगीत्, सन्–लिलगिषति, क्त–लग्न ।

लग्—१० उ०, आस्वादने प्राप्तौ च (चखना, पाना), लट्–लागयति-ते, लिट्–लागयाचकार-चक्रे, लुट्–लागयिता, लुङ्–अलीलगत् ।

लङ्ग्—१ प० (जाना, लँगडाना), लट्–लङ्गति ।

लंघ्—१ प०, शोषणे (सूखना), (भाषाया दीप्तौ सीमातिक्रमे च) (कहना, चमकना, सीमा का उल्लंघन करना), १ आ०, गत्यर्थे भोजननिवृत्तौ च (जाना, उपवास या लंघन करना), लट्–लंघति-ते, लिट्–ललंघ, ललङ्घे, लुट्–लंघिता, लुङ्–अलंघीत्–अलंघिष्ट । क्त–लंघित ।

लघ्—१० उ० (बोलना, चमकना), लट्–लघयति-ते, लृट्–लघयिष्यति-ते, लुङ्–अललघत्–त, आ० लिङ्–लङ्घ्यात्, लघयिषीष्ट । सन्–लिलघयिषति-ते ।

लच्छ्—१ प०, लक्षणे (चिह्न लगाना), लट्–लच्छति, लिट्–ललच्छ ।

लज्—१ प०, भर्जने (भूनना), लट्–लजति, लिट्–ललाज, लुट्–लजिता, लुङ्–अलजीत्, अलाजीत् । (लज् को लज्ज् भी लिखते हैं) ।

लज्—६ आ०, व्रीडने (लज्जित होना), लट्—लजते—लेजे, लुट्—लजिता, लुङ्—अलजिष्ट । सन्—लिलजिषते, क्त—लग्न ।

लज्—१० उ०, प्रकाशने (प्रकट होना) लट्—लजयति-ते, (अपवारणे—छिपाना), लाजयति-ते, लिट्—लजयाञ्चकार-चक्रे, लाजयाञ्चकार-चक्रे, लुट्—लजयिता, लाजयिता, लुङ्—अललजत्-त, अलीलजत्-त ।

लञ्ज्—१ प०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु भाषायां दीप्तौ च (मारना, बलिशाली होना, लेना, रहना, कहना, चमकना), लट्—लञ्जति, लिट्—ललञ्ज, लुङ्—अलञ्जीत् ।

लञ्ज्—१० उ० (पूर्वोक्त धातु के तुल्य अर्थ हैं, देना अर्थ भी है), लट्—लञ्जयति-ते, लिट्—लञ्जयाञ्चकार-चक्रे, लुट्—लञ्जयिता ।

लट्—१ प०, बाल्ये (बच्चे की तरह काम करना, चिल्लाना), लट्—लटति, लिट्—ललाट, लुङ्—अलटीत् ।

लड्—१ प०, विलासे (खेलना, क्रीडा करना), लट्—लडति, लुङ्—अलडीत्, अलाडीत् ।

लड्—१० उ०, उपसेवायाम् (लाड या प्यार करना), लट्—लाडयति-ते, लिट्—लाडयाञ्चकार-चक्रे, लुङ्—अलीलडत्-त ।

लप्—१ प०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, रोना, शोक प्रकट करना, ताना कसी करना), लट्—लपति, लिट्—ललाप, लुट्—लपिता लुङ्—अलपीत्, अलापीत् । णिच्—लट्—लापयति-ते, लुङ्—अलीलपत्-त । सन्—लिलपिषति ।

लभ्—१ आ०, प्राप्तौ (पाना, लेना, रखना, समर्थ होना आदि), लट्—लभते, लिट्—लेभे, लुट्—लब्धा, लृट्—लप्स्यते, लुङ्—अलब्ध । सन्—लिप्सते, णिच्—लट्—लम्भयति-ते, लुङ्—अललम्भत्-त, क्त—लब्ध ।

लम्ब्—१ आ०, शब्दे अवस्रंसने च (शब्द करना, लटकाना, लटकना, डूबना आदि) लट्—लम्बते, लिट्—ललम्बे, लुट्—लम्बिता, लुङ्—अलम्बिष्ट । कर्म० लट्—लम्ब्यते, लुङ्—अलम्बि, णिच्—लट्—लम्बयति-ते, लुङ्—अललम्बत्-त । सन्—लिलम्बिषते, क्त—लम्बित ।

लय्—१ आ० (जाना, हिलना), लट्—लयते, लिट्—लेये, लुट्—लयिता, लुङ्—अलयिष्ट ।

लर्व्—१ प० (जाना, हिलना), लट्, लर्वति, लिट्—ललर्व, लुङ्—अलर्वीत् ।

लल्—१ प०, विलासे (खेलना, इधर-उधर घूमना) लट्—ललति, लिट्—ललाल, लृट्—ललिष्यति, लुङ्—अललात् । सन्—लिललिषति, णिच्—लट्—लालयति, लुङ्—अलीललत, क्त—ललित ।

लल्—१० आ०, ईप्सायाम् (चाहना, प्यार करना), लट्—लालयते, लिट्—लालयाञ्चक्रे, लुट्—लालयिता, लुङ्—अलीललत । सन्—लिलालयिषते

लश्—१० उ०, शिल्पयोगे (किसो शिल्प का प्रयोग करना), लट्–लाशयति-ते, लिट्–लाशयाचकार-चक्रे, लुङ–अलीलशत्–त, (लस् के स्थान पर यह लश् धातु है)।

लष्—१ और ४ उ०, कान्तौ (चाहना, इच्छा करना), लट्–लषति-ते, लष्यति-ते, लिट्–ललाष, लेषे, लुट्–लषिता, लुङ–अलषीत्, अलाषीत्, अलषिष्ट। सन्–लिलषिषति, क्त–लषित।

लस्—१ प०, श्लेषणक्रीडनयो (प्रकट होना, आलिंगन करना, खेलना, चमकना), लट्–लसति, लिट्–ललास, लुट्–लसिता, लुङ–अलसीत्–अलासीत्। णिच्–लट्–लासयति-ते, लुङ–अलीलसत्–त। सन्–लिलसिषति, क्त–लसित।

लस्—१० उ०, शिल्पयोगे (देखो पूर्वोक्त लश् धातु)।

लस्ज्—१ आ०, व्रीडने (लज्जित होना, झेंपना), लट्–लज्जते, लिट्–ललज्जे, लुट्–लज्जिता, लुङ–अलज्जिष्ट। कर्म० लट्–लज्ज्यते, लुङ–अलज्जि, णिच्–लट्–लज्जयति-ते, लङ–अललज्जत्–त। सन्–लिलज्जिषते, क्त–लग्न।

ला—२ प०, आदाने दाने च (लेना, पाना, देना), लट्–लाति, लिट्–ललौ, लुट्–लाता, लुङ–अलासीत्। णिच्–लट्–लापयति-ते, लालयति-ते, (पिघलाना अर्थ में), लुङ–अलीलपत्–त, अलीलयत्–त। सन्–लिलासति।

लाख्—१ प०, शोषणालमर्थयो (सूखना, सजाना, पर्याप्त होना), लट्–लाखति, लुङ–अलाखीत्, णिच्–लट्–लाखयति-ते।

लाघ्—१ आ०, सामर्थ्ये (समर्थ होना, समान होना) लट्–लाघते लुङ–अलाघिष्ट।

लाज्, लाञ्ज्—१ प०, अर्जन भर्त्सने च (भूनना, डाँटना), लट्–लाजति, लाञ्जति, लुङ–अलाजीत्, अलाञ्जीत्।

लाञ्छ्—१ प०, लक्षणे (चिह्न करना), लट्–लाञ्छति, लङ–अलाञ्छीत्।

लिख्—६ प०, अक्षरविन्यासे (लिखना, रगड़ना, छूना), लट्–लिखति, लिट्–लिलेख, लुट्–लेखिता, लुङ–अलेखीत्। सन्–लिलिखिषति–लिलेखिषति, णिच्–लट्–लेखयति-ते, लुङ–अलीलिखत्–त।

लिङ्ख्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–लिङ्खति।

लिङ्ग्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–लिङ्गति, लिट्–लिलिङ्ग, लुट्–लिङ्गिता, लुङ–अलिङ्गीत्। क्त–लिङ्गित।

लिङ्ग्—१० उ०, चित्रीकरणे (चित्र बनाना, लिंग निर्देश करना), लट्–लिङ्गयति-ते, लिट्–लिङ्गयाचकार-चक्रे, लुट्–लिङ्गयिता, लुङ–अलिलिङ्गत्–त।

लिप्—६ उ०, उपदेहे (उपदेहो वृद्धि) (लीपना, ढकना, दाग लगाना), लट्–लिम्पति-ते, लिट्–लिलेप, लिलिपे, लुट्–लेप्ता, लट्–लेप्स्यति-ते, लुङ–

अलिपत्-त, अलिप्त । णिच्-लट्-लेपयति-ते, लुङ्-अलीलिपत्-त । सन्-
लिलिप्सति-ते, क्त-लिप्त ।
लिश्—४ आ०, अल्पीभावे (कम होना), लट्-लिश्यते, लिट्-लिलिशे,
लृट्-लेक्ष्यते, लुङ्-अलिक्षत, णिच्-लट्-लेशयति-ते, लुङ्-अलीलिशत्-त,
सन्-लिलिक्षति, क्त-लिष्ट ।
लिश्—६ प० (जाना), लट्-लिशति, लिट्-लिलेश, लुङ्-अलिक्षत् ।
सन्-लिलिक्षति ।
लिह्—२ उ०, आस्वादने (चाटना, चखना), लट्-लेढि, लीढे, लिट्-
लिलेह, लिलिहे, लुट्-लेढा, लृट्-लेक्ष्यति-ते, लुङ्-अलिक्षत्-त, अलीढ, आ०
लिङ-लिह्यात्, लिक्षीष्ट । सन्-लिलिक्षति-ते, क्त-लीढ ।
ली—१ प०, १० उ०, द्रवीकरणे (पिघलाना, विलीन होना), लट्-
लयति, लाययति-ते, लिट्-लिलाय, लाययाचकार-चक्रे, लुङ्-अलैषीत्, अलील-
यत्-त । सन्-लिलीषति, लिलाययिषति-ते ।
ली—४ आ०, श्लेषणे (चिपकना, लेटना), लट्-लीयते, लिट्-लिल्ये,
लुट्-लेता, लाता, लृट्-लास्यते, लुङ्-अलेष्ट-अलास्त, आ० लिङ्-लेषीष्ट,
लासीष्ट । णिच्-लट्-लाययति-ते । सन्-लिलीषते, क्त-लीन, क्त्वा-लीत्वा,
ल्यप्-विलाय, विलीय ।
ली—९ प०, श्लेषणे (लगना, पिघलाना), लट्-लिनाति, लिट्-लिलाय,
लली, लुट्-लेता, लाता, लृट्-लेस्यति, लास्यति, लुङ्-अलैषीत्, अलासीत् । सन्-
लिलीषति ।
लुञ्च्—१ प०, अपनयने (नोचना, चुनना, उखाड़ना), लट्-लुञ्चति,
लिट्-लुलुञ्च, लुट्-लुञ्चिता, लुङ्-अलुञ्चीत्, सन्-लुलुञ्चिषति, क्त-लुञ्चित ।
लुञ्ज्—१ प०, १० उ०, हिंसाबलादाननिकेतनेषु भाषाया दीप्तौ च
(मारना, बलवान् होना), लट्-लुञ्जति, लुञ्जयति-ते, लुङ्-अलुञ्जीत्, अलु-
लुञ्जत्-त ।
लुट्—१ आ०, प्रतिघाते (विरोध करना), लट्-लोटते, लिट्-लुलुटे,
लुट्-लोटिता, लुङ्-अलुटत्-अलोटिष्ट । सन्-लुलुटिषते ।
लुट्—१ प०, विलोडने (लपेटना, भूमि पर लोटना), लट्-लोटति, लिट्
-लुलोट, लुट्-लोटिता, लुङ्-अलोटीत् । सन्-लुलुटिषति-लुलोटिषति, णिच्-
लट्-लोटयति-ते, लुङ्-अलूलुटत्-त, अलुलोटत्-त, क्त-लुटित, लोटित ।
लुट्—४ प० (लपेटना आदि), लट्-लुट्यति, लिट्-लुलोट, लुट्-
लोटिता, लुङ्-अलुटत् । (शेष रूप पूर्ववत्) ।
लुट्—६ प० (कुटादि) संश्लेषणे (देखो आगे लुठ् धातु) ।
लुट्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्-लोटयति-
ते, लिट्-लोटयाचकार-चक्रे, लुट्-लोटयिता ।

लुट्—१ प०, उपघाते (चोट मारना, ठोकर मारना, गिराना), लट्-लोटति, लिट्-लुलोट, लुट्-लोटिता, लुङ-अलोटीत् । णिच्-लुङ-अलूलुटत्-त, अलुलोटत्-त ।

लुठ्—१ आ०, प्रतिघाते (विरोध करना, लपेटना), लट्-लोठते, लिट्-लुलुठे, लुट्-लोठिता, लुङ-अलुठत्-अलोठिष्ट ।

लुठ्—६ प०, सश्लेषणे (कुटादि) (चिपकना), लट्-लुठति, लिट्-लुलोठ, लृट्-लुठिष्यति, लुङ-अलुठीत् । सन्-लुलुठिषति ।

लुड्—१ प०, विलोडने (हिलाना, बिलोना, मथना), लट्-लोडति, लिट्-लुलोड, लुट्-लोडिता, लुङ-अलोडीत्, णिच्-लट्-लोडयति-ते । सन्-लुलुडिषति ।

लुड्—६ प० (कुटादि), लट्-लुडति (शेष रूप लुठ् के तुल्य) ।

लुण्ट्—१ प०, स्तेये (चुराना, आलसी होना), लट्-लुण्टति, लिट्-लुलुण्ट, लृट्-लुण्टिष्यति, लुङ-अलुण्टीत् ।

लुण्ट्—१० उ०, (देखो आगे लुण्ठ् धातु) ।

लुण्ठ्—१ प०, आलस्ये प्रतिघाते च (आलसी होना, क्षुब्ध करना), लट्-लुण्ठति, लृट्-लुण्ठिष्यति, लुङ-अलुण्ठीत् । णिच्-लट्-लुण्ठयति-ते, लुङ-अलुलुण्ठत्-त, सन्-लुलुण्ठिषति ।

लुण्ठ्—१० उ०, स्तेये (चोरी करना, लूटना), लट्-लुण्ठयति-ते, लृट्-लुण्ठयिष्यति-ते, लुङ-अलुलुण्ठत्-त ।

लुण्ड्—१० उ० (चुराना), लट्-लुण्डयति-ते, लिट्-लुण्डयाचकार-चक्रे, (शेष लुण्ठ् के तुल्य) ।

लुन्थ्—१ प०, हिंसाक्लेशनयो (मारना, दुःख देना), लट्-लुन्थति, लिट्-लुलुन्थ, लृट्-लुन्थिष्यति, लुङ-अलुन्थीत् ।

लुप्—४ प०, विमोहने (व्याकुल करना, नष्ट होना), लट्-लुप्यति, लिट्-लुलोप, लुट्-लोपिता, लुङ-अलुपत्, णिच्-लट्-लोपयति-ते, लुङ-अलूलुपत्-त, अलुलोपत्-त, सन्-लुलुपिषति, लुलोपिषति, क्त्वा-लुप्त्वा, लुपित्वा, लोपित्वा, क्त-लुप्त ।

लुप्—६ उ०, छेदने (तोड़ना, लेना, पकड़ना, दबाना), लट्-लुम्पति-ते, लिट्-लुलोप, लुलुपे, लुट्-लोप्ता, लुङ-अलुपत्, अलुप्त, आ० लिङ-लुप्यात्, लुप्सीष्ट । सन्-लुलुप्सति-ते, कर्म० लट्-लुप्यते, लुङ-अलोपि, णिच् (पूर्वोक्त धातु के तुल्य), क्त-लुप्त ।

लुभ्—१ और ४ प०, गार्ध्ये (लोभ करना, व्याकुल होना), लट्-लोभति, लुभ्यति, लिट्-लुलोभ, लुट्-लोभिता, लोब्धा, लुङ-(१) अलोभीत्, (४) अलुभत्, णिच्-लट्-लोभयति-ते लुङ-अलूलुभत्-त । सन्-लुलुभिषति, लुलोभिषति, क्त-लुब्ध ।

लुभ्—६ प०, विमोहने (व्याकुल होना, मुग्ध होना), लट्—लुभति, लुङ्—
अलोभीत् । क्त-लुभित ।
लुम्ब्—१ प०, अर्दने (दुःख देना), लट्—लुम्बति, लुङ्—अलुम्बीत् ।
लू—९ उ०, छेदने (काटना, पृथक् करना), लट्—लुनाति, लुनीते, लिट्—
लुलाव, लुलुवे, लुट्—लविता, लुङ्—अलावीत्—अलविष्ट, आ० लिङ्—लूयात्,
लविषीष्ट । सन्—लुलूषति-ते, णिच्—लट्—लावयति-ते, क्त—लून ।
लूष्—१ प०, भूषायाम् (सजाना), लट्—लूषति, लिट्—लुलूष, लुङ्—
अलूषीत् । लट्—लूषयति-ते,
लूष्—१० उ०, हिंसायाम् (चोट पहुँचाना, लूटना),
लिट्—लूषयाचकार-चक्रे, लुङ्—अलूलुषत्—त । लट्—लेख्यति, लुङ्—अलेखीत् ।
लेख्—४ प०, स्खलने (लडखडाना), लट्—लेपते, लुङ्—अलेपिष्ट ।
लेप्—१ आ० (जाना, पूजना), लट्—लैणति, लुङ्—
लैण्—१ प० (जाना, भेजना, आलिंगन करना),
अलैणीत् ।
लोक्—१ आ०, दर्शने (देखना, ताकना), लट्—लोकते, लिट्—लुलोके,
लुट्—लोकिता, लुङ्—अलोकिष्ट । सन्—लुलोकिषते, णिच्—लट्—लोकयति-ते,
लुङ्—अलुलोकत्—त, क्त—लोकित ।
लोक्—१० उ०, भाषाया दीप्तौ च (देखना, कहना, चमकना, ढूँढना),
लट्—लोकयति-ते, लिट्—लोकयाचकार-चक्रे, लुट्—लोकयिता, लुङ्—अलुलो-
कत्—त । सन्—लुलोकयिषति-ते ।
लोच्—१ आ०, दर्शने (देखना), लट्—लोचते, लिट्—लुलोचे, लुट्—
लोचिता, लुङ्—अलोचिष्ट, क्त—लोचित । लट्—लोचयति-ते, लिट्—लोच-
लोच्—१० उ० (बोलना, चमकना), लुङ्—अलुलोचत्—त, (देखो
याचकार-चक्रे-आस-बभूव, लुट्—लोचयिता,
पूर्वोक्त लोक् १० ।)
लोट्—१ प०, धौर्त्ये पूर्वभावे स्वप्ने च (धोखा देना, पहले होना), लट्—
लोटति, लिट्—लुलोट, लुङ्—अलोटीत् । लट्—लोष्टते, लिट्—लुलोष्टे,
लोष्ट्—१ आ०, संघाते (ढेर लगाना),
लुङ्—अलोष्टिष्ट ।

व

वक्ष्—१ प०, रोषे, संघाते च (क्रुद्ध होना, बढना), लट्—वक्षति, लिट्—
ववक्ष, लृट्—वक्षिष्यति, लुङ्—अवक्षीत् ।
वख्—वङ्ख्—१ प० (जाना, हिलना), लट्—वखति, वङ्खति, लिट्—
ववाख, ववङ्ख ।

वङ्क्—१ आ०, कौटिल्ये गतौ च (कुटिल होना, जाना), लट्–वङ्कते, लुङ्–अवङ्किष्ट ।

वङ्ग्—१ प० (जाना) लट्–वङ्गति (वङ्क् के तुल्य) ।

वच्—२ प०, परिभाषणे (कहना, वर्णन करना), लट्–वक्ति, लिट्–उवाच, लुट्–वक्ता, लृट्–वक्ष्यति, लुङ्–अवोचत्, आ० लिङ्–उच्यात् । सन्–विवक्षति, णिच्–लट्–वाचयति-ते, लुङ्–अवीवचत्–त ।

वच्—१ प० और १० उ०, (कहना, बाँचना, पढ़ना), लट्–वचति, वाचयति-ते, लिट्–उवाच, वाचयाचकार-चक्रे, लुट्–वक्ता, वाचयिता, लुङ्–अवाक्षीत्. अवीवचत्–त, क्त–उक्त, वाचित ।

वज्—१ प० (जाना, इधर-उधर घूमना), लट्–वजति, लिट्–ववाज, लुट्–वजिता, लुङ्–अवजीत्–अवाजीत् ।

वज्—१० उ०, (जाना), लट्–वाजयति-ते, लिट्–वाजयामास, लुङ्–अवीवजत्–त ।

वञ्च्—१ प०, (जाना, पहुँचना), लट्–वञ्चति, लिट्–ववञ्च, लुट्–वञ्चिता, लुङ्–अवञ्चीत् । सन्–विवञ्चिषति, क्त–वञ्चित, कर्म० लट्–वच्यते, लुङ्–अवञ्चि ।

वञ्च्—१० आ०, प्रलम्भने (धोखा देना, ठगना) लट्–वञ्चयते, लिट्–वञ्चयामास, लुङ्–अववञ्चत । सन्–विवञ्चयिषते ।

वट्—१ प०, वेष्टने (घेरना, ढकना), लट्–वटति, लिट्–ववाट, लुङ्–अवटीत्, अवाटीत् ।

वट्—१० उ०, ग्रन्थे विभाजने (पिरोना, बाँटना, घेरना), लट्–वटयति-ते, लिट्–वटयाचकार-चक्रे, लुङ्–अवीवटत्–त । सन्–विवटयिषति-ते ।

वठ्—१० प०, स्थौल्ये (मोटा या पुष्ट होना), लट्–वठति, लिट्–ववाठ, लुङ्–अवठीत्–अवाठीत् ।

वण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–वणति, लुङ्–अवणीत्, अवाणीत् । सन्–विवणिषति ।

वण्ट्—१ प०, १० उ०, विभाजने (बाँटना), लट्–वण्टति, वण्टयति-ते, लृट्–वण्टिष्यति, वण्टयिष्यति, लुङ्–अवण्टीत्, अववण्टत्–त ।

वद्—१ प०, व्यक्तायां वाचि (कहना, बोलना, बताना), लट्–वदति, लिट्–उवाद, लुट्–वदिता, लुङ्–अवादीत् । सन्–विवदिषति, कर्म० लट्–उद्यते, लुङ्–अवादि, क्त–उदित ।

वद्—१ और १० उ०, सदेशवचने (सूचना देना), लट्–वदति-ते, वादयति-ते, लिट्–ववाद, ववदे, वादयाचकार, लुङ्–अवादीत्, अवदिष्ट, अवीवदत्–त ।

वन्—१ प०, शब्दे सम्भक्तौ च (शब्द करना, आदर करना, सहायता देना), लट्–वनति, लिट्–ववान, लृट्–वनिष्यति, लुङ्–अवनीत्, अवानीत् । णिच्–लट्, वानयति-ते । सन्–विवनिषति ।

वन्—८ आ०, (चन्द्र के मतानुसार पर०) (माँगना, ढूँढना), लट्–वनुते, लिट्–वेने, लुङ्–अवनिष्ट, अवत । सन्–विवनिषति ।

वन्—१ प० और १० उ०, (कृपा करना, चोट पहुँचाना, शब्द करना), लट्–वनति, वानयति-ते ।

वन्द्—१ आ०, अभिवादन, स्तुत्योः (नमस्कार करना, प्रशंसा करना, स्तुति करना), लट्–वन्दते, लिट्–ववन्दे, लुट्–वन्दिता, लुङ्–अवन्दिष्ट । सन्–विवन्दिषते, कर्म० लट्–वन्द्यते, क्त–वन्दित ।

वप्—१ उ०, बीजसन्ताने छेदने च (बीज बोना, फैलाना, बुनना, काटना, बाल बनाना), लट्–वपति-ते, लिट्–उवाप, ऊपे, लुट्–वप्ता, लुङ्–अवाप्सीत्, अवप्त, आशीर्लिङ्–वप्सीष्ट, णिच्–लट्–वापयति-ते, लुङ्–अवीवपत्–त । सन्–विवप्सति-ते, कर्म० लट्–उप्यते, लुङ्–अवापि ।

वभ्र्—१ प०, (जाना), लट्–वभ्रति, लुङ्–अवभ्रीत् ।

वम्—१ प०, उद्गिरणे (उगलना, बाहर निकालना), लट्–वमति, लिट्–ववाम, लुट्–वमिता, लुङ्–अवमीत् णिच्–लट्–वमयति-ते, वामयति-ते, (उपसर्ग के साथ वमयति-ते ही होगा), लुङ्–अवीवमत्–त, क्त–वमित (वान्त, कुछ के मतानुसार) ।

वय्—१ आ०, (जाना), लट्–वयते, लृट्–वयिष्यते, लुङ्–अवयिष्ट ।

वर्—१० उ०, ईप्सायाम् (चाहना, पाना), लट्–वरयति-ते, लिट्–वरयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–वरयिता, लुङ्–अववरत्–त ।

वर्च्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना), लट्–वर्चते, लिट्–ववर्चे, लुङ्–अवर्चिष्ट ।

वर्ण्—१० उ०, वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु प्रेरणे च (रँगना, वर्णन करना, गुण वर्णन करना, भेजना, पोसना), लट्–वर्णयति-ते, लिट्–वर्णयाञ्चकार-चक्रे-आस-बभूव, लुट्–वर्णयिता, लुङ्–अववर्णत्–त । सन्–विवर्णयिषति-ते, क्त–वर्णित ।

वर्ध्—१० उ०, छेदनपूरणयोः (काटना, भरना, बढ़ाना), लट्–वर्धयति-ते, लुङ्–अववर्धत्–त । सन्–विवर्धयिषति-ते ।

वर्ष्—१ आ०, स्नेहने (प्रेम करना), लट्–वर्षते, लुङ्–अवर्षिष्ट ।

वल्—१ आ०, संवरणे सञ्चरणे च (ढकना, इधर-उधर घूमना), लट्–वलते, लृट्–वलिष्यते, लुङ्–अवलिष्ट । सन्–विवलिषति-ते ।

वल्क्—१० उ०, परिभाषणे (कहना), लट्–वल्कयति-ते, लिट्–वल्कयाञ्चकार-चक्रे, लुङ्–अववल्कत्–त ।

वल्—१ उ०, (जाना, नाचना, प्रसन्न होना, खाना), लट्—वलगति-ते, लिट्—ववल्ग—ववल्गे, लुट्—वलिगता, लुङ—अवल्गीत्—अवलिगष्ट । क्त—वलिगत ।

वल्भ्—१ आ०, भोजने (खाना), लट्—वल्भते, लुङ—अवल्भिष्ट ।

वल्ल्—१ आ०, मवरणे (ढकना, ढका जाना), लट्—वल्लते, लिट्—ववल्ले ।

वल्ह्—१ आ०, परिभाषणहिंसादानेषु (कहना, प्रमुख होना, मारना, देना), लट्—वल्हते, लिट्—ववल्हे, लुङ—अवल्हिष्ट ।

वश्—२ प०, कान्तौ (चाहना, चमकना), लट्—वष्टि, लिट्—उवाश, लुट्—वशिता, लुङ—अवशीत्—अवाशीत्, आ० लिङ—उश्यात् । सन्—विवशिषति, कर्म० लट्—उश्यते, लुङ—अवाशि, क्त—उशित ।

वप्—१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट मारना), लट्—वपति, लिट्—ववाप, लुङ—अवपीत्—अवापीत् ।

वस्—१ प०, निवासे (रहना, होना, समय बिताना), लट्—वसति, लिट्—उवास, लुट्—वस्ता, लुङ—अवात्सीत्, आ० लिङ—उष्यात् । सन्—विवत्सति, कर्म० लट्—उष्यते, लुङ—अवासि, णिच्—लट्—वासयति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, क्त—उषित, क्त्वा—उषित्वा, प्रोष्य ।

वस्—२ आ०, आच्छादने (पहनना, धारण करना), लट्—वस्ते, लिट्—ववसे, लुट्—वसिता, लुङ—अवसिष्ट, णिच्—लट्—वासयति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, सन्—विवसिषते, क्त—वसित ।

वस्—४ प०, स्तम्भे (दृढ होना, स्थिर होना, लगाना), लट्—वस्यति, लृट्—वसिष्यति, लुङ—अवसत् । क्त—वस्त, क्त्वा—वसित्वा, वस्त्वा, तुम्—वसितुम् ।

वस्—१० उ०, स्नेहच्छेदापहरणेषु (प्रेम करना, काटना, हरण करना), लट्—वासयति-ते, लृट्—वासयिष्यति-ते, लुङ—अवीवसत्—त, आ० लिङ—वास्यात् —वासयिषीष्ट ।

वस्—१० उ०, निवासे (निवास करना, रहना), लट्—वसयति-ते, लुट् —वसयिता, लुङ—अववसत्—त ।

वस्क्—१ आ०, (जाना), लट्—वस्कते, लृट्—वस्किष्यते, लुङ—अवस्किष्ट ।

वस्त्—१० आ०, अर्दने (चोट पहुँचाना, मारना, पूछना, जाना), लट्—वस्तयते, लिट्—वस्तयाञ्चक्रे, लुङ—अववस्तत । (इसको बस्त् भी लिखते हैं) ।

वह्—१ उ० प्रापणे (ढोना, ले जाना, बहना, उद्+वह्—विवाह करना आदि), लट्—वहति-ते, लिट्—उवाह—ऊहे, लुट्—वोढा, लृट्—वक्ष्यति-ते, लुङ—अवाक्षीत्—अवोढ, आ० लिङ—उह्यात्—वक्षीष्ट । सन्—विवक्षति-ते, णिच्—लट्—वाहयति-ते, लुङ—अवीवहत्—त, क्त—ऊढ ।

वा—२ प०, गतिगन्धनयो (हवा बहना, जाना, चोट मारना, हिंसा करना), लट्—वाति, लिट्—ववौ, लुट्—वाता, लुङ—अवासीत्, आ० लिङ—वायात् । णिच्—लट्— (उडाना) वापयति-ते, (हिलाना) वाजयति-ते, । सन्—विवासति, क्त—

वात (निर्+वा-निर्वाण, जब वायु अर्थ न हो तो। जैसे—निर्वाणो मुनिरग्निर्वा)।

वाक्ष्—१ प०, काङ्क्षायाम् (चाहना, इच्छा करना), लट्-वाक्षति, लट्-वाक्षिष्यति, लुङ्-अवाक्षीत्।

वाञ्छ्—१ प०, वाञ्छायाम् (चाहना, ढूंढना), लट्-वाञ्छति, लिट्-ववाञ्छ, लुट्-वाञ्छिता, लुङ्-अवाञ्छीत्। सन्-विवाञ्छिषति, कर्म० लट्-वाञ्छ्यते, लुङ्-अवाञ्छि।

वाड्—१ आ०, (नहाना, डुबकी लगाना), लट्-वाडते, लिट्-ववाडे।

वात्—१० उ०, सुखसेवनयो (प्रसन्न होना, सेवा करना), लट्-वातयति-ते, लट्-वातयिष्यति-ते, लुङ्-अववातत्-त। सन्-विवातयिषति-ते।

वाश्—४ आ०, शब्दे (गरजना, गूंजना), लट्-वाश्यते, लिट्-ववाशे, लुट्-वाशिता, लुङ्-अवाशिष्ट, क्त-वाशित।

वास्—१० उ०, उपसेवायाम् (सुगन्धित बनाना, इत्र लगाना), लट्-वासयति-ते, लिट्-वासयाञ्चकार-चक्रे, लुट्-वासयिता, लुङ्-अववासत्-त। सन्-विवासयति-ते।

वाह्—१ आ०, प्रयत्ने (प्रयत्न करना, चेष्टा करना), लट्-वाहते, लिट्-ववाहे, लुङ्-अवाहिष्ट।

विच्—७ उ०, पृथग्भावे (पृथक् करना, आदि), लट्-विनक्ति, विङ्क्ते, लिट्-विवेच-विविचे, लुट्-वेक्ता, लुङ्-अविचत्, अवैक्षीत्, अविक्त, आ० लिङ्-विच्यात्, विक्षीष्ट। सन्-विविक्षति-ते, क्त-विक्त।

विच्छ्—६ प०, (जाना), लट्-विच्छायति, लिट्-विविच्छ, विच्छाञ्चकार, लुट्-विच्छिता, विच्छायिता, लुङ्-अविच्छीत्-अविच्छायीत्। णिच्-लट्-विच्छयति-ते, विच्छाययति-ते, लुङ्-अविविच्छत्-त, अविविच्छायत्-त। सन्-विविच्छिषति, विविच्छायिषति। कर्म० लट्-विच्छ्यते, विच्छाय्यते।

विच्छ्—१० उ०, भाषायां दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्-विच्छयति-ते, लिट्-विछयाञ्चकार-चक्रे, लुङ्-अविविच्छत्-त।

विज्—३ उ०, पृथग्भावे (पृथक् करना, छाँटना), लट्-वेवेक्ति, वेविक्ते, लिट्-विवेज, विविजे, लट्-वेक्ष्यति-ते, लुङ्-अविजत्, अवैक्षीत्, अविक्त। सन्-विविक्षति-ते।

विज्—६ आ०, भयचलनयो (डरना, काँपना), लट्-विजते, लिट्-विविजे, लुट्-विजिता, लुङ्-अविजिष्ट, णिच्-लट्-वेजयति, लुङ्-अवीविजत्, सन्-विविजिषति।

विज्—७ प०, (हिलाना, डरना) लट्-विनक्ति, लिट्-विवेज, लुट्-विजिता, लुङ्-अविजीत्। सन्-विविजिषति।

विट्—१ प० आक्रोशे शब्दे च (कोसना, शब्द करना), लट्—वेटति, लिट्—विवेट, लुङ्—अवेटीत् ।

विड्—विट् के तुल्य ।

विडम्ब्—१० उ०, विडम्बने (उपहास करना, मजाक उड़ाना, धोखा देना), लट्—विडम्बयति-ते, लुङ्—अविविडम्बत्-त ।

विथ्—१ आ०, याचने (माँगना), लट्—वेथते, लृट्—वेथिष्यते, लुङ्—अवेथिष्ट ।

विद्—२ प०, ज्ञाने (जानना, मानना), लट्—वेत्ति—वेद लिट्—विवेद—विदाञ्चकार, लृट्—वेदिष्यति, लुङ्—अवेदीत्, आ० लिङ्—विद्यात् । क्त-विदित, णिच्—लट्—वेदयति-ते, लुङ्—अवीविदत्-त । सन्—विविदिषति-ते ।

विद्—४ आ०, सत्तायाम् (होना, घटित होना), लट्—विद्यते/ लिट्—विविदे, लुट्—वेत्ता, लृट्—वेत्स्यते, लुङ्—अवित्त, आ० लिङ्—वित्सीष्ट । सन्—विवित्सते, क्त—वित्त ।

विद्—६ उ०, लाभे (पाना, अनुभव करना), लट्—विन्दति-ते, लिट्—विवेद—विविदे, लुट्—वेदिता—वेत्ता, लुङ्—अविदत्—अवित्त—अवेदिष्ट, आ० लिङ्—विद्यात्—वेदिषीष्ट, वित्सीष्ट, सन्—विवित्सति-ते, विविदिषति—विविदिषते, क्त—विन्न, वित्त ।

विद्—७ आ०, विचारणे (विचार करना, सोचना), लट्—विन्ते, लिट्—विविदे । क्त—वित्त, विन्न, (अन्य रूप विद् ४ आ० के तुल्य) ।

विद्—१० आ०, चेतनाख्याननिवासेषु (अनुभव करना, कहना, रहना), लट्—वेदयते, लिट्—वेदयाचक्रे, लुट्—वेदयिता, लुङ्—अवीविदत । सन्—विवेदयिषते, कर्म० लट्—वेद्यते, लुङ्—अवेदि ।

विध्—६ प०, विधाने (बींधना) लट्—विधति, लृट्—वेधिष्यति, लुङ्—अवेधीत्, णिच्—लट्—वेधयति-ते, लुङ्—अवीविधत्-त ।

विश्—६ प०, प्रवेशने (घुसना, प्रवेश करना, हिस्से मे पड़ना), लट्—विशति, लिट्—विवेश, लुट्—वेष्टा, लुङ्—अविक्षत्—त, सन्—विविक्षति, क्त—विष्ट ।

विष्—१ प०, सेचने (सींचना, डालना), लट्—वेषति, लिट्—विवेष, लृट्—वेक्ष्यति, लुङ्—अविक्षत् । क्त—विष्ट ।

विष्—३ उ०, व्याप्तौ (व्याप्त होना, घेरना), लट्—वेवेष्टि, वेविष्टे, लिट्—विवेष—विविषे, लुट्—वेष्टा, लुङ्—अविक्षत्—त । सन्—विविक्षति-ते ।

विष्—९ प०, विप्रयोगे (पृथक् करना, वियुक्त होना), लट्—विष्णाति, लिट्—विवेष, लुङ्—अविक्षत् ।

विष्क्—१० आ०, हिंसायाम् (मारना), उ०, दर्शने-देखना, लट्—विष्कयते, विष्कयति-ते, लुङ्—अविविष्कत—अविविष्कत्—त ।

वी—२ प०, गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यसनखादनेषु (जाना, व्याप्त होना, गर्भधारण करना, उत्पन्न होना, चमकना, पाना, फेंकना, सुन्दर होना, चाहना, खाना), लट्–वेति, लिट्–विवाय, लुट्–वेता, लुङ्–अवैषीत्, आ० लिङ्–वीयात्। सन्–विवियति, णिच्–लट्–वाययति–ते, (वापयति–ते), क्त–वीत।

वीज्—१० उ०, व्यजने (पंखा करना), लट्–वीजयति–ते, लुङ्–अवीविजत्–त।

वीर्—१० आ०, विक्रान्तौ (वीरता दिखाना), लट्–वीरयते, लृट्–वीरयिष्यते, लुङ्–अविवीरत।

वृ—१ उ०, आवरणे (ढकना, घेरना), लट्–वरति–ते (शेष रूप नीचे की धातु के तुल्य)।

वृ—५ उ०, वरणे (चुनना), लट्–वृणोति, वृणुते, लिट्–ववार–वव्रे, लुट्–वरिता–वरीता, लुङ्–अवारीत्, अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृत, आ० लिङ्–व्रियात्, वरिषीष्ट, वृषीष्ट। णिच्–लट्–वारयति–ते, लुङ्–अवीवरत्–त, सन्–विवरिषति–ते, विवरीषति–ते, वुवूर्षति–ते।

वृ—९ आ०, (चुनना), लट्–वृणीते, लिट्–वव्रे। (शेष वृ आ० के तुल्य)।

वृक्—१ आ०, आदाने (लेना, स्वीकार करना), लट्–वर्कते, लिट्–ववृके, लृट्–वर्किष्यति, लुङ्–अवर्किष्ट। सन्–विवर्किषते।

वृक्ष्—१ आ०, आवरणे (ढकना), लट्–वृक्षते, लिट्–ववृक्षे, लुङ्–अवृक्षिष्ट।

वृच्—७ प०, वर्जने (चुनना), लट्–वृणक्ति, लिट्–ववर्च, लृट्–वर्चिष्यति, लुङ्–अवर्चीत्। क्त–वृक्त।

वृज्—२ आ०, वर्जने (छोडना, त्यागना), लट्–वृक्ते, लिट्–ववृजे, लृट्–वर्जिष्यते, लुङ्–अवर्जिष्ट। सन्–विवर्जिषते।

वृज्—७ प०, वर्जने (छोडना, चुनना, हटाना, हिलना, चोट पहुँचाना), लट्–वृणक्ति, लिट्–ववर्ज, लुट्–वर्जिता, लुङ्–अवर्जीत्। सन्–विवर्जिषति।

वृज्—१ प०, १० उ०, (छोडना, हटाना, त्यागना), लट्–वर्जति, वर्जयति–ते, लिट्–ववर्ज, वर्जयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–वर्जिता, वर्जयिता, लुङ्–अवर्जीत्–अवीवृजत्–त, अववर्जत्–त।

वृञ्ज्—२ आ०, वर्जने (छोडना, त्यागना), लट्–वृङ्क्ते, लृट्–वृञ्जिष्यते, लुङ्–अवृञ्जिष्ट।

वृण्—६ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–वृणति, लिट्–ववर्ण, लुङ्–अवर्णीत्।

वृत्[1]—१ आ०, वर्तने (होना, घटित होना, रहना आदि), लट्–वर्तते, लिट्–ववृते, लुट्–वर्तिता, लृट्–वर्तिष्यते, वर्त्स्यति, लुङ्–अवृतत्, अवर्तिष्ट, आ० लिङ्–वर्तिषीष्ट । सन्–विवर्तिषते, विवृत्सति, णिच् लट्–वर्तयति-ते, लुङ्–अवीवृतत्–त, अववर्तत्–त, क्त–वृत्त ।

वृत्—४ आ०, वरणे (चुनना, पृथक् करना,), लट्–वृत्यते (शेष पूर्ववत्) ।

वृत्—१ प०, १० उ०, भाषाया दीप्तौ च (कहना, चमकना), लट्–वर्तति, वर्तयति-ते, लिट्–ववर्त, वर्तयाचकार–चक्रे, लुङ्–अवर्तीत्, अवीवृतत्–त, अववर्तत्–त ।

वृध्[2]—१ आ०, वृद्धौ (बढना, उगना) लट्–वर्धते, लिट्–ववृधे, लुट्–वर्धिता, लृट्–वर्धिष्यते, वर्त्स्यति, लुङ्–अवृधत्, अवर्धिष्ट, आ० लिङ्–वर्धिषीष्ट । क्त–वृद्ध । सन्–विवर्धिषते, विवृत्सति ।

वृध्—१ प०, १० उ०, भाषाया दीप्तौ च (बोलना, चमकना), लट्–वर्धति, वर्धयति-ते (शेष वृत् के तुल्य) ।

वृश्—४ प०, वरणे (छाँटना), लट्–वृश्यति, लिट्–ववर्श, लृट्–वर्शिष्यति, लुङ्–अवृशत् ।

वृष्—१ प०, सेचनहिंसाक्लेशनेषु (बरसना, सीचना, दु ख देना), लट्–वर्षति, लिट्–ववर्ष, लुट्–वर्षिता, लुङ्–अवर्षीत् । सन्–विवर्षिषति, क्त–वृष्ट ।

वृष्—१० आ०, शक्तिबन्धने (वीर्यवान् होना), लट्–वर्षयते, लृट्–वर्षयिष्यते, लुङ्–अवीवृषत–अववर्षत ।

वृह्—६ प०, उद्यमने (उद्यम करना, होना), (बृह के तुल्य) ।

वृ—९ उ०, वरणे (चुनना), लट्–वृणाति, वृणीते, लिट्–ववार–ववरे, लुट्–वरिता, वरीता, लुङ्–अवारीत्, अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवृर्ष्ट, आ० लिङ्–वूर्यात्, वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट । सन्–वुवूर्षति-ते, विवरिषति-ते, विवरीषति-ते ।

वे—१ उ०, तन्तुसन्ताने (बुनना, ढकना), लट्–वयति-ते, लिट्–उवाय, ऊये, ऊवे, ववौ, ववे, लुट्–वाता, लुङ्–अवासीत्–अवास्त, आ० लिङ्–ऊयात्, वासीष्ट । सन्–विवासति-ते, णिच्–लट्–वाययति-ते, कर्म० लट्–ऊयते, लुङ्–अवायि, क्त–उत, क्त्वा–उत्वा, प्रवाय ।

वेण्—१ उ०, गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु (जाना, जानना, सोचना आदि), लट्–वेणति-ते, लिट्–विवेण, विवेणे, लृट्–वेणिष्यति-ते, लुङ्–अवेणीत्–अवेणिष्ट ।

वेथ्—१ आ०, याचने (माँगना), लट्–वेथते, लुङ्–अवेथिष्ट ।

---

१. यह लृट्, लङ्, लुङ् और सन् मे परस्मैपदी भी है ।
२ यह लट, लृङ्, लुङ् और सन् मे परस्मैपदी भी है ।

वेन्—वेण् के तुल्य ।

वेप्—१ आ०, कम्पने (काँपना, हिलना), लट्–वेपते, लिट्–विवेपे, लुट्–वेपिता, लुङ–अवेपिष्ट, णिच्-लट्–वेपयति-ते, लुङ–अविवेपत्–त । सन्–विवेपिषते ।

वेल्—१ प०, चलने (हिलाना, चलना), लट्–वेलति, लिट्–विवेल, लुट्–वेलिता, लुङ–अवेलीत् ।

वेल्—१० उ०, कालोपदेशे (समय बताना), लट्–वेलयति-ते, लिट्–वेलयाञ्चकार–चक्रे, लुट्–वेलयिता, लुङ–अविवेलत्–त ।

वेल्ल्—१ प०, चलने (जाना, हिलाना), लट्–वेल्लति, लिट्–विवेल्ल, लुङ–अवेल्लीत् ।

वेवी—२ आ०, गतिव्याप्त्यादिषु (जाना, पाना, गर्भिणी होना, व्याप्त होना, खाना, चाहना, चमकना), लट्–वेवीते, लुङ–अवेविष्ट, (वैदिक) ।

वेष्ट्—१ आ०, वेष्टने (घेरना, लपेटना, वस्त्रपहनाना), लट्–वेष्टते, लिट्–विवेष्टे, लुट्–वेष्टिता, लुङ–अवेष्टिष्ट, णिच्–लट्–वेष्टयति-ते । सन्–विवेष्टिषते ।

वेह्—१ आ०,(प्रयत्न करना), लट्–वेहते, लिट्–विवेहे, लुङ–अवेहिष्ट ।

वै—१ प०, शोषणे (सूखना, क्षीण होना), लट्–वायति, लिट्–ववौ, लृट्–वास्यति, लुङ–अवासीत् ।

व्यच्—६ प०, व्याजीकरणे (धोखा देना, घेरना, व्याप्त होना), लट्–विचति, लिट्–विव्याच, लुट्–व्यचिता, लुङ–अव्यचीत्, अव्याचीत्, आ० लिङ–विच्यात्, कर्म० लट्–विच्यते, सन्–विव्यचिषति, णिच्–लट्–व्याचयति-ते, क्त–विचित ।

व्यथ्—१ आ०, भयचलनयो (डरना, दुःखित होना, काँपना), लट्–व्यथते, लिट्–विव्यथे, लुट्–व्यथिता, लुङ–अव्यथिष्ट । णिच्–लट्–व्यथयति-ते, सन्–विव्यथिषते, क्त–व्यथित ।

व्यध्—४ प०, ताडने (बींधना, दुःख देना), लट्–विध्यति, लिट्–विव्याध, लुट्–व्यद्धा, लुङ–अव्यात्सीत्, आ० लिङ–विध्यात् । सन्–विव्यत्सति, कर्म० लट्–विध्यते, णिच्–लट्–व्याधयति-ते, लुङ–अविव्यधत्–त, क्त–विद्ध ।

व्यय्—१ उ०, (जाना), लट्–व्ययति-ते, लिट्–वव्याय, वव्यये, लृट्–व्ययिष्यति-ते, लुङ–अव्ययीत्–अव्ययिष्ट ।

व्यय्—१० उ०, वित्तसमुत्सर्गे (व्यय करना), लट्–व्यययति-ते, लिट्–व्यययाचकार–चक्रे, लृट्–व्यययिष्यति-ते, लुङ–अवव्ययत्–त । सन्–विव्यययिषति-ते ।

व्युष्—४ प०, दाहे विभागे च (जलाना, पृथक् करना), लट्–व्युष्यति लिट्–वुव्योष, लृट्–व्योषिष्यति, लुङ–अव्योषीत् अव्युषत्, (पृथक् करना) ।

व्ये—१ उ०, संवरणे (ढकना), लट्–व्ययति-ते, लिट्–विव्याय, विव्ये लुट्–व्याता, लुङ–अव्यासीत्, अव्यास्त, आ० लिङ–वीयात्–व्यासीष्ट । सन्–विव्यासति-ते, कर्म० लट्–वीयते, णिच्–लट्–व्याययति-ते, लुङ–अविव्ययत्–त, क्त–वीत ।

व्रज्—१ प०, (जाना, समय बिताना), लट्–व्रजति, लिट्–वव्राज, लुट्–व्रजिता, लुङ–अव्राजीत् । सन्–विव्रजिषति, क्त–व्रजित ।

व्रज्—१० उ०, मार्गसंस्कारगत्योः (मार्ग साफ करना, जाना), लट्–व्राजयति-ते, लुङ–अविव्रजत्–त ।

व्रड्—६ प०, संवरणे—(कुटादि) (ढकना, एकत्र होना, डूबना), लट्–व्रडति, लृट्–व्रडिष्यति, लुङ–अव्रडीत् ।

व्रण्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–व्रणयति, लिट्–वव्राण, लुङ–अव्रणीत्–अव्राणीत् ।

व्रण्—१० उ०, गात्रविचूर्णने (घाव करना), लट्–व्रणयति-ते, लिट्–व्रणयाचकार–चक्रे, लुङ–अवव्रणत्–त ।

व्रश्च्—६ प०, छेदने (काटना, फाडना, घाव करना), लट्–वृश्चति, लिट्–वव्रश्च, लुट्–व्रश्चिता, व्रष्टा, लुङ–अव्राक्षीत्, अव्रश्चीत्, आ० लिङ–वृश्च्यात् । सन्–विव्रश्चिषति, विव्रक्षति, कर्म० लट्–वृश्च्यते, क्त–वृक्ण, तुम्–व्रश्चितुम्–व्रष्टुम् ।

व्री—४ आ०, वरणे (चुनना), लट्–व्रीयते, लिट्–विव्रिये, लृट्–व्रेष्यते, लुङ–अव्रेष्ट । क्त–व्रीण ।

व्री—९ प०, (चुनना), लट्–व्रिणाति, व्रीणाति, लृट्–व्रेष्यति, लुङ–अव्रैषीत् ।

व्रीड्—४ प०, चोदने लज्जायां च (फेंकना, लज्जित होना), लट्–व्रीडयति, लिट्–विव्रीड, लुङ–अव्रीडीत् ।

व्ली—९ प०, वरणे (चुनना, जाना), लट्–व्लिनाति, लृट्–व्लेष्यति, लुङ–अव्लैषीत् । णिच्–लट्–व्लेपयति-ते ।

श

शंस्—१ प०, स्तुतौ दुर्गतौ च (वर्णन करना, सुझाव देना, प्रशंसा करना, चाट मारना), लट्–शंसति, लिट्–शशंस लुट्–शंसिता, लुङ–अशंसीत्, आ० लिङ–शस्यात् । सन्–शिशंसिषति, कर्म० लट्–शस्यते, लुङ–अशंसि क्त्वा–शंसित्वा, शस्त्वा, क्त–शस्त, (आ+शंस्) इच्छायाम्, लट्–आशंसते, लृट्–आशंसिष्यते, लुङ–आशंसिष्ट, आ० लिङ–आशंसिषीष्ट, सन्–आशिशंसिषते ।

शक्—४ उ०, मर्षणे (सहना, समर्थ होना), लट्–शक्यति-ते, लिट्–शशाक–शेके, लुट्–शकिता, शक्ता, लृट्–शकिष्यति-ते, शक्ष्यति-ते, लुङ–अशकत्–अशकिष्ट–अशक्त । सन्–शिशंकिषति-ते ।

शक्—५ प०, शक्तौ, (सकना समर्थ होना, सहना, शक्तियुक्त होना), लट्—
शक्नोति, लिट्—शशाक, लुट्—शक्ता, लुङ्—अशकत्, आ० लिङ्—शक्यात् । सन्—
शिक्षति, कर्म० लट्—शक्यते, णिच्—लट्—शाकयति-ते, लुङ्—अशीशकत्—त,
क्त—शक्त ।

शङ्क्—१ आ०, शङ्कायाम् (शंका करना, डरना), लट्—शङ्कते, लिट्—
शशङ्के, लुट्—शङ्किता, लुङ्—अशङ्किष्ट । सन्—शिशङ्किषते, क्त—शङ्कित ।
शच्—१ आ०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, कहना), लट्—शचते, लिट्—
शेचे, लुङ्—अशचिष्ट ।

शठ्—१ प०, कैतवे (धोखा देना, हिंसा करना, दुःख सहना, दुःख देना),
लट्—शठति, लिट्—शशाठ, लुट्—शठिता, लुङ्—अशठीत्—अशाठीत् ।
शठ्—१० उ०, सम्यगवभाषणे (ठीक या बुरा कहना, धोखा देना), लट्—
शठयति-ते, लिट्—शठयाचकार, लुट्—शठयिता, लुङ्—अशशठत्—त, क्त—शठित ।
शठ्—१० उ०, असंस्कारगत्योः (काम अधूरा छोड़ना, जाना), लट्—
शाठयति-ते, लृट्—शाठयिष्यति-ते, लुङ्—अशीशठत्—त । क्त—शाठित ।
शठ्—१० आ०, श्लाघायाम् (खुशामद करना), लट्—शाठयते, लृट्—
शाठयिष्यते, लुङ्—अशीशठत । क्त—शठित ।
शण्—१ प०, दाने गतौ च (देना, जाना), लट्—शणति, लिट्—शशाण,
लृट्—शणिष्यति, लुङ्—अशणीत्—अशाणीत् ।
शद्—१ प०, (सार्वधातुक लकारों में आत्मने० है) शातने (नष्ट होना),
लट्—शीयते, लिट्—शशाद, लुट्—शत्ता, लुङ्—अशदत्, आ० लिङ्—शद्यात् । सन्—
शिशत्सति, णिच् लट्—शातयति-ते, (शादयति-ते, भी होता है) क्त—शन्न ।
शप्—१, ४ उ०, आक्रोशे (शाप देना, दोष लगाना), लट्—शपति-ते,
शप्यति-ते, लिट्—शशाप—शेपे, लुट्—शप्ता, लुङ्—अशाप्सीत्—अशप्त, आ० लिङ्—
शप्यात्—शप्सीष्ट, कर्म० लट्—शप्यते, णिच्—लट्—शापयति-ते, लुङ्—अशीशपत्—
त, सन्—शिशप्सति-ते, क्त—शप्त ।
शब्द्—१० उ०, (शब्द करना, कहना, पुकारना), लट्—शब्दयति-ते,
लिट्—शब्दयाचकार-चक्रे, लुट्—शब्दयिता, लुङ्—अशशब्दत्—त । क्त—शब्दित ।
शम्—४ प०, उपशमे (शान्त होना, शान्त करना, रोकना), लट्—
शाम्यति, लिट्—शशाम, लुट्—शमिता, लुङ्—अशमत्, आ० लिङ्—शम्यात्,
कर्म० लट्—शम्यते, णिच्—लट्—शमयति-ते, शामयति-ते, क्त—शान्त ।
शम—१० आ०, आलोचने (देखना, दिखाना), लट्—शामयते, लिट्—
शामयाचक्रे, लुट्—शामयिता, लुङ्—अशीशमत, सन्—शिशामयिषते ।
शम्ब्—१० उ०, सम्बन्धने (इकट्ठा करना, संग्रह करना), लट्—शम्ब-
यति-ते, लिट्—शम्बयाञ्चकार—चक्रे, लुङ्—अशशम्बत्—त ।

शर्ब्—१ प०, (जाना, चोट पहुँचाना, मारना), लट्–शर्बति, लिट्–शशर्ब, लुङ्–अशर्बीत् ।

शर्व्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–शर्वति ।

शल्—१ आ०, चलन संवरणयोः (हिलाना, क्षुब्ध करना), लट्–शलते, लिट्–शेले, लुट्–शलिता, लुङ्–अशलिष्ट ।

शल्—१ प०, (जाना, दौड़ना), लट्–शलति, लिट्–शशाल ।

शल्भ्—१ आ०, कत्थने (प्रशंसा करना, आत्म-प्रशंसा करना), लट्–शल्भते, लिट्–शशल्भ ।

शव्—१ प०, (जाना, पहुँचना, कहना), लट्–शवति, लिट्–शशाव, लुङ्–अशवीत्–अशावीत् ।

शश्—१ प०, प्लुतगतौ (कूदना, उछलते हुए जाना), लट्–शशति, लिट्–शशाश, लुट्–शशिता, लुङ्–अशशीत्–अशाशीत् ।

शष्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, हानि पहुँचाना), लट्–शषति, लिट्–शशाष, लुङ्–अशषीत्–अशाषीत् ।

शस्—१ प०, हिंसायाम् (काटना, नष्ट करना), लट्–शसति, लिट्–शशास, लुट्–शसिता, लुङ्–अशसीत्–अशासीत् । क्त–शस्त ।

शाख्—१ प०, व्याप्तौ (व्याप्त होना) लट्–शाखति, लुङ्–अशाखीत् ।

शान्—१ उ०, तेजने (तीक्ष्ण करना, धार रखना), लट्–शीशांसति-ते, लृट्–शीशांसिष्यति-ते, लुङ्–अशीशांसिष्ट, अशीशांसीत् ।

शाल्—१ आ०, श्लाघायां दीप्तौ च (कहना, प्रशंसा करना, चमकना) लट्–शालते, लिट्–शशाले, लृट्–शालिष्यते, लुङ्–अशालिष्ट । सन्–शिशालिषते ।

शास्—२ प०, अनुशिष्टौ (पढ़ाना, शिक्षा देना, शासन करना, ठीक करना, परामर्श देना), लट्–शास्ति, लिट्–शशास, लुट्–शासिता, लुङ्–अशिषत्, आ० लिङ्–शिष्यात् । सन्–शिशासिषति, कर्म० लट्–शिष्यते, क्त–शिष्ट, क्त्वा–शासित्वा, शिष्ट्वा ।

शास्—(आ के साथ) २ आ०, इच्छायाम् (आशा करना, आशीर्वाद देना), लट्–आशास्ते, लिट्–आशशासे, लुङ्–आशासिष्ट ।

शि—५ उ०, निशाने (तीक्ष्ण करना, धार रखना, उत्तेजित करना), लट्–शिनोति, शिनुते, लिट्–शिशाय–शिश्ये, लृट्–शेष्यति-ते, लुङ्–अशैषीत्–अशेष्ट । सन्–शिशीषति-ते ।

शिक्ष्—१ आ०, विद्योपादाने (सीखना, पढ़ना), लट्–शिक्षते, लिट्–शिशिक्षे, लुट्–शिक्षिता, लुङ्–अशिक्षिष्ट । सन्–शिशिक्षिषते, क्त–शिक्षित ।

शिङ्ख्—१ प०, (जाना), लट्–शिङ्खति, लिट्–शिशिङ्ख, लृट्–शिङ्खिष्यति, लुङ्–अशिङ्खीत् ।

शिघ्—१ प०, आघ्राणे (सूंघना), लट्–शिघति, लिट्–शिशिघ, लुट्–
शिघिता, लुङ–अशिघीत् ।
शिञ्ज्—२ आ०, अव्यक्ते शब्दे (झनझनाना, टन टन करना), लट्–
शिङ्क्ते, लुङ–अशिञ्जिष्ट ।
शिट्—१ प०, अनादरे (अनादर करना), लट्–शेटति, लिट्–शिशेट,
लुङ–अशेटीत् ।
शिष्—१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, चोट पहुंचाना), लट्–शेषति,
लिट्–शिशेष, लृट्–शेक्ष्यति, लुङ–अशिक्षत् (कुछ के मतानुसार सेट् है–शेषिता,
शेषिष्यति, अशेषीत्) ।
शिष्—१ प०, १० उ० (शेष रहने देना, छोडना), (वि+शिष्, अतिशये,
बढ़कर होना), लट्–शेषति, शेषयति-ते, लिट्–शिशेष, शेषयाचकार-चक्रे,
लुङ–अशिक्षत्–अशिशिषत्–त ।
शिष्—७ प०, विशेषणे (छोडना, अन्यों से विशेषता बनाना या छांटना),
लट्–शिनष्टि, लिट्–शिशेष, लुट्–शेष्टा, लुङ–अशिषत्, आ० लिङ–शिष्यात् ।
सन्–शिशिक्षति, णिच्–लट्–शेषयति-ते, क्त–शिष्ट ।
शी—२ आ०, स्वप्ने (सोना, लेटना), लट्–शेते, लिट्–शिश्ये, लुट्–
शयिता, लुङ–अशयिष्ट, आ० लिङ–शयिषीष्ट । सन्–शिशयिषते, कर्म० लट्–
शय्यते, लुङ–अशायि, णिच्–लट्–शाययति-ते, क्त–शयित ।
शीक्—१ आ०, सेचने (सींचना, धीरे से जाना), लट्–शीकते, लिट्–
शिशीके, लुङ–अशीकिष्ट ।
शीक्—१ प०, १० उ०, आमर्षणे (क्रुद्ध होना), (१० उ० भाषाया
दीप्तौ च) (बोलना, चमकना), लट्–शीकति–शीकयति-ते, लिट्–शिशीक
शीकयाचकार–चक्रे ।
शीभ्—१ आ०, कत्थने (कहना, समाचार पहुंचाना), लट्–शीभते,
लिट्–शिशीभे, लुङ–अशीभिष्ट ।
शील्—१ प०, समाधौ (ध्यान लगाना), लट्–शीलति, लिट्–शिशील,
लुट्–शीलिता, लुङ–अशीलीत् ।
शील्—१० उ०, उपधारणे (पढना, अभ्यास करना, आदर करना, पास
जाना), लट्–शीलयति-ते, लिट्–शीलयाचकार–चक्रे, लुट्–शीलयिता, लुङ–
अशिशीलत्–त । सन्–शिशीलयिषति-ते ।
शुक्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–शोकति, लिट्–शुशोक, लुट्–
शोकिता, लुङ–अशोकीत् ।
शुच्—१ प०, शोके (शोक करना, दुःख करना, खेद प्रकट करना), लट्–
शोचति, लिट्–शुशोच, लुट्–शोचिता, लुङ–अशोचीत् । सन्–शुशुचिषति, शुशो-
चिषति, क्त–शुचित, शोचित ।

शुच्—४ उ०, पूतीभावे (क्लेदे) (गीला होना, दु:खित होना), लट्–शुच्यति-ते, लिट्–शुशोच, शुशुचे, लुट्–शोचिता, लुङ–अशुचत्–अशोचीत्–अशोचिष्ट, क्त–शुचित ।

शुच्य्—१ प०, स्नानपीडनसुरासन्धानेषु (स्नान करना, रस निकालना, मद्यकर रस निचोडना), लट्–शुच्यति, लिट्–शुशुच्य, लुङ–अशुच्यीत् ।

शुठ्—१ प०, (रोकना, लँगडाना, विघ्न पडना), लट्–शोठति, लिट्–शुशोठ, लुट्–शोठिता, लुङ–अशोठीत् ।

शुठ्—१० उ०, आलस्ये (आलसी होना, सुस्त होना), लट्–शोठयति-ते, लिट्–शोठयाचकार–चक्र, लुङ–अशूशुठत्–त ।

शुण्ठ्—१ प०, (पूर्वोक्त शुठ के तुल्य), लुङ–अशुण्ठीत् ।

शुण्ठ्—१ प०, १० उ०, शोषणे (सूखना, शुद्ध करना), लट्–शुण्ठति, शण्ठयति-ते, लिट्–शुशुण्ठ, शुण्ठयाचकार–चक्रे ।

शुध्—४ प०, शौचे (शुद्ध होना, सन्देहो का निराकरण होना), लट्–शुध्यति, लिट्–शुशोध, लुट्–शोद्धा, लुङ–अशुधत्, कर्म० लट्–शुध्यते, लुङ–अशोधि, णिच्–लट्–शोधयति-ते, लुङ–अशूशुधत्–त, सन्–शुशुत्सति, क्त–शुद्ध ।

शुन्—६ प०, (जाना, हिलना), लट्–शुनति, लिट्–शुशोन, लुङ–अशोनीत् ।

शुन्ध्—१ प०, शुद्धौ–१० उ०, शौच कर्मणि (शुद्ध करना, स्वच्छ करना), लट्–शुन्धयति-ते, लिट्–शुशुन्ध, शुन्धयाचकार–चक्रे, लुङ–अशुन्धीत्, अशुशुन्धत्–त । क्त–शुन्धित ।

शुभ्—१ आ०, दीप्तौ (चमकना, प्रसन्न होना), लट्–शोभते, लिट्–शुशुभे, लुट्–शोभिता, लुङ–अशुभत्, अशोभिष्ट । सन्–शुशुभिषते, शुशोभिषते ।

शुभ–शुम्भ्—१ प०, भाषणे, भासने हिंसाया च (कहना, चमकना, चोट पहुँचाना), लट्–शोभति, शुम्भति, लिट्–शुशोभ, शुशुम्भ, लृट्–शोभिष्यति, शुम्भिष्यति, लुङ–अशोभीत्, अशुम्भीत् । क्त–शुभित, शोभित, शुम्भित ।

शुभ्—६ प०, शोभायाम् (चमकना, तेजस्वी होना), लट्–शुभति, 'क्त–शुभित, शतृ–शुभत् । (इसको शुम्भ् भी लिखते है) ।

शुल्क्—१० उ०, अतिस्पर्शने (प्राप्त करना, शुल्क देना, त्यागना), लट्–शुल्कयति-ते, लिट्–शुल्कयाचकार–चक्रे, लुङ–अशुशुल्कत्–त ।

शुल्ब (शुल्व्)—१० उ०, माने (तोलना, उत्पन्न करना), लट्–शुल्बयति-ते, शुल्वयति-ते ।

शुष्—४ प०, शोषणे (सूखना, सुखाना, दु खित होना), लट्–शुष्यति लिट्–शुशोष, लुट्–शोष्टा, लुङ–अशुषत्, णिच्–लट्–शोषयति-ते, लुङ–अशूशुषत्–त, सन्–शुशुक्षति, क्त–शुष्क ।

शूर्—४ आ०, हिंसास्तम्भनयो: (चोट मारना, दृढ होना), लट्–शूर्यते, लिट्–शुशूरे, लुङ–अशूरिष्ट, क्त–शूर्ण ।

शूर्—१० आ०, विक्रान्तौ (शूरवत् कार्य करना, बहादुरी दिखाना), लट्—शूरयते, लिट्—शूरयाचक्रे, लुङ्—अशुशूरत । सन्—शुशूरयिषते ।

शूर्प—१० उ०, माने (नापना), लट्—शूर्पयति-ते, लिट्—शूर्पयाचकार-चक्रे, लुङ्—अशुशूर्पत्-त ।

शूल्—१ प०, रुजायां संघाते च (रुग्ण होना, इकट्ठा करना), लट्—शूलति, लिट्—शुशूल, लुङ्—अशूलीत् ।

शूष्—१ प०, प्रसवे (उत्पन्न करना, जन्म देना), लट्—शूषति, लिट्—शुशूष ।

शृध्—१ आ०, शब्दकुत्सायाम् (यह लट्, लुङ् और लृङ् में परस्मैपदी भी है), (अपानवायु छोडना) लट्—शर्धते, लिट्—शशृधे, लुट्—शर्धिता, लृट्—शर्धिष्यते, शर्त्स्यति, लुङ्—अशृधत्-अशर्धिष्ट । सन्—शिशर्धिषते, शिशृत्सति, क्त—शृद्ध ।

शृध्—१ उ०, उन्दने (गीला होना) लट्—शर्धति-ते, लृट्—शर्धिष्यति-ते, लुङ्—अशर्धीत्-अशर्धिष्ट ।

शृध्—१ प०, १० उ०, प्रहसने (हँसी करना, मजाक उडाना), लट्—शर्धति, शर्धयति-ते, लुङ्—अशर्धीत्-अशशर्धत्-त, लुङ्—अशीशृधत्-त ।

शॄ—९ प०, हिंसायाम् (टुकडे टुकडे करना, मारना, हानि पहुँचाना), लट्—शृणाति, लिट्—शशार, लुट्—शरिता, शरीता, लुङ्—अशारीत् । सन् शिशरिषति, शिशरीषति-शिशीर्षति, कर्म० लट्—शीर्यते, क्त—शीर्ण ।

शेल्—१ प०, (जाना, काँपना), लट्—शेलति, लिट्—शिशेल, लुट्—शेलिता, लुङ्—अशेलीत् ।

शेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना), लट्—शेवते (शेष सेव् के तुल्य) ।

शै—१ प०, पाके (खाना बनाना), लट्—शायति, लृट्—शास्यति, लुङ्—अशासीत् ।

शो—४ प०, तनूकरणे (छीलना, पतला करना), लट्—श्यति, लिट्—शशौ, लुट्—शाता, लुङ्—अशात्-अशासीत् । सन्—शिशासति, कर्म० लट्—शायते, णिच्-लट्—शाययति-ते, क्त—शात-शित ।

शोण्—१ प०, वर्णगत्योः (लाल रंग का होना, जाना), लट्—शोणति, लिट्—शुशोण, लुङ्—अशोणीत् ।

शौट्(शौड्)—१ प०, गर्वे (गर्व करना), लट्—शौटति, शौडति, लृट्—शौटिष्यति, लुङ्—अशौटीत् ।

श्चुत्—१ प०, क्षरणे (चूना, टपकना), लट्—श्चोतति, लिट्—चुश्चोत, लुट्—श्चोतिता, लुङ्—अश्चोतीत्-अश्चुतत् । क्त—श्चुतित, श्चोतित ।

श्च्युत्—१ प०, (चूना, फैलाना), लट्—श्च्योतति (शेष पूर्ववत्) ।

श्मील्—१ प०, निमेषणे (पलक मारना, आंख बन्द करना), लट्–श्मीलति, लिट्–शिश्मील, लुङ्–अश्मीलीत् ।

श्यै—१ आ०, (जाना, सुखाना, बधाई देना), लट्–श्यायते, लिट्–शिश्ये, लुट्–श्याता, लुङ्–अश्यास्त । क्त–श्यान, शीन, शीत ।

श्रङ्क्—१ आ०, (जाना, रेंगना), लट्–श्रङ्कते, लिट्–शश्रङ्के, लुङ्–अश्रङ्किष्ट ।

श्रङ्ग्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–श्रङ्गति, लिट्–शश्रङ्ग ।

श्रण्—१ प०, १० उ०, दाने (प्राय. वि के साथ) (देना, दान देना), लट्–श्रणति, श्राणयति-ते, लिट्–शश्राण, श्राणयाचकार–चक्रे, लुङ्–अश्राणीत्, अश्रणीत्–अशिश्रणत्–त, अशश्राणत्–त ।

श्रथ्—१ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–श्रथति, लिट्–शश्राथ, लुङ्–अश्रथीत्–अश्राथीत् ।

श्रथ्—१ प०, १० उ०, मोक्षणे हिंसायाम् इत्येके (मुक्त करना, छोड़ना, मारना), लट्–श्रथति, श्राथयति-ते, लिट्–शश्राथ, श्राथयाचकार–चक्रे, लुङ्–अश्रथीत्–अश्राथीत्–अशिश्रथत्–त ।

श्रथ्—१० उ०, दौर्बल्ये (दुर्बल होना), लट्–श्रथयति-ते, लिट्–श्रथयाचकार–चक्रे, लुट्–श्रथयिता, लुङ्–अशश्रथत्–त ।

श्रन्थ्—१ आ०, शैथिल्ये (शिथिल होना), लट्–श्रन्थयते, लिट्–शश्रन्थे, लुङ्–अश्रन्थिष्ट ।

श्रन्थ्—६ प०, विमोचनप्रतिहर्षयोः (ढीला करना, प्रसन्न होना, क्रमबद्ध लगाना), लट्–श्रथ्नाति, लिट्–शश्रन्थ, श्रेथ, लुट्–श्रन्थिता, लुङ्–अश्रन्थीत् । सन्–शिश्रन्थिषति ।

श्रन्थ्—१ प०, १० उ०, ग्रन्थसन्दर्भे (ग्रन्थ रचना करना), लट्–श्रन्थति, श्रन्थयति-ते ।

श्रम्—४ प०, तपसि खेदे च (परिश्रम करना, थकना), लट्–श्राम्यति लिट्–शश्राम, लुट्–श्रमिता, लुङ्–अश्रमत् । क्त–श्रान्त, क्त्वा–श्रमित्वा, श्रान्त्वा ।

श्रम्भ्—१ आ०, प्रमादे (लापरवाही करना), लट्–श्रम्भते, लिट्–शश्रम्भे, लुट्–श्रम्भिता, लुङ्–अश्रम्भिष्ट, क्त–श्रब्ध ।

श्रा—२ प०, पाके (पकाना, वस्त्र पहनाना), लट्–श्राति, लिट्–शश्रौ, लुट्–श्राता, लुङ्–अश्रासीत् । णिच्–लट्–श्रापयति-ते, क्त–श्रात, श्राण ।

श्रि—१ उ०, सेवायाम् (सेवा करना, निर्भर होना, आश्रय लेना), लट्–श्रयति-ते, लिट्–शिश्राय, शिश्रिये, लुट्–श्रयिता, लुङ्–अशिश्रियत्–त, आ० लिङ्–श्रीयात्, श्रयिषीष्ट । सन्–शिश्रीषति-ते, शिश्रयिषति-ते कर्म०–लट्–श्रीयते, लुङ्–अश्रायि, णिच्–लट्–श्राययति-ते, लुङ्–अशिश्रयत्–त, क्त–श्रित ।

श्रिष्—१ प०, दाहे (जलाना), लट्-श्रेषति, लिट्-शिश्रेष, लुट्-श्रेषिता, लुङ्-अश्रेषीत् ।

श्री—९ उ०, पाके (पकाना, उबालना), लट्-श्रीणाति, श्रीणीते, लिट्-शिश्राय, शिश्रिये, लुट्-श्रेता, लुङ्-अश्रैषीत्-अश्रेष्ट । सन्-शिश्रीषति-ते, क्त-श्रीत ।

श्रु—१ प०, श्रवणे (सुनना, आज्ञापालन करना), लट्-शृणोति, लिट्-शुश्राव, लुट्-श्रोता, लुङ्-अश्रौषीत्, आ० लिङ्-श्रूयात् । सन्-शुश्रूषते, कर्म० लट्-श्रूयते, लुङ्-अश्रावि, णिच्-लट्-श्रावयति-ते, लुङ्-अशुश्रवत्-त, अशिश्रवत्-त, क्त-श्रुत ।

श्रै—१ प०, पाके (खाना बनाना), लट्-श्रायति, लिट्-शश्रौ, लुट्-श्राता, लुङ्-अश्रासीत्, आ० लिङ्-श्रायात्-श्रेयात् ।

श्रोण्—१ प०, संघाते (संग्रह करना, संग्रह किया जाना), लट्-श्रोणति, लिट्-शुश्रोण ।

श्लङ्क्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्-श्लङ्कते, लिट्-शश्लङ्के, लुङ्-अश्लङ्किष्ट ।

श्लङ्ग्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्-श्लङ्गते, लिट्-शश्लङ्गे ।

श्लथ्—१ प०, हिंसायाम् (हिंसा करना, ढीला होना), लट्-श्लथति, लिट्-शश्लाथ, लुङ्-अश्लथीत्-अश्लाथीत् ।

श्लाख्—१ प०, व्याप्तौ—(व्याप्त होना), लट्-श्लाखति, लिट्-शश्लाख, लुङ्-अश्लाखीत् ।

श्लाघ्—१ आ०, कत्थने (प्रशंसा करना, अपनी बड़ाई करना, खुशामद करना), लट्-श्लाघते, लिट्-शश्लाघे, लुट्-श्लाघिता, लुङ्-अश्लाघिष्ट । सन्-शिश्लाघिषते, क्त-श्लाघित ।

श्लिष्—१ प०, दाहे (जलाना), लट्-श्लेषति, लिट्-शिश्लेष, लुट्-श्लेषिता, लुङ्-अश्लेषीत् । क्त-श्लिष्ट, क्त्वा-श्लिषित्वा, श्लेषित्वा, श्लिष्ट्वा ।

श्लिष्—४ प०, आलिङ्गने (चिपटना, आलिंगन करना, मिलना), लट्-श्लिष्यति, लिट्-शिश्लेष, लुट्-श्लेष्टा, लुङ्-अश्लिक्षत् (आलिंगन अर्थ में), अश्लिषत् (अन्य अर्थों में) । सन्-शिश्लिक्षति, क्त-श्लिष्ट ।

श्लिष्—१० उ०, श्लेषणे (आलिंगन करना), लट्-श्लेषयति-ते, लुङ्-अशिश्लिषत्-त ।

श्लोक्—१ आ०, संघाते (श्लोक बनाना, प्राप्त करना), लट्-श्लोकते, लिट्-शुश्लोके, लुङ्-अश्लोकिष्ट । सन्-शुश्लोकिषते ।

श्लोण्—१ प०, संघाते (इकट्ठा करना), लट्-श्लोणति, लिट्-शुश्लोण, लुङ्-अश्लोणीत् ।

श्वङ्क्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्-श्वङ्कते, लिट्-शश्वङ्के ।

श्वच्—१ आ०, (जाना, खुलना), लट्–श्वचते, श्वञ्चते, लिट्–शश्वचे, शश्वञ्चे, लुङ–अश्वचिष्ट अश्वञ्चिष्ट ।

श्वठ्—१० उ०, असंस्कारगत्योः (अधूरा छोड़ना, जाना), लट्–श्वाठयति-ते, लिट्–श्वाठयाञ्चकार-चक्रे, लृट्–श्वाठयिष्यति-ते, लुङ–अशिश्वठत्–त । (इसे श्वण्ठ् भी लिखते हैं) ।

श्वठ्—१० उ० सम्यगवभाषणे (अच्छा या बुरा कहना), लट्–श्वठयति-ते, लिट्–श्वठयाञ्चकार-चक्रे, लुङ–अशश्वठत्-ते ।

श्वभ्र—१ उ०, (जाना, गड्ढा खोदना), लट्–श्वभ्रयति–ते, लिट्–श्वभ्रयाञ्चकार–चक्रे ।

श्वल्—१ प०, आशुगमने (दौड़ना), लट्–श्वलति, लिट्–शश्वाल, लुट्–श्वलिता, लुङ–अश्वालीत् ।

श्वल्क्—१० उ०, परिभाषणे (कहना), लट्–श्वल्कयति-ते, लिट्–श्वल्कयाञ्चकार–चक्रे, लुङ–अशश्वल्कत्–त ।

श्वल्ल्—१ प०, आशुगमने (दौड़ना), लट्–श्वल्लति, लिट्–शश्वल्ल, लुङ–अश्वल्लीत् ।

श्वस्—२ प०, प्राणने (साँस लेना, साँस छोड़ना), लट्–श्वसिति, लिट्–शश्वास, लुट्–श्वसिता, लुङ–अश्वसीत् । सन्–शिश्वसिषति, क्त–श्वसित (किन्तु आश्वस्त रूप होता है) ।

श्वि—१ प०, गतिवृद्ध्योः (जाना, सूजना, बढ़ना), लट्–श्वयति, लिट्–शुशाव, शिश्वाय, लुट्–श्वयिता, लुङ–अश्वत्–अश्वयीत्–अशिश्वियत्, आ० लिङ–शूयात् । सन्–शिश्वयिषति, कर्म०–लट्–शूयते, लुङ–अश्वायि, णिच्–सन्–लट्–श्वाययति-ते, लुङ–अशिश्वयत्–त, अशूशवत्–त, क्त–शून, क्त्वा–श्वयित्वा, उच्छय ।

श्वित्—१ आ०, वर्णे (सफेद होना), लट्–श्वेतते, लिट्–शिश्विते, लुट्–श्वतिता, लुङ–अश्वितत्–अश्वेतिष्ट ।

श्विन्द्—१ आ०, श्वैत्ये (सफेद होना), लट्–श्विन्दते, लिट्–शिश्विन्दे, लुङ–अश्विन्दिष्ट ।

ष

ष्ठिव्—१, ४ प०, निरसने (थूकना), लट्–ष्ठीवति, ष्ठीव्यति, लिट्–तिष्ठेव, टिष्ठेव लुट्–ष्ठेविता, लुङ–अष्ठेवीत, आ० लिङ–ष्ठीव्यात् । सन्–तिष्ठेविषति, तुष्ठ्यूषति, टुष्ठ्यूषति, णिच्–लट्–ष्ठेवयति-ते, क्त–ष्ठ्यूत ।

ष्वष्क्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–ष्वष्कते, लिट्–षष्वष्के, लुट्–ष्वष्किता, लुङ–अष्वष्किष्ट ।

स

सग्—१ प०, सवरणे (ढकना), लट्–सगति, लृट्–सगिष्यति, लुङ्–असगीत् ।

सघ्—५ प०, हिंसायाम् (मारना), लट्–सघ्नोति, लुङ्–असघीत्–असाघीत् ।

सङ्केत्—१० उ०, आमन्त्रणे (निमंत्रण देना), लट्–सङ्केतयति-ते, लुङ्–अससङ्केतत्–त ।

संग्राम्—१० आ०, युद्धे (लडना), लट्–संग्रामयते, लृट्–संग्रामयिष्यते, लुङ्–अससंग्रामत ।

सच्—१ आ०, सेचने सेवने च (सींचना, सेवा करना), लट्–सचते, लृट्–सचिष्यते, लुङ्–असचिष्ट ।

सच्—१ उ०, समवाये (एकत्र होना), लट्–सचति-ते, लुङ्–असचीत्, असाचीत्–असचिष्ट ।

सञ्ज्—१ प०, सङ्गे (आलिंगन करना, चिपटना, बांधना), लट्–सञ्जति, लिट्–ससञ्ज, लुट्–सङ्क्ता, लुङ्–असाङ्क्षीत्, आ० लिङ्–सज्यात् । कर्म०लट्–सज्यते, लुङ्–असञ्जि, क्त–सक्त ।

सट्—१ प०, अवयवे (किसी वस्तु का अवयव होना), लट्–सटति, लुङ्–असटत्–असाटीत् ।

सट्ट्—१० उ०, हिंसायाम् (मारना, दृढ होना, रहना, देना), लट्–सट्टयति-ते, लिट्–सट्टयाचकार–चक्रे, लुट्–सट्टयिता, लुङ्–अससट्टत्–त ।

सठ्—१० उ०, (पूरा करना, सजाना, जाना, अधूरा छोडना), लट्–साठयति-ते, लिट्–साठयाचकार–चक्रे, लुट्–साठयिता, लुङ्–असीसठत् ।

सत्र्—१० आ०, सतानक्रियायाम् (फैलाना), लट्–सत्रयते, लृट्–सत्रयिष्यते, लुङ्–अससत्रत ।

सद्—६ प०, विशरणगत्यवसादनेषु (तोडना, जाना, डूबना, नष्ट होना, सुस्त होना), लट्–सीदति, लिट्–ससाद, लुट्–सत्ता, लुङ्–असदत्, आ०, लिङ्–सद्यात् । सन्–सिषत्सति, कर्म० लट्–सद्यते, णिच्–लट्–सादयति-ते, लुङ्–असीषदत्–त, क्त–सन्न ।

सद्—१० उ०, (जाना), लट्–सादयति-ते, लुङ्–असीषदत्–त, सन्–सिषादयिषति-ते ।

सन्—१ प०, सम्भक्तौ (बाँटना), ८ उ०, दाने (देना, पूजा करना), लट्–सनति, सनोति, सनुते, लिट्–ससान, सेने, लुट्–सनिता, लुङ्–असानीत्–असनीत्–असनिष्ट–असात (८) । सन्–सिसनिषति, सिषासति, सिषनिषति-ते, सिषासति-ते, कर्म० लट्–सन्यते, सायते, क्त–(१) सनित, (८) सात ।

सप्—१ प०, समवाये (जोडना, मिलाना), लट्—सपति, लिट्—ससाप, लुट्—सपिता, लुङ—असपीत, असापीत् ।

सभाज्—१० उ०, प्रीतिदर्शनयो. (सेवा करना, आदर करना, प्रशसा करना), लट्—सभाजयति-ते, लुङ—अससभाजत्—त ।

सम्—१ प०, वैकल्ये (व्याकुल होना), लट्—समति, लिट्—ससाम, लुङ—असामीत् ।

सम्—४ प०, परिणामे (परिणत होना), लट्—सम्यति, लिट्—ससाम, लुङ—असमत् ।

सम्ब्—१ प०, सम्बन्धने (सबद्ध होना), लट्—सम्बति, लिट्—ससम्ब, लुट्—सम्बिता, लुङ—असम्बीत् ।

सम्ब्—१० उ०, (एकत्र करना), लट्—सम्बयति-ते, लिट्—सम्बयाचकार—चक्रे, लुङ—अससम्बत्—त ।

सय्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्—समते, लिट्—ससये ।

सर्ज्—१ प०, सर्जने (पाना, परिश्रम से प्राप्त करना), लट्—सर्जति, लिट्—ससर्ज, लुट्—सर्जिता, लुङ—असर्जीत् ।

सर्ब्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—सर्बति, लृट्—सर्बिष्यति, लुङ—असर्बीत् ।

सर्व्—१ प०, गतौ हिंसाया च (जाना, हिंसा करना), लट्—सर्वति, लिट्—ससर्व ।

सल्—१ प० (जाना, हिलना)' लट्—सलति, लिट्—ससाल, लुङ—असालीत् ।

सस्—२ प०, स्वप्ने (सोना), लट्—सस्ति, लिट्—ससास (वैदिक) ।

सस्ज्—१ उ०, गतौ (जाना, तैयार होना), लट्—सज्जति-ते, लिट्—सस्ज्जे, लुट्—सज्जिता, लुङ—असज्जिष्ट, असज्जीत् । सन्—सिसज्जिपति-ते ।

सह्—१ आ०, मर्षणे (सहना, दु ख सहना, करने देना), लट्—सहते, लिट्—सेहे, लुट्—सहिता, सोढा, लृट्—सहिष्यते, लुङ—असहिष्ट, आ० लिङ—सहिषीष्ट । सन्—सिसहिषते, णिच्—लट्—साहयति-ते, लुङ—असीषहत्—त, सन्— सिसाहयिषति-ते, क्त—सोढ ।

सह्—४ प०, तृप्तौ (प्रसन्न होना, सहना), लट्—सह्यति, लिट्—ससाह, लुट्—सहिता, सोढा, लुङ—असहीत् । सन्—सिसहिषति, क्त—सहित ।

सह्—१ प०, १० उ०, मर्षणे (सहन करना), लट्—सहति—साहयति-ते, लुङ—असहीत्, असीषहत्—त । क्त—सहित, साहित ।

साध्—५ प०, संसिद्धौ (पूरा करना, समाप्त करना) लट्—साध्नोति, लिट्—ससाध, लुट्—साद्धा, लृट्—सात्स्यति, लुङ—असात्सीत् । णिच्—लट्—साधयति-ते सन्—सिषात्सति ।

सान्त्व्—१० उ०, सामप्रयोगे (सान्त्वना देना, समझाना, धैर्य बांधना), लट्–सान्त्वयति-ते, लिट्–सान्त्वयाञ्चकार-चक्रे, लुट्–सान्त्वयिता, लुङ्–अससान्त्वत्–त । सन्–सिसान्त्वयिषति-ते, क्त–सान्त्वित ।

साम्—१० उ०, सान्त्वप्रयोगे (समझौता कराना, मनाना), लट्–सामयति-ते, लुङ्–अससामत्–त । सन्–सिसामयिषति-ते ।

सार्—१० उ०, दौर्बल्ये (दुर्बल होना), लट्–सारयति-ते, लुङ्–अससारत्–त ।

सि—५, ९ उ०, बन्धने (बाँधना), लट्–सिनोति, सिनुते, सिनाति, सिनीते, लिट्–सिषाय–सिष्ये, लुट्–सेता, लुङ्–असैषीत्–असेष्ट, आ० लिङ्–सीयात्–सेषीष्ट । सन्–सिषीषति-ते, कर्म० लट्–सीयते, क्त–सित, सिन ।

सिच्—६ उ०, क्षरणे (सींचना, पानी देना, गर्भिणी होना), लट्–सिञ्चति-ते, लिट्–सिषेच, सिषिचे, लुट्–सेक्ता, लृट्–सेक्ष्यति-ते, लुङ्–असिचत्–त, असिक्त, आ० लिङ्–सिच्यात्–सिक्षीष्ट । सन्–सिसिक्षति-ते, कर्म० लट्–सिच्यते, लुङ्–असेचि, णिच्–लट्–सेचयति-ते, क्त–सिक्त ।

सिट्—१ प०, अनादरे (अनादर करना), लट्–सेटति, लिट्–सिषेट, लुङ्–असेटीत् ।

सिध्—१ प०, (जाना, हटाना), लट्–सेधति, लिट्–सिषेध, लुट्–सेधिता, लुङ्–असेधीत्, आ० लिङ्–सिध्यात् । णिच्–लट्–सेधयति-ते, लुङ्–असीसिधत्–त, सन्–सिसिधिषति, सिसेधिषति, क्त–सिद्ध, क्त्वा–सिधित्वा, सेधित्वा, सिद्ध्वा ।

सिध्—१ प०, शास्त्रे माङ्गल्ये च (आदेश देना, मंगलयुक्त होना), लिट्–सिषेध (म० पु० एक० सिषेधिथ–सिषेद्ध) लुट्–सेधिता, सेद्धा, लुङ्–असेधीत्–असैत्सीत् (द्वि० असेधिष्टाम्, असैद्धाम्) । सन्–सिसिधिषति, सिसित्सति, सिसेधिषति ।

सिध्—४ प०, संराद्धौ (पहुँचना, लक्ष्य प्राप्त करना, सफल होना, पूरा करना), लट्–सिध्यति, लिट्–सिषेध, लुट्–सेद्धा, लुङ्–असिधत् । सन्–सिषित्सति, णिच्–साधयति-ते (सेधयति-ते, सचाई पता चलाना) ।

सिन्व्—१ प०, सेचने (गीला करना), लट्–सिन्वति, लिट्–सिषिन्व, लुट्–सिन्विता, लुङ्–असिन्वीत् ।

सिव्—४ प०, तन्तुसन्ताने (सीना, सिलना, मिलाना), लट्–सीव्यति, लिट्–सिषेव, लुट्–सेविता, लुङ्–असेवीत्, आ० लिङ्–सीव्यात् । कर्म० लट्–सीव्यते, क्त–स्यूत, क्त्वा–सेवित्वा, स्यूत्वा ।

सीक्—१ आ०, सेचने (सींचना, जाना, हिलना), लट्–सीकते, लिट्–सिषीके, लुट्–सीकिता, लुङ्–असीकिष्ट ।

सु—१ प०, प्रसवैश्वर्ययो (उत्पन्न करना, समृद्ध होना), लट्–भवति लिट्–सुषाव, लुट्–सोता, लुङ–असावीत्, असौषीत् । सन्–सुसूषति-ते ।

सु—२ प०, प्रसवैश्वर्ययो (उत्पन्न करना, ऐश्वर्ययुक्त होना), लट्–सौति, लिट्–सुषाव, लुट्–सोता, लुङ–असौषीत् ।

सु—५ प०, स्नपनपीडनस्नानसुरासन्धानेषु (सींचना, बहाना, नहाना, रस निकालना, अर्थ निकालना), लट्–सुनोति, सुनुते, लिट्–सुषाव–सुषवे, लुट्–सोता, लुङ–असावीत्–असोष्ट, आ० लिङ–सूयात्–सोषीष्ट । सन्–सुसूषति-ते, कर्म० लट्–सूयते, लुङ–असावि, णिच्–लट्–सावयति-ते, लुङ–असूषवत्–त ।

सुख्—१० उ०, सुखक्रियायाम् (सुखी करना), लट्–सुखयति-ते ।

सुट्ट्—१० उ०, अनादरे (अनादर करना), लट्–सुट्टयति-ते ।

सुभ्—१, ६ प०, भाषार्हिसयो (कहना, चोट पहुँचाना), लट्–सोभति, सुभति, लुङ–असोभीत् । (सुम्भ् १, ६ प० भी है) ।

सू—२, ४ आ०, प्राणिगर्भविमोचने (जन्म देना, उत्पन्न करना), लट्–सूते, सूयते, लिट्–सुषुवे, लुट्–सोता, सविता, लुङ–असोष्ट, असविष्ट, आ० लिङ–सोषीष्ट, सविषोष्ट । सन्–सुषूपते, कर्म० लट्–सूयते, लुङ–असावि, णिच्–लट् –सावयति-ते, लुङ–असूषवत्–त, क्त–(२) सूत, (४) सून ।

सू—६ प०, प्रेरणे (प्रेरणा देना, उत्तेजित करना), लट्–सुवति, लट्–सविष्यति, लुङ–असावीत् ।

सूच्—१० उ०, पैशुन्ये (चुगली करना, बताना, सकेत करना, धोखा देना, पता लगाना), लट्–सूचयति-ते, लिट्–सूचयाचकार–चक्रे, लुट्–सूचयिता, लुङ–असुसूचत्–त । सन्–सुसूचयिषति-ते, क्त–सूचित ।

सूत्र्—१० उ०, वेष्टने (पिरोना, सूत्ररूप मे लिखना, योजना बनाना), लट्–सूत्रयति-ते, लिट्–सूत्रयामास, लुट्–सूत्रयिता, लुङ–असुसूत्रत्–त ।

सूद्—१ आ०, क्षरणे (चोट मारना, बहाना, जमा करना, नष्ट करना) लट्–सूदते, लिट्–सुषूदे, लुट्–सूदिता, लुङ–असूदिष्ट । सन्–सुषूदिषते, णिच्–लट्–सूदयति-ते, लुङ–असूषुदत्–त ।

सूद्—१० उ०, क्षरणे (उत्तेजित करना, चोट मारना, पकाना, बहाना, प्रतिज्ञा करना), लट्–सूदयति-ते लिट्–सूदयाचकार–चक्रे, लुट्–सूदयिता, लुङ–असूषुदत्–त । क्त–सूदित ।

सूर्क्ष्—१ प०, आदरे (आदर करना, अनादर करना), लट्–सूर्क्षति, लिट्–सुषूर्क्ष, लुट्–सूर्क्षिता, लुङ–असूर्क्षीत् ।

सृ—३ (वैदिक), १ प०, (जाना, दौड़ना), लट्–सर्सात, सरति, (धावति, वह दौड़ता है), लिट्–ससार, लुट्–सर्ता, लुङ्–असरत् (३ पु०), असार्षीत् (१ प०), आ०लिङ्–स्रियात् । सन्–सिसीर्षति, णिच्–लट्–सारयति-ते ।

सृज्—४ आ०, विसर्गे (छोड़ना, भेजना), लट्–सृज्यते, लट्–स्रक्ष्यते, लुङ्–असृष्ट । सन्–सिसृक्षते ।

सृज्—६ प०, विसर्गे (बनाना, उत्पन्न करना, बहाना), लट्–सृजति, लिट्–ससर्ज, लुट्–स्रष्टा, लृट्–स्रक्ष्यति, लुङ्–अस्राक्षीत्, आ० लिङ्–सृज्यात्, सन्–सिसृक्षति, क्त–सृष्ट, तुम्–स्रष्टुम् ।

सृप्—१ प०, गतौ (जाना, रेंगना), लट्–सर्पति, लिट्–ससर्प, लुट्–सर्प्ता, स्रप्ता, लुङ्–असृपत्, आ० लिङ्–सृप्यात् । सन्–सिसृप्सति, णिच् लट्–सर्पयति-ते, लुङ्–असीसृपत्-त, असोसृपत्-त, क्त–सृप्त ।

सृभ्—सृम्भ्–१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना), लट्–सर्भति, सृम्भति, लिट्–ससर्भ, ससृम्भ, लुङ्–असर्भीत्–असृम्भीत् ।

सेक्—१ आ०, (जाना, हिलना), लट्–सेकते, लिट्–सिषेके, लुट्–सेकिता, लुङ्–असेकिष्ट ।

सेल्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–सेलति, लिट्–सिषेल, लुट्–सेलिता, लुङ्–असेलीत् ।

सेव्—१ आ०, सेवने (सेवा करना, आनन्द लेना, संग रहना), लट्–सेवते, लिट्–सिषेवे, लृट्–सेविष्यते, लुङ्–असेविष्ट । सन्–सिसेविषते, णिच् लट्–सेवयति-ते, लुङ्–असिषेवत्-त, क्त–सेवित ।

सै—१ प०, क्षये (नष्ट होना, क्षीण होना), लट्–सायति, लृट्–सास्यति, लुङ्–असासीत् ।

सो—४ प०, अन्तकर्मणि (नष्ट करना, अवसान होना), लट्–स्यति, लिट्–ससौ, लुट्–साता, लुङ्–असात्–असासीत्, आ० लिङ्–सेयात् । सन्–सिषासति, कर्म०–लट्–सीयते, णिच्–लट्–साययति-ते, क्त–सित ।

स्कन्द्—१ प०, गतिशोषणयोः (जाना, कूदना, सूखना, नष्ट होना), लट्–स्कन्दति, लिट्–चस्कन्द, लुट्–स्कन्ता, लुङ्–अस्कन्दत्, अस्कान्त्सीत्, आ० लिङ्–स्कद्यात् । सन्–चिस्कन्त्सति, कर्म० लट्–स्कद्यते, णिच्–लट्–स्कन्दयति-ते, लुङ्–अचस्कन्दत्-त, क्त–स्कन्न ।

स्कन्ध्—१० उ० (एकत्र करना), लट्–स्कन्धयति-ते, लिट्–स्कन्धयाञ्चकार-चक्रे ।

स्कम्भ्—१ आ०, प्रतिबन्धने (रोकना), लट्–स्कम्भते, लिट्–चस्कम्भे, लुङ्–अस्कम्भिष्ट ।

स्कम्भ्—५, ६ प०, रोधनस्तम्भनयो (उत्पन्न करना, विघ्न डालना, रोकना), लट्–स्कम्नोति–स्कम्नाति, लिट्–चस्कम्भ, लुट्–स्कम्भिता, लुङ्–अस्कभत्–अस्कम्भीत्, आ० लिङ्–स्कम्यात् । क्त–स्कब्ध ।

स्कु—५, ६ उ०, आप्रवणे (उछलते हुए जाना, पहुँचना, ढकना, उठाना), लट्–स्कुनोति, स्कुनुते, स्कुनाति स्कुनीते, लिट्–चुस्काव, चुस्कुवे, लुट्–स्कोता लुङ्–अस्कौषीत्, अस्कोष्ट । सन्–चुस्कूषति ।

स्कुन्द्—१ आ०, आप्रवणे (कूदना, उठाना), लट्–स्कुन्दते, लिट्–चुस्कुन्दे, लुङ–अस्कुन्दिष्ट ।

स्कुम्भ्—५, ६ प०, रोधने धारणे च (रोकना, पकड़ना), लट्–स्कुम्नोति, स्कुम्नाति, लुङ–अस्कुम्भीत् ।

स्खद्—१ आ०, विद्रावणे (भगाना, काटना, नष्ट करना), लट्–स्खदते, लिट्–चस्खदे, लृट्–स्खदिष्यते, लुङ्–अस्खदिष्ट ।

स्खल्—१ प०, सञ्चलने (हिलना, त्रुटि करना, लड़खड़ाना), लट्–स्खलति, लिट्–चस्खाल, लुट्–स्खलिता, लुङ्–अस्खालीत् । सन्–चिस्खलिषति, क्त–स्खलित ।

स्तक्—१ प०, प्रतिघाते (रोकना, चोट मारना), लट्–स्तकति, लिट्–तस्ताक, लुट्–स्तकिता, लुङ्–अस्ताकीत् ।

स्तग्—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–स्तगति, लृट्–स्तगिष्यति, लुङ्–अस्तगीत् ।

स्तन्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, गरजना, साँस लेना), लट्–स्तनति, लिट्–तस्तान, लुट्–स्तनिता, लुङ्–अस्तनीत्–अस्तानीत् । सन्–तिस्तनिषति, णिच्–लट्–स्तनयति-ते ।

स्तन्—१० उ०, देवशब्दे (बादल गरजना), लट्–स्तनयति-ते, लिट्–स्तनयाञ्चकार–चक्रे, लुङ्–अतस्तनत्–त ।

स्तम्—१ प०, अवैक्लव्ये (व्याकुल न होना), लट्–स्तमति, लिट्–तस्ताम, लुङ्–अस्तमीत् ।

स्तम्भ्—१ आ०, प्रतिबन्धने (रोकना, अचल बनाना, सहारा देना), लट्–स्तम्भते, लिट्–तस्तम्भे, लुट्–स्तम्भिता, लुङ्–अस्तम्भिष्ट । सन्–तिस्तम्भिषते ।

स्तम्भ्—५, ६ प०, रोधन धारणे च (रोकना, जमाना, सहारा देना), लट्–स्तभ्नोति, स्तभ्नाति, लिट्–तस्तम्भ, लुट्–स्तम्भिता, लुङ्–अस्तम्भत्, अस्तम्भीत्, आ० लिङ्–स्तभ्यात् । सन्–तिस्तम्भिषति, कर्म० लट्–स्तभ्यते, णिच्–लट्–स्तम्भयति-ते, क्त–स्तब्ध, क्त्वा–स्तम्भित्वा, स्तब्ध्वा ।

स्तिप्—१ आ०, क्षरणे (चूना, टपकना), लट्–स्तेपते, लिट्–तिष्टिपे, लुङ्–अस्तेपिष्ट । सन्–तिस्तिपिषते, तिस्तेपिषते ।

स्तिम्-स्तीम्—४ प०, आर्द्रीभावे (गीला होना, स्थिर होना), लट्-स्तिम्यति, स्तीम्यति, लिट्-तिष्टेम, तिष्टीम, लृट्-स्तेमिष्यति, स्तीमिष्यति, लुङ्-अस्तेमीत्, अस्तीमीत् ।

स्तु—२ उ०, स्तुतौ (प्रशंसा करना, स्तुति करना, मन्त्रों से स्तुति करना), लट्-स्तौति, स्तवीति, स्तुते-स्तुवीते, लिट्-तुष्टाव, तुष्टुवे, लुट्-स्तोता, लृट्-स्तोष्यति-ते, लुङ्-अस्तावीत्-अस्तोष्ट, आ० लिङ्-स्तूयात्-स्तोषीष्ट । सन्-तुष्टूषति-ते, कर्म० लट्-स्तूयते, लुङ्-अस्तावि, णिच्-लट्-स्तावयति-ते, लुङ्-अतुष्टवत्-त, क्त-स्तुत ।

स्तुभ्—१ आ०, स्तम्भे (रोकना, दबाना), लट्-स्तोभते, लिट्-तुष्टुभे, लुङ्-अस्तोभिष्ट । क्त्वा-स्तुभित्वा, स्तुब्ध्वा ।

स्तुम्भ्—५, ६ प०, रोधने धारणे च (रोकना, निकालना, धारण करना), लट्-स्तुम्नोति, स्तुम्नाति, लिट्-तुष्टुम्भ, लुङ्-अस्तुम्भीत् ।

स्तूप्-४ प०, १० उ०, समुच्छ्राये (इकट्ठा करना, स्तूप आदि खड़ा करना), लट्-स्तूप्यति, स्तूपयति-ते, लिट्-तुष्टूप स्तूपयाचकार-चक्रे, लुङ्-अस्तूपीत्, अतुष्टुपत्-त ।

स्तृ—५ उ०, आच्छादने (ढकना), लट्-स्तृणोति, स्तृणुते, लिट्-तस्तार-तस्तरे, लुट्-स्तर्ता, लुङ्-अस्तार्षीत्-अस्तरिष्ट अस्तृत, आ० लिङ्-स्तर्यात्, स्तृषीष्ट, स्तरिषीष्ट । सन्-तिस्तीर्षति-ते, कर्म० लट्-स्तर्यते णिच्-लट्-स्तारयति-ते ।

स्तृक्ष्—१ प० (जाना, हिलना) लट्-स्तृक्षति, लिट्-तस्तृक्ष, लुङ्-अस्तृक्षीत् ।

स्तृह्—६ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना) लट्-स्तृहति, लिट्-तस्तर्ह, लुट्-स्तर्हिता, स्तर्ढा, लुङ्-अस्तर्हीत्, अस्तृक्षत् । सन्-तिस्तृहिषति-तिस्तृक्षति, णिच्-लट्-स्तर्हयति-ते, लुङ्-अतस्तर्हत्-त अतिस्तृहत्-त ।

स्तॄ—६ उ०, आस्तरणे (फैलाना, ढकना), लट्-स्तृणाति, स्तृणीते, लिट्-तस्तार, तस्तरे, लुट्-स्तरिता, स्तरीता, लुङ्-अस्तारीत्, अस्तरिष्ट, अस्तरीष्ट, अस्तीर्ष्ट, आ०, लिङ्-स्तीर्यात्, स्तरिषीष्ट-स्तीर्षीष्ट । कर्म० लट्-स्तीर्यते । सन्-तिस्तरिषति-ते ।

स्तेन्—१० उ०, चौर्ये (चुराना), लट्-स्तेनयति-ते, लिट्-स्तेनयाचकार-चक्रे, लुङ्-अतिस्तेनत्-त ।

स्तेप्—१ आ०, क्षरणे (चूना, टपकना), लट्-स्तेपते, लिट्-तिष्टेपे लुट्-स्तेपिता, लुङ्-अस्तेपिष्ट ।

स्तै—१ प०, वेष्टने (ढकना, पहनना, सजाना), लट्-स्तायति, लिट्-तस्तौ, लुङ्-अस्तासीत् ।

स्त्यै—१ प०, शब्दसंघातयो: (शब्द करना, ढेर बनाना, फैलाना), लट्–स्त्यायति, लिट्–तस्त्यौ, लुट्–स्त्याता, लुङ–अस्त्यासीत्, आ० लिङ–स्त्यायात्, स्त्येयात् । सन्–तिस्त्यासति, णिच्–लट्–स्त्यापयति-ते ।

स्थग्—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–स्थगति, लिट्–तस्थाग, लुट्–स्थगिता, लुङ–अस्थगीत् । सन्–तिस्थगिषति, णिच्–लट्–स्थगयति-ते, लुङ–अतिष्ठगत्–त ।

स्थल्—१ प०, स्थाने (स्थिर होकर खड़ा होना), लट्–स्थलति, लिट्–तस्थाल, लृट्–स्थलिष्यति, लुङ–अस्थालीत् ।

स्था—१ प०, गतिनिवृत्तौ (रुकना, प्रतीक्षा करना, होना, पास रहना), लट्–तिष्ठति, लिट्–तस्थौ, लुट्–स्थाता, लुङ–अस्थात्, आ०, लिङ–स्थेयात् । सन्–तिष्ठासति, कर्म० लट्–स्थीयते, लुङ–अस्थायि, णिच्–लट्–स्थापयति, लुङ–अतिष्ठिपत्–त, क्त–स्थित, क्त्वा–स्थित्वा ।

स्थुड्—१ प०, संवरणे (ढकना), लट्–स्थुडति, लिट्–तुस्थोड, लृट्–स्थुडिष्यति, लुङ–अस्थुडीत् ।

स्थूल्—(नामधातु)–(मोटा होना), लट्–स्थूलयति, लुङ–अतुस्थूलत् ।

स्नस्—४ प०, निरसने (निकालना), लट्–स्नस्यति, लिट्–सस्नास, लुङ–अस्नसीत्, अस्नासीत् ।

स्ना—२ प०, शौचे (नहाना), लट्–स्नाति, लिट्–सस्नौ, लुट्–स्नाता, लुङ–अस्नासीत्, आ० लिङ–स्नायात्, स्नेयात् । सन्–सिस्नासति, कर्म०–लट्–स्नायते, लुङ–अस्नायि, क्त–स्नात, (निष्णात, दक्ष या चतुर), णिच् लट्–स्नपयति–स्नापयति ।

स्निह्—४ प०, स्नेहे (स्नेह करना, दयालु होना), लट्–स्निह्यति, लिट्–सिष्णेह, लुट्–स्नेहिता, स्नेग्धा, स्नेढा, लुङ–अस्निहत् । सन्–सिस्निक्षति, सिस्निहिषति, सिस्नेहिषति, क्त–स्निग्ध–स्नीढ, क्त्वा, स्निहित्वा, स्नेहित्वा, स्निग्ध्वा, स्नीढ्वा ।

स्निह्—१० उ०, स्नेहे (प्रेम करना), लट्–स्नेहयति-ते, लुङ–असिष्णिहत्, क्त–स्नेहित ।

स्नु—२ प०, (बहना, रस निकालना) लट्–स्नौति, लिट्–सुष्णाव, लुट्–स्नविता, लुङ–अस्नावीत्, आ० लिङ–स्नूयात्, कर्म०–लट्–स्नूयते, णिच्–लट्–स्नावयति-ते, लुङ–असुष्णवत्–त, क्त–स्नुत ।

स्नुह्—४ प०, उद्गिरणे (उगलना), लट्–स्नुह्यति, लिट्–सुष्णोह, लुट्–स्नोहिता, स्नोग्धा, स्नोढा, लृट्–स्नोहिष्यति, स्नोक्ष्यति, लुङ–अस्नुहत्, क्त–स्नुग्ध, स्नूढ ।

स्नै—१ प०, वेष्टने (शोभायामित्येके, शौच इत्यन्ये) (सजाना, लपेटना), लट्–स्नायति, लिट्–सस्नौ, लुङ–अस्नासीत् ।

स्पन्द्—१ आ०, किञ्चिच्चलने (फडकना, जाना), लट्—स्पन्दते, लिट्—
पस्पन्दे, लुट्—स्पन्दिता, लुङ्—अस्पन्दिष्ट । सन्—पिस्पन्दिषति, णिच्—लट्—
स्पन्दयति, लुङ्—अपस्पन्दत्, क्त—स्पन्दित ।

स्पर्ध्—१ आ०, सघर्षे (स्पर्धा करना, सन्तुष्ट रहना), लट्—स्पर्धते,
लिट्—पस्पर्धे, लुट्—स्पर्धिता, लुङ्—अस्पर्धिष्ट, सन्—पिस्पर्धिषते ।
स्पश्—१० आ०, (छूना, लेना), लट्—स्पशयते, लिट्—स्पशयांचक्रे—आदि,
लुट्—स्पशयिता, लुङ्—अपस्पशत ।
स्पश्—१ उ०, बाधनस्पर्शनयो (विघ्न डालना, छूना, दूत का काम
करना), लट्—स्पशति–ते, लिट्—पस्पाश, पस्पशे, लुङ्—अस्पशीत्, अस्पाशीत्,
अस्पशिष्ट ।

स्पश्—१० आ०, ग्रहणसश्लेषणयो (लेना, आलिंगन करना), लट्—
स्पाशयते, लुङ्—अपिस्पशत ।
स्पृ—५ उ०, (प्रशसा करना, रक्षा करना), लट्—स्पृणोति, लिट्—पस्पार
(वैदिक) ।

स्पृश्—६ प०, सस्पर्शने (छूना, सपर्क मे आना), लट्—स्पृशति, लिट्—
पस्पर्श, लुट्—स्पर्ष्टा, स्प्रष्टा, लुङ्—अस्प्राक्षीत्, अस्पार्क्षीत्, अस्पृक्षत्, आ० लिङ्—
स्पृश्यात् । सन्—पिस्पृक्षति, णिच्—लट्—स्पर्शयति–ते, क्त—स्पृष्ट, तुमुन्—स्प-
र्ष्टुम्, स्प्रष्टुम् ।
स्पृह्—१० उ०, ईप्सायाम् (चाहना, ईर्ष्या करना), लट्—स्पृहयति–ते,
लिट्—स्पृहयाचकार–चक्रे, लुट्—स्पृहयिता, लुङ्—अपिस्पृहत्–त । कर्म० लट्—
स्पृह्यते, सन्—पिस्पृहयिषति–ते, क्त—स्पृहित ।
स्पृ—९ प०, (मारना, चोट पहुँचाना), लट्—स्पृणाति, लिट्—पस्पार ।
स्फर्—६ प०, (कुटादि) सचलने (फडकना, काँपना), लट्—स्फरति,
लिट्—पस्फार, लुङ्—अस्फारीत् ।
स्फाय्—१ आ०, वृद्धौ (बढ़ना, मोटा होना), लट्—स्फायते, लिट्—पस्फाये,
लुट्—स्फायिता, लुङ्—अस्फायिष्ट । णिच्—लट्—स्फावयति–ते, लुङ्—अपिस्फवत्–
त, सन्—पिस्फायिषते, क्त—स्फीत ।
स्फिट्—१० उ०, स्नेहने (प्रेम करना), लट्—स्फेटयति–ते, लिट्—स्फेट-
याञ्चकार–चक्रे, लुङ्—अपिस्फिटत्–त ।
स्फिट्ट्—१० उ०, हिंसायाम् (मारना), लट्—स्फिट्टयति–ते, लुङ्—अपि-
स्फिट्टत्–त ।
स्फुट्—१ आ०, विकसने (खिलना, विकसित होना), प०, विशरणे–
(फटना), लट्—स्फोटति–ते, लिट्—पुस्फोट–पुस्फुटे, लुङ्—अस्फुटत्–अस्फोटीत्–
अस्फोटिष्ट । सन्—पुस्फुटिषति, पुस्फुटिषते–पुस्फोटिषते, णिच्—लट्—स्फोटयति–
ते, लुङ्—अपुस्फुटत्–त, क्त—स्फुटित, स्फोटित ।

स्फुट्—६ प०, (कुटादि) विकसने (फट जाना, फूल खिलना), लट्—स्फुटति, लिट्—पुस्फोट (म० पु० एक० पुस्फुटिथ), लुट्—स्फुटिता, लुङ्—अस्फुटीत्। सन्—पुस्फुटिषति, क्त—स्फुटित ।

स्फुट्—१० उ०, भेदने (खुल जाना), लट्—स्फोटयति-ने, लिट्—स्फोटयाचकार—चक्रे, लुङ्—अपुस्फुटत्—त । सन्—पुस्फोटयिषति-ने

स्फुड्—६ प०, सवरणे—(कुटादि) (ढकना), लट्—स्फुडति, लिट्—पुस्फोड (म० पु० एक० पुस्फुडिथ), लुङ्—अस्फुडीत् ।

स्फुण्ट्—१ प०, परिहासे (हँसी करना), लट्—स्फुण्टति, लिट्—पुस्फुण्ट, लृट्—स्फुण्टिष्यति, लुङ्—अस्फुण्टीत् ।

स्फुण्ट्—१० उ०, (हँसी करना, मजाक उडाना), लट्—स्फुण्टयति-ते, लुङ्—अपुस्फुण्टत्—त ।

स्फुण्ड्—१ प०, १० उ०, (स्फुण्ट् के तुल्य) ।

स्फुर्—६ प०, स्फुरणे—(कुटादि) (फडकना, कांपना, चमकना), लट्—स्फुरति, लिट्—पुस्फोर, लुट्—स्फुरिता, लुङ्—अस्फुरीत्। क्त—स्फुरित, णिच्—लट्—स्फोरयति—स्फारयति ।

स्फुर्च्छ्—१ प०, विस्तृतौ (फैलाना), लट्—स्फूर्च्छति, लिट्—पुस्फूर्च्छ, लुङ्—अस्फूर्च्छीत् । क्त—स्फूर्च्छित, स्फूर्ण ।

स्फुल्—१ प०, सञ्चलने (कुटादि) (कांपना, इकट्ठा करना, मारना), लट्—स्फुलति, लिट्—पुस्फोल, (म० पु० एक० पुस्फुलिथ), लुङ्—अस्फुलीत् ।

स्फूर्ज्—१ प०, वज्रनिर्घोषे (बिजली का गडगडाना, चमकना), लट्—स्फूर्जति, लिट्—पुस्फूर्ज, लुट्—स्फूर्जिता, लुङ्—अस्फूर्जीत् । सन्—पुस्फूर्जिषति, णिच् लट्—स्फूर्जयति-ने, लुङ्—अपुस्फूर्जत्—त, क्त—स्फूर्जित—स्फूर्ण ।

स्मि—१ आ०, ईषद्धसने (मुस्कराना, खिलना), लट्—स्मयते, लिट्—सिष्मिये, लुट्—स्मेता, लुङ्—अस्मेष्ट । सन्—सिस्मयिषते, णिच्—लट्—स्माययति-ते, स्मापयते ।

स्मिट्—१० उ०, अनादरे (अनादर करना, प्रेम करना, जाना), लट्—स्मेटयति-ने, लिट्—स्मेटयाचकार—चक्रे, लुट्—स्मेटयिता, लुङ्—असिस्मिटत्—त ।

स्मील्—१ प०, निमेषणे (पलक मारना), लट्—स्मीलति, लिट्—सिस्मील।

स्मृ—१ प०, चिन्तायाम् (स्मरण करना), आध्याने (ध्यान करना, चाहना), लट्—स्मरति, लिट्—सस्मार, लुट्—स्मर्ता, लुङ्—अस्मार्षीत् । सन्—सुस्मूर्षति, णिच्—लट्—स्मारयति-ने, स्मरयति-ने (आध्याने) । कर्म० लट्—स्मर्यते, लुङ्—अस्मारि—अस्मरि, क्त—स्मृत ।

स्मृ—५ प०, (जीवित रहना, प्रसन्न करना), लट्—स्मृणोति, लिट्—सस्मार । णिच्—स्मारयति-ने ।

,
स्पन्द्—१ आ०, प्रस्रवणे (बहना, टपकना, दौड़ना), लट्—स्यन्दते, लुट्—
स्यन्दिता, स्यन्ता, लृट्—स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यति-ते, लुङ्—अस्यन्दत्—अस्य-
न्दिष्ट, अस्यन्त, आ० लिङ्—स्यन्दिषीष्ट, स्यन्त्सीष्ट । सन्—सिस्यन्दिषते,
सिस्यन्त्सति-ते, क्त—स्यन्न क्त्वा—स्यन्दित्वा, स्यन्त्वा, णिच्—लट्—स्यन्दयति-ते ।

स्यम्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, जाना, सोचना), लट्—स्यमति, लिट्—
सस्याम, लुट्—स्यमिता, लुङ्—अस्यमीत् । सन्—सिस्यमिषति, क्त—स्यान्त, क्त्वा—
स्यमित्वा, स्यान्त्वा ।

स्यम्—१० आ०, वितर्के (चिन्तन करना), लट्—स्यामयते, लिट्—स्याम-
याचक्रे, लुट्—स्यामयिता, लुङ्—असिस्यमत् ।

स्रंस—१ आ०, अवस्रंसने (सरकना, गिरना, लटकना, जाना, प्रसन्न होना),
लट्—स्रंसते, लिट्—सस्रंसे, लुट्—स्रंसिता, लुङ्—अस्रंसिष्ट, अस्रसत्, आ० लिङ्—
स्रंसिषीष्ट, सन्—सिस्रंसिषते, कर्म०—लट्—स्रस्यते, लुङ्—अस्रंसि, क्त—स्रस्त,
क्त्वा—स्रंसित्वा ।

स्रंह्—१ आ०, (विश्वास करना), लट्—स्रंहते, लिट्—सस्रंहे, लुट्—स्रंहिता,
लुङ्—अस्रंहिष्ट ।

स्रङ्क्—१ आ०, गतौ (जाना), लट्—स्रङ्कते, लिट्—सस्रङ्के लुङ्—अस्र-
ङ्किष्ट ।

स्रम्भ्—१ आ०, विश्वासे (विश्राम करना), लट्—स्रम्भते, लिट्—सस्रम्भे,
लुट्—स्रम्भिता, लुङ्—अस्रभत्—अस्रम्भिष्ट । णिच्—लट्—स्रम्भयति-ते, लुङ्—
असस्रम्भत्-त, सन्—सिस्रम्भिषते, क्त—स्रब्ध, क्त्वा—स्रम्भित्वा, स्रब्ध्वा ।

स्रिव्—४ प०, गतिशोषणयोः (जाना, सूखना), लट्—स्रीव्यति, लिट्—
सिस्रेव, लृट्—स्रेविष्यति, लुङ्—अस्रेवीत् । णिच्—लट्—स्रेवयति-ते, असिस्रिवत्-त,
सन्—सिस्रेविषति, सुस्रयूषति, कर्म० लट्—स्रीव्यते, लुङ्—अस्रेवि, क्त—स्यूत ।

स्रु—१ प०, (बहना, टपकना, जाना), लट्—स्रवति, लिट्—सुस्राव, लुट्—
स्रोता, लुङ्—असुस्रुवत्, आ० लिङ्—स्रूयात् । णिच्—लट्—स्रावयति, लुङ्—असु-
स्रवत्, असिस्रवत्, सन्—सुस्रूषति, क्त—स्रुत ।

स्रेक्—१ आ०, (जाना), लट्—स्रेकते, लुट्—स्रेकिष्यते, लुङ्—अस्रेकिष्ट ।

स्रै—१ प०, (उबालना, गर्म करना), लट्—स्रायति, लिट्—सस्रौ । (श्रै-
श्रै के तुल्य) ।

स्वञ्ज्—१ आ०, परिष्वङ्गे (आलिंगन करना), लट्—स्वजते, लिट्—
सस्वञ्जे, सस्वजे, लुट्—स्वङ्क्ता, लृट्—स्वङ्क्ष्यते, लुङ्—अस्वङ्क्त, आ० लिङ्—
स्वङ्क्षीष्ट । सन्—सिस्वङ्क्षते, कर्म० लट्—स्वज्यते, लुङ्—अस्वञ्जि । णिच्—
लट्—स्वञ्जयति-ते, लुङ्—असस्वञ्जत्-त, क्त—स्वक्त, क्त्वा—स्वङ्क्त्वा,
स्वक्त्वा ।

स्वद्—१ आ०, आस्वादने (स्वादिष्ट होना, स्वाद लेना), लट्–स्वदते, लिट्–सस्वदे, लुट्–स्वदिता, लुङ–अस्वदिष्ट । णिच्–लट्–स्वादयति-ते, लुङ–असिस्वदत्–त, सन्–सिस्वदिषते, क्त–स्वदित ।

स्वद्—१० उ०, (स्वादिष्ट बनाना), लट्–स्वादयति-ते, लिट्–स्वादयाचकार–चक्रे, लुट्–स्वादयिता, लुङ–असिस्वदत्–त ।

स्वन्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, हल्ला करना, गाना), लट्–स्वनति, लिट्–सस्वान, लुट्–स्वनिता, लुङ–अस्वनीत्–अस्वानीत् । णिच्–लट्–स्वानयति-ते, लुङ–असिस्वनत्–त, सन्–सिस्वनिषते, क्त–स्वनित, स्वान्त ।

स्वन्—१ प०, अवतंसने (सजाना) पूर्ववत् । णिच्–लट्–स्वनयति-ते, कर्म० लट्–स्वन्यते, लुङ–अस्वनि अस्वानि, ।

स्वप्—२ प०, शयने (सोना) लट्–स्वपिति, लङ–अस्वपीत्–अस्वपत्, लिट्–सुष्वाप, लुट्–स्वप्ता, लुङ–अस्वाप्सीत्, आ० लिङ–सुप्यात् । सन्–सुषुप्सति, णिच्–लट्–स्वापयति-ते, लुङ–असिष्वपत्–त, कर्म० लट्–सुप्यते, क्त–सुप्त ।

स्वर्—१० उ, आक्षेपे (दोष निकालना, निन्दा करना), लट्–स्वरयति-ते, लिट्–स्वरयाचकार–चक्रे, लुट्–स्वरयिता, लुङ–असस्वरत्, आ० लिङ–स्वर्यात्–स्वरयिषीष्ट । सन्–सिस्वरयिषति-ते ।

स्वर्द—१ आ०, आस्वादने (चखना), लट्–स्वर्दते, लिट्–सस्वर्दे, लुट्–स्वर्दिता, लुङ–अस्वर्दिष्ट । सन्–सिस्वर्दिषते ।

स्वल्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्–स्वलति, लिट्–सस्वाल ।

स्वस्क्—१ आ०, (जाना), लट्–स्वस्कते, लिट्–सस्वस्के ।

स्वाद्—१ आ०, आस्वादने (देखो स्वद् धातु) (स्वाद लेना, स्वादिष्ट होना), लट्–स्वादते, लिट्–सस्वादे, लृट्–स्वादिष्यते, लुङ–अस्वादिष्ट । सन्–सिस्वादिषते ।

स्वाद्—१० उ०, आस्वादने (चखना), लट्–स्वादयति-ते, लुङ–असिस्वदत्–त । सन्–सिस्वादयिषति-ते, क्त–स्वादित ।

स्विद्—१ आ०, (स्नेहनमोचनयो, स्नेहनमोहनयोरित्येके), (चिकना होना, तेलयुक्त होना), लट्–स्वेदते, लिट्–सिस्विदे, लृट्–स्वेदिष्यते, लुङ–अस्विदत्–अस्वेदि । णिच्–लट्–स्वेदयति-ते, सन्–सिस्विदिषते, सिस्वेदिषते, क्त–स्विन्न, स्विदित, स्वेदित ।

स्विद्—४ प०, गात्रप्रक्षरणे (पसीना बहना), लट्–स्विद्यति, लिट्–सिष्वेद, लुट्–स्वेत्ता, लुङ–अस्विदत् । क्त–स्विन्न ।

स्वुर्च्छ्—१ प०, (फैलाना, भूलना), लट्–स्वूर्च्छति ।

स्वृ—१ प०, शब्दोपतापयो (शब्द करना, प्रशंसा करना, जाना, दु खित होना), लट्–स्वरति, लिट्–सस्वार, लुट्–स्वरिता, स्वर्ता, लुङ–प्रस्वारीत्–प्रस्वार्षीत्, प्रा० लिङ–स्वर्यात् । सन्–सिस्वरिपति, सुस्वूर्षति, णिच्–लट्–स्वारयति-ने, लुङ–प्रसिस्वरत्–त, क्त–स्वृत ।

स्वृ—६ प०, (हिंसा करना, दु ख पहुँचाना), लट्–स्वृणाति, लिट्–सस्वार ।

स्वेक्—१ प्रा०, (जाना), लट्–स्वेकते, लिट्–सिस्वेके ।

ह

हट्—१ प०, दोप्तौ (चमकना, चमकीला होना), लट्–हटति, लिट्–जहाट, लुट्–हटिता, लुङ–प्रहटीत्–प्रहाटीत्, क्त–हटित ।

हठ्—१ प०, प्लुतिशठत्वयो (कूदना, उछलना, खमे से बांधना, दु ख देना), लट्–हठति, लिट्–जहाठ, लुङ–प्रहठीत्–प्रहाठीत् ।

हद्—१ प्रा०, पुरीपोत्सर्ग (शौच करना), लट्–हदते, लिट्–जहदे, लुट्–हत्ता, लुङ–प्रहत्त । सन्–जिहत्सते, क्त–हन्न ।

हन्—२ प०, (हिंसा करना, मारना, तपाना, जोतना आदि), लट्–हन्ति, लङ–प्रहन् (बहु० प्रघ्नन्), लिट्–जघान, लुट्–हन्ता, लुङ–प्रवधीत्–प्राहत (प्रा+हन्)–प्रवधिष्ट, प्रा० लिङ–वध्यात् । सन्–जिघांसति, कर्म० लट्–हन्यते, लुङ–प्रघानि, प्रवधि, णिच् लट्–घातयति-ने, लुङ–प्रजीघनत्–त, यङ–जेघ्नीयते, जघन्यते, जघनीति, जघन्ति, क्त–हत, क्त्वा–हत्वा ।

हम्म्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–हम्मति, लिट्–जहम्म, लुट्–हम्मिता, लुङ–प्रहम्मीत् ।

हय्—१ प०, (जाना, पूजा करना, शब्द करना, दु खित होना), लट्–हयति, लिट्–जहाय, लुट्–हयिता, लुङ–प्रहयीत् । क्त–हयित ।

हर्य्—१ प०, गतिकान्त्यो (जाना, पूजा करना, लेना), लट्–हर्यति, लिट्–जहर्य, लुङ–प्रहर्यीत्, सन्–जिहर्यिपति ।

हल्—१ प०, विलिखने गतौ च (हल चलाना, जाना), लट्–हलति, लिट्–जहाल, लुङ–प्रहालीत । सन्–जिहलिपति ।

स्वद्—१ आ०, आस्वादने (स्वादिष्ट होना, स्वाद लेना), लट्—स्वदते, लिट्—सस्वदे, लुट्—स्वदिता, लुङ—अस्वदिष्ट । णिच्—लट्—स्वादयति-ते, लुङ—असिस्वदत्—त, सन्—सिस्वदिषते, क्त—स्वदित ।

स्वद्—१० उ०, (स्वादिष्ट बनाना), लट्—स्वादयति-ते, लिट्—स्वादयाचकार—चक्रे, लुट्—स्वादयिता, लुङ—असिस्वदत्—त ।

स्वन्—१ प०, शब्दे (शब्द करना, हल्ला करना, गाना), लट्—स्वनति, लिट्—सस्वान, लट्—स्वनिता, लुङ—अस्वनीत्—अस्वानीत् । णिच्—लट्—स्वानयति-ते, लुङ—असिस्वनत्—त, सन्—सिस्वनिषते, क्त—स्वनित, स्वान्त ।

स्वन्—१ प०, अवतसने (सजाना) पूर्ववत् । णिच्—लट्—स्वनयति-ते, कर्म० लट्—स्वन्यते, लुङ—अस्वनि अस्वानि, ।

स्वप्—२ प०, शयने (सोना) लट्—स्वपिति, लङ—अस्वपीत्—अस्वपत्, लिट्—सुष्वाप, लुट्—स्वप्ता, लुङ—अस्वाप्सीत्, आ० लिङ—सुप्यात् । सन्—सुषुप्सति, णिच्—लट्—स्वापयति-ते, लुङ—असिष्वपत्—त, कर्म० लट्—सुप्यते, क्त—सुप्त ।

स्वर्—१० उ, आक्षेपे (दोष निकालना, निन्दा करना), लट्—स्वरयति-ते, लिट्—स्वरयाचकार—चक्रे, लुट्—स्वरयिता, लुङ—असस्वरत्, आ० लिङ—स्वर्यात्—स्वरयिषीष्ट । सन्—सिस्वरयिषति-ते ।

स्वर्द—१ आ०, आस्वादने (चखना), लट्—स्वर्दते, लिट्—सस्वर्दे, लुट्—स्वर्दिता, लुङ—अस्वर्दिष्ट । सन्—सिस्वर्दिषते ।

स्वल्—१ प०, (जाना, हिलना), लट्—स्वलति, लिट्—सस्वाल ।

स्वस्क्—१ आ०, (जाना), लट्—स्वस्कते, लिट्—सस्वस्के ।

स्वाद्—१ आ०, आस्वादने (देखो स्वद् धातु) (स्वाद लेना, स्वादिष्ट होना), लट्—स्वादते, लिट्—सस्वादे, लृट्—स्वादिष्यते, लुङ—अस्वादिष्ट । सन्—सिस्वादिषते ।

स्वाद्—१० उ०, आस्वादने (चखना), लट्—स्वादयति-ते, लुङ—असिस्वदत्—त । सन्—सिस्वादयिषति-ते, क्त—स्वादित ।

स्विद्—१ आ०, (स्नेहनमोचनयो, स्नेहनमोहनयोरित्येके), (चिकना होना, बेचैन होना), लट्—स्वेदते, लिट्—सिष्विदे, लृट्—स्वेदिष्यते, लुङ—अस्विदत्—अस्वेदि । णिच्—लट्—स्वेदयति-ते, सन्—सिस्विदिषते, सिस्वेदिषते, क्त—स्विन्न, स्विदित, स्वेदित ।

स्विद्—४ प०, गात्रप्रक्षरणे (पसीना बहना), लट्—स्विद्यति, लिट्—सिष्वेद, लुट्—स्वेत्ता, लुङ—अस्विदत् । क्त—स्विन्न ।

स्वूर्छ्—१ प०, (फैलाना, भूलना), लट्—स्वूर्छति ।

स्वृ—१ प०, शब्दोपतापयो (शब्द करना, प्रशंसा करना, जाना, दु खित होना), लट्–स्वरति, लिट्–सस्वार, लुट्–स्वरिता, स्वर्ता, लुङ–अस्वारीत्–अस्वार्षीत्, आ० लिङ–स्वर्यात् । सन्–सिस्वरिषति, सुस्वूर्षति, णिच्–लट्–स्वारयति-ते, लुङ–असिस्वरत–त, क्त–स्वृत ।

स्वृ—९ प०, (हिंसा करना, दु ख पहुँचाना), लट्–स्वृणाति, लिट्–सस्वार ।

स्वेक्—१ आ०, (जाना), लट्–स्वेकते, लिट्–सिस्वेके ।

ह

हट्—१ प०, दीप्तौ (चमकना, चमकीला होना), लट्–हटति, लिट्–जहाट, लुट्–हटिता, लुङ–अहटीत्–अहाटीत्, क्त–हटित ।

हठ्—१ प०, प्लुतिशठत्वयो (कूदना, उछलना, खभे से बाँधना, दु ख देना), लट्–हठति, लिट्–जहाठ, लुङ–अहठीत्–अहाठीत् ।

हद्—१ आ०, पुरीषोत्सर्गे (शौच करना), लट्–हदते, लिट्–जहदे, लुट्–हत्ता, लुङ–अहत्त । सन्–जिहत्सते, क्त–हन्न ।

हन्—२ प०, (हिंसा करना, मारना, तपाना, जोतना आदि), लट्–हन्ति, लङ–अहन् (बहु० अघ्नन्), लिट्–जघान, लुट्–हन्ता, लुङ–अवधीत्–आहत (आ+हन्)–अवधिष्ट, आ० लिङ–वध्यात् । सन्–जिघांसति, कर्म० लट्–हन्यते, लुङ–अघानि, अवधि, णिच् लट्–घातयति-ते, लुङ–अजीघनत्–त, यङ–जेघ्नीयते, जघन्यते, जघनीति, जघन्ति, क्त–हत, क्त्वा–हत्वा ।

हम्म्—१ प०, गतौ (जाना), लट्–हम्मति, लिट्–जहम्म, लृट्–हम्मिष्यति, लुङ–अहम्मीत् ।

हय्—१ प०, (जाना, पूजा करना, शब्द करना, दु खित होना), लट्–हयति, लिट्–जहाय, लुट्–हयिता, लुङ–अहयीत् । क्त–हयित ।

हर्य्—१ प०, गतिकान्त्यो (जाना, पूजा करना, लेना), लट्–हर्यति, लिट्–जहर्य, लुङ–अहर्यीत्, सन्–जिहर्यिषति ।

हल्—१ प०, विलिखने गतौ च (हल चलाना, जाना), लट्–हलति, लिट्–जहाल, लुङ–अहालीत् । सन्–जिहलिषति ।

हस्—१ प०, हसने (हँसना, मुस्कराना, मजाक उड़ाना, खिलना), लट्–हसति, लिट–जहास, लुट्–हसिता, लुङ–अहसीत् । कर्म० लट्–हस्यते, णिच्–लट्–हासयति-ते, लुङ–अजीहसत्–त, सन्–जिहसिषति, क्त–हसित ।

हा—३ आ०, (जाना, पाना), लट्–जिहीते, लिट्–जहे लुट्–हाता, लट्–हास्यते, आ० लिङ–हासीष्ट, लुङ–अहास्त । सन्–जिहासते, कर्म० लट्–हायते, लुङ–अहायि, क्त–हान ।

हा—३ प०, त्यागे (छोड़ना, त्यागपत्र देना, गिरने देना), लट्–जहाति, लिट–जहौ, लुट्–हाता, लुङ–अहासीत्, आ० लिङ–हेयात् । सन्–जिहासति ।

कर्म०–लट्–हीयते, लुङ–अहायि। णिच् लट्–हापयति-ने, लुङ–अजीहपत्–त। क्त–हीन, क्त्वा–हित्वा।

हि—५ प०, गतौ (जाना, भेजना, उठाना), लट्–हिनोति, लिट्–जिघाय, लुट्–हेता, लुङ–अहैषीत्, आ० लिङ–हीयात्। सन्–जिहीषति णिच्-लट्–हाय-यति-ते, लुङ–अजीहयत्-त, कर्म० लट्–हीयते, लुङ–अहायि, क्त–हित।

हिस्—१ प०, हिंसायाम् (मारना, चोट पहुँचाना, दुःख देना), लट्–हिंसति, लिट्–जिहिंस, लुट्–हिंसिता, लुङ–अहिंसीत्। कर्म० लट्–हिंस्यते, लुङ–अहिंसि, सन्–जिहिंसिषति, क्त–हिंसित।

हिंस्—७ प०, (मारना), लट्–हिनस्ति, लुङ–अहिनत्–द्, लोट्–हिन्धि, (म० पु० एक०), शेष रूप पूर्ववत्।

हिंस्—१० उ०, (मारना), लट्–हिंसयति-ते, लिट्–हिंसयाचकार–चक्रे–आस–बभूव, लुट्–हिंसयिता, लुङ–अजिहिंसत्–त। सन्–जिहिंसयिषति-ते।

हिक्क्—१ उ०, अव्यक्ते शब्दे (अस्पष्ट शब्द करना, छींकना), लट्–हिक्कति-ते, लिट्–जिहिक्क, जिहिक्के, लुट्–हिक्किता, लुङ–अहिक्कीत्–अहि-क्किष्ट। क्त–हिक्कित।

हिक्क्—१० आ०, हिंसायाम् (मारना, दुःख देना), लट्–हिक्कयते, लिट्–हिक्कयाचक्रे, लुङ–अजिहिक्कत।

हिट्—१ प०, आक्रोशे (कोसना, शपथ लेना), लट्–हेटति, लिट्–जिहेट, लुङ–अहेटीत्।

हिट्—९ प०, भूतप्रादुर्भावे (पुनः प्रकट होना), लट्–हिट्णाति, लिट्–जिहेट, लुङ–अहेटीत्।

हिण्ड–१ आ०, गत्यनादरयोः (जाना, घूमना, अनादर करना), लट्–हिण्डते, लिट्–जिहिण्डे, लुट्–हिण्डिता, लुङ–अहिण्डिष्ट। क्त–हिण्डित।

हिन्व्—१ प०, प्रीणने (प्रसन्न करना), लट्–हिन्वति, लिट्–जिहिन्व, लुङ–अहिन्वीत्।

हिल्—६ प०, भावकरणे (भावुकता के साथ खेल करना, भाव प्रदर्शन करना), लट्–हिलति, लिट्–जिहेल, लुङ–अहेलीत्।

हु—३ प०, दानादनयोः (देना, यज्ञ करना, खाना), लट्–जुहोति, लोट्–जुहुधि, (म० पु० एक०), लिट्–जुहाव, जुहवाचकार, लुट्–होता, लुङ–अहौषीत्, आ० लिङ–हूयात्। सन्–जुहूषति, णिच्–लट्–हावयति-ते, लुङ–अजूहवत्–त, क्त–हुत।

हुड्—१ प० (जाना), लट्–हाडति, लिट्–जुहाड, लृट्–हाडिष्यति, लुङ–अहाडीत्।

हुड्—६ प०, संघाते (एकत्र करना), लट्–हुडति, लिट्–जुहोड, णिच्–लट्–हाडयति-ते, लुङ–अजूहुडत्–त।

७ (इकट्ठा करना, चुनना,
हुण्ड्—१ आ०, संघाते वरणे (हरणे इत्येके)
अपहरण करना), लट्-हुण्डते, लिट्-जुहुण्डे, लुङ्-अहुण्डिष्ट ।
हुर्च्छ्—१ प०, कौटिल्ये (कुटिल होना, धोखा देना), लट्-हूर्च्छति, लिट्
-जुहूर्च्छ, लुट्-हूर्च्छिता, लुङ्-अहूर्च्छीत् । क्त-हूर्च्छित ।
हुल्—१ प०, (जाना, ढकना, मारना), लट्-होलति, लिट्-जुहोल, लृट्-
होलिष्यति, लुङ्-अहोलीत् ।
हुड्—१ प०, (जाना), लट्-हुडति, लिट्-जुहुड, लुङ्-अहोडीत् ।
हृ—१ उ०, हरणे (लेना, हरण करना, जीतना, पाना, आदि), लट्-
हरति-ते, लिट्-जहार-जह्रे, लुट्-हर्ता, लृट्-हरिष्यति-ते, लुङ्-अहार्षीत्-
अहृत, आ० लिङ्-ह्रियात्, हृषीष्ट । सन्-जिहीर्षति ते, णिच्-लट्-
हारयति-ते, लुङ्-अजीहरत्-त, कर्म० लट्-ह्रियते, लुङ्-अहारि, क्त-हृत ।
हृणी—आ०, रोषणे लज्जायां च (क्रुद्ध होना, लज्जित होना), लट्-
हृणीयते, लिट्-हृणीयाचक्रे, लृट्-हृणीयिष्यते, लुङ्-अहृणीष्ट ।
हृष्—१ प०, अलीके (झूठ बोलना), लट्-हर्षति, लिट्-जहर्ष, लुङ्-
अहर्षीत् । सन्-जिहर्षिषति, णिच्-लट्-हर्षयति-ते, लुङ्-अजहर्षत्-त, अजी-
हृषत्-त, क्त-हृष्ट ।
हृष्—४ प०, तुष्टौ (प्रसन्न होना, बाल आदि का खड़ा होना), लट्-
हृष्यति, लिट्-जहर्ष, लुट्-हर्षिता, लुङ्-अहृषत् । क्त-हृषित, हृष्ट ।
हेट्-हेठ्—१ आ०, विबाधायाम् (दुष्ट होना, उत्पन्न होना, शुद्ध करना),
लट्-हेटते-हेठते, लुङ्-अहेटिष्ट, अहेठिष्ट ।
हेड्—१ प०, वेष्टने (घेरना), लट्-हेडति, लिट्-जिहेड, लृट्-हेडिष्यति,
लुङ्-अहेडीत् । सन्-जि हिडिषति ।
हेड्—१ आ०, अनादरे (अनादर करना), लट्-हेडते, लिट्-जिहेडे, लुङ्-
अहेडिष्ट ।
·ल्—१ आ०, (अनादर करना), लट्-हेलते (हेड् के तुल्य) ।
ेष्—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (हिनहिनाना, दहाड़ना), लट्-हेषते, लिट्
-जिहेषे, लुट्-हेषिता, लुङ्-अहेषिष्ट, क्त-हेषित ।
होड्—१ प०, चलने (जाना, आना), लट्-होडति, लिट्-जुहोड, लृट्-
होडिष्यति, लुङ्-अहोडीत् ।
होड्—१ आ०, अनादरे (अनादर करना), लट्-होडते, लिट्-जुहोडे,
लृट्-होडिष्यते, लुङ्-अहोडिष्ट । णिच्-लट्-होडयति-ते, लुङ्-अजूहुडत्-त ।
होड्—१ प० (अपमान करना, जाना), लट्-होडति ।
ह्नु—२ आ०, अपनयने (छिपाना, अपहरण करना), लट्-ह्नुते, लिट्-
जुह्नुवे, लुट्-ह्नोता, आ०, लिङ्-ह्नोषीष्ट, लुङ्-अह्नोष्ट, सन्-जुह्नूषते, क्त-
ह्नुत ।

ह्मल्—१ प०, (जाना, हिलाना), लट्–ह्मलति, लिट्–जह्माल, लुङ्–अह्मालीत् ।

ह्मग्—१ प०, सवरणे (छिपाना, ढकना), लट्–ह्मगति, लिट्–जह्माग, लृट्–ह्मगिष्यति, लुङ्–अह्मगीत् ।

ह्मप्—१० उ०, व्यक्तायां वाचि (बोलना, आवाज करना), लट्–ह्मापयति-ते, लिट्–ह्मापयाचकार-चक्रे, लुट्–ह्मापयिता, लुङ्–अजिह्मपत्–त ।

ह्मस्—१ प०, शब्दे लाघवे च (शब्द करना, लुप्त होना, न्यून होना), लट्–ह्मसति, लिट्–जह्मास, लुट्–ह्मसिता, लुङ्–अह्मासीत्–अह्मसीत् । सन्–जिह्मसिषति, क्त–ह्मसित ।

ह्लाद्—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (शब्द करना, दहाड़ना, गरजना), लट्–ह्लादते, लिट्–जह्लादे, लुट्–ह्लादिता, लुङ्–अह्लादिष्ट ।

ह्री—३ प०, लज्जयाम् (लज्जित होना), लट्–जिह्रेति, लिट्–जिह्रयाचकार, जिह्राय, लुट्–ह्रेता, लुङ्–अह्रैसीत्, आ० लिङ्–ह्रीयात् । सन्–जिह्रीषति, कर्म० लट्–ह्रीयते, लुङ्–अह्रायि, णिच्–लट्–ह्रेपयति-ते, लुङ्–अजिह्रियत्–त । क्त–ह्रीत, ह्रीण ।

ह्रीच्छ्—१ प०, लज्जायाम् (लज्जित होना), लट्–ह्रीच्छति लिट्–जिह्रीच्छ, लुङ्–अह्रीच्छीत् ।

हुड्—हूड्—१ प० (जाना), लट्–ह्रोडति–हूडति ।

ह्रेप्—१ आ० (जाना), लट्–ह्रेपते, लिट्–जिह्रेपे, लुट्–ह्रेपिता ।

ह्रेष्—१ आ०, अव्यक्ते शब्दे (हिन हिनाना, जाना), लट्–ह्रेषते, लिट्–जिह्रेषे, (देखो ह्रेप् धातु) ।

ह्रोड्—१ प० (जाना), लट्–ह्रोडति ।

ह्लग्—१ प०, सवरणे (ढकना), लट्–ह्लगति, लिट्–जह्लाग, लुट्–ह्लगिता, लुङ्–अह्लगीत् ।

ह्लप्—१० उ०, व्यक्तायाम् वाचि (बोलना, शब्द करना), लट्–ह्लापयति–ते, लिट्–ह्लापयाचकार–चक्रे, लृट्–ह्लापयिष्यति-ते, लुङ्–अजिह्लपत्–त ।

ह्लस्—१ प०, शब्दे (शब्द करना), लट्–ह्लसति, लिट्–जह्लास, लुङ्–अह्लसीत्–अह्लासीत् ।

ह्लाद्—१ आ०, सुखे अव्यक्ते शब्दे च (प्रसन्न होना, शब्द करना), लट्–ह्लादते, लिट्–जह्लादे, लुट्–ह्लादिता, लुङ्–अह्लादिष्ट । णिच्-लट्–ह्लादयति-ते, सन्–जिह्लादिषते । क्त–ह्लन्न ।

ह्वल्—१ प०, वैक्लव्ये (विह्वल होना, व्याकुल होना, जाना, हिलाना), लट्–ह्वलति, लिट्–जह्वाल, लुट्–ह्वलिता, लुङ्–अह्वालीत् । णिच्– लट्–